उस कछार तक

परमात्मा

को और

तुमको

सा भा र - सा द र

स वि न य - स स्ने ह

कमला

मेरी माँ का नाम है। महुआ से अधिक मादक है उसकी ममता। सरसिज से अधिक स्निग्ध है उसका स्नेह। प्यारी माँ के साथ मै कोई औपचारिकता नही बरतता, इसलिए 'श्रीमती', 'देवी' इत्यादि आवरण-आभरणो से उस नाम को भूषित करने का प्रयोजन नही मानता। सीधी-सी है मेरी माँ। सीधा-सा उसका नाम। बात सीधी है।

वह मेरी जननी है। यूँ तो अपने मे यही बहुत बडी बात है। पावन प्रकृति का वह उपकरण, जिसके माध्यम से परमात्मा ने मेरी सृष्टि की। वह तारक ब्रह्म सदाशिव की नाईं मेरी आदिगुरु भी है। जगज्जननी का वह दिव्याश, जिससे मेरा सीधा सम्बन्ध है।

माँ की कोख मे जन्म पाकर मुझे इसका एहसास भी हो गया है कि मै किसी-न-किसी रूप मे सृष्टि के प्रारम्भ मे जरूर रहा था। मै आज का ही नही हूँ। बात चन्द रोज की नही, इतनी काफी पुरानी कि जितनी सोच भी नही सकता।

बडे महत्त्व की बात यह है कि माँ के द्वारा उसी के कारण और उसी की खातिर परमात्मा से मेरा सर्वप्रथम सम्पर्क हुआ।

माँ की एक बेटी शैशव मे ही राम को प्यारी हो चुकी थी। चन्द्रमा का सौन्दर्य लेकर वह 'शशिकला' (उर्फ 'गोपी') जनमी थी। लेकिन, दो वर्षो के अन्दर ही वह ज्योति तिरोहित हो गयी थी और माँ के मन मे अमावस्या की घनी निर्वाक् रात छोड गयी थी।

माँ के सन्तोष के लिए, उसका दिल रखने के लिए, उसके निरीह आँसू को सोखने के लिए करुणासागर परमात्मा ने अपने मागलिक विचित्र विधान से मुझे उसकी गोद मे फेक दिया था।

माँ को भरोसा नही था कि मै जीने के लिए जनमा हूँ। सोचती थी, शायद यह शिशु भी काल-कवलित हो जाय। शायद उसका भाग्य ही खोटा था। कौन जाने, उसके भाग्य मे नि सन्तान रहना ही लिखा हो। नाना शकाओ और दुश्चिन्ताओ से वह घिरने लगी थी। सबसे पहले मेरे लिए उसने एक दुर्भेद्य कवच की व्यवस्था की।

छोटी मौसी (प्रभा), मँझली मामी (रमा रामप्यारी) तथा नानीजी (राजनेती कुँअर) से मन्त्रणा लेकर उसने मुझे परमात्मा के चरणो पर चढाया। सूतिकागृह-जैसे अपवित्र स्थान मे परमात्मा अव्यक्त ही रहना पसन्द करता है। चुनाचे, माँ को यह उपक्रम अपने मन की गहराइयो मे ही करना पडा।

परमात्मा के पवित्र चरणो पर चढाया गया मै, तिरुपति के अप्रचलित 'श्रीनिवास' सज्ञा से मण्डित, अलकृत, अभिहित हुआ।

माँ को फिर भी भरोसा न था। वह सोचती रही, डरती रही, काँपती रही—कही चढाये हुए फूल को भगवान् ने सदा के लिए स्वीकृत कर लिया तो! निश्छल-कोमल दिल को यह पता नही चला कि मै जहाँ से आया, वही चला ही गया, तो क्या बात बनती-बिगडती। माँ को तो यह भी पता न था कि मै कब जन्म ले रहा हूँ, मै किस यौनाम्बर के साथ (माध्यम से) आनेवाला हूँ। वह बेटा चाहती थी। कौन ठिकाना था, मै दीदी के क्रम मे कही बेटी ही बनकर आ जाता।

जाडे की रात थी। बर्फीली सर्दी, जबडे को बजा-बजाकर तोड देनेवाली। और मैने माँ की सहूलियत का कुछ भी खयाल नही किया। धूप मे नही, रात के चार बजे (विरात मे) जनमा। जब उषा अवतरित होती है। जब प्रभात जनमने को होता है। अमा के आँचल से सरककर मै धरती पर आ पडा (गिरा) था।

माँ को लोगो से मन्त्रणा मिली कि नवजात शिशु का अग-भग कर दिया जाये, ताकि मौत को उससे घृणा हो जाये, ताकि वह ग्रास यम को भी ग्राह्य न हो। लेकिन, माँ की ममता विरोध मे आकर खडी हो गयी। मै विकलाग या अपाहिज होने से बाल-बाल बच गया। फिर भी माँ के दिल का डर नही गया। बेचारी भोली-भाली माँ! लोगो के सुझाव पर मै सूतिकागृह से निकालकर कूडे पर फेक दिया गया। घूरा-गनौरा पर, जहाँ बहरना फेका जाता है। नारे-पुरैने-समेत (विथ इन्टैक्ट अम्बिलिकल-कॉर्ड, ऐण्ड प्लैसेन्टा स्टिल अटैच्ड टू माइ बॉडी) मै वही फेक दिया गया। बाजाब्ता।

जैसा कि पहले से ही तय हुआ था—रामदेव की माँ, जसुमतिया, शौच से लोटा लिये लौट रही थी। उसने अकेले पडे नगे ठिठुरते बच्चे को कूडे के ढेर पर से छैटा (बाँस की टोकरी) मे उठा लिया और मै मात्र चार आने पैसे मे, उसके गन्दे हाथो बेच दिया गया। और इस तरह, दूसरे की सम्पत्ति (जायदाद) बन बैठा। कुत्ते की मौत भी मयस्सर न हुई। हाँ, ससार थोडा सरक गया।

मेरी मासूम माँ! जरा सोच तो सही! अगर तेरे बच्चे को न्युमोनिया (हब्बा-डब्बा) हो जाता, कही तेरा निरीह शिशु टेटनस (धनुष्टकार) से आक्रान्त हो जाता, तो तू क्या करती! कहाँ की रह जाती! री, पगली!

मेरी तो शामत आयी थी। इतनी आसानी से जान कैसे छूटती भला।

मै मिट्टी के चूल्हे मे झोका गया। झुनकुट वृद्ध ब्राह्मण, पण्डित भाईलाल झा, का डॉरा मेरी कमर मे बाँधा गया और बरही के दिन नये नूतन पीले वस्त्र से सुसज्जित होने (धारण करने की बजाय) मुझे बूढी ब्राह्मणी, गौरा गोसाईं, की फटी-चिटी, पेबन्दो से भरी-सजी साडी से सिली, झुलिया-टोपी पर ही सन्तोष करना पडा।

अन्धविश्वासी माँ ने भी मुसीबते उठाने से मुँह नही मोडा। आखिर बेटे के जीवन का सवाल था।

बारह बजे स्तब्ध रात्रि मे वह एक मद्धिम बत्ती (लालटेन) के सहारे बाहर निकली। साथ मे जद्दू राय, घैया नानी, झलिया लौडी तथा बडी मामीजी (राज-नन्दिनी कुँअर) की लोकदिन आदि थे। खोजकर खिक्खिर की मॉद पूजी गयी। भूत-पिशाच को शराब चढायी गयी। भतुआ की, मन्त्रोच्चारण के साथ, बलि दी

गयी और माँ ने सरे-बाजार चमइन से माँगकर आदमी का मास तक खाया।

आगे की भी मेरी कहानी वैसी ही आपत्ति-विपत्ति-ग्रस्त, सकटाच्छन्न और दर्दनाक रही। लेकिन मै मरने से बचा लिया गया—माँ के अथक प्रयास और आस्था की बदौलत।

माँ मुझे बेहद मानती थी। ऐसा कोई भी जरूरी या महँगा त्याग नही था, जिसे उसने मेरे लिए (मेरी भलाई के लिए) न किया हो। ऐसा कोई भी दु ख नही था, जिसे उसने मेरे लिए नही झेला हो। ऐसा कोई भी तप नही था, जो उस बेचारी ने मेरे हित मे न किया हो। कोई देवता नही थे, जिनकी मन्नते नही मानी गयी हो, जिसकी चौखट पर वह न गिडगिडायी हों। बेटे को कलेजे (छाती) से चिपकाये वह सहारो की गलियो मे भटकती, दरवाजा पीटती चली।

मै सोचता हूँ, जिस परमात्मा ने माँ के हृदय को इतना विशाल बनाया, जिसने ममता की आड मे इतना प्यार, इतनी करुणा भर दी, जिसने असहाय नवजात शिशु के लिए दूध और गोद की व्यवस्था की, वह सचमुच कितना महान् होगा! कैसा कोमल होगा वह दिल!

कैसी अमोघ, सशक्त और सूक्ष्म थी वह ममता, जिसने ज्ञान-विज्ञान, सबको तोप दिया था, जिसने आदमी को अन्धा बना दिया, जिसने माँ की सारी कमजोरियो पर विजय प्राप्त की, जो आदमी की सारी मूल (नैसर्गिक) प्रवृत्तियो को दबाकर और झुठलाकर उन्मुक्त हो गयी। माँ की नि स्वार्थ ममता मे मैने परमात्मा की अहैतुकी कृपा और अगाध करुणा तथा प्यार को प्रत्यक्ष देखा। पहचाना।

माँ की एक नजर मे विश्व का कल्याण छिपा हुआ था। उसके एक आशी मे जन्म-जन्मान्तरो का पुण्यफल उडेला हुआ था। उसकी एक सीख मे अन्त करण की समस्त कमजोरियाँ उलीच दी गयी थी।

मै सन् १९३२ ई० मे, किंग एडवर्ड हाइ इग्लिश स्कूल, समस्तीपुर मे दाखिल हुआ—आठवी कक्षा मे। और, सन् १९३३ ई० की यह बात है। वार्षिक समारोह का आयोजन स्कूल के बडे हॉल मे किया गया था। सालाना परीक्षा का फल निकल गया था। पारितोषिक-वितरण होनेवाला था। मुझे भी कुछेक पारितोषिक मिलनेवाले थे। कुछ गाना गाना था। एक नाटक मे किसी पात्र की भूमिका अदा करनी थी। छात्रो और आमन्त्रित आगन्तुको से हॉल खचाखच भरा था। नगर के गण्य-मान्य लोग मच से सटकर बैठे थे। उनमे भी जो सर्वाधिक प्रतिष्ठित थे, वे उछलकर मच पर ही आ विराजे थे। नाटक खेले गये। गाने गाये गये। वाहवाही बख्शी गयी। तालियाँ गडगडायी। आयोजित प्रोग्राम के क्रम मे जब शकराचार्य द्वारा विरचित 'चर्पट-पञ्जरिकास्तोत्र' का सस्वर पाठ प्रारम्भ हुआ, तभी समय के फेर से एक विचित्र घटना घटी। लय के आरोह-अवरोह के साथ स्तोत्र का प्रभाव-प्रवाह फैलने लगा। न माइक, न लाउड-स्पीकर। बच्चा विद्यार्थी। गला फाड-फाडकर गाना। थोडी तुतली जुबान मे। पाठ उमडता-लहराता अग्रसर हुआ

दिनमपि रजनी साय प्रात
शिशिरवसन्तौ पुनरायात ।
काल क्रीडति गच्छत्यायु
तदपि न मुञ्चत्याशावायु ।।
भज गोविन्द, भज गोविन्द, भज गोविन्द मूढमते ।

अङ्ग गलित पलित मुण्ड
दशनविहीन जात तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्ड
तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।। भज गोविन्द

बालस्तावत् क्रीडासक्त
तरुणस्तावत् तरुणीरक्त ।
वृद्धस्तावत् चिन्तामग्न
परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्न ।। भज गोविन्द

वयसि गते क कामविकार
शुष्के नीरे क कासार ।
नष्टे द्रव्ये क परिवार
ज्ञाते तत्त्वे क ससार ।। भज गोविन्द

कस्त्व कोऽह कुत आयात
का मे जननी को मे तात ।
इति परिभावय सर्वमसार
विश्व त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।। भज गोविन्द

यावज्जीवो निवसति देहे
कुशल तावत् पृच्छति गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये
भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये ।। भज गोविन्द

कुरुते गङ्गासागरगमन
व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
बिना ज्ञान के इन सब से भी
सौ जन्मो मे मुक्ति न मिलती ।।

पहली पक्ति (कतार) मे आन-बान-शान से बैठे, माला फेरते एक नयनाभिराम वयोवृद्ध सज्जन एकाएक फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होने लाख कोशिशे की लाज बचाने की। रूमाल का सहारा लिया। चादर का दामन पकडा। लेकिन, आँसू थे बेहया, बेशर्म, बेदर्द, जो रुके नही। घिग्घी बँध गयी। लोगो की नजरे पडने-कतराने लगी। जिज्ञासाये जगने लगी। उत्सुक-उचक्को से आँखे चार होने लगी।

वह उठे। आसन छोडा। मालायें उतार ली। मच पर पहुँचे। स्तोत्रपाठी बालक को बाहुपाश मे जकड लिया और तब लोकलाज त्याग कर खूब रोये। जोर-जोर से सिसक-सिसक कर, उफन-उफन कर। उन्होने कहा कि जीवन की सन्ध्या अनचोके आ धमकी है। मैने कुछ भी नही किया, कुछ भी नही पाया। एक अनमोल जिन्दगी मिली थी, जो व्यर्थ गँवायी। अब क्या होगा ?

पश्चात्ताप का परिवेश था। एक मौका हाथ से चला गया था। और, जो चला गया, वह आनेवाला नही था। मिट्टी माटी माँगने लगी थी। अब उसे छोडकर चला जाना होगा। चदरिया मैली हो चली थी। चुनरी मे दाग लग गये थे। समय कम था। धब्बो को कैसे साफ करे ? कैसे महायात्रा पर जाये ? किसकी मदद ले ? किसका भरोसा करे ?

अनायास 'रुद्र' जी की एक कविता याद आयी

"बन्धु ! जरूरी है मुझको घर लौटना,
एक मुझे भी ले लो अपनी नाव पर।
देर तनिक हो गयी वहाँ बाजार मे,
मोल-तोल के भाव और व्यवहार मे।

मै गरीब ले सका न अपने भाव पर,
बन्धु ! मुझे भी ले लो अपनी नाव पर।
सनक नही तो क्या कहिए इस ठाट को,
कौडी लेकर पास चला था हाट को।

पडता रहा नमक ही मेरे घाव पर,
बन्धु ! मुझे भी ले लो अपनी नाव पर।
हल्का हूँ, होऊँगा खास न भार मै,
निर्धन हूँ, बस दे सकता हूँ प्यार मै।
गीत सुनाऊँगा मीरा के, सूर के,
ले लेना, जो पाऊँगा दो-चार मै।

टपकेश्वर महादेव का मन्दिर देहरादून से करीब आठ-नौ मील या किलोमीटर पर होगा। करीब चालीस साल पहले की बात है। मै और मेरे छोटे भाई (लक्ष्मी-निवास सिह, उपनाम मदनजी, जो पीछे चलकर प्रसिद्ध कवि मदन वात्स्यायन के नाम से विख्यात हुए) उन दिनो देहरादून मे थे। मामाजी गर्मियो मे अक्सर पहाडियो पर जाते थे। हम भी कभी-कभी उनके साथ हो लेते। किशोरावस्था तक पहुँचने मे दो-चार साल बाकी थे। इत्मीनान की कोई वजह नही थी, लेकिन उसे रहना होता था।

एक दिन किराये पर सायकिल ली गयी। मै आगे सीट पर बैठा। मदनजी पीछे लगेज कैरियर पर। चार बजे सबेरे। पौ फटने के पहले ही हम (मै-मदन) टपकेश्वर महादेव के दर्शनार्थ चल पडे। मामाजी-मामीजी को नही जगाया। कुछ कह कर भी नही गये। नौकर-चाकर तथा पहरुए को गन्तव्य का पता दे दिया। कहते गये कि जब मामाजी सोकर उठे, तब उन्हे सूचित कर देना। आज्ञा लेकर जाना उचित था। लेकिन तब प्रस्थान की वेला टल जाती। रास्ते का भी अन्दाज नही था। पहली बार सायकिल के सफर पर निकले थे। वह महादेव का मन्दिर कैसा होगा, कहाँ होगा, यह मालूम न था। इतना भर जानते थे कि लोग दिन-भर मे जाकर लौट आ सकते है।

देहरादून से मसूरी के रास्ते पर चले। चढाई का रास्ता तय करना था। ऊँचा-नीचा और ऊँचा। सायकिल का ऊपर चढाना आसान न था। एक-एक डेग आगे बढाने के लिए मिहनत करनी पड रही थी। परिश्रम के साथ पैडल मारना पडता था। कुछ ही दूर जाते-जाते साँसे फूलने लगी। धूप प्रखरतर होने लगी। करीब तीन बजे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ मेन रोड से मन्दिर की ओर एकबगली राह फूट निकली थी। वन-प्रान्तर से होते हुए उस ऊबड-खाबड पगडण्डी पर हम पैदल उतरने लगे। सायकिल साथ चली, वह भी पैदल ही। एक-दो किलोमीटर की उतार के बाद हम मन्दिर पर पहुँचे। पहाड की एक चट्टान से सायकिल लगा दी।

पहाड काटकर बनायी गयी बेतरतीब सीढियो से उतरकर एक पहाडी पतली नदी मे हाथ-पॉव धोये। फिर, उन्ही सीढियो से ऊपर चढने पर आधे रास्ते मे ही महादेव का मन्दिर मिलता है। अब इन सीढियो को छोडिये। दूसरी ओर तो देखिये। एक समतल-सी पहाडी पर थोडी दूर चलने के बाद एक बडी-सी गुफा मिलती है। उसी के मध्य प्रान्तर मे काले पत्थर से निर्मित एक शिवलिंग निखरता है। गुफा की छत से पसीज-पसीज कर पानी की बूंदे पिनाकपाणि पर प्रतिपल गिरती रहती है—टप् टप् टप् टप्। इसी घटना-क्रम के प्रति सजग त्रिलोचन, दिगम्बर, नीलकण्ठ महादेव ने इन नन्ही-नन्ही बूंदो को अपने शाश्वत अक मे समेटने के कारण अपना नाम रख लिया है 'टपकेश्वर' महादेव। मन्दिर मे दर्शन-पूजा के लिए समय कम था। जल्द करणीय समाप्त किया।

लौटने के पहले हम दोनो भाई उस शान्त वातावरण के साथ कुछ देर रहना चाहते थे, इसलिए भगवान् शकर की याद मन मे लिये हम पूर्ववत् सीढियो से उतरकर उस पहाडी सरिता के किनारे एक चट्टान पर जा बैठे। सिर्फ दस-पन्द्रह मिनटो का यह कार्यक्रम बनाया था। समय भागा जा रहा था। सायकिल से ही देहरादून लौट जाना था। पता नही, कितना वक्त लगेगा। रात-भर वहाँ टिकना उचित नही था। अनजान, सुनसान स्थान। मामा-मामी चिन्तित होगे। छोटे भाई की जवाबदेही भी मुझ पर थी। उनकी सुरक्षा की चिन्ता बढने लगी। मेरा योग-क्षेम प्रभु के जिम्मे था—अनुज का मेरे जिम्मे।

चारो तरफ पहाडियाँ। जगल-ही-जगल। पानी की पतली धारा नीचे सरकती जा रही थी। इधर-उधर ऊपर-नीचे कोई नजर नही आता था। कही कोई जानवर भी नही। हिंस्रक पशु की आवाज भी नही आ रही थी। एकान्त, घोर एकान्त। स्तब्धता का साम्राज्य और हम दोनो। नदी झिर्-झिर् कर बहती जा रही थी। बातास भी नही। घडी थी नही, इसलिए टिक्-टिक् की ध्वनि भी नही।

सन्ध्या आसमान से शायद चल चुकी थी। जल्दी लौटना नितान्त आवश्यक था। लेकिन रास्ते मे रात जो आ पडती। निर्जन भटकौही राह। हम दोनो बच्चे। कैसे लौट सकेगे ? और लौटेंगे नही, तो हम सन्नाटे मे रात कैसे गुजारेंगे ? अब लौटने से डर लगने लगा। अब ठहरने से खौफ खाने लगा। कोई था भी नही। मै अपने दोनो पैर नदिका मे डुबोये चट्टान पर बैठा उस पूर्ण शान्त वातावरण मे सहसा अशान्त हो उठा।

चिन्ता की तानी। चिन्ता की भरनी। चिन्ता का अनुलम्ब (Longitude -लम्बाई) चिन्ता का अक्षान्तर (Latitude)। मै

	चिन्ता	चिन्ता		चिन्ता
चिन्ता			चिन्ता	
	चिन्ता	चिन्ता	चिन्ता	**मेरा**
चिन्ता			चिन्ता	
	चिन्ता	चिन्ता		चिन्ता

(जी) मन अस्थिर होने लगा। मै डरने लगा। चिन्ताओ के चक्कर मे एक विपन्न विचार हठात् उठ आया। मन-ही-मन मै सोचने लगा, एक तन्तुजाल बिछने लगा—हम इतनी मिहनत करके, इतनी शिद्दत सहके, कितनी दूर से शंकरजी के दर्शन को आये है। हम दो बच्चे है। दिन-भर के भूखे। अगर सचमुच भगवान् है, तो देखे, वे हमदोनो के लिए खाने की व्यवस्था करते है या नही। (साथ-ही-साथ भगवान् से ऐसी अपेक्षा करने, उनके अस्तित्व को अकारण यूँ चुनौती देने के लिए अपने ओछे मन के प्रति भर्त्सना भी जगी, आत्मग्लानि भी।) ये भाव अनायास मेरे मन मे पनपे थे, दुश्चिन्ताओ के बीच। समय था नही। प्राकृतिक छटा को देखने-परखने मे दस-पन्द्रह मिनट गँवा चुके थे। बस, अब दृढ मन करके उठनेवाला ही था कि देखा पीछे दो आदमी खडे है। दोनो ने ही पुराने, मटमैले गेरुआ वस्त्र धारण कर रखे थे। कोई तीस-पैंतीस की उम्र होगी। दोनो की मुखाकृति शान्त। एक ने पीछे से मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मेरा ध्यान अपनी तरफ आकृष्ट किया था। उनके आने की आहट मालूम नही हुई। उनको देखते ही मै उठ खडा हुआ, सविस्मय। उन्होने पूछा—"आप दोनो कहाँ से आये है ? अभी लौट जाइयेगा क्या ? समय तो यथेष्ट है, आसानी से लौट जा सकेंगे। यहाँ से रास्ता ढालू है न ? सडक भी अच्छी है। कोई डर नही। आपलोगो ने कुछ खाया-पिया है या नही ? सुनिये, मेरे साथ आइये तो।"

और, हम दोनो उन दोनो के साथ ऊपर चढ आये। बिना मेरे कुछ पूछे या

कहे, उन्होने अपनी ओर से ये बाते कही। हम (मै-मदन) उनके आदेशानुसार उनके साथ चले। पहाडी के ऊपर आ गये। फिर जगल मे घुसे। थोडी दूर अन्दर गये। एक बागीचा-सा देखा। उन्होने पेड से दो-तीन फल तोडकर हमे दिये। कहा—'खाइये।' मै उन फलो को हाथ मे लेकर देखने लगा। तबतक वे सामने से हटकर पीठ की ओर अग्रसर हुए। मैने सोचा, सम्भवत वे और फल लाने जा रहे है। दो-चार सेकण्ड के अन्तराल मे मैने देखा कि वे किस पेड का कौन-सा फल तोडकर देनेवाले है। लेकिन वे वहाँ थे नही। कहाँ चले गये ? अन्तर्धान हो गये। एक विस्मयात्मक घटना घटी। मेरे हाथो मे वे फल वैसे ही पडे थे। उनसे इतना भी नही हुआ कि उस अजनबी जगली बागीचे मे से निकाल कर सीधी राह धरा देते। सन्ध्या आसमान से जमीन पर उतर चुकी थी। अन्धकार की अगवानी मे सहमी-सी साँझ और भयभीत (हम दोनो) भाई। कही कुछ हो न जाय। चिन्ता। विस्मय। निर्जन मे खतरे का डर। कुछ प्रकट हो गया तो !!!

उनमुनी गर्मी ने जैसे ठण्ढी साँस ली। वातावरण मे एक सिहरन-सी आयी। जाडे की झीनी चादर ओढे पहाडियो की ओट से निशा झाँकने लगी। सन्नाटा गहन होने लगा।

हमने फल खा लिये। सायकिल पर लौट चले। रास्ता देहरादून की ओर ढालू था ही। सायकिल स्वत लुढकती चली। बिना विशेष प्रयास के हमदोनो भाई साढे आठ बजे रात मे मामा-मामी के सामने जा खडे हुए। हम दिन-भर के भूले-भटके घर आ गये। उनकी जान मे जान आयी। हल्की-सी डाँट मिली। भारी-सा नाश्ता।

परमात्मा का पोल खोलना परम्परा को अनुचित लगता आया है। अनुभवी बोलता नही। बाकी बोलते है और धडल्ले से बोलते है।

परमात्मा का पक्ष हल्का पड जाता है। ज्ञानी कम। अज्ञानी ज्ञानी बेशी। वे कनफुसकी देते है। कभी-कभी। ये चिल्लाते रहते है, बराबर। गोपनीयता बैरिन बन गयी।

हमारे ननिहाल के एक सजन थे जद्दू राय। ये नानीजी के समय से ही रसोइया थे। पीछे जब मामाजी का राज्य हुआ, तब भी वे वही काम करते रहे। मामले-मुकदमे इस भयकरता के साथ घेरे रहते कि डर था, कही भोजन जहर का काम न कर जाय। बाबू जद्दू राय इतने सच्चे और ईमानदार थे कि उनके भरोसे लोग पूर्ण विश्वास और शान्ति के साथ ज्योनार जीमते थे। अपने काम मे इतने प्रवीण (दक्ष) थे कि रसोई मे रस आ जाता था। इतने प्रेमी कि उनका वृद्ध गठीला शरीर मेरे बचपन का क्रीडास्थल बन गया था। बन्दर की बहक, फुदगुद्दी की फडक, चुरमुन्नी की चहक। मै कभी गोद मे, कभी कन्धे पर। कभी माथे पर। कभी पीठ की लदनी, कभी पाँव की पकड, कभी बाँह की जकड। कभी कगारू की झोली, कभी जग, कभी ठठोली। कभी रग, कभी भग। कभी लिट्टी का सग। तब बाजा मिरदग। कभी दाढी की रगड, कभी मूँछ की। हमलोग उन्हे नाना कहकर पुकारते थे। वह

हमे निश्छल प्यार न्योछावर करते। घर के गरीब थे। मन के राजा। पुआल पर सोते थे। पोटली मे भूँजा, सत्तू और मिसरी के ढेले मेरे लिए रखते थे। उनके पेट मे सटकर मैने कितनी प्यार-पगी राते बितायी होगी। और, उसी पेट मे एक दिन जख्म हो गया, तो वे छुट्टी लेकर गाँव चले गये। जाते समय मेरी बलाये ली। मैं हमेशा आस लगाये रहा कि नानाजी लौट रहे है। महीनो बीत गये। वे लौटे नही। सुना, उनका स्वास्थ्य बिगडता ही जा रहा था। और एक रात, जब मैं गाढी नीद मे था कि वे आये। नरसिहजी के मन्दिर के चबूतरे पर चुकुमुकु बैठे थे। अपनी दोनो लम्बी भुजाएँ फैला कर अपनी गोद मे समेट लेना चाहते थे। मैं फुदकता, मचलता, उमगता, इतराता उनकी गोद मे जा भहराया। तत्क्षण मेरी नीद उचट गयी। दूसरे दिन खबर आयी कि उसी रात उनका स्वर्गवास हो गया। उनके सम्बन्ध मे यह मेरा पहला और अन्तिम स्वप्न था।

आत्मनिरीक्षण से लेकर सबक सिखाने तक के लिए स्वप्न एक विलक्षण, विशिष्ट उपाय है। आदमी की अपूर्ण हसरतो, अरमानो को पूरा करा देने के लिए एक सुगम और सही रास्ता है। ऐच्छिक जीवन व्यतीत कर लेना, अच्छी-से-अच्छी और गन्दी-से-गन्दी जिन्दगी बसर कर पाना, और न ऊधो का लेना, न माधो का देना। न कानून के हाथ लगना, न समाज की आँखो चढना। चोरी कर लेना, पर चोर न गिना जाना। यह एक ऐसा माध्यम है, जिससे अन्य आत्माएँ (ऐहलौकिक अथवा पारलौकिक, जीवित अथवा मृत) तथा सार्वभौम चेतना भी जीवात्मा के अन्त करण के साथ सम्पर्क स्थापित कर अपनी-पराई सुना जा सकता है, आखे खोलकर सचेत कर जा सकता है, भविष्य के लिए आगाह कर जा सकता है। बिछुडे या स्वर्गीय प्रियजनो से, दो क्षणों के लिए ही सही, मुलाकात (साक्षात् सम्पर्क) कराकर तडपते हृदय को शान्ति प्रदान करने का एक कारगर मार्ग है। सपने मे भक्तो ने भगवान् के दर्शन किये है, कवियो ने पद्य रचे है, वैज्ञानिको ने समस्याओ का समाधान पाया है, कठिन सवाल हल हुए है। जीवन ने नया मोड लिया है। आदमीयत बदली है। असह्य को सह्य बनाया है।

स्वप्न परमात्मा की अजस्र करुणा का प्रमाण है। यह आध्यात्मिक विधान की स्नेह-सिक्त सुगन्ध है, जो सब प्राणियो के लिए हर नीद के गैबाने मे उपलब्ध है।

सृष्टि किसका कर्त्तव्य है ? किसकी रचना है ? किसकी जवाबदेही ? अणु-परमाणु की गुत्थियाँ सुलझ नही पायी है। कृश तर्को के सिवा ज्यामिति (गणित) का कोई आधार नही। विज्ञान अनुमान मे अवतरित होता है, अनुभव से अवधारित (मे प्रतिष्ठित)। अध्यात्म अनुभव मे अवस्थित होता है, अनुमान मे अवगाहित।

अध्यात्म हो तो भी, विज्ञान हो सो भी, दोनो की बुनियाद अनुभव और अनुमान मे है। विज्ञान के प्रमाण इन्द्रियो (बहिष्करणो) द्वारा उपलब्ध होते है, अध्यात्म के प्रमाण अन्त करण के माध्यम से। व्यक्त को व्यक्त करने के लिए व्यक्त काम आता है। अव्यक्त का अन्दाज अव्यक्त से मिलता है।

ज्ञान-विज्ञान की तह मे दर्शन का माहात्म्य है। आध्यात्मिक अथवा वैज्ञानिक दोनो प्रकार के ज्ञान दर्शन को स्वीकार्य है। दर्शन दोनो स्वीयो (आत्मीयो) (अध्यात्म और विज्ञान) का जनक है। भगवान् रामतीर्थ ने ठीक ही कहा कि

डटकर खडा हूँ खौफ से खाली जहान मे।
तसकीने दिल भरी है मेरे दिल मे, जान मे।

किस तरह आ सकूँ हूँ मै कैदे-बयान मे।

अगर शौक सादिक (सच्चा) है, तो यह महज नामुमकिन (असम्भव) है कि तजुर्बेकार आमिल या और कोई मदद, जो जरूरी है, खुद-ब-खुद-खिचकर न चली आये, कोयले को आग लगी, तो हवाई ऑक्सीजन को अपनी तरफ खीच लाती है। क्या हजरत इन्सान के दिल की आग ही इतनी बेबस है कि मुरशिद (सद्गुरु) कामिल के वस्ल (मिलाप) से महरूम (वचित) रहे।

अध्यात्मविद्या = अपनी विद्या।

परमात्मा की प्राप्ति के लिए—१ किसी 'प्रयत्न' या किसी 'मेहनत' की जरूरत नही। २ अचाह और अप्रयत्न ही अमोघ है।

दिखायी (परमात्मा का दिखायी पडना, किंवा नही दिखायी पडना) = क्या ऑखो से जो देखा जा सके या अनुभूत हो सके, केवल उसी से मतलब है? दूसरी ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा जो जाना जा सके, अनुभव मे आ सके, प्रत्यक्ष हो सके, उसका क्या होगा? परमात्मतत्त्व का पता क्या केवल नेत्रो के द्वारा ही चल सकता है?

उदाहरणार्थ 'दिव्य सन्देश', जो सुने गये, 'दर्शन', जो सपनो मे अथवा खयालो मे हुए, नेत्रहीन को जो 'दिखायी' पड गया। 'ज्ञान' के द्वारा जो रहस्योद्घाटन हुआ। परमात्मा कारण-जगत् से भी सूक्ष्म है क्या? उस जगत् या स्थिति को क्या कहते है?

स्थूल जगत्—वस्तु दिखायी पडती है।

सूक्ष्म जगत्—गुण (या फकशन्स) दिखायी देते है। वस्तु दिखायी नही पडती।

कारणजगत्—(अव्यक्त) परम शून्य, जिसमे गुण भी दिखायी नही पडता। न सृष्टि की कोई आकृति है, न गुणो का प्रवाह। लेकिन बीजरूप मे तो है। परमात्मा कारण-जगत् का भी तो ज्ञाता है।

विराट् ससार (या ब्रह्माण्ड?) का सूक्ष्म रूप है 'हिरण्यगर्भ' ('हिरण्यगर्भ' क्या मानी?)

कारण रूप = ईश्वर = उसके (किसके?) ऊपर परमात्मा से मिलने का उपाय—इन्द्रियो की शक्ति को मन मे विलीन कर दो।

(यह कैसे किया जाय? कैसे जाना जाय कि इन्द्रियो की शक्ति मन मे विलीन हो रही है या हो गयी?)

चिन्तन रोक दो (कबतक?)

चिन्तन को बुद्धि मे लीन कर दो।

(यह कैसे किया जाय ? कैसे सम्भव हो ?)

(कैसे जाना जाय कि चिन्तन बुद्धि मे लीन होता जा रहा है या हो गया ?) चिन्तन को बुद्धि मे लीन कर देने से वह आवश्यक शक्ति प्राप्त होती है, जिससे सत्य और असत्य का विभाजन हो जाय=तब आदमी अपने मे सन्तुष्ट (मतलब ? कैसे ?) होता है=तब परमात्मा का (से ?) मिलन हो जाता है। (परमात्मा का मिलन से क्या मतलब ? आदमी को क्या मिल जाता है ? वह कैसे जान जाता है कि 'परमात्मा' मिल गया और वह मिले हुए परमात्मा को कैसे पहचानता है ?)

विज्ञान या अभ्यास से परमात्मा नही मिलते। वैज्ञानिक अनुसन्धान से परमात्मा पकडा नही जा सकता।

इन्द्रियो की शक्ति का सूक्ष्म हो जाना (सूक्ष्म=?) प्रकृति (?) भीतर (?) की बात हुई। यन्त्र की शक्ति प्राकृतिक (?) है। योग की शक्ति बाहरी (मतलब ?) साधन (=नाम) (जिसका नाम लेते है, वह याद आता है। पसन्द आया, तो दिल मे आ बैठा। घर बना लिया।)

१ मन से किसी नाम को लीजिये। जैसे 'ॐ', (क्तिनी बार ? कब ?)

२ उसका लम्बा उच्चारण कीजिये।

३ मन की वाणी से बोलिये, सुनिये, देखिये।

४ जगत् के आश्रय परमात्मा को समर्पण (किसका ?) कर शान्त हो जाइये।

५ इस तरह आपके और परमात्मा के बीच की दूरी मिट जायेगी।

६ अहम् मे आपकी रुचि [(चाह) (इच्छा ?)] छिपी हुई है। [प्रभुप्राप्ति का प्रयत्न कोई कवायत है क्या ?]

('अहम्' और 'रुचि' एक ही बात है क्या ?)

७ अहम् मे उसकी (परमात्मा की ?) शक्ति आ जायेगी (मनलब ?) और आपकी रुचि और अभिलाषा स्वत पूरी हो जायेगी।

८ पूरी तो हो जायेगी, पर आप उसका भोग मत कीजिये।

(फिर, 'पूरी' होने का क्या प्रयोजन, क्या मतलब ?

'भोग मत कीजिये'=इसका क्या अर्थ ?

'भोग' न करे, तो क्या करे ?)

बोध—वास्तविकता का ज्ञान।

'योग'=की आरम्भिक क्रियाये है यह मानना (?) कि सृष्टि मे अपना कुछ नही है और मुझे कुछ नही चाहिये। (कैसे कुछ नही चाहिये ?)

(भोजन, पानी, हवा, वस्त्र इत्यादि तो चाहिये ही न ?)

('योग' की व्याख्या ?)

अहम्— 'अहम्' बुद्धि का विषय नही है। (क्यो ? 'मै' का भान बुद्धि को तो होता ही है) 'अहम्' से भी कोई (चीज ?) सूक्ष्म है क्या ? जो सूक्ष्म होता है, वह

अधिक अव्यक्त (?) है, अधिक चिरस्थायी है। जीवन का तत्त्व सूक्ष्म है। (जीवन का तत्त्व क्या है?) और आप उसके अधिकारी है। (जानने के अधिकारी ?) अणु से ज्यादा सूक्ष्म अहम् है। (यह अहम् है क्या बला ?) 'मै' तत्त्व ('तत्त्व' का क्या अर्थ समझे ?) से ज्यादा 'यह' तत्त्व हो सकता है क्या ? 'मै' जो प्रतीत करने-वाला है और 'यह' जो प्रतीत है। [तब तो 'मै' के द्वारा 'परमात्मा' की प्रतीति कभी सम्भव नही होने की ? फिर 'परमात्मा' का बोध, ज्ञान या अनुभव (अनुभूति) कैसे हो सकता है और 'मै' छोडकर किसके द्वारा यह प्रतीति ? सम्भव है ?]

दर्शन=इस प्रकृति मे मेरा कोई स्वतन्त्र अधिकार नही है। (कैसे ?) बँगला देश मे जो हत्याएँ हुई है, वह बिना किसी अधिकारी के लिए ?

विज्ञान=बुराई-रहित हो जाना (?)

आस्था=अपने मे परमात्मा को स्वीकार करना। (यह 'सोऽहम्' जैसी बात है क्या ?)

नित्ययोग (?)=महायोग (?) अपने मे परमात्मा को (?) देखना=आसान, सुलभ और स्थायी (?) है।

(अपने अन्दर परमात्मा की मूर्त्ति का ध्यान लगाना क्या ?)

परमात्मा को बाहर खोजना मुश्किल है (?)

परमात्मा हमारा स्वरूप है (?)

राधा-तत्त्व=अगाध प्रेम।

तुलिये—कबीर की 'सुरति विरहिणियाँ'।

तुलिये—'राधा-कृष्ण', 'गौरी-शकर', 'सीता-राम'।

शकर, जो गौरी की मुण्ड-माला सदा पहने रहते है। यह उनके अगाध प्रेम (किसके प्रति ?) का ही द्योतक है (यह ऐलीगोरिकल, प्रतीकात्मक, नही तो और क्या है ?) हमेशा आनन्द-विभोर रहना चाहिए। (मतलब पागलखाने काँके भेजने से है क्या ?

(आधि-व्याधि की इस दुनिया मे यह क्यो कर सम्भव है ?)

परमात्मा को अपने मे अभी स्वीकार कर लिया—प्रकट होना, पहचान देना, उनका काम है। यह परमात्मा पर छोडिये कि वह अपनी कितनी महिमा देना चाहता है, किस प्रकार प्रकट होना चाहता है। आप माँगेगे, तो घाटे मे पड जायेगे। आदमी सब एक-से नही होते। व्यक्तित्व की भिन्नता सदा रहेगी। किसी को देखना रुचिकर होता है, किसी को सुनना, किसी को छूना आदि। परमात्मा सबके लिए एक ही तरह से प्रकट नही होता। लक्ष्य और प्रीति मे एकता है।

किन्तु, साधना मे भिन्नता होगी। कर्म का क्षेत्र।

माँग=चिन्तन का क्षेत्र=आपकी माँग क्या है ?

अविनाशी
स्वाधीन
चिन्मय (?)
रस रूप (?) } जीवन

स्थिति का क्षेत्र (?)

माँग की पूर्त्ति ससार के द्वारा नही होती। (कैसे ? परिवार, समाज, हित-मित्र, सरकार, प्रकृति, निजी व्यवसाय—क्या नही देते ? डॉक्टर बीमारी का इलाज नही देता ? माँ बच्चे को दूध नही देती ?)

=ससार के अलग होना पडेगा—निर्मम (?) अचाह (?) होना पडेगा।

रोगी—परमात्मा परमात्मा
डॉक्टर का ज्ञान का काम

डॉक्टर अपने ज्ञान का उपयोग करे, रोगी को परमात्मा समझे, चिकित्सा को परमात्मा का काम मानकर ईमानदारी के साथ उसका सम्पादन करे। (और रोगी क्या करे ?) (समाज क्या करे ?)

ससार का काम करो (?)
परमात्मा मिल जायेगा
यह अच्छा सौदा रहेगा न ?

बल आदमी बनाता है क्या ?

काम करते-करते थक जाते हो,—उसके बाद बल कौन देता है ?

सबमे भगवान् की लीला देखो। (दिखाई पडे तब तो !) (क्या मुसीबत है !)

डाकू के रूप मे (भगवान्) आये, तो उन्हे खूब गोली मार दो—वही तुम्हारी पूजा हो जायेगी। ('पूजा' को ठीक-ठीक पहचानना पडेगा)।

पूजन=शरीर से सम्बद्ध है।

साधन=मन से सम्बद्ध है।

भजन=अहम् से सम्बद्ध है।

निर्ममता से निर्भयता आती है।

अचाह से स्वतन्त्रता मिलती है।

भजन से (प्रभु) प्रियता जगती है।

पूजन—साधन—भजन (तीन स्तर प्रगति या उपलब्धि के)।

पूजन+साधन+भजन=अगाध प्रेम की उत्पत्ति।

स्मृति अहम् (='मै') मे जगती है। याद 'मै' को (मे) आती है। उसका 'मन' से कोई सम्बन्ध नही होता। मै अपने मन को कैसे जानता-पहचानता हूँ ? 'मन' (क्या) है क्या ? जब हममे कोई इच्छा या चाह जगती है, तब हम 'मन' को जान जाते है। क्योकि, चाह का मन से आत्मीय सम्बन्ध है। मन चाहता है। चाह 'मन' मे उत्पन्न होती है। मन का सहारा लेकर वह उगती और पनपती है। जब चाह मिट जाती है (अचाह) (आदमी अचाह हो जाता है), तब 'मन' भी विलीन हो जाता है। इसलिए, जब आदमी को यह ठीक-ठीक अनुभव होने लगे कि मेरा कुछ नही है और मुझे कुछ नही चाहिये, तब ऐसी अचाह की अवस्था मे 'मन' की कोई जरूरत नही रहती, वह बेकार-सा हो जाता है, विलीन हो जाता है।

पूजन (सेवा)=पूरो ईमानदारी, विधिवत् पूरे श्रम के साथ (प्रभु के) कार्य का सम्पादन।

साधन (त्याग)=मेरा कुछ भी नही है (निर्ममता), मुझे कुछ नही चाहिए (अचाह)।

भजन (प्रेम)=स्मृति (परमात्मा की स्मृति) (सतत) आती रहे। याद करना नही, याद आने की बात है। याद करने मे शरीर से सम्बन्ध लगा ही रहता है, छूटता नही। करना जो है, वह तो शरीर के बिना होता नही। बिना प्रयास के (स्वत) याद आना। आते रहना।

याद आने (करने) की बात भी न सोचना। चोटी से दूर रहने पर पहाड और उसका शिखर नजर आता है। चोटी पर पहुँच जाने पर वहाँ से दुनिया दीखती है। साधन=विवेक का आदर। मेरा कुछ भी नहो, मुझे कुछ नही चाहिये – यही तो विवेक का आधार है। मन के विलीन हो जाने पर बुद्धि भी विलीन हो जाती है। 'मन' ही 'चित्', 'बुद्धि' तथा 'अहम्' का प्रेरक है। 'मन' विलीन हुआ, तो 'चित्', 'बुद्धि' तथा 'अहम्' (का) भी (अन्त) (लय) हुआ)। या यूँ कहा जाय कि —

मन=चित्+बुद्धि+अहम्। बुद्धि=निर्णयात्मिका चित्=चिन्तन= विश्लेषण=यह अच्छा है कि वह विकल्प इत्यादि का विचारक, सशयात्मक। अहम्= कार्यवाहक पदाधिकारी (एक्जेक्युटिव ऑफिसर)।

'मन' ही सबका राजा है। बडे-बडे ऋषि-मुनि जा 'मन' को पूरी तरह जान ही न पाये कि उनका 'मन' क्या खेल खेल गया, उनके साथ, उन्हे कहाँ ले गया, कब कैसे ठग गया।

पूजन के लिए प्रकृति जरूरी बल, बुद्धि और सामर्थ्य देती है।

दु ख है।

दु ख (या गडबडी) का कारण जान लेना जरूरी है। दु ख से निवृत्ति के लिए उसके कारण को हटाना जरूरी है। निदान (बीमारी का निदान, उसके कारण का निदान, उसके उद्भव का ज्ञान) (क्या, क्यो, किस भाँति या तरह) हो जाय, तब न उचित इलाज (औषधि) हो (चले)। इसलिए, जीवन मे जो सत्य (वास्तविकता) है, उसको स्वीकार करना (कर लेना) (उसे जान लेना, उसे पहचान लेना), उसकी ठीक-ठीक अनुभूति होना अत्यावश्यक (सोपान) है। जिस पर साधक को चढना ही पडेगा, जिसे अपनाना ही पडेगा। अगर सच्चे दिल से, ईमानदारी के साथ जरा ध्यान देकर सोचे, तो यह प्रत्यक्ष प्रतीत होगा कि बुराई-रहित होना, अपने और सबके लिए उचित है। यह भी दीखेगा कि इस सृष्टि (प्रकृति) (ससार) मे अपना कुछ नही है। उसका सयोग-वियोग अपने हाथ मे नही है, न वह आदमी के इच्छानुसार बनता-बिगडता है। अपना दिल भी 'दुश्मन' के सीने मे धडकने के लिए हमे छोडकर चला जा सकता है। प्रतिरोपित हो सकता है। अपना शरीर भी अपनी मौज से वृद्ध होता चला जाता है और हमारी इच्छा के एकदम विरुद्ध हमसे अलग हो छूट भी जाता है। सम्बन्धी भी अपनी भलाई का खयाल

रखकर ही बात सुनने को तैयार होते हैं या हमारी परवाह भी नही करते । अपना जन्म-मरण भी अपने बूते की बात नही । लाभ हानि के पीछे कोई अनजान, लेकिन प्रबल शक्ति काम करती नजर आती है । अब यह जानना है कि—

(१) हमे क्या दु ख है ?

(२) उस दु ख के वास्तविक कारण क्या है ?

(३) उन कारणो का क्या इलाज (उपाय) है ?

(४) हमे कैसा जीवन चाहिये । हमे जीवन मे क्या चाहिये ? हमारी माँगे क्या है ? [हमे जीवन मे कौन-कौन-सी बाते (चीजे) नापसन्द हैं ?] हमे उनसे कैसे छुटकारा मिल सकता है ? उनका कैसे निवारण होगा ?

(५) उसके लिए कुछ प्रयास भी करना है क्या ?

(६) हम किसी के प्रेम के बिना (बिना आस्था के) जी सकेंगे क्या ?

(७) हम ऐसी वस्तु अपनाना चाहते हैं क्या, जो अपने लिए तो हितकर हो और दूसरो के लिए नही ?

(८) हम ऐसा सहारा चाहते है क्या, जो बिना हमारी खुशी-मर्जी का खयाल किए, जब चाहे टूट जाय, मिट जाय, मुँह मोड ले, गायब हो जाय ?

'मनुष्य' का दूसरा नाम है 'प्राणी' और 'साधक' । सत्य को (जो वास्तविकता है), असलियत को स्वीकार कर ले, तो (कर लेने से ही) साधक मे साधना प्रकट (स्वत) होती है । (साधन = मेरा कुछ नही है + मुझे कुछ नही चाहिए = निर्ममता + अचाह) साधन मे साध्य उदित हुआ है (साध्य = परमात्मा, भगवान् सदाशिव) (आदिशकर) (उनके न पिता का पता है, न माँ का) (साधना से ऐसा साधन मिलता है, जिसका कभी नाश नही होता—अविनाशी, शान्ति-स्वाधीनता, निर्विकारता) फिर साधक-साधना-साध्य = एक हो जाते है ।

मन की थाह तो महात्माओ को भी नही लगती (आत्मा ?) 'मैं' के चारो ओर सब तरफ, फन्दा डालकर प्रकृति उसे शरीर मे ला बन्द (कैद) करती है ।

(क) बुराई-रहित हो जाना = बुराई (i) कभी नही, (ii) किसी के प्रति नही करूँगा ? यह मन मे ठान लेना ।

(ख) भलाई (करने) का (i) अभिमान (न मानना), (ii) फल (छोडना) ।

(क) + (ख) = ऐसे मे साधक ससार से निर्मम और अचाह हो जाता है (आप ही) आप-से-आप ।

ध्यातव्य यहाँ 'कुछ करना' या 'प्रयास' नही है । त्याग है । (रखने मे प्रयास है, मेहनत है, छोडने मे तो कोई श्रम नही है) (मन से केवल उतार देना, छोड देना, त्याग देना-मात्र है ।)

साधक = बुराई-रहित + स्वाधीन + प्रेमी = निर्विकारता । शान्ति + स्वाधीनता + प्रभु को अपना मानना है, और सब कुछ उसका जानना है ।

आधारभूत परमात्मा—जो सदैव, सर्वत्र, सबका, सर्वसमर्थ, शाश्वत, सर्वज्ञ है। (जो सबका है, किसी का खास (स्पेशल), प्रारक्षित (रिजर्व्ड) नही है। ['मैं (स्वामी शरणानन्दजी) उसी परमात्मा मे आस्था रखता हूँ। प्रभु, विश्वास ही मेरी एकमात्र निधि है—मुझ अकिंचन की।']

साधक यह मानता (जानता) है कि मेरा और उसका (परमात्मा का) नित्य सम्बन्ध है—कि मै उसी जाति का हूँ। हाँ, शक्ति मे तो फर्क हो ही सकता है और है भी। (तुलिये—लहर और समुद्र। दोनो एक ही जाति के है, ऐसा कह सकती है वह लहर, जो जानती है। हाँ, समुद्र मे बेडे, जहाज चलते है। एक लहर बेचारी कितना कर सकती है।

रोग=किये हुए भोग का प्रायश्चित्त।

शरीर से=ससार से=मुक्त हो जाना=स्वाधीन हो जाना।

अचाह और अप्रयत्न हो जाना। प्रभु को अपना मानना।

इससे परमात्मा की स्मृति आती है। वह याद आता है, बार-बार याद आती रहती है उसकी।

याद करना नही, याद आना—परमात्मा के प्रति प्रेम जगता है—साधक अगाध प्रेम मे डूब जाता है। ससार का होकर (क्या) रहना। ससार दे ही क्या सकता है? कुछ नही। जिस तरह की जिन्दगी साधक चाहता है—अविनाशी, स्वाधीन, प्रेमिल (स्नेह-सिक्त) (रस रूप)—वह ससार से उसको मिल सकता है क्या? ससार के बूते की बात है क्या? प्रभु की दी हुई शक्ति से हम विधिवत्, भरपूर (ईमानदारी के साथ) सेवा करेंगे (प्रभु की सृष्टि की) निष्काम, कामना-रहित, फल की इच्छा छोडकर = कर्त्तव्यपरायणता, मुहब्बत मे जो मजा है, वह और कुछ मे नही। परमात्मा को देने के लिए आपके पास प्यार के सिवा कुछ भी नही है।

भलाई करना—स्थूल (शरीर) के द्वारा प्रतिपादित होता है। (या इसके लिए साधन, सामर्थ्य, शरीर, धन-दौलत, सम्पदा इत्यादि अपेक्षित हैं) (यह सबके बूते की बात नही भी हो सकती है)।

बुराई-रहित होना—महान् सेवा है=यह सबके बूते की बात है=यह सभी कर सकते हैं। यही अहिसा की बुनियाद भी है=अहिसा साधना है। सबके द्वारा सम्भव है।

सत्य को स्वीकार करना—इसके जैसा कुछ (कोई भी) पुरुषार्थ है नही

दीक्षा=सत्य को स्वीकार करना (कराना)।

=जिसका हर काम अर्चना है।

सब कुछ भगवान् का है और भगवान् तुम्हारा है। [जैसे घर का सब कुछ पति का है, लेकिन खुद (स्वय) पति पत्नी का है। जो सबको प्रेम देता है। प्रभु के नाते, उसका प्रेमी प्रभु स्वय बन जाता है] सेवा के रूप मे पूजा करे। आत्मीयता प्रदान करे।

प्रभु-विश्वास । अविचल विश्वास, श्रद्धा । (मैं) मानव हूँ, (इसीलिये) (मैं) साधक हूँ। प्रभु से आत्मीयता स्थापित कीजिये । अपना करके मानिये—जानिये।

ससार और परमात्मा से कुछ नही चाहिये । प्रभु-प्रेम ही सर्वस्व है । (ससार कुछ देगा भी, तो उसका मूल्य चुकाकर) (परमात्मा, सर्वज्ञाता, स्वय भक्तो की जरूरते पूरी करता है, उससे माँगकर अविश्वासी न बने, घाटे मे रहेगे) ।

किशोरी को दीक्षा देते समय श्रीस्वामी शरणानन्दजी ने बडे प्रेम से कहा 'बेटी ! मेरे पास (मुझ अकिचन के पास) प्रभु-विश्वास के सिवा और कुछ भी नही है (सच तो यह है कि 'अपना' करके मेरे पास कुछ भी नही है (दीक्षा के नाम पर) (दीक्षा के रूप मे) तुझे प्रभु का विश्वास भेट किया है । और तुम्हे प्रभु को सौपता हूँ। (सौपी हुई वस्तु का योग क्षेम प्रभु की जिम्मेदारी है । उसका निर्वाह वही करते है, यह प्रमाणित है) हम तुम्हे प्रभु-सम्बन्ध देते हैं । यह जानकर, बेटी ! तुम निश्चिन्त, निर्भय और मस्त हो जाओ ।'

वह १६-४-७१ ओर १७-४-७१ की रात्रि थी । सुबह के वक्त की (एक बजे से तीन बजकर दस मिनट के बीच की) ये बाते है । स्वामीजी किशोरी को पहले भी कुछ समझा चुके थे, उस समय मै (श्रीनिवास) वहाँ नही था । भोर (ब्राह्म मुहूर्त्त) मे सत्सग के समय स्वामीजी ने किशोरी को बुलाया और अपने पास (बिछावन पर ही) बिठाया । चौडा पलग मच्छरदानी से ढका, जहाज या मेल्हनी की तरह लग रहा था । वही मुझे भी बुलाकर बिठा लिया था । प्रेम-सिन्धु नही आ सके थे । श्यामसुन्दर काम मे व्यस्त आते-जाते थे । सरस्वतीजी (धर्मपत्नी, उपेन्द्र महारथी की) थी । माई (कमला) थी । बौआ (ताण्डव आइन्टाइन समदर्शी), अखिलाजी (डॉ० अखिलानन्द ठाकुर), मजु (यशोधरा) और भुल्टू (वसुन्धरा) भी आ बैठे थे । वैद्यनाथ सिह भी चले आये । सत्सग और दीक्षा के अन्तर्गत किशोरी (और हम सबको) यह परम उदार और स्नेह-सिक्त उपदेश देकर स्वामीजी उठे । मच्छरदानी से बाहर निकले । कपडा सँभाला । अपनी लाठी ली । श्यामसुन्दर के सहारे तथा मेरे साथ मोटर तक पहुँच कर चुपचाप अगली सीट पर जा बैठे । और, घर को सूना छोड स्टेशन को चल पडे । (ऋषिकेश जा रहे थे) गाडी प्रात चार पाँच बजकर पचपन मिनट पर खुलनेवाली थी । पीछे पता चला कि उसमे विलम्ब था और लगभग सात बजे सुबह खुली थी ।

स्वामीजी ने किशोरी को मन्त्र जपने के बारे मे भी कहा था । शायद कहा था कि 'ऊँ नम शिवाय' जपती रहो । लेकिन उसके पहले (?) (साथ ?) 'मेरे नाथ' भी कहो (जपो) । मन्त्र-जापवाली बात मुझे पूर्णत नही मालूम । —किशोरी को जब उन्होने कहा था, उस वक्त मैं नही था । भाव मे आने के लिए कभी-कभी 'मेरे नाथ' भी कहा करो । जप के साथ (समय) ।

'गुरु-वाक्य वेदवाणी है'—स्वामी शरणानन्दजी ने किशोरी को दीक्षा के पहले कहा था (१६-४-७१) 'प्रभु की समर्थ गोद मे तुम्हे सौप ही दिया है। अब तुम निश्चिन्त और निर्भय हो जाओ ।' स्वामी शरणानन्दजी ने (१६-१७ । ४ । ७१ को) प्रात सत्सग

के आखिर मे मुझे और किशोरी को कहा। वीणा के तार को इतना मत खीचो कि वह टूट जाय, इतना भी ढीला न छोडो कि वह बजे ही नही—भगवान् बुद्ध का मध्यम मार्ग ठीक है। (तपश्चर्या के विषय मे भी यह लागू है।)

चित्=अनुसन्धान, विश्लेषण करना, छान-बीन, फायदा-नुकसान, अच्छा-बुरा, चिन्तन, मत-सम्मति, विकल्प।

बुद्धि=तय करना, निर्णय लेना (निर्णयात्मक)।

अहम्=बुद्धि-निर्णय को क्रियान्वित करना।

एक ही अन्त करण की ये वृत्तियाँ है।

चित्=चिन्तन करना, भविष्य की कल्पनाएँ, नफा-नुकसान, तर्क-वितर्क, आनुकूल्य-प्रातिकूल्य के बारे मे सोचना।

मन=मनन करना—बीती हुई बातो को सोचना, याद करना, भोगे हुए का मानसिक मन्थन या चर्वित-चर्वण। तत्सम्बद्ध सुख-दु ख का अनुभव। ध्यान, योग इत्यादि के बारे मे स्वामीजी ने कहा कि यह देह से सम्बद्ध है। देह के द्वारा किया जाता है। इसलिए इसकी श्रेणी भिन्न है। सत्य को स्वीकृत करना उच्चतम श्रेणी की साधना है। इससे प्रभु की अगाध प्रियता मे साधक डूब जाता है।

जिस तरह हवा मे जनमने, फूलने-फलने और हवा मे ही मर जानेवाले विज्ञान से अनभिज्ञ आदमी हवा को कभी जान-पहचान न पाये। हवा बहे नही, स्थिर रहे, वैज्ञानिक अनुसन्धान से अर्जित वायु-विषयक ज्ञान उपलब्ध हो नही, तो क्या कभी आदमी हवा को पहचान पायगा (पावे ?) यह इतना घोर परिचित है। अपने फैलाव की अनन्तता मे दिक् और काल की सीमाओ से परे, बहिरन्तर व्याप्त है। इतने पर भी और बावजूद इसके यह इतना अपरिचित, अगम्य रह जाता है कि हम इसके गुण और स्वभाव को नही जान पाते। यह इतना निकटतम है कि हम इसकी सत्ता पर अविश्वास कर बैठते है। और, अपने चारो ओर सर्वत्र विद्यमान अस्तित्वो से इसे विशिष्ट रूप मे नही पहचान पाते। यह किससे फर्क है कि इसे अलग कर जाने ? अपनी अनभिज्ञता का भी ज्ञान आसानी से (नही होने का) जो हो जाय। हमे इसके अस्तित्व का केवल तनिक आभास मिलता है। हम इसका अनुमान-भर लगा पाते है। चूँकि जो हमारी इन्द्रियो की शक्ति-सीमा से परे है, उन्हे ये कैसे पहचाने ? रग अन्धे के बूते की बात नही। दीठ (दीद) है, तो दृश्य है। दृश्य पर नेत्रहीन की आस्था असम्भव। इन्द्रधनुष जन्मान्ध के लिए आविर्भूत नही होता। गाने के तराने, राग-रागिनियो की स्वर-लहरियाँ वज्र-वधिर के लिए कोई अस्तित्व नही रखती। मल्हार वधिर (बहरे) के लिए नही गाया जाता, न वीणा झकृत होती है। परमात्मा अपनी अन्तर्वर्त्ती अवस्था (इम्मानेन्स) अपनी अन्तर्यामिता, सर्वव्यापिता तथा अन्तर्भूति मे प्रतिष्ठित है। परमात्मा अपरिवर्त्तनीय, सीमातीत और अज्ञेय है। प्रकृति के साथ उसकी असगति है और फिर भी वह उसके इतना अनुरूप (सम्बद्ध) है कि हम मर्त्यों के लिए प्रकृति और परमात्मा एक ही प्रतीत होते है। वैसे समुद्र मे मछलियो

को 'समुद्र' का (उसके आकार-प्रकार, विस्तार इत्यादि का) पता नही चल सकता।

सर्वव्यापी परमात्मा क्यो दृष्टिगोचर, परिचित, अनुभूत और उपलब्ध नही होता? एक अपार विस्तार, एकमात्र एक बृहद् एकरसता। कल्पना करे। जैसा कि कभी किसी भी मानव को प्रतीत न हुआ, ज्ञात न हुआ। जैसे एक मछली समुद्र मे। जैसे वायुमण्डल से घिरी पृथ्वी और आदमी या जानवर। असीम, अद्वितीय। न ओर, न छोर। समुद्र को जानने-पहचानने के लिए मछली को समुद्र से अलग होकर उसे देखना पडेगा, उसका पार पाना पडेगा, जो बेचारी छोटी मछली के लिए असम्भव है। परमात्मा से अलग होना प्रकृति के लिए नामुमकिन है। इसलिये, परमात्मा पहचान में नही आता। परमात्मा इतना निकट और इतना फैला हुआ है कि अपनी व्यापकता के कारण, अपनी सूक्ष्मता, एकरसता के कारण वह पास रहते हुए भी पहचान मे नही आता। असीमता के आकार का पता नही चलता। यह भी नही पता चलता कि कुछ है भी या नही। सर्वव्यापकता की किसी भी वस्तुस्थिति से भिन्नता का एहसास हो ही नही पाता। इस अखण्ड विस्तारता मे कोई या कुछ भी इसकी आकार-सीमा के प्राप्य या दृश्य पदार्थो के गुणवैशिष्ट्य की परिचिति के आधार पर नही जाना जा सकता। क्योकि, प्राणी जिस अवर्णनीय विस्तार मे जन्म लेकर जीया और मरा, उसकी अवगाहना और सम्यक् परिज्ञप्ति असम्भव है। अक्सर आदमी को न ईथर का पता है, न ऑक्सीजन (प्राणवायु) का। वृक्ष को न बीज का पता है, न मिट्टी का। सोना सोमनाथ की महत्ता मे ढल गया। लोहा पोत की शक्ल मे डूबने के बजाय तैरने लगा। परमात्मा इतना सूक्ष्म है कि वह जब प्रकृति मे बदलता है, तब पता नही चलता। यह उसकी विशेषता, गुण-धम है। जैसे पानी भाप बन जाय। जैसे पानी हिम (Snow), रेतीला हिम (Sand snow), हिमलव, हिमपात (Snow flack), बर्फ (Ice), करका (Hale), सहिम वृष्टि (Sleet), शीत, तुषार, पाला (Frost), धवल तुषार (Hoar frost), ओला, करका, झंझावात (Diamond-dust), करका, हिमगुलिका (Hailstorm), करकापात (Softhail), कच्चे ओले (Graupel), हिमशैल (प्लावी) (Iceberg) हिमानी (Glacier), समुद्र-जल (Sea-water) इत्यादि मे परिवर्त्तित (परिणत) हो जाता है। बीमार न पडे, तो आदमी को अपने स्वास्थ्य का भी पता नही चले। गुरुत्वाकर्षण से बँधे इन्सान को उस बन्धन की भी वाकफियत नही।

निर्ममता = अपना कोई नही है। बच्चा भी तो कम-से कम एक का नही दो (माँ + बाप) का होता है—समाज, राष्ट्र और विश्व का भी। किसी की दावेदारी। किसी का हक। किसी का नियन्त्रण। किसी का प्रतिपालन। किसी से अपेक्षित।

प्रभु-विश्वास या आस्था इसलिए भी जरूरी है कि आदमी पूर्ण स्वतन्त्र हो अपने को स्वतन्त्र अनुभव कर सके। अन्यथा उसकी आस्था दुनियावी बातो, सरकारी सत्ता, समाज, न्यायालय पर टँगी-अटकी रही, तो वह मन से भी पूण स्वतन्त्र नही हो सकेगा और परापेक्षी रहेगा, किसी-न-किसी रूप मे। और, दुनिया शाश्वत है नही, न उसमे पूर्ण

ज्ञान है, न न्याय (पवित्र)। मुखापेक्षी दूसरो का। आदमी का निर्णय आत्मपरक (व्यक्ति-सापेक्ष, स्वानुभूति-मूलक Subjective) होगा। वह यथार्थत निष्पक्ष, तटस्थ और वस्तुनिष्ठ (Objective) नही होगा। वह न भविष्य को जानता है, न आदमी को पूरा (सही) पहचानता ही है। वह, न उसके विचार, उसकी धारणाएँ, उसका मनस्तल और उसका अन्त करण, उसकी लालसाये इत्यादि को जानता है ओर न उसकी जरूरतो से वाकिफ है। ऐसे आदमियो के द्वारा दिये गये न्याय का क्या भरोसा ?

वह अपना है, क्योकि वह सबका है। यही ठीक है। जो सबका है, वह अपना जरूर होगा। अगर हम बदल भी जायँ, कितने भी बुरे हो जायँ, फिर भी चूँकि वह सबका है, इसलिए मेरा भी जरूर होगा और मेरी हर हालत मे मेरा भी रहेगा। 'स्पेशल' भगवान् (Special God) तो हमारे बदल जाने पर, पाप की गठरी भर जाने पर, शायद अपना न भी रहे।

दुनिया मे इतनी नृशसता क्यो दीखती है ?

१ अपनी जन्मजात स्वतन्त्रता का इजहार प्राणी गलत ढग से करता है। गुणमयी प्रकृति कर्मो का फल देती है। सामाजिक, नैतिक तथा सरकारी व्यवस्था उचित काम नही कर पाती।

२ प्रशासन-विभाग अपना काम करता है। मुख्य न्यायाधीश (उच्चतम न्यायालय), भारत के राष्ट्रपति (सरकारी सत्ता) भी किसी अपराधी, जिसे मृत्यु-दण्ड, सर्वाधिक सजा फाँसी दी जाती है, के लिए जवाबदेह नही है। हो सकता है, उस अपराधी के प्रति उनकी निजी सद्भावना हो, वह अपने हाथो उसे एक थप्पड भी न मार सके। हो सकता है, वह अपराधी अपना कोई अत्यन्त प्रिय सम्बन्धी हो—पर न्याय अपनी जगह पर है।

३. यह भगवान् की असीम कृपा है कि हर ऐसा काम विकास के लिए होता है। मिलान कीजिये पहला विश्वयुद्ध या दूसरा विश्वयुद्ध और उसका प्रतिफल (नतीजा, परिणाम, प्रभाव)।

४ जो भौतिक स्तर (शरीर से सम्बद्ध) पर हमारी बुद्धियो के मुताबिक 'कठोरता', 'नृशसता' इत्यादि हैं, आध्यात्मिक स्तर पर वह वैसा नही भी हो। जैसे परमात्मा सबसे भिन्न है, वैसे ही उनके राज (मर्म) बुद्धिगम्य न हो पाते। उनका प्यार, कठोरता इत्यादि कुछ दूसरी ही तरह के है, जो हमारी परिभाषा मे न आते हो और हम उन्हे नही जानते-पहचानते हो। नही समझ पाते हो।

सुख है दु ख का साझी। उसका प्रतिरूप, प्रतिपक्ष और उसका पूरक। सुख दु ख का दूसरा पहलू है। कामना जब जीवन की गाडी को खीचती है, हाँकती-चलाती है, तब दोनो पहिये—(१) सुख का चक्का और (२) दु ख का चक्का—एक साथ अग्रसर होते हैं और साथ-साथ जिन्दगी की राह और भाग्य की लीक बनाते है—सुख-दुःख भोग-शोक-समवाय-ग्रन्थि का सर्जन करते हुए। दु ख से अछूता (खाली) कोई विशुद्ध

खाँटी सुख है नही। मिलावट के बिना न सुख है, न दुःख। सच बात तो यह है कि 'दुःख है नही, सुख की आकाक्षा उसे पैदा कर देती है।' (आ० रजनीश)।

जो सर्वत्र है, सदा है, सबका है—वह दौड-भाग से नही मिलता। वह ठहर जाने से मिल जाता है। जो पास पडा है, उसे ढूँढने कहाँ जाओगे ? शान्ति वही है, पैर तले जहाँ हम खडे है, हम ऐसे है कि शान्ति के ऊपर खडे शान्ति को रौंदते व्यग्र नाच रहे है और इस तरह शान्ति को प्राप्त नही कर पाते, उसका पता भी नही चलता। आदमी न बहुत सुख सह सकता है, न बहुत दुःख। सुख सहा नही जाता, लेकिन उससे भागा भी नही जाता। उसका भोग त्यागा नहो जाता। आशकाये साहस बटोरने नही देती। डर कि शायद फिर सुख बटोर पाये कि नही—कि पता नही सुख छोडने पर, जो मिले, वह मन-लायक और ग्राह्य हो या नही कि कही सुख छोडने से कुछ गडबड न हो जाय—कि अपनी करनी से अपनी ही बुराई न हो जाय—कि सोने की चिडिया सदा के लिए हाथ से छूट न जाय, उड न जाय, आँख से ओझल न हो जाय, सब दिन के लिए।

बहुत दुःख भी सहा नही जाता। पर, उसका छोडना सदा आदमी के अपने हाथ मे नही रहता। जैसे, गरीबी, बीमारी, सजा (सत्ता द्वारा निर्धारित)। दोनो ऐसे मजबूत गोद (Glue) (मन की दशा) की नाई हमारे (व्यक्तित्व) के साथ जुडे रहते है कि जल्दी छूटते नही। आदमी अपने विचारो, अपनी स्मृतियो, अपने अतीत की शृ खलाओ (कडियो, बन्धनो) के अलावा और है क्या ? (कुछ भी नही है।) जब विचारो को छोडने का खयाल आता है, तब एक और (छोडने का) विचार खडा हो जाता है। और, इन विचारो, स्मृतियो की ऊँची दीवारो के भीतर आदमी कैद रहता है, प्रभु को उपलब्ध नही हो पाता। इन विचारो से तब कैसे छुटकारा पाया जा सकता है ?—'उन बिचारो को देखने से, उनके प्रति जागने से' (आ० रजनीश)। वर्ना वह केवल अपने ही विचारो के जाल मे फँसा घूमता रहता है। बच्चे की तरह। जिन्होने अपनी चारो ओर दीवारे खडी नही की है, प्रभु को उपलब्ध हो पाते हैं। विचारो से विचलित नही होना चाहिए, उनके साथ (अक्रिय असहयोग Passive non-co-operation) करना चाहिए। सृष्टि चलाने की जटिल और पेचीदी क्षमता अगर प्रकृति मे ही हो, फिर भी उसके पीछे जो चेतना, जो कानून है, जो बुद्धिमत्ता (Intelligence) सर्वोपरि, सर्वोत्कृष्ट (Supreme) है, जो शाश्वत विधि-प्रक्रिया (Eternal laws and processes) है, वह असाधारण अथाह है—और अगर ऐसे ही चेतन 'प्रकृति' को परमात्मा ही कहकर पुकारा (सकेत किया जाय), तो क्या हर्ज है ? सार्वभौम मानस (Cosmic mind) या सर्वज्ञ परमात्मा या सर्वसमर्थ प्रकृति ने अनेक ऐसे विधान बनाये, जो परम उदार और उपयोगी सिद्ध हुए और अनेक ऐसे वैज्ञानिक बनाये, जो अपनी प्रखर बुद्धि के लिए प्रसिद्ध हुए। कम-से-कम स्रष्टा को इतना तो श्रेय (Credit) अवश्य ही प्राप्त होना चाहिए कि वह उन सबसे इतना अधिक मेधावी सुयोग्य और सावधान था कि वह ऐसे-ऐसे प्रखर मस्तिष्को का निर्माण कर सका। वैयक्तिक ईश्वर (परमात्मा) (Personal God) ने कम-से-कम माँ की ममता बनाई ही। जैसे रज-वीर्य मे पूरा शरीर और उसके भाँति-भाँति के अवयव छिपे हैं, लेकिन

दिखलायी नही पडतें। तुलना कीजिये—अनुर्वर अण्डे (Sterile eggs), बीज (Seeds) इत्यादि। उसी तरह अव्यक्त मे व्यक्त परमात्मा और व्यक्त मे अव्यक्त परमात्मा छिपा है।

जीवन का एक सामान्य अनुभव है कि किसी भी चीज को (उसी के द्वारा) पूरी तरह नही जाना जा सकता। किसी भी (तथ्य अथवा) घटना को साफ-साफ समझने के लिए अन्य समवर्गी और सम्बद्ध घटना के साथ उसके तुलनात्मक (Comparison) या प्रतीपात्मक (Contrast) अवलोकन की आवश्यकता होती है। धर्मों की जटिल दुनिया मे विभिन्न धर्मा को एक दूसरे से बिलकुल अलग कर कोई कैसे पूर्णरूपेण समझ सकता है। अपनी गहराइयो मे सब धर्म समान है और सब एक-सी बात कहते है, एक-से तथ्य प्रतिपादित करते है।

गुनिये—

सब इस्राएलियो को दस आज्ञाओ के सुनाये जाने का वर्णन। —ओल्ड टेंस्टामेन्ट बाइबल (Old Testament Bible)

१ तब परमेश्वर ने ये सब वचन कहे
२ कि मै तेरा परमेश्वर यहोवा हूँ—
३ तू मुझे छोड दूसरो को ईश्वर करके न मानना।
४ तू अपने लिए कोई मूर्त्ति खोदकर न बनाना, न किसी की प्रतिमा बनाना—
५. तू उनको दण्डवत् न करना, और न उनकी उपासना करना—
६ और जो मुझसे प्रेम रखते और मेरी आज्ञाओ को मानते है, उन हजारो पर करुणा किया करता हूँ।
१२ तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना।
१३ तू खून न करना।
१४ तू व्यभिचार न करना।
१५ तू चोरी न करना।
१६ तू किसी के विरुद्ध झूठी गवाही (साक्ष्य) न देना।
१७ तू किसी के घर पर लालच न करना, न तो किसी की स्त्री का लालच करना— न किसी की किसी वस्तु का लालच करना।

सूरा—१. अलफातिहा (भूमिका प्राक्कथन), (सार) कुरान

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम्—अल्लाह के नाम से, जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान् है।

अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल्ल् आलमीन्—सब कृतज्ञतापूर्ण (हम्द) प्रशसा अल्लाह के लिए है, जो सारे ससार का 'रब' (पालनकर्त्ता, प्रभु, शासक) है।

अर्रहमानिर्रहीम्—२. अत्यन्त कृपाशील और दयावान् है।

मालिकि यौमिद्दीन् —३ उस दिन का मालिक है, जिस दिन फैसला (न्याय बदला) दिया जायगा।

इय्याऽका नाबुदु व इय्याऽका नस्तईन्—४. प्रभुवर! हम तेरी ही बन्दगी (भक्ति) करते है और तुझी से सहायता चाहते है।

इह्दिनस्सिरातल् मुस्तकीम्—५ हमे सीधा मार्ग दिखा।

सिरातल्लजीना अनअम्ता अलैहिम्—६ उन लोगो की राह, जिन पर तू ने कृपा की,

गैरिल् मगजूबि अलैहिम् व लज्जाल्लीन्—७ न कि उनका (मार्ग), जिन पर तेरा प्रकोप हुआ और न उनका, जो भटक गये।

सूरा (अन-नूर)।

३० (हे नबी!) 'ईमान' वालो से कहो, वे अपनी निगाहे नीची रखे। (अर्थात्, पराई स्त्रियो को न देखे, दूसरो की शर्मगाहो—गुह्य इन्द्रियो पर निगाह न डाले और बेशर्मी की चीजो पर निगाह न जमाये।) और अपनी शर्मगाहो (गुह्य अगो) की रक्षा करे। यह उनके लिए अधिक शुद्धता की बात है। निस्सन्देह, अल्लाह उसकी खबर रखता है, जो कुछ वे करते हैं।

नबी सल्ल० के कथन से मालूम होता है कि आदमी अपनी समस्त इन्द्रियो से व्यभिचार करता है। देखना आँखो का व्यभिचार है, लगावट की बात-चीत जिह्वा का व्यभिचार है, आवाज स आनन्द लेना कानो का व्यभिचार है, हाथ लगाना और अनुचित और अवैध उद्देश्य से चलना हाथ-पाँव का व्यभिचार है। बदकारी की ये समस्त प्रारम्भिक बाते जब पूरी हो चुकती हैं, तब शर्मगाहे या तो इसकी पूर्त्ति कर देती है या पूर्त्ति करने से रह जाती है।

हिन्दू-शास्त्रविधि के अनुसार भी अपनी स्त्री या अपने पति के अतिरिक्त दूसरे का चिन्तन करना स्त्री-पुरुष दोनो के लिए व्यभिचार है। यही कारण है कि आठ प्रकार के मैथुन बतलाकर उनका निषेध किया गया है

श्रवण कीर्त्तन केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च कार्यनिष्पत्तिरेव च॥

और भी, वेदानुसार—

अध पश्यस्व मोपरि सन्तरा पादकौ हर।
मा ते कशप्लको दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥ (ऋग्०, ८।३३।१९)

अर्थात्, साध्वी नारी! तुम नीचे देखा करो, ऊपर न देखो। पैरो को परस्पर मिलाये रखो। वस्त्र इस प्रकार पहनो, जिससे तुम्हारे ओष्ठ तथा कटि के नीचे के भाग पर किसी की दृष्टि न पडे।

३५ अल्लाह आकाश और धरती का प्रकाश है (महान् ज्योति, सर्वव्यापी, विश्व-चेतना का स्रोत)। उसके प्रकाश की मिसाल (अल्लाह के प्रकाश से प्रकाशित 'ईमान' वालो की मिसाल, जिन्हे देख कर वास्तव मे अल्लाह याद आता है) ऐसी है जैसे एक ताक हो, जिसमे एक चिराग हो। वह चिराग एक फानूस मे हो। वह फानूस ऐसा हो, मानो वह चमकता हुआ तारा हो। वह (चिराग) जैतून के एक बरकत वाले वृक्ष (के तेल) से प्रदीप्त किया जाता हो, जो न पूर्वी हो, न पश्चिमी, जिसका तेल भडका चाहता हो, यद्यपि आग उसे न लगी हो। (इस प्रकार) प्रकाश-पर-प्रकाश (बढने के सभी साधन सचित हो गये हो), अल्लाह अपने प्रकाश की ओर जिसे चाहता है, मार्ग दिखाता है। ओर, अल्लाह लोगो के लिए मिसाले (ऐलीगोरिज) बयान करता है और अल्लाह हर चीज का जानने वाला है।

'शिव' का जो ह्रस्व 'इ' कार है, वही शक्ति का द्योतक है। उसे हटा लीजिए, तो 'शव' ही बच जाता है। शिव के गिरे हुए शरीर पर दुर्गा (शिवानी) का खडा हुआ जो रूप वर्णित या चित्रित होता है, उसका भी यही आशय (मतलब) है। शक्ति निकल गयी, तो 'शव' धराशायी हो गया। इसीलिए शक्तिपूजा का विधान है। सीता-राम, राधा-कृष्ण, शकर-पार्वती इत्यादि मे सीता, राधा ओर पावती, 'शक्ति' की महत्ता बतलाती है, जिसके बिना कार्य-सम्पादन असम्भव है। सारे कर्म को परमात्मा का समझकर, उसीके लिए करने से = कर्त्तव्य + प्रेम = कर्त्तव्य मनुष्य का यही तक साथ देता है और प्रेम प्रभु तक पहुँचाता है (पहुँच जाता है)। शरणागत को प्रभु अवश्य अपनाता है।

स्वामी शरणानन्दजी ने जब जोर देकर कहा, बार-बार, कि 'बुराई-रहित हो जाओ'। तब मैने स्वामीजी से पूछा कि महाराज! अगर हम देखे कि कोई चोर-डकैत किसी को सता रहा है ओर वह निस्सहाय कमजोर अपने को नही बचा पा रहा है, तो क्या हम उस डकैत को गोली मार दे। यह भी तो उस डकैत की बुराई करने जैसा होगा ओर आप कहते हैं, बुराई-रहित हो जाने को। स्वामीजी ने कहा कि हाँ, ऐसा करना पड सकता है। लेकिन, ऐसी परिस्थिति मे आदमी को सोचना चाहिए—हम (डाकू की) बुराई करने जा रहे है। मेरे इस बुराई करने से जो फल (हमको) मिलेगा, वह हम सहर्ष भोगने के लिए तैयार है। लेकिन, हम यह अन्याय नही सह सकते। और ऐसी तैयारी (मानसिक) करके ही (कोई) बुराई करने क लिए तत्पर हो जाना चाहिये। तब कम-से-कम बुराई कर पाओगे—कम-से-कम, जिससे डाकू तो रोका (तो) जा सकेगा, और उसकी कम-से-कम बुराई होगी ? जब फल भोगने के लिए तुम तैयार होगे, तो अत्यन्त और अनावश्यक बुराई न हो सकेगी। जब स्वय को फल भोगना पडेगा, तब लोग अल्पतम बुराई ही कर पायेंगे। नही तो भलाई करने का बहाना बनाकर आदमी दूसरो के प्रति अन्याय और अनावश्यक अत्यधिक बुराइयाँ करता रहता है (जैसे हिटलर इत्यादि)। ऐसी मनोदशा ही बडी बहादुरी है। अन्याय न सहना और अन्याय के शमन-दमन मे किये गये कर्म के फल के लिए तैयार रहना, पर अन्याय न सहना।

ऐसे मे जिसके प्रति बुराई होने (करने जा रहे हैं) वाली है, उसके प्रति भी करुणा, न्याय तथा अपने प्रति बाध्यता और सबके प्रति कल्याण की भावना बची रहती है और परमात्मा को साक्षी रखकर किया गया कार्य होता है। (देखिये—जालन्धर की पत्नी वृन्दा की कथा, नारद-मोह की कहानी, हरिश्चन्द्र-शैव्या, दानवीर कर्ण इत्यादि की जीवनियाँ)।

आत्मसाक्षात्कार का पहला कदम अपने भीतर के कुरूप का साक्षात्कार है। आत्मसाक्षात्कार उसे देख लेना है, जो भीतर है, और तब, उसी क्षण, परिवर्त्तन शुरू हो जाता है। एक क्षण रुकना नही पडता। देखा और परिवर्त्तन प्रारम्भ हो गया। आदमी की मनोदशा। अपने अन्तरग के अवलोकन से आत्मसाक्षात्कार का आरम्भ होता है। वही से बहिरग भी बदलने लगता है। उसी पल से पशु परिवर्त्तित होकर पैगम्बर और परमात्मा बनने लगता है।

"मेरी मनोदशा पशु से प्रोफेट तक के बीच पेडुलम-सी घूमती रहती है।" (—श्रीनिवास) (पेडुलम=लोलक। प्रोफेट=नबी, पैगम्बर।)

सृष्टि मे जो अन्धकार, जो भयकरता, जो बुराई, जो कठोरता, दुष्टता इत्यादि दिखाई पडती है, उसके लिए किसी शैतान का आविष्कार किया गया कि इन सारे दोषो को उसी के माथे मढ दिया जा सके। इस शैतान और हमारे कर्मफल मे कोई फर्क नही। जब अपना मन शैतान बन जाता है, तब उसके द्वारा जो कर्म बनते है, उनका फल भयकर हो जाता है। (विश्वामित्र की रचित सृष्टि)।

कर्मफल
प्राकृतिक विधान } = शैतान = अन्धकार या तामसी मन

कुछ लोगो की पकड मे ज्योति-छाया का एकात्म आना आसान नही होता। उनके लिए शैतान की भूमिका आवश्यक थी। परमात्मा सदा कल्याणकारी तथा प्रेम और आनन्द का अथाह सागर है। वह कभी 'शैतानियत' पर नही उतर सकता। उसका प्यार लहरा रहा है, अपनी सृष्टि को गोद मे लेने के लिए। जब भी मन बुरे कर्म के लिए उद्यत होता है—विवेक उसे रोकता है—फिर भी आदमी अगर, उस कर्म को करता है, उसका अवचेतन उसके फल (अनभिज्ञ तो वह रहता नही) को तबतक के लिए स्वीकार तो कर ही लिया (चुका) होता है। फिर, फल जब प्रत्यक्ष दीखने लगते है, तब आदमी किसी दूसरे को कोसता है।

१ आदमी अपनी आँखे खोलकर देखे, तो गगनचुम्बी भवनो की तरह उससे और उसके चारो ओर बृहत्तर व्यक्तित्व की असख्य अट्टालिकाये, उसे बौना बनाती खडी नजर आयेगी।

२ सबके जीवन मे अच्छे और बुरे दिन ज्वार-भाटे, पहिये, की तरह आते-जाते रहते है।

३. ससार को पाने के लिए सारे गुणो की चरम सीमा से विभूषित आदमी भी अपनी सारी योजनाये पूरी नही कर पाता। कोई अदृश्य शक्ति इन सबके पीछे अजेय

भाव से कार्यरत है । कोई भी सकल्प सर्वाश मे पूरा नही हो पाता । ओर, यदि वह कायदे से पूरा हो भी जाय, तो भी उसमे चार प्रकार के दोष रह ही जाते हैं—(क) पराधीनता, (ख) जडता, (ग) अभाव (का दर्शन) और (घ) अहम् (की पुष्टि) ।

४ आदमी की सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण दशा (अवस्था, स्थिति) जन्म-मरण, ब्याह आदि आदमी की शक्ति के परे है । उसके सबसे आवश्यक ओजस्वी और मार्मिक अवयव (उदाहरणार्थ दिल, दिमाग इत्यादि) उसकी शक्ति के बाहर हैं । उसका अपना चेहरा उसी की नजर से दिखाई नही पडता । यह सब परमात्मा की ही सत्ता को बतलाते है ।

५ गलतफहमियो मे गर्क इन्सान थपेडे खाता थमका रह जाता है और अवनति का शिकार बनता है ।

As you sow so you mow (reap) जस करनी तस भोगहु ताता । जैसी करनी वैसी भरनी । इस आध्यात्मिक विधान के मुताबिक भी— जैसा भगवान् के प्रति होगा (किया जायगा), वैसा भगवान् से प्राप्त होगा—जैसे का मात्र तैसा नही, बल्कि कई गुना अधिक मिलेगी उसकी विपुल कृपा और कई गुना कम मिलेगा उसका रोष-कोप-क्रोध । सृष्टि के कण-कण मे एक लय है, थिरकन है, नृत्य है, सगीत है । एलेक्ट्रोन मे, अणु मे, मृत्यु मे भी एक सगीत है ।

काल (यमराज) ने कहा —डरो नही (नही डरो), (डरो मत), (मत डरो), (भयभीत न हो), (भयातुर मत बनो)। मैं तुम्हारे जोर्ण-शीर्ण (जराजीर्ण) (ध्वस्त) (खण्डहर) शरीर (देह) (काया) के बदले (को बदल करके) नया आवास (नयी अट्टालिका) (नवजीवन) देने आया हूँ । मैं तुम्हारी अतृप्त इच्छाओ, हसरतो, अरमानो की पूर्त्ति के लिए फिर एक नया (नयी व्यवस्था करने), (रास्ता निकालने), (नयी राह बनाने), (नई परिस्थिति का निर्माण करने), (नया मोका, नवीन अवसर देने), (नयी जिन्दगी बख्शने) माहौल तैयार करने आया हूँ । मैं तुम्हारे सुख-दु ख से त्रस्त और चाह से ग्रस्त मन की मरुभूमि मे (के श्मशान मे), (की चिता पर) (राख) (भस्म) नये कल्पतरु रोपने (नयी कलियाँ फुलाने), (खिलाने), (चटखाने), (नया आनन्द या मुस्कान भरने) आया हूँ । भयभीत न हो । प्रगति की राह पर मैं तुझे अधिक सक्षम और सशक्त बनाने आया हूँ। मै तुम्हारा मित्र हूँ, काल । तुम्हारी जीवन-वीणा मे नये सुर भर कर उसे फिर (नये सिरे से) झकृत करने आया हूँ । अब नयी कोपले फूट निकलेंगी । अब नया सगीत नि सृत होगा । अब तुम नये शरीर मे प्रवेश कर, अपनी इच्छाओ की पूर्त्ति कर सकोगे । घबराओ नही । प्रभु के अनन्त प्रेम और अबाध करुणा के अजस्र स्रोत पर विश्वास रखो (करो) । डरो मत । मै महा-काल हूँ । मैं तुम्हारे लिए नवजीवन लाया हूँ । मानो-न-मानो, यह तुम्हारी मनोवाछित देह आयी है । आओ, अपने जीर्ण-शीर्ण गह्वर से इस नयी काया को बदल डालो । (लो) यह तुम्हारी अतृप्त मन कामनाओ को पूर्ण करने मे तुम्हारे काम आयेगा (साधन रहेगा), (बनेगा), (साथ देगा) । तुम्हारी प्रगति मे एक नयी कडी जोडेगा ।

जीवन-मृत्यु एक लम्बी सैर है। अगर तुम जरा-सी आँखे बन्द कर लो, तनिक मौन हो जाओ, क्षण भर के लिए बेहोश हो जाओ, होश को खो जाने दो, तो मैं तुम्हे इस लम्बी सैर पर (के लिए) ले चलूँ। सैर-सपाटा, होटेल-मोटेल (Hotel-Motel) रगा-रग। नये तजुर्बे, नयी बात।

तुमने देखा है उन चिडियो को, जो बडे गुलाम अली खाँ की तरह गाती है? तुमने सुना है उस हिरामन तोता को, जो फैयाज खाँ की भाँति अलापता है? ऐरावत के जैसे विशाल उन राजहसो से मिले हो, जिनके धवल शरीर पर इन्द्रधनुष जैसे सात रगोवाले डैने राजते है? और जो केवल त्रिकोल, अनन्नास और अनार के आकार के मोती-ही-मोती चुगते है और सिर्फ पन्ना-पुखराज बीट करते हैं? तुम जानते हो प्रकृति-पुरुष के उस बिब्बोक को, जिसमे सृष्टि-का-भ्रूण प्रलय-का-शिशु बन कर अवतरित होता है? तुमने देखा है उस गगा को, जो तरल सुवर्ण की तरह थिरकती और हीरक-सी चमकती है? तुमने सुना है उस अखण्ड नाद को, जो ब्रह्माण्ड के शाश्वत नृत्य से नि सृत-निर्गत होता है?

आँखे फाड कर देखो। कान लगा कर सुनो।

अब रात बोल रही है। अब सन्नाटा बढता जा रहा है। चलो, चले।

तनिक ठहरो। जरा भुरुकवा को उग आने दो। जरा पराती (भौरौआ) तो शुरू हो जाने दो।

परमात्मा स्वय न भी आवे, फिर भी अपने तत्त्व से निर्मित, उसी से प्रेरित और प्रेषित, उसी का रूप (और सभी रूप परमात्मा के ही तो हैं) (तु० नारदमोह), या उसी की शक्ति से आयोजित कोई-न-कोई उसका प्रतिनिधि, आ जाता है, जब हम परमात्मा को पुकारते है, बुलाते है। जब उसकी आवश्यकता महसूस करते है। (तु० नवजात शिशु के लिए माँ। जवान की जवानी। साधक के लिए गुरु, शास्त्र इत्यादि। बन्धु-बान्धव, हित-मित्र। आकस्मिक सहायताएँ। भक्त के लिए इष्ट देव, भक्तवत्सलता। निस्सहाय के लिए सहारा। पीर-पैगम्बर। मृत्यु के लिए (प्रति) ज्ञान, सजगता। परिस्थितियो से लडने के लिए क्षमता, ब्ल, पौरुष, आशा, सन्तोष। अतीत को भूलने के लिए काल की शृ खला। सदा के लिए जिनका देहावसान हो गया, उन प्रियजनो से मिल पाने की सम्भावनाये लिये हुए प्रेतयोनि, मृतात्माओ का ससार, उनके प्रत्यक्ष कारनामे। ऐसा उसने नियम बना रखा है। अन्यान्य भाँति के मुखौटो से बने है उसके प्रतिरूप। उसका विधान ही ऐसा है, जिसने भी उसे चाहा, उसने उसे पाया। देवता उसी के करिश्मे है। अप्रत्याशित घटनाओ के माध्यम से भी वह अपनी झलक दिखा जाता है। वह जाग्रत्, स्वप्न, तन्द्रा—सभी स्थितियो मे आ सकता है, ध्यान और समाधि मे भी। उसके दूत मनुष्य या देवता के रूप मे, उसका पैगाम ला सकते है। एकान्त मे, भीड मे, सुख मे, दु ख मे, जीवन मे, मृत्यु मे, वह कही भी प्रकट हो जा सकता है। किसी भी शक्ल मे। सुविधा मे, दुविधा (द्विविधा) मे, माँ-बेटे मे, पति-पत्नी मे, मन्दिर-मस्जिद मे, जगल-दियारे मे, जेल श्मशान मे। शायद देव, किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, भूत-प्रेतादि की उसने योनियाँ बना रखी हैं, जिनके

प्रतिनिधि, लोगो को ऐच्छिक रूप के दर्शन कराने के लिए, प्रकट होते है, और फिर अन्तर्धान (अन्तर्द्धान, लोप) हो जाते है। जो निर्गुण-निराकार की आराधना करते है, उनको वह ज्ञान का प्रकाश देता है। और स्वय उस दर्पण मे, ऐनक मे, झॉक-झॉक जाता है। जो जैसे चाहता है उसका वरण करना, वह करने देता है। आदमी की इच्छा को इतनी बलवती बनाया है कि वह निराकार मे से साकार को गढ लेता है, मूर्तिमान् करता है या प्रत्यक्ष होने के लिए एक सयोग बना देता है। वह कब कैसे मिलेगा, किसी को पता नही। लेकिन, उसके आने की आहट मिलती रहती है और वह एक दिन मन की तरगो के किनारे आ खडा होता है। और, तब से जीवन नया मोड लेता है।

जब जन्म इतनी सुन्दर, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट, महान्, दक्ष और कुशल तकनीक तथा अत्यन्त विशिष्ट कार्य है, तब मृत्यु भी वैसी ही अलौकिक होगी। वैसी ही एक अनमोल घटना। एक जिन्दगी का निरापद पटाक्षेप, एक नवीन रगीन वर्क, एक नयी कली का खिलना, एक सुसज्जित, सुरम्य, आलोकित नूतन तोरण से गुजरना, काल की कमनीय गोद मे एक मीठी झपकी। और, फिर किसी नये माहौल मे, किसी पूर्णत सुव्यवस्थित जिन्दगी मे फिर से पूर्ववत् जाग उठना, जाग जाना। किसी को यह कहा जाय कि जन्म लेने के लिए किन रास्तो से गुजरना पडता है, कहॉ से जिन्दगी का प्रारम्भ होता है, तो शायद आदमी जन्म लेना न चाहे, डरे। लेकिन जन्म लेकर और इस ससार मे रहकर कोई इस दुनिया को, इस प्यारी जान को छोडना नही चाहता। अपने जन्म को मिटाना नही चाहता। अपनी खुशी आये, तो भी नही। लेकिन लानेवाले ने किस खूबी से लाया और कैसी विलक्षण दुनिया मे रखा। अब ले जानेवाला क्या सृष्टि के प्रारम्भ से आज-तक कोई अच्छी राह नही निकाल सका ? कोई सुखद तरीका उसके हाथ नही लगा ? कि यह राम के प्यारे हो जाने की अवश्यम्भावी क्रिया भी वैसी ही दिव्य हो, वैसी ही मौलिक, वैसी ही क्लेश-रहित हो। अकाट्य पर अनजान। फिर भी, आश्वस्त होने के लिए प्रमाणो से भरी। खूबियो की खान। जिस सृष्टिकर्त्ता ने प्राण दिये, वही प्राण ले रहा है, लौटा रहा है। जनमने के लिए जिसने उपकरणो का निर्माण किया, मरने के लिए क्या उसने ऐसा ही कुछ प्रतिभा-प्रोत्पन्न, देदीप्यमान रास्ता नही निकाल रखा होगा ? इसके लिए परमात्मा की बुद्धि कुण्ठित हो गयी होगी क्या ? उसके पास गृह-विहीनो के लिए कोई आश्रय नही होगा क्या ? निराश्रित खानाबदोशो के लिए कोई घर या धर्मशाला न होगा ? आरम्भ जितना रहस्यमय है, अन्त भी उतना ही भेदभरा और गूढ है। अपना कोई वश नही, जिसका काम, वह जाने। सर्वसमर्थ, करुणानिधान, सर्वज्ञ, शाश्वत सत्ता पर क्यो न भरोसा करे ?

मृत्यु का अपना विधान और व्यवधान होगा। अपना साहित्य, कला और विज्ञान। कुछ प्रत्यक्ष, कुछ अप्रत्यक्ष। कुछ घटित, कुछ अघटित, कुछ घटनोन्मुख। कुछ साजिश होगी परलोक की, कुछ इहलोक की। कुछ मूक भाषा होगी अपनी, कुछ बाध्यता होगी उसकी। कुछ हुक्म होगा उसका, कुछ चाह होगी अपनी।

बाह्यकर्ण से अधिक सूक्ष्म है आभ्यन्तर कर्ण (Internal ear)। उससे सूक्ष्मतर है

श्रवण तन्त्रिका (VIII Nerve)। श्रवण-तन्त्रिका से अधिक सूक्ष्म है उसका केन्द्रक (Nucleus), पौन्स (Pons) मे। आवाज को मस्तिष्क तक पहुँचाने के ये उपकरण-मात्र है, केवल रास्ते। लेकिन सुनता है आदमी का मस्तिष्क, जो अधिक सूक्ष्मतर है। और आवाज को सुनकर जो उसे अतीत, वत्तमान ओर भविष्य से जोडता है और उस सुनी हुई आवाज का विश्लेषण करता है, वह समर्थता और क्षमता दिमाग के सूक्ष्मतम स्तर पर ही सम्भव है।

भगवान् की प्राप्ति के उपाय

१ स्तुति—महिमा

२ उपासना—सम्बन्ध

३ भक्ति—प्रेम

परमात्मा से सम्बन्ध जोडना, उसे अपना मानना। उससे माँगना-चाँगना नही। अचाह बनना। कर्त्तव्य करते हुए ससार से सम्बन्ध तोडना और प्रभु से नेह जोडना, लगाना।

राम (नाम) जपा (रटा) कर, करम (काम) किया कर, ना काहू का डर है।
परदेशी (अनजाने) का हाट (ठाट) (बाट) लगा यह, ना काहू का घर है।
(अनजानी यह बात बटोही। क्या जाने क्यो कर है।)॥
मुक्ति—शरीर और ससार से सम्बन्ध छोडना, तोडना
—निश्चिन्तता, निर्भयता, प्रियता।

भूत, अतीत मर गया। भविष्य अजन्मा है। वर्त्तमान अपने साथ है, जो प्रतिपल तीव्रगति से बदलता जा रहा है। भरोसा किसका करे इन्सान ? जिसे वह स्थान और समय (Space and Time) के पार (Beyond) पा सकता है, सर्वत्र, सर्वदा। जो ब्रह्माण्ड की किसी भी सत्ता और शक्ति से अधिक शक्तिशाली, सवसमर्थ हो। जो परिस्थितियो के परे, किसी भी आपत्काल, दुर्दिन और प्रतिकूलता मे काम आ सके। जो सर्वज्ञ, अन्तर्यामी, दीनानाथ, दयासागर, भक्तवत्सल हो। या कि किसी दूसरे का मुखापेक्षी बना जाय ?

परिस्थितियो की स्थायी स्थिति नही होती। परिस्थिति मात्र साधन-सामग्री है। साधना है निर्लोभता, निर्मोहता, प्रियता, निर्भयता, उदारता, निष्कामता, असगता, समता इत्यादि। सुख-दु ख से अतीत जो जीवन है, उसमे प्रवेश पाना है। सेवा से त्याग और प्रेम की उपलब्धि होती है।

प्रेम मानव के विकास की परिणति है।
जो किसी को भय नही देता, वही अभय होगा।

बुराई कर्म मे थी, चिन्तन मे नही। चिन्तन मे बुराई विकास मे बाधा डालती है। बुराई करनेवाला न चैन से जी सकता है, न मर सकता है। भलाई का अभिमान और उसके फल की इच्छा रखना यह बतलाता है कि मूल मे बुराई छिपी थी।

प्रियता नित्य नव अविनाशी अनन्त रस है। जिसके जीवन मे कोई भी प्रिय है उसके जीवन मे अनन्त रस बहता रहता है।

जहाँ तक अपने व्यक्तित्व या शरीर का दायरा, परिधि या विस्तृतता का प्रश्न है, यह पता चलता है (ध्यानपूर्वक सोचने से) कि अपने मे एक भाव-सा कुछ है, जो

१ मेरा अन्तर्यामी है।

२ निर्विकार परिवत्तन-रहित है।

३ तटस्थ है।

इसे आत्मा (आत्मन्) कह सकते हैं। इसे ही (Self) कहा भी गया है। यह अह (अहभाव Ego) नही है, 'मन' या 'चित्त' या 'बुद्धि' भी नही है। यह

(क) मै—पने का भाव + (तथा)

(ख) विवेक का प्रकाश, का मिश्रण, घोल है।

यह अन्त करण के ज्यादा नजदीक है, क्योकि यह अन्त करण को जानता है, जानने की क्षमता रखता है। यह शरीर से दूर है, क्योकि वह शरीर के बाह्य को छोड कर शरीर के अन्य कल-पुरजो को नही जानता-पहचानता। यह शरीर की रचना तथा उसकी वृत्ति या क्रिया से सर्वथा या बहुत-कुछ अनभिज्ञ है। शरीर का सुख-दु ख, उसका विकास या ह्रास, यौवन जरा, ये सब इसे कदापि नही व्यापते। इसे न आग जला सकती है, न पानी डुबो सकता है। जीवन-पर्यन्त यह एक सा, निर्विकार रहता चला आता है।

इसी आत्मा (Self) को परमात्मा का स्वरूप, नूर या दिव्याश मानते है। अगर आदमी मे कुछ भी वैसा (परमात्मा सा) है, कुछ भी, तो वह आत्मा (Self) ही हो सकता है। वह पार्थिव शरीर से बिल्कुल भिन्न गुणोवाला पारलोकिक तत्त्व है।

सब प्राणियो (आदमियो) की आत्माएँ एक-सी है। सब एक सदृश, एक-से गुण-वाली है। किसी आत्मा मे कोई भिन्नता नही, कतई नही। तो ऐसा कुछ सामजस्य, एकरसता है, जो प्रत्येक आत्मा को आपस मे एक दूसरे से बाँधती है। समानधर्मा, स्व-जातीय या स्वयमेव होने के कारण यह आत्मा समान रूप से सब प्राणियो मे व्यक्त है। अपने मे और दूसरो मे समस्त सृष्टि मे यह आत्मा (Self) सदा सर्वत्र व्याप्त है। इसे ही जाननेवालो ने 'सोऽहम्' कहा, 'तत्त्वमसि' कहा, 'ईशावास्यमिद सर्व' भी कहा। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' भी कहा।

सब प्राणियो को अगर एक सूत्र मे बाँधता है, तो यही। यही है, जो सृष्टि की विविधता मे एकत्व (एकता) (एकात्म) साधता है, स्थापित करता है। इन कुल (समस्त) आत्माओ आत्मा-रूप हस्तियो (अस्तित्व) (Self-entities) का यह सगुटोकरण (समूह, ढेर, सम्पिण्डन) है, जो मिलकर सृष्टि और समष्टि (परमात्मतत्त्व) बन जाता है। यह समान आत्माओ की चेतनाओ का जोड-जमा है, जो सार्वभाम चेतना बनती है और 'ईश्वरीय' की सज्ञा पाती है।

लेकिन, इस कथन मे एक अनुपयुक्त असगति (Incongruity) भी है। यह आत्मा (Self) भविष्यत्काल का प्राय नही जानता, अपने शरीर के भीतरी अवयवो,

अग-प्रत्यगो से भी काफी वाकिफ नही, दूसरे के विचारो (मन, चित्त, अहं, बुद्धि, अन्त - करण) से भी करीबन अनभिज्ञ । न यह सर्वज्ञ है, न सर्वसमर्थ । इसलिए, यह परमात्मा नही हो सकता । परमात्मा का नूर, न्यूनाश-भर, हो सकता है । गगाजल का एक घूँट, अथाह समुद्र की एक बूँद, सूर्य की एक किरण, अनहद नाद की एक कडी, अनन्त जीवन का एक क्षण और एक कण ब्रह्माण्ड का ।

अपने को परमात्मा कहना अनर्गलता है । परमात्मा मानना निपट अनाडीपन, अखण्ड वज्रमूर्खता, एक बकवास । और अगर, परमात्मा सार्वत्रिक (सर्वत्रव्यापी) है, तो अपना रोम-रोम भी परमात्मा छोडकर और कुछ है भी क्या ?

राष्ट्रपति से चौकीदार तक, महापण्डित से अपढ-अनाडी तक, साधु से डाकू तक, स्त्री से पुरुष तक, शैशव से जरा तक, जीवन से मृत्यु तक—सभी प्रतिक्षण परिवर्त्तनशील है । अतीत के गोल से क्षेपित वर्त्तमान का कन्दुक भविष्य के गोल की ओर अनवरत बेतहाशा भागा जा रहा है । वर्त्तमान जैसे ठहरेगा ही नही, क्रीडास्थल मे वह कहाँ है, यह कह पाना नामुमकिन, असम्भव । इतना वेग है उसमे, ऐसी रफ्तार, ऐसी द्रुत है उसकी गति कि वर्त्तमान दिखायी भी नही पडता । एक सम्भावित-अन्तर्निहित (पोटेन्शियल) कडी (लिक) । तीव्र गति से प्रवहमाण अपने जीवन मे मानव का शरीर प्रतिपल बदलता जा रहा है । मस्तिष्क मे विचारो की लहरे आ-जा रही है । उनमे भी ठहराव नही । वे भी बदलती जा रही हैं । अभी जो विचार, जो भाव आये, जो बाते खयाल मे आयी, वे भी चली गयी। अन्त करण के पुरजे भी दो क्षण एक सरीखे नही रहते । न मन, न चित्, न बुद्धि । अहम् (मैं) का रग भी बदलता रहता है। अभी हल्का, अभी गाढा । फिर भी, हम अपने अन्तस्तम मे कही एक ठहराव का अनुभव करते है । सोचने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमने बचपन से अभी तक अपनी देह को बदलते देखा किया है । हम इस परिवर्त्तन से वाकिफ रहे है, पर हमारे चाहे-अनचाहे यह घटना घटती गयी है । हमने अपने अन्त करण मे भी समयानुकूल फर्क पडते देखा है । मन, चित्, बुद्धि, अहम् सभी मे परिवर्त्तन हुए है और रात-दिन होते ही रहते है । मन अतीत की यादो मे खोया रहता है । मनन करता जाता है । आज मन ठीक नही है । यहाँ मन नही लगता । चित्त चिन्तन मे व्यस्त है । मनसूबे । ऊहापोह । भविष्य के लिए खयाली पुलाव पकाना, भावनाओ के जाल बुनना । पुल बाँधना । चचल । बुद्धि भी ठिकाने नही रहती । अच्छे-बुरे का, सुख-दु ख का, उचित अनुचित का, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का, विरोधी भावो के विश्लेषण मे गर्क यह ज्ञान और अनुभव के शिकजे मे जकडी कभी 'तीक्ष्ण' तो कभी 'भ्रष्ट' मालूम पडती है । जीवन-पर्यन्त यह ज्ञान उपार्जित करती रही है और अपने को अधिक से-अधिक प्रखर बनाने की चेष्टा मे कायरत रही है । चुनाचे, इसकी भी प्रतिभा एक-सी नही रही है, इसकी योग्यता मे, क्षमता मे चढाव-उतार हुए है । भेद पडा है । अहम् का हाल भी कुछ ऐसा-वैसा ही है । 'मैं' कभी घमण्डी, कभी पण्डिल, कभी दीन-दु खी कभी 'बडा', कभी 'छोटा' कभी सन्त, कभी कन्त, कभी बकट, कभी लम्पट, कभी पुत्र, कभी पिता इत्यादि-इत्यादि रहता आया है।

'मै' भी बदलता रहता है और हमको इसका पूरा एहसास भी होता है कि 'मै' का हिम कभी गलता है, कभी जमता है। जैसे-जैसे उम्र बढी है, 'मैं' का रग बदला है। कभी गाढा, कभी चोखा, कभी हल्का। लेकिन शरीर के, अन्त करण के, और अहम् के पीछे कोई एक सत्ता है, व्यक्तित्व का एक अप्रत्यक्ष अश है, जो जीवन-पर्यन्त बदला नही, जो साक्षी-भाव से इस परिवर्त्तन को देखा किया है। जो सुख-दु ख के द्वन्द्व मे पडा नही। जो परिस्थितियो के वशीभूत हुआ। जो अन्त करण की भयकर लपटो और लहरो के बीच अडिग रहा। ससार की त्रिगुणी माया जिसे छू न सकी—अचाह, निर्भय, निर्मम। विवेक जिसका मन्त्री रहा। और, जो अन्तर्यामी मेरा सब-कुछ जानता रहा। जिससे 'मै' और मेरा अन्त करण अपना कोई ज्ञान, अपनी कोई भावना, अपना कोई राज, न छुपा सके। खुदा का वह नूर, वह अश, वह प्रतिबिम्ब, जिसमे परमात्मा के जैसे गुण झलकते रहे, सदा, सर्वदा। सर्वव्यापी। अन्तर्यामी, सर्वज्ञ, निर्गुण, निराकार।

प्रकाश प्रकाश ही है, वह चाहे मार्त्तण्ड द्वारा विकीर्ण हो रहा हो या दीपक से निकलकर फैला हो। बेशी हो या कम। प्रखर हो या मद्धिम। खुदा का वह नूर, जो सब प्रणियो के अन्तरतम मे प्रकाशित है, वह काया के कोने-कोने मे व्याप्त होने के कारण सर्वव्यापी है, अन्त करण की प्रत्येक भावना को जानता है, इसलिए अन्तर्यामी है, मैं जो कुछ जानता हूँ, वह सब कुछ उसको मालूम है, सुतरा सर्वज्ञ है। वह निर्गुण है, क्योकि वह गुणातीत है, तटस्थ है। वह निराकार है, क्योकि वह असीम, अवर्णनीय, अगोचर है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, सबमे वह एकरस रहता है। यह 'पिण्ड' का आधार है। यही 'पिण्ड' फैलकर 'ब्रह्माण्ड' बन जाता है और यही 'पिण्ड' का आधार फैलकर 'ब्रह्माण्ड' का आधार बन जाता है। परमात्मा का एक रूप (लघुतम) जो अपने छोटे दायरे मे परमात्मा की शक्तियो के न्यूनाशो से विभूषित है और उन्हे प्रदर्शित कर सकता है, उन्हे प्रत्यक्ष कर दिखला सकता है, और जिसकी परमात्मा जैसी सम्भावनाये हैं।

'हम'—परमात्मा = (जीवात्मा की) आत्मा = ब्रह्म = सेल्फ = डिवाइन फोर्स = खुदा का नूर, जो जिस्म से जब्त है। जो देह मे है, देह का नही है।

हिन्दी का यह 'हम' शब्द कही 'अहम्' का तो अपभ्र श नही। फिर तो इसे एकवचन होना चाहिये। किन्तु, हिन्दी मे यह है बहुवचन। वैसे, लोकभाषाओ मे हम एकवचन ही है। 'अहम्' (मैं) मे समस्त सृष्टि व्याप्त है। 'अ' से (अ आ इ ई उ ऊ) 'ह' (क ख . ह) तक के वर्णो का धारक यह अहम् सृष्टिवाक्-धर्मा शब्द है। आकाश से वाक् और वाक् से सृष्टि हुई है—'वायुर्खात् शब्दस्तत्' और यह हम—अहम् 'यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' है।

उसने 'मैं' के सपनो को देख लिया है। परोक्ष से वह छिपी-डूबी-गडी वासनाओ को जानता है। आकाक्षाओ, अरमानो, हसरतो को। हविस को। आदत को। 'हम' मन को और मन की बात को पहचानता है।

वह, मिनिएचुराइज्ड लिलिपुटियन्स गौड है, कन्डीशन्ड बाई दी फैक्ट ऑफ इट्स

बीइग एसोसिएटेड विथ दी बॉडी ऐण्ड इट्स लिमिटेशन्स। विथ ऑल दी अभेलेबल नॉलेज ऑफ एनाटॉमी ऐण्ड साइकोलॉजी ऐण्ड फीजियोलॉजी इट केन नॉट बी सेड व्हेयर इन दी बॉडी इज दी मेन एबोड ऑर ऑफिस ऑफ 'हम'। सम रिनाउण्ड सेण्ट्स ऐण्ड सेजेज, हू शुड नो बेटर, डेनाइ दी एक्जीस्टेन्स ऑफ 'हम' (सेल्फ) इन दी ब्रेन ऐण्ड एफर्म दैट इट इज इन दी राइट साइड ऑफ दी चेस्ट नीयर दी सेण्टर। बीइग ऐन एलोपैथिक फीजिशियन आइ कैन नीदर स्वैलो इट नॉर कुड आइ डेनाइ इट। आइ डू नॉट नो। गॉड नोज बेस्ट। आइ एम, हाउएभर, रिमाण्डेड ऑफ दी सिनो-ऑरीकूलर नोड। ऑल दी सेम आइ एम अवेयर ऑफ दी फैक्ट दैट हार्ट-ट्रान्सप्लाण्टेशन्स (प्रति-रोपण) हैभ बीन कैरेड आउट ऐण्ड दैट पेशेण्ट्स हैभ लिभ्ड विथ मेकैनिकल हार्ट्स। औलसो दैट इन एनिमल्स एट-लिस्ट लाइफ ऑफ सिभियर्ड हेड्स ऐण्ड ऑफ बॉडीज इज पॉसिबल।

परमात्मा सर्वज्ञ है और सर्वसमर्थ (सर्वप्रकारेण सक्षम) है। पर, जीव (मैं) या आत्मा ? (जीवात्मा का आत्मा, जो परमात्मा का अश है=Self='हम') (जीव=प्राण+माया। जीवात्मा=जीव+आत्मा) आत्मा=परमात्मा का वह अश, जो सर्व-व्यापी होने के कारण सर्वत्र व्याप्त है ओर जो प्राकृतिक उपकरणो का मूल आधार है और उन उपकरणो के द्वारा जो कार्य सम्पादित होते हैं, उनका तटस्थ द्रष्टा और उप-करणो के अनुरूप कार्यों का इसलिए तटस्थ प्रेरक है, क्योकि वह समस्त सृष्टि का प्रेरक है, प्राकृतिक विधानो की पृष्ठभूमि है। (जीवात्मा=माया मे लिपटा जीव और उसका परमात्मस्वरूप आत्मा)।

'परमात्मा' परम आत्मा है। परम का अर्थ चरम है। वह पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ विशिष्टात्मा परमात्मा है। 'परम' का एक अन्याथ है आकाश। इसीलिए, परमात्मा के पर्याय मे एक शब्द है 'परमेष्ठिन्'। अर्थात्, परम (आकाश) मे रहनेवाला, आकाश ही शून्य है, शून्य ही मर्वस्व है—सर्व शून्यम्।

'हम' आपके (अन्य प्राणियो के) मानस की विचारधाराओ को भी नही जानते-बूझते-समझते। हमारे सकल्प हमारी मर्जी के मुताबिक पूरे नही होते या अधूरे रह जाते हैं। अगर 'हम' परमात्मतत्त्व है, तो वह परमात्मा के अपार अनन्त गुणो से आभूषित क्यो नही है ? इसलिए कि परमात्मतत्त्व परमात्मा नही है। समुद्र की एक बूँद समुद्र नही होती। मिट्टी का एक कण पृथ्वी नही होता। आग की एक चिनगारी अग्नि नही होती। दीपक सूय नही होता। लोटे का जल भागीरथी और अलकनन्दा नही होता। ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मतत्त्व सृष्टि के अनुरूप रूप ओर गुण प्रकाशित करता है और इसलिए सीमित नजर आता है। जैसे, 'हम' को प्रकाश मे लाने के लिए शरीर (जीव) को मस्तिष्क का सहारा लेना पडता है। और 'हम' भी उतना ही ज्ञान पा सकता है, जितना मस्तिष्क (मानस) का दायरा सीमित है। इसलिए 'हम' की सवज्ञता भी सीमित है। 'हम' 'मैं' से अधिक इसलिए जान पाता है कि वह अधिक गहराइयो मे जाने की क्षमता रखता है और उसमे गुणातीतता, तटस्थता, शाश्वतता,

निर्लिप्तता इत्यादि ईश्वरीय गुण मौजूद है और वह कायस्थ होते हुए भी स्वस्थ है और उसका पार्थिव काया से न जातीय सम्बन्ध है और न काया पर आधृत परवशता। परमात्मा सर्वज्ञ इसलिए है कि वह सर्वव्यापी और सर्वसमर्थ और शाश्वत और गुणातीत है और वह सृष्टि का स्रष्टा और प्रकृति का प्रेरक है। वह सर्वसमर्थ इसलिए है कि वह सर्वज्ञ इत्यादि भी है।

आत्मा (Self, हम) जबतक काया के घेरे मे है, तबतक वह सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ इत्यादि होने मे असमर्थ है। जीवात्मा का स्वतन्त्र आत्मा—जिसने पार्थिव शरीर और ससार से 'स्व' को मुक्त कर लिया है, जो माया के तिमिर से बाहर निकलकर स्वच्छन्द हो गया हो—वह विभु हो जाता है, वह परमात्मतत्त्व मे एकाकार हो जाता है, तब उसे स्वत सर्वज्ञता, सर्वसमर्थता इत्यादि ईश्वरीय गुण तथा गुणातीतता भी एक साथ उपलब्ध हो जाते है।

'काया' शब्द विचित्र है। 'चि' धातु मे घञ् प्रत्यय लगने पर 'काय' शब्द (चकार का ककार मे परिवर्त्तन कर) बनता है। चि (चिनोति) का अर्थ है—चुनना, अर्थात् जिसमे पचतत्त्व (पृथ्वी, पानी, पवन, तेज और आकाश) को चुनकर सँजोया गया है। लेकिन, आज 'काय' शब्द अपने मूलार्थ को विस्मृत कर चि + घञ् = चाय बन गया है।

जो काया-व्यापी है, वह सर्वव्यापी कैसे होगा ? जो सर्वव्यापी नही है, वह सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, शाश्वत इत्यादि भी नही है।

शरीर (और जीव) मे वास करता हुआ परमात्मा (परमात्मतत्त्व = आत्मा = हम = 'सेल्फ') स्वय को सासारिक रग मे ऐसा रँग देता है कि कुछ ऐसी परिस्थिति मे डाल देता है हमको कि, हकीकत का पता न चले। ऐसा नही हुआ होता, तो 'जीवात्मा' की सृष्टि सम्भव नही थी। एकता (Unity) मे विभिन्नता (Diversity) सम्भव नही थी। परमात्मतत्त्व काया मे टिकता नही। परमात्मा-जीवात्मा-अन्त करण-माया-काया-प्राण इत्यादि के जोड से निर्मित प्रतिफल बिखर जाता, टूट-फूट जाता। जीव को ससार का अनुभव देने के लिए परमात्मा अपना अश उसके साथ भेजता है और प्रकृति अपने विधान से उसके लिए परिधान, व्यवधान, आवरण और आभरण की व्यवस्था कर देती है। परदेश जाना है, रास्ता लम्बा और अनदेखा है। यात्री को सहायक और सहारा चाहिये।

सेल्फ (हम) भी निश्चित ही सीमित है, क्योकि यह तो शरीर के अवयवो तक को नही जानता और अपना मूलरूप (परमात्मतत्त्व) भी नही पहचानता। इन्द्रियो की शक्ति सीमित है। मन और चित्त सीमित है। बुद्धि भी सीमित है। इसकी उपलब्धियाँ भी सीमित है। 'अहम्' (मैं) तो अपनी सीमा जानता ही है। इनके द्वारा उपार्जित ज्ञान भी सीमित है और यह अनुभव-जन्य सत्य है कि इन्द्रियाँ और अन्त करण सत्य को प्रत्यक्ष नही कर पाते और इनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान विकारग्रस्त और इनके निष्कर्ष, अनुमान और निर्णय दोषपूर्ण, मिथ्या और भ्रमात्मक होते रहते है। ऐसे उपकरणो—इन्द्रियो तथा अन्त करण—के द्वारा जो भी ज्ञान प्राप्त होगा, जो भी अनुभूति होगी, वह निश्चय ही

सीमित होगी। इसलिए, इन्द्रियो और अन्त करण के द्वारा असीम का साक्षात्कार होना और असीमता, शाश्वतता, सर्वव्यापकता इत्यादि को आँक पाना, उनका अनुभव कर पाना, परमात्मा के किसी भी आयाम का बोध प्राप्त करना, असम्भव है। शायद काया इस कार्य के लिए बनायी नही गयी। सम्भवत इन्द्रियो और अन्त करण (मन + चित् + बुद्धि + अहम्) भी इस काम के लिए नही बने है। मानव (या प्राणिमात्र) एक विशेष और विशिष्ट प्रकार की सृष्टि है, जो धरातल पर घर बसाने के लिए और प्रकृति के विधानानुसार पृथ्वी पर निर्धारित काम करने के लिए बाध्य है। जैसे जलन्दर पानी मे और थलचर जमीन पर रहने के लिए बाध्य है। प्रकृति की छटा मे भूला हुआ, ससार मे लिपटा हुआ, अन्त करण इस पार्थिव जिन्दगी के लिए मौजूँ है। वह जीवात्मा की साधना-सामग्री है, काया से सम्बद्ध। अन्त करण का उपयोग 'मैं' भी करता है और 'हम' भी। 'मै' उसके 'हम' को प्रतिबिम्बित देख सकता है। 'हम' उसमे अपने (स्व) को देख सकता है। जबतक 'हम' देह पर 'आश्रित' है या उससे किसी तरह भी 'घिरा' है, 'सीमित' है, तबतक वह मस्तिष्क के बिना अपनी झलक 'मैं' को नही दिखला सकता और वह शरीर से अलग अपनी सत्ता का एहसास (बोध) भी नही पा सकता और न अपने को जान-पहचान सकता है। वह परमतत्त्व है, इसका भान उसे कतई नही हो सकता, अगर सोचने और ध्यान धरनेवाली मशीन (उपकरण)—मस्तिष्क—उसकी मदद न करे। साधारणत, यह उपकरण, मस्तिष्क उतना दक्ष और सक्षम नही होता, उतना बढिया काम नही कर पाता, कि जिसमे 'हम' को अपने स्वरूप (असली) का ज्ञान हो सके। जीवात्मा और परमात्मा मे ऐसा है जातीय सम्बन्ध। जीवात्मा की काया मे परमात्मा का नूर अपने उन्ही गुणो के साथ प्रतिष्ठित है, जिनके साथ समष्टि मे परमात्मा।

'हम' (सेल्फ) व्यक्ति परमात्मा समष्टि। जाग्रत् अवस्था मे। स्वप्न देखने की अवस्था मे। गाढी नीद की अवस्था मे। वह खुदा का नूर जागर्त्ति को जानता है। वह स्वप्न को और स्वप्न देखा गया, इसको भी जानता है। उसे मालूम है कि नीद गाढी आयी कि हल्की। वह स्वप्नो के सुख-दु ख को भी जानता है। जाग्रत् अवस्था के कारनामो को तो जानता ही है।

परमात्मा का अश परमात्मा की ताकत नही रखता। यह समुद्र की बूँद-भर है, असीम सागर नही। लेकिन, यह बूँद विलक्षण है, क्योकि इस छोटी-सी जादू की पुडिया के अन्दर समुद्र के जल के गुण विद्यमान है। और, इस बूँद मे शक्ति है कि वह समुद्र मे पूर्णत घुल-मिलकर एक हो जाय—बूँद सागर बन जाय।

'है' से 'है' निकलेगा। 'नही' से 'नही' निकलेगी। यह जितना जो दृश्यमान जगत् है, वह नही के आधार पर नही हो सकता है। कार्य उपलब्ध है, तो कारण होगा ही। उस कारण की तलाश कर लेना ही हमारा अभीष्ट हो सकता है। और, परमात्मा की यह छोटी-सी लौ सब प्राणियो मे मौजूद है—कही टिमटिमाती-झिलमिलाती, कही चकाचौध करती।

प्राणिमात्र मे यह एक (कॉमन लिंक) (सामान्य सम्पर्क-सूत्र) (आपसी सम्पर्क की कडी) है, इकाइयो के बीच जोड का चिह्न या सीमेण्ट या गोद-सरेस । इन सब इकाइयो का जोड = समष्टि । व्यक्तियो (पिण्ड) के अन्दर 'मै' है और 'मै' की पृष्ठिभूमि मे, तह मे, मूल मे, 'हम' है, जो मानव-समाज के विभिन्न व्यक्तित्वो को, मानवीय सृष्टि को एक सूत्र मे, एक साथ बाँधती है, जो सब 'मैं' को जानता है, 'मैं' की असलियत को जानता है, 'मै' को देखता है, चुपचाप 'मैं' की निगरानी करता है । जिसका अपना-पराया कोई नही, जो 'मैं' से अधिक व्यापक, परमात्मा के अधिक निकट है । 'मैं' मस्तिष्क मे । 'हम' मस्तिष्क मे भी और 'मै' मे भी । अन्दर काया में भी और काया के बाहर सृष्टि मे भी । 'मैं' है व्यक्तिगत । 'हम' है व्यक्ति-समूह, मानव-समाज, मानवीयता का एक टुकडा । 'मै' है देही । 'हम' है विस्तृत, देहातीत, शरीर से स्वतन्त्र । 'मै' है ऐहलौकिक, सासारिक । 'हम' है पारलौकिक । 'मैं को ससार चाहिये, इसलिए वह ससार से बँधा है, त्रिगुणी माया मे लिपटा है । 'हम' को कुछ नही चाहिए, सभी उसके अपने अन्तरग है, ससार उसका है, परमात्मा उसका अपना है, निज-स्वरूप । निर्लिप्त । सत्य, शिव, सुन्दरम् । यदि 'हम' है Self, यही आत्मज्ञान है कि आदमी अपने 'हम' को जान ले, पहचान ले । और, इसी ज्ञान और अनुभूति के सहारे अचाह, निर्मम तथा निर्भय बनकर 'मुक्त' हो जाय । 'मुक्त' होकर आनन्द और शान्ति को उपलब्ध हो जाय ।

'मैं' प्रकृति (पार्थिव सासारिक) की जाति का है (ईगो-इन्सटिक्ट) जो अपने को दूसरो से भिन्न देखता है । 'मै' भाव सम्भवत मस्तिष्क के चन्द कोषो मे कैद है । इसे अपने-पराये का बोध है, अपनी काया से मोह है, मोह मे लिपटा हुआ है । 'हम' परमात्मा की जाति (स्वभाव गुण) का है । स्वस्थ । निर्लिप्त ।

शरीर को मस्तिष्क जानता है—मस्तिष्क को अन्त करण—अन्त करण को जीवात्मा (बुद्धि) जानता है—जीवात्मा को परमात्मा ।

शरीरस्थ जीवात्मा को परमात्मा का अक्स (नूर प्रतिबिम्ब) 'हम' (=सेल्फ) के भाव-रूप मे ही प्रत्यक्ष होता है । यह व्यक्ति और समष्टि मे एक-सा व्याप्त है। शरीर मे, अन्त करण मे, जीवात्मा मे, इहलोक और परलोक मे, चेतन और अचेतन मे—सर्वत्र सर्वदा सर्वव्यापी ।

'हम' (के रूप मे प्रतिष्ठित परमात्मा) ही व्यक्ति मे का परमात्मतत्त्व है । इसे ही 'सेल्फ' या अपना निकटतम भगवान् मानना उचित है—जो सवव्यापी का अश अपने मे है । यही तटस्थ एव द्वन्द्वातीत निर्विकार तथा अपरिवर्त्तनशील, सार्वभौम और सार्व-भौतिक तत्त्व है । शिवरात्रि के दिन भगवान् शकर पर चढाने के निमित्त दूर से लाया गगाजल चाहे सुवर्ण के पात्र मे रखा गया हो अथवा मृत्तिका के पात्र मे, है वह गगा भी और जल भी । और उसकी एक बूँद को भी वही अहमियत हासिल है, जो गगा नदी को । अलबत्ता यह सत्य है कि नदी का न इसमे प्रवाह है और न नदी की विस्तृतता, न सामर्थ्य। कायस्थ, कूटस्थ, स्वस्थ। तटस्थ। (गुणातीत, निर्लिप्त) (निर्गुण ब्रह्म के साथ

समता) रहने के कारण 'हम' (सेल्फ) पर कोई भी सस्कार नही पडता । जहाँ विचार, भावनाएँ इत्यादि प्राय अन्त करण मे, अपने-आपमे विलीन (लय) हो जाते हैं और मस्तिष्क का काम स्थगित-सा हो जाता है, वहाँ भी 'हम' का (के द्वारा) अवलोकन (निगरानी, भिजिल) (रतजगा) जारी रहता है । ध्यान, धारणा तथा समाधि मे 'हम' जगा रहता है, 'मै' सोया या लुप्त (विलीन) रहता है ।

'हम' मानवीय अस्तित्व मे चेतना का सूक्ष्मतम और आखिरी आधार दुर्ग है। यह तत्त्वात्मक चेतना है, जो परमात्मा के Cosmic mind (सार्वभौम चेतना) से जुडा हुआ है। इसको दहलीज पर खडे होकर दो तरह के विपरीत दृश्य (द्वार) देखे जा सकते है— एक तरफ सृष्टि ओर ससार, दूसरी ओर परमात्मा और उसका विस्तार । मानवीय चेतना यहाँ तक पहुँचकर (उठकर, फैलकर) रुक-सी जाती है । इसके पार जाना किसी प्रकार भी अपने बूते की बात नही रह जाती । इसके परे कुछ भी इगित नही पाते, किसी भी (उच्चतर) स्थिनि का न सकेत मिलता है, न आभास । घोर अन्धकार को जैसे एक अनमोल-अद्वितीय-अवर्णनीय लौ प्रकाशित (उजागर) कर रही हो । चेतना की वह किरण चरम सीमा है, आखरी सीढी है । पहाड की वह अन्तिम चोटी है, दो खाइयो के बीच । दो गहरी खाइयाँ है, अब यहाँ निर्णय करके कूदना है । चाहे अब 'हम' परमात्मा मे मिल जाये या फिर ससार मे लौट आये । यही सलोनी घडी समाधि मे अटकी रहती है ओर 'हम' परमात्मा मे घुलता चला जाता है । ससार छूटता जाता है ।

'हम' मे अनेकत्व और बाहुल्य का भाव है ('मैं' मे एकत्व और सकीर्णता का) हम को एकोऽहम् बहुस्याम् की ललक है, सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय, सर्वोदय की भावना मे लीन, 'धीमहि धियो यो न प्रचोदयात् ओ३म्' ।

'हम' मे कर्त्तृत्व का भाव नही है । उसकी निगरानी, नजर-भर, रहती है और उसकी सत्ता का आधार रहता है । 'हम' है, बस उसका अस्तित्व है । प्रकाश है । काम करनेवाले प्रकाश मे काम करते हैं । वे जैसा भी काम करे, उसमे प्रकाश का क्या । उसकी किसी भी प्रकार की साझेदारी (इनभोल्भमेण्ट) थोडे ही है । वह केवल साक्षी-रूप मे रहता है । काम करते है काया, इन्द्रियाँ और अन्त करण ।

'हम' से काया लटकी हुई जैसी है । एक अवलम्ब से । जैसे आकर्षण से ग्रह-नक्षत्रादि । व्याकुल चचल मन, व्यग्र चित्त, अस्थिर बुद्धि और अज्ञानी अहम् को 'हम' (Self = आत्मा) का पता नही चलता । ऐसे मन, चित्, बुद्धि और अहम् से तो कोई दुनियाबी काम भी ठीक से नही बनता । तरगित-उद्वेलित अन्त करण मे कोई बिम्ब, चित्र या प्रतिच्छाया ठीक से नही बन पाती । न वह गहराई से सोच सकता है, न हिसाब कर पाता है, न चित्र खीच सकता है । लेकिन तरगे जब शान्त हो जाती है, अन्त करण जब स्वच्छ, निर्मल तथा निर्वाक् बन जाता है, तब स्थिति के सन्नाटे मे, वह परमात्मा का नूर, वह परमात्मतत्त्व, वह 'हम' साफ-साफ झलकने लगता है । जैसे शान्त झील के जल मे पूनो का चाँद । वह साफ झलकने लगता है—किसको ? अपने कायिक मानस-पटल पर ज्ञानी 'मैं' को। (मै—जीवात्मा) ('हम'—आत्मा-परमात्मतत्त्व) (तु० सो + हम)

(स +अहम्) और तब 'मै' को पता चलता है कि उसके अन्त करण के दर्पण मे एक 'हम' प्रतिबिम्बित हो रहा है, जो उसकी काया के भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त है और जो उसका आधार है और जिसका वह अग या अश है ।

'हम' सर्वव्यापी है, पर काया मे भी तो है । कायस्थ 'हम' वह पार्थिव नही है । दैहिक नही है । लेकिन वह काया मे भी है, इसका अनुभव उसे तब होता है, जब उसके सामने एक दर्पण, एक आईना, एक ऐनक पेश होता है—धवल मानस-पटल, स्वच्छ-शान्त अन्त करण की स्थिर सतह, तल । 'हम' उसमे अपने को पाता है, प्रतिबिम्ब रूप मे । 'मै' उसमे 'हम' को पाता है बिम्ब रूप मे। स्वस्थ, स्वय प्रकाशित, स्वयम्भू । 'हम' सर्वव्यापी भी है, कायस्थ भी । 'मै' केवल कायस्थ है । काया मे समाविष्ट परमात्मा को 'हम' कहते है । काया मे सार्वभौम चेतना की बोधगम्यता को 'विवेक' कहते है । वह बुद्धि को बनाता है, निखारता है ।

'नास्ति-नाभूत्' तो फारसी मे 'नेस्त-नाबूद' है ।

'अस्ति-आसीत्' से अस्तित्व की सार्थकता है ।

सच्चिदानन्द (सत् + चित् + आनन्द) की पहली शर्त्त है सत्, अर्थात् सत्ता, अर्थात् अस्ति—अस्तित्व, अर्थात् 'है' ।

'हम' शाश्वत है, न उसका जन्म होता है, न मृत्यु । वह सर्वतोभावेन सर्वप्रकारेण मुक्त है, विभु (Ubiquitous, सर्वव्यापी, सर्वगत) है । देह के नष्ट हो जाने पर (मृत्यू-परान्त) भी वह अमृत अशान्ति-उद्विग्नता-क्षोभ को प्राप्त नही होता । देह और देही की नश्वरता क्षोभ को प्रभावित नही करती । इनका कोई जातीय सम्बन्ध नही है, इनकी कोई एकता (एकरूपता) नही है, 'मै' पार्थिव, 'हम' पारलौकिक । काया के धरातल पर, काया का परिधान या चीवर ओढे परमात्मतत्त्व काया के सरल-शान्त अन्त करण के दर्पण मे 'हम' रूप मे प्रतिबिम्बित होता है । और, उसी रूप मे जाना जाता है । वह 'मै' का मर्म है । ओर यह गूढ रहस्य भी 'मै' को तभी भासित होता है, जब वह अपनी सज्ञान बुद्धि द्वारा 'हम' को अपने शान्त-सरल अन्त करण के आईने मे प्रकाशित-प्रतिष्ठित देखता है । 'हम' के प्रकाश से ही शरीर, अन्त करण और 'मै' प्रकाशित होते है । जब 'मैं' को यह खबर मिल जाती है, इसको यह बात जँच जाती है और यह सत्य ज्ञात हो जाता है, तब वह मुक्त हो अमरत्व को प्राप्त करता है । तत्क्षण ।

हिन्दी मे मनुष्य का एक सार्थक नाम है व्यक्ति । 'व्यक्ति', अर्थात् प्रकटीकरण (Manifestation) । व्यक्ति अव्यक्त (परमात्मा) की अभिव्यक्ति है ।

'हम' हमारा वह हिस्सा है, जिसका ह्रास या हनन होता ही नही । बाकी सब अनित्य और नश्वर है ।

ऐसे तो सृष्टि मे कुश-काँटे भी विनष्ट नही होते, कुछ भी लुप्त नही हो जाता, खो नही जाता। सिर्फ रूप-गुण बदल जाते हैं। मुखौटे बदलते रहते है। इसलिए, जय सियाराम के बाद भी, राम के प्यारे हो जाने के बाद भी, मृत्यु कुछ ले नही जाती, कुछ दे नही जाती । सिर्फ काया और वातावरण और परिवेश बदल जाते हैं—सम्बन्ध टूट जाते है । लेकिन,

यह रही कहने की बात। यह मृत्यु से उत्पन्न परिवर्त्तन ऐसा सर्वग्राही होता है कि व्यक्तित्व का कुछ भी बच नही पाता। सब कुछ शेष रहकर भी कुछ भी शेष नही रहता। आदमी की पार्थिव काया मिट्टी मे मिल जाती है। काया ऐसी पूर्णत परिवर्तित हो जाती है कि वह 'मिट' जाती है। अगर कुछ भी अपने व्यक्तित्व का, अपरिवर्तित निज-स्वरूप मे बचा रह जाता है, तो वह है 'हम' परमात्मतत्त्व। मृत्यु इसका कुछ भी नही बिगाडती। किसी भी घटना का इसपर कोई असर नही आता। यह सर्वोपरि है। निर्गुण, निराकार, शाश्वत, सर्वव्यापी। समय इसका लेहन नही कर सकता, विधान इसे चाट नही सकता। किसी भी परिस्थिति मे इसपर आँच नही आने को। वह लौ, कभी जो बुझी हो, कभी जो डिम हुई हो। इसी के सहारे, इसी की रोशनी मे व्यक्ति अपनी अमरता और शाश्वतता का बोध पाता है। इसी मस्तिष्क के माध्यम से आगे बढना है, इसे छोडकर नही। इसे न 'मैं' त्याग सकता है, न 'हम' इसकी उपेक्षा कर सकता है। लेकिन, परमात्मतत्त्व का बोध तब होगा, जब मस्तिष्क नाम्नी मशीन की क्षमता, कार्यकुशलता एव दक्षता बढे। इसके लिए कुछ साधना और कठिन प्रयास चाहिये, जिससे मस्तिष्क निर्मल ओर ध्यानस्थ हो जाय। इसे दसो दिशाओ से समेटकर केन्द्रीभूत करना पडेगा। अगर प्रबल इच्छा या सच्ची लगन या व्याकुल प्रेम की बदौलत मानस लक्ष्य पर जा टिके और डिगे नही, तो परमात्मतत्त्व की तत्क्षण अनुभूति हो जायगी ओर मानस-पटल पर आत्मा का दिव्य स्वरूप स्वत भासित होने लगेगा, जिसे 'मैं' और हम' दोनो देख-पहचान सकते है, उसका अनुभव कर पा सकते हैं, तब प्रतीत होगा कि हम परमात्मा से जुडे हुए है, उसी के अश है, उसी तत्त्व के बने है। यह भी भासित होगा कि हम अपने और सभी प्राणियो के आत्मा के रूप मे एक है। जैसे, अगर बूँद अपने खारापन इत्यादि को जानकर, यह समझ जाय कि वह समुद्र का ही अश है, तो सब-की-सब बूँदे आपस मे आसानी से सम्बद्ध हो जायेगी न ? सम्बन्ध स्थापित कर लेगी न ? इस अनुभूति से 'हम' परमात्मतत्त्व से अपना अटल, अटूट और शाश्वत जातीय सम्बन्ध का बोध पा लेगे। हमारा 'मैं' और हमारे 'स्वार्थ' विलीन हो जायेंगे और हमारा व्यक्तित्व, हमारा मानस और हमारे आचार-विचार, पारलौकिक गुणो से भरने लगेंगे। हम परमात्मा के जैसा बन जाने की राह पर कितना आगे बढ सकते है ? जितनी हमारी योग्यता और क्षमता होगी, जितना सुधार हम अपने मस्तिष्क और मानस मे ला सकेंगे। हमारी पात्रता, हमारा ज्ञान, हमारी लगन और हमारा प्रेम परमात्मा को आधे रास्ते पर भी लाकर खडा कर सकता है। ओर, उसने उचित समझा, तो अपना रहस्य खोला और हमको अपना दिव्य स्वरूप देखने दिया। परमात्मा सर्वज्ञ है। वह हमको जितनी अच्छी तरह जानता है, उतना कोई भी नही जानता, 'मैं' भी नही। आत्मा और मानस से परमात्मा का सीधा और सरल सम्बन्ध है। और, इसलिए उससे साक्षात्कार सम्भव है।

'हम' (आत्मा) परमात्मा का अश-भर है, स्वय परमात्मा नही। हाइड्रोजेन-मौलिक्यूल (अणु) हाइड्रोजेन-बम नही होता। न H_2O (जल) होता है, न झरना, न

वापी, न सरिता, न समुद्र । बिल्ली स्वजातीय होते हुए भी व्याघ्र नही बन पाती । परमात्मा स्वय ज्ञान-स्वरूप है । हममे ज्ञानोपार्जन की क्षमता है, और हम कुछ जानते भी हैं। परमात्मा ने अपने अश हम' को किसी विशेष कार्य के निमित्त, किसी खास प्रयोजन से, उद्देश्य से, काया मे डाल रखा है । 'हम' उतने ही के लिए सक्षम है, जितना हमारे परिवेश मे सम्भव है । या यो समझिये कि हमारा व्यक्तित्व (काया + अन्त करण + आत्मा + मानस) (mind-विवेक) सर्वव्यापी परमात्मा मे आकण्ठ आमग्न है, भीतर-बाहर जैसे रेडियो यन्त्र प्रसारित सगीत मे डूबा रहता है । अपनी क्षमता के अनुसार हम परमात्मतत्व को अपने व्यक्तित्व के द्वारा कितना व्यक्त कर सकेंगे, यह सब हम पर मुनहसर है । देखना यह चाहिये कि हम टूटे-फूटे रेडियो है कि सही-सलामत । हम अच्छे बढिया यन्त्र है कि घटिया । हमने अपने रेडियो-सेट को ठीक ट्यून किया है कि अनजान स्टेशनो के बीच भटकने दिया है । परमात्मा का शाश्वत सगीत, अपनी सुलभ, सहज और सरल अलौकिकता के साथ रेडियो के भीतर-बाहर सर्वत्र एक-सा व्याप्त है । 'हम' (आत्मा) वह ट्राजिस्टर है जो उस सूक्ष्मतम सगीत को, अपने रोम-रोम मे सँजोने की शक्ति रखता है, हमारी काया वह एम्प्लीफायर या रिफ्लेक्टर या ट्रान्समीटर या लाउडस्पीकर है, जो हमारी उपलब्धि को प्रकट कर सकती है ।

'परमात्मा' के गुणो का फायदा जीवात्मा को कैसे मिले ?

आग का गुण है जलाना । वह पहले गर्म (हीट) करेगी, फिर जला डालेगी । लोहे को आग मे रखने से और आग का ताप बढाते जाने से क्रमश पहले लोहा गर्म होगा (आग का एक गुण लेगा), फिर वह लाल हो जायगा (आग-सा हो जायगा, आग की तरह जलाने का गुण भी उसमे समाविष्ट हो जायगा), फिर वह नर्म बनेगा (इस अवस्था मे इस्पात को आसानी से मोडा जा सकता है, पीटकर पतला, मोटा, सीधा, टेढा इत्यादि बनाया जा सकता है) । फिर, ओर अधिक गर्म होने पर, वह पिघल जायगा । आग के गुण और लोहे पर उसके प्रभाव के परिणाम को, जो जानते है, वे इसका उपयोग कर सकते हैं, और उसे अपने काम मे ला सकते है । सुख-समृद्धि का साधन बना सकते है । आग का गुण अटल है । उसका बस एक ही काम है जलाना । वह पात्र-कुपात्र का भेद-भाव नही जानती । अपना निर्धारित कर्म करती है । प्रकृति का अग्नि-सम्बन्धी यह विधान अटल है । प्रकृति के अन्य विधान भी ऐसे ही अटल है, अपरिवर्त्तनशील है । वे नही बदलते । और, इसी के भरोसे प्रकृति चल पा रही है । वैज्ञानिक अनुसन्धान भी किये जा पा रहे हैं ।

आध्यात्मिक विधान अपने प्रिन्सिपल्स (सिद्धान्त) और क्राइटेरिया (कसौटी, निकष, मापदण्ड) नही बदलता । जीवात्मा के भी अपने निर्धारित गुण हैं । उसमे नव रसो (शृगार, वीर, करुण, हास्य, रौद्र, अद्भुत, शान्त, भयानक ओर बीभत्स) की अभिव्यक्ति की क्षमता है । इनका मध्यम मार्ग ग्राह्य है । इनका अतिक्रमण खतरनाक हो सकता है । इन्द्रियो के द्वारा जीवात्मा ससार को अपने अन्त करण मे समेटता है, ससार को अपने बाहर से भीतर ले आता है, मस्तिष्क मे (मानस-पटल पर) ससार का प्रति-

बिम्ब बनाता है । और, उस प्रतिबिम्ब का अवलोकन करता हुआ मैं उसको (ससार को) भोगता है। मैं उस प्रतिबिम्ब से जितना ही गहरा सम्बन्ध स्थापित करेगा, उतना ही उसके अन्त करण को उद्वेलित और झकृत करेगा । मानस-पटल पर ससार अगर सदा चित्रित रहे, तो फिर उस Canvas (चित्रफलक) पर कोई चित्र नही उभर पाता । परमात्मा उसे नही दीखता। अगर मानस घुल जाय और ससार का चित्र मिट जाय, तो ऐसे निर्मल मानस-पटल पर परमात्मा (आत्मा, 'सेल्फ') प्रतिबिम्बित हो सकता है। यह अलौकिक प्रतिबिम्ब स्वत• प्रकट हो जाता है, क्योकि वह सर्वव्यापी होने के कारण वहाँ पर भी रहता ही है । उसे न कही से आना पडता है। न बुलाना पडता है । वह तो सदा सर्वत्र उपस्थित रहता ही है । चुनाचे, मानव के मानस-पटल पर उसका अकित रहना अनिवार्य है । लेकिन, मानस-पटल पर वह चित्र प्रतिबिम्ब-रूप मे रहता है, परमात्मा (आत्मा, सेल्फ) का प्रतिबिम्ब जीवात्मा का आत्मा जितना अधिक ज्योतिष्मान् होगा और मानस-पटल जितना अधिक स्वच्छ (निर्मल), उतना ही स्पष्ट होगा वह अलौकिक दिव्य प्रतिबिम्ब। इस प्रतिबिम्ब का इन्द्रियो से कोई सम्बन्ध नही है। आत्मा की चेतना अपना परमात्मस्वरूप उस प्रतिबिम्ब मे देखकर गद्‌गद हो जाती है । उस स्वस्थ अवस्था मे, आनन्द के अतिरेक मे ससार छूट जाता है । चेतना भी चली जा सकती है । सिर्फ बिम्ब (परमात्मा) और प्रतिबिम्ब (परमात्मा) रह जाते है, धवल मानस-पटल पर। प्रतिबिम्ब (मानस मे) जीवात्मा के लिए कोई बन्धन पैदा नही करता। इसलिए, उस तटस्थ भावभूषित अवलोकन से पुनर्जन्म निर्धारित नही होता । कोई दाग नही पडता । कोई रग नही चढता । कोई बात नही बिगडती ।

चाय के कप मे भी हवा है । लेकिन, उसे क्या मालम कि वह आँधी-तूफान की जाति की है ? लोटे मे भी गगाजल है । पर, उसे क्या पता हिमालय और उसकी उपत्यका का ? जीवात्मा मे भी परमात्मा (सेल्फ', 'हम') है । पर, मात्र आशिक रूप मे । सर्वाशत नही । क्योकि, सर्वव्यापी के लिए सब स्थान, ब्रह्माण्ड चाहिये । सर्वज्ञ के लिए एक मानव की एक खोपडी-भर पर्याप्त नही है । एक खोपडी से जुटा आत्मा (परमात्मतत्त्व) बस, अपने देहस्थ अन्त करण के दायरे मे ही सर्वज्ञ है । समष्टि के अनन्त विस्तार की सर्वज्ञता उसे कैसे प्राप्त हो सकती है ? वह सर्वशक्तिमान् भी नही हो सकता । क्योकि, उसकी सारी शक्तियाँ, उसकी काया, इन्द्रियाँ और उसके अन्त करण पर ही आधृत है । जीवात्मा के गुण-कर्म प्राकृतिक नियमो से निर्धारित है। वह उसके ऊपर (बाहर) नही जा सकता ।

जीवात्मा का एक महान् गुण यह है कि वह अधिकाधिक विकास प्राप्त करता हुआ परमात्मा मे मिलकर एकाकार हो जा सकता है। इस प्रगति की प्रक्रिया मे 'जीव' ('मैं') मिट जायगा और आत्मा पूर्णत निरावरण हो परमात्मा मे मिल जायगा। 'जीव' वह है, जो त्रिगुणी माया मे लिपटा हुआ पार्थिव शरीर मे 'आत्मा' के सयोग (सहारे) से ससार मे जन्म पाता है ।

'आवृत्ति' का इलजाम, जुर्म या तोहमत सहकर भी क्या प्रभु की याद एक ही बार आकर ठमक जायगी ? और, अगर एक ही बार मे बात बन गयी होती, तो विचार बार-बार क्यो आते ? इसमे आत्मा एक ऊर्जामात्र है, एक ऐसी ऊर्जा (?), जिसमे चेतना हो (चेतन अस्तित्व, सत्ता या चेतन-तत्त्व, भाव)। उसका गुण है तटस्थ होकर द्रष्टाभाव से जीवात्मा का आधार बने रहना। उसपर अच्छे बुरे का आरोप नही हो सकता। सस्कार नही पडते, दोष नही मढे जा सकते। जैसे, पानी का काम है, प्यास बुझाना। वह साधु की प्यास भी बुझायगा, डाकू की प्यास भी। आग का काम है जलाना। वह सन्त का शरीर भी जलायगी, लण्ठ का भी। चेतन होने के कारण आत्मा अपने परमात्म-तत्त्व स्वरूप का अवलोकन कर सकती है। यही उसकी खास खूबी है। सृष्टि मे अति-क्रमण नही चलता। विधान से उसका अवश्य अन्त हो जाता है। बहुत सोचकर देखा—क्या इससे अच्छी सृष्टि बन सकती थी ? उत्तर पाया—कदापि नही।

भगवान् का कोई दोष नही। 'खेत खाये गदहा, मार खाये जोलहा।' माया भी आवश्यक थी, नही तो समष्टि से सृष्टि नही निकल पाती। इन्द्रियाँ भी जरूरी थी, नही तो काया का काम नही चलता। स्वतन्त्रता भी अनिवार्य थी, नही तो मानवता कैसे सवरित होती ? मानव को सारे (समस्त) ससार की भेट दी, प्रकृति का उपहार दिया। अब आप चहारदीवारियाँ उठाये, स्वतन्त्रता लूटे, हत्यायें करे, तो आप जानें।

प्रतिज्ञा करनी भी ठीक नही। आदमी की ताकत ही कितनी ? भविष्य को कौन जान पाया है ? जिद्द ठीक नही। इसके पीछे 'अहम्' (आब्सटिनेसी) खडा झाँकता है। अन्याय न सहना दूसरी बात है।

शरीर	**मन**	**प्राण**
हार मान भी सकता है। (सत्यत, स्वागत, स्पष्टत) प्रकट मे या ऊपरी तौर से वह समर्पित होता-सा, हार मानता-सा दीख पड सकता है।	यदि नही हार माने, नही झुके।	तब जीवात्मा सुरक्षित रह सकता है। उबर सकता है। उसका ह्रास (हानि) नही होगा।

?? सम्भवत मसूर, अरस्तू (Aristotle) और वैसे ही दूसरे लोगो ने अपनी अनमोल जिन्दगी को बचा लिया होता, अगर वे थोडा और सावधान, सतर्क, व्यावहारिक तथा तनिक कम हठी (दुराग्रही) रहे होते (??)। लेकिन ईसामसीह, असमद, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गान्धी प्रभृति महामानवो को क्या कहा जाय ! जिन्होने मृत्यु को मुस्करा कर गले लगाया !

स्थूल शरीर=शरीर (की) रचनात्मक पर्त्त ? या भाग (Anatomical Layer or Part)

इसके शारीरिक और मस्तिष्कीय कार्य।

सूक्ष्म शरीर=शारीरिक क्रिया-(वृत्ति)-त्मक तल या हिस्सा। इसके शारीरिक एव मानसिक (मस्तिष्कीय) काम।

कारण शरीर=मनोवैज्ञानिक सतह अथवा अश। इसके शारीरिक तथा मानसिक व्यापार।

प्रत्येक (तीनो) अवस्था मे शरीर ही माध्यम (साधन) और यन्त्र है, किसी भी उपलब्धि के लिए। 'शरीर', यानी समूची काया, जिसके अन्तर्गत मस्तिष्क भी है। शारीरिक रचना (Anatomy), शारीरिक क्रिया (Physiology), सचार (सचरण Circulation), मनोवृत्ति (Psychology), तन्तुजाल और मस्तिष्क (तन्त्रिका या स्नायु-तन्त्र Nervous System), अन्त स्राव (हार्मोन Hormones)।

स्थूल शरीर—जुडा हुआ है चेतन मस्तिष्क (Conscious mind) से।
सकल्पित (विवेचित, अभिप्रेत) (Voluntary)
कार्य { क्रिया (Act)
चिन्तन (Thought)

सूक्ष्म शरीर—जुडा हुआ है उपचेतन (अवचेतन) (Sub-consciousness mind) से।
अनैच्छिक (Involuntary) (अनजाने मे)
कार्य { क्रिया (Act)
चिन्तन (Thought)
तु० स्वप्न (Dream)

कारणशरीर—जुडा हुआ है मानस (Psyche) और अतिचेतन (Super-conscious mind) से, जहाँ सस्कार बनते-मिटते हैं।
हमारे मानस (Mind) का परम ऊर्जस्व (समर्थ) (शक्त) (Potent) (Energized) सूक्ष्म (Subtle) और सगूढ (गुप्त) (Hidden) भाग, जो हमारी कामना-(वासना) (-पूर्त्ति) के लिए बीडा उठाता है तथा सम्यक् उद्दिष्ट (भलीभाँति उद्देश्य-युक्त) या उपयुक्त (Utilized) किये जाने पर चामत्कारिक (विस्मयजनक) कार्य सम्पन्न करने मे समर्थ है, एव यह हमारे स्वप्नो तथा एषणाओ (Dreams and Desires) की पूर्त्ति मे सहायता भी करता है।
क्रियात्मक (Functional), सरचनात्मक (structural)।

सूक्ष्म शरीर—क्रियात्मक शारीरिक रचना का वह भाग, जो अवचेतन मानस (Sub-conscious mind) की मनोवृत्ति (Psychology) से जुडा है।

जाग्रत् स्थिति	सुषुप्ति-स्थिति	अचेतन स्थिति
(Wakeful state)	(Sleep state)	(Unconscious state)
अनैच्छिक कार्यव्यापार	स्वप्न (Dreams)	
(Involuntary functions)		

स्थूल शरीर—सरचनात्मक शारीरिकी (Structural Anatomy)
मानस की ऐच्छिक स्थिति (Voluntary state of mind)
सूक्ष्म शरीर—क्रियात्मक शारीरिकी (Functional Physiology)
मानस की अनैच्छिक स्थिति (Involuntary state of mind)
कारणशरीर—मनोवृत्त्यात्मक (मानस) (Psychological), अतिचेतन (Superconscious), मूलवृत्त्यात्मक मनस्तल (Instinctual state of Mind) हमारे व्यक्तित्व का आधार (Basis of our personality) है, अत अन्तिम (परम) नियति (Ultimate destiny) भी है।

परमात्मा का पता क्यो नही चलता ?

उसका पता चलना चाहिये था। दाल-भात के कौर की तरह। वह सृष्टि के शुरू से ही सदा सर्वत्र रहता आया है। सर्वव्यापी। वह मेरे भीतर है, मेरे बाहर है, हममे है, तुममे है, अतीत-वर्त्तमान-भविष्य मे है। यहाँ है, वहाँ है इर्द गिर्द मे है, दसो दिशाओ मे है, ब्रह्माण्ड के एक-एक कण मे है। जहाँ जो कुछ भी देखते-सुनते हैं—छूते-सूँघते हैं, जानते-सोचते हैं, सब जगह वह है। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति मे वह है। जीवन-मृत्यु मे, बचपन-यौवन-जरा मे, व्यक्त-अव्यक्त मे, चराचर मे, चेतन-अचेतन मे। कोई स्थान नही, कोई समय नही, जहाँ वह न हो। वह मेर पॉकेट मे भी है, मेरे मन मे भी, मेरे दिलो-दिमाग मे भी।

न उसका ओर है, न छोर, न केन्द्र है, न परिधि। आजतक जितने लोग जनमे, सबके लिए परमात्मा का अस्तित्व ऐसा हो रहा। कस्तूरी की सुगन्ध व्याप्त थी, सदैव सर्वत्र। मृग उसे जिन्दगी-भर ढूँढता रहा और कस्तूरी पाने की तमन्ना लिये मर भी गया। एक मामूली-सी हसरत थी उसकी, एक साधारण-सा अरमान। वह भी पूरा न हुआ। वह मृगतृष्णा के पीछे भी दौडा था—दहकते हुए रेत पर प्यास से तडपते मृग ने माया का मरूद्यान देखा था, स्वच्छ जल की वापी-सी वह मरीचिका थी, जिसे प्राण-न्योछावर कर भी वह न पा सका था। ऐसी थी वह मायाविनी। वह विडम्बना, जो पास ही मे था, उसका पता नही चला। जो दिखा, वह पाया न गया। काश, कोई मृग को समझा पाता। अनमोल जीवन तन्द्रा और भ्रान्ति मे व्यर्थ विनष्ट हुआ।

परमात्मा का तात्त्विक सर्वांगीण अस्तित्व ही उसका पता लगने नही देता। वह सदैव है, सर्वत्र है, अद्वितीय है। अनन्त है। निर्विकार, अपरिवर्त्तनशील। जो सदा एक-सा रहा, बदला ही नही। ऐसे परमतत्त्व का पता न चल पाना कितना हास्यास्पद है।

लेकिन, सच कहता हूँ कि इसमे कोई भी व्यतिक्रम अथवा असगति नही है। जरा सोचिये तो सही। आदमी अगर पूर्णरूपेण स्वस्थ रहे, सदा, सर्वदा, तो क्या उसको स्वास्थ्य का पता चलेगा ? अगर प्रत्येक मनुष्य पूर्णरूपेण जीवन-पर्यन्त स्वस्थ रहे, और अगर ऐसी ही सर्वव्यापी स्वस्थावस्था सदैव इस धरातल पर सृष्टि के प्रारम्भ से कायम रही हो, तो क्या आदमी कभी 'स्वास्थ्य' को देख-पहचान सकेगा ? उसका अनुभव

कर सकेगा ? स्वास्थ्य तब भी था, अब भी है, लेकिन कहाँ है ? मशीनो को बनते-बिगडते देखकर, पार्ट-पुरजों को टूटते-घिसते देखकर, तब कोई दार्शनिक सोचेगा, शरीर भी तो मशीन (-वत्) ही है। इसके अवयव भी खराब हो सकते थे। तब वह ईजाद करेगा एक नया शब्द—'बीमारी (खराबी)', और तब वह तर्क करेगा कि देखते है बीमारी शरीर को व्यापती नही, इसलिए शरीर बीमार नही पडता। उसके पाट-पुरजे टूटते घिसते नही, वह बिगडता नही, 'खराब' नही होता। तो फिर, किस अवस्था मे रहता है ऐसा शरीर ? अब उस दार्शनिक को फिर एक नया शब्द ढूँढना पडेगा। स्वास्थ्य। स्वास्थ्य का अस्तित्व है और होगा, लेकिन सर्वत्र सदैव अखण्ड होने के कारण वह दृष्टि-गोचर न होगा, अगम्य, अवर्णनीय रह जायगा।

स्वास्थ्य की अनुभूति किसको होती है ? जो कभी बीमार पडता है। या जिसे कही बीमारी मिलती है।

दु ख तो था ही। लेकिन, गौतम बुद्ध ने उसे पहचान लिया, दूसरो को उसका ठीक पता नही चलता था।

बच्चे को माँ का पता होता है, ममता का नही।

आकाश का पता न वैज्ञानिको को चलता है, न आध्यात्मिको को। क्यो ? इसलिए कि वह सर्वत्र है, सदैव है, एक-सा, सूक्ष्म है। किसी पूर्वज ने उसे किसी अन्य रूप मे न पाया। इसलिए घबराहट है कि वह है भी कि नही ?

समुद्र के तल पर रहनेवाले जीव को समुद्र को थाह या विस्तार का क्या पता ? और, जो सागर की अनन्तता को न जान सका, वह सागर को क्या जाने। जो Mermaid, जलपरी (मत्स्य-कन्या) जल-थल को देख सकी है, वही सागर को पहचान-भर पायी हो। अँतडियो के भीतर मल के बीच पडे जोक-परिवार कीडे को आदमी का क्या पता। कूप-मण्डूक को दुनिया की क्या खबर, जानकारी ?

बीमारी से स्वास्थ्य पहचाना जाता है। हैवानियत से इन्सानियत पहचानी जाती है। दानवता देवता को दिखला देती है। मानव से महामानव, आत्मा से परमात्मा, जीव से सृष्टि और अन्त से अनन्त की पहचान होती है। मृत से अमृत, दु ख से आनन्द, घृणा और स्वार्थ से प्रम। जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति से सावभौम चेतना। भूत-वर्त्तमान-भविष्य से निगमागम।

इन्द्रियो के द्वारा परिवर्त्तनशील नश्वर ससार को पकड कर ही उसके सहारे मृत्यु से अमरता की ओर, अन्धकार से आलोक की ओर, दु ख से आनन्द की ओर और परतन्त्रता से स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होना ओर लक्ष्य प्राप्त करना सम्भव है।

चला पृथ्वी अचला भाति। भूकम्प पृथ्वी की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। हृदय पलने से कब्र तक चलता रहता है, पर किसको उसका पता लगता है। जब कल की रफ्तार मे किसी किस्म की गडबडी हुई, हृदय की धडकनो ने जब अपनी शृ खला तोडी, तब उसका पता चला। जो था ही, पर जिसके होने का भान न था। आँधी आयी, तो हवा का पता चला। नश्वरता मिली, तो शाश्वतता को पाया।

परमात्मा के ओर छोर का पता नही—न स्पेस (Space) मे, न टाइम (Time) (दिक्काल) मे। उसमे कोई फर्क नही पडता । वह अपरिवर्त्तनशील है । सृष्टि पूर्णत परमात्मा मे ऐडप्टेड (अनुकूलित, रूपान्तरित) हो गयी है प्रारम्भ से ही । इस सर्वांगीण अनुकूलता, अनुरूपता के कारण उसे परमात्मा से ओत-प्रोत वातावरण का पता नही चलता । स्वास्थ्य के वातावरण को बीमार पडकर ही जाना जा सकता है । लेकिन परमात्मा मे परिवर्त्तन होता नही, कोई परमात्मा के वातावरण से हटकर अलग नही हो सकता, इसलिए उसे परमात्मा का पता नही चलता। जो सर्वत्र फैला हुआ है, वह ब्रह्माण्ड मे मिलता नही । जो सदैव है, उसे किसी समय देख नही पाते । जो अद्वितीय है, वह पहचान मे नही आता। जो इन्द्रियो के परे है, उसकी अनुभूति के लिए उपकरणो का अभाव है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से वैसा-का-वैसा ही है। उसके इतिहास-भूगोल को मनुज के बाप-दादो, पूर्वजो, ने भी न बखाना, न उसे जाना, कि बाल-बच्चे उस उपाय या माध्यम से उस परमात्मा के विषय मे कुछ भी जान पाते ।

सुतरा, अपने ही (अवर्णनीय) गुणो के कारण बेचारा परमात्मा बेगाना (अगोचर) रह गया । किसी का दोष नही । भवितव्यता कह लीजिए ।

नासमझी-नादानी समझ लीजिये । जिसमे कोई परिवर्त्तन होता ही नही, जिसका न ओर है न छोर, न आदि, न अन्त, न दिखाई पडता है, न सुना जाता है, और जो बिल्कुल अपने ही जैसा है, अद्वितीय, और जो अनन्त आकाश के विस्तार (Space) मे और चिरस्थायी समय (Time) मे सर्वत्र सदैव व्याप्त है, उसको कैसे पहचाना जाय । दैत्यो-दानवो ने देवताओ को प्रत्यक्ष किया । आततायीपन करुणा-सागर का भान कराता है। भर जिन्दगी पेट मे अण्टशण्ट कोचते रहते हैं, अँतडियाँ सब कुछ बर्दाश्त करती रहती हैं । किसी को कुछ भी पता नही चलता । जब अत्यन्त अन्याय पर आमादा हो पडते हैं, तब अँतडियाँ अपने को रीभिल (Reveal स्पष्ट) करती हैं, अपनी ओर ध्यानाकर्षित करती है । पेट चलता है, बोलता है, ममोड पैदा होती है, चैन चला जाता है ।

हैवानियत की हद मे भगवान् भासता है । शाश्वतता के कारण—न परमात्मा का प्रारम्भ पकड मे आता है, न उसका अन्त । सर्वव्यापी होने के कारण उसके आयामो का पता नही चलता, उसका 'होना-पन' अस्तित्व (एग्जिस्टेन्स) प्रत्यक्ष हो पाता है, क्योंकि चारो ओर विस्तार है, दृश्य है (विस्तृत) उससे अलग उसका 'होना' होता नही, जो उसके अलग (एलाहदा, फर्क) व्यक्तित्व का पता चले ।

अद्वितीय होने की वजह से वह पहचान मे नही आता । हमने जो कुछ भी, जिस तरह भी जाना है, उन सबसे वह भिन्न न्यारा है । किसी भी तरह का नही है । तो इस न्यारे-पन का अपने मे (को) (से) कोई भी बिम्ब नही बन पाता । वह कैसा न्यारा-पन है, उससे भी बिल्कुल ही अनभिज्ञ है । फिर, किस हुलिया, किस व्याख्या, किस चित्र, किस शब्द के सहारे उसको पहचान पायें ?

असीम, अनन्त, होने के कारण उसकी सीमाओ का भी पता नही चलता। वह निराकार है। इसलिए, न उसकी कोई शक्ल है और न कोई स्थूल शरीर।

उसकी सूक्ष्मता इतनी गहन और व्यापक है कि न वह इन्द्रियगम्य है और न बुद्धिगम्य। इसलिए, आदमी अपनी इन्द्रियो की मदद के लिए किसी भी मशीन, कल-पुरजे या वैज्ञानिक उपादानो का व्यवहार करे, वे सभी बेकार साबित होते है। न वह चश्मे लगाने से, न दूरबीन (Microscope), न खुर्दबीन से, न एलेक्ट्रोनिक-माइक्रोस्कोप के जरिये दिखाई पडता है। क्योकि, अन्तत मशीने इन्द्रियो की सहायता-भर ही कर सकती है, और इन्द्रियाँ अव्यक्त का पता नही पा सकती।

निर्गुण, निर्विकार होने के कारण वह सिर्फ एग्जिस्ट करता है, विद्यमान है। उसकी एक स्थिति है। वह भी स्वय अपने मे ही—स्वस्थ। न उसमे कोई घटना घटती है, न उसमे कोई परिवर्त्तन होता है। वह एकरसता न बुद्धि की पकड मे आती है, न इद्रियो की, न यन्त्रो की। सृष्टि उसी मे से होती है, उसी मे लय, प्रलय, उद्भव (उदय), अस्त। वही सबका उद्गम-स्रोत है। प्रकृति वही से जगती है। वही जनक-जननी, वही पालक-पोषक और वही विनाशक महाकाल है। उसका बहुरुपिया व्यक्तित्व अव्यक्त मे से व्यक्त होता रहता है, बनता-मिटता रहता है, सागर की लहरो की तरह। अनेक रूपो मे व्यक्त होने के कारण यह पता नही चलता कि उसका वास्तविक रूप कौन-सा है और वह अन्तत अनदेखा-अनसुना रह जाता है। कहते है, चौरासी लाख योनियाँ है और यह सब भगवान् के सहारे व्यक्त, सृष्ट और प्रस्फुटित हो पाती है। पर, इनके अन्तस्तम मे परमात्मतत्त्व खो गया-सा लगता है।

विपरीत गुणो की भरमार को अपने मे समाविष्ट कर परमात्मा मनुष्य के अन्त करण को द्विविधा मे डाल देता है। आदमी ? हक्का-बक्का! चकाचौध! हैरत मे! और, अपने-आप सभी कुछ करके अपना आप वह यो छिपा लेता है।

निर्लिप्त होने के कारण वह किसी के फन्दे मे भी नही पडता। न किसी जाल मे! न जजाल मे।

ज्ञान के सहारे वह ज्ञात होता है, भक्ति के सहारे भासित। पुकारने से प्रकट होता है, पुक्की मारने मे प्रत्यक्ष। वह प्यार के महल मे करुणा की कमन्द पर चोरी से आता है।

वह ठग-बटमार नही है। उसके कानून कठिन और अमिट हैं। वह दया का अजेय गढ, किला है। प्रेम की कोमल कली। उसी के भरोसे धर्म की ध्वजा लहराती है, निर्बलता चैन से सो पाती है।

प्रकृति उसका मुखौटा है। सृष्टि उसकी कला। विज्ञान उसका विधान है।

इतने सारे 'गुणो', 'अवगुणो' से परिपूर्ण और साथ ही पूर्णत रिक्त परमात्मा अगर पहेली रह जाय, तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?

घट-घट-व्यापी प्रभु प्रभुता से नही, प्रेम से पकडे जाते है। बुद्धि मे नही, मन मे उतरते हैं। दिमाग मे कम, दिल मे अधिक। गर्मियो मे तक्र चढाने से झलक भी जायँ, मान भी जायँ, तो तर्क से तबाह हो जाते है, घबराते हैं। परमात्मा और जीवात्मा का आत्मीय सम्बन्ध चिरन्तन है। प्रेम और प्रेमास्पद के बीच की लीला आनन्द के हिडोले पर किलकारियाँ मारती है, झूमती हैं निरापद, निश्शक, निश्चेष्ट, निर्वाक्।

देखो, मै स्वजन-परिजन, अपना-पराया, सब छोडकर अकेला तुम्हारे साथ आया हूँ। नदी का आर-पार दिखलाई नही पडता। इस निस्तब्धता, निर्जनता मे लहरो का कलरव, शैवाल की भीनी सुगन्ध और मन्द-मन्द (बहती) वायु का शीतल मृदुल स्पर्श गवाही देते रहेगे अनन्त काल तक—कि तुम्हे पाकर मै सब कुछ पा गया था—कि मैने तुम पर भरोसा किया है (था) कि मैंने अपना सब कुछ सौप दिया है (था)। जहाँ नदी ने मोड ली है (मुड गयी है) वहाँ—पता नही लगता, किस किनारे—किस रेत पर, किस झौआ और काँस के झमाट वन मे किसी अजनबी की चिता जलकर राख बनती जा रही है। एक अस्तित्व मटियामेट होता जा रहा है। कही कोई मर गया होगा। आ जाओ। लौट मत जाना। जरा सोचो तो, नदी कितनी गहन और गहरी है, यात्रा कितनी लम्बी और विकट है। रात कैसी घनी है। मैं बिल्कुल अकेला हूँ। मेरी तरी एकदम खाली है। बेडा (नाव) बिरमा कर मैंने आरजू की, मिन्नते की। अब आओ भी सही। दूर का सफर है। तिमिर ऐन्द्र-जालिक है। राह है रहस्यमयी, भेदभरी। तुम साहिल को जानते हो, होनी और हस्र को पहचानते हो। मै हदस और हहर गया हूँ। मै हतोत्साह और हतप्रतिभ हो गया हूँ। लो, पतवार सँभालो। कूच करे। रवाने हो। घडी प्रहर) तिलस्मी है। गन्तव्य बहुत गूढ है। जाना बहुत दूर है।

जब से गायत्री मन्त्र की रचना हुई, मानव प्रकाश को याचना करता रहा। न जाने कितनी-कितनी अनगिनत प्रार्थनाएँ चौदह लोको (भूलोक, भुवलोक, स्वर्लोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्य-या ब्रह्म लोक और अतल, नितल वितल, गभ-स्तिमान् तल, सुतल पाताल) को पार करती हुई परमात्मा तक पहुँची होगी। कितने-कितने करोडो-करोड लाग अन्धकार को उन्नीचते रहे, उलीचते रहे। पर न वह लुप्त हुआ, न उसने कलेवर बदला। उफ्! कैसा है यह गहन अँधेरा, यह गहरी अज्ञानता, यह काली रात! जो मिटाये न मिट सकी! जो हटाये न हट सकी!

कितनी सहस्राब्दियाँ (मिल्लेनिअम) बीत गयी! कितने पुश्त (पीढियाँ) गुदश्त हुए (गुजर गयी)!

दृश्य पर प्रकाश की पर्त्त पड जाती है, तो दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है, लेकिन दृश्य से भिन्न प्रकाश को पहचानना नामुमकिन है। देखनेवाले प्रकाशित दृश्य देखते है, प्रकाश नही। जाननेवाले प्रकाश को अच्छी तरह जानते है, लेकिन उसे दृश्य से अलग कर दिखला नही पाते। जिज्ञासु ज्ञानियो का मुँह ताकते है। ज्ञानी आँख बचाते है। बगले झाँकते हैं। पूछनेवाले जान नही छोडते। कहनेवाले बोल नही पाते।

प्रकाश है, जो ऐसा कहते हैं, ज्ञानी है । वह सौगन्ध खाने के लिए तैयार है । गगा के बीच, हाथ मे 'तुलसी-तम्बा' लेकर कहने को राजी है । पर, दृश्य और प्रकाश को एक-दूसरे से हटा कर दिखला नही पाते । जिज्ञासु मानने को तैयार नही । हाँ, दृश्य देखते है सही, पर उससे क्या मतलब । हम तो प्रकाश देखना चाहते है । तूलिका 'लाइट-शेड' दिखलाती है । चित्रकार गाढा और हलका रग दिखला देता है । बादल सूर्य को ढक देता है । पूर्ण सूर्य-ग्रहण मे दिनकर की 'धूप' लुप्त-प्राय हो जाती है । पर, 'प्रकाश' ? उसका पता नही चलता । दृश्य 'आलोकित' होता है, वह अन्धकार मे अदृश्य भी हो जाता है । पर, 'प्रकाश' ? उसकी 'पहचान' नही पाते ।

आँखें खुली थी । सामने ट्यूब-लाइट जल रही थी । बिजली का पखा चल रहा था । इर्द-गिर्द पडी सभी वस्तुएँ दिखाई पड रही थी—अपने-अपने रग मे, अपने-अपने आकार-प्रकार के साथ । दृश्य था । ज्योति थी । हवा थी । पर, 'प्रकाश' कहाँ था, 'बिजली' कहाँ थी ?

आँखे मूँद ली । दृश्य गायब हो गया । पर, आँखो के भीतर 'प्रकाश' उभर आया । पलको के आर-पार वह था, अवर्णनीय, दृश्य से भिन्न । आँधी आयी । बिजली 'फेल' हो गयी । लाइट 'औफ' हो गया, रोशनी गुम हो गयी । आँखे बन्द थी । पलके लगी थी, पूर्ववत् । पर, आँखो के अन्दर प्रकाश लुप्त हो गया । पलको के पर्दे के पार, चिलमन के पीछे । अन्धकार छा गया । आँखें खोल ली । दृश्य था, 'अन्धकार' मे डूबा । 'प्रकाश' भी कही होगा ही । वर्ना 'दृश्य' दीखता कैसे ?

दृश्य-प्रकाश के मिश्रण मे आँखे बन्द कर लेने से दृश्य चला गया । प्रकाश रह गया । परमात्मा से सिक्त प्रकृति के प्रति तटस्थ और ध्यानस्थ हो जाने से विचार-तरगो से रिक्त मानस-पटल पर दीन (परमात्मा) झलक जाता है, जब दुनिया दूर हट जाती है। कही अजगैब (परोक्ष) से ज्ञान कौंध जाता है । भगवान् उमड आता है । परमात्मा के विषय मे जो कुछ भी कहा गया है, वह सब एक धारणा है, परिकल्पित है, कल्पना है, मनुज के मगज की उपज है । कुछ भ्रामक भी है । ऋषियो का स्वानुभव, अवतारो का प्रत्यक्षानुभव सत्य हो सकता है । दार्शनिको का तर्क भी सही (ठीक) हो सकता है । लेकिन, इतना तो मानना ही पडेगा कि परमात्मा को पहचानने के लिए भी इन्द्रियो (व्यक्त) तथा अन्त करण (अव्यक्त) की आवश्यकता अनिवार्य रूप से रही है । और यह एक अनुभवजन्य सत्य है कि इन साधनो पर पूरा भरोसा नही किया जा सकता । अगर ये साधन सत्य को पूर्णत प्रत्यक्ष कर पाते, तो—

श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य मत न भिन्नम्
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम्

वाली बात सामने न आयी होती । परमात्मा एक है । उसकी बात भी एक है, उसका धर्म भी एक है । फिर, धर्मो मे भिन्नता और वैमनस्य क्योकर आये । अगर

कुल अवतारो ने, सभी धर्म-प्रवर्त्तको ने, परम पुरुष को नजदीक से देखा था और सिर्फ उसी की बात सुनकर वह जस-का-तस सन्देश मानवता को (तक) पहुँचाया था, तो फिर धर्म मे विकल्प कैसे घुसा, आध्यात्मिक धारणाओ मे फर्क कैसे पडा। आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मफल, भाग्य, धर्म इत्यादि धारणाओ मे अनेक मत कैसे आ खडे हुए ? द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, आदम और ईव, स्वर्ग और नरक, डे ऑव जजमेण्ट, शैतान, पाप और पुण्य, धार्मिक व्यवधान इत्यादि जैसे आवश्यक मसलो का हल आजतक क्यो नही निकला ? सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, प्रकृति-पुरुष, सृष्टि इत्यादि की समस्याएँ हल क्यो न हुई ? शकराचार्य, बुद्ध, महावीर, रामानुज, माधवाचार्य, महात्मा गान्धी, अरविन्द, रामकृष्ण, मीरा, रजनीश, गुरुगोविन्द सिंह, इत्यादि महात्माओ ने एक ही बात क्यो न कही ? धर्मो को आपस मे क्यो टकराना पडा ? इष्ट देवताओ की भरमार कहाँ से आ धमकी ? अभीष्ट क्यो नही दिखा ? वेद, कुरानशरीफ, बाइबिल और त्रिपिटक मे एक ही बाते क्यो नही लिखी गयी है ? मत-मतान्तरो का आविर्भाव कैसे हुआ ? धर्मगुरु क्यो आपस मे टकरा गये ? 'सोऽहम्' कहनेवालो ने यह न सोचा कि परमात्मा सृष्टि करता है, उसने ब्रह्माण्ड की रचना की है, और हम एक चीटी भी नही बना सकते। वह अन्धड-तूफान पैदा करता है, हम जोर से फूंक भी नही मार सकते। वह शाश्वत है, मेरी मौत रोके नही रुक (ती) सकती। वह सर्वसमर्थ है, और हम आततायियो के फेरे मे पडे सहायता की याचनाये कर रहे है। वह सारी सृष्टि चलाता है, और हम अपनी घरवाली को, अपने चेलो को, भी नही चला सकते। वह सर्वज्ञ है और हम अपने चोला से भी अनभिज्ञ है। वह सर्वव्यापी है और हमको साढे तीन हाथ जमीन भी मुश्किल से मिलती है। घर से भी निकाले जाते है, समाज से भी तिरस्कृत होते है।

तो ऐसा प्रतीत होता है कि सब धर्मो मे, धर्मग्रन्थो मे, जो सामान्य (कॉमन) (सिमिलर) (समरूप), बाते कही गयी है, जो निचोड है, जो सूत्र-कथ्य है, वही परमात्मा की वाणी है, बाकी सब आदमी के मस्तिष्क का तिकडम है।

पापाय परपीडनम्।'
ढाई अक्षर प्रेम का।'

इत्यादि निचोड हुए। सागर के मोती। प्रभु ने शायद थोडा ही कहा होगा। हमने बहुत अधिक सुन लिया। परमात्मा से निर्गत प्राणी-मात्र के प्रति प्रेम और करुणा का जो सतत प्रवहमाण पावन स्रोत है, उसमे जब कभी बाधा डाली जाती है, बाँध बाँधने की चेष्टा की जाती है, वही पाप का उदय होता है, गडबडी शुरू होती है। उसके विधान पर जब व्यक्ति, समाज या सरकार अपने कानून का लेप चढाने लगती है, उसे अपने द्वारा बनाये गये जिरह-बख्तर मे जकडने, कैद करने की कोशिश करती है, तब वही से दुर्भाग्य का प्रादुर्भाव होता है। परमात्मा के अमर सन्देश मे जब

मानवीय 'राय-विचार' का जहर घोला जाता है, तब अमृत भी विष बन जाता है। खुदा के बन्दे जब विवेक की नुक्ताचीनी करने पर कमर कस लेते है, तब वही से विक्षिप्तता पनपने लगती है।

सूर्य की जीवनदायिनी किरणो की राह पर जैसे ही कोई दीवार खडी की जाती है कि तत्काल, वही, उसी जगह, प्रकाश के बदले काली छाया, भूत की भाँति आ खडी हो (ती) जाती है।

सूरज, पेड और पेड की छाया। अमिताभ की अबाध रश्मियो को रोककर, समेटकर, जब पेड खडा होता है और उन्हे आगे बढने नही देता, तब उसकी पीठ के पीछे, उसकी जड मे, अन्धकार स्वत आ उपस्थित होता है। यह एक अकाट्य विधान है। इसमे दोष सूर्य पर या उसके प्रकाश पर, आरोपित नही किया जा सकता है, पेड के मत्थे ही मढा जा सकता है।

हवा, पानी, आकाश, अन्न, जमीन, भूख, स्वतन्त्रता, प्रेम, आनन्द इत्यादि जहाँ अवरुद्ध होते है, जहाँ सत्य, करुणा, न्याय और मैत्री का गला घोटा जाता है, जहाँ प्राण का हनन होता है, जहाँ अपरिग्रह के बदले अपहरण होता है, जहाँ दीनता, हीनता, दु ख-दैन्य इत्यादि को बढावा मिलता है, जहाँ अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष के साधन शरीर की देखभाल ठीक से नही की जाती है, जहाँ स्वार्थ का साम्राज्य होता है, वहाँ परमात्मा का विधान ठिठक जाता है और प्रतिक्षेप (रिक्वायल) करने लगता है। तब करुणा के बदले कठोरता, प्रेम के बदले घृणा, जीवन के बदले मृत्यु, स्वास्थ्य के बदले बीमारी, स्वतन्त्रता की एवज पर-बन्धन, परवशता, सुख की जगह दु ख, शान्ति के स्थान पर व्याकुलता का आलिगन मिलता है। तब बाहु-पाश प्राप्त होता है धृतराष्ट्र का।

प्रभु 'अद्वितीय' है या नही, यह अलग बात है। सच अथवा झूठ। लेकिन, उसको 'अद्वितीय' मान लेने से कुछ कठिनाइयाँ आ उपस्थित होती है। आप-से-आप 'अद्वितीय' की परिकल्पना मे यह कठिनाई अन्तर्निहित (इनहेरेण्ट) है।

'अद्वितीय' वह है, जो सिर्फ अपने जैसा ही है। उसके ऐसा कुछ भी नही है। जो कुछ भी इन्द्रियो ने ज्ञान प्राप्त किया है, जो कुछ भी अन्त करण ने सोचा, समझा, जाना है—कभी भी, किसी तरह, सुनकर, देखकर, पढकर, अपने से, अपने पूर्वजो से—वह सब उस 'अद्वितीय' की न व्याख्या कर सकते है, न कल्पना। लाख नेति-नेति कहे, लेकिन परमात्मा की शक्ल-सूरत का कुछ भी पता नही चलता। कोई बिम्ब मानस मे, प्राणो मे, उतरता ही नही। कोई (चित्र) अक्स, कुछ भी, ज्ञान-भक्ति-कर्म के ऐनक पर, खिचता ही नही, तो ऐसा है वह 'अद्वितीय'। अब इस 'अद्वितीय' से कही इत्तफाकन मुलाकात भी हो जाय, तो उसे कैसे पहचानेगे ? कैसे जान पायेगे कि परमात्मा से मिले थे ?

परमात्मा को 'अद्वितीय' की मान्यता देकर हमने बिना माँगे मुसीबत मोल ली। प्रभु को पहचानने का हर रास्ता हमने बन्द कर दिया न ? दर-दर मारे-मारे फिरते है,

रोते-चिल्लाते है, तडपते है, सुखद नीद हराम करते है, कोसते है कि हाय ! प्रभु ! दर्शन क्यो नही देते ?

दर्शन दे घनश्याम राम
मोरी अँखियाँ प्यासी, रे।
मन्दिर मन्दिर मूरति तेरी
कबहुँ न देखी सूरत तेरी
युग बीते, नही आयी मिलन की
पूरणमासी, रे !
द्वार दया का जो तुम खोले
पचम सुर मे गूँगा बोले
अन्धा देखे, लॅगडा चलकर
पहुँचे काशी, रे !

पचम सुर मे गूँगा बोल सकता है, अन्धा देख भी ले, लँगडा काशी भी पहुँच जाय, यह परमात्मा की दया से (और अब डॉक्टरी इलाज से भी) सम्भव है। लेकिन, भक्त-शिरोमणि की आँखे चाहे रो-रोकर फूट भी जायँ, छाती पीटते-पीटते फट भी जाय, पर उन्हे 'अद्वितीय' के दर्शन होना नामुमकिन है। उन्हे 'विष्णु', 'शकर', 'ब्रह्मा' के दर्शन भी उपलब्ध हो, पर 'अद्वितीय' का साक्षात्कार नितान्त असम्भव है। 'अद्वितीय' सामने आकर अगर एलान भी करे, डके पर चोट भी दे, 'तुलसी-तम्बा' लेकर गगाजी मे कसम भी खाय, कि मै परमात्मा हूँ, तो उस वक्तव्य का, आश्वासन का, क्या भरोसा ? कैसे आश्वस्त हो !

वह 'अद्वितीय' नृ-सिंह हो सकता है, फ्रीक (अनूठा, अनोखा) हो सकता है, अगिया-बैताल हो सकता है, अष्टावक्र हो सकता है, पर वह 'अद्वितीय' परमात्मा ही है, यह कैसे जाना जायगा ? भ्रम, धोखा, कपट, इल्युजन, डिल्युजन, हैलुसिनेशन, धोखा, विभ्रम, भ्रान्ति, माया इत्यादि-इत्यादि को तो छोड ही दीजिये।

'अद्वितीय' सचमुच स्वय आ उपस्थित हो, फिर भी उसके दर्शन से हम वचित ही रह जायेगे। ऐसे सच पूछिये, तो प्रकृति की हर चीज 'अद्वितीय' है। स्रष्टा ने कभी हू-ब-हू एक-सी कोई दो चीजे कही भी कतई नही बनायी। अब अगर परमात्मा 'अद्वितीय' है, तो उसे सृष्टि की इस सर्वव्यापी विभिन्नताओ मे, इस अनन्त रस मे (इस डाइभर्सिटी मे), क्यो नही खोज ले ? और, आसानी से मिल भी ले उससे और उसे पा भी ले।

जो सर्वव्यापी है, उसको अनन्त असीम ब्रह्माण्ड के किस किनारे ढूंढने जायँ ? वह 'सर्वव्यापी' है, तो हम मे भी है, पडोसी मे भी है, आस-पडोस मे भी है, घर मे भी है।

जो सर्वत्र है, वह यहाँ भी है। जो सदैव है, वह दैव अब भी है। जो सबका है, वह अपना भी है। जो करुणासागर है, वह ममता मे भी है, दया मे भी है। जो सर्वज्ञ है, वह मानवीय मस्तिष्क मे भी है। जो सक्षम सर्वशक्तिमान् है, वह आदमी की उपलब्धियो मे, बल-पौरुष मे भी है।

जो आनन्द-घन है, वह मुझमे भी है। जो सौन्दर्य का स्रोत है, वह दृष्टि मे भी है, शैशव मे भी है।

जो परम हितकारी, कल्याणकारी है, वह मित्रता मे भी है, सुव्यवस्थित समाज मे भी है। जो बिना माँगे देता है, वह प्रभु-विश्वास मे भी है। आस्था मे भी है।

जो सृष्टिकर्त्ता है, वह विविर-शिश्न शिवता मे भी है, दाम्पत्य-प्रेम मे भी। जो पालनकर्त्ता है, वह जनक-जननी की भावनाओ मे भी है, उसकी योग्यता मे भी है।

जो शान्ति बिखेरता है, वह अचाह और त्याग मे भी है। जो सृष्टि की रग-रग मे रमा हुआ है, वह समष्टि मे भी है।

जो ज्ञानी सदाशिव है, वही गुरु मे भी है। जो अन्तर्यामी है, वह अपने अन्त करण की पृष्ठभूमि मे भी है। जो अतीत और भविष्य मे है, वही वर्त्तमान मे भी है।

जो जीवन मे विद्यमान है, वही जन्म और मृत्यु के छोर पर भी है।

जो निर्भयता मे है, वही निर्ममता और अहिंसा मे भी है।

शकाएँ न बटोरिये, वे जान खा जाती है। उधेड-बुन, ऊहापोह, तर्क-वितर्क से कही अच्छा है अविश्वास। सम्पुष्ट और सुदृढ नास्तिकता भी रूढिग्रस्त और सन्देह-सिक्त उद्वेलित मस्तिष्क से कही अधिक अच्छी है। भगवान् जहाँ पाया जा सकता है, वहाँ न खोजकर हम क्यो मुश्किल मे पडे ? जहाँ हम पहुँच नही पा सकते, वहाँ जाकर खोजने का प्रयास क्या मूर्खता नही ? अपने मे जो भगवान् है, जो घर मे, पडोस मे, गाँव-शहर मे है, उन्हे छोडकर साकेत जायँ ? क्षीरसागर मे डूबे ? स्वर्ग सिधारे ? अपने मे जो भगवान् है, उनके गुणो को क्यो नही प्रस्फुटित होने दे और उनके दर्शन अपने अन्त करण को क्यो नही करने दे और उनका ज्ञान अपने अन्तर्यामी परमात्मतत्त्व को, 'हम' को, सेल्फ को, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, शाश्वत, अपरिवर्त्तनशील, अद्वितीय, 'मैं'-भाव को क्यो नही होने दे ?

उपत्यका (तलहटी) के मेले मे जो खो-हेरा गयी, उस माला को फेनिल समुद्र, उत्तुग पहाड, बीहड जगल और तप्त रेगिस्तान मे खोजा करे ? दसो इन्द्रियो मे से जो भी काम आये, अन्त करण का जो भाग भी मदद को धाये, जिस किसी उपक्रम

और उपकरण का सहारा मिल सके, उसकी मदद से परमात्मा को जीवन मे प्रत्यक्ष करना चाहिए। योग्यता और भक्ति के पीछे प्रभु दीवाना बना फिरता है। प्रेम को वह 'ना' नही कह सकता। अज्ञान, अविश्वास, छल-कपट, ईर्ष्या-डाह, असत्य और पोगापन्थी इत्यादि से वह प्राप्त नही होता। आशुविश्वास (क्रेडुलिटी) (अन्धविश्वास) का तिमिर, प्रकाश के विकीर्ण होने मे, द्युतिमान् या दीप्त होने मे बाधाएँ, व्यतिक्रम, विघ्न डाला करता है।

'छोटी-सी बात, न मिर्च-मसाला'। जो आपके अन्त करण को धूमिल कर दे, विवेक को कुण्ठित कर दे, उस शैतान से बचकर रहिये। जो आपके अन्त करण को सत्य, शिव, सुन्दरम् से जाज्वल्यमान कर दे, उसे सतत अपनाइये, वही कभी आपके विवेक के स्वच्छ दर्पण मे आपका परमात्मतत्त्व झलक जायगा। समुद्र पकड मे नही आ सके, तो बूंद भी तो पकडिए। अमृत की एक घूंट भी तो पीजिये। सूरज उगा नही, तबतक दीप तो जलाइये। बात कुछ एक-सी है। पैमाने बडे-छोटे है। सम्पूर्णता-खण्डता की बात है। अश सर्वांश का बच्चा है, मुन्ना-मुन्नी। परमात्मा को कोई परमात्मा बनकर ही जान सकता है। असीम को ससीम कैसे घेर सकता है?

पहले वट-वृक्ष की काली छाया। वह काली-कलूटी छाया, जो वट के नीचे आकर लेट गयी है। किसके कारण, किसका दोष? न प्रकाश का, न छाया का। वह वटवृक्ष ही गुनहगार है, जो प्रकाश की राह मे आ खडा हुआ है। वही मुजरिम है, जिसने सतत प्रवहमाण पावनी गगा-सी परमात्मतत्त्व की धवल धारा बाँधकर अमन-चैन को सैलाब मे डुबाया है।

जहाँ प्रकाश-धूप देखिये, वह सूर्य का, जहाँ सूर्य देखिये, वह प्रभु का। जहाँ छाया देखिये वह पेड की, जहाँ अँधेरा देखिये, वह रात का। और, जहाँ पेड देखिये, वह प्रभु का, और जहाँ रात देखिये, वह भी प्रभु की। पेड का फल। छाया की शीतलता। रात की नीद। विश्राम। और, आकाश मे तारो का टिमटिमाना और चाँद का विहँसना। धूप का ताप—गर्मी मे, जाडे मे। पार्थिव सृष्टि का प्राणाधार। भगवत्प्रदत्त। भगवत्-नियन्त्रित। धूप और छाँह, प्रकाश और तिमिर—वे दोनो स्वत आप-से-आप चमकते-दमकते है। एक-दूसरे की तुलना, विरोध और वैषम्य मे।

किसको अच्छा कहे, किसको बुरा। उन सबके पार्श्व मे, नीव मे, परमात्मा की अहैतुकी कृपा का अवलोकन कीजिये। आनन्द। शान्ति।

उस कृपा को रोकने, हडपने और बटोरने की चेष्टा मत कीजिए। बस इतनी-सी बात है, उसे बहने-फैलने दीजिये। विधान को। आपने कही अपनी अज्ञानी बुद्धि लगाई कि गुड गोबर हुआ।

चीटी तो बना ही नही सकते और चले है सृष्टि चलाने, प्रकृति को पराजित करने। धन्य है आप, जो अपने बाप को भी श्रेय और गौरव नही देते। उन्हे ललकारते है।

भगवान् की अनुभूति के लिए प्रत्येक क्षण, हर एक परिस्थिति पर्याप्त है। घट-घट मे निरन्तर व्यापनेवाला, कण-कण मे व्यक्त, वह परमात्मा किसको, कब और कैसे अपनी झलक दिखला देगा, यह कहना सम्भव नही। फिर भी, मनुष्य की यह कमजोरी है कि वह अपनी इन्द्रियो के द्वारा भगवान् को पकडना चाहता है। जिसे आँखो से नही देखा, उसपर विश्वास नही जमता। परमात्मा इतना सूक्ष्म है कि वह इन्द्रियगम्य नही है। एक मामूली-सा उदाहरण देता हूँ। घर मे अनेक वस्तुएँ पडी हो, पर अगर वहाँ घोर अन्धकार हो, तो कुछ भी नही दीखता। वर्णान्ध (कलर-ब्लाइण्ड) सब रगो (वर्णो) को नही जान पाता। बहरा ध्वनि (आवाज) नही सुन पाता। जिसे हम एक स्वस्थ शरीर कह सकते है, वह भी अपनी स्वस्थ इन्द्रियो द्वारा मीमित ज्ञान ही उपलब्ध कर पाता है। कुत्ते की घ्राणशक्ति मनुष्य की सूँघने की शक्ति से अधिक तीव्र होती है। ईल-मछली की बेजोड तीव्र घ्राणशक्ति को लीजिये। औरतो के कान मर्दों के कान से अधिक पतले होते हे। कोई भी मनुष्य 0 से 30,000 डेसीबेल तक की आवाज ही सुन सकता है। कुत्ते उससे अधिक सुन सकते हैं। सुतरा, ऐमी सीटियाँ (व्हिस्ल्स) बनायी गयी है, जिन्हे बजाकर पुलिस अपने कुत्ते (सधा हुआ पुलिस-हाउण्ड) को बुला ले सकता है, जबकि उसकी आवाज कोई आदमी नही सुन सकता। सीटी बजानेवाला भी नही। सीटी, जो 20,000 सायकिल्स पर मेकेण्ड प्रायिकता (फ्रिक्वेन्सी) से अधिक की आवाज उत्सर्जित (एमिट) करती है, वह कुत्तो को बुलाने के काम मे लायी जाती है। इन्सान जितनी तरह के रगो को देख और पहचान सकता है, वह जानवरो के लिये सम्भव नही। उदाहरण के लिए, बाघ सिर्फ उजले-काले की परिधि मे ही देखता है। उसकी दुनिया रगीन नही होती। उसका रजत-पट सदा रोशनी-अँधेरा, धूप-छाँह, उजले-काले रग की तस्वीरो से ही बनी होती है (तुलना के लिए—कुछेक आदमी सिर्फ एक ही तरह का रग देख पाते है) (मानोक्रोमेट्स)। आदमी का श्रवण-क्षेत्र (परिधि, सीमा) अक्सर 16 से 30,000 (सायकिल) प्रति सेकेण्ड तक होता है और वह इसी ध्वनिवेग-प्रायिकता (साउण्ड वेभ फ्रिक्वेन्सी) पर आवाज सुन सकता है। मनुष्य की वाणी के श्रवण-सम्बोध (औडिटरी परसेप्सन ऑव ह्यूमन स्पीच) के लिए प्रति सेकेण्ड 1000 से 3000 सायकिल का श्रवण-क्षेत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तुलना के लिए—रेडियो सगीत-स्वर। नाद (साउण्ड) की तीव्रता (इनटेनसिटी) व्यक्त (मेजर और एक्सप्रेस) करने के लिए डेसीबेल-प्रणाली नोटेशन का व्यवहार होता है। कानाफूसी करीब 10 से 20 डेसीबेल तीव्रता की आवाज होती है। साधारण बातचीत मे 60 डेसीबेल, बन्दूक छूटने की आवाज लगभग 140 डेसीबेल, मोटर का हॉर्न 100 डेसीबेल। सुनने के लिए और जीवन मे नित्य दिन काम आने के लिए नाद (साउण्ड) का इतना ही क्षेत्र (रेज) पर्याप्त है।

अल्ट्रासाउण्ड इनक्लूड्स ए भेरी वाइड रेज ऑव फ्रिक्वेन्सी मेजरिंग फ्रॉम 20,000

अप टू 500,000,000 सायकिल्स पर सेकेण्ड । मोस्ट ऑव इट इज बियोण्ड रिकॉगनिशन ऑर हियरिंग-रेंज ऑव ह्यूमन ईयर नेभरदिलेस दीज अल्ट्रासाउण्ड बीम्स आर युज्ड फॉर मेनी परपसेज इनक्लूडिंग ट्रीटमेण्ट ऑव भेरियस डिजीजेज । स्पीड ऑव साउण्ड-वेभ्स । तुलना के लिए—सुपर-सोनिक जेट्स, लाइटनिंग ऐण्ड थण्डर ।

आदमी भी 400 एम/डब्ल्यू टू 750 एम/डब्ल्यू प्रकाश (लाइट) तक की वस्तुएँ देख सकता है । रोशनी की वे सब किरणें, वे सब रंग, जिनका तरंग-दैर्घ्य (वेभ-लेंग्थ) 400 एम/डब्ल्यू (भायलट) से कम या 750 डिग्री एम/डब्ल्यू (रेड) से अधिक हो, वह नहीं देख पा सकता । वे सब उसकी आँखों की शक्ति के बाहर हैं । नजर के दायरे के परे हैं । इन्द्रियों की परिधि के परे । आँखों से ओझल । जो दिखायी पड रहा है, उसका तरंग-दैर्घ्य (वेभ-लेंग्थ) बदल दिया जाय, तो वह दिखलायी पडने की जगह सुनायी पडने लगेगा और व्युत्क्रम (वाइस वर्सा), तुलना के लिए, फोनोलैन्सीओग्राफी, ग्रामोफोन इत्यादि ।

तुलना के लिए, जो लोग चाय-आस्वादन-वृत्ति (टी टेस्टिंग प्रोफेशन) में हैं (टी-टेस्टर), उनकी जिह्वा, स्वाद लेने, की शक्ति तीव्र है ।

पेट या लीवर खराब होने पर, या बुखार के बाद, खाना तीता (बीटर) लगता है ।

हमारी इन्द्रियों का दायरा सीमित है । बिलकुल सीमित ।

हाँ, प्रशिक्षा (ट्रेनिंग) पाकर वे कुछ अधिक सूक्ष्म बनायी जा सकती है। फार मोर एफिसिएण्ट, मोर एक्यूरेट ऐण्ड वाइड परसेप्सन (तुलना के लिए, कारडिएक औसकलटेशन बाइ ट्रेण्ड मेडिकल स्टुडेण्ट ऑर पर्सनेल) ।

सूझ-बूझ कुछ हद तक बढायी जा सकती है । विद्युत्-तरंग, ताप तरंग, विद्युत्-चुम्बकीय या चुम्बकीय तरंग, ध्वनि-तरंग, रेडियो और टेलिविजन-तरंग, ये सभी तो हैं, पर वे क्या दिखलाई पडते हैं ?

बल या ऊर्जा का गुण या व्यक्तीकरण (मेनिफेस्टेशन) भर ही तो उनकी पहचान रह जाती है । ऐसी शक्ति या ऊर्जा को कौन जानता-पहचानता है ? उसके अव्यक्त (एब्सट्रैक्ट) (अनमेनिफेस्टेड) रूप का किसने अनुभव किया है ?

जिसने प्रकृति को बनाया, समस्त सृष्टि का सर्जन किया, प्रकृति के नियम-कानून का निर्माण किया, त्रिगुणात्मक माया को गढा, न सिर्फ 'ज्ञान' नामक वस्तु को पैदा किया, बल्कि ज्ञानोपार्जन करानेवाले यन्त्र मस्तिष्क (माइण्ड), अन्त करण का भी निर्माण किया, उसकी अनुभूति कैसे हो ? ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, रहा है या जाना गया है, वह सभी परमात्मा के जैसा नहीं है । परमात्मा सब कुछ से भिन्न है । कितना भिन्न, किस प्रकार से भिन्न, यह सब भी मालूम नहीं (तुलना के लिए, ध्वनि-तरंग प्रकाश और ताप की तरंगों से भिन्न है, तथा ऊर्जा के एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में रूपान्तरण । तुलना के लिए, साउण्ड ब्लास्ट्स) ।

ताप ⇄ प्रकाश

नाद ⇄ ताप आदि

(तुल्य—दीपक राग) (तुल्य—मसाल, लाल तप्त, रेड हॉट तथा श्वेत तप्त, ह्वाइट हॉट, लौह) (प्रज्वलित चिराग, इनकैनडेसेण्ट लैम्प्स)। फिर, उस परमात्मा को कैसे पहचाना जाय। ह्वेन दि साउण्ड इज भेरी लाउड इनडीड (इनटेनमिटी ओभर 120 डेसीबेल्स) इट कैन बी फेल्ट ऐण्ड मे कौज पेन (तुलना के लिए, कारडिआक मर्मर्स ऐण्ड थ्रिल्स) (ऑल्मो तुलना के लिए—साउण्ड ब्लास्ट्स)।

औडिटरी नर्व कनटेन्स मोर दैन 30,000 एलेक्ट्रिकल सरकिट्स।

कॉकलिआ मे फीड इन थाउजेण्ड्स ऑव एलेक्ट्रिकल मेसेजेज। इट्स दि टास्क ऑव दि ब्रेन टू अनस्क्रैम्बल दिस डाटा ऐण्ड कनभर्ट इट इनटू इनटेलिजिबुल साउण्ड। मैन हियर्स विथ हिज ईयर्स बट इन हिज ब्रेन।

जिसने सृष्टि का प्रारम्भ किया, उसका जनक बना, 'समय' का शरीर गढा, उसकी शुरुआत की, वह कैसे जाना जाय ?

जिसने न सिर्फ मुर्गी बनायी, न सिर्फ अण्डा बनाया, बल्कि उस कोष को बनाया, जिससे अण्डा का बनना प्रारम्भ होता है। और, उस कायदे-कानून को बनाया, जिसकी आज्ञा पर, जिसकी राह पर चलकर, वह एकमात्र (दृष्टि से न दिखायी पडनेवाला) सूक्ष्मवीक्षकीय (माइक्रोस्कॉपिक) कोष सृष्टि के चाक पर अण्डे की शक्ल अख्तियार करेगा। और, उस अण्डे को भी प्रकृति की हुनर चूजे मे और फिर मुर्गी मे बदलती चली जायगी। उस पौटर को, जिसने न सिर्फ बरतन बनाये, मूर्त्ति बनायी, पर मिट्टी भी बनाया, आवा बनाया, आग बनायी, आग की गर्मी बनायी, मिट्टी का रग बनाया। मिट्टी को तपकर कडी होने की शक्ति दी। आग को प्रज्वलित रखने के लिए ऑक्सीजन बनाया, पानी बनाया, फर्मा (मूल्ड) बनाया और (मूल्ड) बनानेवाले काठ को भी बनाया, उस कुम्हार को, उस मूर्त्तिकार को 'बरतन' या 'मूर्त्ति' कैसे जान पाये। मूर्त्तिमान् करने के पहले ही जिसने अपने मस्तिष्क मे मूर्त्ति गढ ली थी, 'मूर्त्ति' उस मानव को, उस मानस को कैसे देख पाये ?

जिसने अणु-परमाणु को अस्तित्व दिया, उनके लिए नियम बनाये, ऊर्जा की सृष्टि की, सोचने की शक्ति (थॉट पावर ऑर प्रोसेसेज) प्रदान की, जो शाश्वत है, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सब कुछ का निर्माता है, उसे आदमी कैसे जान पाये ?

आदमी प्रकृति के नियमो को जान पा सकता है, क्योकि 'गौड इज सटल बट नॉट मेलिशस' (आइन्स्टाइन)। पर, सृष्टि के (और अपने) उद्गम-स्रोत को, उस परमात्मा को, उस अपार सर्वसमर्थ शक्ति (?) को अपनी शक्तियो से कभी न जान पायेगा। अपनी (उस परमात्मा की) अहैतुकी कृपा (या कानून) से भगवान् अपने को मनुष्य के ज्ञान की छोटी परिधि मे उतारता है, तभी मनुष्य को उसका रच-मात्र भान हो पाता है। आदमी का दायरा इतना तग है कि भगवान् के विस्तार तक का अनुभव उसे नही हो सकता, भगवान् तो पकड के बाहर है ही।

वह स्फुलिग, जो सब कुछ का प्रारम्भ है, ज्योति का भी, तेल का भी और दीपक का भी, उसे दीपक भला क्या जाने ?

अपने माता-पिता को तो पूरी तरह जानते नही। प्र-पितामह के विषय मे निरे अनभिज्ञ है। फिर, परमात्मा के विषय मे क्या छान-बीन करे। ऐसी तो है इन्सान की दुर्दशा।

परमात्मा अगर हमारे सामने आ खडा भी हो, तो हम उसे कैसे पहचानेगे ? इन्द्रियाँ वहाँतक पहुँच नही सकती। मस्तिष्क उतना विकसित नही कि उसकी गहराई नाप ले। है वह ऐसा कि जैसी वस्तु न देखी गयी, न सुनी गयी, न सोची जा सकी। ऐसा न्यारा कि उस न्यारेपन तक का हमको अन्दाज नही। फिर, कैसे उसको पहचाने ? 'घट-घट व्यापत राम रमैया' पर हमको कैसे अनुभूति हो उसकी ?

अगर हम पर कृपा कर वह किसी का रूप धर आ खडा भी हो, तो उससे क्या भगवान् की अनुभूति हो सकेगी ? वह निर्गुण हमारी इन्द्रियो के द्वारा पहचाने जाने के लिए सगुण बन सकता है, पर हमारी पकड मे नही आ सकता। देवता का रूप धर, इष्टदेव की शक्ल मे, वह दर्शन दे भी जाय, तो क्या ईश्वर की उतनी ही सीमा होगी ? सोने के पात्र मे धरा गगाजल क्या अलकनन्दा का विस्तार बता सकेगा ? क्या उस माध्यम से गगा को हम जान सकेगे ? अर्जुन को अपना महाकाल विराट् रूप दिखलाया था, प्रह्लाद को नृसिह-रूप, रामकृष्ण को माँ काली का रूप। पर, क्या भगवान् का वही रूप है ? जितनी हमारी कूबत होगी, जितनी शक्ति, जैसी योजना, जैसी जरूरत, उतना भर उसकी अनुभूति हो सकेगी। भक्ति से, प्यार से वह आ बँधेगा। पर, उसका विस्तार, उसकी अपरम्पार महिमा, उसका तेज, उसके सिवा कौन जान सकता है ? बडे आदमी की बात उनके निकटतम हित-मित्र जाने, उनके सगे-सम्बन्धी जाने। जो उनसे दूर है, वह क्या जाने। कैसे जाने ? दूसरो से ही न ? जिसकी आप कल्पना भी नही कर सकते, उसे आप कैसे पहचानेगे ? साधु महाराज या औघड बाबा के आने पर तो बडी व्यस्तता होती है, लोग काम-धाम छोडकर उनके पीछे लग जाते है। अगर भगवान् प्रत्यक्ष आता रहे, तो लोग अपनी इच्छाओ, कामनाओ की दरख्वास्त ही सुनाते रह जायेंगे। काम-धाम सब रुक जायगा, बन्द हो जायगा।

हमको, आपको या जिस किसी को भी भगवान् की जो अनुभूति मिल सकी है, उसने अर्जुन को जो रूप दिखलाया था, उसी की तरह तो है। एक दृश्य ही तो था ? और, दृश्य मे भिन्नता होना अनिवार्य है। आपने कभी सुना है कि भगवान् ने एक ही दृश्य, हू-ब-हू एक ही, किसी भी दो व्यक्तियो को ठीक एक समय पर दिखलाया। वह जिस रूप मे मिलता है, उस रूप पर विश्वास नही होता कि भगवान् भी कही ऐसा होगा। किस रूप को आप खोजते है, आपको पता ही नही। आपकी कल्पना के जैसा रूप आपको दिखा जाते है।

विराट् रूप, जो अर्जुन को दिखलाया और वह रूप या अनुभव, जो स्वामी शरणानन्दजी, स्वामी सत्यानन्दजी, स्वामी भूमानन्द तीर्थ, या आचार्य रजनीश को हो रहा है, उसमे कोई फर्क नही। जिस तरीके से जिसको चाहे, अपना ज्ञान दिला दे। भगवान् ने अपने तक पहुँचने के लिए कुतूहल दिया है। जितनी शक्तियाँ (फोर्सेज) है (तुल्य—विद्युत्, ताप, चुम्बकत्व, नाद इत्यादि), उनमे हम किसी की सूरत नही देखते, किसी का वास्तविक

रूप नही जानते । वे क्यो है, कैसी है, किस चीज की बनी हुई है, यह सब कुछ भी नही जानते । फिर भी, उनपर आस्था रखते है और उनके कारनामो से, उनके नियमो से उन्हे पहचानते है । साधु कौन है और लम्पट कौन है, इसे भी उनकी करतूतो से ही जानते है । फिर, उसी से 'साधुता' तथा 'लम्पटता' का बोध करते है । फिर, भगवान् की जो सृष्टि है, उसे देखकर भगवान् पर आस्था, विश्वास क्यो नही कर पाते ? जिस समय विद्युत् (एलेक्ट्रिसिटी) इत्यादि का ईजाद नही हुआ था, उस समय क्या एलेक्ट्रिसिटी नही थी ? जिस वक्त मिट्टी के दीये बलते थे, एलेक्ट्रिक बल्ब की बात किसी के ध्यान मे, सपने मे भी नही आयी थी, उस वक्त विद्युत् (एलेक्ट्रिसिटी) के गुणो का वर्णन जो करता, उसे लोग पागल ही तो कहते और उसपर विश्वास करते क्या ? गैलीलियो (1564—1642) की दुर्दशा सत्यानुभूति के लिये ही तो हुई ? महात्मा गान्धी, ईसा, क्यो मारे गये ? आज भी भगवान् के विषय मे चर्चा करनेवालो को बहुतेरे लोग मूर्ख ही समझते है । जब ऑक्सीजन, हाइड्रोजन का अनुसन्धान नही हुआ था, उस वक्त हवा कहाँ थी ? अब भी वायु कहाँ है ? शीतल हवा बहती है, झीनी-झीनी हवा बहती है, अन्धड-तूफान, झझावात, सभी तो आते है, पर वह 'हवा' कहाँ पर है ? कैसी है ?

ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन को देखते नही, पानी को देखते है, बादल को देखते है— आसमान मे झीनी मलमल की चादर-सा, फिर दूध-दही के लेप-सा, फिर काले-काले बादल बिजली मे खेलते है । नाना आकार धरते है । फिर, बरस जाते है । फिर, वह बर्फ भी बन जाता है । ओले की वर्षा होती है । उन सबके बीच छिपा हुआ वह ऑक्सीजन और हाइड्रोजन कहाँ है ? इतने बडे रेल के इजिन को भाप बनकर चलाता है । पर, वह है कहाँ ? सबका अन्तिम (परम) (अल्टिमेट) आधार (तुलना के लिए, ब्राच का मेन ट्रक—ट्री का ग्राउण्ड—ग्राउण्ड का पृथ्वी—पृथ्वी का कासटेलेशन—कासटेलेशन का ब्रह्माण्ड—ब्रह्माण्ड का ?—सबका केन्द्र सम्भवत वात, पित्त, कफ) ।

निर्गुण और सगुण भगवान् मे कुछ ऐसा ही फर्क होगा । वह निर्गुण गुणातीत परमेश्वर भक्तो के लिए ऐसे रूप धर सकता है, जिसे लोग अपनी इन्द्रियो से देख सके । वरन् उसकी कैसे अनुभूति हो ? जितने शब्द जानते है, जितना भर कल्पना कर सकते है, उतने दायरे मे गूँगे की तरह कहते है—वह कोई फोर्स या शक्ति या ऊर्जा (इनर्जी) होगा । पर, वह तो 'शक्ति' और ऊर्जा का बनानेवाला शिल्पी (?) है । फिर, वह न ऊर्जा है, न बल, वह कल्पनातीत है ।

छह अन्धे और हाथीवाली कहानी याद आती है । जिसकी पकड मे जो आया, उसने हाथी को वैसा ही समझा, समझाया और अपने इस विश्वास पर डटे रहे । यह भगवान् की ही कृपा है कि हमारा मस्तिष्क उसके बारे मे सोच भी पाता है । हमारे कुतूहल की जननी वही है । ससार के दु ख, यहाँ के सघर्ष भी वही बनाता है कि इन्सान उस जगन्नियन्ता की ओर कभी मुडे भी तो, उसको पाने के योग्य भी तो अपने को बनाये । बुरे या अच्छे दोनो ही तरह के कर्मो की एक दिन समाप्ति होती ही है । मध्यम मार्ग से वे जितनी ही दूर होगे, उनकी उतनी ही जल्दी समाप्ति होगी । अच्छे

आदमी का भी अन्त होगा, बुरे आदमी का भी। शरीर पार्थिव है और प्रकृति के नियमो मे आबद्ध है। अन्त करण और आत्मा आध्यात्मिक नियमो से जकडे हुए है। अष्टावक्र भी धर्मात्मा हो सकते है। पुण्यात्मा का शरीर भी सड-गल सकता है। समाज के कानून जैसे साधु पर लागू होते है, वैसे ही डाकू पर। इन अलग-अलग नियमो का कर्मक्षेत्र एलाहदा, अलग-अलग है। इनके बीच सम्भ्रम (कनफ्यूजन) उत्पन्न कर हम अपने को और भगवान् को कोसते क्यो रहे ? शरीर को स्वस्थ रखने के लिये स्वास्थ्य का नियम पालन करना चाहिये। सामाजिक जीवन सुखमय हो, उसके लिये समाज को सुधारना चाहिये, मामाजिक नियमो को बदलना चाहिये। आध्यात्मिक नियमो के द्वारा हमारा अन्त करण, हमारी अन्तरात्मा ईश्वर के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करती है। अन्त करण की शुद्धि से हम अच्छे नागरिक बनते है और हमारा शरीर भी सुधरता है। एक का दूसरे पर तो असर होगा ही। दुनिया मे जो भी घटना घटती है, अपना असर छोड जाती है। जितनी बडी घटना होगी, उतनी ही गहरी छाप उसकी पडेगी। होमियोपैथिक दवा की भाँति घोल (सॉल्यूसन) जितना तनु (डायल्यूटेड)होगा, उतना ही उसके असर मे फर्क होता जायगा, लेकिन असर तो होगा ही—वर्ल्ड इभेण्ट्स क्ा सॉलभेण्ट या डायल्युएण्ट है समय (टाइम) या काल। अवश्यम्भावी को कोई रोक नही मकता। जैसे-जैसे ममय बीतता जायगा, घटित कर्म या इभेण्ट्स ह्विच हैभ हैपेण्ड टाइम रूपी डायलुएण्ट मे डायल्यूट होते जायेगे, लेकिन उनका कुछ-न-कुछ असर या रिजल्ट (फल) होगा ही। समयान्तर मे वे समाप्तप्राय हो जायेंगे या बीज की भाँति अनुकूल परिस्थिति पाकर फूलने-फलने लगेगे। एलोपैथिक मिक्स्चर की तरह चाहे डायल्यूट होने से उसका असर घट जायगा या होमियोपैथिक दवा की तरह जितना बेशी डायल्यूमन होगा, उतना ही अधिक असर होगा।

एभेण्ट्स—सॉल्यूट। टाइम—सॉलभेण्ट। सॉल्यूसन ऑव एभेण्ट्म इन टाइम।

अपने को परमात्मा मनवाने की कोशिश करना बेतमीजी नही तो और क्या है ?

जैसे अथाह अनन्त ममुद्र के किनारे नाव ने लगर डाल रखा हो। और, वह लगर (नौबन्ध) (मूरिंग्स) साहिल को इस तरह चिमटकर पकडे हुआ हो कि जैसे किमी विशाल पेड की जडे जमीन के कणो को पकडे रहती है कि जिसमे नाव वह न जाय, पेड उखड न जाय।

और जरा सोचिये, कल्पना कीजिये। कल्पना (इमैजिन) कीजिये कि अनन्त हो लगरो की सख्या। नाव तूफान के थपेडे खा रही हो। उत्ताल तरगे उसे डुबो देने के लिये उद्यत हो।

यह जो काया है। उसके कोष-कोष तक धमनिकाये-शिराये, उसकी रग-रग मे तन्तुओ के जाल फैले हुए हे। जैसे प्राण ने (जीवात्मा ने) असख्य लगर डाल रखे हो। जब सब लगर उखड जाते है (जीवात्मा और कोषो के सम्बन्ध ढीले पड गये), तब जीवन-नाव भँस (बह) जाती है। अनन्त सागर लहराता रह जाता है।

काया की नाव साहिल (किनारा) छोड देती है। किनारा सूना पड जाता है।

मृत्यु की मँझधार मे नाव विलीन हो जाती है। आदमी मर जाता है। जीवात्मा और शरीर का सम्बन्ध सदा के लिए विच्छिन्न हो जाता है।

जडे उखड गयी। पेड गिर पडा। पृथ्वी जहाँ-की-तहाँ जैसी थी, वैसी रह गयी। जैसे जीवन-रूपी घौद से पके-गले केले की छीमी टूटकर गिर गयी। पका आम पेड से चू गया। बादल मे से बूँद टपक पडी। शाम को वातायन से सूर्य की किरणें सिमट गयी।

बिजली-के-तार-से-तन्तुओ (स्नायु) (नर्व) का जाल प्रत्येक कोष तक पहुँचता है।

पेड की टहनियो (अथवा जडे) सरीखी केशिकाये (केपिलेरिज) प्रत्येक कोष को प्राणवायु-मिश्रित रक्त पहुँचाती है, जैसे धरती के चप्पे-चप्पे को नहरे जल से सीचती है। मृत्यु के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक कोष से तन्तुओ तथा केशिकाओ का सम्बन्ध टूट जाय। जब इन असख्य लगरो मे से प्रत्येक, हर एक, लगर किनारा छोड देता है, तब काया-रूपी नाव का जीवन के किनारे से लगा रहना असम्भव हो जाता है। ज्वार-भाटे उसे मँझधार मे बहा ले जाते है। अगम्य अनन्त समुद्र का किनारा जहाँ था, वही रह जाता ह। नाव चली जाती है। जहाँ वह बिरमी (ठहरी) हुई थी, वहाँ की रौनक बदल जाती है। शरीर छ्ट जाता है। आत्मा+जीवात्मा+परमात्मा की सर्वव्यापकता पूर्ववत् सदा की भाँति, कायम रह जाती है। जीवनी-शक्ति (लाइफ फोर्स) सदा सर्वत्र फैली हुई है। उसकी सर्वव्यापकता को आँच नही आने की।

अन्तत, मरण के लिए आवश्यक है कि (१) प्रत्येक कोष ढीले (बीमार) पड जायँ, चाहे (२) प्रत्येक तन्तु कमजोर (अस्वस्थ) हो जायँ, अथवा (३) प्रत्येक केशिका बेकार बन जाय, अपना निर्धारित कर्म न कर पाये। तब जडे ढीली पड जायेगी, समुद्रतट से लगर का लगाव कमजोर पड जायगा। गमन सन्निकट होगा। नाव खुलने का समय आ गया होगा। डोगी चल पडेगी अनन्त की ओर। अदृश्य नाविक को जहाँ-का-तहाँ रेत पर छोडकर। स्वजन-परिजन बिसूरते रह जायेगे।

जिस खूबी से सूत्रधार ने पर्दा हटाया था, उसी हुनर के साथ पटाक्षेप होगा। जीवन और मरण, मरण और जीवन—दो पारस्परिक विरोधी परिवेशो का, दो विपरीत ध्रुवो (अपोजिट पोल्स) का एक मे समावेश करना, एकीकरण, जुटाना, यह काम परमात्मा के सिवाय और कौन कर सकता है। जो घट-घटव्यापी है। जो शून्य (जीरो)—अनन्तता (इनफिनिटी) मे, जन्म-मृत्यु मे, सुख-दु ख मे, पुण्य-पाप मे, एक-सा सदा व्याप्त है और जिसकी गोद मे ये भासित विपरीत गुणो के जोडे एक-से (सामान्य रूप से) पनाह पाते है।

जीवन के किनारे काया के असख्य बेडो ने लगर डाल रखा है। लगर उठा (उठे) और बेडा का सम्पर्क साहिल से टूट गया। दृश्य बदल गया। बालू (रेत) (थल)। (जल) सागर। ज्वार-भाटो का क्रीडा करना। नावो का आना, रुकना और चला जाना। किनारा आखिर कहते किसे है? परमात्मा भी क्या है? सृष्टि का जोड। जीवन-मृत्यु का जोड। ब्रह्माण्ड। समष्टि। लहरे समुद्रतल को स्पन्दित कर रही है। वही से उठना, वही विलीन होना। न कही आना, न कही जाना। न चलना (ययौ) न

ठहरना (तस्थौ)। सिर्फ भरमाना। सिर्फ होना। और, होकर न होना। करनी और होनी। व्यक्त और अव्यक्त। दृश्य और अदृश्य। प्रत्यक्ष और परोक्ष।

'वर्त्तमान'-सा। जो है भी और नही भी है। जो सिर्फ अतीत और भविष्य के बीच एक सत्ता (अस्तित्व)(एग्जिस्टेन्स) एक काल्पनिक रेखा है। एक मृगतृष्णा। एक अतीत से भविष्य की ओर की गति। अस्तित्व-विहीन। 'वर्त्तमान' मे ठहराव नही। महज दृश्य का समय के पट पर बदलते चले जाना और पकड मे न आना। खोजने पर भी न पाना। मात्र एक धारणा (कन्सेप्ट) (परिकल्पना), यूक्लिदिअन और नॉन-यूक्लिदिअन ज्यामिति (ज्योमेट्री) की तरह।

अगर भगवान् को भी एक कल्पना—वैदिक काल से, आर्यो-अनार्यो की, ऋषि-मुनियो की मात्र एक कल्पना या धारणा मान लिया जाय, तो भगवान् की ज्यामिति पर भी एक शोधलेख (थीसिस) या निबन्ध लिखा जा सकता है। भगवान् के तथाकथित गुण तब ज्यामिति की स्वय-सिद्धियाँ (एक्सियम्स) सरीखे मान्य समझे जा सकते है। और, गहन दर्शन का एक महल तैयार हो सकता है, जिसमे वाद-विवाद तथा तर्क-प्रक्रिया (लॉजिकल प्रोसेज) के जरिये प्रमाण (सुबूत) (प्रूफ्स) इकट्ठे किये जा सकते है। विचार प्रस्फुटित हो सकते है। और भगवान्-सम्बन्धित अनेकानेक साध्य (थ्योरम्स) प्रस्तुत हो सकते है और उनका समाधान (हल) (सॉल्युशन) तथा प्रमाण (प्रूफ) सम्भव हो सकता है। परमात्मा को गणितीय तर्क (मैथेमेटिकल लॉजिक) की परम्परा के सहारे भी पकडा जा सकता है, अनुभूत किया जा सकता है। फर्क बस इतना पडेगा कि परमात्मा के साध्य (थ्योरम्स) अनेक है। और, परमात्मा एक साथ बिन्दु (प्वायण्ट), रेखा (लाइन), वृत्त (सर्किल), त्रिभुज (ट्रेंगल), वर्ग (स्क्वेयर), आयत (रेक्टैंग्ल), कोण इत्यादि-इत्यादि सब कुछ है और साथ ही नही भी है। वह ऐसा बिन्दु है ह्विच हैज पोजीशन बट नो मैग्नीट्यूड ऐण्ड ह्विच, एट दि सेम भेरी टाइम, हैज मैग्नीट्यूड बट नो पोजीशन, ऐण्ड ह्विच इज इन टाइम ऐण्ड आउट ऑव टाइम एज वेल। जो स्थान घेरता है, लेकिन जिसमे लम्बाई-चौडाई नही है या फिर लम्बाई-चौडाई तो है, लेकिन जो स्थान नही घेरता है तथा जो कालाधीन (कालव्याप्त) भी है और कालातीत (काल से परे) भी है।

ऐसी बीहड ज्यामिति मे पारगत होने की बात कोई महामानव ही सोच सकता है और इसमे (प्रयास मे) कोई खुदा ही सफल हो सकता है। लेकिन, इस तरह की पहुँच (एप्रोच)अध्यात्म मे भी सम्भव है। ज्यामिति (ज्योमेट्री) झूठ हो या सच, यह बात जरूरी नही है। ज्यामिति (ज्योमेट्री) की सहायता से विज्ञान कितना आगे बढा, मनुष्य के समाज मे कितनी उन्नति हुई। परमात्मा की ज्यामिति (ज्योमेट्री ऑव गॉड) या परमात्मा के सहारे भी बडे-बडे (पिरामिड्स से) ठोस और गगनचुम्बी व्यक्तित्वो का सर्जन इसी धरातल पर सम्भव है। और, यह एक खास बडी, बहुत बडी, और जरूरी बात है। सोने मे सुगन्ध यह है कि परमात्मा सर्वज्ञ है और भक्तवत्सल है। सर्वत्र है, सदा है, सर्व-शक्तिमान् है, प्रेमास्पद (प्रेमिल) है, करुणासागर है। वह एक जीता-जागता ज्यामिति है।

अपने अस्तित्व (सत्ता) (एग्जिस्टेन्स) का सबूत वह स्वय प्रस्तुत करता है। और यूक्लिदिअन और नॉन-यूक्लिदिअन की काया को और उनके मस्तिष्क को और उनकी कल्पना को भी उसी ने गढा है, उसी ने मढा है और उसी ने अस्तित्व दिया है। यह 'आध्यात्मिक ज्यामिति' जीवन की ज्यामिति है। यह सृष्टि, ब्रह्माण्ड, प्रकृति, समाज, आचार-विचार, जीवन-मृत्यु, लोक-पाताल सभी से सम्बद्ध है। इसके पास इन सारी समस्याओ (प्राब्लेम्स) के लिए साध्य (थ्योरम्स) है और फिर उनके समाधान (हल) (सॉल्युशन्स), प्रमाण (प्रूफ्स) भी है।

इसने महान् व्यक्तित्व की विशाल अट्टालिकाओ का निर्माण किया है, भूत और भविष्य के बीच सेतु बाँधे हैं। जीवन और मृत्यु नामक बिन्दुओ को केन्द्रित कर ऐसे वृत्त बनाये है, जिनकी परिधि (सरकमफरेस) एक दूसरे से न सिर्फ चार, वरन् (बल्कि) अनेकानेक बिन्दुओ पर मिलती है।

टू इनफिनाइट रिंग्स दि सरकमफरेस ऑव ह्विच नॉट औनली इण्टरसेप्ट ईच अदर ऐट फोर प्वायण्टस बट एट इन्यूमेरेबुल प्वायण्ट्स इन इन्यूमेरेबुल वेज। दि सर्कल ऑव लाइफ इज नॉट ड्रॉन इन वन प्लैन बट ओभर इन्यूमेरेबुल प्लैन्स ऐण्ड हैज बोथ फिनाइट ऐण्ड इनफिनाइट डाइमेनसस नोन ऐण्ड अननोन, डिफाइनेबुल ऐण्ड अनडिफाइ-नेबुल। सच इज दि ज्योमेट्री ऑव गॉड दि क्रिएटर, ह्विच वी आर आस्क्ड टू लर्न ऐण्ड कम्प्रिहेण्ड।

ज्ञात और अज्ञात, परिभाषेय और अपरिभाषेय, सान्त एव अनन्त आयामो (डायमेन्सन्स) वाला जीवन का वृत्त अनेक (असख्य) तलो पर खीचा जाता है, किसी एक खास (विशेष) तल पर नही। और, वे वृत्त आपस मे केवल एक-दो-तीन या चार बिन्दुओ पर ही नही मिलते, वरन् अनेक बिन्दुओ पर मिलते-जुटते काटते है, विभाजित करते है। हमारे द्वारा जानने-समझने योग्य जो स्रष्टा—परमात्मा की ज्यामिति है, वह ऐसी ही है।

ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्ति शान्ति शान्ति।

(ईशावास्योपनिषद्)

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत॥

(ईशावास्योपनिषद्)

वह चलता है और नही भी चलता है। वह दूर भी है, समीप भी। वह सबके भीतर भी है और वही सबके बाहर भी है।

जो खोज के आगे-पीछे, दाये-बाये, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, सर्वत्र सदा से व्याप्त रहा है, जो खोजने के पहले से उपस्थित था ही, पर खोजने निकले, वही था। जो

खोजना बन्द कर देने के बाद भी यथावत् मेरी प्रतीक्षा मे मेरे पास, मेरे इर्द-गिर्द, ठहरा रहेगा, उसे कहाँ खोजें, कहाँ ढूँढें ?

अध्यात्म और विज्ञान दोनो ही परमात्मा की खोज मे है। किसी परमतत्त्व का आभास योगी-यतियो को भी मिला और वैज्ञानिको को भी।

'परमात्मा' शब्द उस परमतत्त्व का सकेत करता है, परिभाषा (डिफाइन), व्याख्या (एक्सप्लेन) नही करता।

एलेक्ट्रोन का जब आविष्कार हुआ, तब वैज्ञानिको के लिए एक समस्या उपस्थित हो गयी। वह न 'कण'-सा था, न 'तरग'-सा। न 'कण' की तरह ठहरा हुआ, स्थित था, न तरग की भाँति गतिमान् था वह। और, कभी वह 'कण' की तरह दीखता था, कभी 'तरग' की तरह। एक वैज्ञानिक को वह पदार्थ-कण (पार्टिकल ऑव मैटर)-सा लगता था, तो दूसरे को ऊर्जा-तरग (वेभ ऑव एनर्जी)-सा। कुछ निष्कर्ष नही निकला कि उसे क्या कहा जाय। तो एक नया टकसाली नाम दे दिया गया—क्वाण्टा। याने दोनो ही—कण भी, तरग भी, कण-तरग।

'नृ-सिंह'—नर भी, सिंह भी। 'Wavicle' (वेभिक्ल)। (नर-सिह नही। आदमी+सिंह)।

आध्यात्मिको की भी अपनी उलझन रही है। परमतत्त्व का भान उन्हे मिला, उसकी अनुभूति भी हुई, लेकिन पता न चल सका कि वह है क्या ? आत्मा क्या है, जानते नही। फिर, 'परमात्मा' शब्द एक नाम भर, एक सकेत, के अलावा क्या है मनुष्योचित गुणो का उसपर आरोप करते है। परमात्मा को ख्याति प्राप्त हुई, लेकिन परमात्मा की व्याख्या नही हो पायी। आदमी जिन गुणो को जानता है, उनका अतिशयताओ (एक्ट्रीम्स) और वैपरीत्यो (ऑपोजिट्स) 'परमात्मा' मे समाविष्ट कराते है। यह एक धारणा (कनसेप्ट), धारणा-मात्र, नही है, तो और क्या है ? किसी ने भगवान् से पूछा है ? सब इनफ्रेंसेज और विवेचना (इण्टरप्रेटेशन) और अनुभवो (एक्सपीरियन्स) की बात ही तो है—मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा या दिये गये (सृष्टि-प्रदत्त) 'दिव्य चक्षु' द्वारा। कुछ देखा-सुना, कुछ पाया, कुछ सोचा-समझा। जो गणितज्ञ और वैज्ञानिक करते है, वही मर्मज्ञ और आत्मज्ञ भी करते हे।

एक प्रयोगशालाओ मे सीमित है, दूसरा सृष्टि मे असीमित। प्रयोग और अनुभूति। दो भिन्न धरातलो पर अनुसन्धान चलते है। विश्लेषण (एनालिसिस) से सश्लेषण (सिनथेसिस), सश्लेषण (सिनथेसिस) से विश्लेषण (एनालिसिस)। पाकर खोजना। खोजकर पाना। खोजकर पाते है, पाकर खोजते है। अव्याख्यापित (अनएक्सप्लेण्ड) की जब व्याख्या (एक्सप्लेन) करते है, तब पाते है कि व्याख्यापित (एक्सप्लेण्ड) भी अव्याख्यापित (अनएक्सप्लेण्ड) रह गया। इसी विडम्बना मे आज विज्ञान भी है और अध्यात्म भी। आदमी (दुनिया) का काम दोनो से चल रहा है। मजे की बात तो यही है। दोनो को 'परमतत्त्व' का आभास, उसकी आहट मिल गयी है। दोनो का अन्तिम लक्ष्य वही, एक ही, है। अध्यात्म पाकर खोजने निकल पडा है।

विज्ञान खोजकर पा रहा है। दोनो ने आदमी के मस्तिष्क की गहराइयो मे एक Built-in, स्वस्थ, (मेकैनिज्म) की दुहाई दी है, उसी का सहारा लिया है। परमात्मा का सम्पर्क (लाइजन) अधिकारी (ऑफिसर) भी वही है। अगर वह स्वच्छ, सरल, सक्रिय, सुव्यवस्थित, सरस, सच्चा और स्नेही रहे, तो सर्वदा सर्वव्यापी परमात्मा उसमे आसानी से झलकता है।

अध्यात्म निर्गुण (अव्यक्त) का दरवाजा खटखटा रहा है। विज्ञान सगुण (व्यक्त) की सृष्टि (का आँगन, दहलीज) टटोल रहा है।

कोई उसे 'विधान' के रूप मे देखता है, कोई 'सगुण', कोई 'निर्गुण' (गुणातीत) रूप मे। किसी को यह वैयक्तिक (पर्सनल) दीखता है, किसी को निर्वैयक्तिक (इमपर्सनल)। किसी को सब कुछ का सम्मिश्रण—बहुरूप (मल्टीफेसेटेड) और अरूप (फॉर्मलेस) (वेभिक्ल ! क्वाण्टम ! मैटर्जी !)

भगवान् वह गहन अगम्य अवर्णनीय अन्तरिक्ष है, जहाँ ज्ञान, अध्यात्म-विज्ञान, चेतन-अचेतन, अनुभव-अन्वेषण, जीवन-मृत्यु, अतीत-भविष्य, सभी आ मिलते है। जहाँ सूर्य (सूरज) उगता (उद्भूत) होता है और जहाँ वह अस्त हो जाता है। जहा इहलोक परलोक से सट जाता है।

यह रात बडी अनमोल है। रेत चमक रही है। शान्त नदी मे तारो-भरा आकाश झाँक रहा है। किनारा निस्तब्ध है। तलहटी पर भी, सरिता मे भी। कही दूर पर (सुदूर मे) किसी अकेली झोपडी के एकान्त मे शमा जल रही है। जबतक विज्ञान चाँद की सरजमीन कोडता-कुरेदता है, तबतक क्यो न उस सौन्दर्य-आनन्द का प्रतिबिम्ब पाने के लिए अपनी तरी (डोगी) खोल दी जाय, जो मानस के सागर मे हिलोरे ले रहा है ? यह पावन वेला अपने पास है। यह दुर्लभ घडी सिमटी नही है। आ जाओ, नाव अभी खाली भी है।

विश्व (ब्रह्माण्ड) बडे (अति) वेग से (द्रुत गति से) फैलता जा रहा है, अनवरत। चौदहो भुवन और अनन्त लोको का समूह यह ब्रह्माण्ड अगर अबाध गति से बढता-फैलता प्रतिपल अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है, तो यह क्या सम्भव है ? ब्रह्माण्ड के बाहर, उससे दीगर, न कही कोई स्थल है, न कही कोई काल है। न ब्रह्माण्ड से बडी कोई जगह अथवा कोई दिक्काल ही है। दि युनिवर्स ऐज इट एग्जिस्ट्स कैनॉट एक्सपैण्ड इन इटसेल्फ। परमात्मा विश्व के कण-कण मे व्याप्त है, रमा हुआ है, ओत-प्रोत है। ऐसी परिस्थिति मे तो ब्रह्माण्ड के साथ-साथ भगवान् भी फूलता-फैलता-बढता जा रहा होगा। मतलब यह कि भगवान् मे अनिवार्य परिवर्त्तन हो रहा होगा, जिसकी बाध्यता भगवान् को होगी। परमात्मा के परे, उससे अलग और बाहर कुछ है नही, न कुछ था, न होगा। ऐसा सम्भव है कि इस तथाकथित वेगवान् फैलाव मे परमात्मा अपनी ही सार्वभौम चेतना (कॉस्मिक माइण्ड) (की अनन्त परिधि) का विस्तार (उपयोग, इस्तेमाल) कर रहा हो (मे अपना प्रगतिशील विकास कर रहा हो)

और उस फैलाव (विकास) की रफ्तार वही है, जो उसके चिन्तन (विचार-धारा) की है। और, यह गति (स्पीड) सम्बद्ध नही है उस 'समय' (काल) से, जिसके हम ज्ञाता है। इस सन्दर्भ (प्रसग) मे 'समय' का विवेचन असगत है, इर्रैलिभेण्ट है।

अगर सचमुच इस प्रक्रिया के अन्तर्गत कोई काल-कारक (टाइम-फैक्टर) आवेष्टित (इनभॉल्भ्ड) हो, तो अवश्य ही वह 'समय' परमात्मा का कोई खास (असाधारण, विलक्षण, विशिष्ट) आयाम होगा (तु० 'ब्रह्मा का काल')। वह 'समय' अनन्त होगा और वह कालातीतता (टाइमलेसनेस) मे फैलता (उद्भासित, विकसित) होता चला जाता होगा। क्योकि, (एक तरह का) 'समय' (किसी दूसरे प्रकार के) 'समय' मे वृद्धि (एक्सपैण्ड) पा सकेगा क्या ? और, अनेक प्रकार (किस्म) के 'समय' की कल्पना करवाना एक निरर्थक चिढाना-सा होगा। कही वह आपमे भी कुढन पैदा कर दे !

जन्म से ही अगर कुल इन्द्रियाँ—सारी ज्ञानेन्द्रिय-विशिष्ट इन्द्रियाँ-सहित, सब प्रकार के ऐन्द्रबोध, एपिक्रिटिक (Epicritic) और प्रोटोपैथिक (Protopathic) सवेदनाएँ—बिलकुल बेकाम (फक्शनलेस) हो, तो क्या मस्तिष्क विकसित (डेभलप्ड) हो सकेगा ? ऐसे अविकसित (अण्डरडेभलप्ड) मस्तिष्क (ब्रेन) मे किसी तरह भी माइण्ड (Mind) नामक वस्तु उत्पन्न हो सकेगी ? लेकिन हेलन केलर (Hellen Keller, 1880)—उनकी स्पर्श-सवेदनाये (Touch Sensations) अविकल, अविकृत, निर्दोष (इनटैक्ट) थी। (इसीलिए) वह एक मेधावान् (इनटेलिजेण्ट) माइण्ड (Mind) और उत्तम स्मृति (स्मरणशक्ति) से सम्पन्न थी। (तु० एनी सुलिभान के माध्यम से परमात्मा की अनुकम्पा का अवतरण।)

मस्तिष्क—मानस सम्बन्ध।

हमारी ज्ञानेन्द्रियो से जो सूचनाये मिलती रही है, जीवन से हमने जो कुछ सीखा है, शिक्षा प्राप्त की है, दूसरो के माध्यम से भी, हमको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, जो कुछ देखा-भाला है, सुना-गुना है, वही सारी बाते, वे ही सब ज्ञान हमारे मस्तिष्क मे भरे पडे है और तिरोहित भी होते रहते है। मानस कोई नवीन अवलोकन (प्रेक्षण) प्रस्तुत नही कर सकता। इसकी भावनाये (आइडियाज), विचार-विषय (थॉट कनटेण्ट्स), चिन्तन (स्पेकुलेसन्स), अनुमान (कनजेक्चर्स), आशाये (होप्स), आकाक्षाये (एसपिरेसन्स) और भय (फीअर्स) कारण-आधृत (आश्रित) (बेस्ड ऑन) होते है और मानसगत उपलब्धियो के ही क्रम-अपचय (परम्यूटेशन) और क्रम-सचय (कम्बिनेशन) होते है। हमारे स्वर्ग और नरक (की धारणा) तथा वे गुण-धर्म (एट्रिब्यूट्स ऐण्ड प्रोपर्टीज) (वैशिष्ट्य) (का पूर्वाग्रह), जिसे हम अपने परमात्मा पर आरोपित करते है—ये सारे आवश्यक रूप से अपने जीवन मे ऐन्द्रियबोध (सेन्स परसेप्सन) के द्वारा उपलब्ध हमारे जागतिक (वर्ल्डली) ज्ञान पर अवलम्बित होते है। अपने अनुभवो मे अपने लिये तथा मानव-समाज के लिये अभीष्ट (इच्छित) अथवा उपयोगी (युजफुल) एव आवश्यक (नेसेसरी) पाये गये (समझे गये) गुणो की आत्यन्तिकताओ (एक्सट्रीम्स) को हम परमात्मा पर आश्रित (आरोपित) कर देते है। विचित्रता यह है कि हम जिस

(विषय-वस्तु) को ईश्वर-सम्बद्ध करते है, उनमे किसी को वास्तव मे मूलत समझने मे अपने को असमर्थ पाते है। जो कुछ सोचते-विचारते है, जो कुछ कहते-करते है, जैसा सपना देखते है, जैसी कल्पनाएँ कर पाते है—वह सब कुछ हमारे मस्तिष्क की प्रतिक्रियाएँ मात्र ही तो है।

सचाई (ट्रुथ), ईमानदारी (ऑनेस्टी) इत्यादि सद्गुण (सद्धर्म) (भर्च्यूज) है, क्योकि इनसे समाज एव मानवता का हितलाभ होता है और जब हमे इन विषय-वस्तुओ के प्रति अनाडीपन अथवा अज्ञान का अनुभव होता है, तब हम 'नेति-नेति' कहकर सन्तोष पा लेते है। सचाई, ईमानदारी, दयालुता (काइण्डनेस), सहानुभूति (सिम्पैथी) और प्रेम (लव)—इस धरती पर सुन्दर एव समृद्ध जीवन के आधार (माध्यम) हे। यदि कोई एक आदमी चाँद पर अकेले रहता हुआ अपने प्रति सच्चा, ईमानदार या सहानुभूतिशील नही रहा, तो ऐसे मे जो स्थिति पैदा होगी, उससे यद्यपि उस आदमी का निजी मामला ही सम्बद्ध होगा, तथापि यह परमात्मा के लिए महत्त्व की बात रहेगी, जिसके चलते परमात्मा भी आकुलित हो सकते है। भले इससे मानव-समाज अस्त-व्यस्त न हो और इसके विधान मे विघ्न-बाधा न पड रही हो, फिर भी यह एक अलग किस्म (तरीके) का 'पाप' ही होगा।

परमात्मा एक नितान्त निजी मामला है। वह विषयी-सापेक्ष (Subjective) है। हमारे प्यार की प्रतिध्वनि उसके अपरिमित प्यार मे प्रकट होती है। हमारे प्यार का जवाब वह हमे आवर्धित (मैग्निफायड) प्यार मे देता है। वह हमलोगो के पास चला आता है, जब हम उसके लिए लालायित होते है, ललकते-तरसते है। और, वह ऐसे रूप मे प्रत्यक्ष होता है, जिस स्वरूप की कल्पना हमने कर रखी है या जिस मुखौटे के साथ वह पहचाना जा सके। अधिकाश समय एक पहचानने योग्य रूप मे उसकी उपस्थिति अनिवार्य, परमावश्यक और लाजिम है, क्योकि अन्यथा हम यह कहने के लिए उतारू, प्रवृत्त (इन्क्लाइण्ड) हो जायेंगे कि हमने उस सर्वगत सार्वत्रिक (ओमनी-प्रेजेण्ट) को न देखा है, न जान सके है। 'नैतिकता' (मोरेलिटी) समाज की करनी और देन है, उसकी गढी हुई। उसी तरह 'पुण्य' और 'पाप' भी आदम की औलादो की कृति और सृष्टि है। इस पृथ्वी-ग्रह पर डेरा डालने (निवास, प्रवास) के दरम्यान, एक विशेष प्रकार के वातावरण मे, एक खास तरह के सघ या समाज मे रहकर, जैसा सूझा-समझा, वैसी ही व्याख्या दी 'सद्गुण' और 'दुर्गुण' की, 'सदाचार' और 'व्यभिचार' की। परमात्मा हमारे 'अभिप्राय', 'मन', 'उद्देश्य' और 'मानसिक रुझानो' के अनुरूप तथा ब्रह्म, समष्टि और सृष्टि (जिसमे हम सब सम्मिलित है) के प्रति हमारी दिलचस्पी, भावना तथा चिन्ता के योग्य कार्य करता है। शायद हम जैसा बोते है, वैसा काटते है। जो देते है, वही पाते हैं। यह प्रतिध्वनि (इको) और प्रतिबिम्ब (रिफ्लेक्शन) की नाई है। लेकिन, यह ठीक-ठीक जस-का-तस नही होता। उदाहरण के लिए, यदि एक आदमी किसी की हत्या करता है, तो हत्यारा मृत्युदण्ड पाता है। यदि हत्यारा मारा जाता है, तो उससे हत्या का बदला व्यक्तिगत तौर पर सध जाता है। चूँकि हत्यारे की

केवल एक ही जिन्दगी होती है और वह दुबारे नही मारा जा सकता, इसलिए अगर किसी एक व्यक्ति ने अनेक हत्याएँ की हो और यद्यपि अनेक जीवन-सजा (मृत्यु-दण्ड) उसपर पारित की गई हो, तथापि उसकी अपनी जान, कानून के हाथो नही, लेकिन फॉसी के तख्ते पर, एक ही बार जा सकती है। और, ऐसे मे भी जान-के-बदले-जान ले ही ली गयी और प्रत्येक हत्या अपना प्रतिकार पा गयी।

ईश्वर (परमात्मा) की गति-विधि का पार पाना नामुमकिन है। कल्पना मे यह बात नही आती कि आदमी के लिए उसका सवीक्षण (छान-बीन) (स्क्रूटिनाइज) करना और उसे पूरा और सही-सही जान पाना कभी सम्भव हो सकेगा। यह तभी हो सकेगा, जब कि चाहे तो मानव स्वय परमात्मा बन जाये या परमात्मा से भी बृहत्तर स्वरूप को उपलब्ध हो। इस समस्या का समाधान नही दीखता। यह साध्य नही है। सम्भवत, हम ईश्वरीय गुणो से जितना अधिक मण्डित, विभूषित होते जायेगे, जितना अधिक परमात्मा-सा बनते जायेगे, उतनी अधिक क्षमता के साथ उन्हे आकृष्ट कर सकेगे और उनका सायुज्य प्राप्त कर उनके बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। अनुरूपता आकृष्ट करती है। मानव-समाज पर लागू होनेवाले कानून प्राकृतिक विधानो से भिन्न है और इन दोनो प्रकार की विधियो से भिन्न है वह विधान, जो जीवात्मा और परमात्मा के आपसी सम्बन्धो के बीच लागू होता होगा। हो सकता है, ये कोरी कल्पनाये हो। फिर भी, 'सापेक्षता', 'आपेक्षिकता' (रिलेटिभिटी) के नियम निरपेक्षता, अनपेक्षता (ऐब्सॉल्यूट), के मामले मे लागू नही होते, और प्रत्येक वस्तु इस दुनिया मे सापेक्ष है। जबकि ब्रह्माण्ड मे केवल परमात्मा ही निरपेक्षता का स्वामी है। और, जब, कि सिर्फ समष्टि मे ही प्रत्येक गुण और कुल वस्तुस्थिति अपनी पूर्ण अनपेक्षता (एब्सॉल्यूटनेस) मे समाविष्ट है। पार्थिव जगत् का आत्मा से नित्य सम्बन्ध तो है नही। सिर्फ आत्मा और परमात्मा समवायी हो सकते है। शरीर साधु-महात्मा नही होता। किसी का अन्त करण 'महामानव', 'मुक्त' या 'महात्मा' भले ही हो जाय। जो बीत गया (भूत), वह भी और जो आनेवाला है (भविष्य) वह भी, दोनो ही 'वर्त्तमान' मे मौजूद (उपस्थित) है। और 'वर्त्तमान' है नही। समय बीतता गया है, समय आता रहा है, वह ठहरा कब, जो 'वर्त्तमान' की सज्ञा पाता। आपेक्षिकता (रिलेटिभिटी) ने अनपेक्षता (एब्सॉल्यूटनेस) का मुँह भी नही देखा होगा। दोनो मे कोई सामजस्य नही है। ससार मे कुछ भी अनपेक्ष नही हैं। परमात्मा मे कुछ भी आपेक्षिक (रिलेटिभ) नही है। सगुण ब्रह्म पृथ्वी का देवता है। निर्गुण ब्रह्म विभु है।

अष्टाग योग

यम—नियम—आसन—प्राणायाम—प्रत्याहार—धारणा—ध्यान—समाधि।

यम—अभ्यास (आचार) (प्रैक्टिस) ऑव हानि-रहितता (हार्मलेसनेस) (किसी की भी बुराई न करना) नैतिक विधानो का अनुसरण (अनुपालन)।

नियम—(डिसिप्लीन) आध्यात्मिक विधानो का अनुसरण (अनुपालन)।

आसन—पोस्चर।

प्राणायाम—रेगुलेसन ऑव ब्रेथ।
प्रत्याहार—(विथड्रॉवल ऑर एब्सट्रैक्सन)
धारणा—(कॉनसेण्ट्रेशन)
ध्यान—(डेलिब्रेशन)
समाधि—(कनटेम्प्लेशन)

नैतिक विधानो मे हिंसा, अनृत, स्तेय (चोरी), लोभ (लालच) आदि का निषेध है। यह सार्वभौम हित (महत्त्व) का विधान है।

नियम (आध्यात्मिक अनुशासन) पॉच प्रकार के होते है—१ शौच, २ सन्तोष, ३ आत्मसयम, ४ स्वाध्याय और ५ ईश्वर-प्रपत्ति।

उपलब्धि के मार्ग मे पॉच व्यवधान (बाधा) है—अज्ञान, अहन्ता, इच्छा, लोभ और जिजीविषा (जीने की इच्छा)। अज्ञान अन्य चार के जनक है। ये पाँचो योगियो के मार्ग मे बाधक नही होते। ये (योगी) चेतना-समाधि के उच्चतर स्तर पर होते है। सामान्य मनुष्य की चेतना ही इन पॉचो का शिकार हो सकती है।

आत्मविवेक (Super-ego) शरीर और अन्त करण की क्रियाओ के प्रति सजग और तटस्थ भाव से (वस्तुपरक दृष्टिपूर्वक) इनके क्रिया-कलापो का अवलोकन तथा निदेशन करता है।

कोई चीज (सत्ता) है, जो शरीर और मस्तिष्क के पीछे, इसकी क्रिया तथा हमारे व्यक्तित्व और अन्त करण के निरीक्षण और निर्णय मे समर्थ है। उदाहरण के लिए, यह (सत्ता) कह सकती है (कहती है) कि डॉ० श्री आपका मन नही लगता, आपका चित्त चचल है, आप व्यर्थ का चिन्तन करते है, आपमे अभिमान आ गया है, आपकी बुद्धि भ्रान्त हो गयी है इत्यादि-इत्यादि।

यह एक अन्य पुरुष की तरह तटस्थ होकर 'मैं' के व्यक्तित्व को इसकी कामनाओ के बावजूद दिशा दिखाने और सयत रखने मे समर्थ है।

आत्माभिव्यक्ति-वृत्ति एक सतत अनिवार्यता है। काम-प्रवृत्ति एक विलासमयी अनिवार्यता है। इसकी प्रकृति मे चचलता है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विवेक (Super mind) सार्वभौम चेतना या उच्चतर शक्तियो से सम्पर्क स्थापित करने मे समर्थ है। जैसे सच होनेवाले स्वप्न, निद्रा, अन्त करण (Mind) की अलौकिक शक्तियाँ, विचार-ज्ञान, विचार-प्रक्षेपण, स्मृति।

परमात्मा को आनेवाली घटनाओ की सही जानकारी होती है, भूत-प्रेतादि की क्रियाओ, कामनाओ एव स्वप्नो की सत्यता एव सिद्धि की भी।

अभाव के महासिन्धु मे समृद्धि के द्वीप-सी इनकी स्थिति का आभास होता रहता है।

सार्वभौम चेतना और मनुष्य की अतिचेतना (Super-Consciousness) के बीच एक प्रकार के साम्य का अनुमान किया जा सकता है। यह सम्भवत अपार्थिव, अलौकिक तथा प्रकृति एव पदार्थ के विधानो से भी अलग है। यह भूत-जगत् से भी असम्बद्ध है। यह दिक् और काल की परिसीमा से भी परे है। इसका प्रकटीकरण (मैनिफेस्टेसन) (व्याख्या से परे) अव्याख्येय है।

१ शिक्षा-प्रशिक्षा के लिए चेतना अन्त करण (माइण्ड) का सामर्थ्य आश्चर्यकर है। अतिशय प्रशिक्षण, विश्लेषणपूर्ण चिन्तन तथा तर्क-सगति के साथ अन्त करण अलौकिक चमत्कार उत्पन्न कर सकता है तथा महत्तर और असाधारण शक्तियो को प्राप्त कर सकता है, जैसे वास्तविकता का ज्ञान, भविष्य-दर्शन, अतीत एव भविष्य का ज्ञान, आनेवाली या घटनेवाली चीजो के बारे मे अन्तर्दृष्टि (इनटच्यूसन) के द्वारा पूर्वज्ञान।

तु० बच्चो का शिक्षण और प्रशिक्षण, प्रचार और दुष्प्रचार, मस्तिष्क-शोधन ब्रेन-वाशिग (Brain washing)।

२ अन्य सारे लघु प्राणी या कुछ कीडे भी साधारण जीवो द्वारा अपने जीवन, जाति या सन्तति की रक्षा करने की प्रवृत्ति और क्रिया से कही अधिक (विशिष्ट) कार्य-सम्पादन की क्षमता रखते है। जैसे मकडा, मच्छड, मधुमक्खी, बाया, गुरिल्ला, चीटी और हाथी। और, वे लघुतम प्राणी भी, जो लघु से लघुतम जैविक अवयवो से युक्त होते है, वे किस प्रकार खाते, चलते, सन्तानोत्पादन करते और जीवन-रक्षा करते है, यह अवलोकन का विषय है। जिस प्रकार साधारण मनुष्य अपने दैनिक जीवन मे शताधिक विभिन्न प्रकार के कार्य कर सकते है, उसी प्रकार एक मकडा भी कर सकता है।

चीटियाँ मनुष्य से पहले वर्षागम के बारे मे जान जाती है और चीटियो की सेना अपने अण्डो और भोज्यसामग्री को सुरक्षित स्थानो पर ले जाने मे सलग्न हो जाती है। ये चीटियाँ विविध कार्यो के लिए अनेक ढगो से नियुक्त होकर काम करती है।

३ कुछ पशुओ मे अधिक विकसित ज्ञानेन्द्रिय या इन्द्रिय-चेतना होती है। जैसे कुत्ते की घ्राणशक्ति, गीध की दृष्टि, मकडे की ज्यामितिक बुद्धि, मधुमक्खी की कला, पक्षियो की नीड-निर्माण-बुद्धि। यह बतलाता है कि मस्तिष्क तथा विशेष इन्द्रियाँ (प्रकृति द्वारा विकसित शक्ति-सीमा से) अधिक कार्य सम्पन्न कर सकती है। आँखे किसी भी कैमरे से ज्यादा अच्छी और महान् है।

४ विविध प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व, जैसे गणित मे रामानुजम्। सार्वभौम चेतना इन प्रतिभाओ और सामर्थ्यो का समाहार या समग्रता (सम्पूर्णता) के रूप मे रह सकती है।

१ ईश्वर है—ऐसा कहनेवाला झूठा है और इससे भी झूठा वह है, जो यह कहता है कि ईश्वर नही है। उस परमसत्ता (परमात्मा) को जानना जरूरी नही है।

२ ज्ञानेन्द्रियो की शक्तियाँ और उसकी कार्य-क्षमता सीमित है, फिर इसके द्वारा परमात्मा को समझना सम्भव नही।

परमात्मा की अधिसख्य इन्द्रियाँ अपनी अनन्त कार्य-सामर्थ्य के साथ है।

आदमी केवल 'भिबज्योर' (सात रग—बैंनीआहपीनाला) ही देख सकता है। इसके परे वह नही देख सकता। वह ताप-तरगो तथा विद्युत्-चुम्बकीय तरगो को नही देख सकता, पराबैंजनी (अल्ट्रावायलेट) किरणो को नही देख सकता। मनुष्य-निर्मित ट्राजिस्टर की तरगे भी मनुष्य के द्वारा नही देखी-जानी जा सकती।

३ ईश्वर के बारे मे सारी जानकारियो को हासिल करने के लिए सचेष्ट होने की जरूरत नही है। हम प्रत्याशित परिणामो के बारे मे ही जान सकते है और इससे लाभान्वित हो सकते है।

चिकित्सक की गोलियाँ उसके बताये गये तरीके से खाने लायक होती हे। लेकिन, दवा के बारे मे पूरी जानकारी हासिल करने के बाद उसके गुणो से लाभ उठाने के लिये मेडिकल कॉलेज मे दाखिल होना जरूरी नही है।

४ अगर हम सहजता से जानने योग्य (सगुण ब्रह्म) और अपने व्यक्तिगत ईश्वर या इष्टदेव के द्वारा ईश्वर के लाभो को प्राप्त कर सकते है, तो क्यो नही करे।

५ आइस्टाइन जैसे वैज्ञानिक ने भी पहले परिकल्पना की, फिर इनकी परिकल्पना के आधार पर अन्य वैज्ञानिको ने प्रमाण पाये।

इसी प्रकार, समाज और व्यक्ति के लिये ईश्वर की परिकल्पना भी होनी चाहिये।

६ श्रद्धा-विश्वासरूपिणौ,

याभ्या विना न पश्यन्ति।

श्रद्धा-विश्वास मे ईश्वर (ईश्वर की अनुभूति) तक पहुँचने की ज्यादा सम्भावना है, क्योकि तर्क-प्रक्रिया बुद्धि से सीमित है और परमात्मा बुद्धि (Intellect) से बहुत ऊपर है। शायद श्रद्धा-विश्वास, जो बौद्धिक विधियो से निर्धारित (डिपेनडेण्ट) नही है, भगवान् को समझ सके। कुछ। कम-से-कम श्रद्धा-विश्वास मे यह सिफत तो है कि वह 'बुद्धि' मे सीमित (नियन्त्रित) और बाध्य (बाउण्ड) नही है।

७ एक आदमी अपनी सारी जिन्दगी मे १० घण्टे प्रतिदिन काम करते हुए ३०,००० किताबे भर पढ सकता है—किसी एक विषय का भी 'विद्वान्' बनना नामुमकिन है। फिर, भगवान् को जान लेना कैसे आसान हो? अगर आदमी को अधिसख्य विशिष्ट इन्द्रियाँ (इन्यूमेरेबुल स्पेशल सेन्सेज) होती और हर इन्द्रिय ० से ∞ तक विस्तार-सीमा (रेज Range) मे काम करती होती, तब शायद परमात्मा का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाने की सम्भावना रहती।

८ क स्वर्ग-नरक जिस शास्त्र ने कहा, ख उसी ने तो स्वर्ग हासिल करने का उपाय भी बतलाया। जैसे सत्य, अहिसा, अपरिग्रह, अभय इत्यादि। क के पीछे दौडने के बदले, ख के पीछे पडकर अपने को योग्य क्यो न बनाया जायगा। उससे (ऐसा करने से) (इस रास्ते चलने से, मार्गानुकरण से) अगर स्वर्ग हुआ, तो उसका पता भी चल जायगा, वह हासिल भी हो जायगा, और अगर न हुआ, तब भी अपनी शान के साथ जिन्दगी बसर होगी। भगवान् नही है, यह कहने का हक उसी को है जिसने भगवान् को, ब्रह्माण्ड के हर एक कोने मे खोज लिया हो। अणु (एटम), परमाणु (प्रोटोन), एलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन की रग-रग मे ढूंढ लिया। अपने मनोजगत् (साइक्-इ, Psyche) मे तथा सब प्राणियो के 'साइक्-इ' मे खोज कर ली है। जब आप ब्रह्माण्ड के कोने-कोने मे उसकी तलाश नही कर पाये, तब कैसे कहते है कि परमात्मा 'नही है' अथवा 'है'। ऐसे मे आपके शब्दो (कथन) के क्या अर्थ हो सकते है?

परमात्मा वही है, जिसका केन्द्र तो सर्वत्र है, किन्तु जिसकी परिधि कही नही है ।

१ 'ईश्वर' है--ऐसा कहनेवाला शायद झूठा है । पहले तो ईश्वर को कोई पहचान नही सकता, उसका पता किसी को मालूम नही । मनुष्य की स्थूल चेतना (Mind) ईश्वर को जान नही मकती । यदि आप ईश्वर के रूप-रग से परिचित नही, तो फिर इसकी परिभाषा के पीछे क्यो परेशान रहे ? उसी तरह, जो यह कहते है कि 'ईश्वर नही है'—वे भी झूठे और पाखण्डी हैं ।

सकल्प और अह प्रतिस्पर्द्धा के ससार मे जीवन और प्रगति के लिए आवश्यक है । मनुष्य इनके सहारे भौतिक लाभो को प्राप्त करता चलता है । लेकिन, यह अह और सकल्प (कामना) के लिए आत्मसीमित है तथा इससे मिलनेवाली सफलता गर्व और पूर्वाग्रह से मिलाती हुई मर्वनाश तक पहुँचा देती है । स्वाभिमान+महत्त्वाकाक्षा नास्तिको के लिए आवश्यक है । आस्तिको के लिए यह निरर्थक है। यह शरणागति-विकर्षक (शरणागति से विमुख करनेवाला) है ।

निधनोतर पुरस्कार (पोस्थुमस एवार्ड्स) मे और श्राद्ध मे क्या फर्क है ?

शहीदो को क्या मिलता है ? उनकी हसरते, उनके अरमान, क्या उनके साथ ही चले नही जाते ? सरकार भी श्राद्ध करती है, जब बुढापा मे या मरणासन्न व्यक्ति को या निधनोत्तर पुरस्कार (एवार्ड्स) देती है ।

आदमी जैसा बनना चाहेगा, जैसा उसका आदर्श (आइडियल) होगा, वैसा ही वह बन पायगा । भगवान् की आराधना से वह भगवान् की तरह बनने के रास्ते पर अग्रसर होगा और भगवान् मे जो गुण है, वही उसमे समाविष्ट होगे, पनपेंगे, घर करेगे । पहला हृदय-प्रत्यारोपण (हार्ट-ट्रान्सप्लानटेशन) के समय डॉ० बर्नार्ड ने भगवान् से प्रार्थना की । पहली बार चन्द्रमा (तल) पर उतरने (पाँव रखने) के वक्त नील आर्मस्ट्रौग (Neil Armstrong) ने भगवान् को गुहारा (पुकारा) (याद किया) । यह उचित भी था । ऐसे क्षणो मे इन्सान किसकी मदद माँगे ?—अपनी ? अपनी सरकार की ? कौन उसे सहारा दे ? बल दे ?

सारी आवाजो से घिरा रेडियो भी चुप है। जिस तरग-दैर्घ्य (लम्बाई) (वेभ-लेग्थ) पर उसे ट्यून करेगे, वैसी ही आवाजे आने लगेगी । आत्मा सर्वत्र है । उचित शरीर पाकर वह अपना वासस्थान बना लेता है । आदमी का मस्तिष्क (ब्रेन) भी जैसा ट्यून-अप होगा, वैसा ही उसका (माइण्ड) होगा । कही से शरीर बना, कही से आत्मा भी मिला, कही से मानस (माइण्ड) भी बना । शुक्राणु (स्पर्म) मे भी तो जान थी, गर्भाशय (ओभा) मे भी । आदमी का आत्मा अगर उस प्राण (लाइफ) से भिन्न है, तो वह उस बीज की तरह है, जिसके पलने पर जीवन सो रहा है ।

परमात्मा आत्मा का आधार है । मानस (माइण्ड) का भी, शरीर का भी । आत्मा घिरा है माइण्ड (चेतना) की पर्त्त (सूक्ष्म) तथा शरीर की पर्त्त (ग्रौस) से । मृत्यु= शरीर का छूट जाना ।

आदमी परमात्मा की तरह स्वच्छन्द विचरना चाहता है । परिस्थितियो से स्वतन्त्र

होना चाहता है। वह पाता है अपने को कि वह कुछ ही स्वतन्त्र है। अपनी सीमाओ और परिस्थितियो से बँधा है। परमात्मा की ओर वह लालच-भरी निगाह से देखता है कि मै भी वैसा ही निर्द्वन्द्व, निर्लिप्त, स्वच्छन्द बन जाता। आदमी को ऐसा (आभास भान) लगता है कि वह परमात्मा से बिछुडकर एक बन्धन मे आ फँसा है और वह फिर से मुक्त होकर परमात्मा की तरह पूर्ण स्वतन्त्र बन जाना चाहता है। प्रकृति, शरीर और अन्त करण सबसे स्वतन्त्र। जहाँ न दैन्य हो, न दु ख।

शरीर (बॉडी—अन्त करण) आत्मा मे है, आत्मा शरीर मे नही है। आत्मा एक सर्वत्र फैली हुई जीवन-शक्ति (लाइफ-फोर्स) है (तु० बुलबुला और सागर)। शरीर जब मरता है, तब सूक्ष्म शरीर अन्त करण के साथ अलग हो जाता है। प्रकृति और परमात्मा का कोई फर्क नही है। अन्तर नही है।

परमात्मा का वह हिस्सा जो दीखता है—इन्द्रियो को अनुभूत होता है—वह है प्रकृति। वह भाग या अश या पहलू जो इन्द्रियगम्य नही है, वही, उसे ही, अपने लिये खोज निकालना है। प्रकृति का सूर्य अपने तेज से परमात्मा के तेज की ओर लक्ष्य कर पाता है। इन्द्रियो के पार भी कुछ है, उसका (अनुभूत इन्द्रियो के धरातल पर, उसके परे) भी सबूत मिलता है, भान होता है। (तु० कुत्ते की घ्राणशक्ति)। [इमैजिन। इसे एक्स्ट्राऑर्डिनरी परसेप्सन (एक सेन्स मे), जहाँतक आदमी का सवाल है, कह सकेगे या नही ?] यह सब शक्ति (पावर) जैसे कुत्ते की घ्राणशक्ति, गीध की नजर, प्रतिभावानो की सामान्येतर (सुविशिष्ट) मेधा (एक्सेप्स्नल इनटेलिजेन्स) (जैसे रामानुजम्), सूर्य का तेज—ये सब शक्तियाँ क्या एक परमात्मा मे नही हो सकती ? और, तब वह कैसा विलक्षण होगा ? आदमी और आदमी के बीच कुछ ऐसी विभिन्नताएँ है, जो एक लगूर और होमोसैपियन के बीच नही हो सकती। आखिर एक राजा और रक, तथा अपने जीवन मे यथेष्ट पद-प्रतिष्ठा और सफलता से सम्पन्न एक प्रतिभावान् महाविद्वान् और दूसरी तरफ अपनी सूनी-सूनी जिन्दगी मे उसी तरह के सपनो से कटा-छँटा एक अभागा निरक्षर नादान के बीच क्या-क्या समानताये है।

अगर, पाने लायक, कोई परमात्मा नही, तो इस सृष्टि के निर्जीव, सजीव, मनुष्य और पशु मे समानता की कोई उम्मीद नही की जानी चाहिये।

मनुष्य मुक्ति चाहता है। उस (परमात्मा) की असीमता से सम्बद्ध होने के कारण वह किसी असीम के समानान्तर हो सकता है, अन्यथा इस ससीम ससार से सना-सटा एक-दूसरे से इसका साम्य असम्भव है। जलप्रलय (महाप्लावन) की तरह असीमता ही समताकारिणी बन सकती है। केवल ईश्वरत्व अथवा ईश्वर होने या बनने की सम्भावनाओ के कारण यह सम्भव है कि अनेकता मे एकता की स्थापना हो ओर अन्तत वह धरातल उभरे, जहाँ सब कोई वास्तव मे बराबर है। एक चत्वर (मनोवैज्ञानिक) है, जहाँ खुशकिस्मत और बदकिस्मत सारे समान है। यही स्थल है, जहाँ आदमी खडा होकर, जीवन की सारी उथल-पुथल से मुकाबला कर सकता है। ईश्वरत्व की समर्थ

स्थिति मे मनुष्य (भी) तब पूर्णरूपेण मौत, मुसीबत, मजे या और भी किसी हालात से पूर्णत होड ले सकता है। दानवता और सहार के सामने अकेले ही मनुष्य-सा कमजोर प्राणी भी उस सर्वशक्ति-स्रोत से साहस, सम्बल और शक्ति प्राप्त कर दिलेरी से माथा उठाये बराबरी के मैदान मे खडा रह सकता है, अन्यथा अपने बेलगाम मन, अपनी पीडित आत्मा और अपनी क्रूर परिस्थिति के द्वारा बलिदानी बकरे की-सी स्थिति मे आकर अपनी अनिवार्य नियति को स्वीकार कर लेगा। ईश्वर की शक्ति के सहारे ही मनुष्य की चेतना, अच्छी-बुरी हर हालत मे विजय के गीत गाती है।

मेरे विचार मे, हरेक आदमी, वह चाहे दीन हो या दबग, कमजोर हो या पहलवान, सम्पन्न हो या विपन्न—अपने मे वैसी शक्ति और सम्भावना का कोष लिये है, जिसके बल वह मनचाहा ऊपर उठ सकता है, अपनी काया और बुद्धि की सीमा लाँघ सकता है तथा अपनी श्रद्धा और भक्ति-भावना मे आस्था रखते हुए अपने परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। और फिर, परमात्मा के माध्यम से वे सारी चीजे भी प्राप्त कर सकता हैं, जिसकी लालसा और ललक उसे व्यग्रता के साथ झकझोरती रहती है।

ईश्वर मे आस्था रखता हुआ मनुष्य का अन्त करण इतना सशक्त-समर्थ हो जाता है कि वह शारीरिक अथवा मानसिक व्यवधानो और विफलताओ पर सहज विजय प्राप्त कर लेता है और उसे इसमे किसी मनोवैज्ञानिक, प्रचारज्ञ एव विधि-व्यवस्थापक की मदद की जरूरत नही पडती। वह अकेला और अकेला ही अपनी चेतना या अन्त -करण के दुर्ग मे पैठकर उस रहस्यमय निर्झर-स्रोत की अनुभूति प्राप्त करता है, जिसके द्वारा वह अपनी प्यास— परमात्मा-प्राप्ति की प्यास—को बुझाने के लिए बेचैन रहता होता है।

यह परमात्मा (ईश्वर) के अस्तित्व का एक दूसरा प्रमाण है। क्योकि, उसने सृष्टि के प्रत्येक प्राणी (मनुष्य) को, वैसा विशिष्ट यन्त्र प्रदान किया है, जो दिक्, काल, जगत्, प्रकृति-विधान, सामाजिक पूर्वाग्रहो और शासन-समुत्पादित (उत्पन्न) बाध्यताओ इत्यादि की सीमाओ से मुक्त हो मकता है, और ऊपर और ऊपर उठते हुए परमात्मा तक पहुँच जाता है। प्रत्येक मनुष्य ऐसा कर सकता है, क्योकि उसके लिए किसी पार्थिव सम्पदा की आवश्यकता नही। वह आत्मनिवृत्त हो सकता है और अपनी चेतना के अन्तस्तम मे आसीन सर्वशक्तिमान् सर्वदर्शी परमात्मा को अपने श्रद्धा-भक्ति-ज्ञान के साथ प्यार कर सकता है। यह दीन से दीन, अधम से अधम और मूर्ख से मूर्ख तक के लिये भी सम्भव है। और, यह बडे-से-बडे, महान्-से-महान् के लिये भी असम्भव हो सकता है। नम्र और निर्बल के लिये तो यह आसान है। परम चेतना या सार्वभौम चेतना के इस कृपा-विधान के द्वारा हम परमात्मा (के अस्तित्व) का प्रमाण और उसका न्याय, अनुभूति (एहसास) और पता पाते है। रामायण की चौपाई—तुलसीदास जैसे भक्त की लिखी हुई, चाहे उनके मन मे ये विचार आये हो या राम के मन मे—'प्रियाहीन डरपत मन मोरा' इत्यादि शुष्क आध्यात्मिकता के परे 'वास्तविकता' का बोध कराते है, उसकी झलक दिखलाते है। यह सब समझना जरा मुश्किल पडता है।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना (एवरी माइण्ड इज डिफरेण्ट)। जिसे एक दिन लोग मोती का हार पहनाकर आदर और पूजा करते है, उसे ही पीछे मोची (जूते) की माला पहनाकर तिरस्कृत और अपमानित करते है। एक आदमी के साथ जो पदाधिकारी समादृत, सुप्रिय और सुपात्र माना जाता था, दूसरे के साथ वही अपेक्षित 'परसोना नानग्रेटा' बन जाता है। जो वस्तु अपने ही को पहले अच्छी लगी, अब अपनी ही आँखो को बुरी लगने लगती है। पाप-पुण्य कुछ भी नही है, यह हमारे दृष्टिकोण का दोष है। हम परिस्थितियो के दास है। परमात्मा ने मनुष्य को बनाया—यह सच हो या न भी हो, लेकिन यह निश्चित है कि मनुष्य ने परमात्मा को बनाया है। चूँकि मनुष्य ने परमात्मा की अनिवार्यता महसूस की और वेदो के समय से ही अधिसख्य मनुष्यो और उनके आत्मा को परमात्मा का आश्रय एव अनुक्रोश (कृपा) मिलता आया है, अत परमात्मा के विरुद्ध ढेर-के-ढेर 'तर्को' के बावजूद मनुष्य ने उसे बिसारा नही है। यदि परमात्मा नितान्त कपोल-कल्पित या कल्पना-मात्र होता, तो मनुष्य को जीवन-भर उसकी तलाश की क्या जरूरत थी—जैसा हजारो-हजार वर्षो से इस (पृथ्वी) ग्रह पर जीवन के क्रम मे परमात्मा की खोज (प्राप्ति) की कोशिशे जारी है। आखिर मनुष्य को ईश्वर-अविश्वासी और नास्तिक होने से कौन रोके रहा ?

यदि मनुष्य की मनोभूमि (मनोविज्ञान) सर्वशक्तिमान् परमात्मा की आस्था के प्रबल और शाश्वत प्रभाव से परिप्लुत है, तो सिद्ध है कि या तो परमात्मा का अस्तित्व है या मनुष्य के आत्मा मे ईश्वर अनिवार्य रूप से विद्यमान है। ईश्वर का अस्तित्व नही है या ईश्वर ने सृष्टि नही की—इस धारणा की अपेक्षा यदि यह विद्यमानता (ईश्वर की विद्यमानता) प्रबलतर है, तो मनुष्य को, उन दार्शनिको और उन वैज्ञानिको को, यह मानना होगा कि रॉकेट, रेडियो, ग्रामोफोन, टेलीविजन, टेलीफोन और टेलीप्रिण्टर, इत्यादि असम्भव चीजो की सृष्टि की तरह ईश्वर भी बना हुआ है।

मनुष्यो (वैज्ञानिको) ने अपनी कोशिशो से मनुष्यो के लिए आकाश से बाहर एक अलग आवास बनाया। नील आर्मस्ट्रॉग ने पहला मानवीय चरण चन्द्रतल पर रखा। बिजली मौजूद थी, लेकिन वैज्ञानिको ने शक्ति के इस स्वरूप को, मनुष्य की जानकारी और उपयोगिता के लिये 'बनाया'। उसी तरह ईश्वर तो है, लेकिन वैज्ञानिको को उन नास्तिको और अज्ञेयवादियो के लिये,—जिसे आविष्कार होने के पहले भी, बिजली की जानकारी थी,—ईश्वर का निर्माण करना पड सका। राइट बन्धुओ से पहले आकाश मे उडने की आशा कौन कर सका था ? एक अरसे से आविष्कार और विकास के बाद भी बिजली और चुम्बक की निश्चित सीमा की जानकारी मनुष्य को है क्या ?

यदि सृष्टि नही थी, तो मुझे कहिये कि वह 'सार्वभौम चेतना' क्या सोच रही होगी और क्या कर रही होगी ? और, जब समस्त चेतना सार्वभौम चेतना मे, तथा समस्त सृष्टि उस एक स्रष्टा मे, लीन हो जाय, तो क्या होगा ? इसलिये स्रष्टा को सृष्टि करनी पडी। और, चूंकि स्वय उसके सिवा कुछ भी नही है, इसलिये भी उसे किसी चीज की

सृष्टि नही करनी पड सकती है। तब स्थिति समुद्र और उसकी लहरो की तरह हो जायगी कि लहरे जिससे जनमी, उसी मे समा गयी। यह एक 'लीला' कही जा सकती है। लेकिन, यह एक पागल के प्रलाप या कल्पना की तरह भी मालूम होती है। या एक बच्चे की अनावश्यक क्रीडा की तरह, जिसमे उसकी देह ही उसका खिलौना है या वह स्वय ही अपना खिलौना है अथवा समस्त सृष्टि स्रष्टा-मानस मे एक विचार की तरह हो सकती है। एक राजा ने सहस्र सन्ताने पैदा की—राजा उन सारे बच्चो और अपने राजकाज के बारे मे जानकारी रखता है। लेकिन, वे बच्चे तो केवल अपने और अपने उन सीमित वातावरण के बारे मे ही जानते है।

'सयोग' (चान्म)।

विश्व के अधिसख्य (इन्न्युमरेब्ल) विधानो मे एक। प्रकृति के अन्य किसी भी विधान के इतना ही (की तरह ही) निश्चित। प्राकृतिक विधानो मे किसी से कम नही। बिधना के विधान के साथ कही कोई 'अनिश्चितता' नही जुडी हुई है। 'सयोग'-विधान के साथ भी। ऐसा ही है। चुनाचे 'होनी' के साथ 'अनहोनी' का कोई लेबुल कतई नही लगा हुआ है। 'धोखाधडी' 'ठग-बटमारी' जैसा कुछ नही है। यह प्रकृति अथवा इसके नियामक और स्रष्टा, प्रजापति, जगदीश्वर, की न अटकलबाजी है, न सट्टेबाजी, न खयाली पुलाव, न अव्यवहार्य परिकल्पना, न अनुमान। यह अप्रत्याशित दुर्घटना, अनियमित उपपात या अकारण उत्पात का समानार्थी नही। यह वह (आईन) (विधान) है, जो उन घटनाओ का शास्ता (शासक) है, जिसके लिए हम तैयार नही रहते या जिसको भॉप नही सकते, जिसका भविष्यदर्शन (अग्रदृष्टि), भविष्यवाचन (भविष्य-वार्णा, आगम-कथन) या भाष्य (व्याख्या, स्पष्टीकरण) नही किया जा सकता, जिसकी सफाई नही दी जा सकती। 'सयोग' भ्रमात्मक विधान, दैवात् अनथक व्यतिक्रम, 'छली-कपटी' कानून को समझने, विवेचित करने, नियन्त्रित-सचालित करने या काम मे लाने (उपयुक्त करने)की मानवीय असमर्थता की अभिव्यक्ति है। जो गति-विधि पकड के परे, 'असगति' मे आलिगित (परिरम्भित, सश्लिष्ट, सटा-जुडा हुआ), समझ के बाहर एव औचित्य की दहलीज पर हक्कीबक्की डायन-सी खडी दीख पडी, उसे ही 'सयोग' की सज्ञा दी गयी।

सृष्टि को ईश्वर की एक कृति मानने के बजाय इसे 'सयोग' की उपलब्धि मानने-वालो के उपभोग (कजम्पशन) के लिए यह सक्षेपत स्पष्ट (ब्लण्टली) कह दिया जा सकता है कि 'सयोग' न सर्वसमर्थ है, न सर्वशक्तिमान् है। और, यह कि ईश्वर के अनेक नामो, उपाधियो तथा गुणो की भीड मे (तालिका मे) 'सयोग' भी सूचित (लिस्टेड) है। सशयवादियो (एग्नॉस्टिक्स) की खातिर यह कहा जा सकता है कि अगर वे चाहे, तो 'सयोग' को बडे अक्षरो मे लिखकर 'स्रष्टा' या 'परमात्मा' का पर्यायवाची या द्योतक मान ले। उससे कोई बात बनने-बिगडने को नही। 'सयोग'—'स्रष्टा' यह कथन (धारणा, व्यक्तव्य) सत्य से बहुत दूर है, लेकिन इसे लीलना (गीलना) अत्या-धुनिक कण्ठो के लिए शायद सुगम पडे।

यह बहुत ज्यादा अविश्वसनीय मालूम होता है कि इस असंदिग्ध, नियमनिष्ठ, सूक्ष्म, सुस्पष्ट, परिशुद्ध और यथार्थ सुन्दर सृष्टि को सार्वभौम चेतना या परमात्मा की प्रत्यक्ष (प्रकट) बुद्धिमत्ता के श्रेय की अपेक्षा 'सयोग' से सम्बद्ध किया जाय।

यह तथ्य है कि समस्त विश्व किसी-न-किसी तरह प्रत्यक्ष (स्पष्ट, सीधा, दिष्ट) अथवा परोक्ष रूप से एक सूत्र मे सग्रथित है, गुँथा हुआ है। और, एक-से समान विधानो के द्वारा शासित, सचालित और प्रेरित है। इससे स्पष्टत सिद्ध होता है कि एक 'सयोग-समूह' एक दुर्निवार अप्रत्याशित निराधार अव्याख्येय (अन-एक्सप्लि-केबल) घटनाओ की टोकरी-गठरी, होने के बजाय यह सृष्टि किसी एक परमकुशल स्रष्टा का हस्तशिल्प है। किसी परम सनेही कुम्हार (कुम्भकार) का विराट् (महा-काय) और विलक्षण घट है।

'सयोग' का कोई भविष्य नही हो सकता। इसका कोई भरोसा नही। कोई आधार नही। ऐसे 'सयोग' के सलीब पर टँगी सृष्टि कबकी न ढूह बन गयी होती, विध्वस्त हो गयी होती। कुल-के-कुल, सब, वैज्ञानिक अनुसन्धान झूठ बन गये होते। उनके 'सबूत' की नीव ही कोड दी गयी होती। वास्तव मे (वस्तुत) स्वय 'सत्य' का व्यक्तित्व भी एक मूर्ख-की-प्रत्याशा छोडकर और कुछ न होता। 'सत्य' चान्स नही ले सकता। चान्स की अन्धेरनगरी मे कोई योजना नही बन सकती, किसी भी तरह की व्यवस्था नही खडी हो सकती। ताश का घर। रेत का मकान। सृष्टि के प्रारम्भ से प्रलय तक कही 'सयोग' का साम्राज्य टिक सकता था! तात्त्विकत 'चान्स' का सच पूछिये तो कोई अस्तित्व है नही। प्राकृतिक आईन की धाराओ के बाहर, उसके सुदृढ क्रमो से अलग, 'चान्स' की अपनी कोई निजी पक्ति नही है, कोई खास परिवेश नही है। प्रकृति के स्पष्ट विधान और अस्पष्ट 'सयोग' ये दोनो तरह के कानून सृष्टि के पेचीले कारोबार मे ठीक-ठीक, मुनासिब ढग से, फिट होने (बैठ जाने) के लिए पहले से ही जुटे रहते है, पूर्वयोजित (प्री-प्लैण्ड) 'सयोग' प्राकृतिक विधान की परिधि या शृ खला से भागा हुआ कोई रेनीगेड या विश्वासघाती या आवारा या पागल या उच्छृ खल तत्त्व या तरीका नही है। यह एक प्रकार का आश्वासन और प्रत्याभूति (गारण्टी) है यह जताने के लिए कि जो पहले कभी घट चुका है, वह फिर भी घट सकता है। विश्व-इतिहास मे। कालान्तर मे। कही भी। कभी भी। 'चान्स' मनुष्य की शक्ति और सीमा और पहुँच, और पूर्वाग्रह, के परे (पार) सर्वशक्तिमान् के हाथ का हथकण्डा नही, वरन् एक 'तिलस्मी' छडी है, जिसे परमात्मा प्रशासनिक नियन्त्रण के लिए चलाता है। किसी खास मौके पर, किसी खास मतलब से। उसका लक्ष्य चाहे तत्काल मालूम न हो पाये, लेकिन काला-न्तर मे वह अक्सर प्रत्यक्ष हो जाता है। मुश्किल यह है कि 'कालो ह्यय निरवधि-र्विपुला च पृथ्वी।' और, वर्त्तमान उसे सत्यापित (भेरिफाइ) और प्रमाणित करने के लिए रुका नही रहता। सबूत पेश होने के पहले ही मर गया होता है। और इतिहास ?—वह कभी साक्षी रह पाया, कभी लिखा ही नही गया। यह विभु को

बे-पानी नही करता, बल्कि प्रभु की सत्ता मे चार चाँद लगाता है (तु० म्युटेशन्स, आकस्मिक डिसकाभरीज, आविष्कार, प्रोडीजिज इत्यादि)। कभी विकास के लिए धरातल निर्माण करता है। कुछ लोग इतने क्रूर-हृदय, पत्थर-दिल होते है कि वे बदकिस्मती और (जुर्मी-) सजा की बातो के सिवा कुछ सुनना पसन्द नही करते। आँसुओ से पुष्ट (परिशुद्ध) पीडा की छाँव मे ही ऐसे बुरे (बेदर्द, मनहूस) व्यक्ति अपनी मजिल (विकास, प्रगति) की ओर पहला कदम उठाते है। भले लोग भी रोते और आँसू बहाते है, मगर इनके आँसू दया और करुणा के झोके मे छलकते हे। पर-दु ख-कानरता से पसीजकर।

प्रकृति दण्ड देनेवाली प्रतीत होती है। लेकिन, प्रकृति के द्वारा दी गयी सजा (दण्ड) मानवीय धैर्य और सहनशीलता की हद नही तोडती (परे नही होती)।

१ यह या तो बहुत हल्की या थोडी या जितना 'उचित', उससे कम होती है। (एक व्यक्ति १० व्यक्तियो को मार सकता है, पर उसे एक ही बार मरना होगा)।

२ यह समान होती है (पाप, न कि 'पापियो' के लिए)। जैसी करनी वैसी भरनी।

३ कष्ट सपने की तरह अवास्तविक है।

(तुल्य—गोपियो के आँसू, हर्ष या आत्महत्या के आँसू)

सयोग,—एक चमत्कार, जो विस्मित करने के लिए फेका, उछाला या उगला गया है। एक भवितव्यता (डेस्टिनी) मनुष्य के हुक्म और प्रभाव से परे। यह एक आपत्कालीन (तात्कालिक तात्क्षणिक) सरकारी अध्यादेश फरमान (आर्डिनेन्स) के जैसा है, एक किसी के स्वभाव का मचल जाने (मचलने) (टैण्ट्रम) जैसा। एक शतरज की शह, जिसमे हार-जीत पिरोयी हुई हो। एक असाधारण गीति-स्वर-लहरी (तरग, तान सुर), जिसे गायक ने पहले से छिपा रखी थी और जिसका पता श्रोताओ को नही था। प्रकृति को सँवारना इस बेहतरीन तरीके से कि कही खोट न (हो) रह जाय। यह क्या अकस्मात् हो गया होगा ? यह क्या कोई आकस्मिक घटना हो सकती है ?

आदमी किन कारणो से बदल सकता है ?

१ जन्म से—बाय टेकिंग बर्थ।

दो बार जन्म—(क) गर्भाशय मे (इन युटरस) (गर्भाधान) (कनसेप्सन), (ख) प्रसव होने पर (ऑन डेलिवरी) (गर्भ-निर्गत) (गर्भ से बाहर)।

तु० अण्डज।

तीन बार जन्म—(क) गर्भाधान (कनसेप्सन), (ख) अण्डा देना (लेइग ऑव एग), (ग) अण्डा फोडना (हेचिंग)।

२ अनुभव (एक्सपीरियस)।

३ प्रशिक्षा (ट्रेनिंग), शिक्षा (एडुकेशन) (तु० 'द्विज')।

४ वातावरण (इनवायरनमेण्ट)।

५ बात की चोट से।

६ औषधि (ड्रग)।
७ रोग—व्याधि (शारीरिक)। आधि (मानसिक)।
८ मन्त्र से।
९ प्रेतबाधा (पजेस्ड बाइ स्प्रिट)।
१० समाधि से।
११ गुरु या प्रभु-कृपा से।
१२ कान भरना (पब्लिसिटी-प्रोपेगैण्डा)
१३ उदाहरण (एक्जाम्पुल) से।
१४ अवस्था (आयु)—हार्मोन ऐण्ड अदर फिजिओलॉजिकल चेंजेज।
१५ मृत्यु से।
१६ पश्चात्ताप (रिपेण्टेन्स), सत्य-स्वीकार (कनफेसन),
अपराध-भय (फीअर ऑव गिल्ट)।
१७ उसके प्रति दूसरो का व्यवहार।
(बिहेविअर ऑव अदर्स टुवर्ड्स हिम)
१८ जजा (पुरस्कार) और सजा (दण्ड)।
१९ आवश्यकता (नीड) से।

1 God is
परमात्मा (ईश्वर) है।

2 He is in the statum continuum
वह स्थिति-सातत्य मे है, अर्थात् वह सतत स्थितिवान् है।

3 Statum continuum affects the 'vibrations' of all (Gross and Subtle) and thus brings about changes in their state
स्थिति-सातत्य सूक्ष्म और स्थूल सबके 'कम्पनो' को प्रभावित करता है और इस प्रकार यह उनकी स्थितियो मे परिवर्त्तन लाता है।

4 God will be discovered by (through) Science-and-Humanities.
परमात्मा (ईश्वर) विज्ञान और कला के द्वारा खोजा (खोज निकाला) जायगा।

5 All exist on this canvas of statum continuum like pictures and drawings—the 'living' as well as the 'dead', the 'time' as well as the 'space' The statum continuum, by altering its vibratory state, created by itself and from itself the Universe What emanates from it may subside (merge) (disappear) into it

जीवन्त तथा मृत, दिक् और काल—सभी इस स्थिति-सातत्य के चित्रफलक पर चित्र और चित्रांकन की तरह है। स्थिति-सातत्य ने अपनी कम्पनकारी अवस्था (स्थिति) को परिवर्त्तित कर अपने मे से और अपने द्वारा विश्व का सर्जन किया। जो कुछ इससे जन्म लेता है, वह इसी मे समा जा (सक)ता है।

6 The 'gross' and the subtle will meet one day (cf genes) (cf oneness of matter and energy) (cf unity of energies) (cf the border-land dim between life and death)

'स्थूल' और 'सूक्ष्म' का मिलन निश्चित है।

7 Nothing is impossible Not even exceptions

कुछ भी असम्भव नही है। अपवाद भी नही।

8 By laws of nature the cause is (gets) transformed into effect,

प्रकृति-विधान के द्वारा कारण प्रभाव (परिणाम) मे परिणत हो जाता है।

9 All are unique No two things are exactly alike Not even any two creatures, any two incidences, any two minds or the effect of any two things on any two persons Noteven any two atoms or compounds or crystals

सभी अनुपम (अप्रतिम) (अद्वितीय) है। कोई दो चीजे हू-ब-हू एक-सी नही है।

10 Everything has three basic effects—'Good', 'Bad', 'Neutral' (Indifferent)

प्रत्येक वस्तु के तीन मौलिक (बुनियादी) परिणाम है—अच्छा, बुरा और उदासीन (तटस्थ)। —त्रिगुणात्मक सृष्टि।

11 All that happens in this Universe at any time or any where in space affects all the creation (every creature of this Universe)—Law of synchronicity

किसी भी दिक्काल मे, इस विश्व मे कही भी जो कुछ घटित होता है, उससे समस्त विश्व और इसका प्रत्येक प्राणी प्रभावित होते है। समकालिकता का विधान (समवेत सिद्धान्त)।

12 All of this Universe is bound together through laws of cause and effect Everything influences everything

विश्व की सभी वस्तुएँ कार्य और कारण के विधानो से एक साथ जुडी है। प्रत्येक वस्तु प्रत्येक वस्तु (हर चीज) (वस्तु-स्थिति) को प्रभावित करती है।

13 All souls are one kind of 'energy (?)' but enwrapped in desire they become different (जीवात्माएँ) The Unity of souls The Diversity of जीवात्माएँ। It is a type of creation

सभी आत्मा ऊर्जा के एक ही प्रकार है, लेकिन कामना (इच्छा) मे आबद्ध होकर वे विभिन्न (विविध) जीवात्मा हो गये। आत्मा की एकता। जीवात्मा की अनेकता (विविधता)। यह सृष्टि का एक प्रकार है।

14 No two patients and their diseases and their treatments and the effect of drugs on them and at different times and environment are exactly alike Treatment must be tailored Ultimately there will be as many medicines as diseases and patients and they will be 'specific' in their effect And then computors will have to be used

विभिन्न काल तथा वातावरण मे किसी दो रोगियो के रोग, उनकी चिकित्सा तथा उनपर औषधियो के प्रभाव (परिणाम) बिलकुल एक जैसे नही होते। चिकित्सा मे अन्तत उतनी ही दवाएँ होगी, जितने कि रोगी और रोग होगे और ये (दवायें) अपने प्रभाव (परिणाम) मे विशिष्ट होगी। और तब, कम्प्यूटरो का प्रयोग करना पडेगा।

15 Everything has two parts—(1) good and (2) bad
Even God can have adverse effect on fools

प्रत्येक वस्तु के दो भाग (पहलू) है—(१) अच्छा (भला) और (२) बुरा।
मूर्खो पर परमात्मा (ईश्वर) का असर भी उल्टा हो सकता है।

16 Destiny is a reality Inheritance overpowers environment Destiny can be moulded according to the (i) Will (ii) Effort (iii) Environment and (iv) Accidents

नियति (भवितव्यता) एक वास्तविकता है। उत्तराधिकार (पैतृक सम्पत्ति) वातावरण पर विजय प्राप्त कर सकता है। (अर्थात्, वातावरण को अपने अनुकूल कर सकता है)। नियति (क) इच्छा, (ख) यत्न, (ग) वातावरण और (घ) दुर्घटनाओ के अनुसार बनायी (ढाली) (बदली) जा सकती है।

17 Our body is our best friend and our greatest responsibility It is the liason between our material earthly existence and our 'Subtler' existence after our death Nothing can be achieved in this world without the help of this most wonderful machine It's a gift which we must maintain properly and take the best care of

हमारा शरीर ही हमारा सबसे अच्छा सखा और सबसे बडा दायित्व है। यह हमारे भौतिक एव सासारिक अस्तित्व और निधनोत्तर सूक्ष्मतर अस्तित्व के बीच सम्पर्क (सयोग)-सूत्र है। इस परम विचित्र यन्त्र की सहायता के बिना इस दुनिया मे कुछ भी नही पाया जा सकता। यह एक उपहार (भेट) है, जिसे उचित तरीके से इमे बरकरार रखना चाहिये और अच्छी-से-अच्छी देखभाल करनी चाहिये।

18 The personal good-benefit must be merged into the general good Selfishness must give way (be replaced) to selflessness as far as possible

वैयक्तिक हित (अच्छाई, भलाई) लाभ को समष्टि-हित मे मिल जाना (मिला देना) चाहिये। जहाँतक सम्भव हो सके, नि स्वार्थता को स्वार्थपरता की जगह पर जमना चाहिये।

19 We exist even after our death Death is not our end, nothing is destroyed 'पिता वै जायते पुत्र'। We could not exist today if 'all' of our all the ancestors had been completely annihilated

मृत्यु के उपरान्त भी हमारा अस्तित्व रहता है। मृत्यु हमारा अन्त नही है। कुछ भी विनष्ट नहीं होता। 'पिता वै जायते पुत्र'। आज हमारा अस्तित्व नही रहता, यदि हमारे कुल पूर्वज पूर्णत विनष्ट हो गये होते।

20 All men/women are related (through the umbılıcal cord bındıng us to the womb of Mother Nature)

सभी पुरुष-स्त्री (नाभिडोर द्वारा प्रकृति माता के गर्भ से आबद्ध) सम्बद्ध है।

21 The rıver of lıfe ıs concerned wıth ıts flow of progress, ıt bothers not who ıs floatıng ın ıt, the swımmer or the dead body, the thırsty or the sea-pırate

जीवन की सरिता (नदी) अपने प्रगति-प्रवाह से जुडी हुई है। इसमे कौन बहता जा रहा है, कोई सजीव, निर्जीव, जिन्दा या मुरदा, प्यासा या कि समुद्री डाकुओ का बेडा या जत्था, यह इसकी फिक्र नही करती।

22 Faıth has the power to move mountaıns It works by changıng our thought process as also that of other men (people) concerned (cf war) (cf our struggle for Independence) God's grace works ın a sımılar fashıon.

विश्वास (आस्था) मे पहाड को विचलित कर देने की शक्ति है। यह हमारी तथा दूसरो की भी विचार-प्रक्रिया को बदलने का कार्य करता है (जैसे युद्ध-भावना, स्वातन्त्र्य-सग्राम की भावना)। इसी प्रकार से परमात्मा का अनुग्रह भी काम करता है।

23 God ıs सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सदा, (शाश्वत) सबका, सर्वस्व। The statum contınuum ıs सवेदनशील It loves (cf mother) and protects and responds to faıth and prayers

परमात्मा (ईश्वर) सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सदा (शाश्वत) सबका और सर्वस्व है। स्थिति-सातत्य सवेदनशील है। यह प्यार करता और रक्षा भी करता है और विश्वास और प्रार्थना का प्रत्युत्तर भी देता है।

24 सर्वोदय ıs the best of socıal justıce today

आज सामाजिक न्याय के लिए सर्वोदय सबसे अच्छा है।

25 To accept the benefits of favourıtısm and nepotısm are undemocratıc

पक्षपात और सम्बन्धवाद से लाभ उठाना अजनतान्त्रिक है।

26 To ınjure (ı) Physıcally (ıı) Mentally (ııı) Spırıtually, ıs to cause vıolence To human problems we should seek non-vıolent solutıons Non-vıolence ıs the weapon of courage It's hand-made ıs Love and Truth

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आघात पहुँचाना हिसा है। हमे मानवीय समस्याओ का अहिंसक समाधान खोजना चाहिये। अहिंसा हिम्मत का हथियार है। प्रेम और सचाई इसके सगो-साथी है।

27 All crımes arıse from abnormal thınkıng Many apparently 'normal' people are mentally dıseased and abnormally motıvated All socıal and judıcıal and admınıstratıve justıce should take note of these And the 'Judges' too may be mentally 'bound', 'abnormal' or

'motivated' Hence committee of experts should sit on judgment and legal help and advocacy (in the open) are essential for justice. Laws should be 'humane'

असामान्य चिन्तन से ही सभी अपराध उत्पन्न होते है। बहुत लोग जो प्रत्यक्षत सामान्य लगते है, मानसिक तौर पर बीमार और असामान्य रूप से प्रेरित रहते है। सभी सामाजिक, न्यायिक तथा प्रशासकीय न्याय को इनका ध्यान रखना चाहिये और न्यायाधीश भी मानसिक तौर पर बँधा हुआ, असामान्य और विशेषोन्मुख (पूर्वाग्रह-ग्रस्त) हो सकते है। इसलिए, विशेषज्ञ-समिति को न्याय के लिए बैठना चाहिये तथा वैध सहायता और वकालत (समर्थन) (खुले तौर पर) न्याय के लिये आवश्यक है। विधानो (कानूनो) को मानवीय होने चाहिये।

28 There should be a participation of the governed and the governor, the manufacturer and the buyer, the giver and the receiver

शासक, शासित, क्रेता, ग्राहक, दाता तथा पाता की एक साझेदारी चाहिये।

29 Self control and self improvement is easier through prayer

आत्मनियन्त्रण (सयम) और आत्म-उन्नयन (विकास) प्रार्थना के द्वारा बहुत आसान है।

30 Man has evolved through self-control, self-education and self-sacrifice and not through 'Natural selection' or through 'survival of the fittest' Darwin's law is perhaps for the animal and vegetable kingdom (flora and fauna) It does not seem to apply to 'Homosapiens' The introduction of man's mind in creation is not during the course of evolution as Darwin would like us to believe Man has been the creator of his environments, the adaptor and adjuster He (mind) is शाश्वत। He is a different kind of creation just as the plants are different from animals

मनुष्य ने आत्मसयम, आत्मशिक्षा तथा आत्मत्याग के बल पर ही विकास किया है, न कि प्राकृतिक समाधान या 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के सिद्धान्त के द्वारा। डार्विन का नियम (विकासवाद) सम्भवत पशुओ और वनस्पतियो के लिये ही है। यह मानव पर लागू नही होता। विकास के क्रम मे मानव का अन्त करण मानस (माइण्ड) उदित नही हुआ। मनुष्य अपने परिवेशो (वातावरणो) का विधायक, पालक तथा अभिनियोजक (एडजस्टर) रहा है। वह (मानस, मनस्) शाश्वत है। वह एक भिन्न प्रकार की सृष्टि है, जैसा कि पौधे पशुओ से भिन्न प्रकार के है।

31 Love is the most powerful magnet

प्रेम सर्वाधिक शक्तिशाली चुम्बक है।

३२ अपने सुधार मे ही अपना विकास निहित है।

३३ व्यक्तिगत प्रभाव के लिए अपना और दूसरे का व्यक्तित्व दोनो प्रधान है। दृश्य एक है, द्रष्टा अनेक, प्रभाव भिन्न।

३४ कार्य के क्षेत्र मे कोई छोटा-बडा नही है। कर्म महान् है।

३५ व्यक्तिगत धर्म, सामाजिक धर्म, देश, ससार और भगवान् के प्रति अपने धर्म को पूरा करना है।

36 Energy can be transformed into matter and vice-versa Hence materialisation of spirit is possible

ऊर्जा का पदार्थ मे और पदार्थ का ऊर्जा मे रूपान्तरण हो सकता है। इसलिए, आत्मा का भौतिकीकरण सम्भव है।

३७ भगवान् के सिखाने के भी अनेक ढग है और अपनाने के भी विविध तरीके है।

38 Energy and matter are undestructible

ऊर्जा और पदार्थ अविनश्वर है।

39 The end ends in the beginning Life is a cycle Natural processes run in cycles

अन्त का अन्त प्रारम्भ मे होता है। जीवन एक चक्र है। प्राकृतिक प्रक्रियाएँ चक्रो मे चलती है।

40 What is born will die, what is created must be destroyed

जो जनमता है, वह मरता है, जो बना है, वह अवश्य विनष्ट होगा।

41 Everything is changing all the time Nothing is static

प्रत्येक वस्तु हमेशा बदल रही है। कुछ भी स्थिर नही है।

42 For every kind of cell and for every kind of its function there will be different kind (s) of medicines—cf effect of vitamins, haematinics, anti-convulsants, antibiotics, etc etc

प्रत्येक प्रकार के (सेल) के लिए तथा इसके कार्य के हर प्रकार के लिए खास तरह की दवाये होगी।

४३ व्यक्ति के निज विकास मे जगत् का (सबका) विकास (सुधार) निहित है।

44 Service to the neighbour must come first—By preference we should use the things in our neighbourhood

पडोसियो की सेवा को प्राथमिकता मिलनी चाहिये। हमे अपने पडोस मे की स्वदेशी चीजो का उपयोग करना चाहिए। उन्ही को वरीयता देनी चाहिये।

45 The theory of Origin and Evolution as propounded by Darwin is neither the 'only', nor the 'pure', nor the 'whole'-truth (Reptiles died as a group Mammals did not evolve from them Man had a separate origin Brain Vs Mind) 'Rational'-'Intelligence' seems to have appeared suddenly with tools and language Man has gradually progressed Learning and Education, Technology and Culture, Philosophy and Science have progressively bettered human achievements and added ever-increasing dimensions and facets to human society

डार्विन द्वारा प्रवर्त्तित विकासवाद का सिद्धान्त भ्रामक है। (तु० सरीसृप का समूह-बद्ध मृत होना। स्तनधारी जीवो का विकास उससे नही हुआ। मनुष्य का एक पृथक् मूल है।) (मस्तिष्क बनाम अन्त करण)—यह प्रतीत होता है कि विवेकशील (विचारशील) (रैशनल)-मेधा (बुद्धि) (इनटेलिजेन्स) औजारो और भाषा के साथ एकाएक उदित (प्रगति) हुई है। शिक्षा एव ज्ञान (विद्या), प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) और सस्कृति (कल्चर), दर्शन और विज्ञान ने उत्तरोत्तर (अनुक्रमेण, क्रमश) मानवीय उपलब्धियो को श्रेयस्तर (उन्नत, सुधारा, सँवारा) किया हैं तथा मानव-समाज (ह्युमन सोसाइटी) को सदा सवर्द्धनशील (एवर इनक्रिजिग), आयामो (डायमेन्सस) और पहलुओ (फेसेट्स) से युक्त किया है।

46 The prospect of punishment and rejection by society perpetuates crime and keeps the criminal in hide-outs and the police hunting for them and for collecting evidences against them Multiplication of criminal law-courts and their appendages are thanks to this attitude The word 'crime' should go along with its definitions from the law-books 'Crime' should be considered as a mental illness, the 'criminal' as a patient Books on criminology should be replaced by books on 'therapeutics' There should be no cruel hunting of the criminal but admissions into hospitals This procedure will, to a great extent, eliminate the need for policing and for legal persuing. And the country will immediately become a country (without) Sans Crime and Sans Criminals It will atonce get rid of its 'undesirable' citizens Surely, the crime position would appreciably improve and the 'hooking-up' or 'bringing to book' or the perpetuation of sadistic approaches towards the 'hoodlums' and the 'desperadoes' will give way to sane thinking and wise approaches from both parties (sides) Exceptions will exist for exit

सामाजिक अस्वीकार (रिजेक्शन बाइ सोसाइटी) और दण्ड की आशका (सम्भावना) अपराध को कायम (जारी, बनाये) रखे हुई है, साथ ही अपराधी के फरार होने (लुकने-छिपने) और पुलिस को उसका पीछा करने (खोज-पडताल करने एव उसके सम्बन्ध मे सुबूत इकट्ठा करने) को भी। बढते हुए अपराध-विषयक अदालती कानून-कायदे और उनके अनुबन्ध उपकरण, परिशिष्ट, पुच्छ) इस प्रवृत्ति के लिए दोषी है। बेहतर है, कानूनी किताबो से 'अपराध' शब्द परिभाषाओ के साथ निकाल दिया जाय। अपराध को एक मानसिक बीमारी की मान्यता मिलनी चाहिये और अपराधी को रोगी की। अपराध-विज्ञान के बदले आरोग्य-विज्ञान को स्थान (महत्त्व) मिलना चाहिये। अपराधियो के क्रूर शिकार के बजाय उन्हे अस्पतालो मे दाखिल किया जाना चाहिये। इस प्रक्रिया (कार्यविधि) से नीति-नियमन (पॉलिसिंग) और विधि-अनुसरण (परिपालन) की आवश्यकता का बहुत हद तक उन्मूलन हो सकेगा। और

तब देश (राष्ट्र) एक देश बनेगा, जहाँ न अपराध होगे, न अपराधी। देश (राष्ट्र) अवाछनीय नागरिको से मुक्त हो जायगा। अपराध की स्थिति मे प्रशसनीय (स्पष्ट) सुधार होगे। और फिर, धर-पकड दाम-दण्ड और उपद्रवियो, उत्पातियो, गुण्डो, बदमाशो और दुराचारियो, अनाचारियो, आततायियो, उद्धतो के प्रति क्रूरता-वादी विचारो, वृत्तियो, खयालो-मनसूबो की जगह दोनो पक्ष मे स्वस्थ चिन्तन, विचार-भाव, सूझ-समझ और बुद्धियुक्त विचार-वृत्तियो की जड जमेगी (जिनके फूल-फल व्यक्ति, समाज, देश, विश्व और मानवता के लिए शाश्वत और अमोघ हित-पोषक होगे)।

जो सर्वव्यापी है वही सर्वज्ञ है। जो सेल्फ काया से सीमित है (वह सेल्फ) उसी काया के लिये है। वह काया से सम्बद्ध बात ही जानता है। स्वप्न (ड्रीम्स), सिक्स्थ सेन्स, ई० एस० पी०, विवेक, और काया के मस्तिष्क (ब्रेन)(से)(के द्वारा) को जानता है।

शिव विरूपताओ के ही देवता है। रुद्र—सहारकर्त्ता शिव का रूप। शिवा का शिव के वक्षस्थल पर खडा होना। जब रुद्र ने सहार के कार्य की अति कर दी, तब करुणामयी मातृशक्ति शिवा ने उन्हे भी रोका और रौदा। परमात्मा (अपना भी) (कही भी) अतिक्रमण नही सहता। भगवती दुर्गा के आयुध मे एक है पाश।

नारायण ससार मे भूपति भये अनेक।
'मै', 'मेरी' करि मरि गये, लै न गये तृण एक॥
हाड जरै ज्यो लाकरी केश जरै ज्यो घास।
सब जग जरता देखकर भये कबीर उदास॥
इस देही का गरब क्या काहू देह से प्रीत।
बात कहत ढहि जात है, बालू की सी भीत॥
धन यौवन यूँ जायँगे जैसे उडत कपूर।
नारायण भगवान् भज क्यो चाहत जगधूर॥

'जहाँ आसुरी, राक्षमी वृत्तियो की पूर्त्ति का अभ्यास दृढ हो गया है, वहाँ दैवी वृत्तियो का अभ्यास दृढ हो सकता है'। (पथिकजी)

'बुद्धि मे श्रद्धा की दृढता और मन मे प्रीति की प्रधानता रहती है।'

'भौतिक ज्ञान-विज्ञान से कुछ शक्ति अधिकार मे आ जाती है और शरीर एव मन के अनुकूल सुविधाये सुलभ हो जाती है, परन्तु कष्टो का अन्त नही होता। किन्तु, आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान से शान्ति सुलभ होती है, दु खो का अन्त हो जाता है।'

दि भेरी वेसिक एजम्पसस रूट आर फेब्रिक ऑव ज्योमेट्री आर फॉल्स।

परापेक्षा का त्याग स्वय मे ठहरना—स्वस्थ। राग-द्वेष, रोग-शोक, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तथा सुखद, दु खद, वेदनाओ का सदुपयोग।

कृष्ण ने अर्जुन को बार-बार कहा था—'हे कौन्तेय! तू युद्ध का निश्चय कर।' क्यो, कैसे?

(क) अन्तवन्त इमे देहा, नित्यस्योक्ता शरीरिण।
　　अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धयस्व भारत॥ (गीता, २।१८)

(ख) हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय ॥ (गीता, २।३७)

(ग) अथ चेत्त्वमिम धर्म्यं सग्राम न करिष्यसि।
ततो स्वधर्मं कीर्त्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ (गीता, २।३३)

(घ) सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ॥ (गीता, २।३४)

(च) तस्मादसक्त सतत कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुष ॥ (गीता, ३।१०)

(छ) तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसशयम् ॥ (गीता, ८।७)

कृष्ण ने समझाया कि युद्ध करना न पाप है और न पुण्य। यह एक कर्म है। धर्म की खातिर किया गया तो पुण्य, और अधर्म की राह पर किया गया, तो पाप। सुख-दु ख, लाभ-हानि, जय-पराजय सबको समान समझकर, युद्ध मे प्रवृत्त हो। धर्म का पक्ष न लेना पाप है। हत्या से अधिक बुरा धर्म की हानि है। धर्म वह है, जो धारण किया जाना चाहिये। जिसे समाज सुधार नही पायेगा उसे ले बीतेगा।

धर्म—कल्याणकारी कर्म। कर्म। विकर्म। अकर्म—अनुचित कर्म। महर्षि कपिल मुनि का साख्य-दर्शन (के प्रणेता)।

सिद्धो मे कपिल परमात्मा की विशेष विभूति है।

'सिद्धाना कपिलो मुनि ।' (गीता)

जीवात्मा अन्त करण, इन्द्रियो और शरीर पर शासन करता है। करण–यन्त्र।

अन्त करण–'चित्त' = मन + बुद्धि + अहकार। चित् + मन + बुद्धि + अहकार = मन।

बाह्यकरण = इन्द्रियाँ।

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध ।' (यो० द०, १।२)।

बाह्य इन्द्रियाँ विषयो से सम्पर्क स्थापित कर उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न करती है। विषयो का प्रभाव आत्मा (जीवात्मा) पर बुद्धि के द्वारा ही होता है।

पूर्वाग्रह (प्रीजूडिसेज)—सस्कार।

ऋतम्भरा बुद्धि सात गुणो से युक्त हो जाती है

१ ज्ञेय शून्य (जानने योग्य सब कुछ जान लिया)।
२ हेय शून्य (छोडने योग्य सब कुछ छोडा जा चुका)।
३ चिकीर्षा शून्य (करने योग्य सब कुछ कर लिया)।
४ प्राप्य-प्राप्तावस्था (पाने योग्य सब कुछ पा लिया)।
५ चित्त-कृतार्थता (अपने किये पर सन्तोष)।
६ गुणलीनता (त्रिगुण-समाप्ति)।
७ आत्मस्थिति (बुद्धि आत्मा के हित मे स्थित हो गयी, विषयासक्ति न रही। प्रलोभन न रह गया)।

ऋतम्भरा .

समाधि की सर्वश्रेष्ठ अवस्था मे बुद्धि एक अति विलक्षण शक्ति और दृष्टिवाली हो जाती है। उसे ऋतम्भरा कहते हैं। यह बुद्धि इतनी निर्मल हो जाती है कि इसका सम्बन्ध बाह्य इन्द्रियों से केवल व्यवहार का रह जाता है और चूँकि विषयो का प्रभाव आत्मा (जीवात्मा) पर बुद्धि के माध्यम से ही होता है, आत्मा विषयो से अलिप्त हो जाता है। ऐसे प्रहर मे आत्मा-परमात्मा मे सम्पर्क और फिर साक्षात्कार हो जाता है। इस अवस्था को हान, अर्थात् कैवल्यावस्था कहते है। इस अवस्था मे ऋतम्भरा बुद्धि उक्त सात गुणो से युक्त हो जाती है।

योग के आठ अग

१ यम—(क) अहिंसा, (ख) सत्य, (ग) अस्तेय, (घ) ब्रह्मचर्य और (ङ) अपरिग्रह।

२ नियम—(क) शौच, (ख) सन्तोष, (ग) तप, (घ) स्वाध्याय और (ङ) ईश्वर-प्रणिधान—ईश्वर पर भरोसा।

३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारणा, ७ ध्यान और ८ समाधि (पूर्ण एकाग्रता)।

निष्काम भाव से अनासक्त होकर ईश्वरपरायण बनकर कर्म करना।

जहाँतक अपरिग्रह का सम्बन्ध है, धन-सचय करनेवाले के द्वारा ही व्यय होना चाहिये।

समत्व-बुद्धि न्याय-बुद्धि का पर्याय है।

अहभाव (मै)–अहकार–यह वह तत्त्व है, जो वैयक्तिकता, वैविध्य, बनाये रखने के लिए उत्तरदायी है, सृष्टि (प्रकृति) मे।

ज्ञान-विज्ञान। ज्ञान=सामान्य ज्ञान। विज्ञान=विशेष ज्ञान। इन्द्रियगोचर—व्यक्त, अव्यक्त।

अव्यक्त पदार्थ (सत्ता) (मूल) (अव्यय, अक्षर, अजर)। (क) परमात्मा (आत्मतत्त्व)। (ख) जीवात्मा (चेतन-स्वरूप)। (ग) आदि प्रकृति (जड)।

जो कुछ अक्षर है, वह ब्रह्म है (ब्रह्म अक्षर है) और इनके परम स्वभाव अथवा गुणो के ज्ञान को अध्यात्म कहते है। अक्षर पदार्थ जगत् (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड) मे एक है अथवा एक-से अधिक है, यह एक भारी विवाद का विषय बना हुआ है। इसमे तीन मत है

(१) पूर्ण चराचर जगत् एक ही पदार्थ (मूल) से उत्पन्न है (अद्वैतवादी)।
 (क) मूल पदार्थ—जड, चेतनता–उसका एक रूप-मात्र। (जडवादी नास्तिक)।
 (ख) पदार्थ—परमात्मा, जडता—उसमे से ही उत्पन्न। (एकात्मवादी)।
(२) दो मूल पदार्थ—(क) आत्मतत्त्व, (ख) जड प्रकृति। (द्वैतवादी)।
(३) तीन मूल पदार्थ—(क) परमात्मा, (ख) आत्मा, (ग) प्रकृति (त्रैतवादी)।
 तेषु अहम् ते मयि न—उसमे परमात्मा तो है, परन्तु वे परमात्मा मे नही है।

अर्थात्, उनके गुण तो परमात्मा के कारण है, परमात्मा उनका आधार (मूलाधार) है।
परन्तु, वे पदार्थ न परमात्मा है और न उनके गुण ही परमात्मा के है

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो ।
प्रणव सर्ववेदेषु शब्द खे पौरुष नृषु ॥
पुण्यो गन्ध पृथिव्या च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवन सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥
बीज मा सर्वभूताना विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥
बल बलवता चाह कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥
ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि नत्वह तेषु ते मयि ॥
(गीता, ७।८,९,१०,११,१२)

भगवान् अपनी अनेकानेक विभूतियो का वर्णन करते है। सृष्टि के सब श्रेष्ठ गुण परमात्मा के कारण है। सत्त्व, रजस्, तमस्। रूप, रस, गन्ध, तेज प्रभृति। पच महाभूत, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि, अहकार।

प्रकृति के आठ रूप—पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि और अहकार।

स्थितप्रज्ञ—अचाह। सन्तोषी। शान्त। (गीता, द्वितीय अध्याय)।

धर्म (सनातन और व्यापक) के लक्षण—दस।

१ धृति, २ क्षमा, ३, दम,	धृति क्षमा दमोऽस्तेय
४ अस्तेय, ५ शौच,	शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
६ इन्द्रिय-निग्रह, ७ धी,	धीर्विद्या सत्यमक्रोधो
८ विद्या, ९ सत्य और १० अक्रोध।	दशक धर्मलक्षणम् ॥

(मनु० ७।९१, ९२)

ये सनातन धर्म देश, काल, परिस्थिति और आयु के अनुसार नही बदलते। सुख, दुख इत्यादि की अनुभूति सस्कार बन जाती है। सस्कार-गुण-कर्म। स्वभाव। (परमात्मा ने) इस सृष्टि मे स्वभाव, गुण और कर्म के विचार से चार प्रकार के लोग पैदा किये है। (कर्म, वर्ण)। (ईश्वरीय विधान)।

चातुर्वर्ण्य मया सृष्ट गुणकर्मविभागश ।

(जीवात्मा) आत्मा कर्म का कर्त्ता माना गया है। (कर्म—वह कार्य, जिसमे स्वार्थ की भावना हो)। परमात्मा अकर्त्ता है। जीवात्मा अपनी अज्ञता के कारण प्रकृति का भोग करना चाहता है। इमसे कर्म की उत्पत्ति होती है। भोग की इच्छा (कामना)। जीवात्मा अज्ञ (अज्ञानी) है और परमात्मा ज्ञानवान्। परमात्मा प्रकृति का भोग नही करता।

(जीव) आत्मा अनेक (अधिसख्य) है—अन्त करण भी अनेक है—भोग भी अनेक है—कर्म भी अनेक है। भोग के लिए व्यक्त प्रकृति के अधिसख्य रूप उपलब्ध है।

कर्म के पाँच हेतु है। (गीता, १८।१३-१४)

(१) जीवात्मा (कर्त्ता उत्तरदायी)।

(२) अधिष्ठान (शरीर) (आधार) (वह स्थान और प्रपच, जिसमे रहते हुए कर्म करना पडता है।

(३) करण—(अन्त करण, इनटरनल इन्स्ट्रूमेण्ट) (बहि करण, इन्द्रियाँ)।

(४) चेष्टा (प्राण, प्रयत्न)।

(५) देव (दैव—भाग्य) (कर्मफल)।

मन मे चाह है, कामना है। सस्कार मन पर जमते जाते (पडते) है। सस्कार से स्वभाव बनता है। बुद्धि मे गुण है। गुण तीन है—(१) सात्त्विक, (२) राजस और (३) तामस। प्रकृति भी त्रिगुणात्मक है। (बुद्धि के तीनो गुण मूल प्रकृति से आये है) मूल प्रकृति की अवस्था मे तीनो गुण साम्यावस्था (न्यूट्रल) मे रहते है।

इस साम्यावस्था (न्यूट्रैलिटी) के भग होने से जो परिस्थिति (सिचुएशन) अथवा अवस्था, अथवा परिणाम (रिजल्ट) उपस्थित होती है, उसे कहते है—'महत्'। और, महत् से सृष्टि का प्रारम्भ होता है। कर्म और फल की शृ खला मे आबद्ध पुनर्जन्म के चक्कर। (तु० ब्रह्मा के 'मानस-पुत्र', तादाद या प्रकार मे तीन, नाम के—सनन्दनादि।) त्रिगुणो (सत्त्व, रजस्, तमस्) के कम या अधिक मात्राओ मे मिश्रण के द्वारा असख्य सृष्टियाँ महत् फूट पडती है। तरगायमान।

तरग (वेभ)—(अ) लम्बाई (लेग्थ), (आ) आकार (फार्म), (इ) आवर्त्तिता (फ्रीक्वेन्सी)।

गुणो की आपसी (रिलेटिव) गौणता, प्रधानता और अनुपात। बुद्धि की प्रक्रियाओ का निर्णायक—बुद्धि, (अ) सात्त्विक, (आ) राजसिक, (इ) तामसिक का मिश्रण।

गुणो के धर्म—(अ) आकर्षण (अट्रैक्शन), (आ) अप्रीति (रिपल्सन), (इ) विषाद तटस्थता (न्यूट्रैलिटी)।

इनकी मुख्यता तथा न्यूनाधिकता—परिणामी बल (रिजल्टैण्ट फोर्स) आत्मा और मन पर प्रभाव—आत्मा द्वारा इनका प्रयोग—कर्म (गुणो का)।

दु ख के प्रकार—(१) आध्यात्मिक, (२) आधिभौतिक और (३) आधिदैविक।

जगत् मे तीन मूल पदार्थ है—(१) प्रकृति—त्रिगुणात्मक, (२) जीवात्मा—जिसकी गणना असख्य है। (३) परमात्मा—जो एक है, एकरूप, एकरस, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप।

(दृश्य) सृष्टि—व्यक्त+अनित्य।

(अदृश्य) परमात्मतत्त्व—अव्यक्त+नित्य। निरपेक्ष निश्चय, असन्दिग्ध तथ्य, निश्चितता।

'सायन्स हैज प्रूफ बट नो सरटैण्टी, रिलिजन हैज सरटैण्टी बट नो प्रूफ ।
(श्रीअरविन्द)

'विज्ञान के पास प्रमाण (सबूत) है, लेकिन निरपेक्ष निश्चय, असन्दिग्ध तथ्य, निश्चयता नही, धर्म के पास ये सब है, लेकिन प्रमाण (सबूत) नही । (श्रीअरविन्द)

बुद्धि और युक्ति । यज्ञार्थ (लोक-कल्याण के लिए किया गया) कर्म—निष्काम कर्म—आसक्ति-रहित कर्म । निष्काम भाव से कर्म करना—कर्मयोग । कर्म करते हुए कर्म से अलिप्त रहना ।

यज्ञ—कर्म करते समय एक प्रकार की भावना। यज्ञकर्म—स्वार्थ-रहित (स्वार्थ की भावना से रिक्त) कर्म—कल्याणकारी कर्म ।

ममत्वबुद्धि—न्यायबुद्धि ।

ईश्वरप्रणिधान—ईश्वरपरायण—परमात्मा के अनुगत—परमात्मा के हाथो अपने को सौप देना ।

इन्द्रियगोचर जगत् व्यक्त प्रकृति का रूपान्तर है । सम्पूर्ण जगत् मणियो की भाँति परमात्मा-रूपी सूत्र से बँधा हुआ है । हहरी (ठहरी) हुई हवा । कीटाणु ।

परमात्मा सबसे सूक्ष्म है । वह इस जगत् को धारण, उत्पन्न और प्रलय करने वाला है । वह प्रकृति और जगत् से भिन्न है ।

साम्यावस्था—सन्तुलित—(बैलेंस्ड स्टेट) अवस्था ।

सत्व, रजस्, तमस् } ये तीनो गुण प्रकृति के प्रत्येक परमाणु मे परस्पर चिपटे हुए है और एक दूसरे के आश्रित होकर रहते है । (विलीन) ।

इनको पृथक्-पृथक् करनेवाला परमात्मा है और इनके पृथक्-पृथक् करने से ही व्यक्त जगत् की रचना होती है । साम्यावस्था का भग (सृष्टि की शुरुआत) ।

कारण के दो प्रकार । जैसे, घडा । (१) उपादान कारण (मिट्टी) (प्रकृति), (२) निमित्त कारण (परमात्मा) (कुम्हार) ।

महत् (महत् बुद्धि) (एक)

अहकार—सत्त्व, रजस्, तमस् (तीन) ।

आत्मतत्त्व (जीवात्मा), जो शरीर मे रहता है, वह शरीर का उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्त्ता और भोक्ता है ।

जीवात्मा विवश है, भोग करता हुआ बँधा रहता है । जब वह परमात्मा को जान जाता है, तब सब बन्धनो से छूट जाता है ।

अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्
ज्ञात्वा देव मुच्यते सर्वपाशै ॥ (श्वे० उ०, ८)

'देअर आर मेनी वेज टू माम स्यूसाइड ब्रट वनली वन वे टू ह्यूमन सरवाइवल । इट इज दि रोड टू फेथ व्हिच इन्सपायर्स अस विथ दि स्ट्रौग होप ऑव थिंग्स टू कम ।'
(एस० राधाकृष्णन)

'हेवन ऐण्ड हेल आर नॉट फिजिकल एरिआज, ए मोल टारमेण्टेड विथ रिमोर्स फार इट्स डीड्स इज हेल ए सोल विथ सैटिस्फैक्सन ऑव लाइफ वेल लिभ्ड इज हेवन दि रिवार्ड ऑव वर्चूअस लिभिग इज दि गुड लाइफ इटसेल्फ।' (एस० राधाकृष्णन)

"पूर्णिमा।

पडितेछिलाम ग्रन्थ बसिया एकेला
सगीहीना प्रवासेर शून्य सन्ध्या वेला
करिबारे परिपूर्ण।
सौन्दर्य काहार बले
मने होलो सब मिथ्या, कवित्व कल्पना
सौन्दर्य सुरुचि रस, सकलि जल्पना
लिपि वनिकेर—अन्ध ग्रन्थ कीटगण
बहु वर्ष धरि शुधु करिछे रचन
शब्द मरीचिका जल,
अवशेष श्रान्ति मानि
तन्द्रातुर चोखे, वन्द करि ग्रन्थ खानि
घडिते देखिनु चाहि द्विप्रहर राति
चमकि आसन छाडि निबाइनु बाति।
येमनि निविल आलो, उच्छसित स्रोते
मुक्त द्वारे वातायने, चतुर्दिक होते (हते)
चकिते पडिल कक्षे बक्षे चक्षे आसि
त्रिभुवन प्लाविनी मौन सुधाहासि।
ह सुन्दरी, हे प्रेयसी, हे पूर्ण-पूर्णिमा,
अनन्तेर अन्तरशायिनी, नाहि सीमा
तव रहस्येर। एकि मिष्ट परिहासे
सशयीर शुष्क चित्त सौन्दर्य उच्छासे
मुहूर्त्ते डुबाले।
आमि गृह कोने
तर्कजाल विजडित घन वाक्य वने
शुष्कपत्र परिकीर्ण अक्षरेर पथे
एकाकी भ्रमितेछिनु शून्य मनोरथे
तोमारि सन्धाने। उद्भ्रान्त ए भकतेरे
एतक्षण घुराइले छलनार फेरे।
की जानि केमन करे लुकाये दाँडाले
एकटि क्षणिक क्षुद्र दीपेर आडाले

हे विश्वव्यापिनी लक्ष्मी ! मुग्ध कर्णपुटे
ग्रन्थ हइते गुटिकत वृथा वाक्य उठे -
आच्छन्न करिया छिल, केमने ना जानि,
लोकलोकान्तर पूर्ण तब मौनवाणी ।" (चित्रा रवीन्द्रनाथ टैगोर)

'किसी समय मै एक नाव मे अकेला रह रहा था। एक दिन सन्ध्या के समय मोमबत्ती के उजाले मे पढते-पढते बहुत रात हो गयी। श्रान्त होकर ज्योही मै मोमबत्ती बुझाकर सोने को हुआ कि उसी क्षण पूर्णिमा के चन्द्रालोक ने चारो ओर से मुक्त वातायन से प्रवेश करके मेरे उस कक्ष को परिपूर्ण कर दिया। मेरे अपने हाथ की लगायी उस एकमात्र क्षुद्र मोमबत्ती ने उस आकाशव्यापी अनन्त आलोक को मुझसे अगोचर कर रखा था। उस अपरिमेय ज्योति-सम्पद् को प्राप्त करने के लिये मुझे और कुछ भी नही करना पडा। केवल उस बत्ती को बुझा देना पडा। उसके बाद मुझे क्या मिला ? मोमबत्ती की तरह कोई हिलने-डुलने की चीज नही मिली, सन्दूक मे भरने की चीज नही मिली। मिला आलोक, आनन्द, सौन्दर्य और शान्ति। जिसे हटा दिया था, उससे बहुत अधिक प्राप्त किया था, परन्तु दोनो के पाने की पद्धति बिलकुल भिन्न थी।' (रवीन्द्रनाथ टैगोर)

'ह्यूमैनिटी इज ऑव मोर कनसर्न दैन नेशनैलिटी।' (मानवता राष्ट्रीयता से महत्तर है।)'

सत्य ज्ञानमानन्द ब्रह्म। (उपनिषद्)

ब्रह्म ही सत्य है, अन्यथा जगत् का कुछ भी सत्य नही होता।

केवल हृदय मे आग्रह उत्पन्न होते ही, उसकी उपलब्धि करने की यथार्थ इच्छा होते ही, विश्वास मे स्वत उसका आनन्द प्रवाहित होने लगता है, प्राण-मन मे स्वत उसका आनन्द स्पन्दित होने लगता है, बुद्धि मे स्वत उसका आनन्द फैलने लगता है, भोग मे स्वत उसका आनन्द प्रतिबिम्बित होते देखा जाता है। जैसे दिन के आलोक को देखने के लिये नेत्र खोलने भर की आवश्यकता है, ठीक वैसे ही ब्रह्म का आनन्द पाने के लिये मात्र हृदय उन्मीलित करने की आवश्यकता है।

ॐ भूर्भुव स्व —इस अश का नाम है 'व्याहृति'।
—चारो ओर से समेटकर लाना।
—मैं विश्व-भुवन का अधिवासी हूँ।

तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि—विश्व-प्रसविता देवता की, वरणीय शक्ति का ध्यान धरता हूँ।

धियो यो न प्रचोदयात्—जो हमारे लिये बुद्धि-वृत्तियाँ प्रेरित कर रहे है (धी–शक्ति चित्–विवेक)।

आविरावीर्मे एधि—हे स्वप्रकाश, मेरे समक्ष प्रकाशित होओ। 'सन्तोष हृदि सस्थाप्य सुखार्थी सयतो भवेत्।'

(सुखार्थी सन्तोष को हृदय मे स्थापित करके सयत हो) । सुख—सन्तोष—सयम ।

असतो मा मद्‌गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृत गमय ।

(असत् से सत्य की ओर ले जाओ, अन्धकार से ज्योति मे ले जाओ, मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ) ।

आदिम—प्रवृत्ति—(इन्सटिक्ट)—का नियन्त्रण। सामजस्य—शिव—शक्ति, प्रवृत्ति—निवृत्ति । केन्द्रानुग प्रवृत्ति और केन्द्रातिग प्रवृत्ति।

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, प्रव्रज्या ।

सन्तोष, धैर्य, क्षमा, प्रेम इत्यादि तो अन्दर मे है ।

'न तथैतानि शक्यन्ते सनियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यश ॥'

विषय का त्याग करके वैसा सयम नहीं किया जा सकता, जैसा विषय मे नियुक्त रहकर ज्ञान द्वारा किया जा सकता है । विषय मे नियुक्त न होने से ज्ञान अपूर्ण रहता है और जो सयम ज्ञान का परिणाम नही, वह पूर्ण सयम ही नही । वह तो केवल जड अभ्यास है । अनभिज्ञता है । वह प्रकृतिगत नही, मूल नहीं, बाह्य सयम है ।

'येनाह नामृता स्या किमह तेन कुर्याम् ।'

(मै जिससे अमर न होऊँ, उससे मुझे क्या करना है) ।

ईश्वर होगा, किंवा नही होगा । आजतक ईश्वर के होने न होने अथवा न होने के पक्ष या विपक्ष मे पर्याप्त सबूत कोई भी पेश न कर सका । तर्क से कोई परमात्मा के अस्तित्व के विषय मे ऐसे अकाट्य तथा प्रचुर प्रमाण न प्रस्तुत कर पाया कि जिसके आधार पर आस्तिकता जमकर बैठे । ऐसी गवाही भी न दी गयी, ऐसे दृष्टान्त भी न मिले कि जिनकी कसम खाकर आस्तिकता सुदृढ बन जाये । मन की मौज पर आस्तिक या नास्तिक बनकर कालयापन करना, समय काटना, जीते चलना, यह एक दूसरी बात रही । आँखे बन्द रखना, सोचना ही नही, सोचने की जरूरत भी महसूस न करना, सोच भी न पाना, ध्यान नही देना, यह भी कोई बात है ! भगवान् नही है । यह कोई साबित न कर सका ।

आस्तिकता अप्रमाणित रही, तो नास्तिकता भी अप्रमाणित ही रह गयी । ईश्वर है या नही, यह सवाल जैसे-का-तैसा रह गया । उत्तर नही मिला, सृष्टि स्वत बन गयी होती या किसी ने इसे बनाया होगा । अकारण कुछ होता नही, जो घटता है, उसका कोई कारण होता है, जिस वस्तु-स्थिति से सृष्टि प्रकट और प्रत्यक्ष हुई, वह वस्तु-स्थिति तो होगी ही । उस 'कारण', 'कर्त्ता' या 'करण' को खोजने का काम वैदिक काल से चलता आया है । खोज चलती रही, अनुसन्धान के नाम पर कुछ विशेष नही कर पाये । किसी भी निष्कर्ष पर पहुँच नही सके । नास्तिकता भी बे-सहारा, निरवलम्ब, पडी मुँह ताका करती है । ईश्वर नही है, इस धारणा के लिए न कोई प्रमाण है, न आधार । इस ब्रह्माण्ड मे, सृष्टि मे, अगर कोई सत्ता है, कोई विधि और

व्यवस्था है इसके सचालन मे, जो करीने का, सलीके का सगठन दीखता है, वही विधाता है, वही परमात्मा है।

अब अगर ईश्वर पर विश्वास नही जमता, तो इससे ईश्वर की तो कोई हानि है नही। लोग अकारण ही अपने को अनीश्वरवादी या नास्तिक बन जाने के लिए बाध्य करते है। माना कि ईश्वर नही है, तब इस सृष्टि की उत्पत्ति और इसका नियमन-नियन्त्रण निश्चय ही एक आकस्मिक घटना होगी, जो किसी सयोगवश घटी होगी। यह अकस्मात् कैसे घट गयी, यह सयोग कैसे आ उपस्थित हुआ ? दैवयोग से तो नही ? ग्रह-नक्षत्रो का सुसगत यातायात देखकर, ब्रह्माण्ड का असीम विस्तार का विचार कर, इस अनिवार्य, अप्रतिरोध्य, परिणाम पर पहुँचते है कि सयोग का हामी भरनेवाला मानवीय मस्तिष्क का निर्माण किसी महामानवीय मेधा की प्रेरणा से ही हुआ होगा। अचेतन सयोग के पास जीवन, चेतना तथा बुद्धि जैसी अमूल्य निधियाँ कहाँ से आयी होगी ? सूरज की समयनिष्ठता 'कर्त्तव्यपरायणता' देखिये। उसने उगने मे कभी देर न की, कभी छुट्टी पर नही गया, अपने निर्धारित समय पर वह क्षितिज के किनारे उपस्थित होता रहा दस्तवस्ता। कभी चूक नही हुई। कभी गैरहाजिर न हुआ। बाइ चान्स ही सही, कभी बीमार नही पडा, कभी व्योम मे किसी से टकरा नही गया, कभी राह से भटक नही गया।

'परमात्मा' या 'सयोग', 'देवता अथवा देव'। आप अपने लिये किसको चुनेगे ? ए वाइज एनिमी इज बेटर दैन ए फूलिश फ्रेण्ड। और हाँ, देखिये, आत्मा (जीवात्मा) की यह सम्भावना है कि वह अपनी उन्नति करता हुआ परमात्मा-सा बन जाये, लेकिन वह सयोग-सा नही बन सकता। अगर आपने 'सयोग' को अपना आराध्य देव माना है, और उसी की पूजा करते है, तो सच मानिये, आपकी मुट्ठी मे अनिश्चितता भर आयेगी और सदा 'वियोग' का ही साथ रहेगा। अनिश्चित बिसात पर आप एक निराधार, बेपेंदी के, मुहरा होगे, जो बाइ चान्स ठहरेगा, कटेगा कि मात होगा, कुछ भी नही कहा जा सकता। और कौन जाने, कही अकस्मात् जीवन का बिसात हवा मे उड न जाय, कही अनायास खेल खत्म न हो जाय। विश्व का इतिहास इसका साक्षी है। आप दो-चार पन्ने उलटकर तो देखिये। क्या से क्या हो गया, जरा-सी बात मे। एक सुवर्ण-कण भी न मिला रावण को मरती बार मे। ऐसी अप्रत्याशित घटनाओ के ऊहापोह मे, बवण्डर मे, क्या आप अपनी जीवन-नैया को 'सयोग' के मस्तूल और 'चान्स' की पतवार के सहारे उस पार ले जा सकेगे। क्या अपना मानसिक सन्तुलन ठीक रख सकेगे ? देखिये बकरी की मौत मर जाना, उन्माद और विक्षिप्तता मे अपनी जीवन-लीला का पटाक्षेप होने देना, क्या ठीक जँचता है। आशकित, असुरक्षित, असहाय। यह कैसी कोरी जिन्दगी होगी, किसी का भरोसा नही, आशा नही, बस बाइ चान्स कुछ हो जाना, कही लुप्त हो जाना। वैज्ञानिक या प्राकृतिक विधान भी 'सयोग-गत' नही चलते। उनमे भी एकनिष्ठता, निश्चयता है। फिर, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर

के आध्यात्मिक विधान क्यो कर 'आकस्मिक' होने लगे ? 'सयोग' से बने आईन-कानून मे ही घोर अनिश्चितता होनी चाहिए थी। परमात्मा के गुण। व्याख्या। वर्णन। चित्रण। विभूतियाँ। असीमता। सर्वव्यापकता।

लॉ ऑव प्रोबैबलिटी (प्रायिकता का विधान)। चान्स का गणित, उसका गुणावगुण, और उसकी व्याख्या। सम्भावना की तरी का न आने का ठिकाना, न रहने, न जाने का। उसे किस किनारे लगाइयेगा ? उसके मस्तूल, उसकी पतवार सभी अनिश्चित होगे। उसका लगर भी आवारा होगा। निर्जीव, अचेत, गूँगा-बहरा-अन्धा-अज्ञ। आकस्मिकता (चान्स) वह भला किसकी सुनेगी ? किसका लोर पोछेगी ? विधि की एक धारा-मात्र ही है न वह ? अन्तत ? लकीर का फकीर। भैंस के आगे वीणा बजेगी क्या ? उस जड कानून के साथ कैसे बैठेगा प्राण का सम्पर्क ? कैसे पूरेगी मन की मुराद ? सकल्पो का क्या होगा ? जीवन का कोई प्रोग्राम, कार्यक्रम, बन सकेगा ? सयोग की आराधना होगी, उसी का आह्वान होगा, उसी की प्रार्थना, उसी से याचना। क्या मिलेगा ? क्या फूले-फलेगा ? मन मे कौन भरेगा सुरीली तान ? किसके दिव्य सगीत से आत्मा झकृत हो उठेगा ? मूढ 'सयोग' के ?

बेहोशी मे मर जाना है, नीद बडी गहरी है, यात्रा बडी लम्बी, गन्तव्य का पता नही, अकेले की होगी राह, बचाव के लिए एक पैसा भी तो न होगा पास मे, फिर कैसे कोई करे 'चान्स' का भरोसा ? कैसे जुटाये हिम्मत ? कैसे-कैसे, कैसे जीये उसके बूते ? बोलिये न ?

परमात्मा के साये मे सन्तोष भी मिलेगा, अपना विकास तो होगा, मानवता के नित्य नये आयाम सुसज्जित और सुवासित तो होगे ? नीरसता और नीरवता तो मिटेगी।

'आकस्मिकता' का आँचल पकडकर जलील तो न होगे। उसके साये मे सुलगती बेपनाह आग मे जलेंगे तो नही। पश्चात्ताप और परवशता की बेडियाँ पैरो मे तो न पडी होगी ? मुँह पर ताले तो न जडे होगे। ऐसा तो न होगा कि हम 'किस्मत' ठोककर रह जायेंगे, किसी को कोस भी न पायेंगे, किसी को अपनी फरियाद भी न सुना पायेंगे।

However, there is a law which keeps it (-chance) bridled and prevents its running amuck

अस्तु, एक विधान (व्यवस्था) (अवश्य) है, जो इसे(चान्स को) निरकुश नही होने देता, अशिष्ट (पागल) नही होने देता।

दर्पण मे प्रतिबिम्बित दृश्य जैसे प्रामाणिक होते हुए भी यथार्थत कृत्रिम होते है, वैसे ही इन्द्रियो के माध्यम से अनुभूत जगत् भी सत्य के कितना निकट है, कहना कठिन है।

दर्पण मे दृश्य का डाला हुआ अक्स जैसे दर्पण पर कोई दाग नही छोडता, उसी तरह मानस-पटल पर तटस्थ भाव से अवलोकित चित्रो या घटनाओ की परछाई का

कोई स्थायी असर नही पडता। कोई सस्कार भी नही पडता (बनता) (फलता)। मानस-पटल आईने की तरह स्वच्छ और विमल बना रह (जा) ता है, जब 'मैं' (जीव) या 'हम' (आत्मा), परमात्मतत्त्व के (की छाया के) दर्शन, काया (मस्तिष्क) के मानसी स्तर पर, करने मे सफल होते है, जब प्रतिबिम्ब मे परमात्मा भासता है, आईने मे चेहरा नजर आता है।

मूर्त्त जगत् से अमूर्त्त सत् परमात्मा ढका हुआ है, जैसे निराकार मे आकार भर गया है, जिसके कारण आकार तो दीख पडता है, पर परोक्ष का निराकार दिखायी नही पडता।

इस शरीर मे ही 'मैं' छिपा है, 'मैं' मे ही आत्मा (हम—सेल्फ) छिपा है, आत्मा मे ही परमात्मा विद्यमान है।

जब आदमी (अन्त करण) अपनी देह को पार कर मन के पीछे, बुद्धि के पीछे, अहकार की सीमा के पीछे, आत्मा को जान जाता है, तभी वह दूसरी देहो के भीतर भी आत्मा-परमात्मा का अनुभव कर पाता है। 'प्रभु' मे ही तुम नित्य निरन्तर हो, परन्तु जब तुम्हे अपना ही सही पता नही है, तब प्रभु के नित्य योग का पता कैसे हो सकता है ?

'अज्ञान मे कोई भी पापी-पुण्यवान् का, हिसक-अहिंसक का, अधर्मी-धर्मपरायण का, चोर-साधु का, रागी-त्यागी का वेष बना लेता है। अन्तर की प्रकृति को छिपाकर आकृति को वस्त्रो से सजा लेता है—यही अहकार की विकृति है।'

जडता, मूढता, मूर्खता, अज्ञान। जैसे मधुमक्खी के छत्ते मे जीते-जागते कोष्ठो-प्रकोष्ठो के बीच कही क्वीन-बी (रानी-मधुमक्खी) रहती है और उस नगरी की सारी क्रियाये-प्रतिक्रियाये उस रानी की उपस्थिति-मात्र से प्रभावित होती रहती है।

जो देह मे लिपट जाता है और वही अटक जाता है, उस मोकाम से आगे बढने की चेष्टा नही करता, वह मुक्ति के पास फटक नही पाता। जो भागता है, वह भोगी है। जो स्थिर है, वह योगी है। उसी को विश्राम मिलता है।

निराश्रय अन्त करण अनायास ही परमाश्रय परमात्मा को पा जाता है।

जहाँ 'मैं' नही होता, वही परमात्मा होता है, वही परमशान्ति है। वही मोक्ष है। त्यागी ही शक्तिशाली होता है। त्याग से साहस और स्वतन्त्रता की उपलब्धि होती है। 'स्वतन्त्रता मे ही सत्य का साक्षात्कार होता है।' (पथिक)।

मनुष्य जिसका आश्रय लेता है, उसी के शासन मे आबद्ध होता है।

परमात्मा का ढोल बज रहा है। सुननेवालो! अपने ढोल बन्दकर उसे सुनो।

'मैं' को त्यागने की बात नही है, उसे जान लेना यथेष्ट है। यथार्थ दर्शन। ज्ञान-दृष्टि, 'तीसरे' नेत्र का खुल जाना।

'उघरहिं विमल विलोचन हिय के,
मिटहिं दोष दुख भव-रजनी के।'

'सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिताय,
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय।'

'मन विषय-रहित हो, तब ध्यान होता है। बुद्धि विचार-रहित हो, तब ज्ञान होता है।'

'यदि तुमने भगवान् का आश्रय ले लिया है, यदि तुम प्रभु के विधान को मगलमय मानते हो, यदि तुमको विश्वास है कि अन्तर्यामी समर्थ सर्वज्ञ परमात्मा से कभी भूल नही हो सकती, यदि तुम जानते हो कि जो कुछ भी अनुकूल-प्रतिकूल हो रहा है, उसे प्रभु देख रहे है, तब तुम सदा प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति मे शान्त रहकर केवल अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहो। चिन्ता, शोक, विलाप, आग्रह, दुराग्रह आने ही न दो।'

'काम-क्रोधादि विकारो से युद्ध न करो, क्योकि इन विकारो के पीछे तुम्हारी ही शक्ति है। तुम शान्त होकर एकान्त मे इन विकारो की जडो को देखो। देखते-देखते तुम इन पर विजयी बनोगे। दोषो की पूर्त्ति कदापि न करो, केवल ध्यान से देखते ही रहो।'

ध्यानावस्थ हो देखो ज्ञान की, प्रज्ञा की, देदीप्यमान सरिता का सतत प्रवाह। किनारे पर सदोष विचारो के कूडा-कर्कट बहे जा रहे है। ध्यान से देखते रहो। देखते रहो। वाछनीय विचार और मानसिक विकार आप-से-आप अनायास, सहज ही किनारे पर छूट जायेगे, फिर ज्ञान की सतत प्रवहमाण सरिता मे विलीन हो जायेगे। उनसे लडाई ठानकर बुरे विचारो को मानस मे प्रतिष्ठित मत करो, अशान्त मत बनो, शक्ति का क्षय मत होने दो।

अनेक रूपो मे एक अरूप परमात्मा विद्यमान है। बाह्य रूप मे अटको नही। रूप के पीछे अरूप का अनुभव करो।

'वह परमात्मा ही प्रत्येक प्राणी मे सुख-स्वरूप होकर सबको प्रत्येक परिस्थिति मे सन्तुष्ट कर रहा है, इसीलिए निर्धन, निर्बल, चाण्डाल, भिखारी और पशुपक्षी भी सुखी देखे जाते है।' (पथिक)

राग असीम होकर प्रेम बन जाता है। हम कैसे है? हमारा अन्त करण कितना कुशल, कितना सबल और कितना विकसित है। यह कौन जानेगा? किसे पता है कि हमारा अन्तरग कितना उदात्त है, कितना भव्य है? हमने अपने जीवन मे क्या पाया है, हमारी कितनी प्रगति हुई है? मानवता की विकास-भूमि पर हम कहाँ है? हमारा मन, हमारा चित्त, हमारा अह, हमारी बुद्धि और हमारा विवेक भी किस कोटि, वर्ग या श्रेणी के है, इसका ज्ञाता कौन है?

अपने को हम स्वय जानते है और हमको हमसे भी अधिक अच्छी तरह सर्वान्तिर्यामी परमात्मा जानता है। और कोई भी हमारे व्यक्तित्व को नही जानना। सच तो यह है कि सारी जिन्दगी हम इस ससार मे अनजाने, अकेले, और अन्य मानवो के बारे मे बस कोरे रह जाते हैं।

इसलिए भी अन्तर्मौन होकर हमको अपने-आपको ठीक से देखना-पहचानना है, आत्मसात् करना है, आत्मज्ञान प्राप्त करना है, आत्मज्ञ और स्वस्थ होना है। हम अपने दिल की बात किसको सुनाये ? किसको विश्वास दिलाये ? कौन होगा चश्मदीद गवाह हमारे अवचेतन (सब-कॉनशस) का, हमारे स्वप्नो का ? कौन होगा जामिन हमारी त्याग-तपस्या का ? सत्य और सुकर्म का ? किसके हाथ मे तराजू दे ? किसे तौलने दे ?

परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है, जिसके सामने हम एक खुली किताब है, जिसे हम अपने दिल की बात सुना सकते है, जिसका हर परिस्थिति मे भरोसा कर सकते है, गवाही सौंप सकते है। जिससे अपनी निष्पत्ति (उपलब्धि, सिद्धि) के लिए सच्ची और निष्कपट (सिनसियर) और सही (एक्युरेट) दाद पाने की आशा कर सके ? क्योकि, हमसे अनभिज्ञ दुनिया की हमारी ही प्रशसा हमारे लिए एक हास्यास्पद फरेब नही तो और क्या ?

परमात्मा ही, और सिर्फ वही, हमारे प्रेम का, हमारी बुनियादी भावनाओ का ठीक-ठीक और उचित मूल्याकन कर सकता है। और, सरगोशी (कानाफूसी, फुस-फुसाहट) के जरिये चुटकियाँ ले सकता है, मर्माहत कर सकता है, पुचकार सकता है, शाबाशी दे सकता है। वह सत्य के आधार पर होगा। गलतफहमियो मे गर्क और इससे त्रस्त, अतिरजित श्लाघा नही होगी।

अकेले मे गुफ्तगू होगी, जहाँ हम और परमात्मा होगे। और वे सच्ची बाते होगी। निश्चल। निष्कपट। निर्वस्त्र। निरावरण। कुछ हम कहेगे, कुछ वह कहेगा। कुछ हम सुनेंगे, कुछ वह सुनेगा। अन्तरतम के एकान्त मे।

भगवान् की एक कार्य-प्रणाली है। वह जो सोचता है, वह हो जाता है। उसने सोचा, 'एकोऽहम् वहुस्याम्' और वह एक से अनेक, यानी सर्वव्यापी बन बैठा। अगर हम भी उसका अनुकरण करे और उसी की प्रणाली का उपयोग करे, तो हम भी दक्ष मायावी बन जा सकते है। हम भी अगर सर्वव्यापी बनना चाहे, तो अपने विचार-तरगो (थॉट-वेव्ज) को सयत कर, जिस ओर भी लगाये, सफलता अवश्यम्भावी है। समष्टि मे रम जाना कोई मुश्किल नही। रास्ता मालूम होना चाहिए। लगन होनी चाहिये। लक्ष्य। प्रतीक। प्रयास। यह भावना-शक्ति, ये विचार-तरग इतने सबल और सक्रिय है कि ये अचूक और अमोघ है। यह शर-सन्धान राम के वाण का है।

इस समस्त ससार मे सदा त्रिगुण ने अपना साम्राज्य बिखेर रखा है। अपना त्रिशूली त्रिगुण लिये एक जीवात्मा दूसरे जीवात्मा के त्रिगुणो से निशि-वासर टकराता, लडता रहता है। खीचा-तानी होती रहती है। प्राणी त्रिगुणो के कारण आकृष्ट होते है या एक-दूसरे से दूर भागते है या एक-दूसरे की परवाह ही नही करते (उदासीन)। ये त्रिगुण भी अलग-अलग प्राणी मे (जीवात्मा मे) अलग-अलग मात्राओ मे विद्यमान है। अधिसख्य कोटि के ये कम्बिनेशस-परम्युटेशस, सचय-सयोग-सगठन, क्रमचय-प्रस्तार, सृष्टि के मायाजाल का निर्माण करते है। कनफ्लिक्ट्स ऐण्ड क्लैशेज, एडजस्टमेण्ट्स ऐण्ड एट्रैक्शन्स, रिपलसन्स ऐण्ड एक्सपलसन्स, रिपरकसन्स—ये सब

अनेकानेक द्वन्द्व त्रिगुण सेट्स के बीच अनवरत चल रहे है। त्रिगुण की तानी, त्रिगुण की भरनी, त्रिगुण का महा माया-जाल। त्रिगुणी बहेलिया, त्रिगुणी चिडिया। त्रिगुण गले का हार। त्रिगुण ताड पर त्रिगुणी पछी, त्रिगुण कलेवा खाय। त्रिगुण जाल मे आय फँसे जब त्रिगुणी लोर बहाय (चुलाय)। त्रिगुणी सिर धुन-धुन पछताय। त्रिगुणी बिसात। त्रिगुणी मोहरे। त्रिगुणी शतरज के त्रिगुणी खिलाडी। त्रिगुण खिलाडी, त्रिगुणी पासा, त्रिगुण खेल मे (ने) सबको फाँसा। त्रिगुण तीर और त्रिगुणी तरकस। त्रिगुण तार पर खेलें सर्कस। त्रिगुण अस्त्र जब फेका जाय, दुश्मन को तब जीता जाय, अपना भी सब रीता जाय, जगती मे तब होत हँसाय। त्रिगुण ताल पर थिरके तिरिया, त्रिगुण राग पर रीझे। त्रिगुण चाल जब चले पिहरवा, तब मन-ही-मन खीझे।

माया क्या है? रिलेटिव को एब्सॉल्यूट समझना ही माया है। झूठ को सच मानना। सच को न देख पाना। माया न हैल्युशिनेशन है, न इल्युजन, न डिल्यु-जन। न विभ्रम, न भ्रम, न भ्रान्ति। यह जगत् और इस जगत् की सारी चीजे तुलनात्मक है।

केमिकल एलिमेण्ट्स (तत्त्व) के एटम (अणु) एक दूसरे से भिन्न महज इसलिए है कि उनकी भीतरी बनावट मे प्रोटोन तथा एलेक्ट्रोन इत्यादि की तादाद, (मात्रा) (नम्बर) एक-दूसरे से कम है अथवा बेशी। सॉलिड (ठोस)—लिक्विड (द्रव) और गैस (वाति)—की भिन्न अवस्थाओ का कारण इतना ही बस है कि उनके एटम्स (अणु) मे, परमाणुओ की आपसी दूरी सॉलिड मे कम, लिक्विड मे उसकी अपेक्षा अधिक और गैस मे अत्यधिक है।

जब महत् मे त्रिगुण विभिन्न मात्राओ मे इकट्ठा होने लगते है, तब सृष्टि (व्यक्त प्रकृति) का निर्माण होता है। जब मूल अणु ही सापेक्षत्व (रिलेटिविटी) पर आधृत है, तब फिर अणुओ से निर्मित पदार्थ पूर्ण कैसे होगे? निरपेक्ष किस तरह होंगे?

ससार (=व्यक्त प्रकृति) मे न कोई पूर्णत सुखी है, न कोई पूर्णत दुखी। एक ही आदमी किसी की तुलना मे रूपवान् है, तो किसी दूसरे की तुलना मे कुरूप। कोई अमीर इसलिए है कि दूसरे गरीब लोग भी है। और, गरीबी का अस्तित्व महज इसलिए है कि तुलना करने के लिए अमीरी उपलब्ध है। कोई बडा है, तो किसी छोटे की अपेक्षा और कोई छोटा है, तो किसी बडे की तुलना मे।

कही कोई स्थिरता नही, ठहराव नही, भ्रम-भरा परिवेश, परिस्थिति। भ्रामक वातावरण।

अभी जो परम ज्ञानी मालूम पडता था, वही तुरत फिर मूर्ख दीखने लगे, अगर उससे भी कही अधिक प्रकाण्ड विद्वान् इकट्ठे हो जायँ। और फिर, (उनकी) 'प्रकाण्डता' भी तो एक सापेक्ष, आनुपातिक अन्योन्यान्वित शब्द होगी, जिसका कोई भी स्थिर, अप्रतिबद्ध और निरुपाधि अर्थ न होगा। ऐसी परिस्थिति मे सृष्टि का सच्चः

रूप सामने नही आता। कोई उसका अपना सच्चा, अपरिवर्त्तनशील, पूर्ण अनपेक्ष, अप्रतिबद्ध, निरुपाधि रूप है भी तो नही।

सृष्टि की प्रत्येक चीज, हर पदार्थ, कण-कण, अनूठा और अद्वितीय है। जर्रे-जर्रे मे भिन्नता है। असख्य जीवात्माओ मे से प्रत्येक का अपना पृथक् व्यक्तित्व है। अलग रूप, अलग मुखौटा। सब जगह सन्देह, अनिश्चर्य। सब तरफ शक-शुबहा, जाल-फरेब। परिवर्त्तनशीलता। अस्थायित्व।

कुछ भी सच नही लगता, कुछ भी स्थायी नही दीखता। कही भी पडाव नही। कोई बात नही टिकती। कोई एकरूपता नही, कोई एकरसता नही। एक बडी रेखा की बगल मे एक समान रेखा छोटी बन जाती है और एक छोटी रेखा के समीप वही तत्क्षण बडी बन जाती है।

इस तुलनात्मक द्वन्द्व के बीच मन का उलट-फेर होता रहता है। वह किसी स्थायी निर्णय पर पहुँच नही पाता, और लार्ड बायरन की भाँति न कोई मन लायक आदर्श पत्नी चुन पाता है, न कोई अभीष्ट।

जीवात्मा का अन्त करण (मन) भटकता रहता है। अनुभव की अपनी आँखे मीच-मीचकर, आँखे फाड-फाडकर, वह बनती-बिगडती, बेतहाशा बदलती सृष्टि को भौचक-सा देखता रहता है और पूछता रहता है कि क्या यह सत्य है? और, उसकी जिज्ञासा कभी पूरी नही होती। और, उसको कभी जवाब नही मिलता और वह किसी निष्कर्ष पर नही पहुँच पाता। अथाह सागर मे वह हाथ-पाँव मारता मायावी मोतियो के बटोरने मे मरता रहता है।

यहाँ कुछ भी सत्य नही। सब सापेक्ष है। सादृश्य, साम्य, समरूपता, सभी धोखे है। न सर्वांगिक उपमा सम्भव है, न उसके अनुरूप उपमेय। तुला और तुल्य दोनो तात्कालिक है। तौलना अप्रासगिक है। अप्रासगिकता भ्रम है। भ्रम भूल है। भूल भ्रमण है। भ्रमण अशान्ति है। अशान्ति दुख है। दुख मिथ्या है। मिथ्या सत्य है। 'सत्य' माया है। जो है नही, वह है-सा दीखता है, यही भ्रम है। जो सापेक्ष है, वह निरपेक्ष मालूम पडता है—यही माया है।

जिसका व्यक्तित्व मात्र तुलनात्मकता पर निर्भर है, उसको एब्सॉल्यूट सेन्स मे सत्य मान बैठना ही भूल है। उसकी कामना प्रत्यक्ष ही मृगतृष्णा है। मृगतृष्णा की प्राप्ति के लिए अगर जीवात्मा को जीवन-मरण के चक्कर काटने पडे, तो क्या आश्चर्य है?

इन्द्रियाँ अचेतन है। वे सिर्फ उपकरण है, जिनके द्वारा जीवात्मा का ससार से सम्पर्क होता है। इन्द्रियाँ होश मे है नही। जीवात्मा अज्ञ है। खिलौने देकर बहलाया गया है। उसका अनुभव, उसकी सूझ, सभी तो डिफेक्टिव (दोषपूर्ण) है। क्योकि, वे सापेक्षता की सीमा तक जाकर रुक जाते है और उसी मोटेल मे बैठे, रगीन चश्मा चढाये, भोग-विलास मे पडे (लीन, गर्क) बन्धन बटोरते रहते है। सस्कार सहेजते रहते है।

कूटस्थ अज्ञ जीवात्मा का जब ज्ञानवान् परमात्मा से सम्पर्क होता है, तब विवेक जगता है, बुद्धि स्फुरित, प्रस्फुटित, होती है। अन्त करण मे निर्मलता और स्थिरता (शान्ति) भरती है। तब जीवात्मा को ज्ञान प्राप्त होता है। तब वह भ्रम की खुमारी से जाग उठता है। ऐसी ऋतम्भरा बुद्धि को प्राप्त कर और ज्ञानी बनकर जीवात्मा सत्य को उपलब्ध हो, मुक्त हो जाता है। मुक्त वह है, जिसने सत्य और मिथ्या को ठीक-ठीक जान लिया है और परमात्मा से युक्त हो गया है।

खेल (भोग) के लिए स्थल (ससार) और खिलाडी (जीवात्मा) तथा उसके साथ खेलनेवाले (अन्य जीवात्माएँ) जरूरी है, सृष्टि के लिए तीनो गुण (सत्त्व, रजस्, और तमस्) अत्यावश्यक है। सृष्टि सिर्फ एक गुण या दो गुणो से नही बनने-ठनने, बनने-चलने का। इसलिये, हर प्राणी मे कम या बेश तीन गुण निश्चय ही मिलेगे (पाये जायेगे) किसी गुण की प्रधानता होगी, कोई गौण होगा। तीनो गुणो की मात्राओ मे न्यूनाधिकता के आधार पर अधिसख्य जीवात्माओ का निर्माण सम्भव है। जिसमे सात्त्विकता और ज्ञान कूट-कूट कर भरा होगा। वह परमात्मा के निकट, सान्निध्य मे होगा। जिसमे तमस् कसा होगा, वह पशुवत् जीवन व्यतीत करेगा। जो रजस् से ओत-प्रोत होगा, वह ससार के चक्कर मे, ऊहापोह मे, भोग भोगने मे, भाग-दौड, छीन-झपट मे व्यस्त होगा। गुणो के सम्मिश्रण से जो अनेकानेक मिश्रप (कॉकटेल) व्यक्तित्व जनमेगे, उनके व्यक्तित्व मे, स्वभाव मे, उपलब्धि मे, भोग इत्यादि मे अनेका-नेक विभिन्नताये देखने को मिलेगी।

सृष्टि की रचना परमात्मा का यज्ञ कर्म है। माया परमात्मा की 'प्रज्ञा' बुद्धि अथवा 'कार्य-कौशल' है। माया परमात्मा की वह शक्ति है, जिससे सृष्टि का यज्ञ रचा जाता है। माया परमात्मा की कर्त्तृत्व-शक्ति है। माया-मुग्ध जीवात्मा, गुणो से मोहित और भोग से भरमाया हुआ, सृष्टि के रचयिता परमात्मा को भूला ही रहता है और अपने मे फूला नही समाता। अज्ञ जीवान्मा जब ज्ञान से युक्त हो जाता है, तब उसे माया और राम दोनो ही मिल जाते है। सर्वव्यापी परमात्मा का सम्पर्क उसे एक अलौकिक समझदारी से विभूषित कर देता है। उस दिव्य ज्ञान के आलोक मे वह परमात्मा और परमात्मा की विभूति सृष्टि और सृष्टि के राज को अनुभूत कर आनन्दविभोर हो जाता है। परमात्मा की करुणा और उसके कौशल की चमत्कारिता और सृष्टि का सौन्दर्य वह तटस्थ भाव से देखता रहता है। ससार को कृतज्ञतापूर्वक भोगता हुआ वह उसमे कदापि नही फँसता।

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्॥ (ईशावास्योपनिषद्)

पृथ्वी के पदार्थ लगभग 103 रासायनिक तत्त्वो (केमिकल एलिमेण्ट्स) से बने हुए है। प्रत्येक रासायनिक तत्त्व पूर्णत उन्ही एटम (परमाणु) के बने हुए हैं, जिनका एटोमिक नम्बर एक-से हो (समान एटोमिक नम्बर के एटम)

'एटोमिक नम्बर'='तत्त्व के न्यूट्रल-एटम-केन्द्र के चौगिर्द घूमनेवाले एलेक्ट्रोनो की सख्या अथवा न्यूक्लियस मे प्रोटोन्स की सख्या'। इस प्रकार, एटम भी 103 प्रकार के है। एलिमेण्ट का शाब्दिक अर्थ है मूल तत्त्व। परन्तु, ये 103 प्रकार के एलिमेण्ट पदार्थ (मैटर) है, तत्त्व नही। इसलिए, यहाँ 'रासायनिक' शब्द विशेषण के रूप मे व्यवहृत हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि ये 103 प्रकार के रासायनिक तत्त्व अपने रासायनिक गुणो के विचार से ही अन्तिम पदार्थ (तत्त्व) माने जा सकते है। क्योकि, इनको अगर और अधिक विभाजित (विभक्त) किया जाय, तो इनके अपने खास रासायनिक गुण विलुप्त हो जाते है। इन 103 प्रकार के एटम्स को भी 'रासायनिक' 'एटम' की सज्ञा देना ही उचित होगा। रासायनिक एटम तोडा जा सकता है। इन 103 प्रकार के एटमो मे सब-के-सब एटम, तोडने पर, तीन प्रकार के कणो मे विभक्त होते हैं—१ प्रोटोन, २ एलेक्ट्रोन तथा ३ न्यूट्रोन।

चाहे वे जिस किसी भी एलिमेण्ट अथवा एटम के तोडने से प्राप्त हुए हो (अश रहे हो) सब प्रोटोन आपस मे एक सरीखे है। इसी तरह सब एलेक्ट्रोन और सब न्यूट्रोन भी। एक सरीखे गुण और स्वभाव मे।

एटम के केन्द्र मे न्यूट्रोन और प्रोटोन रहते है। (एटम की परिधि पर) एलेक्ट्रोन इनके चारो ओर चक्कर काटते रहते है।

प्रोटोन की सख्या पर एटम का मास (सयति) निर्भर करता है।

प्रोटोन एक प्राथमिक कण (तात्त्विक कण एलिमेण्टरी पार्टिकल) है। जो मात्र, सिर्फ एक पोजिटिव, धनात्मक चार्ज वहन (कैरी) करता है। जो चार्ज कि एक एकल (सिगल) एलेक्ट्रोन के ऋणात्मक (निगेटिव) चार्ज के परिमाणत हू-ब-हू (बिलकुल) समान (बराबर) होता है। दूसरे शब्दो मे, एक प्रोटोन-कण और एक एलेक्ट्रोन-कण अपने साथ एकदम एक बराबर, किन्तु विपरीत चार्जो को वहन करते है। प्रोटोन पोजिटिव चार्ज है। एलेक्ट्रोन निगेटिव चार्ज (आवेश) है। प्रोटोन की सयति (मास) $1\ 632 \times 10^{-24} g$ है, जो एलेक्ट्रोन की सयति की अपेक्षा 1836 गुनी अधिक (बडी) है। पूर्णपरिचित सामान्य हाइड्रोजन (उद्जन) परमाणु का न्यूक्लियस (केन्द्र) केवल एक प्रोटोन का बना होता है। अन्य दूसरे सभी परमाणुओ (बेशक हाइड्रोजन के सिवाय) का केन्द्रक (नाभिक) प्रोटोन एव न्यूट्रोन दोनो से निर्मित होता है। प्रोटोन की सयति (मास) लगभग (करीब-करीब) वही है, जो न्यूट्रोन की। न्यूट्रोन वैद्युतिक (एलेक्ट्रिकल) चार्ज (आवेश) वहन नही करता, सुतरा इस नामाकन (सज्ञा) का भागी बना। इस तरह, एक प्रोटोन एक हाइड्रोजन-आयोन-सा ही (के सदृश ही) हुआ, याने एक सामान्य हाइड्रोजन परमाणु का केन्द्रक-जैसा और यह सभी दूसरे परमाणुओ के केन्द्रक का अश (सघटक, अग) (कन्स्टीचुएण्ट) है। चुनाचे, जाहिर है कि हाइड्रोजन आयोन (आयन)—प्रोटोन—प्रत्येक तथा सब तरह के परमाणुओ मे व्याप्त है, सबको सघटित करता है और सबका मर्म (हीर, अभ्यन्तर, क्रोड, सारभाग) है।

एलेक्ट्रोन एक तात्त्विक कण (एलिमेण्टरी पार्टिकल) है, जिसका 'रेस्ट-मास'

$9\,1091 \times 10^{-26}$g है (करीब हाइड्रोजन परमाणु के 1/1836 के बराबर) यह निगेटिव एलेक्ट्रिक चार्ज वहन करता है। एलेक्ट्रोन सभी परमाणुओ का भाग होता है। सभी मे अनिवार्यत पाया जाता है। अत, एलेक्ट्रोन उन तथाकथित 'मूल (मौलिक) (प्राथमिक) कणो' मे से एक गुना (गिना) जाता है, जिनके बारे मे यह माना जाता है कि वे ही इस पार्थिव विश्व (जगत्) की रचना (निर्माण) के हेतु आधार-खण्ड ईंटे (ब्लाक्स) है। जो पार्थिव जगत् के निर्माण के लिए (मे) विश्वकर्मा, जगन्नियन्ता, के हाथ मे प्रस्तर-खण्ड और ईंटो-जैसी है। 'मूल (प्राथमिक) कणो' मे सबसे पहले आविष्कृत (अन्वेषित) होनेवाला एलेक्ट्रोन ऋणात्मक वैद्युत् (निगेटिव) चार्ज का एक एकल यूनिट माना जाता है। 'ऋणात्मक' (निगेटिव) इस माने (अर्थ) (अभिप्राय, भाव) (सेन्स) मे एक मनमाने ढग से (स्वेच्छया) (आरबिट्रैरिली) नियोजित (निर्धारित, नियम) नाम (शब्द) है, जो इस बात पर आधृत है कि इस प्रकार के कण (पार्टिकल्स) आपस मे एक दूसरे को विकर्षित (प्रतिकर्षित) (रिपेल) (प्रत्यावर्त्तित) करते है, लेकिन ये एक दूसरे प्रकार के कणो के प्रति आकर्षित होते है, जिनके बारे मे कहा जाता है (और यह भी स्वेच्छया ही) कि वे धनात्मक (पोजिटिव) चार्ज-वाही है। यह माना जाता है कि एलेक्ट्रोन एक ऐसी धुरी के चारो-ओर अनवरत चक्कर काटता (चक्रण-रत) रहता है, जो इसके बीचोबीच (बीच से) (मध्य) (मे से) (द्वारा) पास (गमन) करती है (गुजरती है)।

तु० पृथ्वी की अपनी धुरी, अक्ष, ऐक्सिस के चौगिर्द चक्रण करना, जो उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुव के बीच (आर-पार) (से होकर) गुजरती है। यह सदा एक (नियत) (स्थिर, एक समान) (सतत) चुम्बकीय क्षेत्र को प्रदर्शित (निदर्शित) करता है। (तु० पृथ्वी का चुम्बकन-क्षेत्र)।

हाइड्रोजन-परमाणु के निर्माण मे एक घन आविष्ट (पोजिटिवली चार्ज्ड) प्रोटोन (केन्द्रक) रहता है। जिसके चारो ओर (परित) एक एकल एलेक्ट्रोन घूमता है। (तु० सूर्य के चौगिर्द पृथ्वी की कक्षीय गति, आरबिटल मोशन)। प्रत्येक अन्य परमाणु मे एक घनात्मक चार्ज का केन्द्रक (प्रोटोन और न्यूट्रोन की विविध सख्याओ का समूह) रहता है, जो आवृत रहता है एलेक्ट्रोन की 'घटा' ('मेघ') से।

एलेक्ट्रोन ऊर्जा (तेजस्) का उत्स है—सोर्स ऑव एनर्जी। प्रत्येक रासायनिक तत्त्व का व्यक्तित्व (परिभाषा) (लक्षण) स्पष्ट (सीमाकित, निर्धारित, निश्चित) होता है एलेक्ट्रोन की सख्या से, जो केन्द्रक के चौगिर्द रहते है (और, ऊर्जा के स्तर या 'खोल—आवरण' से, जिसमे एलेक्ट्रोन घूमता है)।

यह ऐसा एक कण है, जिसे विद्युत् की एक विरल (डिसक्रीट) (सुस्पष्ट) इकाई माना जा सकता है। 'एलेक्ट्रोन' शब्द सन् 1891 ई० मे जी० जॉनस्टान स्टोनी द्वारा प्रयुक्त हुआ। उनके मतानुसार (उनके लिए) (तो) यह एक परिकल्पित (हाइपोथेटिकल) (परिकल्पनात्मक) कण था (कण-भर रहा)। एलेक्ट्रोन का आविष्कार वैज्ञानिक अनुसन्धान (खोज, शोध) के जरिये (द्वारा) छ साल पीछे, सन् 1897 ई० मे हुआ।

अंग्रेज भौतिक-विज्ञानी सर जोजेफ जॉन थॉमसन (1856–1940) ने उसे पाया था। केम्ब्रीज युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) की प्रयोगशाला मे यह मिला था, प्राप्त हुआ था। पटना-विश्वविद्यालय के अहाते मे नही !

आज ईश्वर भी एक परिकल्पना (हाइपोथेसिस), एक खयाल, एक स्वप्न, हो सकता है। कल वह भी एक सत्य हो सकता है। वही एक सत्य भी हो सकता है सिद्धान्तवादी किंवा प्रयोगवादी वैज्ञानिको के लिए भी।

एलेक्ट्रोन का प्रतीयमानत (एपरेण्ट) घूर्णन (रोटेशन), परिक्रमण (परिभ्रमण) का पता सन् 1925 ई० मे डच भौतिक-शास्त्रविद् (फिजीसिस्ट) को लगा। एलेक्ट्रोन का चक्कर काटना, सम्भवत दोनो दिशाओ मे, दक्षिणावर्त्त (क्लॉकवाइज) तथा वामावर्त्त (ऐण्टी-क्लॉकवाइज) मे चलता है। हाइड्रोजन के परमाणुओ मे करीब आधे दक्षिणावर्त्त दिशा मे चक्कर लगाने है और आधे-सीधे वामावर्त्ती राह पर आरूढ रहते है, चौकडियाँ भरते रहते है। कारण अज्ञात है। कारण विस्मयात्मक है। अब तो एक ऐसे एलेक्ट्रोन अणुओ (पार्टिकल्स) का भी प्रकटीकरण (डिसकवर्ड) हुआ है, जो घनात्मक चार्ज से मण्डित है। पोजिटिवली चार्ज्ड। 'सीधे' (पूर्वपरिचित) एलेक्ट्रोन्स के ये उलटे, विपरीत, रूप है, जिन्हे एलेक्ट्रोन' का 'ऐण्टी-कण' या शीर्षासन, या प्रतिरूप कह सकते है। 'एलेक्ट्रोन के ऐण्टी-कण का उर्फ-नाम (उपनाम, तखल्लुस) है 'पोजिट्रोन'।

अनुमान (डरना नही ?) किया जा रहा है कि एक बिलकुल सम्पूर्णतया अनजान, असम्बद्ध (भिन्न) सृष्टि या (ससार, ब्रह्माण्ड), जो ऐसे ही 'ऐण्टी-कणो' से निर्मित होगी, कही अपनी जानी-सुनी दुनिया मे किसी भाँति मिश्रित न हो। यह नया अजनबी ससार कही हमारे ही चतुर्दिक् फैला हुआ हो। हमारी दृष्टि से ओझल। हमारी पहुँच के परे। कल्पनातीत। हमारी ज्ञानेन्द्रियो के बूते के बाहर। जिसका सर्वत्र स्थापित अस्तित्व का पता न हमको चल सके, न हमारे उपकरणो को, न हमारे वैज्ञानिक या तकनीकी जुगत (गेजेट्स) और यन्त्रो को या युक्ति को। और, जो हमारे प्रमेय (थियोरेम्स) हमारे अभिगृहीत (ऐक्सियम्स) और हमारी परिकल्पना की परिधि के भी परे हो। और, हमारे ख्वाब (स्वप्न) (ड्रीम्स) और हमारे आशुज्ञान (अन्तर्दृष्टि, सहज स्फूर्त्ति, इनटुइशन) की पकड मे भी न आ सके। जैसे प्रोटोन सयति (मास) का प्रतीक है, वैसे ही एलेक्ट्रोन शक्ति (ऊर्जा ?) का प्रतीक है।

न्यूट्रोन परमाणु के क्रोड (केन्द्रस्थित) का अश है, जिसकी सयति (मास) है एक प्रोटोन से तनिक अधिक। यह 'न्यूट्रल' (उदासीन) (रुआँसा ?) (तटस्थ ?) है। इस पर कोई भी विद्युत्-चार्ज नही है। न्यूट्रोन की सयति $1\ 672 \times 10^{-24}g$ है, जो एलेक्ट्रोन की सयति (मास) से 1836 गुना अधिक है। सन् 1932 ई० मे अंग्रेज भौतिक-शास्त्री सर जेम्स चाडविक ने 'न्यूट्रोन' का पता लगाया। जैसा कि ऊपर कहा गया है। किसी भी तत्त्व (एलिमेण्ट) के परमाणु का अभिलाक्षणिक गुणधर्म (कैरेक्टरिस्टिक प्रोपर्टीज) उसके एलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन और प्रोटोन की सख्या पर मुनहसर (आधृत) है। परमाणु केन्द्र-स्थित न्यूट्रोन की सख्या मे परिवर्त्तन (हेर-फेर, कम-बेश) होने से तत्त्व

का आइसोटोप (समप्रोटोनिक) बन जाता है, जिसका एटोमिक नम्बर तो पूर्ववत् रह जाता है, लेकिन जिसका मास बदल गया होता है। दूसरी ओर (ऑन दि अदर हैण्ड) प्रोटोन की सख्या मे कोई तबदीली (परिवर्त्तन, फर्क) होने से पूरा तत्त्व ही बदल जाता है। एटोम्कि नम्बर, गुण-धर्म इत्यादि सभी बदल जाते है। न सिर्फ 'परमाणु' का बल्कि 'तत्त्व' (दि एलिमेण्ट इटसेल्फ) का ही मूल रूपान्तरण (पूर्ण-परिणमन) हो जाता है (पिरियोडिक टेबुल)।

केन्द्रक का विद्युत्-चार्ज नियत (निश्चित) होता है उसके प्रोटोन की सख्या पर (सख्यानुगत)। एलेक्ट्रोन और प्रोटोन सख्या मे बराबर पर विद्युत्-चार्ज मे एक-दूसरे के विपरीत है (प्रोटोन=पोजिटिव चार्ज। एलेक्ट्रोन=निगेटिव चार्ज)। केन्द्रक का मास प्रोटोन और न्यूट्रोन के मासो के जोड के बराबर होता है।

एक ही तत्त्व के परमाणु-केन्द्रको के बीच भी (दरम्यान) (मे) कई विभिन्न प्रकार के केन्द्रक हो सकते है। वे 'न्यूक्लाइड्स' कहे जाते है। एक ही तत्त्व के 'न्यूक्लाइड्स' मे प्रोटोन की सख्या बराबर रहती है, विद्युत्-चार्ज भी एक-सरीखा ही रहता है, सिर्फ सयति (मास) मे फर्क पड गया होता है (यानी 'न्यूट्रोन्स' की सख्या मे न्यूनाधिक्य हो गया होता है) (तु० प्रोटियम—एक प्रोटोन। ड्युट्रोन—एक प्रोटोन+एक न्यूट्रोन। ट्रिटियम—एक प्रोटोन+दो न्यूट्रोन।) (हाइड्रोजन के विभिन्न प्रकार के परमाणु-केन्द्रक)। तत्त्व के 'आइसोटोप्स' उस तत्त्व के वे परमाणु है, जिनके 'न्यूक्लाइड्स' के 'प्रकार' मे भिन्नता है।

'तात्त्विक (प्राथमिक) (मूल) कण' सभी पदार्थो (मैटर्स) की अविभाज्य इकाइयाँ (इनडिविजिब्ल यूनिट्स) है। ये 'तात्त्विक कण' पार्थिव (भौतिक) जगत् की ईंटे है, जिनसे ससार बनाया गया है। ताजमहल की सगमरमरी पट्टियो की तरह। शिलाखण्डो की तरह, जिनसे श्रद्धेय फूजी गुरुजी ने राजगृह का शान्ति-स्तूप बनवाया और इजिप्ट के पिरामिड बने थे। इन 'मूल' कणो से पिण्ड बना पिण्ड से ब्रह्माण्ड। 'तात्त्विक कणो' की अपूर्ण सूची मे अबतक तीस विभिन्न तरह (प्रकार) के कणो का नाम दर्ज हो सका है। इनमे कुछेक प्रकार के 'कण' ही 'स्थिर' (स्थायी) है (जैसे प्रोटोन, एलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन इत्यादि), शेष 'कण' अस्थायी है (उदाहरणार्थ न्यूट्रोन्स, मेसन्स, हाइपेरान्स प्रभृति)। अस्थायी 'कण' स्वत सहज ही ऊर्जामोचन करते हुए (लिबरेटिंग 'एनर्जी') दो या अधिक कणिकाओ मे विघटित होता है।

'फोटोन्स' भी किसी विशेष सन्दर्भ मे 'तात्त्विक कण' माने जा सकते है। 'तात्त्विक' की धारणा अब भी अस्पष्ट (अनिश्चित और धूमिल) है। आधुनिक (नूतन) (हाल के) अनुसन्धानो ने जताया (सुझाया) है कि 'प्रोटोन्स' और 'न्यूट्रोन्स' भी अब अभाज्य (अविभाज्य) नही रहे। वे भी और अधिक छोटी इकाइयो (कणिकाओ, टुकडो) मे बँट (विभक्त किये जा) सकते है।

ऐसा प्रतीत (बोध, महसूस) होता है कि 'तात्त्विक कण' भी बस (केवल) सम्मिश्रित, (सग्रथित, सयुक्त) हस्तियाँ (सत्ताएँ ?) है, जिनका एक केन्द्र-स्थित क्रोड (मर्म) है और

जिनमे अपेक्षया (अपेक्षाकृत, कम्पेरेटिवली) अनन्त रिक्त स्थान (आकाश) है। (यह क्या सर्वव्यापी परमात्मतत्त्व नही हो सकता ?)

'मेसन' भी क्या एक प्रकार के है ? इनकी भी तीन किस्मे कही जाती है, पोजिटिव, निगेटिव तथा न्यूट्रल। और, मजा यह है कि अपने इन टकसाली शब्दो का गूढार्थ, मर्म, मतलब या अर्थ-अनर्थ वैज्ञानिको को भी नही मालूम। ये काम-चलाऊ भर है। प्याज की असख्य झीनी परतो की तरह सुनाम-दुर्नाम के वर्क उलटते चलिये, द्रौपदी के चीर की नाई जिन्दगी-भर खीचिये।

The electron possesses the smallest known electric charge, $1\ 602 \times 10^{-19}$ coulomb And this charge is said to be a negative one. Science is still ignorant about the ultimate essence of electricity Harmann Weil remarked that the difference between 'the two types of electricity' ('positive' and 'negative') is "a deeper mystery of nature than the difference between past and present"

"In effect, an atom is hardly more than so much empty space, if one envisaged as atom the size of the earth, its nuclei would be the size of a city square Again, one cubic centimetre of tightly packed nuclei would weigh 114 millions tons".

"It is useless to seek duplicates of our terrestrial concepts in either the world of infinitely large objects or the micro-world Each system has its own laws and even time runs differently in different systems. But the world is one, and thousands of invisible, intricate threads of not readily observable casual links extend from the tiny atom to gigantic sparkling stars and remote galaxies" (—E I. Parnow, At the crossroads of infinities, Translated by Vladimir T-almy Mir Publishers, Moscow, 1971)

From microcosm, to macrocosm 'पिण्ड से ब्रह्माण्ड तक' "Any serious attempt at philosophical interpretation will have to consider these data Again, the concepts which modern mathematics and physics use are not directly verifiable in sense experience They lead to deductions which can be related eventually to experimental situations Metaphysical theories are interpretations of the nature of the world and are tested by their adequacy to the observed data, by their capacity to co-ordinate positive knowledge They are not mere speculations but interpretations of experience In the case of scientific theories, what we can verify is their consequences insofar as these can be calculated and observed We do not observe electrical energy, gravita-

tion or relativity but we calculate what will be observed in carefully determined circumstances, if these are true, and then verify whether they are actually observed or not This is indirect verification Metaphysical theories are capable of such indirect verification"

(S Radhakrishanan)

God or Chance—this is the ALTERNATIVE. Chance is Chance Things based on chance sometimes come to happen, sometimes they do not The mathematics of chance can at best speculate what will come about at turns of events but it is far from sure about the outcome at each turn Under similarly set circumstances the result expected from each throw of dice is uncertain

God is not that uncertain Spiritual laws have their own mathematical equations The science and laws of the spirit is accurate to its last fibre True we are ignorant about its tenets but science, itself, which has succeeded in unravelling many of these laws of the creation, has proved to the hilt that it is so. We can expect and hope that the laws which form the foundations and the basis of the proved laws of science, will in themselves, be equally or more accurate and factual If matter is a fact, and if matter is indistructible, then the law of the conservation of Mass may be equally correct If matter and energy are interconvertible, there will be a borderline, how-so-ever dim, where matter will end and energy begin If 'particles' exist and so do the 'waves' then there is bound to be a situation where the smallest particle is indistinguishable from the smallest wave (cf Quanstum Theory) If there are things living, and things not living, then there must be a form of existence in between (cf Viruses, Crystals, Genes) If there are things Manifest (व्यक्त) and there are things Unmanifest (अव्यक्त) and the unmanifest (cf Electricity, Gravitation, Relativity) (cf Life Chance, Abstractions) then we can easily surmize and hope that during the process of the Unmanifest manifesting (and vice versa) there will be situations where the Unmanifest (अव्यक्त) would have ceased to remain unmanifested and yet would not have manifested. And this would refer to any kind of manifestation, even life itself. Now that thing (?) which (vide supra) is neither Manifest (व्यक्त) nor Unmanifest (अव्यक्त) is the God Himself, shining in His pristine Glory,

neither निर्गुण nor सगुण and yet being the very basis of both सगुण (manifested) and निर्गुण (unmanifested) Behold, when life is switched off and death begins, the end is dovetailed into and reveted to the beginning The point of reveting, the point of change from the formful into the formless that Point indeed is God—Beyond imagination, beyond the realm of science and philosophy and even beyond chance and speculations. But True (सत्य) in every sense, in every bit When one becomes two and two should become one there is a point of change called the 'Zero'. It EXISTS as truly indeed as any positive or negative integer Between the two facets of a coin, between the good and the bad, between the positive and the negative He is the connecting link He is in Existence Existence is in Him. He Exists That's all about Him. And His Existence gives existence its existence in all the creation Chance is inert, it has no mind, no consciousness, no forethought or adjustibility And yet there is Consciousness in this creation and there is Intelligence God is ज्ञानी, सर्वज्ञ That is one of the myriads of His attributes (विभूति) God will be and is, by all means, a better substitute than chance as the Fountain-head of all creation, living non-living sensient intelligent or otherwise (Life, Death, Sensience, Intelligence, Alert, Inert, and all that we find in existence any-where anytime) Even if both are possible (as the cause of creation) let us chose the better of the two For there are no proofs available against the existence of God It is better to rely on wisdom than on folly An Intelligent support is better and preferable to dead, inert, and mindless laws The law of chance is one of the many laws—working equations and principles and methods—available to Nature for creation The Law itself is mindless but it is an आयुध, a weapon, in the ubiquitous (विभु) hands of God who sees to it that even this law of chance is wielded with (great) wisdom

Obviously there is an utility for this law It is meant to checkmate the sooth-saying and astrologizing 'wise men', the manipulations, the machinations, the maligners, the cock-sures, the interferers, the die-hard proud egoists and the offending atheists It is a surprize gauntlet, a bolt from the blue or a manifestation of the unexplicable nature of Divinity. It keeps men guessing while events (manifest)

come to pass The chance is one among the hundreds and thousands of Natural Laws The law is encompassed by the creator The creator is beyond His laws including this law of Probability (chance) Life is so subtle and so diverse and yet so individualized, that creation cannot be left in the hands of chance Nature cannot afford to take chances all the time, for then creation would be the job of a cheat and a scoundrel The sense of security and the citadel of Hope would then crumble and get wiped out Nature may be subtle but it is not a scheming scalawag

God is, you may, if you so like, try to prove that He is not Try and see if you really can

Destiny is not devilry Over the vast canvas of time and in the scheme of things it has a place of its own However, in the hands of chance it will cease to have any meaning and may be downright cruel. While in the hands of the all pervading cosmic consciousness it may have a purpose and may be kind Chance cannot be invoked to alter it, but God can be Faith and Prayer can reach God but they will invain break their heart and head against the stony wall and rigid frame of chance

Left in the hands-of (to the care of) Chance, the law of chance will be erratic It is only in the Hands of the सर्वज्ञानी, सर्वव्यापी, शाश्वत, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, करुणासागर, प्रेमस्वरूप परमात्मा that even this law of chance or probability could be purposeful and beneficial Destiny will be mean and meaningless if an inert and rigid chance has to deal it It could be a manifestation of supreme love if the creator uses it as a peg in the wheel of creation

Destiny would be stiffling if it is based on chance It would be challenging if it is the result of our own कर्म

Chance would be a dirty design, an inadvertent trick, (cry), in the cosmological plan if it was to work stupidly

The correctness of the almanac, the punctuality of the planets, the unity among diversity, the unfailing laws of Physics, Chemistry and Biology, the forecasts based on scientific data, the perceptions of our senses, the response to our genuine prayers, the accomplishments of the vastly ingenious human body mechanisms—Do they not prove to us that creation is not the accomplishment of an inert

and erratic idiot, the mere chance, but that lot of intelligence and care and love must have governed and pervaded its fabric ?

The creator does play His great game of dice and shuffles His cards every now and then. He does not take chances He only wields chance. The unforeseeableness, the unpredictibility, of chance and destiny, has a purpose The surprize, the apparently unexpected, mellows the ego of man and draws his attention to the transcendental Reality and to the un-interferable power of the Spirit and the Creative Force. God has countless cards in His hands His dice has infinite facets and faces

I, several times I have seen worms not bigger than the size of a tiny dot made by the point of a pin, move with amazing speed on the surface of my table or writing paper. Wordless with wonder I have watched such a miniaturization of life and body, precise and perfect

This speck of a creature looked like a living jewel, a creature so tiny and yet so complicated and complex. This living miniaturization of a worm, by no means bigger than a pin-point, seemed to be able to do all that can be ordinarily accomplished by any living insect It stopped, it ran, it changed its direction of movement, it avoided impediments, became aware of possible danger and retreated from or circumvented it Barely visible to the naked eye it must be eating, excreting, reproducing, seeing and sensing

Marvel at the overwhelming mystery of mind and the mechanism of the human body, its anatomy, its physiology, its built-in defence against in-roads of chemicals, drugs, bacteria, viruses and foreign matters of various kinds Each of the organs, the brain, the heart, the lung, the kidney, the liver, the muscle and the sense organs, even the skin, are the limits of efficient technology and intelligent designing.

Could all this be mere chance ? Just a series of coincidences ? Why should butterflies have such artistic paintings on wings, the fruit such subtle variations of tastes, the flowers such fragrance and shades of colours. Look at the arrangement, the geometrical designs—whorls, spirals, circles, lines, of thorns of various kinds and of varied description studded almost magically as it were on the body of the

cacti plants and that too growing in deserts Isn't it less difficult to believe in God as the intelligent origin of all this magnificence ?

The gigantic clock work of space functions with rigorous and meticulous exactitude Amazing astronomic regularity that is the ultimate of precision And they have been on the move for billions or millions of years

Infinite being of unlimited intelligence

Psalms of David When I look at thy heavens, Lord, the work of thy fingers, the moon and the stars which thou has established, I cry—what is man that thou art mindful of him ?

God Himself provides mysterious confirmations of the accuracy of Man's choice—God or chance In His own way He says—"I am here" Had that not been so the ungrateful man would have forgotton God long ago But he has not Something inside man is aware of the Reality There is somewhere Nature whispering to his inner being Man clings to the spirit even when he cannot explain or comprehend it, even when he may not be consciously fully aware of it

One day the Aeronauts and the Cosmonants will be shaking hands in space and will rendezvous together in their technoligically superb vehicle and space crafts

The spirit of Neil Armstrong will be full of humility for the Almighty, the creator of the universe The Cosmonants would have the Lunakhood and the men behind it, to feel proud of It is a question of preferences

Neil Armstrong, out in the infinity of space, chose God, not chance, for sustenance and for thanks giving

The expectation in games of chance or a gamble is the value of the prize multiplied by the probablity of winning the prize According to Pascal (French Mathematician, 1623—1662) the value of eternal happiness is infinite. He reasoned that even if the probability of winning eternal happiness by leading a religious life is very small indeed, nevertheless, since the expectation is infinite (any finite fraction of infinity is itself infinite) it will pay anyone to lead such a life However, in his 'Wager' against God Pascal made a thoroughly skeptical query "IS PROBABILITY PROBABLE ?"

The British mathematician and philosopher Bertrand Russell made the ironic statement that "mathematics may be defined as the subject in which we never know what we are talking about, nor whether what we say is true"

Invoking may be necessary or may not be, but, if one has to invoke, it would be far preferable to invoke the creator rather than to invoke chance

परमात्मा जीवात्मा माँगता है। मिट्टी माटी माँग लेती है। बस, इहलीला समाप्त हो जाती है।

'एनी सीरिअस एटेम्प्ट एट फिलॉसोफिकल इण्टरप्रेटेसन विल हैभ टू कन्सीडर दीज डाटा, अगेन, दि कानसेप्ट्स व्हिच मॉडर्न मैथेमेटिक्स ऐण्ड फिजिक्स यूज आर नॉट डायरेक्टली भेरिफायबुल इन सेन्स एक्सपीरियस, दे लीड टू डिडक्सन्स व्हिच कैन बी रिलेटेड इवेचुअली टू एक्सपेरिमेण्टल सिचुएशस। मेटाफिजिकल थ्योरीज आर इण्टरप्रेटेसस ऑव दि नेचर ऑव दि वर्ल्ड ऐण्ड आर टेस्टेड बाइ देअर एडिक्वेसी टू दि आब्जर्व्ड डाटा, बाई देअर कैपेसिटी टू को-ऑर्डिनेट पॉजिटिव नॉलेज। दे आर नॉट मिअर स्पेकुलेशस बट इण्टरप्रेटेशस ऑव एक्सपीरियस। इन दि केस ऑव सायण्टिफिक थ्योरीज, व्हाट वी कैन भेरिफाइ इज देअर कन्सीक्वेन्सेज इन सो फार ऐज दीज कैन बी कैलकुलेटेड ऐण्ड ऑब्जर्व्ड। वी डू नॉट आब्जर्व एलेक्ट्रिकल एनर्जी, ग्रेभिटेशन और रिलेटिभिटी बट वी कैलकुलेट व्हाट विल बी आब्जर्व्ड इन केअरफुली डिटरमिण्ड सरकम्सटान्सेज, इफ दीज आर ट्रू, ऐण्ड देन भेरिफाइ व्हेदर दे आर एक्च्युएली ऑब्जर्व्ड और नॉट। दिस इज इनडाइरेक्ट भेरिफिकेशन। मेटाफिजिकल थ्योरीज आर कैपेबुल ऑव सच इनडायरेक्ट भेरिफिकेशन।' (एस० राधाकृष्णन)

'दार्शनिक व्याख्या-विवेचना के प्रयत्न से इन आँकडो पर विचार करना आवश्यक होगा। पुन आधुनिक गणितज्ञो एव भौतिकीविदो की स्वीकृत धारणाये ऐन्द्रिय अनुभवो मे सहज प्रभाव्य नही है। ये अन्तत प्रायोगिक स्थितियो से सम्बद्ध हो सकनेवाले अनुमेयो तक ही पहुँच (पहुँचा) पाते है। आध्यात्मिक सिद्धान्त जगत् की, प्रकृति की, विवेचना करता है, जो यथार्थ, स्पष्ट, स्थिर ज्ञान का सयोजन करनेवाले सामर्थ्य से सम्यक् अवलोकित आँकडे के आधार पर परीक्षित किया जाता है। वे केवल परिकल्पना ही नही, बल्कि अनुभवो की विवेचना का कारण भी है। जहाँतक वैज्ञानिक सिद्धान्तो का सम्बन्ध है, हर सम्भव गणनाकलन के बाद हम इनके परिणामो की सत्यता सिद्ध कर सकते है। हम वैद्युत ऊर्जा, गुरुत्वाकर्षण या सापेक्षत्व को नही देखते, पर सम्यक् निर्धारित या निश्चित परिस्थितियो मे व्युत्प्रेक्षा (आब्जर्वेशन) के बाद हम इसकी गणना या आकलना कर सकते है। यही सत्य है और तब जो कुछ यथार्थत अवलोकित होगा, उससे इसकी सत्य-परीक्षा होगी। यह प्रकारान्तर से प्रमाण है। आध्यात्मिक सिद्धान्त ऐसे प्रमाण मे समर्थ है।' (एस० राधाकृष्णन)

ईश्वर या सयोग—यह विकल्प है। सयोग सयोग (ही) है। सयोग पर आधृत

बाते कभी घट जाती है, कभी (वे) नही भी घटती है। घटनाये यदा-कदा सम्भव है। सयोग के गणित पर घटना की सम्भावना ही सम्भव है, निश्चिति नही। समान परिस्थितियो मे प्रत्येक पासे से प्रत्याशित परिणाम का निश्चयन सम्भव नही।

ईश्वर वैसी अनिश्चिति नही है। आध्यात्मिक विधानो के अपने गणितीय समीकरण है। विज्ञान और आत्मा या चेतना के विधान अपने अन्तिम तन्तु तक सही है। भले, हम इनकी सिद्धान्त-सीमाओ से परिचित नही हो सकते, लेकिन विज्ञान ने तो सृष्टि-विधान की अनेक गुत्थियाँ सुलझाकर यह प्रमाणित कर दिया है कि यह ऐसा है। हम यह आशा कर सकते है कि विज्ञान के प्रमाणित नियमो को आधार प्रदान करने वाले नियम अपने मे एक-सा, ज्यादा शुद्ध और वास्तविक या तथ्यात्मक होगे। यदि पदार्थ तथ्य है और अक्षर है, तो सयति-सरक्षा का विधान भी समान रूप से सही हो सकता है। यदि पदार्थ और ऊर्जा परस्पर परिवर्त्तनीय है, तो कितना भी अस्पष्ट क्यो न रहे—एक सीमा-रेखा होगी ही, जहाँ पदार्थ का अवसान और ऊर्जा का उदय होगा। यदि कणो और इसी तरह तरगो का अस्तित्व है, तो एक स्थिति अवश्य होगी, जहाँ लघुतम तरगो से लघुतम कणो का भेद पाना असम्भव है। तुल्य ऊर्जाणु-सिद्धान्त (क्वाण्टम-थ्योरी)। यदि सजीव और निर्जीव वस्तुओ का अस्तित्व है, तो दोनो के बीच अस्तित्व का एक स्वरूप अवश्य होगा (तुल्य भाइरसेज, क्रिस्टल्स, जीन्स)। और, यदि वस्तु व्यक्त है और अव्यक्त भी (तुल्य विद्युत्, गुरुत्वाकर्षण, सापेक्षत्व) (जीवन, सयोग), तो हम यह आसानी से अनुमान और आशा कर सकते है कि अव्यक्त के व्यक्त और व्यक्त के अव्यक्त होने की प्रक्रिया मे वैसी स्थिति सम्भव है, जहाँ अव्यक्त नही रह सकता, फिर व्यक्त भी नही रह सकता। और, वह वस्तु जो न तो अव्यक्त है और न व्यक्त—स्वय परमात्मा है। अपने दिव्य तेजस् मे चमत्कृत। यह न निर्गुण है, न सगुण और फिर भी सगुण और निर्गुण दोनो का आधार है।

मृत्यु और जीवन के उदयास्त-क्रम मे जो साकार से निराकार होने का परिवर्त्तन-बिन्दु है, वही परमात्मा है। कल्पनातीत। विज्ञान, दर्शन, सयोग और अनुमान की सीमा मे परे। और जब 'एक' 'दो' हो जाता है, और 'दो' को 'एक' होने मे, जिस परिवर्त्तन-बिन्दु की आवश्यकता पडती है, उसे ही शून्य (जीरो) कहते है। सिक्के के दो पहलुओ, अच्छाई और बुराई, धनात्मक और ऋणात्मक के बीच वह (परमात्मा) सम्पर्क-कडी है। वह अस्तित्व मे और अस्तित्व उसमे है। उसका अस्तित्व ही समस्त सृष्टि के अस्तित्व को अस्तित्व देता है।

सयोग मे जडता है। न चेतना, न अभिनियोजन-शीलता (एडजस्टमेण्ट) और सृष्टि मे चेतना है, बुद्धि है, ईश्वर ज्ञानी है, सर्वज्ञ है। यह उनकी अपार विभूतियो मे एक है। ईश्वर हर तरह से अस्तित्व मे है और अस्तित्व मे रहेगे तथा सृष्टि के समस्त जड-चेतन का मुख्य जीवन-स्रोत है—सदा और सर्वत्र। ईश्वर को असिद्ध करनेवाला प्रमाण नही। जड और बुद्धिरहित तर्को स बेहतर है कि बुद्धि पर भरोसा किया जाय।

सयोग का विधान सृष्टि के हेतु प्रकृति मे सुलभ और कार्यरत समीकरणो और सिद्धान्तो और सविधियो मे से एक है। विधान अपने-आप मे अचेतन है, लेकिन यह ईश्वर के हाथ मे एक आयुध (हथियार, औजार) की तरह है। स्पष्ट रूप मे इस विधान की एक उपयोगिता है। यह भविष्यवाचको, गर्वोद्धत आत्माभिमानियो और उपद्रवी नास्तिको के लिए शह की तरह है और यह विचित्र हस्तत्राण अनभ्र वज्रपात या दिव्यता की अव्याख्येय प्रकृति का प्रकटीकरण है। घटनाओ के उदय के समय यह व्यक्ति को अनुमान-रत रखता है।

सयोग सैकडो और हजारो प्रकृति-विधानो मे एक है। स्रष्टा विधानो से परे है। जीवन, इतना सूक्ष्म, विविध और वैयक्तिक है कि सयोग के साथ इसकी कल्पना सम्भव नही। प्रकृति हर हमेशा सयोग पैदा नही कर सकती और तब सृष्टि एक धोखाधडी का खेल हो जायगा। फिर, सुरक्षा की चेतना और आशा का दुर्ग ध्वस्त हो जायगा।

नियति (भवितव्यता) का अपना एक स्थान है। यह काल के विशाल चित्रफलक पर और वस्तु-योजनाओ के बीच कोई दुष्टता नही, लेकिन सयोग के हाथो इसका कोई अर्थ नही होगा और सर्वव्यापी सार्वभौम चेतना के हाथ मे यह सोद्देश्य हो सकता है। सयोग इसके परिवर्त्तन मे (स) क्षम नही, किन्तु परमात्मा तो है। सर्वज्ञानी, शाश्वत, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तिर्यामी, करुणासागर, प्रेमस्वरूप परमात्मा के हाथ मे ही सयोग का यह विधान भी उद्देश्यपूर्ण और हितकर हो सकता है। सृष्टि-चक्र मे कील की तरह (परमात्मा के द्वारा) उपयुक्त यह परम प्रेम का सगुण रूप हो सकता है। नियति यदि हमारे अपने कर्मो का फल है, तो यह चुनौती या ललकार प्रस्तुत करेगी। पौधो का जीवन-विधान, वैविध्य मे ऐक्य, भौतिकी, रसायन-विज्ञान एव जीवनशास्त्र के अचूक विधान, वैज्ञानिक आँकडे पर आधृत भविष्यवाचन, इन्द्रियो के द्वारा प्राप्त ज्ञान, हमारी प्रार्थनाओ की सुनवाई, अर्थात् वाछित फल, मानवीय शरीर-सयन्त्र का कार्य-सचालन, क्या ये सब हमे नही बतलाते है कि सृष्टि किसी जड अव्यवस्थित, मूर्ख-गँवार और केवल सयोग का कार्यफल नही, बल्कि प्रज्ञा, प्यार और सरक्षा या उत्तरदायित्व का पुज इसके कण-कण मे शास्तावत् व्याप्त है।

स्रष्टा यदा-कदा ताश फेटता हुआ अपने पासे का खेल खेलता रहता है। वह सयोग का सहारा नही लेता। सयोग और नियति (भवितव्यता) की अदृश्यता और असम्भाव्यता सोद्देश्य होती है। प्रत्याशित आश्चर्य के द्वारा मनुष्य का अह स्निग्ध होता है और मनुष्य का ध्यान परमात्यन्तिक यथार्थ और आत्मा या चेतना की अजेय शक्ति के प्रति आकृष्ट करता है। परमात्मा के पास सख्यातीत ताश है और उनके पासे के अनन्त पहलू हैं।

मैने अनेक बार टेबुल या कागज के पन्ने पर सूच्यग्रबिन्दुवत् (सूई की नोक के बिन्दु-सरीखे) कृमि-कीटो को आश्चर्यकर गति से विचरते देखा है। मुझे आश्चर्य होता है और स्तब्ध रह जाता हूँ—जीवन और शरीर के इस सूक्ष्मीकरण को देखकर। इन लघु जीवो का चलना, रुकना, गति-दिशा बदलना, बाधाओ से कतराना, खतरे से

सचेत होना आदि क्रियाकलापो से तथा आँखो के द्वारा इनकी सप्राणता को देखते हुए यह तो कहा ही जा सकता है कि ये भी खाते है, देखते है, समझते है और बच्चे जनते है, सृष्टि-सम्पादन करते है। शरीर के यन्त्रीकरण इसके विज्ञान और अन्त करण के रहस्य तथा विजातीय तत्त्वो के प्रति इसकी रक्षात्मक सचेतता आदि पर आश्चर्य स्वाभाविक है। प्रत्येक अग, मस्तिष्क, हृदय, फेफडा, मूत्राशय, यकृत्, मासपेशियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ—ये सब कुशल प्रविधि, शिल्प (टेकनिक) और बुद्धि-सम्पन्न योजना की ही सीमाये (परिणाम) है। क्या ये सारे सयोग के परिणाम है ? तितलियो के कलात्मक पख, फलो के स्वाद-वैविध्य, फूलो के सौरभ और रग-विरगी छायाये—इनके क्या कारण है ? समस्त सृष्टि मे एक महान् ज्यामितिक सरचना और सयोजन देखने योग्य है। इन सारे विशिष्ट, महान् और उत्कृष्ट चमत्कारो के मूल मे एक बुद्धिमान् (नियन्ता) की तरह परमात्मा मे आस्था और विश्वास रखने की कैसी कठिनता है ?

साम्स ऑव डैविड — 'हे प्रभु, जब मै तुम्हारे हाथो की करामात, उँगलियो के काम—तुम्हारे दिव्यलोको तथा तुम्हारे द्वारा स्थापित चन्द्रतारको पर दृष्टि डालता हूँ, तब मै विभोर हो चिल्ला (चौक) उठता हूँ कि आखिर इस अदना आदमी मे भला क्या रखा है (धरा) है कि तुम इसका खयाल रखते हो, भला कौन-सी चीज (क्या) है, जो तुम इस नाचीज का खयाल करते हो, इतने खबरदार हो ?' नील आर्मस्ट्रौग ने अन्तरिक्ष की अनन्तता मे सहारा और धन्यवाद के लिए परमात्मा को चुना, सयोग को नही। वह (परमात्मा) अपने ढग से यह कहता है कि मै यहाँ हूँ, अगर ऐसा नही होता, तो कृतघ्न मनुष्य परमात्मा को कब का भूल गया होता, लेकिन ऐसा नही हुआ। मनुष्य के भीतर कुछ ऐसी चीज है, जो उसे वास्तविकता का ज्ञान दिला रही है। उसके अन्तरतम मे प्रकृति कही उसकी अन्तरात्मा से कुछ कह रही है। यद्यपि मनुष्य इन सबके प्रति पूर्ण सजग नही हे, न वह समझ सकता है और न व्याख्या कर सकता है, फिर भी वह चेतना से आलिगन-बद्ध (सम्बद्ध) है।

एक दिन सारे अन्तरिक्षयामी एयरोनॉट्स और कॉस्मोनॉट्स, अन्तरिक्ष मे अपने अलौकिक यन्त्रयान या अन्तरिक्षयान से एकत्र होकर एक दूसरे से अभिवादनार्थ हाथ मिलाते होगे। नील आर्मस्ट्रौग की चेतना सर्वशक्तिमान् विश्व-सर्जक के प्रति नम्रता (विनय) से परिपूर्ण होगी। कॉस्मोनॉट्स लुनाखूड-इजिनियरो के प्रताप से प्रभावित होगे। अपनी-अपनी पसन्द। मन माने की बात।

सयोग के खेलो मे प्रत्याशा-पुरस्कार जीतने की सम्भावना से बहुगुणित पुरस्कार का मूल्य है। फ्रासीसी गणितज्ञ पास्कल (1623–1667) के अनुसार, आन्तरिक आनन्द का मूल्य अनन्त असीम है। उनके विचारानुसार धार्मिक जीवन-यापन के द्वारा अनन्त शाश्वत आनन्द की प्राप्ति की सम्भावना वास्तव मे बहुत थोडी है। तोभी प्रत्याशा असीम है, इसीलिए यह वैसे जीवन-यापन मे सहयोग देगी। कुछ भी हो—परमात्मा के विरुद्ध अपनी बाजी मे पास्कल यह प्रश्न उठाता रहा कि 'क्या सम्भाव्यता (प्रायिकता) सम्भव है ?' (इज प्रोबैबिलिटी प्रोबैबुल ?)

ब्रिटिश-गणितज्ञ दार्शनिक बर्ट्रैण्ड रसेल ने व्यग्य करते हुए कहा—'गणित एक वैसे विषय के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जिसमे हम यह नही जानते कि हम किसके बारे मे क्या कह रहे हैं और न यह भी जानते है कि जो कुछ भी हम कह रहे है सत्य भी है या नही ?'

विश्व। विशाल विश्व-ब्रह्माण्ड। ग्रह। उपग्रह। सूरज, चाँद, सितारे। दिन-रात। पल-छिन। जड-चेतन। प्रकृति। हर कण, हर क्षण एक अमिट अटूट क्रम-नियम से बँधा। एक विशद, विराट् और शाश्वत-विधान-व्यवस्था। जीवन और जगत् मे विविधता-जटिलता। ये सब हमारी आँखो के आगे है। खुली-खुली नजरो से इन्हे देखते जा रहे है हम। और, विश्व या प्रकृति की इस विशाल व्यवस्था और विधान-पुज के किसी अश की झलक-भर पा सकते है। आधुनिक विज्ञान के दुर्दान्त दिग्गज (स्व० आइन्स्टाइन) विश्व-ब्रह्माण्ड और प्रकृति-विधान-व्यवस्था के एक अश से अवगत हुए। दुनिया ने उनकी बुद्धिमत्ता को सर्वोच्च सम्मान नोबेल पुरस्कार से विभूषित किया। लेकिन, इस विधान-व्यवस्था की सम्पूर्णता का जो स्वामी और नियामक है, वह आइन्स्टाइन से कम बुद्धिमान् है या निरा बेवकूफ है क्या ? उस परमबुद्धिमान् के ज्ञानागार के एक कणाश का बोध-विवेचन कर कोई ज्ञानी विद्वान् कहलाये और जो उस ज्ञानागार का अधिकारी है, वह गदहा ! यही न ? क्योकि, विश्व-ब्रह्माण्ड की प्रत्यक्ष व्यवस्था उसकी नही, सयोग का परिणाम है ? सयोग की ही बात है, तो हर कुछ सयोग-ग्रस्त हो सकता था। सूरज के साथ कभी ऐसा सयोग होता कि वह बीमार पड गया और कुछ दिनो के बाद दीखता या कभी ऐसा सयोग हुआ होता कि ऐन वक्त पर वह कतरा गया होता या बीच राह मे घोडे के भाग जाने से उसे रुक जाना पडता और उसे आने मे घण्टे-दो-घण्टे देर हो गयी होती। लेकिन कभी ऐसा हुआ है क्या ? ऐसा होता है क्या ? ऐसा होगा क्या ? ऐसा देखा-सुना-पढा है क्या ? क्या इसमे किसी बुद्धिमान् व्यवस्थापक की सत्ता और व्यवस्था नही नजर आती ? यह सयोग ही है ? कितने ग्रह-उपग्रह दिन-रात पल-छिन इस ब्रह्माण्ड मे चक्कर काट रहे है, कभी किसी से टकरा भी सका है क्या ? इसके पीछे भी कोई व्यवस्था नही दीखती ? यह भी सयोग है क्या ? लाख सूचना-सकेत, सावधानता, व्यवस्था-विधान के बावजूद गाडियाँ अक्सर टकरा ही जाती हैं।

सुकर्म सदा भला करेगा, यह दृढ विश्वास कहाँ से लाये, किसके बूते ? मेहनत का फल मीठा होता है, त्याग, अपरिग्रह इत्यादि ['मूर्खता' (?)] के लिये उत्साह, बल और विश्वास किसके दरवाजे खोजे ? दूसरो के लिए अपना क्यो जाने दे। क्यो न इस एकमात्र जिन्दगी मे अपने लिये येन-केन-प्रकारेण सुख-सुविधा इकट्ठी करते रहे, चाहे लोग मरे।

ईश्वर हो या न हो, लेकिन उसको होना (उसका होना नितान्त आवश्यक) है, (होना चाहिए) खासकर आजकल की दुनिया मे, जो सम्भार और तनाव (स्ट्रेस और स्ट्रेन) से टूटती-बिखरती जा रही है, उसके लिए ईश्वर को होना पडेगा। आदमी को, विश्व को, परमात्मा की इतनी अधिक आवश्यकता है, और सदा रही है कि इस कारण

से भी यह मान लेना ठीक मालूम पडता है कि ईश्वर था और है और रहेगा—कि उसका अस्तित्व चिरन्तन सत्य है। नही तो आदमी कहाँ सहारा ढूँढे ? कौन विश्वास दिलाये कि सत्य के पावन पेड मे नीले काले जहरीले फल नही फलेंगे ? कौन भरोसा दे कि निस्सहाय निरपराध का खून माथे चढकर बोलेगा ? कौन बेकस को ढाढस दिलाये ? गरीब की हूक को, उसकी पीडा को कौन सुनेगा ? प्यार से ? इज्जत-मर्यादा के साथ ? निर्जन राह पर, निराशा के तिमिर से घिरा इन्सान का कौन साथ देगा ? कौन आशा की बाँसुरी फूँकेगा ? ईश्वर हमारी आवश्यकता है। अपने अपार गुणो के कारण वह सर्वसमर्थ है, सदा है, सर्वत्र है, सभी का होते हुए अपना भी है। इसलिए, वह सदा, सर्वत्र, सबके लिए, सब कुछ कर सकता है। शाश्वत, सर्वज्ञ होने के कारण वह भूत, वर्त्तमान, भविष्य सबका जाननेवाला, सबका नियन्ता, सबका कर्णधार है। सबके मन का ज्ञाता होकर वह सबकी कुजी रखता आया है। सब प्राणियो की प्रत्येक प्रक्रिया से वाकिफ है, सबका इलाज जानता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त, मृत्यु से जन्म तक, समस्त ब्रह्माण्ड मे वह अद्वितीय सत्ता है। सबका मालिक है। जिस प्रकृति, जिस विज्ञान ने हमारी आवश्यकताओ की (पूर्त्ति की है) सारी चीजे जुटा रखी है, वह हमारे ईश्वर को भी छिपाये हुए है और जब आदमी उसके लिए बेचैन हो उठेगा, तब ईश्वर प्रत्यक्ष हो जायगा (तु० अवतार, 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति' इत्यादि)। आवश्यकता नही होती, तो अवतार नही होते।

परमात्मा इन्सान की जरूरत से आता है (प्रकट होता है)।

ईश्वर साधना, साधन और साध्य तीनो है। साधक भी। मनुष्यता ईश्वर के बिना बेसहारा हो जायगी। आदमी दानव बन जायगा। प्रेम, सहानुभूति, सचाई इत्यादि भी मतलबी हो जायेंगे। व्यापार, लेन-देन-मात्र। सभी दिक्काल (स्थान-समय) (टाइम-स्पेस) मे बँध जायेंगे। माया मे फँसकर चौपट हो जायेंगे। मजबूत आदमी, या सरकार, मनमाना लक्ष्य निर्धारित कर, जैसे भी हो, उसकी पूर्त्ति के लिए अनुचित अवाछनीय काम करने से कतई न हिचकेंगे। भय, डर, का साम्राज्य होगा। प्रेम, करुणा, इत्यादि बेकार हो जायेंगे। निजी या सामाजिक स्वार्थ की चक्की मे इन्सानियत पीस दी जायगी। आदमी का मस्तिष्क लक्ष्य निर्धारित करेगा। निकट या दूर भविष्य मे उसका क्या अजाम होगा, वह जान नही पायगा। इन्ही बेबुनियाद लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए हत्याएँ होगी, खून बहेगा, स्वतन्त्रता छीनी जायगी। कहर ढहेगा, फैलेगा, धर्म का हनन होगा।

भगवान् कही मर गया, तो इन्सानियत मर जायगी।

अगर इन्सान और उसकी इन्सानियत को जीना-पनपना पुष्पित और पल्लवित होना हो, तो ईश्वर हो या न हो, उसे होना पडेगा। उसे धरातल पर कही-न-कही होना ही पडेगा, अवश्यमेव होना ही होगा। आदमी किसके सहारे, किसके भरोसे जीयेगा ? विपत्तियो की आग से घिरा, सुख की बौछार से माता हुआ (पागल) (आहत) (ग्रस्त) (बीमार) आदमी कहाँ राहत पायगा ? बेकसूर (बेगनाह) इन्सान

झूठे सबूतो की पेशी पर कहाँ त्राण पायगा ? जीवन और मृत्यु के बीच (मृत्यु के द्वार पर) उसे कौन साहस देगा ? कहाँ से आशायें बँधेगी ? 'सब दिन होत न एक समान' इसका कौन जामिन होगा ? सत्य की हत्या कौन रोकेगा ? पश्चात्ताप को कौन प्रश्रय देगा ? हमारे 'मै' को, 'अन्त करण' को, कौन समझेगा ? कौन मेरे मन की बात सुनेगा-समझेगा ? निष्कलक सीता कैसे अपना सिर ऊँचा रखेगी तिरस्कार और भर्त्सना के कछार पर ? 'हम' को कौन समझेगा, पहचानेगा, मान्यता देगा ? कौन होगा पारखी ? पारस (पारस-पत्थर, पारस-मणि) ? गरीब की हाय किसकी गोद मे हँसेगी ? कहाँ त्राण पायेंगे निर्बलता के आँसू ? हम अपने मे कैसे जी सकेंगे ? दूसरो का सोचना, औरो द्वारा निर्धारित नियन्त्रित और उसपर आधृत अपना जीवन कैसे सम्भव होगा ? हमारा अन्तरतम विकृत न हो जायगा। टुकडे-टुकडे न हो जायगा, वह सब, जो कुछ हम है।

दनुजो से मानवता को बचाने के लिए वह दुर्निवार दुर्ग-सा खडा रहता आया है।

भगवान् का सहारा पाकर मानवता मे चार चाँद लग जायगा। सोना सुगन्धित हो जायगा। कही भूकम्प आया, तो पृथ्वी फट जायगी। भगवान् नही आया, तो उसे बुलाना पडेगा। वह नही मिला, तो उसे ईजाद करना पडेगा।

उत्कृष्ट (सुपीरियर) सर्पमीन (जलव्याल) (ईल मछली) हजारो अविकृत सर्पाकार मछलियो सर्पमीनो (जलव्यालो) (ईलो) पर परीक्षण के बाद Teichmann को, जो उल्लेखनीय उपलब्धि हुई, उसके अनुसार यह स्पष्ट हुआ कि कुछ पदार्थों के लिये, इन ईल-मछलियो की तीक्ष्ण घ्राणशक्ति अन्य जानवरो की अपेक्षा ज्यादा है। आदमी तथा कुत्ते की घ्राणशक्ति की तुलना मे भी यह उत्कृष्टतर है। क्योकि, वे कुछ यौगिको के छोटे-छोटे दो या तीन अणुओ का पता लगा सकती हैं। उन्होने (Teichmann) ने दिखाया कि उनमे से कुछ तो 1 $(2\ 86 \times 10-18)$ या इससे भी कम सान्द्रण (कन्सेण्ट्रेशन) पर Phenylethyl alcohol (फेनिल-एथाइल एलकाहाल) का पता लगा सकती है। दूसरे शब्दो मे वे ३० मील लम्बी और १० मील चौडी और ८२७ फीट गहरी कीन्स्टैन्स झील के घनत्व की तरह ५४ गुना पानी के घनत्व मे यौगिक के एक सी० सी० का पता लगा सकती है।

Dr Einstein first advanced the notion in 1905 that time is relative and the time a clock records depends on its speed relative to the stars Thus, he theorised a clock travelling eastward at high speed would lose about 100 billionthes of a second compared to a stationary clock. Similarly one travelling westward would gain about 100 billionthes of a second It is now being felt that Einstein was only partly right The effect of travel on a clock is very small, probably smaller than even Dr Einstein figured

डॉ० आइस्टान ने पहले सन् १९०५ ई० मे यह विचार दिया कि समय सापेक्ष है और घडी का अकित समय अपनी ग्रहसापेक्ष गति पर निर्भर है। इस प्रकार, उन्होने यह सिद्धान्त नियमित किया कि उच्चगति पर पूर्वोन्मुख परिभ्रमण मे, स्थिर घडी

की तुलना मे प्राय एक सेकेण्ड का १००० खरबवें भाग की कमी हो जायगी। उसी प्रकार पश्चिमोन्मुख परिभ्रमण मे प्राय उतना ही भाग बढ जायगा।

मै परमात्मस्वरूप हूँ या जीवात्मा और परमात्मा एक ही है—यह सब वैसा ही कहना है, जैसे आम की गुठली या पत्ती का कहना कि मै आम हूँ या किसी भी भारतीय नागरिक का अमेरिका मे यह डीग हाँकना, शेखी बघारना, कि मै भारतीय (इण्डियन) हूँ, चाहे वह कैसा भी क्यो न हो।

वस्तुत, 'महात्मा' इज ए वे ऑव लाइफ (जीवन-मार्ग) (एक विशिष्ट या खास तरह की जिन्दगी या जीवन-यापन का तरीका या रास्ता है)।

From Kena-Upanishad (केनोपनिषद्)

If you think that you have understood the Brahman well, you know it but slightly, whether it refers to you or to God So there is it to be investigated by you

I do not think that I know it well, nor do I think that I do not know it He who among us knows it, knows it, and he too does not know that he does not know

To whomsoever it is not known, to him it is known, whomsoever knows it does not know it It is not understood by those who understand it, it is understood by those who do not understand it

(Translation by Dr S Radhakrishnan)

Gandhijee wrote about Geeta—"When doubts haunt me, when disappointments stare me in the face, and I see not one ray of hope on the horizon, I turn to the Bhagavad-Gita and find a verse to comfort me, and I immediately begin to smile in the midst of overwhelming sorrow"

केनोपनिषद् से

यदि तुम सोचते हो कि तुमने ब्रह्म को भली भाँति समझ लिया, तो तुम थोडा ही जानते हो, चाहे वह ज्ञान तुम्हारे अपने बारे मे हो अथवा भगवान् के सम्बन्ध मे। तो, इसलिए तुम्हारे द्वारा इसकी खोज होनी है।

मै नही सोचता हूँ कि मै इसे अच्छी तरह जानता हूँ, न तो मै यह सोचता हूँ कि मै इसे नही जानता हूँ। हमलोगो मे जो भी इसे जानता है, जानता है, और वह भी नही जानता है कि वह नही जानता है।

जिस किसी को भी यह ज्ञात नही हुआ, उसके लिए यह ज्ञात है। जो कोई भी नही जानता है, वह इसे नही जानता है। जो इसे समझते है, उनके द्वारा यह नही समझा जाता है, जो इसे नही समझते है, वे ही इसे समझते है।

(डॉ० राधाकृष्णन् के अनुवाद से)

गान्धीजी ने गीता के सम्बन्ध मे लिखा—जब सशय मुझे घेरते है, जब निराशा सामने खडी होती है और मै आशा की कोई किरण क्षितिज पर नही देखता हूँ, तब मैं

गीता का सहारा लेता हूँ और अपनी सान्त्वना के लिए कोई श्लोक पा लेता हूँ। और मै शीघ्र घनघोर दु ख के बीच मुस्कराने लगता हूँ।

Just imagine, when we see the vistas from each pin-point of the vast expose of scenery, infinite rays must be coming to our retina and our retina analyses and interprets all those rays and all those shades of colours. Similar is our ear and its performance

The whole is greater than any of its parts and is equal to the sum of its parts (Axiom)

Aggregate of all things equals to creation as a whole

कल्पना करे। दृश्य के विशद विस्तार के प्रत्येक सूक्ष्म बिन्दु से जब हम दृश्य देखते है, तब अनन्त रश्मियाँ हमारे नेत्र-पटल पर अवश्य ही आती होगी और हमारे नेत्र-पटल उन सभी रगो की छायाओ और किरणो का विश्लेषण और विवेचन करते है। वैसी ही बात कान और इसके कार्य के सम्बन्ध मे है।

सम्पूर्ण अपने अशो मे किसी से भी महत्तर है और इनके समस्त योग के बराबर है (स्वयसिद्धि)। सब कुछ का जोड समग्र सृष्टि के बराबर है।

हमारी दोनो आँखे भी एक-सी नही है, न एक-सी देखती है, न एक-सी दीखती है। हमारी दोनो आँखो के लिए दो तरह के चश्मे की जरूरत है, दो भिन्न पावर (Distant and near vision and axis) के चश्मे इस्तेमाल करते है। अगर चश्मे उतार दे, तो दोनो आँखे दो अलग-अलग दृश्य देखे (at least in details) (कम-से-कम विस्तार मे)। दोनो आँखे एक बार खराब नही हुई। फिर भी दोनो नेत्र ही हैं। एक ही तरह का कार्य सम्पादन करने की मशीने, यन्त्र, और दोनो ही आँखे हमारे शरीर (देह, काया) के ही अग है। उसी मे है। अनेकता मे (के बीच) एकता। कोई दो चीजे सर्वांश मे एक-सी नही। परमात्मा एक है।

Life force (जीवनी शक्ति), Existence (अस्तित्व). Itself (स्वय) pervading the Universe and the Cosmic Consciousness (विश्व तथा सार्वभौम चेतना) and the Laws of Creation and Destruction (तथा सृष्टि-सहार के विधान), Sustenance and Protection (पोषण तथा सुरक्षा) मे व्याप्त।

जीवात्मा is the raw material (कच्चा माल) which has partaken (साझीदार) of the attributes (गुण, विशेषता) of God, of the Cosmic Consciousness, and is governed (शासित) by the laws meant for it It has desires (कामनाएँ) and instincts (मूल प्रवृत्ति सहज वृत्ति) when it enters the body the embodied जीवात्मा becomes जीव।

(शरीर स्थापित, भगवान् का लघुतम अवतार, नाना रूप धरै रे माटी।)

सूक्ष्मतम कम्पन (Finest vibration)

स्थूलतर कम्पन (Grosser vibration)

स्थूलतम कम्पन (Grossest vibration)

जीवात्मा कच्चे माल (रॉ मैटेरियल) की तरह है, जिसमे परमात्मा या सार्वभौम चेतना की विशेषताएँ भी है और यह भी अपने विधानो से शासित है। जब यह शरीर धारण करती है या शरीर मे प्रवेश करती है, तब इसका सम्बन्ध इच्छाओ और सहज वृत्तियो से हो जाता है। यह शरीरधारी जीवात्मा ही जीव बन जाता है।

आध्यात्मिक अभिधारणाएँ (Postulates) तथा स्वयसिद्धियाँ (Axioms) Brain is essential (अत्यावश्यक) for Mind—Mind is imperative (अनिवाय) for God-realization

If the mind (मानस) and/or brain (मस्तिष्क) is abnormal (अप्रसम, अपसामान्य, विकृत) or diseased (रुग्ण) the conception of God will be erroneous or wrong—in other words, God cannot be realized by a defective mind Incumbered mind (बोझिल मन) is not fit for concentration (ध्यान-केन्द्रण) and for abstract (दुर्बोध, गूढ) pursuits (अन्वेषण, खोज) and God realization (अनुभूति).

God is realized by intuitive process (अन्तर्दृष्टि, अन्तर्बोध-प्रक्रिया) (cf Euclidean+Non-euclidean Geometry and its Axioms and postlates) Neither religion nor science knows when 'intuition' ends and 'proof' begins and as to what really is 'true'

आध्यात्मिक ज्यामिति GEOMETRICS OF RELIGION

Here the Axioms will apply to God's Laws and conceptions about God, Soul, after-life, rebirth etc—postulates will apply to changes which man can affect in himself for achieving the 'vision' of God

आध्यात्मिक अभिधारणा (पास्टुलेट) तथा स्वयसिद्धियाँ (एक्सियम) मस्तिष्क, अन्त करण या चेतना के लिए अत्यावश्यक है। अन्त करण ईश्वर की अनुभूति के लिए अनिवार्य है।

यदि अन्त करण (चेतना मानस) अपसामान्य एव रुग्ण है, तो ईश्वर के सम्बन्ध की धारणा त्रुटिपूर्ण या गलत होगी। दूसरे शब्दो मे, परमात्मा की अनुभूति दोषयुक्त अन्त करण (चेतना मानस) से नही हो सकती। अमुक्त अन्त करण (चेतना मानस) ध्यान-केन्द्रण और इसके फलस्वरूप गूढ कल्पनाओ और ईश्वर की अनुभूति के लिए उपयुक्त नही है।

ईश्वर की अनुभूति अन्तर्बोध-प्रक्रिया से ही सम्भव है। वास्तव मे सत्य क्या है, प्रमाण कहाँ से फूटते हैं और अन्तर्दृष्टि कहाँ शान्त होती है। इन प्रश्नो का उत्तर न धर्म के पास है, न विज्ञान के पास ही।

आध्यात्मिक ज्यामिति अथवा धर्म की ज्यामिति (ज्योमेट्री ऑव रिलिजन)

यहाँ स्वयसिद्धियाँ ईश्वर-विधानो, ईश्वर-सम्बद्ध धारणाओ, आत्मा, पुनर्जन्म इत्यादि के लिए लागू होगी और मान्यताएँ ईश्वर-दर्शन के क्रम मे मनुष्य के स्वय प्रभावित परिवर्त्तनो के लिए।

By getting crude and cruder जीवात्मा then drops out of परमात्मा From ethereal (पारलौकिक, अतीन्द्रिय) to material (भौतिक) existence (अस्तित्व), just as ice-flakes drop out of the moisture-laden sky or rain drops from clouds and cloud from the moisture in the atmosphere or like dew-drops from a winter-night or like candle-droppings or even like blind kittens (बिलौटा) born out of their mother.

माँ—परमात्मा की ममता+मनुष्य की पावनता (कमजोरियाँ)। (आध्यात्मिक) (विशुद्ध) (प्यार+चाह)

जीवात्मा जब स्थूल से स्थूलतर होता है, तब परमात्मा से विच्छिन्न हो जाता है। अतीन्द्रिय से भौतिक अस्तित्व मे स्थित हो जाता है। जैसे आर्द्रतापूर्ण आकाश से हिम जन्म लेता है, बादल से वर्षा की बूँदे और वायुमण्डलीय आर्द्रता से बादल, शरद्-निशा मे ओसकण, मोमबत्ती से मोम और अपने जन्मोत्सव से बिलौटे।

भवतो यत्पर तत्त्व तन्न जानाति कश्चन।
अवतारेषु यद्रूप तदर्चन्ति दिवौकस ॥
(विष्णुपुराण, ४/१७)

निमित्तमात्रमेवाऽसौ सृज्याना सर्गकर्मणि।
प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तय ॥
(विष्णुपुराण, ४/५१)

निमित्तमात्र मुक्त्वैव नान्यत्किञ्चिदपेक्षते।
नीयते तपसा श्रेष्ठ स्वशक्त्या वस्तु वस्तुताम् ॥
(विष्णुपुराण, ४/५२)।

Following the methods (प्रणाली) and processes (प्रक्रिया) of 'Geometrics' and the so called 'logic' (but is 'logic' infallible? and 'logical arguments' the correct apporoach to the analysis and synthesis of ideas?) (and can its 'derivatives' be dependable as expressing 'truths'?) we too can build up a 'science' of religion no worse than the facade of 'truth presented by the 'most perfect of all sciences', the geometry

Geometry is the greatest lie perpetrated (palmed on) mankind where 'intuition' ends and 'proof' begins and speculations come in Euclidean Geometry starts with 'points' 'lines' 'planes'
(बिन्दु) (रेखा) (तल)

A 'point' has position but no magnitude (विस्तार, आकार) This is contradiction (परस्पर-विरोध, असगति) in terms and anything which has a 'position' (a location), must have a magnitude and vice versa Anything which has no magnitude at all cannot be located anywhere

"A line has length but no breadth" this is again an impossibility for howsoever thin a line may be it must have a thickness

'Points' set side-by-side make (constitute or construct) a line And a line is defined as lying between or joining two points Now suppose there are the points A, B

A————————B, then AB is a line

Now if B is located just (adjacent) to A then how can a line be drawn between them ? AB, A and B touching each other.

Since also a point has no magnitude, a line too being the aggregate of points set side-by-side or side-to-side (?) could have no magnitude

magnitude
A————————B

(1) A————————B

A line can be drawn between two points

(2) A————————B

A line is that which connects or is drawn between two points

(3) A————C————B

On any line AB, there can be a third point lying between A and B

A (straight) line is the shortest distance between two points

A————————B, however, when you try to draw such a line on a piece of paper and the paper is placed on the table or on the surface of the earth and the earth is round then all such papers must be curved and if this paper were say 5000 kilometers long the curvature of the so-called **'straight'** line would be more apparent it is almost impossible to draw a straight line on the surface of the planet earth In other words the 'shortest distance' would be a curve and not a straight line, between any two points.

A beam (रश्मि, किरण) of light going from one point on this earth

to another distant point on this very planet would get curved as they are known to do in physics

The shortest distance would be a curve and not a line

Now if an isosceles triangle (समद्विबाहु त्रिकोण) is drawn the sum of its ∠s may be more than 180° and it may have more than two right ∠s Co-ordinate geometry

बर्ट्रेण्ड रसेल गणित वह विषय है, जिसमे हम कभी नही जानते है कि हम किसके (जिसके) बारे मे कह रहे है और न तो यह भी जानते है कि जो कुछ हम कह रहे है, यह सच भी है या नही।

ज्यामिति की प्रणाली (विधि) तथा प्रक्रिया, कथित तर्कशास्त्र और तर्कपूर्ण वाद-विवादो के माध्यम से विचारो के विश्लेषण और सश्लेषण के प्रति सही दृष्टिकोण— **और इनके व्युत्पन्न विषय व्यक्त सत्यो की तरह विश्वसनीय हो सकते हैं क्या ?** ज्यामिति मानवता पर (के प्रति) थोपी गयी एक भारी (महत्तम) झूठ है, जहाँ अन्तर्दृष्टि गौण (का अन्त) है, और प्रमाण (का प्रारम्भ होता है) प्रकट है और अनुमान विद्यमान है।

यूक्लिदी ज्यामिति (Euclidean Geometry) बिन्दुओ, रेखाओ और तलो से शुरू होती है।

'बिन्दु' स्थान तो ग्रहण करता है, लेकिन इसका विस्तार या आकार नही है। यह परस्पर असगत कथन है। क्योकि, कोई भी वस्तु जो स्थान ग्रहण करती है, उसके पास आकार जरूर होगा या फिर इसके व्युत्क्रम से जो स्थान नही घेरती है, उसके साकार स्थित होने की बात नही हो सकती।

'रेखा' मे लम्बाई होती है, लेकिन चौडाई नही। यह भी एक असम्भव कथन है। क्योकि, किसी भी रेखा मे, चाहे वह कितनी भी क्षीण क्यो न हो, लेकिन एक मोटाई तो अवश्य ही रहेगी।

पार्श्ववर्त्ती बिन्दुओ के मेल से रेखा बनती है और एक रेखा को दो बिन्दुओ की मध्यस्थ या दो बिन्दुओ को मिलानेवाली कहा जाता है। अब, मान लीजिए कि ए, बी दो बिन्दु है ए बी, फिर ए बी एक रेखा है और बी को ए के ठीक पास मे स्थित किया जाय, तो उनके बीच मे एक रेखा कैसे खीची जाय, जब ए बी एक-दूसरे को स्पर्श कर रहे हो। चूँकि एक बिन्दु को आकार नही होता—उसी तरह बिलकुल अगल-बगल स्थित दो बिन्दुओ का समाहार होती हुई रेखा मे भी आकार नही हो सकता ए————बी

(१) ए————बी, रेखा दो बिन्दुओ के बीच मे खीची जा सकती है।

(२) ए————बी, रेखा दो बिन्दुओ को मिलाती है।

सी

(३) ए————बी, ए बी रेखा पर ए बी के बीच एक तीसरा बिन्दु सी, हो सकता है।

सरल रेखा दो बिन्दुओ के बीच की सबसे कम दूरी होती है। जो भी हो, जब आप गोल धरती की सतह पर स्थित टेबुल पर रखे कागज के टुकडे पर ऐसी ही रेखा खीचने की कोशिश करे—तो ऐसा कागज अवश्य ही वक्र होगा और यदि यह कागज 5000 कि० मी० लम्बा हो, तो कथित सरल रेखा की वक्रता अत्यधिक स्पष्ट होगी। पृथ्वी की सतह पर सरल रेखा खीचनी असम्भव है। दूसरे शब्दो मे अल्पतम दूरी दो बिन्दुओ के बीच वक्र रेखा होगी, न कि सरल सीधी रेखा।

पृथ्वी के एक बिन्दु से दूसरे दूर बिन्दु तक आती हुई प्रकाश की किरण भौतिकी के अनुसार वक्र हो जायगी। अल्पतम दूरी वक्र रेखा होगी, न कि सरल।

अब अगर हम एक समद्विबाहु त्रिकोण खीचे, तो इनके सारे कोणो का योग 180 डिग्री से ज्यादा हो सकता है और इसमे दो समकोणो से अधिक भी हो सकते है।

P_4 ———————— C_4

P_3 ———————— C_3

P_2 ———————— C_2

P_1 ———————— C_1

A ———————— B
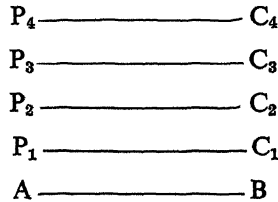
Take $P_1 C_1$, $P_2 C_2$, $P_3 C_3$ and $P_4 C_4$ different lines parallel to AB Suppose points $P_1 P_2 P_3 P_4$ were now superimposed and merged with P (but no merging is possible, the point P has no 'magnitude') then what will become to those lines $P_1 C_1$ $P_2 C_2$ $P_3 C_3$ and $P_4 C_4$? Suppose a ray of light was passing between P and C and was parallel to AB

Now suppose a ray was passed from P to mirror D in such a way that it got reflected and then passed from D to pin-hole P and then P to C—are they not all parallel to AB? cf several messages (wireless) or telegrams sent on the same line

cf sounds of different wave-lengths transmitted on the same line cf Lights (colours) of different wave lengths, rays, going in the same direction

From any point not on a line only one parallel could be drawn to that line This is also a wrong statement or supposition
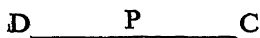
AB is a line and 'P' a point P_i P_{ii} P_{iii} out side it

Then we can draw the line PC parallel to AB, we can draw another line PD parallel to AB, and since a line has length but no thickness we can draw starting from 'P' various lines e g Pi, Pii, Piii etc etc and

thus many and innumerable lines can possibly be drawn parallel to the line AB

Now suppose 'P' was a pin-hole, then light-rays of various wave-lengths (and colours-cf vibjyor) can be passed through the pin-hole towards (in the direction of) B or A and they all will be parallel to AB. It may not even be a case of super-imposition because of the breadth-lessness of 'line' by geometrical definition

By 'Zero' the mathematicians mean that Zero is 'nothing' i e Zero is an 'insignificant' and 'negligible' quantity

First of all 'nothing' ≠ 'insignificant' 'Insignificant' or even 'negligible' means that it exists either as an insignificant positive or as an insignificant negative integer And then 'Zero' is that from which all positive and all negative numbers arise and get submerged. And as something cannot come out of nothing Zero cannot be 'nothing' Infact, it is the most significant of all numbers, the beginning and the end of all numbers or of all that can be numbered And by merely placing '0' after an integer or number it automatically gets multiplied ten, hundred, thousand or more times and similarly reduced if zero is placed before Decimal system And what is 'insignificant' or 'negligible' for one may not be so for others And among mathematicians also there are kings as well as paupers जिस जीरो से समस्त सख्याएँ निकलती है और जिसमे सभी विलीन हो जाती है, वह कुछ भी नही है ? कीच से कमल निकलता है, तो क्या कीच कुछ भी नही है ? उसका कोई महत्त्व नही ? जहाँ पानी बर्फ बन जाता है और बर्फ पानी, जहाँ पानी हवा बन जाता है और हवा पानी, उस बिन्दु (प्वायण्ट) की कोई प्रधानता नही ? वह त्याज्य है ? नथिंग कैन बी क्रीएटेड आउट ऑव नथिंग। इसलिए भी, जीरो कैन-नॉट बी जस्ट 'नथिंग'।

फिर भी, यह कहा जा सकता है कि अगर मेरा कोई देना-पावना न हो, और पास मे कोई द्रव्य भी न हो, तो क्या यह कहना गलत और अनुचित होगा कि मेरे पास कुछ भी नही है ?

पी$_१$ सी$_१$, पी$_२$ सी$_२$, पी$_३$ सी$_३$ और पी$_४$ सी$_४$, ए बी के समानान्तर भिन्न-भिन्न रेखा है। अब मान ले पी$_१$ पी$_२$ पी$_३$ पी$_४$ बिन्दु पी मे मिल जायं [पी विस्तार-रहित (विहीन) बिन्दु है, अत इसमे मिलना इन सबका असम्भव-सा है।] तो पी$_१$ सी$_१$, पी$_२$ सी$_२$, पी$_३$ सी$_३$ और पी$_४$ सी$_४$ रेखाओ का क्या होगा ? मान लीजिये, प्रकाश की एक किरण पी और सी और ए बी के समानान्तर जा रही हो। अब मान लीजिये, वह किरण पी से दर्पण डी तक इस तरह गुजरी कि यह परावर्तित हो गयी और तब डी से पी तक और फिर पी से सी तक चली क्या वे सभी ए बी के समानान्तर नही है? (तुल्य विविध सवाद—बेतार का तार, टेलीग्राम का एक ही रेखा मे प्रेषण, विभिन्न तरग-लम्बाइयो की ध्वनियो का एक ही रेखा मे सम्प्रसरण,

विभिन्न तरग-लम्बाइयो की प्रकाश-किरणो का एक ही दिशा मे गमन)।

एक ही रेखा मे नही रहनेवाले किसी बिन्दु से उस रेखा के समानान्तर केवल एक ही रेखा खीची जा सकती है। यह भी एक गलतबयानी या मान्यता है।

ए बी एक रेखा है और पी इसके बाहर एक बिन्दु है। तो, हम ए बी के समानान्तर पी सी, पी डी इत्यादि रेखाएँ खीच सकते है। और चूँकि एक रेखा मे लम्बाई तो होती है, आकार या मुटाई नही, तो हम पी से पी पी$_2$, पी पी$_3$ इत्यादि रेखाएँ खीच सकते है और इस तरह ए बी के समानान्तर सम्भवत अधिसख्य रेखाएँ खीची जा सकती है। अब मान ले, 'पी' एक सूचि-छिद्र है, तो विभिन्न तरग-लम्बाइयो की प्रकाश-किरणें और रग (बैनआहपीनाला) बी या ए की दिशा मे सूचि-छिद्र के द्वारा गुजर सकती है और वे सभी ए बी के समानान्तर होगी। ज्यामितिक परिभाषा के अनुसार रेखा की चौडाई हीनता के कारण अत्यारोपण भी नही हो सकता।

शून्य को गणितज्ञो ने नगण्य मात्रा मानी है। इसके महत्त्वहीन मानने का मतलब है (के मुताबिक) यह चाहे तो महत्त्वहीन धनात्मक पूर्णांक है या ऋणात्मक पूर्णांक, और तब मै कहूँगा कि शून्य वह है, जिससे (मे) सारी ऋणात्मक और धनात्मक सख्याएँ जन्म लेकर फिर उसी मे विलीन हो जाती है। और 'कुछ' भी नही से 'कुछ भी' नही निकाला जा सकता है। इसलिए, शून्य 'कुछ भी नही' नही हो सकता है। वास्तव मे, यह सब सख्याओ मे (से) अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह सभी सख्याओ का आदि-अन्त है। और केवल 'शून्य' को किसी भी सख्या या पूर्णांक के बाद रखने पर यह (सख्या) आपसे-आप दसगुना, सौगुना, हजारगुना और इससे भी अधिक हो जाती है या फिर इसी तरह यदि 'शून्य' को पहले (दशमलव-विधि) रखा जाय, तो विपरीत परिणाम होगे। और, जो एक के लिए महत्त्वहीन या नगण्य है, दूसरे के लिए वह ऐसा नही हो सकता। गणितज्ञो मे कुछ धन-कुबेर है, तो कोई दरिद्रनारायण भी है।

Corruption (भ्रष्टाचार) in the society (समाज). Anti-corruption department becomes most corrupt Impelled, repelled sanctity of a temple, people who may easily steal elsewhere would not steal in a temple. Similarly if a man's own heart becomes the temple of God, he would be a better and pious man.

If the whole science of Geometry, its whole facade (दिखावा) and its great monuments (स्मारक), could be built on lies and falsehoods, on speculations and intuitions why should there be any annoyance if similar stands are taken for God? The basic assumptions of Geometry are built on 'unscientific' (अवैज्ञानिक) 'unproven' (अप्रमाणित) intuitive assumptions (axioms) so also the very basis, root and fabric of Geometry is wrong. Even if God's conception be false or intuitive or speculative, great characters may be built on this belief (आस्था)

The great harmony (समन्वय) and intelligence and flawlessness (निर्दोषता) of the universal designs indicate that there must be some power behind it. If a man is repelled from doing an heinous (जघन्य) act because of rememberance of God, is it then an ordinary power ? Tyrants were only afraid of God, so may be criminals

समाज मे भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार-निरोध-विभाग और सबसे ज्यादा भ्रष्ट हो जाता है।

मन्दिर से पवित्रता **बहिर्गत या बहिष्कृत** हो जाती है। जो आदमी आसानी से कही भी कुछ चुरा सकता है, वह मन्दिर मे चोरी करने से हिचकेगा, डरेगा। उसी प्रकार यदि मनुष्य का हृदय ईश्वर का मन्दिर हो जाय, तो वह श्रेष्ठतर और पावन हो जायगा।

ज्यामिति का सम्पूर्ण विज्ञान यदि अवैज्ञानिक और अप्रमाणित मान्यता, कल्पना या अनुमान या स्वयसिद्धियो पर आधृत है, वैसी ही बात यदि ईश्वर के प्रति धारणा के सम्बन्ध मे हो, तो भी इस आस्था के आधार पर महान् चरित्रो का निर्माण सम्भव है।

विश्व-व्यवस्था मे एक निर्दोषता, बुद्धिमत्ता और महान् सामजस्य यह बतलाता है कि इन सबके पीछे कोई शक्ति अवश्य है (होगी—होनी चाहिए), यदि परमात्मा की स्मृति के कारण कोई मनुष्य जघन्य कर्मो से अलग रहता हो, तो यह क्या एक 'साधारण' शक्ति का परिणाम है ? अन्यायी, आततायी और अपराधी सिर्फ ईश्वर से डरते रहे है।

पचतत्व—पचभूत—पृथ्वी, जल, तेज (पावक), वायु (समीर) और आकाश पचतन्मात्र (त्राएँ)—पच महाभूतो के क्रमानुसार पाँच गुण—

आकाश—शब्द। वायु—स्पर्श। अग्नि—रूप। जल—रस। पृथ्वी—गन्ध।

पचकोश—उपनिषद् और वेदान्त के अनुसार शरीर सघटित करनेवाले पाँच कोश या स्तर—(१) अन्नमय, (२) प्राणमय, (३) मनोमय, (४) विज्ञानमय, (५) आनन्दमय।

आँखे बन्द कर ध्यान धरने के समय मुझे अनुभव हुआ कि,—

White, blue, black, grey and shades of shining white (like sunlight) but more like moonlight (bright), and shades of blue and grey —small and big waves coming going rising up and subsiding and receding, with tremendous as well as with slow speed. And all so mixed up and forming and dissolving, to think of the part and the whole because all was the whole—the all or whole or total lump or existence—It pervaded all even myself so that I felt that the sombre rays of light (or waves or sheet of light) was so encompassing

every nook and corner and every cell of my body that I seemed to **dissolve** in it till a shade of me like a faint-eathereal body remained **dissolved** in the unfathomable vast expanse It occured to me that the unfathomable vast expanse is the परमात्मन् and that all things arise from and get created out of it and dissolve in it remaining always and entirely in it like the bubbles in an ocean That all creation including चेतना is a part and parcel of it in toto and is merely a transformation in it and out of it and in its **completeness** a part of it only unseparated like a foetus with its moorings of the umbilical cord

आँखे बन्द कर ध्यान धरने के समय—श्वेत, नील, कृष्ण, भूरा और सूर्याभा या चन्द्रभा-सदृश प्रकाश-छाया की तरगे द्रुत-शनै गिरती-उठती और उगती-छिपती गई और यह सब कभी मिश्रित और कभी विघटित होकर सामने आये। परमात्मा अस्तित्व की समष्टि या सम्पूर्णता मे व्याप्त है। यह मुझमे है, मैने अनुभव किया कि प्रकाश की किरणे कण-कण मे व्याप्त है। और, मै इसमे मिल जानेवाला मालूम होता हूँ। एक अथाह विशद विस्तार मे एक आभासी पारलौकिक पदार्थ की तरह मेरी छाया। यह अथाह विशद विस्तार ही 'परमात्मन्' है और समुद्र के बुलबुले की तरह सारी वस्तुओ का उद्भव और अवसान का कारण या आश्रय यही है। समस्त सृष्टि और चेतना इसी का अभिन्न अश या रूपान्तर है। उसी तरह, जिस तरह नाभिडोर से भ्रूण की अभिन्नता होती है।

भगवान् का होना जरूरी नही है, उनको मानना (आस्था) जरूरी है—इससे वेट-लेसनेस (हल्कापन) हासिल (मन का भार हल्का) होता है। स्ट्रेस और स्ट्रेन घटता है। ध्यानकेन्द्रण बढता है—लघुपतनक-सी परिस्थिति हो जाती है। सुकर्म भी वेटलेसनेस (भार-रिक्तता) करता है—लेकिन सुकर्म के फल का जामिन भी भगवान् ही है।

भगवान् पर अपने को और अपने कर्मो को सौपकर आदमी निश्चिन्त और उसका मन हल्का और उसकी (जीवन) यात्रा आसान और सरल बन जाती है। वह भार-वाही गदहा न बनकर एक हल्की-फुल्की चिडिया-सा बन जाता है, जो निरापद आकाश मे स्वच्छन्द उडती-तैरती रहती है, unstressed (बलाघात-शून्य) बिना stress सम्भार (स्ट्रेस) तनाव के, बिना स्ट्रेन strain के, बिना श्रान्ति (fatigue) के।

प्रभु-विश्वास हमारी आवाजो को बल ही नही देता, बल्कि उसमे चार चॉद लगा देता है। ये आशाये किसके भरोसे पले? उनके भरोसे, जिनको अपना ही कोई भरोसा नही है और जिनके मिजाज (मन स्थिति) का भी कोई ठिकाना नही कि वह कब रुष्ट हो जायेगे और कबतक तुष्ट रहेगे? किसकी शरण ले इन्सान? उस शमा का क्या एतबार, जो चाहे सिर धुन-धुनकर पछताती रहती है, जिसके आलिगन मे मृत्यु और सर्वनाश छिपा बैठा है और जो सेहर (विरात्र) के बाद दिखलाई भी नही

पडनी। जाने कहाँ लुप्त हो जाती है, जो प्यार (आलोडन) (उत्पीडन) के प्रति मुँह फेर लेती है।

ईश्वर मे विश्वास का मतलब ही है उसके गुणो के प्रति आस्था रखना। वह समर्थ शाश्वत है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वत्र है, सभी का है, सबका सर्वस्व है, सर्वदलीय है, करुणासागर है, सदा निरन्तर सर्वदा है। यह सब उसके गुण हैं। वह सगुण भी है, निर्गुण भी। उसके निर्गुण होने की क्षमता भी उसका एक गुण ही है। नही तो सच्ची बात तो यह है कि परमात्मान् (वह) न 'सगुण' है, न 'निर्गुण'। कैसे मै आ सकू हूँ कैदे बयान मे। वह ऐसा है कि जैसा मेरा दिल चाहता है। दुनिया भी वैसी ही है, जैसा कि मै उसे देखता हूँ। यह मायावी की माया (जाल) है। जिस नजर से देखा, जैसी दृष्टि पडी, दुनिया वैसी ही बन गयी। जिस मन से सोचा, जैसा दिल ढल गया, परमात्मा वैसा ही बन गया। परमात्मा है। दुनिया भी है। (जीव)—आत्मा है। प्रकृति भी है। अन्त करण है, माया भी है। माया है सापेक्षता (रिलेटिभिटी), परमात्मा है निरपेक्षता (एब्सॉल्यूटनेस)। दोनो आधुनिकतम भी हैं। पारस्परिक भी। गुणानुवृत्त माया, त्रिगुणात्मक, त्रिगुणी माया जब आत्मा को लपेटती है, तब वह जीवात्मा बन जाता है। सुख दु ख न आत्मा भोगता है, न शरीर। वह तो अन्त करण का भाग है। त्रिगुणी माया भी अन्त करण को ही प्रभावित करती है। अन्त करण माया मे लिपटकर अपने लिये सस्कार बनाता है। माया से छुटकारा पाकर अन्त करण मुक्त हो जाता है। आबद्ध अन्त करण भौतिक स्तर पर क्रिया-प्रतिक्रिया मे लिप्त रहता है। अनाबद्ध निर्लिप्त अन्त करण माया के चीवर को छोडकर, अनावृत मुक्त बनकर आध्यात्मिक स्तर पर परमात्मा का सामीप्य तथा सायुज्य पाता है। माइण्ड ग्रौसर (मानस अपरिष्कृत, स्थूल) बनकर माया के सम्पर्क मे आता है, प्रकृति और भोग को उपलब्ध होता है, मूर्त्त और भौतिक बनता है। माइण्ड फाइनर (मानस सूक्ष्म-परिष्कृत) बनकर माया के सम्पर्क से मुक्त होता है, तब मुक्ति और भक्ति (आध्यात्मिकता) को प्राप्त होता है। पहला दुनिया को पाता है, दूसरा दीन को।

परमात्मा और प्रकृति, परलोक और इहलोक, शान्ति और भ्रान्ति इनके बीच मानस एक सेतु है, एक कडी है, एक अनुबन्ध, एक जोड।

मानस निर्गुण परमात्मा को सगुण बना देता है। मानस माया को इन्द्रियगम्य, भौतिक, पार्थिव, जड बनाकर सृष्टि से सम्पर्क स्थापित करता है। यह मानस की छाया ही है, जिसके अन्तरिक्षीय (कॉस्मिक) या महत् मानस पर (टकराकर) (के सम्पर्क से) टकराने या अतिक्रमण से सगुण ब्रह्म (की सृष्टि होती है) प्रत्यक्ष होता है। यह मानस ही है, जो प्राकृतिक या भौतिक सृष्टि मे माया का सर्जन करता है (माया मे अपना ससार गढता है, पाता है, रचता है, उत्पन्न करता है, सर्जन करता है) (का आविष्कार करता है) (प्रकृति की त्रिगुणी माया—प्राकृतिक मानस—का आधार लेकर) (के आधार पर जो भौतिक सृष्टि बनी है), उसमे ही अपना अनोखा, अनन्य,

व्यक्तिगत, विशिष्ट, स्वतन्त्र, पृथक्, अलग और इन्द्रियगम्य ससार बना लेता है।

परमात्मा की सार्वभौम सर्वव्यापी-सर्वग्राही चेतना और जीवात्मा की मानसिक चेतना मे जातीय सम्बन्ध है। दोनो सृष्टि करते है—सकल्प-मात्र से। दोनो शक्तियो मे अपार अन्तर है, पर कुछ सामजस्य भी है—क्वैलिटैटिव (गुणात्मक) भी और मात्रात्मक (क्वैण्टिटैटिव) भी। मात्रा और लिप्सा, भ्रम और चिन्ता, भ्रान्ति और श्रान्ति, मानस को स्थूल तथा अप्रभावी (इन-इफेक्टिव) बना देते है और उसके द्वारा सृष्टि मे विकृति पैदा हो जाती है (उसके द्वारा जो सृष्टि होती है, उसमे अनेकानेक विकृतियाँ समाविष्ट हो जाती है)। मुक्त और अनावृत मानस के द्वारा जो सृष्टि सवरित होती है, वह सुन्दर श्रेष्ठ और कल्याणी बनती है। शक्तियो का, ऊर्जाओ का, होना उतनी महत्ता नही रखता, जितना उनका इस्तेमाल, उनका उचित प्रयोग। परमात्मा का होना उतना आवश्यक नही है, जितना अविकल्प आस्था का जीवन मे परिस्रवण (परकोलेशन), उसका रोम-रोम मे बस जाना, उसका मानस मे, भीग जाना, फैल जाना, अन्त करण मे पूर्णरूपेण व्याप्त हो जाना। ऐसा परिपुष्ट मानस परमात्मा के रग मे रँग जाता है, जैसे प्रज्वलित अग्नि मे तपाया हुआ लोहा। वह सार्वभौम चेतना मे स्नान कर समर्थ बन गया होता है।

परमात्मा अज्ञेय, अगम्य, अभेद्य रहा है, रहेगा। पर, उस करुणासागर ने पूरी व्यवस्था कर रखी है, जीवात्मा के सुख की, सुविधा की, सम्पर्क की, सामीप्य की, सायुज्य की।

परमात्मा है। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि वह पुकारने से प्रकट होता है और पुक्की मारने से प्रत्यक्ष हो जाता है। सृष्टि मे अनादिकाल से जो निर्दोष, परिपूर्ण व्यवस्था चलती आ रही है अविरत (कण्टिन्यूअस), अमोघ-अचूक (अनफेलिंग), वह भी क्या इसका द्योतक नही है ? जिन लोगो ने खोजा, तलाशा, उन लोगो ने क्या नही पाया ? यह सार्वभौम चेतना (कॉस्मिक माइण्ड) वह पैण्डोरा बाक्स है, जिससे सब कुछ बन जाता है, सकल्प-मात्र से। जैसे ध्वनि-तरगो के तरग-लम्ब (वेभ-लेग्थ) और आवर्त्तिता (फ्रीक्वेन्सी) बदलने से तरह-तरह की राग-रागनियाँ वाद्य-यन्त्र तथा हो-हल्ला, गुल-गपाडे, गाली-गलौज सभी सम्भव हो पाते है। यहाँ तक कि प्रत्येक आदमी की अपनी-अपनी अलग (एलाहदा) आवाज तक पहचानी जा सकती है। उसी तरह सार्वभौम चेतना (कॉस्मिक माइण्ड) मे घात-प्रतिघात से (के द्वारा) या क्रिया-प्रतिक्रिया से या वेभ भाइबरेशस (डिफेरेण्ट टाइप्स ऑव) के जरिये सृष्टि का, हर तरह की चीज, हर प्रकार के प्राणी, जीव-जन्तुओ का प्रजनन होता रहता है। और, यहाँ जो नश्वर है, स्वय वह क्या किसी का जमानतदार होगा। जिसका रुख, जिसके विचार, नियम-कानून बदलते जा रहे हैं, उसका क्या भरोसा। जिसमे स्वार्थ है, सब्जेक्टिभिटी (आत्मपरकता) है, पगु करनेवाली, उससे कैसे किसी को इतमीनान मिले, हासिल हो, प्राप्त हो।

सुकर्म का फल अच्छा होगा, इतना के लिए भी कैसे विश्वास हो, ढाढस-सान्त्वना

मिले। कैसे आदमी सुरक्षित, निश्चिन्त, निरापद बने। जहाँ कुछ भी निश्चित नही है, न विश्वस्त, वहाँ क्या किया जाय। एट एनी टाइम, एट एनी स्पेस—किसी क्षण मे भी, किसी स्थान मे भी, कौन सत्ता, सहारा दे ? कोई भी इवेण्ट्, मृत्यु भी, एक निर्माण ही है। पैदा होना, विलीन होना, जीना-मरना, एक का दूसरे मे बदल जाना, ट्रान्सफार्मेशन, म्युटेशस, आना-जाना, उदय-अस्त सभी कुछ घटनाएँ-मात्र ही तो हैं। स्थूल और सूक्ष्म मे केवल तरग-आवर्त्तिता (वेभ-फ्रीक्वेन्सी) का फ़र्क है। बाघ-बकरी मे भी यही बात है। सन्त और कन्त के मस्तिष्क की भावनाओ मे भी इतना ही भर का अन्तर रहता है। सृष्टि भी, प्रलय भी, सिर्फ सार्वभौम चेतना '(कॉस्मिक माइण्ड) के कम्पन या स्पन्दन (पल्सेशन) की दो भिन्न डिग्रीज अवस्थाएँ या कोटियाँ है।

जहाँ तक मानव का सम्बन्ध है, ईश्वर के अस्तित्व के बारे मे अभी वही स्थिनि है, जो बिजली की भोल्टा (Volta) के जीवनकाल के पूर्व (पहले) थी। आकाश मे बिजली कौधती थी। आदमी उसे प्रत्यक्ष देखता था। लेकिन, उसे 'इन्द्र का वाण' मानता था। चन्दा था, लेकिन वह बच्चो का 'मामा' था, जबतक (Neil Armstrong) नील आर्मस्ट्रौग उससे मिल न आया, चन्द्रमा के धरातल पर उतरकर नही देख लिया। उसी तरह सृष्टि है, चेतना है, प्रकृति के अक्षुण्ण अकाट्य कानून है, नियम है। आदमी का दिल भी कहता है कि सबके पीछे कोई-न-कोई सत्ता है, कोई राज है, कोई कुछ है, जो सापेक्षता (रिलेटिविटी) को सपोर्ट करनेवाला निरपेक्षता (एब्सॉल्यूटनेस) कहा जा सकता है। काल, स्थान और परिस्थितियो के पीछे से कुछ झाँक रहा है। बदलाव के बाद कुछ अपरिवर्त्तित या स्थैतिक (थिर) और स्थायी (स्टैटिक ऐण्ड परमानेण्ट) भी है। अनेकता (डायवरसिटी) मे कही यूनिटी (एकता) भी है। वह, जहाँ सब कुछ एकाकार हो जाता है, जो शाश्वत और सर्वदा रहा है, वही परमात्मा है। जहाँ 'उदय' होता है, जहाँ 'चेतना' का उद्गम-स्रोत है और जहाँ 'प्रलय' होता है, जहाँ 'जडता' जनमती है, जहाँ 'ज्ञान' जाता है, जहाँ से प्रकृति और जीवात्मा दोनो अपनी-अपनी झोलियाँ भर लाते है, जहाँ 'प्राण' पनपते है, 'मृत्यु' मरती है। दिक्कत यह है कि यद्यपि प्रभु-सत्ता के विषय मे शक-शुबहा बराबर रहा है, उसके मुतल्लिक हम बहुत ही कम जान पाये हैं। जाने भी कैसे ? बीज (सीड) पेड को कैसे पहचाने ? फिर भी पेड का बीज के लिये क्या महत्त्व है, यह क्या छिपी हुई बात है ? परमात्मा की झलक जीवन मे मिलती ही रहती है। कोई ज्ञान-चक्षु खोलकर, देखने के लिये राजी भी तो हो। इन्तजार की बेसब्री भी तो हो। मन्दिर की पवित्रता भी तो हो। मन आकुल-व्याकुल भी तो हो। प्रेम का सागर उमडकर प्राणो से टकराता भी तो रहे। दर्पण स्वच्छ हो, तो राज खुले। सृष्टि वह वातायन है, जिसके पीछे स्रष्टा झाँक रहा है। अपना मन मन्दिर बन जाय, तो वह पदार्पण करे। अन्त करण का मैल मिटे (धुले), तब न परमात्मा प्रत्यक्ष हो। ज्ञान का बोझ हटे (मिटे), तब न उसकी अनुभूति हो।

शब्दकोशो मे जितने (शब्द) है, उनमे कोई भी परमात्मा से सम्बद्ध किसी चीज

के लिये कुछ भी नही बतलाता। जब किसी नयी चीज का ईजाद होता है, उसे व्यक्त करने के लिये नये शब्दो का निर्माण भी होता है। जब परमात्मा प्रत्यक्ष होगा, हम नये शब्द बना लेगे। अभी इतना ही कह सकते है कि वह शब्द-ब्रह्म शब्दो के परे है। वह 'है' भी और 'नही' भी है। आदि-ऊर्जा-अव्यक्त-व्यक्त-नेति-प्रतीति—न विशेषण उपलब्ध है, न सज्ञा। वह प्राणो मे उतरा है, मन को उद्वेलित कर रहा है, उसमे करुणा, प्रेम-आनन्द का माहौल बना रहा है। वह कौन है? कौन है वह? वह है कौन?

भगवान् आ गये? भूत लगना, हाँ, वैसे ही, जैसे भूत आ जाता है। लग जाता है और ओझा उसे पहचान लेता है। जब 'भगवान्' लगते है, जब आत्मा मे उनका नूर चमकने लगता है, तब वह आदमी भगवान् की तरह (व्यवहार) करने लगता है। यही सबूत है भूत लगने का, भगवान् का जीवन मे प्रादुर्भाव होने का (तु० पैगम्बर, पीर, जॉन ऑव आर्क, तुलसीदास, कालिदास, वाल्मीकि)। नारद-मोह—भगवान् का रूप—भक्तवत्सलता—त्रुटि, मोह हटाने, उससे निवारण, का उपाय अपनाया था भगवान् ने। क्रुद्ध और चिढे हुए नारद को भगवान् ने समझाया होगा—नारद! तुमने मेरा रूप माँगा था न? मैने दिया। सभी मुखौटे मेरे है, मै सभी रूपो मे व्यक्त हूँ। मेरी कोई खास शक्ल है क्या? जबतक भगवान् से सम्पर्क आत्मा-मन-अन्त करण का रहता है, तबतक आदमी महात्मा-सा बरतता रहता है—तु० भूत लगना, भूत भगाना, छूटना—प्रभाव किसी चीज या विचार का। मृत्यु एक प्रेमालिंगन हो, बलात्कार नही, बेबसी नही और यह तभी सम्भव है, जब हम जीवन और मृत्यु (जीवन-मृत्यु) की गहराइयो मे डूबकर उनसे पूर्ण परिचित हो सके हो, उन्हे पहचान, जान सके हो।

'मजिल को भी तरसा के चला जाऊँगा एक दिन।
भटका करेगी मौत भी मेरी तलाश मे॥'

जीवन-शैली—(स्टाइल ऑव लाइफ)।

'इफ देअर वाज नॉट दि अण्डरलाइ ग हारमोनी इन दि कासमास दि यूनिभर्स वुड डिसइण्टीग्रेट इन्टू एन एनार्की ऑव पर्सनल परसेप्सन'—आइन्स्टाइन।

इच्छाशक्ति प्रबल और सर्वसमर्थ है। कहते है, परमात्मा की इच्छा-मात्र से सृष्टि बनी। 'उसने कहा कि प्रकाश हो, और प्रकाश हो गया।'

अपनी महती इच्छाशक्ति का वरदान भगवान् ने आदमी को भी दिया है। आदमी जो चाहे पा सकता है, कर सकता है, बशर्त्ते उसकी इच्छा सच्ची और सबल हो।

वह अगर चाहे, तो उसे भगवान् भी मिल सकते है—उसका 'अपना' भगवान्। परन्तु, 'अपना' भगवान् पाने के लिये उसे चाह जगानी पडेगी और चाह जगेगी आस्था से। अदम्य आस्था—तडप—भगवान् की प्राप्ति। इसलिये आस्था जरूरी है। जो है नही, याने जिसके अस्तित्व पर आस्था नही, जिसका भरोसा नही। उसकी इच्छा,

उसको प्राप्त करने के लिये इच्छा (चाह) कैसे जगेगी ? और बिना इच्छा के, बिना जरूरत के भगवान् न माँगा जायगा, न वह मिलेगा।

जरूरत—इच्छा—माँग—आस्था।

गीता—'श्रद्धावान् लभते ज्ञान तत्पर सयतेन्द्रिय ।'

श्रद्धावान् तो होना ही है,	जिज्ञासा की आकुलता
लेकिन उसी से काम नही चलेगा।	भी होनी चाहिये।

ब्रह्माण्ड मे से 'अपने' भगवान् को निकाल लाने के लिये शक्ति चाहिये—माँग सबल होनी चाहिये—चाहे जिस तरह भी हो सके।

हाँ, यह बात जरूर है कि आस्थावान् को भगवान् ज्ञान भी देते है, उसके पास ऐसे सबूत भी पेश करते है, जिससे उसकी आस्था बढती जाय, प्रेम बढता जाय, और तब वह समय आता है, जब आदमी पात्रता धारण (डिजर्व) करता है। प्रभु का सामीप्य, सायुज्य इत्यादि।

शरीर कष्ट को मन से नही सहता है, डरता है, इन्द्रियो का उपभोग करता है। इन सबके पीछे जो तटस्थ शक्ति इन सबको जानती है, जो मन को पहचानती है, जो डर-भय सबकी परवाह न कर शरीर को उचित काम के लिये विनष्ट हो जाने के लिये भी खतरा के सामने, दुख के सामने खडा कर सकती है, जो अन्त करण को भी, उसके पार्ट-पुरजे को, हिस्से को भी जानती-पहचानती है, वही ईश्वर का नूर है। वह अहम् को भी पहचानती है, उससे अनभिज्ञ नही है। वह स्वार्थ के परे परमार्थ को मानती है, सृष्टि के पीछे परमात्मा को जानती (?) है। सुदृढ चालक।

भगवान् को पूर्णत (सर्वाश मे) किसी ने भी न जाना। फिर, अगर समाधि मे भी जिस तरह की जिसकी भी अनुभूति हो, वह भगवान् ही है, इसको कौन कह सकता है ? जिन्हे भगवान् की प्राप्ति भी हुई है, वह भी उसे अवर्णनीय कहते हैं या चुप रह गये है या परमात्मा के विषय मे सिर्फ शब्द-जजाल मे जिज्ञासुओ को डालकर चले गये हैं, सन्तोष कर लिया है। इसलिये, समाधि मे परमात्मा की प्राप्ति हो ही जायगी, इसका क्या भरोसा, क्या उम्मीद। हाइयर एब्सट्रैक्ट मैथेमेटिक्स की तरह वह तर्क (लॉजिक) और दर्शन (फिलॉसॉफी)-मात्र रह जाता है क्या ? अन्वेषण। लेकिन, जो प्रत्यक्ष है, उसे तो समाज के कल्याण के लिये, ईश्वर के बेटो के लिये मानना चाहिये, अमल मे, इस्तेमाल मे लाना चाहिये। तु०, बौद्ध और जैन धर्म।

नवजात शिशु थोडे ही जानता है कि जिसका वह स्तनपान कर रहा है, वह उसकी माँ है ? वह 'माँ' को न जानता है, न पहचानता है, न उसकी अनुभूति है उसको। लेकिन, उसे दूध मिलता ही है। माँ की सतत प्रवहमाण ममता की सलिला उसपर प्रेम बरसाती ही रहती है। जीवात्मा कुछ वैसा ही नवजात शिशु है। यह सृष्टि ही परमात्मा के सामने नवजात शिशु नही, तो और क्या है ? (तु० यगर्स ऑव एनिमल्स ऐण्ड देअर रिलेशनशिप विथ देअर पैरेण्ट्स इभ्न ह्वेन दे ग्रो-अप। डू दे एवर रिएलाइज दैट दि सस्टेनिंग टीट वाज ऑव देअर मदर ?)

सभी कुछ मिश्रण (मिक्स्चर) द्वन्द्वात्मक सत्ता है। परमाणु (एटम) के बनने मे कोई शक्ति काम करती है। एटम जब तोडा जाता है, उसके तोडने मे और उसके टूटने से भी अपार शक्ति की आवश्यकता तथा उसका आविर्भाव होता है।

एक कोष (सेल) (जीवन्त कोष) की बनावट, उसकी शरीर-सरचना (एनाटोमी), शरीर-क्रिया (फिजिआलॉजी), देखिये। उसमे वे सारी वस्तुये उपलब्ध है, वे सारी व्यवस्थायें मौजूद है, जो पूरे एक आदमी मे है। जो जगत् मे विद्यमान है, वही ब्रह्माण्ड मे भी है। ह्वाट इज प्रेजेण्ट इन दि माइक्रोकोज्म इज आल्सो प्रेजेण्ट इन दि मैक्रोकोज्म।

शुक्राणु (स्पर्म) तथा बीज (सीड) की शक्ति तो देखिये। एक ही बीज (सीड) से पेड और वैसे ही असख्य बीज बन जाते है। एक ही मामूली-सा शुक्राणु (स्पर्म) से वैसा ही जानवर और अनेक शुक्राणु (स्पर्म) बन जाते है। मन का भी प्रभाव देखिये। मन ही कॉपुलेशन, प्रजनन, के लिये अग्रसर करता है। मन ने ही किसी को 'गान्धी' और किसी को 'हिटलर' बनाया।

आदमी मे भी वे सारे गुण है, वे शक्तियाँ है, जो परमात्मा मे है (लेकिन इनटेन-सिटी ऐण्ड मात्रा की बात है) परमात्मा मे वे शक्तियाँ असीमित है। आदमी मे सीमित। और, आदमी-आदमी की अपनी-अपनी सीमाये हैं। और, यही कारण है (समानधर्मा होने के कारण) कि आदमी परमात्मा को आकर्षित करने मे सक्षम है। और, यही वजह है कि प्राणी अपनी शक्तियो के उचित उपयोग से और उनको बढाने से इस भूतल पर भी 'परमात्मा' या शक्तिमान् बन जाता है और गिना जाने लगता है। परमात्मा मे सभी गुण है, उसमे सभी गुणो की चरम सीमा या असीमता है। वह जन्म ले सकता है, तो सहार भी कर सकता है। वह करुणासागर (हो सकता) है, तो वह निष्ठुरता की पराकाष्ठा भी हो सकता है। वह ईसा (क्राइस्ट) हो सकता है, तो चगेज खाँ भी बन सकता है, और फिर अच्छाई-बुराई, सुख-दु ख एक सापेक्ष (रिलेटिव) चीजे है, निर्भीकता, निर्भयता और कोमलता 'कायरता' भी सापेक्ष पद (रिलेटिव टर्म्स) है। आदमी अनेकानेक गुणो मे से किसी का अपने मे विस्तार कर सकता है। शरीर से जुटा हुआ इन्सान 'सगुण' है, तो उसका तटस्थ आत्मा—विवेक 'निर्गुण' है। गीता भगवान् ने जो 'मासाना मार्गशीर्षोऽहम्—इत्यादि कहा है, उसे देखिये।' 'या देवी सर्वभूतेषु क्षमारूपेण सस्थिता' इत्यादि भी देखिये।

Best moment in Mrs Gandhi's life Asked by an Italian journalist to name the most beautiful moment of her life, the Prime Minister Mrs Indira Gandhi at once replied, "My life has been so full of excitement that it is difficult to highlight any special occasion But I would say that perhaps the most wonderful moment was when I held my first child in my arms "

एक इटालियन पत्रकार द्वारा 'अपने जीवन के सर्वोत्तम क्षण' के बारे मे पूछने पर

भारतरत्न श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने जवाब दिया कि "मेरा जीवन उमगो (सनसनियो) से इतना भरा-पडा है कि किसी विशेष अवसर को इगित करने मे कठिनता होती है, लेकिन मै कहूँगी कि मेरे जीवन का सम्भवत सर्वाधिक अनोखा सुन्दर क्षण वह था, जब मैंने अपने पहले बच्चे को बाँहो मे भरा था।" [राजीव गान्धी का जन्म सन् 1944 ई० मे, 20 अगस्त को, हुआ था।]

"और जब-जब भी किसी का जन्म होता है, वह अपने-आप मे बिलकुल नयी बात होती है, दूसरो की तरह और फिर भी अपनी ही तरह की अनोखी। कुदरत अपने-आपको बराबर दोहराती रहती है, उसकी अपार विविधता का कोई अन्त ही नही और हर वसन्त एक कायाकल्प है, हर नया जन्म एक नयी शुरुआत . .।"
(जवाहरलाल नेहरू)

"मेरा बहुत पहले से यह नजरिया रहा है कि माँ-बाप को इस ['शादी एक निजी और पारवारिक मामला है, जिसका खास सम्बन्ध विवाह करनेवालो से और कुछ थोडा सम्बन्ध उनके परिवारो से भी है।'—ज० ने०] मामले मे सलाह जरूर देनी चाहिये, मगर आखरी फैसला उन्ही पर छोड देना चाहिये, जिन्हें शादी करनी है और अगर यह फैसला खूब सोच-समझ के बाद किया गया है, तो उसे अमल मे लाया जाना चाहिये और माँ-बाप को या दूसरे किसी को भी उसमे रोडे अटकाने का कोई हक नही है। जब इन्दिरा और फीरोज ने आपस मे शादी करने का इरादा जाहिर किया, तब मैंने फौरन अपनी मजूरी दे दी और साथ ही अपने आशीर्वाद भी।" (जवाहरलाल नेहरू)

The scientist goes where the facts lead him, he is not out to prove anything, he has no presuppositions He does not take anything for granted His errand is different (Is that really so ?) What about 'Geometry' and 'abstract mathematics' and the 'axioms'—are they not merely 'logic' (or 'logistics' ?), abstract ideas 'backed by' logical argumentations That way the existence of God too is either 'proved' or 'axiomatic', that unexplicable things happen in Nature does not by any means disprove the existence of God, it may be that either our notions (man-made notions) about God and His ways are wrong or that we are unable to explain or understand some of His 'ways' The existence of water is proved If we do not know all its properties or cannot explain them should we deny its very existence and do not benefit by drinking it ? Even if polluted, poisoned or infected water should not be drunk and is undrinkable What happened after partition of India, in 1947, then in Noakhali, Gandhi peace march, cyclones in east Bengal, and the crack-down of Pakistani troops on March 25th, 1971, and then

the liberation of Bangladesh. What happened before and during the two world wars and thereafter Can all these world events and their significance be fully understood and explained ?

महात्मा गान्धी बडे अखाडे के पहलवान थे, जिन्ना छोटे अखाडे के। छोटे अखाडे मे गान्धीजी हार गए। भारतवर्ष (इण्डिया) का टुकडा बन गया पाकिस्तान। लेकिन काल (टाइम) के बडे अखाडे मे (विचार—प्रिंसिपुल—धर्म के बृहत् अखाडे मे) गान्धीजी की जीत हुई—। 'दिनकर' (रा० धा० सिंह)

तच कम्म कत साधु य कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो विपाक पटिसेवति॥
(तच्च कर्म कृत साधु यत् कृत्वा नानुतप्यते।
यस्य प्रतीत सुमनो विपाक प्रतिसेवते॥)

—उसी काम का करना ठीक है, जिसे करके अनुताप करना (पछताना) न पडे। और, जिसके फल को प्रसन्न मन से भोग करे। (धम्मपद अनु० राहुल साकृत्यायन)।

न हि पाप कत कम्म मज्जु खीर 'व मुच्चति।
डहन्त बालमन्वेति भस्माच्छन्नो 'व पावको॥
(न हि पाप कृत कर्म सद्य क्षीरमिव मुञ्चति।
दहन् बालमन्वेति भस्माच्छन्न इव पावक॥)

—ताजे दूध की भाँति किया पाप-कर्म (तुरन्त) विकार नही लाता, वह भस्म से ढकी आग की भाँति दग्ध करता अज्ञजन का पीछा करता है। (धम्मपद अनु० राहुल साकृत्यायन)।

माँ-बाप के द्वारा ही पुत्र-पुत्री, बेटा-बेटी, का शरीर बनाया गया, प्राण-प्रतिष्ठा हुई। फिर भी, माँ-बाप को जैसे बेटे-बेटियो का पितृवात्सल्य (फिलियल लव) अपेक्षित है, वैसे ही परमात्मा के अश से बने हुए प्राणियो के प्यार से भी परमात्मा प्रसन्न (पुलकित) और द्रवित होता है। पितृवात्सल्य (पैटर्नल लव फिलियल लव) यह है सगुण ब्रह्म। निर्गुण ब्रह्म करुणासागर है। पुरुषसूक्तम्। लेकिन वही ब्रह्म सगुण भी है, निर्गुण भी। भगवान् प्यार क्यो चाहता है ?

शरीर नश्वर है। इसके सहारे जो जिन्दगी चलती फलती-फूलती है, उसमे नित्यता की आशा कैसी! चिरस्थायी यौवन या चिरन्तन स्वास्थ्य की कहाँ सम्भावना!

जबतक मस्तिष्क काम कर रहा है, तबतक आदमी के आगे, सामने, दो विकल्प (अल्टरनेटिव्स) है। एक उपाय यह है कि शरीर को प्रधानता दी जाय। शरीर इहलौकिक, पार्थिव, प्राकृतिक नियम-कानूनो मे जकडा हुआ मृत्यु, दुख, रोग, जरा (बुढापा) इत्यादि का मुखापेक्षी है। शरीर को हम स्वस्थ-सुन्दर बनाकर रख सकते हैं, कुछ दिनो तक। लेकिन, हमारा अन्त करण (हमारी बुद्धि) इस बात को

पूर्णत जानता है कि यह इमारत ध्वस्त होनेवाली है। इसकी खामियो (से वह अनभिज्ञ नही)—को जानकर मन दु खी होता है। शरीर क्षीण होता चला जाता है। आँखो के सामने इमारत ढहती चली जाती है। एक आलीशान चित्र ढूह मे परिणत होता चला जाता है। हमारी देह हमारी ही इच्छा, चेष्टा के विरुद्ध, विपरीत, सुनी-अनसुनी करती-सी—तिल-तिल मिटती-मरती चली जाती है और हम बेबस एकटक देखते रह जाते है। स्वजन-परिजन का शरीर छूट जाता है। जीवन की राह पर कोई साथी रह नही जाता। जिन्दगी के रगमच पर एक अभिनेता अकेला रह जाता है। कोई बचाव नही। ठहराव नही। यात्रा रुकती नही। नट-नटी के बीच कोई नटखट आगन्तुक अनायास कूद जाता है और उनका सदा के लिये सम्बन्ध-विच्छेद कर अदृश्य हो जाता है। प्रेमालिगन की घडी इतनी क्षणभगुर है, ससार का फन्दा, फाँस, जननी से जोडती (जुटी हुई) नाल (अम्बिलिकल कार्ड) (नाभि-नाडी)। कुछ भी स्थायी नही। कोई रोक नही पाता।

दूसरी सूरत यह है कि अन्त करण पर आघृत जिन्दगी बसर की जाय। कि हम अपने अन्त करण को प्रधानता देना सीखे। और, देहपरक (बॉडीबेस्ड) जीवन को गौण माने। शरीर की परवाह न की जाय। धरोहर मानकर उसकी उचित देखभाल की जाय। अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष का साधन समझकर उसकी वाजिब सेवा की जाय। इस दुनिया के साथ सम्पर्क स्थापित करानेवाला यह एकमात्र माध्यम (इण्टरमेडिएरी) तो है ही। दुभाषिया। ऑन लीअन। लिआजॉ ऑफिसर। सीमेण्ट। एम्बेसेडर। पृथ्वी का सा पार्थिव। ससार का स्वदेशीय। लेकिन, 'मृत' या 'जिन्दा' शरीर का अस्तित्व तभी तक है, जबतक आदमी का मस्तिष्क काम कर रहा है। दिमाग शरीर को जानता, पहचानता है। दिमाग रथी है, शरीर रथ। शरीर की प्रत्येक हरकत, आव-भाव, चलना-रुकना। नाचना-छ् (ठ्) मकना, रोना-गाना, सभी तो मस्तिष्क की बाह्य प्रक्रिया-मात्र है। तो, जो शरीर का चालक है अन्त करण, उसके सहारे भी एक तरह की जिन्दगी (जिया जा सकता है) यापन की जा सकती है (चल सकती है)। और, चूंकि शरीर से यह अन्त करण अधिक स्थायी मालूम पडता है, अधिक शक्तिशाली, शरीर का नियन्ता (मालिक चालक), इसलिये भी जो जीवन 'मानसिक' होगा, वह निश्चय ही अधिक देर तक ठहरनेवाला होगा। शरीर के टुकडे-टुकडे हो जाने पर भी, सड-गल जाने पर भी, जबतक अन्त करण काम करता होगा, तबतक जिन्दगी होगी। जबतक अन्त नष्ट नही हो जाता, तबतक मौत नही होगी। लेकिन, अगर अन्त करण नष्ट हो गया, मर गया, खराब हो गया, तो शरीर पूर्णत स्वस्थ और जीवन्त रहते हुए भी आदमी का अन्त हो गया। चिराग गुल हो गया। तेल और बत्ती बच गयी। आदमी पागल हो जाय, तब भी मृतवत् है, वह वही आदमी नही रह जाता। उसका व्यक्तित्व पूर्ववत् नही रह जाता। उसकी पर्सनैलिटी उसका व्यवहार, उसका सासारिक सम्बन्ध, सभी बदल जाते है। वह अजनबी बन जाता है। जो था,

वह कतई न रह गया। एकदम बदल गया। उस शरीर का 'व्यक्ति' मर गया। अब उस देह मे दूसरा एक अनजान और अजीब और अपरिचित 'व्यक्ति' रहने लगा। यह भी तभी तक सम्भव है, जबतक मस्तिष्क बेहोश नही हो गया हो, सो नही गया हो, मर नही गया हो। आदमी का शरीर पूर्णत स्वस्थ और जिन्दा रहने पर भी मस्तिष्क के मर जाने पर जिन्दगी समाप्त हो जाती है—वह जिन्दगी, जिसको हम जीते और जानते है और जिसकी अमरता, शाश्वतता की इच्छा रखते है। बेहोश, सुप्त या मृत मस्तिष्क। आदमी को अन्त करण की शाश्वतता तक हम जान या ले चल सकते हैं। उसकी मृत्यु (समाप्ति) के पश्चात् (साथ) सब कुछ लुप्त हो जाता है—अमरता की चाह भी, शाश्वतता का भान भी। फिर, कुछ रह नही जाता जानने, सोचने, पहचानने का। इसलिये, इस दृष्टिकोण से भी अन्त करण पर आधृत जिन्दगी मे ही अमरता, शाश्वतता, आनन्द तथा मुक्ति है। अब अगर हम थोडा ठहरकर सोचे, तो अपने को साफ-साफ पता चलेगा कि अन्त करण के पीछे (बैक ग्राउण्ड) या पार (परे, बाहर) भी 'कुछ' है, जो अपने अन्त करण को भी जानता है, अपने मन, चित्, बुद्धि, अहम् को भी जानता है—वह जान और कह पाता है कि मेरा मन नही लगता, मै बीती हुई बातो का स्मरण कर पाता हूँ, मै आगे की योजना बनाता हूँ, मै अच्छे-बुरे का विश्लेषण कर सकता हूँ, मेरा अस्तित्व है अपना, जो अन्य लोगो से भिन्न है। जो सुख-दु ख मे व्याप्त होने पर भी अपने को अछूता और तटस्थ रख सकता है, जो सस्कार या नैसर्गिक (मूल) प्रवृत्ति (इन्सटिक्ट) पर शासन कर सकता है, हावी हो सकता है। जो शरीर-मस्तिष्क (अन्त करण) को भी आग मे झोक (जौहर-व्रत) दे सकता है, सूली पर चढा (मन्सूर) दे सकता है, मुस्करा कर जहर पिला (सुकरात) सकता है। वह तटस्थ शक्ति शरीर को समार के लिए उत्सर्ग कर सकती है और अन्त करण को सत्य, शिव, सुन्दरम् के लिये। वह तटस्थ, निर्लिप्त शक्ति यह कह पाती है कि यह मेरा शरीर है, यह मेरा अन्त करण है और यह मेरा 'अहम्' (अहम्-भाव) है। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद यही तटस्थ शक्ति मुक्त है, शाश्वत है, सर्वव्यापक (ओमनीप्रेजेण्ट), सर्वदर्शी (ओमनीसिएण्ट), परमात्मा का नूर है, क्योकि अन्त करण के द्वारा यह काल-दिक् (टाइम-स्पेस) सीमा (बन्ध व्यवधान) (बैरियर) के पार जाने की क्षमता रखता है, ससार (इहलोक) और परलोक से भी यह सत्ता या शक्ति अपने को मुक्त रखने मे फलीभूत हो पाती है। परमात्मा की अपरिमित अजेय शक्ति उसमे न भी हो, पर दैवी शक्तियाँ उसमे अवश्य है। परमात्मा का नूर शायद वही हो। ज्ञानी। तटस्थ। विवेकी।

हाँ, तो एक तीसरे तरह की भी जिन्दगी सम्भव है—वह है उस तटस्थ विवेकी सत्ता के साये मे। जिसका अपना कुछ भी नही है। जो सबमे व्याप्त है, जो दिक्-काल (स्पेस-टाइम) से आबद्ध नही है। असीम का अश (?)। जो शरीर, अन्त करण इत्यादि को भी अपने से अलग जान पाता है। यह पार्थिव-सा नही मालूम पडता। अलौकिक गुण है इसमे। यह मुक्त भी है। मूल वृत्तियो

(इस्टिक्ट) के ऊपर शासन करनेवाला है। ऐसा एक शुबहा होता है कि हो न हो, यही परमात्मा का अश हो, परमात्मा-सा। 'सोऽहम्' शायद यही कह पाता हो। वर्ना शरीर और अन्त करण को इतनी हिम्मत कहाँ। प्रकृति, पृथ्वी, ससार, शरीर इन सबके परे यह पारलौकिक सत्ता (शक्ति) ही शायद सर्वत्र व्याप्त हो और अनेकानेक शरीरो को चला रही हो और परमात्मा के निकटतम हो या परमात्मा की अनेकानेक शक्तियो मे सबसे प्रबल हो या सभी शक्तियो का मूलाधार हो।

'न स्वर्गो न रसातल ।'

'स्वर्ग और नरक नामक कोई भी जगह नही है। जब मनुष्य सत् कर्म करता है या सत् कर्मो के फल का भोग करता है, तब उसके लिए जो परिवेश बनता है, वह स्वर्गनाम से अभिहित होता है, और जब वह कुकर्म करता है या उसका फलभोग करता है, तब उसके लिए जो परिवेश बनता है, वह नरक नाम से जाना जाता है।'

—आनन्दसूत्रम् २।२०

यह बोध (अनुभूति आत्मानुभूति) कि— 'मै हूँ', कि 'मै कर्त्ता हूँ'। यह बोध कि 'मै अज्ञ हूँ' कि 'मै जानता हूँ कि मै कर रहा हू' कि 'मै जानता हूँ कि मै जानता हूँ कि मै हूँ' कि 'मै जानता हूँ कि मै जानता हूँ कि मै कर्त्ता हूँ'। कि 'मै जानता हूँ कि मै जानता हूँ कि मै जानता हूँ'। कि 'मै जानता हूँ कि मै जानता हूँ कि मै जानता हूँ' कि 'मै जानता हूँ' की कडी को और आगे बढाना निरर्थक हो जायगा।

निद्रा (शयन, सुप्ति) मृत्यु (चिर-निद्रा) का अभिनय हो सकती है।

वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा हम नीद को प्राप्त करते हैं, वह उस प्रक्रिया के सदृश (समान) हो सकता है, जिसके द्वारा हम मृत्यु तक पहुँचते है (मृत्यु को उपलब्ध होते है)।

और, सुप्तावस्था की हमारी मानसिक जिन्दगी उस जीवन के जैसा हो सकता है, जो हमे मृत्यु के बाद मिलता है (मिलनेवाला है, मिलने को धरा रखा है)।

हो सकता है कि निद्रा की अवस्था मे 'प्राण' तब भी 'आत्मा' के साथ जुडा (शृ खलित) हो—मृत्यु से यह सम्बन्ध टूट जाता हो। तु० गाढी निद्रा, अथवा असवेदनता (सज्ञारहितता, अनेस्थीसिया), जो मृत्यु की अवस्था के निकटतर है।

नीद—अधिक गाढी नीद—अधिकतम गहरी नीद—मृत्यु (चिर-निद्रा)।

रोम्याँ रोलाँ ने श्रीरामकृष्ण परमहस की जीवनी (जीवन-चरित्र) मे लिखा है कि लेखक के (उनके) मत, राय, से जब रामकृष्ण ने सोचा (धारणा, खयाल) और दावा किया कि उन्हें झाँकियाँ मिली (प्राप्त हुई), दर्शन हुए, और यह कि उन्होने सचमुच पार्थिव-रूप मे, सशरीर, माँ काली को अपनी नजरो से अवलोका, देखा, तब वास्तविक तथ्य यह था कि उन्होने कुछ भी नही देखा था। कि वह सब भ्रम और स्वप्नवत् था, एक निराधार आभास या घटना-सी।

Now if a man is able to so attune his mind and to alter its psycho-physiology in such a way that he is able to create the vision, true and clear, as opposed to mere illusions and if the communi-

cations to him by the 'vision' are received and accepted by his mind with as much precision, clarity, sincerity and depth as if it was a communication, real and direct from God Himself, the man gets total benefit out of this experience And is it not all that really matters ? Otherwise who can prove that such 'visions' were mere day-dreamings, reveries, and who can say that what is interpreted as an illusion or a delusion by others may be true, real and factual for the individual experiencing them ? Man's dreams are so real to him while asleep They are unreal to him when he wakes up Equally unreal to him in sleep becomes the awakened state When a man is in ecstacy the vision that he may see are as real and true to him as anything he has ever seen or known अगर भाव-समाधि (हर्षोन्माद, आनन्दातिरेक, हाल-काल) का प्रभाव सत्य है, तो वह समाधि भी सत्य है, वह भगवद्दर्शन भी हर हालत मे सही है। नही तो क्या 'जागर्त्ति' मे देखा गया जगत् 'स्वप्न' और 'मिथ्या' नही है ? 'स्वप्न' और 'समाधि' मे, ध्यानावस्था मे भी, यह ससार कहाँ चला जाता है ?

And if God was to be drawn into manifesting Himself for the benefit of the Sadhaka (साधक) why can't He be able to appear in 'visions' or in 'reality' or in person ? Granted that God exists and that everything is within His power Is He not the Almighty ? Omnipotent ? Is not that the appellation carried by Him ?

How can one prove (प्रमाणित) or disprove (अप्रमाणित) what happened between Ramkrishna and the Mother Kali ?—a very personal and private afair (नितान्त निजी मामला) was it not ? between the crying restless child and the lovelorn (वत्सला) (प्यार-पगी) Mother ?

Even an illusion, delusion or hallucination may bring its real charms and benefits to the visioner's (visionary's) life And God. And God has innumerable warps and ways known to Him to communicate with and to influence the creation and the creatures.

कौन कह सकता है कि व्याकुल बच्चे के अन्तर्मन मे सर्वव्यापिनी, ममतामयी, सर्वसमर्थ माँ ने क्या प्रभाव डाला, उसके 'प्राणो' मे कौन-सा 'आनन्द' भर दिया, उसके अन्तरग और बहिरग को किन पावन वर्णों से रग दिया, उसके कर्ण-कुहरो मे क्या-क्या ध्वनियाँ भर दी, क्या-क्या षड्यन्त्र रच आई ?

यदि जन्म के शुरू दिन से ही एक सौ व्यक्तियो को अलग एक साथ इकट्ठा करके

रखा गया, उनके साथ एक-सा व्यवहार किया गया, वे सब एक नाम से पुकारे जाते रहे, उनको एक ही-सा आहार दिया गया, एक-मे वातावरण मे वे रखे गये और कार्य भी एक समान ही मिला, तो सम्भव है उनकी अह-भावना बिलकुल ही विकसित न हो, और वे, सब-के-सब, इस मानसिक सरचना (मेण्टल-फ्रेम) के हो बैठे कि जिसमे उन्हे अपना निजी व्यक्तित्व, (एक 'व्यक्ति' के रूप मे), किसी से 'अलग' न मालूम पडे। उनको तब एक सामूहिक अस्तित्व का ही बोध रहेगा और वे अपने को 'समूह का एक अग' करके भी नही देखेगे, बल्कि अपने को 'समूह' ही मानेगे। वे सब एक-दूसरे के साथ मिले, सटे 'समूह' से दीगर न होगे। खास-खास परिस्थितियो मे ऐसी पृष्ठभूमि बनती है—जैसे चीनी आक्रमण के समय प्रत्येक नागरिक ने अपने मे 'मै' से अधिक एक 'भारतीय' होने का अनुभव किया। उसी तरह अन्य आवश्यक और खास तरह की परिस्थितियो मे लोग अपने को एक 'परिवार', 'जाति' या 'वर्ग' के अश के रूप मे सोचने-मानने लगते है। अनेकता की भावना एकता मे बदल जाती है। व्यक्ति का अहभाव बँट जाता है। एक विरोधी व्यक्तित्व सामाजिक और धार्मिक बन जाता है। अभ्यास और वातावरण और शिक्षा के द्वारा बच्चो का अहभाव घट सकता है। 'अहम्' की निवृत्ति के लिए 'योग' के द्वारा बताये गये मार्ग उच्चतम हैं। मानव के विकास के लिए तथा समाज की प्रगति के लिए भी, यह पद्धति बडी कारगर है। कार्यों के पूर्ण सुधार (एनाटामिकल, फिजिकल, फिजिओलॉजिकल और साइकोलॉजिकल) मे इससे उत्तम (बढकर) कोई रास्ता नजर नही आया। अन्तरराष्ट्रीय योगसस्थान के प्रवर्तक जगद्विख्यात स्वामी सत्यानन्द जी (मुंगेर, बिहार) की भी यही राय है। 'मानवीयता' 'अन्तरराष्ट्रीयता' इत्यादि की धवल धारा फूट पडती (निकलती) है और विश्व के स्वच्छ नीलाम्बर मे श्वेत कपोतो की अजेय, अभेद्य, पक्तियाँ सुखद शरत्-चन्द्रमरीचिवत् छा जाती है। इसी तरह अगर आदमी का 'अहम्' पूर्णत और सर्वांश मे, सचमुच लुप्त हो जाय, तो वह आदमी समष्टि के साथ एकाकार होकर उसमे डूब जायगा, बिला जायगा।

लेकिन, यह 'सामूहिकता' की भावना गहरी और स्वत उत्पन्न होनी चाहिए। रग चोखा और सुखद, प्रीतिकर और मनोहर होना चाहिए। यह सरकारी या वैधानिक सत्ता के द्वारा न लादी जाय। और, न डर या भय से मान ली जाय। पूर्ण स्वतन्त्र मानस मे अगर यह न उपजी हो, तो यह एक बवाल बन जायगी। किसी भी तरीके से जबरदस्ती थोपी गयी हुई, तो यह अहम् को प्रज्वलित रखेगी, जिसमे डर ईन्धन का और सन्देह (आशकितता, असुरक्षितता) घी का काम करेगा। 'अहम्' का अमर दीप तब जलता रहेगा, जलता रहेगा। आडम्बर ओढे, मुखौटा लगाये प्रतारित 'अहम्', 'एकता', 'समष्टि', 'समतावादिता' (इगेलिटेरियन) इत्यादि का झूठा, बेईमान, पृष्ठपोषक के रूप मे, हाब-डीब करता रहेगा, दॉत चिआरता रहेगा। पर, आन्तरिक असन्तोष का बबूल उसे सदा सालता रहेगा, उसे स्नेह की सरिता मे विलीन होने नही देगा।

('साधक' बनाम 'सिद्ध')।

सिद्ध कौन है ? जो गुणातीत, चाह और भय से रहित हो गया है, जो द्रष्टा-भाव से स्वय (अहम्) को देख (आत्मसाक्षात्कार) (आत्मविश्लेषण) सकता है, जिसमे गीता मे वर्णित सात्त्विक गुणो का समावेश है—ऐसा जब मनुष्य अपने को बना (ढाल) ले, तब वहाँ उसके व्यर्थ पुरुषार्थ का अन्त हो जाता है। उसके बाद के रास्ते पर, जो प्रगति होगी, वह प्रभु-कृपा से होगी। उसके बाद प्रभु-विश्वास और प्रभुकृपामात्र ही सहारा रह जाते है। शरणाश्रित-गति। तब प्रभुकृपा से मानस मे चेतना जगेगी (ए प्रोजेक्शन फ्रॉम प्रोभिडेन्स) और वह आदमी तब परमात्मा की अनुभूति पा सकेगा। मस्तिष्क वह अवयव (यन्त्र) है, जिसमे समुचित अभ्यास से या (और) प्रभु के प्रभाव से चेतना जगती है। साधारणतया 'चेतना' सजग नही रहती, वह अपने अव्यक्त या अविकसित या प्रसुप्त, निष्क्रिय या प्राक्-प्रौढता, अनु-ज्ञानता, प्री-चेतना, के रूप मे रहती है। शायद। समष्टि के सान्निध्य से मानव का मानस ब्रह्माण्डीय (विश्वीय या औद्भौम) मानस या सार्वभौम चेतना के सम्पर्क मे आकर उसके गुण ग्रहण करता है, तब कही—वही चेतना परमात्मा का साक्षात्कार करा पाती है। वैसी चेतना, जो ज्ञान की भट्ठी मे तपकर, परमात्मा के क्रोड मे प्रस्फुटित होकर, साधना से सजकर, अखाडे मे उतरती है। चेतना जगती है मस्तिष्क मे। जैसे—भाथी (भस्त्री) के धौकने से लोहा मे अग्नि (लाल, गर्म) का गुण-धर्म आ (समाविष्ट हो) जाता है।

सत्	चित्	आनन्द
सन्धिनी	सविद्	ह्लादिनी
'है'	'मालूम होता है' (कि है)	'अच्छा लगता है' (जो है)
(विश्वास)	(अनुभूति)	(यह अनुभूति कि परमात्मा है
(धारणा)	(ध्यान)	और सर्वव्याप्त है)।
		(आनन्द)
		(समाधि मे परमानन्द की दशा सदृश)

'सत्' और 'है' के बीच जो पर्दा पडा हुआ है, उसे (नाम दिया गया है) कहते है—'सन्धिनी'। यह जैसे ही विलीन, साफ या घुल-मिल या लुप्त होती है, वैसे तत्क्षण, 'सत्' का प्रत्यक्षीकरण या ज्ञान हो जाता है। 'चित्' और 'मालूम होता है' की अनुभूति के बीच की 'सविद्' नाम्नी रेखा—'आनन्द' और 'अच्छा लगता है' की समाधि-स्थिति के मध्य 'ह्लादिनी' नामक स्तर—इन चिलमनो का सम्बन्ध-सूत्र भी वैसा ही है, जैसे 'सन्धिनी', सत् और 'है' की अनुभूति का।

(सत्, चित्, आनन्द
सच्चिदानन्द)

(समाधि)—धृति
(चेतन मन)

'समाधि' (धृति) सत्-चित्-आनन्द और चेतन मन के बीच मे पडी दोनो को पकडे रहती है, नही तो अहम्-भाव का पूर्णरूपेण, समग्र, लोप हो जायगा और तब जीवात्मा परमात्मा मे विलीन हो जायगा, आद्योपान्त डूब जायगा, और पार्थिव शरीर को त्याग देगा।

क्या आदमी अपनी पार्थिव कायिक नेत्रो से परमात्मा को देख सकता है?—सम्भवत नही।

दिव्य चक्षु जब मिलते है, 'तीसरा नेत्र' जब खुलता है, 'ज्ञान की आँखे' जब पर्दे के आर-पार देखने लगती है, सार्वभौम चेतना से जब आदमी के मानस का सम्पर्क स्थापित होता है, जब मस्तिष्क निम्नम्तरीय अन्त करण से छूटकर (पिण्ड छुडाकर) मुक्त हो जाता है और दर्पण (आईना) की तरह धवल (निर्मल, विमल, स्वच्छ) हो जाता है, उसी क्षण सार्वभौम चेतना उसमे प्रतिबिम्बित होने लगती है।

जैसे ठण्डा, सर्द लोहा अग्नि मे पड कर जलाने का गुण प्राप्त कर लेता है, फिर भी, वह लोहा ही रहता है, अग्नि नही, वैसे ही आदमी का मानस (मस्तिष्क) परमात्मा का (की कृपा से) सम्पर्क पाकर प्रखर, पैना, कुशाग्र, चौकस, तीक्ष्ण इत्यादि बन जाता है। उसमे कुछ ऐसी विलक्षणता भर जाती है कि वह विभु बन जाता है, उसमे परमात्मतत्त्व उदित-उद्भूत हो जाता है, प्रभु झलकने लगता है। रात्रि—विरात—भोर—सूर्योदय।

हम मस्तिष्क को जानते थे, 'मानस' से अनभिज्ञ थे। हम हृदय को जानते थे, उसकी स्वत सचालित-प्रवाहित विद्युत्-लहरियो से अपरिचित थे। पतजलि के पूर्वजो को 'मानस' का ज्ञान था। लेकिन, विज्ञान-जगत् मे वह फ्रॉयड के योगदान से जाना गया। 'विद्युल्लेखेव भास्वरा' के लेखक, प्रणेता ने विद्युत्-रूपी परमात्मा को हृदय मे ही स्तुत्य पाया था। लेकिन, आयुर्विज्ञान को वह आइन्थोवेन के अनुसन्धानो के बाद पता लगा पाया। अमा मे मार्त्तण्ड कही था, इसका पता (भान) होता था। लेकिन, वह ऊषा मे जब उग आया, तभी सच लगा।

'मानस' के कार्य विभिन्न स्तरो पर सम्पादित होते है, यह तो सर्वविदित है। श्रीहरगोविन्द दत्त (झरिया राँची के) मृतात्माओ के आवाहन मे बडे ही सफल माध्यम (मिडियम) थे। शायद सारे विश्व मे इतना कुशल माध्यम कोई दूसरा नही हुआ। बडा ही सरल स्वभाव था उनका। मै उनके साथ, एक ही कोठरी मे, करीब छ महीने तक रहा था। पैतीस वर्ष तक उनके साथ मेरा सम्पर्क रहा। वे मुझे विनोद (मजाक) से 'कर्त्ता' कहा करते थे।

ऐसे ही, दुनिया के विभिन्न प्रोडिजीज (विचक्षण मानव, विदग्ध या असामान्य प्रतिभा-युक्त व्यक्ति) की बात सोचिये। विज्ञान, गणित, कला, फौज, खेल-कूद,

अध्यात्म, साहित्य, राजनीति इत्यादि सभी क्षेत्रो मे विलक्षण प्रतिभाशाली लोग इसी धरती पर जनमे और रहे है (उदाहरणार्थ गामा, शिवाजी, कैसियस क्ले, बाबी फ्रेजियर, न्यूटन, आइन्स्टाइन, लियोनार्दो, रामानुजम्, यहूदी मेन्युहाइन, शकराचार्य, तानसेन, रामकृष्ण, महात्मा गान्धी इत्यादि)।

अष्टागिक मार्ग।

जिसे सवेदनाशील, सदय, भगवान् बुद्ध ने प्रस्तुत किया। सम्यग् (क्) दृष्टि, सकल्प, व्यायाम, स्मृति, वाक्, कर्मान्त, आजीव, समाधि।

कर्मान्त।

कर्मो मे पचशील मुख्य है। सर्वत पाप-निवृत्ति को शील कहते है। ये पचशील (पॉच आज्ञाएँ) सब बौद्धो (गृहस्थ और भिक्षुओ) के लिए है (१) किसी को न मारे, (२) चोरी न करे, (३) झूठ न बोले, (४) नशीली चीजो का त्याग करे, (५) व्यभिचार न करे।

सिर्फ बौद्ध भिक्षुओ के लिए पॉच अन्य आज्ञाएँ दी गयी, जो गृहस्थो के लिए आवश्यक नही मानी गयी।

अष्टाग योग।

ऋषि पतजलि-कृत योगसूत्रम्।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि।

स्वास्थ्य-सम्बद्ध आठ सिद्धान्त।

चिकित्सा-विज्ञान के द्वारा प्रस्तुत। (१) स्पष्ट रूप से समझिये कि चिरायु या दीर्घायु होना मुख्यत (प्रधानत) आपके अपने हाथो मे है। (२) बीमारी के लक्षणो की कभी उपेक्षा, अवहेलना मत कीजिये, (३) वजन घटाइये। नियमित रूप से उचित सीमा तक। (४) तम्बाकू, शराब, औषधियॉ, अमलखोरी ये सब त्याज्य है। कम-से कम दवा, जो अत्यावश्यक हो, केवल उसी का व्यवहार अनुमेय है। (५) चिन्ता और तनाव से बचिये। (६) प्रतिदिन व्यायाम कीजिये। (७) आशावादी बनिये। (८) अवकाश लीजिये (बीच-बीच मे छुट्टियो पर जाया कीजिये)।

सच तो यह है कि वह (परमात्मा) अरूप है अथवा उसके सभी रूप है या सभी रूप उसी के है (नारदमोह—बन्दर का स्वरूप)।

जैसे मोमबत्ती या दीपक की लौ (ज्योति-शिखा) बुझ जाती है और पता नही चलता कि वह कहॉ चली गयी। वैसे ही आत्मा भी निकल जाती है और पता नही चलता कि वह कहॉ विलीन हो गयी।

अस्तित्व दोनो का कही-न-कही, तो रह ही जाता है।

शून्य वह स्थिति है। जहाँ +ve पोजिटिव (e g.+1) तथा —ve निगेटिव (e g —1) दोनो ही एकाकार हो जाते है, जहाँ दोनो जनमते है और जहाँ दोनो मिटते है। जीवन और मृत्यु का जो सगम है। मै और तुम, मेरी और तेरी, सुकर्म और कुकर्म, सुफल और कुफल के बीच, जो मध्यस्थ की तरह है, जामिन है (who stands

the bail) (witness)। वह सूत्र, जिससे हम और हमारी छाया बँधी है। जो क्रिया और प्रतिक्रिया का जनक और जननी है। मृत्यु और जीवन के बीच की धूमिल रेखा, वह पटाक्षेप। साक्षी।

जैसे +ve पोजिटिव तथा −ve निगेटिव शून्य से बँधे हैं, वैसे ही शून्य भी उनसे बँधा है। सर्वव्यापी शून्य। शून्य सबका आधार।

पहले मै कहॉ हूँ का पता चले, तब न मै कौन हूँ की खोज हो। कहाँ खोजें? जहॉ होगा, वही खोजने से न? वही न, वह दीखेगा। बाघ को जगल या चिडिया-घर (ज्) (जन्तु-शाला) मे ही तो खोजना पडेगा। तब न कह सकते है कि इन जानवरो मे कौन बाघ है और वह कैसा है?

'शून्य' पानी (सरिता) की वह सतह है, जिसपर डेंगियाँ चलती है और जिससे उनके प्रतिबिम्ब जुडे रहते है। यह जिन्दगी का वह धरातल है, वह ऐनकी रगमच है, जिसपर नाटक खेले जा रहे है और जहॉ से अभिनेता की औधी आकृतियाँ भी साफ-साफ दीख जाती है (दिखायी पडती रहती है) उल्टे चेहरे। जहॉ लेना (+१) और देना (−१) दोनो मिलकर एकाकार हो जाते हैं। शून्य वह स्थिति है, जिसकी एक ओर जो है, दूसरी ओर वह नही है। जिसकी दो परते है—एक 'अच्छी' दूसरी 'बुरी'। जहाँ जीवन और मृत्यु दोनो का मूल्य एक-सा आँका (हो) जाता है। कुछ भी नही रह जाता।

अनाम और अरूप—(ऐसे) प्यारे की खोज कैसे की जाय? परमात्मा की टोह कैसे मिले? एक आहट-भर तो पाते है।

एक समय मे दो अवतार कैसे सम्भव होगा (अगर परमात्मा अपनी 'पूर्ण' कला मे अवतरित हुआ हो?) (तु० राम-परशुराम)।

अन्तरात्मा की पुकार कोई सुन रहा है और तब उसको जो (भलाई की बात) उचित प्रतीत होता है, वह करता है (किये जा रहा है)—परमात्मा का अस्तित्व-बोध।

जिसके बिना आपका काम नही चल सकता हो और जिसकी आपको जरूरत हो, ऐसी वस्तु अगर, आप परमात्मा से, मन से माँगिये, तो वह आपकी पुकार सुनेगा।

किशोरी ने कहा कि आपकी डायरी (सन् १९७१ ई० की) खो गयी, वह क्यो मिल जाय? गयी, सो (तो) गयी, आपका क्या ले गयी।

अगर, आदमी अपनी ('मैं') अक्ल से काम करता है तो, मकडे का जाल, मधुमक्खी का छत्ता, बाया (पक्षी) का घोसला, विभिन्न जानवरो तथा कीट-पतगो की प्रजनन-क्रिया, बीजो का प्रकीर्णन, लजौनी की लाज, चीटियो की सामाजिक सुव्यवस्था, यह सब कौन करता है?

उनकी सहज-वृत्ति (इ स्टिक्ट) ने बतलाया, उस रात को जब डाकू आये थे, कि कोई गडबडी, कोई भय का कारण उपस्थित है—इसीलिये, और मात्र उसी रात को, वे बाहर का दरवाजा लगाकर तब घर मे गये थे। यह 'इत्तफाक' की

बात हो सकती है। लेकिन यह 'सयोग' उसी रात को 'खासकर' क्यो घटा ? जैसी की उनकी बराबर की आदत (अटूट) रही थी, अगर वह उस रात को भी कही दरवाजा खोलकर सोने गये होते, तो निश्चय ही उनकी जान चली गयी होती। वे जैसे ही आँगन मे आये, उन्हे एकाएक भय लगने लगा। उनके रोगटे खडे हो गये। उनको विस्मय हुआ। अकारण ऐसा क्यो हो रहा है, उन्होने सोचा था। वह क्या जानते थे कि चन्द मिनटो के बाद ही परिस्थिति बदलनेवाली थी। 'सयोग' कि वह बाल-बाल बच गये। ईश्वर को कोटिश धन्यवाद।

Statum Continuum (स्थिति-सातत्य)

All pervading (सर्वव्यापी) principle (तत्त्व, व्यवस्था, स्वभाव, मर्यादा)

Continuous sheet of substance (पदार्थ) or media (मीडिया) with innumerable limitless dimensions (आयाम)

State of सर्वत्र और अनवरत उपस्थित शक्ति।

=State of perpetual continuity at all places at all times

=Perpetual pervasive power (energy)

=Self-mutating mattenergy (Matter+energy)

=State of continuity—in time and space—in various states of matter and energy—in particles and waves—in creation and destruction—in mind and body

=Self perpetuating and self-mutating changelessness of unbounded and limitless existence and power

=The core, (साराश, सारतत्त्व) the kernel and the substance of the Universal Existence (सार्वभौम सत्ता)

=The all-pervading power (सर्वव्यापी शक्ति)

=The atom may be powerful but what keeps the electrons, protons etc spinning and whirling inside thc Atom ? Even Eienstein thus became aware of some 'power' (God) behind these manifestations (प्रकटीकरण)

=What fills the 'vacant' space inside the atom ?

=It is not composed of even the finest of discrete 'particles' nor of the tinniest of 'waves' For 'particles' and 'waves' can be separated and counted and measured and destroyed and because of the fact that they are not 'continuous' they leave vacant space in between their own discreteness

धर्म पर आधृत जो व्यक्तिगत जीवन या समाज बनता है, वह पिरामिड की नाई विशाल होता है। आध्यात्मिक धारणाओ के प्रतिफल को देखना चाहिये।

उनकी बदौलत उदात्त और महान् व्यक्तित्व का निर्माण हो जाता (पाता) है। जितने भी धर्मग्रन्थ लिखे गये, महात्माओ ने जो कुछ भी कहा—सभी मनुष्य के (मस्तिष्क के) ही माध्यम से, मनुष्य समाज और ससार को प्राप्त हुए। उनकी चेतना के पीछे परमात्मा का प्रकाश था, उसकी प्रेरणा थी। गीता परमात्मा की वाणी हो सकती है। लेकिन, उसे कहा, शरीरधारी श्रीकृष्ण ने (गीता कहने-मात्र से श्रीकृष्ण 'भगवान्' समझे और माने गये) (और उसे लिखा शरीरधारी श्रीव्यास ने)। अभिगृहीत (एक्सियम्स) यूक्लिड ने प्रस्तुत (प्रोपाउण्ड) किये, लेकिन, वह सूझ, वह ज्ञान कही और जगह मे आया था। उसको सर्वज्ञ, सर्वव्यापी चेतना ने झलकाया था, फ्लैश किया था, यूक्लिड के मस्तिष्क के माध्यम से।

Geometry (ज्यामिति) is based on falsehood Axioms ('अभिगृहीत' 'स्वयसिद्धियाँ') are assumed falsities and lies—False assumptions 'A point has position but no magnitude' If anything has no magnitude that (material) thing cannot have an existence and a position

फिर भी, अगर, इसी मिथ्या आधार पर पिरामिड बने, इमारते बनायी गयी, विज्ञान बढा, तकनीक अग्रसर हुआ, मनुष्य ने उन्नति की। अध्यात्म के एजम्पशस भी माना झूठ ही हो, फिर भी अगर उससे इसानियत आगे बढती है, आदमी इनके सहारे 'महामानव', 'परमात्मा', बनता है, तो इस लिहाज से भी वे पूर्णत ग्राह्य हैं।

जैसे, यह आध्यात्मिक मान्यता कि 'सत्य ही परमात्मा है' कि 'परमात्मा सर्वत्र और सर्वज्ञ है' और वह हमारे सभी कार्यो को देखता है, अगर, मिथ्या भी हो, फिर भी, ज्यामिति के एक्सियम्स की तरह यह न सत्य है, न झूठ। और, इनके आधार पर विचार (थॉट्स) के रूप मे एक प्रकार की शक्ति है, जिसने मनुष्य की सभ्यता को, समाज को नया मोड दिया है। जैसे ज्यामिति के एक्सियम्स है, वैसे ही (मान लीजिये कि) आध्यात्मिक विज्ञान के भी एक्सियम्स है। ये न 'सच' हैं, न 'झूठ', ये सच भी है और झूठ भी। आध्यात्मिक एक्सियम्स के कुछ उदाहरण, जैसे (१) भगवान् है। (२) परमात्मा सर्वत्र, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, शाश्वत, सर्वदा और सबका है। (३) पुनर्जन्म होता है। (४) कर्म का फल बिना मिले नही रहता, इत्यादि-इत्यादि। (५) आदमी पुण्य से परमात्मा और पाप से हैवान बन जाता है। (६) बुराई से बुराई नही मिटती।

अगर, हम भी 'द्रष्टा' और तटस्थ भाव से तृतीय व्यक्ति की नाई अपने विचारो को देखे और उसी भाव से अपने कर्म निर्धारित करे, तो न कर्मफल बन्धन बनेंगे और न विचार ही 'मै' को उत्तेजित करेगे। ऐसे विचार और ऐसे कर्म 'मै' (ईगो) को मैला नही करते। यह विचार-धारा (धारणा) प्रविधि (तकनीक), याने नियत कर्म का यन्त्रवत् पालन करना, नई प्रविधि (तकनीक) है, जो परमात्मा और प्रकृति ने अपना (चुन) (अगीकार) कर रखा है और यह प्रभु के समीप ले जाने की राह है,

जीवात्मा पर परमात्मा का रग चढानेवाली प्रक्रिया (प्रोसेस), भगवान्-सा बनने का तरीका है।

कुछ नियत समय के लिये प्रखर मस्तिष्क दिया, जिससे जीवन बन गया। व्यक्तित्व-निर्माण हो गया। फिर, चाहे वह चिराग जलता रहा, दीप बुझा या दीप्त हुआ। जीवन की किस अवधि (पीरियड) मे कितने दिनो तक मेधा द्युतिमान् रही।

(तु० वृद्धावस्था मे मस्तिष्क की अवनति-विकृति)।

अच्छे कर्मो (क्रियाओ) की भी प्रतिक्रिया होती है। अच्छी-बुरी। (जैसे जलदीप, प्रकाशस्तम्भ, की भी छाया होती है। नही तो ईसा, गान्धी, मन्सूर, अरस्तू, गैलीलियो इत्यादि को वह दिन नही देखने पडते, जो उन्होने देखा, न वह भुगतना पडता, जो वे भुगते। 'बुरे' कर्मो की प्रतिक्रियाएँ तो होती ही है, 'अच्छे' कर्मो की भी होती है। भलाई इसी मे है कि कर्म न बने। न अच्छे फल की आकाक्षा हो, न बुरे फल का भय हो। नियत काम का सम्पादन ही एकमात्र लक्ष्य रह जाय, जो उचित ढग और उचित माध्यम से किया जा सके।

टू एभरी ऐक्शन देयर इज ऐन इक्वल ऐण्ड ओपोजिट रिएक्शन। तब 'अच्छे' कामो की कैसी प्रतिक्रिया होगी और 'बुरे' कर्मो का कैसा अजाम होगा? क्या उम्मीद की जाय? उनके आधार पर आप कैसे व्यक्तित्व तथा पुरुषार्थ का निर्माण कर पा सकते है। भगवान् है अथवा नही है, यह उतना जरूरी प्रश्न नही है, जितना यह कि उसका रहना या न रहना, आपके लिये, समाज के लिये, ससार के लिये, मनुष्यता के लिये, कितना उपयोगी बना है या बन सकता है।

Creation may not have only the four-dimensions It may, for that matter, have 'n' dimensions (infinite or innumerable dimensions) and there may be 'n' universes (any number of universes or infinite number of universe)

God and man in terms of mathematics—

Weierstrass—great mathematician

—master of calculus and continuity

$$x^n (= \text{infinity})$$

$$\frac{x^{n+1}}{x^n} = \text{God}$$

Life (जीवन) is a Power-series (शक्ति-श्रेणी) = this is the अन्तिम सूत्र by Weierstrass

'Power'—Bertrand Russell

Power—Mundane or Spiritual

'Power series' is an expression of the form $a_0 + a_1 z + a_2 z^2 +$ $+ a_n z^n +$. in which the coefficient a_0, a_1, a_2 a_3 are

constant numbers (the basic man or the core and substance of all men are the same, it remains constant from one individual to the other) and z (z) is a variable number (=what makes the diversity we see in all men), the numbers concerned may be real or complex

Continuity (निरन्तरता) is the name of God (cf. Statum continuum) (cf Power—series) Hobbs (Philosopher) (His ideas resemble to some extent those of चार्वाक)—said (wrote)

Man is a complex of power, owner is the opinion (विचार) for power, life is an unremitting exercise of power, death is the complete loss of power

Life is a power series Some people have more power than others and that determines to a great extent what is going to happen to them The maximum (अधिकतम) and all power (सर्व-सत्ता) reside maximally in the सर्वशक्तिमान् परमात्मा। कही-न-कही अपने-अपने अन्तरतम मे सभी लोग (मनुष्य) एक ही हैं—a bundle (गुच्छ) of instincts (मूलवृत्तियाँ) with a powerful goad or tool (औजार) for controlling (नियन्त्रण) those instincts if they so wish and desire and are willing (इच्छुक) to try it out, use it and thus rise over those very instincts to super-human (अतिमानव) heights (of achievements (उपलब्धि)) The instincts are nature's tricks, ways and methods to keep the creatures (प्राणी) going through their life presentation (प्रस्तुति) and procreation (प्रोत्पादन) The 'goad' (Viveka and Budhi and Ego) are God's grace His Benediction, His help to tide man through the thick and dense (सघन) and deadly, otherwise uncontrollable, unsurpassable jungle and thickets of instincts

'योगी योग जतन करी
सब मिलि (विधि) हारल हे।
से रघुनाथ सनाथ
सखिन सग बस भेल हे।।'

नरक की ये योजनायें, यन्त्रणाये, यातनायें। स्वर्ग की अनर्गल अप्सराये, अनिवार्यताये। जिन मस्तिष्को मे ये चित्र उभरे थे, वे बीमार रहे होगें, निश्चय ही। जीवन की अनिश्चित राह पर, जहाँ इसान प्यारे परमात्मा को खोजता-खोजता थकता जा रहा होगा (थक गया होगा), वहाँ (उस दुर्गम राह पर) किसने यह विभीषिका रची, किसने परमात्मा का प्राइवेट-सेक्रेटरी बनने का स्वाग रचा, कौन मुखौटा लगाये पथ-प्रदर्शक (गाइड) आ धमका ? वह रुग्ण, विकृत, घिनौना दृश्य किसने

उपस्थित किया ? निश्छल, ईमानदार, सरल लोगो के दिल मे किसने दहशत, खौफ, लालच, लोभ, भर दिया ? प्रभु-प्रेम को छीनकर अपनी प्रभुता बरकरार रखने के लिये ही न ?

Mind is the abode (आवास) of ideas (विचार) and ideation and if there is a dirty idea it must have sprouted (originated) (उत्पन्न) from a dirty place (mind)

So-called नरक की so-called यातनाओ के charts जो बचपन मे देखे थे—depicting various kinds of torture by यम and his men आश्चर्य है कि ऐसे कठोर, खौफनाक, नृशस तथा भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाले, भयकर अमानुषिक यातनाओ के चित्र कैसे 'ब्राह्मणो', 'गुरुओ', 'साधुओ' के मस्तिष्क मे उत्पन्न हो सके !

स्वर्ग की कल्पना भी विचित्र और भ्रमोत्पादक है। सब धर्मों मे वर्णित स्वर्ग की जो कल्पनाये है, उन्हे पढिये। अगर, परम धर्मात्माओ को अपने पुण्यो के लिये ऐसे ही स्वर्गों की प्राप्ति भाग्य मे बदी हो, तब तो परिस्थिति हास्यास्पद और अग्राह्य है।

और भी, मृत्यु के बाद शरीर तो यमराज को उपलब्ध होगा नही। आत्मा अजर, अमर है, उसे न आग जला सकती है, न वह पानी मे डूब सकता है, 'पदार्थ', 'भौतिक' (मेटीरियल) कुछ रह नही जाता। फिर, स्वर्ग का सुख सिर्फ मानसिक धरातल पर ही होता हो, तो ऐसा दिवास्वप्न तो हम सशरीर इसी दुनिया मे देख सकते है। उसके लिये मरने की क्या जरूरत है ?

Researches (शोध) of Dr Hargovind Khorana give further credence to the belief (विश्वास) that every creation (सृष्टि) is pre-ordained (पूर्वनियम) and that it is destined Thus fate cannot be falsified—that quite a bit of life, perhaps much of it, has to be endured as it cannot be cured Man has been in search (खोज) of this cure For every man is born with traits (लक्षण, विशेषता) good and bad with some handicaps (व्यवधान) and some facilities (सहूलियत)। मेरे पास अपना मस्तिष्क है। मै बीती बातो का मनन कर रहा हूँ। मै आगे की योजनाये बना रहा हूँ, मै निश्चय या निर्णय कर रहा हूँ। मै बुरे-भले की पहचान करता हूँ, 'मै' हूँ और सबसे, सभी चीजो मे भिन्न अस्तित्ववाला हूँ।

हमारे अन्दर कोई हमारे चित्, मन और हमारी बुद्धि को भी पहचानता है, जानता है। कोई है—'मै' (ईगो) का, अपनेपन का, या अपने अस्तित्व का, जिसको भान है। जो यह कह (एप्रीशिएट्स या नोज या रियलाइजेज) सकता है कि मेरा मन, मेरा चित्, मेरी बुद्धि, मेरा विवेक क्रियाशील है। लेकिन, 'मै' अपने को कैसे जान पाता है ? उसके पीछे जो शक्ति है, जो ज्योति, जो प्रकाश, जो किरण-केन्द्र है, वही जीवात्मा है और हमारा ज्ञान 'मै' तक पहुँचकर, ठमक जाता है। हमे यह नही

पता चलता कि 'मै' के पार्श्व मे, उसके आधार-स्वरूप क्या है, कौन है? वह 'आत्मा' है, यह लोगो से सुनकर पढकर जानते हैं, अपना ज्ञान लेशमात्र भी वहाँ नही पहुँच पाता। कही 'सुने हुए' पर आस्था, विश्वास का सहारा लेना पडता है, लेकर आगे बढना पडता है, आध्यात्मिक सीढियाँ चढनी पडती है। इस स्तर पर विकल्प गुड-गोबर कर देता है।

जीवन और जागृति के क्षण कम है, छोटे है,—और नीद बडी गहरी और बडी लम्बी है, आदमी को हर कोशिश करनी चाहिये कि जीवन को सौन्दर्य और सुगन्ध से भरपूर कर दे,—दूसरो के लिये और अपने लिये भी। जीवन से गलतफहमी को वैसे ही छाँटकर अलग कर दे, जैसे पेड-पौधो को सजाते हैं।

भगवान् कुछ नही है, यह 'शून्य' का अर्थ नही। शून्य का अर्थ 'अभाव' के अर्थ मे नही लेना है, न लिया गया है। शून्य वह है, जहाँ से सब कुछ का उद्गम (उत्पत्ति) और विलयन होता है। परमात्मा 'कुछ' नही है। जिस किसी को हम कुछ समझते है (चर, अचर, सजीव या निर्जीव इत्यादि) या मानते-जानते है, उस सब मे भगवान् कुछ भी नही है। वह अद्वितीय है, अगोचर है और 'कुछ' नही होता हुआ भी सब कुछ है। कुछ नही, 'कुछ' नही, वह अपरिमित होने से पहचान मे नही आता।

Continuity (नैरन्तर्य) thy name is God Nothing except God is or can be continuous Everything other than God is dis-continuous and limited (सीमित) (by its dimensions) God has 'n' dimensions (विस्तार) and each dimension of His is raised to the power 'n' and He is a sum of all these +ve numericals (सख्या) and He is the difference of all these -ve numericals or integers (integrals ?) or gradients (?)

$$1^n+2^n+3^n+ \qquad +n^n+$$
$$-1^n-2^n-3^n- \qquad -n^n-$$
$$-(-1)^n-(-2)^n-(-3)^n- \qquad -(n)^n$$

God is not intercepted, broken or divisible or bound by its limits (limitation) He is continued in eternity without break or interruption or termination There is no end to God God is uniform (समरूप), unity capable of creating and manifesting variety and diversity 'n'—number of dimension each raised to the power 'n' $=n^n$

$$=1^n+2^n+3^n+ \qquad +n^n+$$

Any dimension raised to the power n=God

x^n(where 'x' = any 'dimension' or number)
$= 1^n + 2^n + 3^n + \quad + n^n$
because $n^n =$ God
as Also $1^n + 2^n + 3^n + \quad + n^n \quad =$ God
as Also $x^n \equiv$ God
or $y^n =$ God or any similar number = God
$x^n = y^n = z^n = n^{n'}$
$= 1^n + 2^n + 3^n + \quad + n^n +$

= God $1^1, 1^\infty, \infty^\infty$ (One raised to the power one, one raised to the power infinity, and infinity raised to the power infinity)

= Infinity (= not finite but capable of presenting or converting part of infinity into finite)

God is constantly expand-ed (—ing) with limitless speed in the limitless cosmic mind (सार्वभौम चेतना) I God cannot be static because then He will get limited If He is then expanding (—not) in the sense of swelling (फूलना) He cannot expand in any space (दिक्) or time (काल) or other such dimension (विस्तार) In that case the environment (वातावरण) (?) in which He is expanding will be of greater (महत्तर) dimension (विस्तार) than He, which is impossible by the definition (परिभाषा) and conception (धारणा) of Him He, therefore, is expanding (विस्तृत) in His own Cosmic Mind (which too is limitless) (cf Man expanding in his own mind cf Megalomania) The speed with which He is expanding [and 'expanding' not it its usual sense, the term is being used because of inability to get a suitable (उपयुक्त) word to express (व्यक्त करना) the thought-idea and the meaning] must need also be limitless (असीम)

सभ्यता ने या विज्ञान या प्रौद्योगिकी (टेकनालॉजी) ने आदमी की समस्याओ को कितना सुलझाया है, इसका एक बढिया उदाहरण है 'आसन' (भारतीय, जापानी, इत्यादि) का परित्याग और उसकी जगह कुर्सी (चेयर) (कमोड) इत्यादि की आदत और उसकी नितान्त आवश्यकता, जरूरत, कि जिसके बिना आदमी कुछ-न-कुछ परतन्त्र हो ही जाता है और उसे चौपाये इत्यादि की आकृतियाँ अपनानी पडती है। (तु० 'हाउस-मेड्स नी')

Mind can be improved (विकसित) by (i) our effort (प्रयास) or by (ii) **God's grace (प्रभुकृपा) ।**

and thus get attuned to god-realization (ईश्वरानुभूति) otherwise no hope may exist for fools to be ज्ञानयोगी। ज्ञानयोग-ज्ञानमार्ग।

ज्ञानयोग का रास्ता सबके लिए न सम्भव है, न उपलब्ध। उसके लिए कुछेक अपेक्षाएँ है—जैसे, मेधा—ज्ञान—तर्क—अभिरुचि। ज्ञानयोगी को तीक्ष्णबुद्धि होना पडेगा। उसे पढ-लिखकर दर्शन तथा आध्यात्मिक (और अब वैज्ञानिक भी) पुस्तको की बाते जाननी होगी। ज्ञान उपार्जन करना पडेगा। उसे तर्कशास्त्र का भी कुछ ज्ञान रहना चाहिये या तर्क करने की शक्ति-क्षमता रहनी चाहिये या उचित तरीका मालूम रहना चाहिये। और, इस अनुष्ठान, उद्यम तथा खोज मे दिलचस्पी रहनी चाहिये।

दूसरे लोगो की उपस्थिति भी अनिवार्य है। ऐसे तार्किक भी उपलब्ध रहें, जिनके साथ अनेक बार तर्क किये जा सके कि खयालात माँजी जा सकें और इतना सब करने के बावजूद ऐसा हो सकता है कि ज्ञानी (ज्ञानमार्गी) का प्रयास सही रास्ते पर न हो और परमात्मा-रूपी लक्ष्य को वह चूकता, खोता जाय।

परमात्मा-रूप लक्ष्य।
लक्ष्य-भेद की असफलतायें।
ज्ञानमार्गी की मार्मिक विकलागतायें।

गनीमत इतनी ही है कि परमात्मा कोई पिन-प्वायण्ट तो है नही—वह इतना विस्तृत है कि टारजेट को मिस करने की सम्भावनायें रहते हुए भी लक्ष्य-प्राप्ति के लिये यह असम्भव प्रयास-सा नही दीखता।

परमात्मा।
परमात्मा का विस्तार
ज्ञानी की सम्भावनायें।

और, एक बात यह है कि इस विस्तृत दामन का कोई भी छोर कही भी पकड मे आ जाने पर लक्ष्य-भेद (परमात्मा की अनुभूति) (आंशिक हो तो) (सर्वांश मे सिर्फ परमात्मा ही अपने को जानने मे समर्थ है) करने का फल मिल जाता है।

भक्तियोग—भक्तिमार्ग।

यह मार्ग सबके लिये 'सुगम' है। पर, इस मार्ग मे एक दूसरी तरह की कठिनाई है। यहाँ भक्त यह समझ बैठता है कि वह (प्रभु) हमको बहुत-बहुत प्यार कर रहे है। पर, उसकी अपनी 'भक्ति' के विषय मे गलतफहमी हो सकती है। वह अपने को नही पहचान पाता, अन्धा रहता है। परन्तु, परमात्मा उसे (और सबको) अच्छी तरह जानता-पहचानता है।

नारद तक को पता नही रहा कि उनकी भक्ति कितनी गहरी थी। दीप और तेल गिरनेवाली कहानी ('नारद-मोह' प्रभृति कहानियाँ)।

अपने विषय मे पूरी जानकारी न रहने के कारण (अपने मन को और अपने को पूरी तरह और ठीक-ठीक नही जानते रहने के कारण) अपने पक्ष मे अपना गलत

मूल्याकन करने की प्रवृत्ति हो सकती है। भक्त का प्रखर प्यार इतना जीवन्त, इतना सच्चा और इतना गहरा होना चाहिये कि वह (अपनी भक्ति से) (प्यार की अटूट डोर से) परमात्मा को खीच लाये। परमात्मा को खीच लानेवाला प्यार भी प्रतापी होना चाहिये। और, भक्त अपनी भक्ति का ओज, शक्ति या उसका गुण-दोष या खोखलापन या कमजोरी न भी जाने, परमात्मा तो जानेगा न ?

कर्मयोग—कर्म का मार्ग।

नियत कर्म—स्वधर्म। पूरी शक्ति तथा सामर्थ्य लगाकर—उचित ढग से—उचित लक्ष्य, उचित तरीका, उचित कर्म, बिना फल की इच्छा के याने 'फल' से बिना उद्वेलित हुए (उत्तेजित, अशान्त हुए) जो काम मे बस जुटा ही रहता है। और, काम बढिया-से-बढिया तरीके से सम्पादित हो सके, इसके लिये सदा तत्पर रहता है और उसके बारे मे सीखने, जानने का प्रयास करता है। वह कर्म बन्धन नही नबता। कर्मफल तो प्राकृतिक नियमानुसार मिलता ही है। परमात्मा ऐसे कर्मयोगी को अपनाता भी है और बतौर पारितोषिक के उसे अपनी अनुभूति भी देता है। अगर कर्मयोगी की ऐसी आस्था प्रभु पर रही (तु० एगनास्टिक्स तथा एथेइस्ट्स की उपलब्धियाँ) (तु० उपलब्धियाँ कर्मयोगी की, उसे 'कर्मफल' की प्राप्ति होती है। ईश्वर की अनुभूति भी मिलती है)। (बिन माँगे, बिन चाहे, बिना फिक्र किये)।

और, भगवान् के यहाँ धाँधली है नही, न 'पक्ष'-'कक्ष' की बात है, न अन्धेर नगरी है, न चौपट राजा।

'फल' करीबन स्वत प्राप्त होता है और अवश्यम्भावी है। आदमी को केवल अपना काम करना है और 'योग्य' बनना है। उसको 'फल' के विषय मे कुछ सोचने तक की जरूरत नही।

भगवान् कैसे किस भाँति पुरस्कृत करेगा, यह उसी पर छोडना चाहिये। वह जानता है कि 'किसको', 'क्या' और 'कब' और 'कैसे' फल मिलना उचित है। भगवान् जहाँ मिलनेवाला हो, वहाँ कौन अभागा 'कर्मफल' की बात सोचेगा। कौन ऐसा 'पारितोषिक' है, जो आदमी 'प्रभु' के बदले मे चाहेगा।

शरणागति।

यही एक ऐसा मार्ग है, जहाँ आदमी को कुछ भी नही करना पडता, उसकी कोई जवाबदेही नही रह जाती। आदमी सिर्फ प्रभु के चरणो मे अपने को सौपकर निर्भय, निश्चिन्त हो जाता है। उसकी सारी जवाबदेही परमात्मा पर रहती है। वही परमात्मा उसकी जीवन-नैया का कर्णधार बन जाता है। उसको ज्ञान दिलवाना, सही रास्ते पर ले चलना, उसकी जरूरते पूरी करना, उसकी मान-मर्यादा रखना, इत्यादि उसको सारे भार, वह अपने ऊपर उठा लेता है। यहाँ न आदमी को ज्ञानी होना है, न (इमोशनल) भक्त, न (Matter of fact) कर्मयोगी। यहाँ 'deserve' करने (उपयुक्त, योग्य बनने) के लिये कोई अन्य प्रयास भी नही करना पडता। जब कि बाकी तीनो मार्ग—ज्ञान, भक्ति, कर्म के—पर चलनेवाले को स्वय प्रयास करना

पडता है, करने के लायक बनना पडता है। हाँ, परमकृपालु परमात्मा की मदद तो मिलती ही रहती है—अनोखे ढग से।

शरणागत परमात्मा के हाथ का खिलौना बन जाता है और परमात्मा पारसमणि का स्पर्श। God's rest is constantly disturbed for looking after every bit of the line of and moulding every bit of the life of the शरणागति। Any, anybody can be a शरणागत। No attributes at all are needed No special qualities of any kind whatsoever (cf How Krishna transformed Arjuna and saved him and looked after Arjuna's needs and mental moods and even drove his chariot)

सबकी चिन्ता करनेवाला, सतत सबका कल्याण चाहनेवाला सर्वसमर्थ परमात्मा का अगर अस्तित्व न हुआ, तब फिर किसका भरोसा किया जायगा ? १ स्वय अपना ? २ अन्य प्राणियो का ? ३ समाज या सामाजिक व्यवस्था का ? ४ राज्यसत्ता का ?

बँगला देश का उदाहरण सामने है न ? यहूदियो का मार्मिक इतिहास क्या कहता है ? तिब्बत क्या बोलता है ? शम्बूक किसके बूते जीये ?

Mathematics can be described as a statement of the form

$$p \Rightarrow q \text{ ('p' implies 'q')}$$

Or the truth of q follows from the assumed truth of p

गणित का वर्णन एक ऐसे वक्तव्य के रूप मे किया जा सकता है, जिसका प्रारूप

$$p \Rightarrow q \text{ (यदि p तब q)}$$

अर्थात् q की सत्यता p की मानी हुई सत्यता से निकलती है।

Aleph-null is less than 2 to the power Aleph-null (एलेफ-नूल) This hypothesis is for Infinite Numbers

George Cantor—Cantor's continuum hypothesis (1908) (कैण्टर की सान्तत्य मान्यता)

=The total number of Real Numbers is equal to the total number of Irrationals as if Rationals are lost (वास्तविक सख्याओ की कुल सख्या बराबर है अपरिमेय वास्तविक सख्याओ की कुल सख्या के, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि परिमेय सख्यायें नगण्य होकर गायब हो जाती है।

P=assumed truth=e g Axioms

Q=deviation from P=e g Theorems deduced

Interesting—even if P be basically false, the statement P implies Q will aways be true

Whole of mathematics is a conditional statement

"Allow me to make one error (एक गलती यदि माफ हो),

I can prove anything and everything"—Bertrand Russell

"'One' is the class of all singlets"—Bertrand Russell

"A singlet is a class consisting of only one object"—Bertrand Russell

खुले दिल से बाते कही जाये और खुली अक्लो-अकीदत से बाते सुनी-समझी जाये, तो बात बहुत कुछ बने—शायद बन ही जाय। तस्वीर भी साफ-सही उतर जाय और धूल-धुआँ भी छँट जाय। और सच पूछिये, तो दुनिया, आदमी और ईश्वर (धर्म) के त्रिकोण मे आस्था का सकट—एतमाद की कहत, मौजूदा जिन्दगी और इन्सानियत (मानवता का अहम् मरहला है, मुख्य समस्या है। इस प्रसग मे कविवर पन्त के बोध से मेरी सहमति है

'राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत् के सम्मुख,
अर्थ-साम्य भी मिटा न सकता मानव-जीवन के दुख,
आज विकट सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्डित युग-युग की मानवता को होना नवनिर्मित।'

मानवता का खण्डित होना, यानी आदमी से आदमी का दूर-दराज होता जाना, अलग-अलग होता जाना। अजाम यह कि

'कोई न किसी की सुनता है, नाहक अपना सिर धुनता है,
सब अपनी-अपनी कहते है।' (जा० व० शास्त्री)।

धर्म की आड मे, नैतिकता के परदे मे, आदर्श के आस्तीन मे तरह-तरह की वर्जनाओ, निषेधो को पाल-पोसकर, लाद-लादकर आदमी आदमी से अलग होता जाता है। बढे हुए से ज्यादा गढे हुए और मढे हुए पाप-पुण्य और इनकी परिभाषा, मान्यता, ने आदमी की आँख मे उँगली दे दी है, आक का दूध डाल दिया है। केवल निषेधो से लगे-जुडे रहने की ताबड-तोड कोशिश होती है और दूसरे पहलू छूट-छूट जाते है। जिसके बिना सत्य की सही नगी तस्वीर सामने नही आने को। यहाँ मै निषेध के स्वीकार का निषेध नही कर रहा, बल्कि यह जरूरी है, ताकि दूसरे जरूरी पहलुओ को भलीभाँति जाना जाय।

इसी अर्थ-प्रसग मे चर्चा चली उस दिन। १८-८-७२ की आधी रात (लगभग बारह बजे)। त्रिभुवन (क्लिनिक) मे। योग की क्रिया कला मे सिद्ध-प्रसिद्ध योगासनाचार्य नन्दकिशोर चौधरीजी उपस्थित थे, मोछियाये हुए भुट्टे वाले जनेर (मकई) के पेड-से। शायद योग शरीर को सहयोग से ज्यादा उन्हे वियोग दे रहा। वियोग की स्थिति का हुलिया ऐसा ही होता है। राम-वियोग मे भरत की दशा-सी या फिर पत्नी-वियोग मे रामगिरि के यक्ष-सी स्थिति। खैर, उस बारह (१२) बजे रात मे। 'या निशा सर्वभूताना तस्या .. '। इसी बीच रामाश्रयजी आ गये। अब हम हुए एक वृत्त, तीन त्रिज्या। मैने काफी मँगवाई। चौधरीजी को स्वीकारने कहा। वे हिचक रहे थे। काफी देखकर। मेरे द्वारा

चायने का निमन्त्रण पा कर वह यूँ झेंप गये, मानो सचमुच वे गुनाह किये जा रहे हो। मानो प्याली मे कोई परी पड गयी हो।

धरती छोडकर कोई जिन्दा दिल कैसे रह सकता है? किसी भी हालत मे धरती से ऊपर उठने मे एक पैर तो धरती पर रखना ही होगा, दूसरा उठा सकते है। यदि दोनो पैर उठाये, तो धडाम से धरती पर आ गिरे। फिर क्या तुक है धरती छोडने मे?

मैने कहा—आइये, कुछ पाप भी कीजिये।

योग तक पहुँचने के लिये भोग को जानना जरूरी है। प्रकाश से परिचित होने के लिये अन्धकार से साक्षात्कार आवश्यक है, स्वास्थ्य की जानकारी के लिये भी अस्वास्थ्य से गुजर चुका होना जरूरी है। पुण्य-बोध या पुण्य-सम्पादन के लिये पाप-बोध और पाप-सम्पादन आवश्यक है। नाव तट पर नही चलती। तटबन्धो के बीच चलती है। क्योकि, पाप और पुण्य की इन्ही पालतू (या फालतू) परिभाषाओ के कारण आदमी,आदमी से दूर होता जा रहा है। आदमी को आदमी के पास रहने की जरूरत है। आदमी को आदमी बनने की जरूरत है। यही लक्ष्य होना चाहिये।

परमात्मा की प्राप्ति परमात्मा के दर्शन, परमात्मा की खोज के पीछे या सिलसिले मे जो सारी प्रचेष्टा, प्रक्रिया और प्रयोग जारी है शुरू से, इन अभियानो की अनिवार्यता का मूल मर्म यही है कि मै का विलयन 'हम' मे हो जाये, 'मै' 'हम' मे रूपान्तरित हो जाय, 'मै' विकेन्द्रित हो जाय। 'मै' का वृत्त 'हम' की परिधि छू ले। 'मै' 'हम' हो जाय। 'मै' से 'हम' तक की दूरी के दरम्यान, वहाँतक पहुँचने की छटपटाहटो के प्रतिक्रियात्मक परिणाम ही आदमी की आस्तिकता का सबसे बडा प्रमाण है।

दुःख का कारण जानकर दुःख का निवारण किया जाय। पाप से परिचित होकर पाप का पर्दा उठाया जाय, पुण्य की प्रतिष्ठा की जाय। तभी असली पुण्य की जड जमेगी। असली पुण्य तभी फूलेगा-फलेगा। और, तभी व्यक्ति, समाज, विश्व और मानवता के लिये इसकी उपादेयता, उपयोगिता, उपकारकता सिद्ध होगी। मरीज और मर्ज से वाकिफ हुए बिना, उसकी सही जाँच-पडताल किये बिना प्रेस्क्रिप्सन या औषधि-प्रयोग का कोई तुक है क्या? यह मुनासिब और मुफीद भी है क्या?

'पाप' का प्रसग जब, जगत्-जीवन मे सन्दर्भ मे, दार्शनिक बोध-व्याख्या की सतह पर आ गया, तब चौधरीजी ने काफी स्वीकार की और इसी बीच रामाश्रयजी से मैने अपने वक्तव्य के औचित्य पर अभ्युक्ति जाननी चाही। मेरे ही बोध-धरातल पर मुझे सहज समर्थन देते हुए उन्होने कहा—सम्पूर्ण वास्तविकता के बोध के लिये किसी भी विषय-वस्तु के सारे-पूरे पहलुओ को जानना-समझना जरूरी है। आपने पाप करने की जो बात कही, वह 'आदमी' होने की बात है। आदमी होने की शर्त्त है आदमी होने का आधार है। पाप आदमी बनने की प्रक्रिया मे एक अवश्यम्भाविता है, एक सहज स्वीकार है। पुण्य हो, लेकिन पाप से परिचित रहना भी जरूरी है।

(मेरे विचार मे 'पाप', यानी धरती के जीवन की उच्चावचता या अनगढपन या विवशता को झेल लेना) जो हो, आदमी के लिये पाप 'वर्जना' नही बने। इस अर्थ मे मैं पाप से परहेज नही करता

'मन्दिर मे कभी जाप भी कर लेता हूँ,
ईश्वर का कभी नाम भी ले लेता हूँ,
मानव से कही देवता न बन जाऊँ,
मै इसीलिये पाप भी कर लेता हूँ।'

आदमी ही आदमी के लिए उपादेय, अभीष्ट और आवश्यक है, इस धरती पर, इस जीवन मे।

सचमुच धर्म, दर्शन और ईश्वर के नाम पर जो जाल का जजाल फैलाया गया, तिकडमो का तम्बू ताना गया, मतवादो का मैचान बनाया गया, इससे आदमी, भोले-भाले लोग, ज्यादा गलत, गलतफहम और गुमराह हुए है, होते जा रहे है। ऐसी स्थिति हो गयी कि

'हरित भूमि तृण-सकुल समुझि परहि नही पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते लुप्त होहि सदग्रन्थ ॥'

और फिर भी, तिकडमी लोगो की सरलता से नाजायज फायदा उठाने और अपना उल्लू सीधा करने से बाज नही आये। स्मरण आ रहा है, मैने एक बार स्वर्गीय आचार्य नलिनविलोचन शर्मा (नकेनवाद—प्रपद्यवाद के अग्रणी प्रसोपा) के सस्मरण-क्रम मे कहा था कि वे अपनी उपस्थिति, प्रस्तुति, व्यक्तित्व, कर्त्तृत्व या वक्तृत्व से किसी को झुलसाते नही थे। झुलसाने से मेरा तात्पर्य है चेष्टापूर्वक, योजनाबद्ध ढग से किसी के व्यक्तित्व पर अपने प्रभाव जमाकर अपने अनुकूल उसका इस्तेमाल करना, दूसरे के विचारो को, निर्णयो को अपनी वाक्चातुरी और तर्क-वितण्डा से अच्छे गहरोड कर उसके हक्काबक्कापन के कारण बाये मुँह मे अपनी बात ठूँस देना से।

तर्कोऽप्रतिष्ठ श्रुतयो विभिन्ना।
(श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना)
नैको ऋषिर्यस्य मत प्रमाणम्।
(नैको मुनिर्यस्य मत न भिन्नम्)
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम्
महाजनो येन गत स पन्था ॥

यह उद्गार उसी चेष्टा-क्रम का एक निदर्शन है। भगवान् बुद्ध शायद ऐसे ही तत्त्व-सन्धान, दर्शन-अभियान की शून्यता के सैलाब मे, विचित्रताओ, अव्यर्थताओ की बाढ से अकबकाकर, अजियाकर, औला-बौला होकर बाहर निकल भागे होगे।

सारी बात इसपर निर्भर करती है कि हम किस तरह की जिन्दगी बसर करना चाहते है, पसन्द करते है, श्रेयस्कर समझते-मानते है। उदाहरण के लिये, क्या हम अपने को इस स्थिति मे रखना पसन्द करेगे कि हम केवल दाँत निपोडा करे?

क्या हम ऐसी परिस्थिति या स्थिति मे डाल (रख) दिये जायँ, जिसमे सब चीजो के लिये हमको लालायित रहना पडे ? हमारी लालसा जगे ? लिप्सा बडे ? चाह उभरे ? और अगर अदम्य इच्छाये, बेलगाम (निरकुश) चाह, धधकती अभीप्सा (ब्लेजिग एम्बिशन) ही समाज-भर की प्रेरणा, आधार-स्तम्भ, बनी रहे, तो क्या वह हमारे लिये हितकर होगा ? और, जब यह हमारे समाज की सामान्य प्रकृति और प्रवृत्ति हो जाय, तो हमारे लिये स्वीकार्य है ? क्या हम उसे वरण करेगे ? स्वीकार करेगे ? मजूरी देगे ? ग्रहण करेगे ? ललक और लालसा मनोवैज्ञानिक स्तर पर दुर्लभ वस्तुओ के प्रति होती है। हमारी मनोवृत्ति ऐसी है कि जो जितना अलभ्य है, हम उसको पाने के लिए उतना ही व्यग्र रहते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि जिसकी चाह है, वह इतना दुर्लभ (दुष्प्राप्य) तथा असाधारण होना चाहिये कि वह कुछेक लोगो के ही बूते की बात हो (रहे)। इसका आखिर अर्थ क्या हुआ ? प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्द्धा, प्रतिद्वन्द्विता, दुश्मनी, गुटबन्दी, चालाकी, 'मार्ग साफ' करने के भयकर तरीके, कत्ल, हत्या। यह सब। करुणा नही और आपसी प्रेम नही, नि स्वार्थ सहयोग (सहकारिता) नही। और, नि स्वार्थ सहयोग (सहकारिता) सामाजिक व्यवहार का आधार होना चाहिये।

समाज का आपसी व्यवहार किस धरातल पर कैसा हो ?

हर नागरिक को उसकी आवश्यक (ता) (अनुसार) वस्तुये बिना छीना-झपटी के आसानी से (मिल जानी) चाहिये। उसकी अपनी जरूरत के मुताबिक। उसका परिश्रम (मेहनत), उसकी योग्यता। उसकी अपनी निजी इच्छाओ की पूर्त्ति। इसलिये प्रतिद्वन्द्विता के मनोवैज्ञानिक कारणो को मिटाना चाहिये। प्रत्येक आदमी को अपनी खटनी, करनी और जरूरत (आवश्यकतानुसार) के मुताबिक वस्तु और सुविधायें उपलब्ध होनी (मिलनी) चाहिये। यह तभी सम्भव होगा, जब 'त्याग' ग्राह्य होगा, जब 'अचाह' की चाह जगेगी।

Zero = 0

Anything raised to the power '0' (= zero) is = 1

$$0^\circ = 1^\circ = \propto^\circ = N^\circ = 1$$

One + One = two

एक ढेर + एक ढेर = एक ही ढेर (दो नही)। (तु० गर्भ-धारण)।

एक ढेर − एक ढेर = दो ढेर $\neq 0$ (तु० गर्भ-पात)।

Immortality = अमरता।

क्योकि, आप अनवरत परिवर्त्तन के घूर्णावत्त मे हैं और यदि आप परिवर्त्तन-रहित रह सकते है, तो आप अमरता के अधिकारी होगे। जैसे-जैसे परिवर्त्तन से अप्रभावित रहने का गुण-विकास होगा, वैसे-वैसे आप परिवर्त्तन से परे परमात्मा के निकटतर होते जायेगे।

'मस्तिष्क', 'मानस' और 'चेतना' के सम्बन्ध। मस्तिष्क शरीर-सरचना (एनाटॉमी ऑव ब्रेन) है। मानस इसकी शारीर क्रिया (फिजियोलॉजी) है। 'मानस' 'मस्तिष्क' का विशिष्ट क्रियाविज्ञान है। 'चेतना' का मतलब है जीवन्तांता और क्रियाशीलता से।

जब मस्तिष्क रोगी (बीमार) बन जाता है या नष्ट (क्षय) हो जाता है, तब उसकी क्रिया (मानसिक) की अवनति हो जाती है। वह विनष्ट या समाप्त हुआ और मानस का सर्वनाश हो जाता है। यह है 'वैज्ञानिक भौतिकवाद'।

हम नही जानते कि व्यक्तिगत 'मानस' व्यक्तिगत 'चेतना' से अथवा सार्वभौम चेतना (मानस) से कैसे सम्बद्ध है। मनस्।

सस्कार। हम नही जानते कि सस्कार की छाप (पर्त्त) किस वस्तु, अवयव या स्थान पर पडती है। वे किससे और कैसे प्रभावित होते है। और, जब शरीर का नाश हो जाता है, तब किस वाहन, साधन या माध्यम से इनका सवहन होता है।

ईश्वर की मानवता है कि जो ईश्वर से मानव की कडी जोडती है, अन्यथा यदि परमात्मा शत-प्रतिशत निर्वैयक्तिक, और महज निर्गुण तथा अनियन्त्रणीय, अविचल और अप्रभाव्य अथाह शक्ति का समूह है, तो फिर आदमी क्यो इसकी चिन्ता करे। अपरिवर्त्तनीय, निर्विकार, अनियन्त्रणीय, असचालनीय, उच्छृखल, अप्रभाविन, जिद्दी, जो न पीछे मुडना जानता हो, न हिचकता हो, न झिझकता हो, जिसकी त्रास-प्यास न बुझे, भूख न मिटे, जिसपर कोई किसी तरह का भी असर न डाल सके, जिसे प्यार रिझा न सके, हूक-चीख दहला न सके, जिसका पता न चले, थाह न लगे, जो यन्त्रणा देता रहे, सन्तप्त करता रहे, ऐसे भगवान् के पीछे इन्सान क्यो परेशान रहे, क्यो उसकी परवाह करे, क्यो उसकी पूछे और अपनी कहे, प्रयोजन ही क्या ?

शिकरा, बाज, को बाज बनने की किसने प्रेरणा दी ? न उसको सिर्फ, उपयुक्त शरीर दिया, तीखे चगुल और मुडी हुई चोच दी, वरन् शरीर के उपर्युक्त स्वभाव (मस्तिष्क) और सस्कार तथा मूलवृत्ति (इन्सटिक्ट) भी दिये। किसने उसमे हवस भर दी कि वह अपने जैसे अन्य पक्षियो को मार खाये ? किसने उसके पजो को ऐसा तेज और तीक्ष्ण बनाया कि लालमुनिया, बज्जी, कैनेरी जैसी प्यारी चिडिया को फाड-चीर कर खा-पचा जाय ? शरीर-स्वभाव। किसने उसकी चोच मे चोखापन और चाल मे निर्ममता-कठोरता भर दी ?

१ स्वभाव (मानस) माइण्ड (मस्तिष्क) और तदनुसार

२ शरीर।

प्रकृति का एक विशिष्ट सयोजन (प्रबन्ध) और इसकी सर्जनात्मक गुणवत्ता।

आज जब मै अस्पताल से लौटा, तब गाडी से उतरने के साथ ही गौर किया कि पिंजडे की अधिकतर चिडियाँ (लव-बर्ड) पूरब के तार पर टँगी बैठी है—उस समय पता नही चला क्यो, पर जिज्ञासा उठी थी। जैसे ही बरामदे पर पहुँचा कि एक बाज

उडा, जो पश्चिम की ओर दीवार से सटा कैक्टस पर बैठा था। चिडियो की मूल-प्रवृत्ति (इन्सटिंक्ट्स)।

३१-१०-७१ को श्रीमेहीदासजी महाराज से भेट हुई, तो उन्होने बुलाकर मुझसे निम्नलिखित बाते कही

१ आप जिज्ञासु हैं, इसलिये आपको कुछ न कहना मेरे लिये पाप होगा।

२. आप सब धर्मों को मानते है, सो ठीक है। सब धर्मो को मानना, आदर देना, उचित है, लेकिन पकडकर चलना तो एक ही धर्म को चाहिये। अपने लोगो के लिये सनातन वैदिक धर्म पर्याप्त है।

३ भगवान् न सगुण है, न निर्गुण।

४ पहले स्थूल का ध्यान धरना चाहिए, फिर भगवान् के किसी एक रूप का। ऐसे ध्यान धरते-धरते आपसे-आप शून्य मे एक बिन्दु-सा दृष्टिगोचर होने लगेगा। वह 'बिन्दु' प्रकाश-सा होगा (लेकिन प्रकाश या रोशनी नही), उसपर ध्यान लगते-लगते दृश्य विलीन हो जायगा, तब एक शब्द सुनने लगेंगे और ध्यान तब शब्द ही पर लगने लगेगा। जब शब्द भी विलीन हो जायेगा, तब जो रह जायगा, वही परमात्मा है।

५ आँख (दृश्य) से भी ज्यादा जरूरी (सूक्ष्म) है कान (शब्द)।

ईश्वर की सत्ता (अस्तित्व)। भगवान् का होना उतना जरूरी नही है, जितना उसको मानना, भगवान् के अस्तित्व मे, उसकी सत्ता मे आस्था, विश्वास, भगवान् है। चाहे हम यकीन करे या नही करे। और, वह अपनी सृष्टि के साथ उचित व्यवहार या बरताव करना तो जानता ही है। उसका रास्ता निर्विकार है, उसके कानून दकियानूसी तो हैं नही। हम उसे माने, या न मानें, इससे भगवान् का कुछ नही बनता-बिगडता और न उसके काम मे तिल-भर भी अडचन या खलल पडती है, न कोई फर्क होता है। जरूरी और महत्त्वपूर्ण यह है कि हमारी आस्था हो, अपना विश्वास (जमा) रहे। क्योकि, यह हमारे दिलोदिमाग मे जमी हुई आस्था और विश्वास ही वह जादू है, जो हम चला सकते है और जो हमारे निर्बल हाथो मे लकुटी है। हम खुद से (स्वय) इसी का सहारा ले सकते है, इसी पर निर्भर रह सकते है, यही मेरे लिये (अपने लिये) अल्लादीन का चिराग है, शिव-कल्पतरु है, मेरा मायाजाल है, जिसमे हम अपने से फेंककर अपने भगवान् को आसानी से अपने लिये फँसा ला सकते हैं। यही मेरा दाँव हो सकता है, मेरी चालाकी, मेरा छल-छद्म। अपना काम हम इसीसे निकाल सकते हैं। मात्र यही अपने हाथ की बात है, अपना बूता, अपनी ताकत यही तक है। इसके आगे अपना कुछ भी चलने का नही—भगवान् हुआ तब भी, न हुआ तब भी। यही वह परिस्थिति है, जो हम पर असर करती है और जिसपर हम प्रभाव डाल सकते है। अपना सम्बन्ध इसीसे, इतना-भर से ही है। बाकी सब मनुष्य के पहुँच के परे है और वह परमात्मा अपना नियत कर्म करता रहता है, प्रकृति के नियम कार्य चलते रहते हैं, हमारे बिना भी, बिना हमारी

राय पूछे, हम चाहे उससे सहमत हो या न हो, अपना सहयोग दे या न दे, उसकी भर्त्सना करे, उसपर कीचड उछाले, उसपर कतई विश्वास न करे, यह सब निरर्थक है, नि सार है। इससे कुछ भी नही होने जाने का। सृष्टि हम नही चलाते। उसका चालक हम पर कौडी-भर भी निर्भर नही है। हम अपने लिये उस जगन्नियन्ता का इस्तेमाल उसपर आशा-विश्वास रखकर ही कर सकते है। सगुण परमात्मा ही अपना, एकदम अपना, हो सकता है। जिसे हम पहचान सकते है। अगर हमने अपनी दृढ राय कायम कर रखी है कि भगवान् कतई नही, तो हम भगवान् को कभी पहचान नही सकते। अन्धे के लिये प्रकाश है क्या? पूर्वाग्रह से भी कुछ अधिक अन्धा है क्या? ऐसी अवस्था मे सृष्टि तो चलती रहेगी ही। हम भी चलते रहेगे। सिर्फ जीवन से मिठास मिट गयी होगी। अपना सम्बन्ध शाश्वतता से बिछुड गया होगा। सर्वगुण-सम्पन्न प्रेम और करुणा और आनन्द के स्रोत से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया होगा। रेशम की डोर टूट गयी होगी—जो समस्त सृष्टि के साथ, सदा सर्वदा हमको बाँधकर रखती आयी थी अनादिकाल से। तब दूध पूर्ववत् पौष्टिक भी और मीठा भी रहेगा। लेकिन 'माँ' (की गर्म गोद) न होगी, ममता को हम पहचान न पायेगे, जान न पायेगे, जान न सकेगे। भगवान् वह धरातल है, जहाँ (से) रोपा हुआ बीज अनेक बीज बनकर सामने प्रस्फुटित होता आता है। हमारे आँसू की एक गर्म बूँद सैलाब (बाढ) ला सकता है। बशर्ते वह बूँद सच्ची हो और हमारे प्राण की गहराइयो से आयी हो। भगवान् को हम ठग नही सकते। वह हमको ठीक-ठीक पहचानता है—उतना, जितना हम भी अपने को नही जानते। जैसे एक चीटी आदमी के शरीर पर घूम रही हो, उसे यह नही पता चलता है कि आदमी के अनन्त रोये, चमडी, नाखून, आँख, कान, नाक इत्यादि सभी उसी एक आदमी के ही अग-प्रत्यग है। जैसे विभिन्न देशवासी एकत्व का बोध नही कर पाते। बिना चन्द्रलोक पर से देखे पृथ्वी एक कम्पोजिट प्लैनेट (पृथ्वीग्रह का कम्पोजिटनेस) है, इसका एहसास इस धरती के लालो को कतई नही हो पाता। इसी तरह समष्टि ही ईश्वर है (तु० पुरुष-सूक्तम्।) यह सचाई (धारणामात्र नही) दिमाग मे नही धँसती। जूडे की जूँ को क्या पता कि जूडे के हर बाल उसमे गुँथे फूल इत्यादि किसके हो सकते है, उनकी खुशबू, फीते, काँटे, गहने, लटे। केश-विन्यास की कलात्मक व्यजना को तो छोड ही दीजिये। खटमल को क्या पता कि खून किसका है? ब्रह्माण्ड मे भगवान्। विस्तृत समष्टि को कैसे नापा जाय, उसके ओरछोर का एहसास कैसे हो। इतना बडा परमपुरुष और ऐसे ठिगने-बौने हम खून के प्यासे पटना के मच्छर। जूएँ और जूडे क्या दो रह जाते हैं? परम्परा (ट्रैडिसन) और आधुनिकता (मार्डनिटी)। प्रतिबद्धता—कट्टरपन्थी। कब्जियत। हमने देख लिया कि हमारे 'सुकर्म' का जामिन न समाज हो सका, न सरकार, न ससार, न कोई व्यक्ति-विशेष।

भ्रष्ट दुनिया कहती रही कि अच्छे कर्मो मे अच्छे फल लगते है, पर उसने कोई इसकी जिम्मेवारी (तो) ली नही। वह ठगती रही, अपना उल्लू सीधा करती रही।

कोई भरोसा न रहा, कोई आशा, कोई उम्मीद न रह सकी। किसको साक्षी बनाया जाय, किसका साक्ष्य दिया जाय ? मेहनत किये जा रहे हैं, कष्ट (दु ख) उठाकर भी धर्म के रास्ते पर चले जा रहे हैं, त्यागते जा रहे हैं, लुटते जा रहे है, पिटते जा रहे है, सहते जा रहे हैं, लेकिन सुकर्म साधते जा रहे हैं, धैर्य धरे चले जा रहे हैं—किस उम्मीद पर ? क्यो ? कबतक ? धैर्य की सीमा टूटेगी नही ? दिल कोसेगा नही ? मन उपहास नही करेगा ? चुस्त, चालाक, 'होशियार' लोग थूकेंगे नही ? असफलता, हार, गरीबी, पछतावा, कही यही न मिलकर रह जाये और जिन्दगी समाप्त हो जाये।

आर्किमिडीस, न्यूटन, गौस—ये तीनो महत्तम गणितज्ञ। गौस (सन् १९७१ ई०) को दार्शनिक विकासो के प्रति महान् आकर्षण था। उन्होने कहा—'गणित की समस्याओ से भी महत्तर कुछ समस्याये हैं, जिनके समाधान के लिये एक अनन्तता का आश्रय लूँगा। उदाहरण के लिये, नीति-विषयक, जीव-ईश्वर-सम्बन्ध-विषयक या हमारी नियति एव भविष्य से सम्बद्ध बातें—लेकिन इनके समाधान हमलोगो की सीमा से परे है, पूरा परे। विज्ञान की सीमा से भी बाहर।'

श्राद्ध—जीवितो के लिये जो कुछ हम न कर सके, उन विफलताओ पर पश्चात्ताप करने तथा अपनी 'भूल सुधारने' के निमित्त कुछ करने के हेतु एक प्राप्त अवसर ही श्राद्ध है। ताकि जो भी किया गया, यदि पुर्नजन्म होता है या मृत्यु के बाद जीवन का अस्तित्व है तो, उससे उनको हित-लाभ हो सके। एक वास्तविक (रियल) मृत्यु-कर (टैक्स) (डेथ-ड्यूटी), सम्पत्ति के पुनर्वितरण की विधि। चाणक्य—चतुराई। मनोवैज्ञानिक मसाला। जब खा सकता था, फुटहा न दिया, मरे को मुर्ग-मोसल्लम परोसते है ! उस दयानिधि का दरवाजा अगर जीवात्माओ के लिये खुला पडा है, तो मृतात्माओ के लिये उसमे ताला जड दिया गया ? वहाँ किसी के लिये अकाल पड गया क्या ?

'ईश्वर'=आस्था।

'ईश्वर' का ऐश्वर्य, ईश्वर का अस्तित्व ही (भी) आदमी पर निर्भर है, मनुष्य की कल्पना, मनुष्य के विश्वास, पर आधृत है।

ईश्वर इसलिये 'है' कि आदमी 'है'। अगर हम आस्थावान् हैं, तो ईश्वर है (जहाँ तक अपना सम्बन्ध है—अपना साइक्-इ, अपना मन, अन्त करण। अगर भगवान् पर विश्वास नही है, तो वह नही है। आया भी हो मन मे, तो अन्तर्धान हो जायगा। वह खो जायगा, वह अदृश्य हो जायगा। अगर आस्था, विश्वास, प्रेम से उसे न रोका गया, न ठहराया गया मन-मन्दिर मे, तो वह न होगा, न रहेगा। ईश्वर आस्था-रूप ही तो है। हम उसे जैसा, जिन गुणो से मण्डित, वेष्टित, आच्छादित मानते आये है, वह वैसा ही पाया गया है, पाया जाता रहा है। 'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।'

जिस भगवान् मे आदमी (अथवा प्रकृति) कोई (किसी तरह का भी) असर कर

या पहुँचा ही नही सकता, वह गुणातीत परमात्मा मात्र विधानो का चेतन-पुज होगा। कानून की सूखी ठठरी, एक घूरती गठरी।

अपना भगवान् अपनी आस्था के मिवाय और कुछ भी नही है।

समाधि मे जो अनुभूति होती है, वह भगवान् है, ऐसा मानते है, ऐसा विश्वास करते है, तभी न वह मेरे लिये भगवान् की अनुभूति है, वर्ना हम उमे सम्भ्रम, भ्रम, विभ्रम कुछ भी मान ले सकते है—तु० भक्तो ने भगवान् को जिस रूप मे माना उसी मे उसे पाया, वर्ना जगत् का पिता मीरा का पति कैसे बन जाता। इसी का उल्टा जो पति को परमेश्वर मानती है, उन्हे पति मे परमेश्वर मिलता है।

हमारी जैसी आस्था होगी, हमे वैसा ही भगवान् मिलेगा। आस्था व्यक्तिगत आत्मा के लिये ईश्वर से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। क्योकि, ईश्वर मे चाहे हम विश्वास करे या न करे, ईश्वर का अस्तित्व रहेगा ही। लेकिन, वह निरपेक्ष मानसिक सत्ता के रूप मे, विधानो के बण्डल की तरह, अपनी वर्त्तमान और भविष्य मे रहनेवाली और नही रहनेवाली सृष्टियो के प्रति सजग रहेगा। आस्था ही परमात्मा का अस्तित्व है, वही उसका रूप है, वही उसका गुण है। उसके (आस्था) के अतिरिक्त परमात्मा अगम्य अवर्णनीय अव्यक्त है।

जो सबका देवता है, वह अपना देवता नही है। सबका होने के नाते वह हमारे दुश्मन का भी होके रहा। वह देवो का भी था, दानवो का भी। राम का भी, रावण का भी। वह उन सारी शक्तियो का पृष्ठपोषक भी है, जो हमारे तन-मन-धन को बरबाद करती रहती है और जिनसे तग आकर, प्रताडित होकर, हम यह कहने को बाध्य हो जाते है कि 'सब दिन रहत न एक समान' और 'हम किसी तरह भी, किसी काल मे भी शरीर नही है, हम आत्मा है' और कि 'आत्मा अमर और अजन्मा है।' यह भी कि 'मै ब्रह्म हूँ' इत्यादि। 'सुख और दु ख एक ही सिक्के के दो पहलू है, जिन तानी-भरनी से जीवन बना है।'

अपना देवता आदमी की अपनी आस्था से निर्मित, सवरित और उद्‌बोधित है, उसके अपने प्रेम से आबद्ध, परिवेष्टित, घिरा, आलोडित है। आदमी के प्रेम-फॉस से बँधा है। वह अपना और अपनो का सबका नही हो सकता। जीव और परमात्मा के परस्पर आदान-प्रदान की पृष्ठभूमि, आधारशिला, स्तम्भ, मनुष्य की अपनी आस्था है। सुदामा के तण्डुल के बदले वह लोक ही दे डाले, लेकिन उसके लिये भी सुदामा को तण्डुल देना ही पडेगा। जहाँ अपनी आस्था, अपना विश्वास नही रहता, वहाँ से अपना परमात्मा भी कूच कर जाता है, अदृश्य हो जाता है, अन्तर्धान हो जाता है। अपना परमात्मा अपने दिल से सटा गर्म साँसे ले रहा है, सबका परमात्मा कही दिखायी नही पडता, वह 'अगोचर', 'तुरीय', 'नेति', 'गुणातीत' है।

फर्क इतना ही है कि परमात्मा एक होते हुए भी अनेक भक्तो के लिये अनेकानेक रूप धारण कर उनका अपना बन जाता है। ऐसी है उसकी अपार शक्ति। ऐसी व्यापक है उसकी माया। कृष्ण और गोपियो के प्रसग मे यह बात प्रत्यक्ष और

साफ हो जाती है। पाकिस्तानियो और बँगलादेश-वासियो का खुदा क्या जुदा नही ? मन्दिर, मस्जिद, गिर्जा इत्यादि मे का भगवान् क्या एक ही नही है ? लेकिन वह 'एक' भगवान् सब प्राणियो का हैं। 'अपना' केवल (खाली) कैसे हो सकता था ? लेकिन, 'अपने' भगवान् के रहते 'सबके' भगवान् का नियम-कानून चलता ही रहता है। और क्यो नही ? माँ की गोद मे पडा बच्चा भी मर जा सकता है। भक्त के शरीर को भी नाना प्रकार की व्याधियाँ ग्रसती ही हैं। 'सबके' 'भगवान' को 'सबका' देखना है, उसे 'सबका' ब्रह्माण्ड चलाना है। 'अपना' भगवान् की तरह गले लगकर रोने की उसे फुर्सत कहाँ ?

आस्था जीवात्मा-परमात्मा के आपसी सम्बन्ध को घनिष्ठ बनाती है, उजागर करती है।

(डरो नही) मै धन्वन्तरि की आत्मा हूँ। मै तेरा काया-कल्प करने आया हूँ। मै तुम्हारे शरीर और तुम्हारे अन्त करण को रोग-मुक्त करने के लिये भेजा गया (आया) हूँ। भेषज मेरा भृत्य है। जडी-बूटियाँ मेरे औजार। पुरानी कौरनिया दीठ के बदले नयी कौरनिया दृष्टि दूँगा। प्रत्यग-प्रत्यारोपण, अवयव-प्रतिरोपण। जराजीर्ण हृदय को नूतन युवा दिल से बदल दूँगा। मै तुम्हारे प्राण को तुम्हारी देह से अलग न होने देने मे तुम्हारी पर्याप्त मदद करूँगा। आओ, मेरा साथ दो।

कालातीत, कल्याण-कल्पान्तकारी मै तुम्हारा क्लेश, तुम्हारी आधि-व्याधि मिटाने आया हूँ। मै तुम्हारा सच्चा मित्र और सुहृद् हूँ। मुझे देखो, मेरी सुनो।

मै परमात्मा का एक नन्हा-सा नूर लेकर आया हूँ। इस तुम्हारे नितान्त दुर्लभ मानुष-तन को मिटने (धराशायी होने) से बचाने आया हूँ। पता नही, यह तन तुमको-हमको फिर कब मिल सके। डरो मत। मै मूर्च्छा (मूर्च्छना) देकर तुम्हे सुला दूँगा। तुम जब उठोगे, तब पाओगे कि तुम्हारा पुराना अवयव फिर से नया हो गया है। एक नया रग खुला है। बात बदल गयी है। हम वहाँ नही रहे, जहाँ थे। नयी मालती खिली है। भुरुकवा उगा है। तब्बक ओढकर अगम गिलौरी आयी है।

शरीर 'महात्मा' (साधु) नही होता। शरीर पार्थिव है। सब शरीरो की गति एक-सी है। महात्मा भी रोग और मृत्यु से अपनी काया को बचा नही सकते। सारी वसुधा पवित्र है। तन जहाँ भी गिर जाय, क्या फर्क पडता है। चिता पर जल जाना, कब्र मे कीडो का शिकार बनना, गीध-कौओ के पेट मे पच जाना, क्या अन्तर पडता है।

प्रभु-विश्वास प्रभु (प्राप्ति) के लिये (इस्तेमाल करना) है (मात्र परमात्मा की राह पर चलने के लिये ही है)। न कि ससार मे अपना काम निकालने, व्यापार बढाने या मुश्किल आसान करने के लिये। ऐसा होने (करने) से तो प्रभु-विश्वास लेन-देन के लिये टकसाली सिक्का या तिजारती माध्यम बनकर रह जायगा। प्रभु-विश्वास आध्यात्मिक उन्नति के लिये अचूक औषधि है। परवरदिगार से कुछ न माँगो। उसे दिल मे साट कर प्यार करो।

श्रीस्वामी शरणानन्दजी टहलते हुए प्रात ७-८ बजे बन्दर-बगीचा पहुँचे। दीदी देवकीजी राँची जा रही थी। एम्बैसेडर कार से। स्वामीजी स्टेपनी चाहते थे। साथ जाने के लिये। उन्होने हमसे पूछा—'प्रभु-विश्वास पर छोड देना चाहिए कि स्टेपनी पर विश्वास करना चाहिये ?' मैंने कहा—'आदमी को अपनी ओर से यथोचित कर लेना चाहिये। स्टेपनी जरूरी है। प्रभु विश्वास तो सर्वोपरि है ही।' प्रभु-विश्वास—एक सलोना साथी. प्यारी लकुटी, कभी न टूटनेवाली, कभी न साथ छोडनेवाली, कभी न धोखा देनेवाली, कभी न चूकनेवाली, कभी न नाकामयाब होनेवाली। उसपर अपने को वार देना चाहिये। बस !

प्रभु-विश्वास प्यारे प्रभु को पाने के लिये आधार-स्तम्भ, सम्बल है। उसका सासारिक उपभोगो के लिये अपनी ओर से इस्तेमाल करना उचित नही है। ऐसे प्रभु-विश्वासी को प्रभु-विश्वास के भरोसे आलसी बनना, कर्त्तव्य न करना, यथोचित से मुँह मोडकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना, इसे अपने ऐहलौकिक फायदे के लिये भँजाना ठीक नही जँचता। अनायास जो भी उपलब्ध हो, वह परमात्मा की ओर से आया हुआ—अपना माँगा हुआ नही—मानना चाहिये। प्रभु सर्वसमर्थ है। वह ब्रह्मा है तो यमराज भी है, विष्णु है, तो महेश भी है। मनुष्य का आत्मा परमात्मा का एक अत्यन्त छोटा-सा नूर है। उसीका नन्हा-सा स्फुलिंग, अश, टुकडा-सा। जैसे समुद्र मे जो गुण है, समुद्र के एक बूँद जल मे भी वैसा ही गुण है। उसी तरह आदमी मे भी परमात्मा के गुण मौजूद है। स्वतन्त्रता तो है ही, अब चाहे जिस तरह के गुण विकसित किये जायँ। आदमी प्यार भी कर सकता है, घृणा भी, मार भी सकता है, बचा भी सकता है, डर भी सकता है, डरा भी सकता है। भयभीत और निर्भय भी हो सकता है। रैग्स टू रिचेज तक बढ भी सकता है। हाँ, उसकी शक्ति फिर भी सीमित है। आखिर एक बूँद ही तो ठहरा। जीभ भिगो सकता है, प्यास न बुझा पाये। 'प्रभु-विश्वास' प्रभु के पावन पाद-कमलो (चरणो) मे पूजार्पण के लिए व्यवहृत हो, न कि ससार को आपदारहित बनाने और जीवन की राह पर से काँटे हटवाने के लिये। उसका सौदा न किया जाय। भगवान् अपनी ओर से चाहे जो करे। आदमी 'प्रभु-विश्वास' को पूजा समझे और सँजोकर रखे।

प्रभु-विश्वास प्रभु-प्राप्ति के लिये हो। जीवन को निरापद, निष्कण्टक बनाने के लिये यह एक 'तरीका' की तरह व्यवहृत न हो, इस्तेमाल न किया जाय। यह प्यार का पुष्प है, जो प्रभु के चरणो मे अर्पण किया जाय। रास्ता बुहारने के लिये यह झाड़ू-सा न मान लिया (समझा) जाय। उसका अनुचित उपयोग न हो।

रिलिजन इज ए भेरी ऑर हाइली पर्सनल कम्युनिअन बिट्वीन मैन ऐण्ड हिज मेकर, नौ थर्ड पार्टी नीड बट इन और गेट इनभौल्भ्ड। इट इज एन एबसॉल्युटली पर्सनल मैटर, नो इण्टरमेडिएरी इज नैसेसरी।'

प्रभु विश्वास को किसी लाभ की इच्छा से नही हृदयगम करना चाहिये। किसी क्लेश या भय से या हानि से त्राण या छुटकारा पाने का साधन नही बनाना

चाहिये। प्रभु-विश्वास मात्र प्रभु-प्राप्ति के लिये सोपान बने। प्रभु-विश्वासी प्रभु से कुछ भी नही चाहता। वह भवभयभजक तो है ही। सौदा करना या माँगना ठीक नही। याचक से 'याचना' बेतरह लिपट जाती है।

जीते जी मर जाय अमर हो जावे।
दिल देवे सो दिलवर को पावे ॥

भक्तो ने भगवान् को बडे 'कष्ट' दिये हैं। इन्होने कहा, देखो मे तुम पर विश्वास करता हूँ, इसके बदले तुम मेरा भरण-पोषण करो, हमारी जरूरतें पूरी करो, कष्ट से निवारण करो, यम-पाश से बचाओ। और हाँ, हम स्वय कुछ नही करते, सब तुम्हे ही करना होगा मेरे लिये। सूफी सन्तो के उदात्त विचार—'हम अपने लिये प्यारे को कोई भी दुख नही देंगे, प्यार का बदला नही चाहेंगे, न माँगेगे।'

भवभयभजन। दुख मिटाने का रास्ता। रोग-निवारण का नुस्खा। हाय रे प्रेम! हे खुदा! राम-राम! भूखा भटकता भिखमगा भगवान् को भूल जाता है।

प्रभु अगर मूर्त्ति मे नही है, तो 'अवतार' मे कैसे है? बुत मे नही है, तो ब्रह्माण्ड मे कैसे है?

प्रेम और सेवा किसी लाभ की आशा या कुछ बदले मे पाने की भावना से नही करते। प्रेम का मूल्य आँकना क्या! प्राणो के न्योछावर की कीमत माँगना क्या? जब हम अपना सब कुछ अर्पण कर रहे है, तब उसका सौदा क्या करना? किस दाम पर बिकेंगे आप? रोग-मुक्ति का क्या मूल्य देगे?

द्वैत-अद्वैत परमात्मा जीवन्त या जिन्दा चीज है, ऐसा नही कहा जा सकता।

परमात्मा 'जीवन' का स्रोत या उद्गम या उद्भव-स्थिति (?) हो सकता है। परमात्मा मे 'जीवन' है, या परमात्मा से प्राण निसृत या उदित या प्रस्फुटित होता है, या परमात्मा से 'जीवन' उगता या जनमता या अकुरित होता है। परमात्मा सदा है। उसका अन्त नही होता। जीव भी है, किन्तु वह क्षणिक है, मरने, मिट-(जा)ने वाला है। प्राणी आकाश मे कौधती बिजली की तरह क्षणभगुर है। परमात्मा का प्रकाश शाश्वत है, उसकी कौध अक्षुण्ण है, उस जीवनी-शक्ति का अस्तित्व अमिट है, वह अमर है, मृत्यु के परे है।

जो जीवित है, वह जीव कहा जाता है। जब जीवनी-शक्ति पार्थिव शरीर के साथ सम्पर्क स्थापित कर उसे प्रचालित-प्रभावित करती है, उसमे स्पन्दन पैदा करती है, तब उस 'जीवनी-शक्ति', उस 'प्राण' का आदमी को ज्ञान होता है, पहचान और एहसास, होता है। जबतक ऐसा नही होता, प्राण (जीवनी-शक्ति) पहचान मे नही आता। (तु० रेडियो-तरग और रेडियो)। आस्थावान् काल से भी नही डरता। आत्मा अमर है और प्रभु जो कुछ भी करेंगे, हमारी भलाई के लिये करेंगे और उसे सहने की शक्ति देगे। और प्रलयकाल मे भी उनका सहारा बना रहेगा, उनका साथ नही छूटेगा। हम कभी अकेला, असहाय, न होगे। (शरशय्या पर पडे भीष्म

पितामह का कष्ट हर लेने के पश्चात् वह कृष्ण की आज्ञा का पालन कर अर्जुन को प्रवचन दे सके)।

जब अपने को प्रभु के चरणो पर चढा ही दिया, परमात्मा को सौप ही दिया, जगन्माता की गोद मे बैठ गये, तो फिर चाह कैसी ? तब फिर भय कैसा ? फिर, द्विविधा क्यो (क्या)। आस्था किसी दुर्दान्त, अजेय बहादुर के लिये है। एक कवच, एक जिरह-बख्तर। डरपोक और बुजदिल लोग उसे अपनी लोर पोछने के लिये तौलिया या रेशमी रूमाल न बनावे, तो अच्छा हो।

चाह गयी चिन्ता मिटी मनुआँ बे-परवाह।
जिसको कुछ न चाहिये वो (वह) है शाहशाह॥

भगवान् के बिना हुक्म के एक पत्ता भी नही हिलता। भगवान् का यही स्थायी हुक्म है कि सृष्टि के नियम-कानून तामील हो और वे अपनी पूरी ताकत और बाध्यता के साथ लागू होते रहे है—सर्वदा, सर्वत्र। यही सत्य है, शाश्वत। कर्मफल, पुनर्जन्म, आस्था-विश्वास, निर्माण, आविर्भाव, लय, विलयन, जन्म, मृत्यु इत्यादि कुछ भी परमात्मा की आज्ञा के बिना नही घटते, नही प्रतिपादित होते, महज इसलिये कि ये सब अपने-अपने भगवत्प्रदत्त, प्रकृति-निर्गत, कानून मे बद्ध है, शिकजे मे शिकस्त है। उसी कानून की एक धारा शायद यह भी (कहती) है कि जब कोई अपराधी पश्चात्ताप की ज्वाला मे तपकर या ज्ञान की अग्नि मे जलकर, घुलकर, सचमुच बदल जाता है, तब उस निष्पाप व्यक्तित्व को भगवान् क्षमा करा देता है। और, उसी कानून की एक और धारा शायद यह भी (कहती) है कि सच्चे, निश्छली, तीव्र भाव से जो प्रभु को प्यार करता है या उसे पुकारता है, उसको प्रभु प्राप्त हो जाता है। पूर्ण अपूर्ण के द्वारा अपनी पूर्णता मे प्राप्त नही हो पाता, पूर्ण की आशिक प्राप्ति-भर अपूर्ण के लिये सम्भव होता है। इसका मतलब यह नही कि ईश्वर हर पत्ते को हर बार हिलने के लिये एक नया आदेश देने के लिये खडा है या हर आदमी की हर हरकत के लिये हर बार हुक्मनामा जारी करता है।

समस्त सृष्टि आदमी के (उपयोग) के लिये बनायी गयी है, यह बकवास है, निराधार है, छोटा मुँह बडी बात जैसा है यह कहना। सृष्टि सृष्टि के लिये बनायी गयी है। पेड-पौधे, पशु-पक्षी आदमी भी, सबकी अपनी उपयोगिता है। सब एक-दूसरे पर निर्भर है। ब्रह्माण्ड ही एक कम्पोजिट होल है। पृथ्वी के लिये सूर्य का रहना अनिवार्य है। पृथ्वी के साथ इन ग्रह-नक्षत्रो की दुनिया बडे पैमाने पर हैमलेट जैसा ही तो है न ? कालकूट को पीकर पचा लेना। अग्नि, नाश, प्रलय समदर्शी है, सबको उपलब्ध है। उनको किसी की भी सेवा से इनकार नही। वे किसी के भी काम आ सकते हैं और उससे मुँह नही मोडते। अग्नि को विवेक नही। जो कुछ उसके सम्पर्क मे आयगा, जलकर रहेगा। मृत्यु भी प्राणी-प्राणी मे भेद-विभेद नही करती। वह सबकी गति है। एक-सी। मृत्यु का अन्तिम क्षण सबके लिए एकदम बराबर है।

उसके वसूल, कायदे-कानून मे कोई अवरोध, कोई असगति नही है। वह निरपेक्ष है, प्रकृति उसकी अवज्ञा नही कर सकती, उसमे हेर-फेर नही कर सकती। सृष्टि उनसे कतरा नही सकती। किसी काल मे, किसी स्थान मे, किसी अवस्था मे भी, किसी के लिये भी, वे न बदलते हैं, न कमजोर पडते है। वे सबके सचालक है, हर घडी मे, हर परिस्थिति मे।

जीवन खट-मिट्ठी है किसी एक के लिये, तो खट-तुरुस (तुर्श) है किसी दूसरे के लिये। सुख-दु ख की तानी-भरनी से बुनी है जीवन की चादर, जिसे हर प्राणी ओढकर अपनी ऐहलौकिक यात्रा पूरी करता है। चाहे वह गुणातीत होकर रहे, चाहे अपने बचाव की पूरी-पूरी व्यवस्था कर पाये, तो करे। बचाव अपने हाथ मे एक कमजोर ढाल है, दूसरे की तलवार कितनी मजबूत पडती है, यह भी तो (देखना है) एक इम्पौर्टेण्ट फैक्टर है। प्रकृति को किसी से कोई गिला नही। सबके लिए वह एक-सी करुणामयी, उपयोगी है। सबके भरण-पोषण की व्यवस्था उसने कर रखी है। सारी सृष्टि मे अनेक प्रकार के जीव है। विवेक-सम्पन्न आदमी भी आपस मे कितने भिन्न होते है। आदमी की स्वतन्त्रता भी है, अपनी निजी। उसकी जरूरते भी है। उसको बुद्धि भी प्राप्त है। शक्ति भी।

व्यक्तिगत, सामाजिक या सामूहिक रूप से वह अपने लिये व्यवस्था भी कर सकता है। अगर अपने बनाये रास्ते उसे गैरत मे ले जायँ, तो उसके लिये भी भगवान् को ही कोसा जाय ? भगवान् हस्तक्षेप करे हर बात पर ? समष्टि की दृष्टि मे एक जीव आखिर कितना वजन रखता है।

अपनी स्वतन्त्रता, अपनी चाह, अपना मन लादकर चलनेवाला व्यक्ति अपने को सँभाले, अपनी सुरक्षा करे, क्योकि आपसी स्वतन्त्रता दुश्मनी पैदा कर सकती है। कालान्तर मे इच्छित परिस्थिति क्या जलवे दिखलायगी, चाह कहाँ ले जायगी, किस तरह के पुष्प पुष्पित होगे, फूलेगे, उसमे, कैसे फल लगेंगे, यह कौन जाने। मन कितना विष घोल सकता है, कैसी विषमता पैदा कर सकता है, यह कौन कहे ?

लेकिन, जो अपनी स्वतन्त्रता अपनी चाह और अपना मन प्रभु के चरणो मे अर्पित कर पूर्णरूपेण निर्द्वन्द्व, अचाह, निश्चिन्त बन गया, उसीका योग-क्षेम प्रभु वहन करता है। और, वाजिब भी यही है। अपनी ढाल-तलवार रखियेगा अपने ही पास, अपने ही हाथो मे, तो बचायगा कौन ? आपके उछृखल मन की जवाबदेही कौन लेगा ? कौन भार उठायगा आपकी इच्छाओ का ? वेदना से विकल्प और विवेक जन्म लेते है।

जो दिल मे है, वह दूर नही। जो दूर नही, उसके लिये कौन-सी राह खोजते हो ?

परिस्थितियाँ सदा पूर्णत 'अनुकूल' रहे, तो क्या आपका व्यक्तित्व उभर सकेगा ? सदा रूई के फाहे पर आराम करते रहना चाहियेगा ? हर व्यक्ति को सारी सुख'-

'सुविधा' प्रचुर रूप से सदा-सर्वदा मिलती रहे, हर प्राणी के पास वह सब कुछ हो, जो आपके पास है, तो क्या वह परिस्थिति आपको पसन्द होगी ? आप क्या सचमुच सघर्ष नही चाहते ?

अपराध न कभी पूर्णत मिटता है, न उसका सर्वांश मे बराबरी का प्रतिकार ही सम्भव है, क्योकि किसी के द्वारा किसी के प्रति किये गये अपराध की अनेक शाखाये-प्रशाखाये होती है। यह सब सृष्टि मे विकृतियाँ उत्पन्न करती है। भूत से जब सासारिक (प्राकृतिक) व्यवस्था ऐसी भर जाती है कि भविष्य के लिये जगह नही छोडती, तो प्रलय होता है, फॉसिल्स से लबालब दुनिया मिटा दी जाती है। कालकूट (जहर) पी जाने के लिये शिव के व्यक्तित्व का उद्भव होता है। 'कालकूट जर जरत सुरासुर जगहित पिन्ही विष प्याला, मोरी रख ले लाज बैलवाला' (तारा बाबू)। ताण्डव की महारात्रि मे सब कुछ नष्ट कर नये स्लेट पर नव-निर्माण के प्रहर मे नई सृष्टि का प्रारम्भ होता है।

जिन्दगी के केन्द्र और उसके हासिये (मार्जिन) या परिधि पर होनेवाली बाते समान महत्त्व नही रखती।

जैसे आईने के पीछे की रिफ्लेक्टिग पॉलिश या रिफ्लेटिग सरफेस के जगह-ब-जगह नुचा, झर जाने पर चेहरा खण्डित और विकृत हो जाता है और पहचान मे आने लायक नही रह जाता है, वैसे ही हमारा अन्त करण (लाइफ सरफेस) जबतक शुद्ध और विमल नही होता, तबतक प्रभु की आकृति (जो 'मै' के अस्तित्व का आधार है) न ठीक से दिखाई पडती है, न पहचान मे आती है।

आदमी के अस्तित्व मे एक सुपर कन्ससनेस है, जो 'मै' को भी जानता है, इसलिये अन्तर्यामी है। सर्वज्ञ है, क्योकि मै (हम) जो कुछ भी जानते है, वह सब कुछ सुपर-कन्ससनेस जानता है। वह तटस्थ होकर, निर्विकार भाव से, तीनो गुणो से अछूता रहकर, मै और मेरी हरकतो को देखता भी, जानता भी, है।

सार्वभौम चेतना।

Cosmic mind = Collection of the 'Supreme consciousness' = Sum of all individual minds + the total (समग्र) knowledge (ज्ञान) of all past (भूत), present (वर्त्तमान) and future (भविष्य) + Complete knowledge of Itself and of Creation and of Totality = सर्वज्ञ।

Mind (मानस) creates (सर्जन करता है) or thinks in pictures (बिम्ब) rather than in linguistics (भाषिकी) and these word-pictures (शब्द-चित्र) or thought-pictures (विचार-बिम्ब) are same and similar in all minds and hence easily communicable (सम्प्रेष्य) to all beings irrespective of their mother tongue (मातृभाषा) (cf Language of gestures) (सकेतो, भाव-भावो, इशारो की भाषा)।

जानिब—तरफ और, पक्ष। जानिबदार। पक्षपाती परमात्मा। विटनेस। भरोसा। जामिन के बिना कौन अपना विटनेस ('मै' के अन्त करण का) होगा। कौन जामिन होगा हमारा, जब हम मृत्यु के नजदीक निर्वाक्, निश्चेष्ट, निस्पृह, पडे होगे ?

मेरा सत्य से साक्षात्कार, मृत्यु के मुख से लौटना।

(१) वीरसिंहपुर की गण्डक नदी मे डूबना, (२) डॉक्टर खैर को देखने गया। जाते समय हवाई जहाज का अन्धड-पानी-बिजली-घटा मे पडकर गिर जाने की पूरी सम्भावना। मशीन-पुरजो का काम न कर पाना। (३) मेघाच्छन्न अँधेरी अध-रात्रि मे अनजान आदमी के साथ, हाथी पर अकेले तेरह मील भयकर महामारी से आक्रान्त कही एक अजनबी गाँव मे किसी बीमार मरणासन्न डाकू को देखने जाना। और . ।

ऐसा मालूम पडता है कि जीवन और मृत्यु के बीच बेहोशी की दशा अनिवार्य है। मृत्यु के दरवाजे (द्वार) तक आदमी होश मे रह सकता है। लेकिन, चौखट पार करते समय, ठीक वक्त पर, वह बेहोश हो जाता है। और, उसी बेहोशी के क्षण मे जीवन मृत्यु मे बदल जाता है, या यो कहिये कि ऐहलौकिक जिन्दगी की देहली को पारकर पारलौकिक जीवन का प्रारम्भ हो जाता है। मरजेज ऑर गिम्स वे टू ऑर गेट्स ट्रान्सफौर्म्ड इनटू।

आत्मा शरीर के कण-कण मे (कोने-कोने मे) व्याप्त है। लेकिन केश, नाखून का मृत भाग, सॉप का केचुल तथा दॉत का बाहरी हिस्सा (डेनटीन) इत्यादि मे तो वह 'प्राणवान्' जीवात्मा दीखता नही। परमात्मा (सर्वव्यापी) वहाँ उनमे भी है।

परमात्मा न सगुण है, न निर्गुण, न साकार, न निराकार है। आदमी की कल्पना इन्ही दोनो एक्सट्रीम्स तक सोच सकती है। इसीलिये, इसके आगे नही जा सकती। सामर्थ्य के बाहर। दो एक्सट्रीम्स नजदीक भी है (जैसे, नाग का हिन्दू-कान्सेप्सन कि वह अपनी पूँछ को मुँह मे डाले कुण्डलित बैठा है) और आपस मे दूर भी। भगवान् कैसा है, कौन जान सकता है! वह शायद ऐसा निराकार है, जो स्थायित्वपूर्वक (परपीचुअली) साकार मे बदलता जा रहा है (सृष्टि) और वह ऐसा साकार है, जो सतत निराकार मे विलीन होता जा रहा है (लय)=in constant flux (प्रवाह) and motion (वेग) Man finds it impossible to recognize (जानना) Him as He is nothing of the mind (kind) he ever knew, knows or would know or could conceive cf Electricity (विद्युत्) and its manifestations (प्रकटीकरण) and its laws

कुछ भी हो वह extremely (अत्यन्त) conscious (चेतन) and intelligent (बुद्धिमान्) है—Consciousness and Intelligence personified (मानवीकृत), or the ocean (समुद्र) of, or the creator (स्रष्टा) of Consciousness and Intelligence, cf Nature and its laws (विधान), cf animal behaviours

(व्यवहार) at mating, natural methods of seed distribution (बीज-वितरण)। All that we have learnt is from nature

God is a creation of man's conception (धारणा) and logic (तर्क)। आदमी ने जिन गुणो को महत्तम समझा, उन्हे भगवान् पर आरोपित किया है। God is as He is भगवान् जैसा है, वैसा है, बस अपने ही जैसा। लेकिन, आदमी का खुदा आदमी ने स्वय निर्माण किया है।

तु० दि मिलियन्स ऑव हिन्दू गॉड्स (देवता) ऐण्ड भैरियस काइण्ड्स ऑव मूर्त्तियाँ। और शायद सच यह है कि भगवान् वह है, वह सब है, या उसमे से कुछ भी नही है। भैरियस कानसेण्ट्रेसन (स) ऑव गौड। ऐण्ड स्टिल देअर एग्जिस्ट्स ए सर्टेन कॉमन कान्सेप्ट्स ऑन गॉड इन ऑल दि रिलिजन्स। मनुष्य ने जिन गुणो को जाना है, उसके अतियो को भगवान् मे माना है। मनुष्य अपने लिये जैसा चाहता आया है, भगवान् मे उन सबका समावेश किया है। तु० एक्सटर्नल एग्जिस्टेन्स।

समस्त प्राणवन्तो मे एक 'सेल्फ' और 'आई-फिलीग' ही ऐसा है, जो चेजलेस ऐण्ड अन्तर्यामी है, जो बियोण्ड माया और त्रिगुणो के परे है। यही 'एकोऽहम् बहु स्याम्' का रूप है। सर्वव्यापी का एक ऐसपेक्ट, आइडेण्टिटी ऑव यूनिटी एमग वेराइटी ऐण्ड डाइवर्सिटी है। यही सब कुछ जानता है ऐज फार ऐज दि इनडिविजुअल्स आर कनसर्न्ड—दि सम टोटल ऑव ह्विच—सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी, शाश्वत—दि गॉड-हेड इज।

यह कैसे घटित हो सकता है कि,—

ऊँ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

पार्थिव जीवन से कुछ घटिया उदाहरण

१ प्रिगनेण्ट लेडी विथ वन, ट्विन (जुडवाँ), क्विनट्युपलेट्स, वन चाइल्ड ऑर मेनी। होल मदर ऐण्ड दि होल चाइल्ड रिमेन दि सेम ह्वेन दि फीटस (भ्रूण) इज इनसाइड दि वूम्ब (गर्भाशय) और आफ्टर इट्स बर्थ।

२ डिजोल्भ सूगर ऑर साल्ट इन वाटर सैचुरेट ऐण्ड देन टेक इट आउट बाइ क्रिस्टलाइजेशन (रवाकरण)।

३ वाटर कनडेनसिंग (घनता) इनटू आइस पार्टली, ऐण्ड देन रिडिजॉल्भिग।

४ थॉट्स क्रीएटेड ऐण्ड डिजॉल्म्ड, इन ब्रेन।

५ स्पौज सकिंग वाटर—एम्पटी स्पेसेज गेट फील्ड।

परमात्मा को पुकारना एक बहुत ही सूक्ष्म प्रक्रिया है। यह शायद कोशिश करने से नही होता। यह हूक किसी अन्तरतम से, अन्त करण की किसी अनजान गहराई से, उद्वेलित होती है, उसके उद्गम-स्रोत का पता नही होता। जब सोता चेतन

मन पर दिखायी पडने लगता है, तभी अपने को उसका पता चलता है। अन्तर्मन मे एक जरूरत, एक निरीहता, एक अकेलापन, एक निस्सहायता, एक अभाव का आभास, एक अटूट श्रद्धा, एक अदम्य विश्वास, एक निश्छल निर्मलता, एक प्रबुद्ध या अन्धा प्यार, एक हकीकत का एहसास इत्यादि कोमलतम सच्चे धागो मे निर्मित होता है वह आकर्षण, जो परमात्मा को बाजुओ मे बाँध लाता है और जिस बाध्यता के पीछे सर्वसमर्थ परमात्मा भी 'हक्का-बक्का', 'भूखा-प्यासा' दौडा चला आता है। भक्त-वत्सल भगवान् प्यार को पहचानता है, अन्तर्यामी जो है।

समदर्शी।

१ आग का धर्म है जलाना—उसके पास उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे, की पहचान नही है। उसे विवेक नही दिया। आग के इस धर्म का कोई भी किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति मे इस्तेमाल कर सकता है। एलान कर दिया गया। जगद्विदित हो गया कि आग जला देगी। अब अगर कोई साधु-महात्मा उसमे कूद पडे, तो उनकी खातिर आग ठण्डी पड जायगी क्या? अगर कोई चोर डाकू आग जलाकर तापे, तो क्या सर्दियो मे उसे गर्मी नही मिलेगी? अगर कोई आततायी उसी अग्नि से किसी भले आदमी का घर जलाये या अपनी पेट-पूजा के लिये भोजन बनाये, तो क्या आग उसके काम नही आयगी?

२ बीज चाहे विषवृक्ष का हो या सुमधुर मीठे फल का या अन्न के पौधे का, अथवा चन्दन के पेड, दारु का, चाहे काँटो की झाडी का, सुगन्धित फूलो का, नही तो कैक्टस (नागफणी) का। उससे जल को या मिट्टी को क्या फर्क पडता? कोई भी बीज जल और मिट्टी से सम्पर्क स्थापित कर पेड बन सकता है, पुष्पित, पल्लवित और फलित हो सकता है। जल-मिट्टी का अपना धर्म स्थायी है और सबके लिये उपलब्ध है। पानी सबकी प्यास बुझायगा। मिट्टी सबके लिये कब्र बन सकती है।

३ हवा अग्नि को प्रज्वलित भी करती है, बुझाती भी है।

४ सिपाही को हुक्म दे दिया गया कि इस रास्ते जो कोई भी आये, उसे मार दो, गोली दाग दो। डुगडुगी से, लाउड-स्पीकर पर, सभी को सूचित कर दिया गया। सिपाही मारेगा ही, अब चाहे उसका दुश्मन उधर से निकले या मित्र। चाहे उसका बाप ही क्यो न भटका आया हो।

५ डॉक्टर सबका इलाज करता है या नही? दवा सब पर असर नही करती?

समदर्शी-प्रदत्त सभी नियामते समदर्शी है। भगवान् को हम उतना ही (आंशिक) जान पाते है, पकड पाते हैं, अनुभव कर पाते है, जितनी (क) हमारे मस्तिष्क की क्षमता होती है, (ख) हमको जरूरत होती है, (ग) हमारी इच्छा होती है, (घ) हमारी श्रद्धा, हमारा विश्वास, हमारा प्रेम होता है। ऑब्जेक्टिव ऐण्ड सब्जेक्टिव।

इसलिये, हम जितना उसके लिये तडपते है, उतना ही वह अपने को हमारे लिये प्रकट (व्यक्त) बना देता है। ट्यूनिंग ऐण्ड भौल्युम कण्ट्रोल ऑन रेडियोज।

हम जितना उसकी आवश्यकता महसूस करते है, उतना ही भर वह प्रत्यक्ष होता है। हम जिननी उसकी अवहेलना करते है उतना वह दूर हो जाता है। जब सच्चे दिल से हम उसकी कोई जरूरत (आवश्यकता) नही आँकते (मानते), तब वह हमारी दृष्टि से सचमुच ओझल हो जाता है। जगन्नियन्ता की व्यवस्था ऐसी ही है कि जितना सच्चे दिल से, जितनी मन की तनहाई और गहराई मे, जितनी बेकली से, जितना प्रेम, निश्छलता, श्रद्धा और विश्वास के साथ जिसने उसे पुकारा और अपने जीवन मे उतारने और पाने की कोशिश की, उतनी दूरी और हद तक प्रभु खाली पॉव दौडा आया। जब कोई प्रभु के बिना न रह सका, तब प्रभु भी उसके बिना न रह सका। 'मोहे कपट छल छिद्र न भावा।'

मै—व्यक्तिगत आत्मा (=जीवात्मा) (+अन्त करण)।

हम=इनडिभिजुअल एज पार्ट ऑव मैनकाइण्ड (मानवता) और क्रिएशन (सृष्टि) और समष्टि (=आत्मा) (+विवेक)।

'मै' और 'हम' का विभेद।

गाना और रेडियो मशीन एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। रेडियो का जन्म। रेडियो का अन्त। गाना (आवाज) शाश्वत, सर्वत्र। रेडियो के पार्ट्स जब जमा किये जाते है, तब गाने सुनायी पडते है। रेडियो तोड-फोड देने पर गाने नही सुने (सुनाई पडते) जाते। गाना था ही। जीवात्मा (परमात्मा) तथा शरीर का वैसा ही कुछ सम्बन्ध होगा। भ्रूण का जन्म, देह की मृत्यु। इस पोस्टुलेट मे क्या दिक्कत है? ऐसा भी हो सकता है कि परमात्मा सर्वज्ञानी, सर्वव्यापी हो। जीवात्मा। त्रिगुणो से आच्छादित, नियन्त्रित, ज्ञानी हो। सस्कार उससे चिपटे हो। आदमी की इच्छा, मनोबल, ऐसी प्रेरणा-शक्ति हो, जो सर्वव्यापी सर्वज्ञ परमात्मा (परमात्मा-शक्ति) तक पहुँच जाती हो और उस पेण्डोरा बाक्स से, कल्पद्रुम (तरु) से मनोवाछित फल ले आने मे सशक्त हो, चाहे वह परमात्मा की दया या करुणा या प्रेम के रूप मे हो, या ऐहलौकिक सुविधाएँ या पारलौकिक अनुभवो के रूप मे हो। एक ऐसा मैंकेनिज्म नितान्त सम्भव है, जिससे कि सस्कार (मानस-पृष्ठ पर पडे सस्कार) धुलकर स्वच्छ बनाये जा सके। ऐसा सम्भव है कि सृष्टि मे सुधार हो रहे हो। ऐसा सम्भव है कि मरते दम तक आदमी दुनिया से नाता काटकर पूर्णरूपेण अचाह हो गया हो। उसके दिल (अन्त करण) मे दुनिया की कोई लालसा तिलमात्र (रचमात्र) भी नही बच गयी हो। ऐसा जीवात्मा जीवन-मृत्यु से मुक्त होकर उन्नति के लिये अग्रसर हो पारलौकिक स्तर पर। और, अगर उसकी कोई इच्छा भी बची-खुची मृत्युशय्या तक उसके अन्त करण को पकडे-जकडे हो, तो वह अशुद्ध (रजित) अन्त करण उस जीवात्मा के लिये पुनर्जन्म का कारण बन जाय। कहा गया है कि मृत्यु के समय (विचार से) जब शरीर नष्ट हो जाता है और आत्मा बच जाती है, तब शरीर और आत्मा दोनो दो तरह की वस्तुये हुई, समानधर्मा नही हुई, और अगर यह बात ठीक है, तो

जन्म के समय भी शरीर और आत्मा का वैसा ही सम्बन्ध रहा होगा, रहना ही चाहिये था। इसलिये, जन्म और मृत्यु शरीर के धर्म है, जन्म लेता है शरीर, मरता है शरीर। आत्मा का इससे क्या लेना-देना ?

यह भी कहा गया कि कर्मफल, पुनर्जन्म, जीवात्मा का मरणोपरान्त जिन्दा रह पाना, ये सारी बाते बकवास हैं। कि आत्मा अजर, अमर, शाश्वत और सर्वत्र और एक है। यह बात परमात्मा के विषय मे कहना ठीक होगा। इवोल्युसन की बात भी करे, तो आत्मा, परमात्मा से दीगर 'चीज' (शक्ति) है, 'ऊर्जा' है। इसमे क्या हर्ज है ? सुख भोगने के लिये या सजा पाने के लिये या मन कामना-पूर्त्ति के लिये।

लेकिन, ऐसा भी सम्भव है कि जैसे किडनी, हृदय, लीवर इत्यादि ऑरगेन्स अपने वेरी कम्प्लिकेटेड काम को करते है, वैसे ही ब्रेन भी अपने कम्प्लिकेटेड हाइली स्पेशलाइज्ड काम (मानसिक प्रक्रियाओ) को करता हो और शरीर-सरचना के नष्ट हो जाने पर उसकी शरीर-क्रिया (अन्त'करण) भी पूर्णत विनष्ट हो जाता हो और सस्कार पर आधृत पुनर्जन्म महज एक सन्तोष देने के लिये खिलौना हो। जिसे पूर्वजो ने ऐसे समाज के सामने रखा हो, जो विकास मे बच्चा जैसा हो और जो अब प्रौढ होकर उस खिलौना को छोड सकता हो। फिर भी, परमात्मा का जीवात्मा से इतना इनडिफरेण्ट रहना, कि परलोक इहलोक से ऐसा अनकनेक्टेड रहेगा, यह समझ मे नही आता, विश्वास नही होता, जबकि सारा ब्रह्माण्ड एक-दूसरे पर आधृत है। तु० थियोरी ऑव सिनक्रोनी, एस्ट्रोलॉजी ऐण्ड एस्ट्रोनॉमी।

अव्यक्त-व्यक्तरूप परमात्मा। सृष्टि के जीवो का आपसी सम्बन्ध और एक-दूसरे पर निर्भरता। निराकार-साकार ब्रह्म। योगी-यतियो के निजी अनुभव, भक्तो के भी। सुधार के लिये भी कोई कण्टीनुइटी (निरन्तरता) कोई पृष्ठभूमि, कोई रगमच होना चाहिये, नही तो किसका सुधार ? जो कभी था नही ? किसके द्वारा ? जिसको सृष्टि के सुधार से कुछ लेना-देना नही ?

जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध तेल-पानी का (जैसा) नही, बल्कि बर्फ और समुद्र की तरह (के जैसा) है। बर्फ मे अपार समुद्र की गहराई, उसका फैलाव, उसकी उत्ताल तरगे, पोतो का आना-जाना, चाँद के लिए तडप, ज्वार-भाटे, यह सब कहाँ है ? बर्फ की चट्टान टिटोनिक जहाज को तोड सकती है, उसे अपने मे डुबा नही सकती, बर्फ जलचरो का न आवास बन सकती है, न उसका भरण-पोषण कर सकती है, न उनके जीवन या मृत्यु के लिये (कला-) मच बन सकती है, न उनके लिये प्रगति और उन्नति का स्रोत बन सकती है। फिर भी, बर्फ को समुद्र बनने के लिये सिर्फ, मात्र, बस, घुल जाना है, पिघल जाना है, अहम् को मिटाकर 'सोऽहम्' बन जाना है। और, यह सम्भव है, होता आया है। फर्क इतना भर है कि बर्फ का घुलना (आशिक) और फिर घुल-घुलकर समुद्र बनते जाना और फिर पूर्णत (सर्वांश मे) समुद्र मे विलीन

होकर एकत्व-लाभ करना, यह प्रक्रिया ऐहलौकिक पार्थिव प्राकृतिक और इन्द्रियो द्वारा देखी, समझी पहचानी जा सकनेवाली है। और, अहम् का हिम जब घुलने लगता है, तब आदमी का स्वभाव उसकी प्रक्रियाये, उसके सम्बन्ध, उसके आचार-विचार, सब बदलने लगते हैं। उसमे ईश्वरोचित गुणो का (प्रादुर्भाव) आविर्भाव होने लगता है। उसे यह प्रत्यक्ष दीखने लगता है कि वह विभु बन गया है।

साधारणत , इसका, इस ट्रासफार्मेशन ऑव दि पर्सनैलिटी का, पता नही चलता अथवा यह व्यक्तित्व का आवण्टन, नवमानव का मनोवैज्ञानिक निर्माण, बहुत दिनो तक अप्रत्यक्ष रहता है या परोक्ष मे पडा विकसित होता रहता है। पर जो विवेकी, अन्तर्यामी, मन है, या जो सर्वज्ञ परमात्मा है, या जो ज्ञानी सुधी-जन है, उनसे वह आभा छिपी नही रह पाती। उस ज्योति का निरन्तर प्रस्फुटन उन्हे अपना ही विकास-सा मालूम पडता है और उनमे हर्ष-आह्लाद, आनन्द, का स्रोत फूट पडता है।

सर्वशक्तिमान् होने के लिये सबकी समस्त शक्ति अपने मे भरनी होगी। वह कैसे होगा ? आपा को मिटाकर समष्टि मे विलीन हो जाने पर। अहम् को मिटाना ही भर अपने हाथ मे होता है और यही पर्याप्त है दीगर को अपना बना लेने के लिये। परमात्मा बन जाने के लिये। जीवात्मा परमात्मा नही है। लेकिन, जीवात्मा की यह एक विलक्षण खूबी है कि वह सस्कार-विहीन बनकर अहम् को प्रभु के पावन चरणो पर चढाकर स्वय प्रभु मे विलीन हो जा सकता है, एककार हो जा सकता है, परमब्रह्म बन जा सकता है। पर, मजे की बात यह है कि तब वह परमात्मा होगा, जीवात्मा नही। उसका अपना कोई व्यक्तित्व न रह जायगा। वह सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, पूर्णब्रह्म की आख्या हासिल कर चुका होगा। पूर्ण मे घुलकर वह पूर्णत्व को प्राप्त हो चुका होगा। यह भी पूर्ण, वह भी पूर्ण और पूर्ण मे न कोई बढोतरी होगी, न किसी मे कोई कमी। परमात्मा से अलग उसका कोई अस्तित्व न होगा, अहम् का जब हिम घुल चुका होगा। मस्तिष्क मे (से) अनेक भाव बनते हैं और उसमे विलीन हो जाते हैं। न उसमे कुछ जोडा जाता है, न घटाया जाता है, सब-का-सब जैसे-का-तैसा रह जाता है। असख्य शब्दो से आहत अनन्त आकाश मे क्या फर्क पडता है। उसी मे से गाने लेकर, निकालकर, अपने रेडियो मे भर लीजिये या उसमे अपने गाने प्रसारित कीजिये, भरिये। आकाश की पूर्णता मे कोई कमी-बेशी होती है क्या ? जीवात्मा जैसे-जैसे परमात्मा की राह पर अग्रसर होता है, वैसे-वैसे विभिन्न गति से ही सही, उसके एक-एक गुण मे निखार आने लगता है, प्रत्येक गुण मे विलक्षणता, चमक, दमक, आने लगती है। जब अन्त करण मे ज्योति जलने लगती है, तब तो (चोले का) बाह्य भी दीप्त हो जाता है। अखण्ड, अवर्णनीय, अलौकिक आभा छिटकने लगती है।

सिफर या शून्य । क्या शून्य (जीरो) का अस्तित्व है भी ? हाँ, शून्य की भी सत्ता है । जब आप यह कहते हैं कि 'शून्य' नही है, तब आप दावा करते हैं कि अपनी 'शून्यता' मे इसकी स्थिति है । जल की सतह की भाँति, जो नाव और उसके परावर्तित (रिफ्लेक्टेड) प्रतिबिम्ब का आधार-स्तर है । सिफर का अस्तित्व उतना ही सत्य और ठोस है, जितना किसी भी अन्य वस्तु-स्थिति का । कोई भी दिशा, कोई भी अक, कोई भी सख्या, कोई भी क्रम, कोई भी यात्रा, कोई भी कल्प-विकल्प, कोई भी विकास-ह्रास, उन्नति अवनति, कोई भी धनात्मक या ऋणात्मक परिवेश, इस शून्य के बिना टिक नही सकता । 'शून्य' सृष्टि की आधार-शिला है। जैसे यह दशमलव (दशमिक, डेसिमल) निकाय (सिस्टम) की जान है और उसके प्रसार का पृष्ठपोषक है, वैसे ही यह सृष्टि का भी सर्वव्यापी स्तम्भ है । यह है, इसीलिये कुछ है भी और कुछ नही भी है । यह नही होता, तो अभाव भी नही होता । वह सृष्टि के प्रारम्भ मे भी था और प्रलय के दिन भी रहेगा । और भी, अनन्त समुच्चय (इनफिनिटी, अनन्तता, असीमता) के दरजे की ही महानता और महत्ता है 'शून्य' की भी, क्योकि किसी भी आयाम के एक छोर पर असीमता है, तो दूसरे छोर पर शून्यता है । 'शून्य' से 'असीम' निकलता है और 'असीम' 'शून्य' मे विलीन भी हो जाता है ।

और, जो कुछ भी 'असीम' है, वह निश्चय ही बढता-फैलता जा रहा होगा, क्योकि अगर ऐसा न हो, तो उसका 'फैलाव' ससीम (सीमित) हो जायगा (फैलने की शक्ति, प्रक्रिया) । और, यह 'फैलाव' असीम आयामो मे होना पडेगा, क्योकि जो 'असीम' है, वह अपने आयामो मे भी कैसे ससीम (सीमित) रह जायगा ?

और भी, जो निरूपित, पारिभाषित, ध्रुव, निश्चित, स्पष्ट और सीमाकित (डेफिनिट) है, वह 'असीम' नही होने का ।

और, जो कुछ भी फैल रहा है [उदाहरणार्थ, गोलक (स्फियर), विवृत गोलक या ओपेन स्फियर] 'शून्य' उसका मर्म (कोर) (केन्द्र) होगा । और भी, जो 'असीम' है उसका 'शून्य' ही आधार होगा और जो 'शून्य' है, उसका 'असीम' ही बुनियाद (नीव) होगा ।

ब्रह्माण्ड निरन्तर फैलता जा रहा है और वह 'असीम' से भी सीमित नही है । घट-घटव्यापी । परमात्मा ।

यह ब्रह्माण्ड एक असख्य गोलको के समूह जैसा है क्या ? जो अन्तर्विष्ट (कण्टेण्ड) भी हैं और अन्तर्धारण (कण्टेन) भी किये हुए है ? इस आधान (कण्टेनर), ब्रह्माण्डीय सृष्टि मे ये सब गोलक एक साथ अनुपूर्व (कजिक्युटिवली) फैलते जा रहे हैं, अनवरत रूप से ? एक दूसरे मे ?

और भी, 'शून्य' (सिफर) मे एक धनात्मक गुण भी हो सकता है या एक ऋणात्मक गुण भी । रिलेटिवली (अपेक्षाकृत, आशिक) । मान लीजिये कि 'राम' ने 'क' राशि 'श्याम' से पैचा (उधार) लिया । उसका व्याज (सूद) बराबर है 'ख' राशि

के। अब 'राम' को (क+ख) राशि लौटानी है 'श्याम' को। अब मान लीजिये कि (क+ख)=५ पाँच) के। तब 'राम' को ५ की क्षति होनेवाली है, जो उसे 'श्याम' को पावना देना है। मूर+सूद लोटाना है। इसलिए (क+ख) की राशि जितनी छोटी हो, जितनी वह सख्या कम हो, उतना ही 'राम' को फायदा है, ('राम' के हित मे है और उसके लिए अच्छा है)। इस सन्दर्भ मे अगर यह राशि '०' (शून्य) हो जाती, तो 'राम' के लिए यह ५ (पाँच) से कही अधिक मूल्यवान् (अच्छी, हितकर) होती। इसलिए 'राम' के सामने '०' (शून्य) का मूल्य अधिक है बजाय ५ (पाँच) के (यथार्थत यह राशि '–५' होनी चाहिये, क्योकि यह उधार रुपया (मूल+सूद) सूद-सहित 'राम' को अपने पास से खर्च करना पडेगा, देना-लौटाना पडेगा।

आपको अगर क्षति भुगतनी पडे, तो '५' का लोप (अभाव) पसन्द कीजियेगा कि '०' का? कौन बेहतर (श्रेय, वरीय, अधिमान्य) होगा?

ऐसे सन्दर्भ मे '०' का मूल्य अधिक धनात्मक (पोजिटिव) है, '५' की तुलना मे। ऐसा 'राम' के लिए रहा। 'श्याम' के लिए '०' का मूल्य '५' से कम है और 'श्याम' को जो राशि मिलनेवाली है (मूल+सूद=५), उस राशि से (शून्य) ५ से जितना कम हो, उतना ही 'श्याम' के लिए स्वीकार्य (एक्सेप्टेबल) और ग्राह्य ओर सन्तोषजनक होगा।

'शून्य' (जीरो) का महान् व्यक्तित्व एक वास्तविकता है हमलोगो की तुलनात्मक (रिलेटिव) दुनिया मे—तार्किक तथा गणितीय।

हो सकता है कि प्रभु का पता पीछे चलकर मिले, भविष्य मे, कभी। पहले आकाश मे उड पाने की बात को लोग हँसी मे उडा देते थे। उसे अनर्गल और असम्भव मानते थे। लाखो वर्ष मे जीव ने जो 'ज्ञान' हासिल किये। हजारो वर्षो मे मानव ने जो सीखा-समझा, उन सबके आधार पर उसने वायुयान भी बनाये और सशरीर चन्द्रलोक मे भी जा पहुँचा (हमारी पूजनीया आस्थावती माँ को अब भी इस युग मे विश्वास नही होता कि सचमुच 'ऐसा' हुआ होगा। 'चन्द्रमा' पर शायद कोई जा पाया हो, 'चन्द्रलोक' मे जीवित आदमी—मतलब 'सशरीर' भला कैसे कोई पहुँच पायगा। ऐसा उनका 'विचार' ओर 'विश्वास' है।) (छपती खबरे दरकिनार। आकाशवाणी से प्रसारित सूचनाएँ बेकार! हास्यास्पद अन्धविश्वास! इस युग मे भी!) आज विज्ञान कहता है परमात्मा मिथ्या है। जब योगी यति एलान करते हैं कि उन्होने ईश्वर की अनुभूति पायी है, तब 'वैज्ञानिक' हँसते-खीझते हैं और कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है कि किसी की विचार तरगो ने, किसी के मानस ने, 'ईश्वर' का अनुभव किया हो! ऐसा उनका विचार और 'विश्वास' है। (आश्वासन दरकिनार! कसमे गवाहियाँ बेकार! हास्यास्पद अन्ध-विश्वास! इस युग मे भी!)

वैज्ञानिकता को अगर भगवान् का पता नही चल सका (पाया) है, अगर उसकी 'प्रयोगशालाओ' मे 'परमात्मा' नही पकडा जा सका है, अगर आध्यात्मिक अनुसन्धान के तरीके वैज्ञानिको ने नही अपनाये हैं, अगर उस तकनीकी विशेषता से वे अनभिज्ञ

रहे है, इसे अमल मे नही लाया है, उसका उपयोग करने का ढग नही सीखने गये है, अगर यथेष्ट समय उनके पास शोध के लिए है नही, तो क्या परमात्मा उनका हुक्मी-बन्दा है जो उनकी 'घण्टी' सुनकर दस्तबस्ता उनके समक्ष हाजिर हो जाय ?

विद्युत्, रिलेटिविटी, गुरुत्वाकर्षण इत्यादि को खोज निकालने मे मानव-जाति (होमोसैंपियन्स) को हजारो वर्ष लगे। तो 'भगवान्' को भी खोज निकालने मे वैज्ञानिक अनुसन्धान को अब अभी और हजारो वर्ष लग सकते है।

किसी राष्ट्र या समाज या व्यक्ति की बनावटी विकलता और दकियानूसी तर्को और बीहड दार्शनिक दन्तघर्षण या 'दन्त-खनखनाहट' (रैटलिंग ऑव टीथ) से क्या होने जाने को है ? भगवान् क्या किसी की जमीन्दारी मे बसता है ?

सौर मण्डल मे ग्रहो (प्लेनेट्स) की निजी धुरियाँ भी प्रत्येक बार के घूमने मे सदा बिलकुल, तथ्यत सटीक, हू-ब-हू एक-सी नही रह पाती। उनमे भी तनिक फर्क पड जाता है। पार्थिव जगत् का यही हाल-बेहाल है। वह 'अनन्त', वह 'असीम' और यह 'असीम', यह दिगन्त।

वह अनन्त—यह एक अनाद्यन्त वृत्त की तरह है और एक ऐसी गति से सदा विस्तृत होता रहता है कि इसकी गति अजेय है। एक रेखा अनन्त नही हो सकती, क्योकि इसके ओर-छोर निश्चित हैं। अनिश्चित हो यदि (?) तो सम्भवत अनन्त भी हो सके।

ईश्वर सर्वव्यापी है। जिस तरह वायु या वायुमण्डल पृथ्वी पर व्याप्त है। यह अनेक कणो का निर्माण भी नही हो सकता। यह एक सतत स्थिति है, सर्वदा और सर्वत्र। स्थिति-सातत्य। यह ज्ञेय नही है, क्योकि यह सभी के मस्तिष्क मे व्यापक है, सबका ही ज्ञाता है। सर्व। सर्वद्रष्टा। अपरिवर्त्तनीय भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् ज्ञाता। चूंकि भविष्य अतीत और वर्त्तमान पर आधृत है [और वर्त्तमान (जगत्) विश्व-निर्मित है] और इस तरह जुडवे (युग्म) मे भविष्य की सृष्टि होती है और भविष्य से फिर वर्त्तमान और फिर अवश्यम्भावी रूप से अतीत तथा नये वर्त्तमान और नये भविष्य की सृष्टि।

सृष्टि मे कुछ भी किसी भी दिक्काल मे निश्चित, नियत, स्थायी, अटल और स्थिर नही है। न किसी काल मे जडना-जमाना सम्भव है, न किसी स्थान पर गाडना-बाँधना। यह अनन्त है। अविज्ञेय है। अदृश्य है। जगत् की कोई भी वस्तु इस दिक्-काल मे सदा किसी मौलिक या स्थैतिक स्वरूप मे नही रह सकता।

परमात्मा 'स्थिति-सातत्य-रूप' ('स्टेटम कण्टिन्युयम') है। एक अनन्त विस्तार। एक-रसता। एक निर्गुण निरावरणता, जिससे सारी सृष्टि सवरित होती है और सारे 'गुण' उपजते है। यह एक इन्द्रियातीत है। यह बोधगम्य भी नही। इस 'स्थिति-सातत्य-रूप' (रूपारूप, रूप-अरूप) मे किसी वस्तु-स्थिति के लिए, कभी भी, कोई निर्देश (सकेत)-विन्दु नही मिलता।

परमात्मा—विश्व (यूनिवर्स) के स्रष्टा (क्रीएटर), नियन्ता (रेगुलेटर), अभिनियोजक (एडजस्टर) और पालक (सपोर्टर)।

प्रकृति — पदार्थ (मैटर), ऊर्जा (एनर्जी), इनके विधान।

जीवात्मा—जीवन-शक्ति (लाइफ-फोर्स)। मनस्। प्राण।

प्यार और भक्ति ही ऐसे साधन (माध्यम) है, जिससे सर्वशक्तिमान् (परमात्मा) का स्नेह प्राप्त होता है। अपनी (परमात्मा की) अनेक इच्छा से अनेक (विविध) रूप (विधान) मे उनका जवाब मिलता है। उनकी (परमात्मा की) इच्छा से उनकी (परमात्मा की) गति-विधि का अनुभव किया जा सकता है। वह पिता, माता, सखा, चाकर, याचक या अन्य किसी भी रूप मे प्रकट (या प्रतीत) हो जा सकता है। होता (भी) है। हुआ भी (ही) है। शरीर हमलोगो का परम मित्र और आजीवन साथी है। यह चलता-फिरता जीवित घर और साधन है, जिसमे हम वास करते (रहते) हैं, और जिसके द्वारा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है, और जो इस पृथ्वी पर जीवन-यापन के लिए खास तरह का एक यन्त्र और लबादा है। तु० वह पोशाक, जिसे चन्द्र-यात्रियो को धारण करना, पहनना, पडा था। समुद्री गोताबाजो की खास पोशाक, पर्वतारोहियो के वस्त्र, ग्रीष्म और जाडे के कपडे-लत्ते।

यह अपना शरीर, यह नि स्वार्थी आत्मविलोपित (सेल्फ-इफेसिग) काया, यह आज्ञाकारी दास (भृत्य) शोषण-विदोहन और स्वार्थ-साधन के निमित्त नही है। इसके उपयोग मे सावधानी बरतनी चाहिये। इसकी देखभाल मे सदा सतर्क रहना चाहिये। इसे कदापि गीधना नही चाहिये। अपनी अमूल्यतम निधि है यह। इसे सँभाल कर रखना उचित है। यह प्रकृति-पुरुष की धरोहर है। यह नष्ट न हो, इसे बरबाद न कर दिया जाय।

जब मृत्यु लबे बाम रह जाती है, बुढापा सन्निकट होता है, तब इन्द्रियाँ आप-से-आप अपने-अपने काम छोडती चली जाती हैं—प्रवृत्ति निवृत्ति मे बदलने लगती है—बहिर्मुखी जीवन अन्तुर्मुखी होने लगता है। धीरे-धीरे ससार से सम्बन्ध कटने लगता है। दूर से मौत की धीमी आवाज, जो आ रही थी, मौके-बे-मौके जब कभी वह कही नजदीक और नजदीक कही और, और नजदीक से, अधिकाधिक पास (निकट) से आने लगती है। प्रभु की कृपा कि मौका मिलता है अपने अन्तर को टटोलने का, अपने को खोजने का। इसके पहले कि इन्सान सदा के लिए खो न जाय, उस असीम प्रकृति मे, सागर मे, जहाँ से उसके पार्थिव शरीर का सर्जन हुआ था। और, आत्मसात् न हो सका, इस बार तो फिर इन्तजार करना पडेगा, दूसरी जिन्दगी का। और, वह दूसरी जिन्दगी कब मिलेगी, वह मौका फिर कब आयगा? सुअवसर कैसे मिलेगा? कितने समय के पश्चात्?

परमात्मा के दर्शनार्थ तैयार, कटिबद्ध हो जाना चाहिये। योग्य। प्रत्याशी। दर्शन के बाद भी अपने को सदा सचेष्ट रहना पडेगा। सही रास्ते पर अपने व्यक्तित्व और अपने मानस को रखने के लिए बराबर कोशिश और मेहनत जारी रखनी पडेगी। एम० ए० की डिग्री प्राप्त करने के पहले उसके अनुरूप ज्ञान प्राप्त होना चाहिये, वर्ना कौन विश्वविद्यालय उपाधि देने का खतरा मोल लेगा, और अपने द्वारा प्रदत्त उपाधि की अवहेलना कराना चाहेगा?

जबतक आदमी 'तैयार' और 'योग्य' न हो, तबतक भगवान् उसे कैसे दर्शन दे ? भस्मासुरो को पैदा करने से क्या फायदा ?

'स्थिति सातत्य-रूपारूप' (स्टेटम कण्टिन्युयम), एक ऐसे बृहत् और विस्तृत कैनवस की तरह है, जिसपर सब कुछ चित्र की भाँति अंकित हुए थे, और हुए चले जा रहे हैं—उस स्लेट की तरह, जिसपर सारा ज्ञान लिखा जा रहा है और जिसपर सारे चित्र बनते-मिटते चले जा रहे हैं। प्रकृति को खडिया (खल्ली) (चौक) (कलम) समझिये। इस स्थिति-सातत्य को तलवार काट नही सकती, क्योंकि इसे विभाजित नही किया जा सकता और तलवार के अन्दर और बाहर भी वही 'स्टेटम कण्टिन्युयम' विद्यमान है, इसलिए 'स्टेटम कण्टिन्युयम' को 'स्टेटम कण्टिन्युयम' से काटने की बात अनर्गल और बेतुकी से अधिक असम्भव होगी। उसी तरह आग इसे जला नही पायगी, पानी डुबो नही सकता, हवा उडा नही सकती। और चूँकि, सब कुछ उसी 'स्टेटम कण्टिन्युयम' के माध्यम से घटित हो रहा है, इसलिए वह सब कुछ का साक्षी है और सब कुछ का ज्ञाता, शास्ता है।

विवेक (कनसेंस)।

अगर आप विवेक की बात सुनी-अनसुनी करते रहिये, उसकी मन्त्रणा पर ध्यान न दीजिये, उसकी आज्ञा को उठा दिया कीजिये, उसकी अवहेलना, उसका तिरस्कार किया कीजिये, जाने हुए का अनादर कीजिये, अनुभवी मन्त्रणाओ की उपेक्षा कीजिये, खिल्ली उडाइये, तो आपका विवेक धीरे-धीरे कुण्ठित हो जायगा और एक ऐसी मशीनरी बेकार हो जायगी, जिसका आपके जीवन मे बहुत मूल्य था, जो आपके लिए बहुत उपयोगी थी। बीमार विवेक आपको क्या रास्ता दिखायेगा ?

अवतार—परमात्मा अवतार नही लेता। दिव्यात्माओ का अवतार होता है। 'मुक्त' आत्मा अवतरित नही होते, क्योंकि सूक्ष्म से सूक्ष्मतम होते हुए, वे 'स्टेटम डिस-कण्टिन्युयम' (असातत्य-स्वरूप, विच्छिन्ना-भाव या अवस्था) से 'स्थिति-सातत्य-रूपारूप', स्टेटम कंटिन्युयम को प्राप्त होकर परमात्मस्वरूप बन जाती है या परमात्मा मे विलीन होकर एकात्मता स्थापित कर चुकी होती है। जीवात्मा परमात्मा मे डूबा कि मटियामेट हुआ।

कोई भी आत्मा विकास और प्रगति की राह पर अग्रसर होती हुई 'दिव्य' बन जा सकती है।

जब श्रीरामकृष्ण परमहस ने यह कहा था कि जो राम और कृष्ण थे, वही इस शरीर मे अब रामकृष्ण होकर अवतरित हुए हैं, तो उनके कहने का मतलब शायद यह हो सकता है कि उनमे भी एक दिव्यात्मा का प्रवेश तथा वास था (उनकी काया मे भी 'अवतार' हुआ था)। विवेकानन्द तथा अन्य एक-दो शिष्यो के विषय मे परमहस ने कहा था कि उनमे (रामकृष्ण मे) और उन शिष्यो मे कोई विभेद न था। यहाँ भी आत्मा की 'दिव्यता' की समानता या एकात्मकता की बात रही होगी।

विवेकानन्द के विषय मे उन्होने कहा था कि विवेकानन्द सिद्ध ऋषि के अवतार थे। श्रीरामकृष्ण ने न अपने को और न विवेकानन्द को ही परमात्मा का अवतार

ठहराया था। दिव्यात्मा या देवात्मा (देवता) का अवतार सम्भव है। पर, परमात्मा अवतार ले ले, तो सृष्टि कौन चलायगा ? और, जब दिव्यात्माओ के अवतार से ही परमात्मा अपनी सृष्टि को नियन्त्रित कर लेता है, तब उसे स्वय अवतरित (मनुष्य के चोले मे) होने की कौन-सी आवश्यकता आ पड सकती है ?

भक्तो को भी जो दर्शन हुए हैं, वे देवता के रूप मे। परमात्मा अपनी सृष्टि के द्वारा स्वत व्यक्त है। वह अपने नियम कानूनो मे पूर्णत परिलक्षित है। प्यार से प्राप्त है। ज्ञान से विज्ञप्त (विज्ञापन) है, विज्ञान से सूचित है, वैराग्य से उपलब्ध है। उसके साम्राज्य मे भक्तो को दर्शन देने इष्ट (इष्टदेव) आते रहे है। जिस रूप की आराधना हुई, उसका साक्षात्कार हो गया। जिसमे मन रमा, वह आ फँसा। जिसे जानना चाहा, वह ज्ञान प्राप्त हो गया। हाँ, तीव्र उत्कण्ठा और तत्सम्बद्ध प्रयास और घोर परिश्रम की आवश्यकता पड सकती है। ध्यान की एकाग्रता और प्राप्ति की व्याकुलता चाहिये।

परमात्मा का ध्यान का मतलब है निराकार का ध्यान, अद्वैत का ध्यान। निराकार की प्रत्यक्षता के लिए ज्ञानयोग का रास्ता अपनाना पडेगा। परमात्मा को प्यार किया जा सकता है। प्रकृति के आधार-स्वरूप, वह सर्वत्र व्यक्त है। शायद राम के भक्त के लिए वह राम की दिव्यात्मा को भेज दे या स्वय वैसा ही रूप धरकर आ खडा हो। पर, क्या परमात्मा का वही रूप होगा ? एक तरह से समझिये, तो सभी प्राणी अवतार ही हैं। लेकिन, जिस व्यक्ति ने अपने अवतार-स्वरूप को माना, जाना और पहचाना, वह 'अवतार' बन गया और अवतार की मान्यता मिली उसको। 'पहचानो कि तुम भी भगवान् के अवतार हो-।'

मृत्यु के पश्चात् मस्तिष्क तथा देह का माध्यम उपलब्ध नही होने से हो सकता है कि जीवात्मा का इस ससार मे शारीरिक तथा मानसिक सम्बन्ध कट जाता हो। और, वह सिर्फ आत्मा-चेतना सम्मिश्र (कम्प्लेक्स) के रूप मे रह जाता हो और उस चेतना में एक स्वप्निल अवस्था की तरह वासनायें, लालसाये, हसरतें, इच्छायें, सस्कार इत्यादि रह जाते हो।

तुलना के लिए—परदेशी को घर की याद सताना। यक्ष का मेघ को दूत बनाकर घरवाली के नाम सन्देश भेजना। अतीत का दिवास्वप्न मे अनायास आना-जाना।

ऐसा हो सकता है कि यह मस्तिष्क भौतिक मस्तिष्क के माध्यम के बिना कुछ भी न सोच-समझ सके। (तु० सुप्तावस्था की दुनिया ही दूसरी है। उसमे मानस का बाहरी दुनिया से लगाव नही रह जाता।)

आत्मसात् होने पर या परमात्मा की अनुभूति होने पर सृष्टि के साथ एकात्म दीखने लगता है। तो, यह एकात्म स्थापित करने के लिए कुछ अश मे ही सही, कुछ हद तक, हम 'सर्वोदय' या 'कम्युनिज्म' का सहारा भी ले सकते हैं। सैलाब की तरह वे भूमि को समतल और समाज को इग्लेटेरियन (समानस्तरीय) बनाते हैं। कुछ हद तक। स्वदेशी के प्रयोग से भी और 'सत्य' का सहारा लेकर समानता लायी जा

सकती है। मानव मानस के पूर्णतः और सर्वांश मे अदूषित (अभ्रष्ट, विशुद्ध) और 'असशोधित' हो जाने से भी।

एकता-समानता ऊपर से उतरकर आयी हो या नीचे से चढकर पहुँची हो, वह आत्मनिरीक्षण मे सहायक होगी। और यो (इस तरह) अनेकता मे एकता और प्रकृति मे प्रभु अनुभूत होगा।

भगवान् दिखायी पड जाया भी करता है, (१) अपनी मौज तबीयत से—जब वह चाहता है, जिस रूप मे और जहाँ वह उचित समझता है। जब, जैसे, जहाँ—तब, तैसे, तहाँ। (२) आदमी की इच्छा से—अगर, इच्छा बलवती हुई, अगर आदमी सुयोग्य हुआ, अगर निश्छल भक्त ने प्रेम से पुकारा। अवतार के रूप मे तो वह व्यक्तियो के समूह के सामने, उन्ही के बीच, उन्ही (आदमी)-सा व्यवहार करता हुआ—खाता, पीता और सोता जागता, सुख-दु ख भोगता, पाता, सकता, रहता है। अगर आँखे देखती हुई भी न पहचाने, तो क्या कहा जाय ? मनुष्यो के कल्याण के लिए अवतरित भगवान् किस शक्ल मे आये ? किस तरह दुनिया मे पदार्पण हो उसका ? जहाँ उसे अनेक आदमियो के बीच बहुत समय तक (वर्त्तमान और भविष्य मे भी) रहना है, वहाँ वह जादूगर बनकर तो रह नही सकता, अल्लादीन का चिराग हो तब न। हाँ, व्यक्ति-विशेष के लिए, महज थोडे वक्त के लिए, दिखलायी पड जाने-वाली बात अलहदा है। जैसे, बिजली कौंध जाय। वह एक व्यक्तिगत अनुभव के लिए होता है। हम जिस रूप मे भगवान् को देखना चाहते हैं, उस रूप मे भी वह आ खडा होता है, लेकिन, उसके लिए अटल विश्वास, अनन्य भक्ति, अदम्य इच्छा चाहिये। भगवान् की इच्छाशक्ति-मात्र से सृष्टि बनती-बिगडती है। आदमी को भी, भगवान् ने अपनी वह (उसी तरह की) शक्ति दे रखी है। वह आदमी भी, अपनी इच्छा-शक्ति से अपनी दुनिया बना सकता है, बिगाड सकता है। और, अगर वह चाहे तो अपने लिए भगवान् की सृष्टि (कैन क्रिएट गॉड टू) भी कर सकता है, अगर, वह तुल जाय, तो अपनी प्रबल इच्छाशक्ति को, अपनी विमल भक्ति को, अपनी व्यग्र आस्था को, अपने बेचैन प्राणो को भगवान् की खोज मे लगा सकता है और प्यार से ऐसा आदमी जब उस जगन्नियन्ता को पुकारता है, तब वह रेशम की डोर से खिंचा चला आता है। ऐसे शक्तिशाली मस्तिष्क के स्पन्दनो से सर्वव्यापी 'स्थिति सातत्य रूपारूप' (स्टेटम कण्टिन्युयम) प्रभावित होता है और कुछ ऐसी हलचल (?) पैदा होती है उससे कि वह जिस रूप मे, जिस समय और जिस जगह चाहता है, भगवान् को आना ही पडता है। सरल भाव से, दृढ आस्था, गहरी भक्ति से, प्यार के सहारे, यह काम आसान हो जाता है। ऐसे तो भस्मासुर को भी भगवान् ने बाध्य होकर दर्शन दिए ही। दैवी शक्तियो के सहारे, दानवी शक्तियो के सहारे भी, भगवान् के दर्शन हो सकते हैं। प्रबल इच्छा जागरित होनी चाहिये। वही भगवान् प्रह्लाद को प्यार देने के लिए आये, और वही हिरण्यकश्यप का सहार करने के लिए भी। रामकृष्ण परमहस ने जब खुदकुशी (आत्महत्या) करने के लिए खड्ग उठाया, तब माँ काली के आने मे एक क्षण भी देर नही हुई। भगवान् सर्वत्र है, सब समय है, सबका है, सबके

लिए है। वह यही मेरे अन्दर, मेरे आसपास सभी जगह, सर्वव्यापी है। लेकिन, जिस रूप मे हम उसके दर्शन करना चाहते हैं, वह अपने लिए हमे स्वय उत्पन्न करना-कराना पडेगा। भगवान् का नियम-कानून ही ऐसा है। हमारे चाहने से प्राकृतिक या आध्यात्मिक कानून—जो सारी सृष्टि के लिए, समस्त ब्रह्माण्ड के लिए बने है—नही बदल सकते। लेकिन, भगवान् के साम्राज्य मे ऐसी व्यवस्था भी की गयी है कि आदमी को भगवान् के (देवता या इष्टदेव के) दर्शन हो सके। अनायास भी, पर अनेरे नही। ऐसे दर्शन भी आध्यात्मिक नियमो के अन्तर्गत निर्धारित होते हैं। वहाँ भी उन नियमो का कठोरता से पालन होता है। प्यार भी अयोग्य को नही मिलता। आस्था भी नही मिलती। पक्षपात, भाई-भतीजावाद, स्वजनता, धोखा-धडी और नियम-कानून-भजन वहाँ नही होते। ये कायदे-कानून (लॉ) (विधान) (उसूल, मत, सिद्धान्त, नीति) कही लिखे नही गये हैं। भविष्य मे शायद विज्ञान इसे लिखने मे समर्थ भी हो सके। पर, इतिहास इन्हे जानता है, भक्त की जीवनियाँ इन्हे बोलती हैं, आस्था का दिल गवाही देता है, प्यार से सराबोर आँखे इन्हे मुखरित करती है, सन्तो के अनुभव इनकी कसम खाते है। शास्त्र इनकी दुहाई देते हैं। प्राकृतिक नियमो को अरबो वर्षों के बाद भी इन्सान और विज्ञान नही जान सके हैं। तब इतनी जल्द, इतनी आसानी से, बिना त्याग, तपस्या और परिश्रम के आध्यात्मिक विधान के बर्क कैसे खुलें ? बेसब्र इन्सान विज्ञान के स्रष्टा को वैज्ञानिक तकनीक (टेकनीक) से जानना और पहचानना चाहता है। यहाँ अनुसन्धान के तरीके अलग है, रास्ते भिन्न है। यहाँ बहिर्मुख नही, अन्तर्मुख होना है। बेसब्री चाहिये, आतुरता के साथ। मिलना सम्भव है—प्यार, आस्था, त्याग के सहारे। आकुल-व्याकुल आदमी जब भगवान् को पुकारता है, तब करुणासागर को उससे बिना मिले चैन नही पडता। और, यो तो वह सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है—उसे पहचानने के लिए सिर्फ समझदारी चाहिये। विवेक-मण्डित 'मैं' उसका प्रतिबिम्ब है, वह कुछ जानता है, कुछ समझता है। वह भगवान् नही है, भगवान् का प्रतिरूप भी नही है। पर, भगवान् के निकटतम है और इस सान्निध्य (युग-युगान्तरो, अनादिकाल के) की बदौलत, उसे कुछ मालूम है, जिसे वह दुनियाबी शब्दो मे, पार्थिव शरीर के मुँह से कह नही पाता। लेकिन, उसका दिल बोलता है, उसका आत्मा सुनता है। ससार के ऊहापोह मे उलझे इन्सान को, चाह से ग्रस्त मस्तिष्क को, भगवान् के लिए समय भी है क्या ? भगवान् को पाकर भी वह लालची, भगवान् का या भगवान् जैसा बन पायगा क्या ? फिर, ऐसे आदमी को भगवान् की क्या जरूरत ? और, भगवान् मारा-मारा फिरे ? दर्शन देता चले। उसके हुक्म पर। भगवान् की नकेल आदमी के हाथ मे है क्या ?

मस्तिष्क के माध्यम से भगवान् का साक्षात्कार हो सकता है या उसका अनुभव हो सकता है—ध्यान से, अदम्य इच्छा, विश्वास और भक्ति तथा प्रेम से—भावना, भावुकता, विकलता, आकुलता।

शास्त्रो ने भगवान् की ओर सकेत-मात्र किया है—यही तक उनकी शक्ति है। उस अवर्णनीय का सिर्फ अनुभव हो सकता है 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'।

रास्ते दिखलाये गये। चलना तो अपने पैरो से होगा। दृश्य का वर्णन—कुछ अश मे—किया गया। देखना तो अपनी आँखो से ही होगा। सर्वांश मे भगवान् को कोई नही जान सका है, कोई कभी न जान सकेगा। कोई ऐसी हिमाकत न करे। ऐसी जुर्रत न करे। भगवान् बनकर ही भगवान् को जाना जा सकता है। कोई पहले पूर्णरूप से भगवान् तो वने। परदेश को जानने के लिए तो परदेशी बनना पडता है। लेकिन, परदेशी को जानने के लिए क्या किया जाय ? भगवान् हैं। इसका एक अकाट्य प्रमाण यह है कि सृष्टि मे एक विलक्षण तारतम्य है। इस दुनिया मे कुछ भी नितान्त निरपेक्ष (एब्सॉल्युट) नही है—सब तुलनात्मक, परापेक्षी, रिलेटिव है। यह द्वन्द्वात्मक दुनिया है, बाबा ! यहाँ सिर्फ परमात्मा निरपेक्ष है। क्योकि, वह गुणातीत है, और चूँकि, उसके जैसा और कुछ कही न है, न था, न होगा।

जिस तरह आईना मे दृश्य दिखलाई पडता है, वैसे ही सार्वभौम मानस (यूनिवर्सल माइण्ड) मे सब कुछ स्वत दीखता रहता है। जैसे, आँखो द्वारा देखे गये दृश्य मस्तिष्क द्वारा जाने-पहचाने जाते हैं, वैसे ही परमात्मा द्वारा ब्रह्माण्ड अवलोकित है। न आईना, न आँख और न मस्तिष्क और न परमात्मा उसके लिए जवाबदेह है। ऐसा प्रतीत होता है कि जीवाणुओ के द्वारा भौतिक शरीर और मस्तिष्क वशानुक्रम मे प्राप्त होता हो। शायद मस्तिष्क के अनेकानेक गुण-दोष, प्रवृत्ति-प्रावण्य-रुझान भी विरासत मे मिलते हो। हो सकता है कि कोई राष्ट्रीय रग भी चढा रहता हो। कोई भौगोलिक असर भी पडा होता हो।

क्या 'अन्त करण' के भी हम उत्तराधिकारी होते हैं ?

क्या पृथ्वी मे कोई 'मानस'-सी 'चीज' भी रहती है ? कोई उसका विकृत, अपरिवर्तित रूप ? 'मानस' का ? क्योकि जिन तत्त्वो से शरीर बना है, वे तो गालिबन पृथ्वी की सरचना मे भी काम लाये ही गये हैं। विद्युत् न सिर्फ शरीर (हृदय, मस्तिष्क, कोष, तन्तु इत्यादि) मे पायी जाती है, बल्कि अन्य स्थानो मे भी मिलती है। उसी तरह 'मानस' शायद पार्थिव शरीर मे ही नही, अन्यत्र भी छिपा रहता होगा। मस्तिष्क की परिधि के परे, कही और भी।

'मानस' एक विशिष्ट तत्त्व-सा प्रतीत होता है। मानव के निर्माण मे इसका प्रयोग किसी खास प्रयोजन से हुआ होगा। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' से निर्मित इस 'अधम शरीरा' को अपने पार्ट-पुरजे कही इसी पृथ्वी से न मिले होगे ? मानवीय मानस एक विशिष्ट गुण, एक असामान्य विशेषता है—यह सिर्फ मस्तिष्क की सरचना (एनाटॉमी) या उसकी वृत्ति (क्रिया) (फिजियोलॉजी) नही है।

आध्यात्मिक अनुभूतियो के सबूत के लिए शास्त्र है, ऋषि-मुनि है, जिन्होने अनुसन्धान (रिसर्च) किये है तथा परिणाम (नतीजा, फल) (अनुभूति) पाये है। उनके अनुसन्धान करने के तरीके 'वैज्ञानिक' तरीको से कुछ भिन्न हैं। लेकिन, उनके बतलाये गये तरीको से रिसर्च करने पर उन्ही की तरह फल (नतीजा) मिल सकते हैं। ऐसा उनका दावा है। और, जिन लोगो ने उनका प्रयोग किया है, वे उसकी सत्यता का प्रमाण देते है। फिर भी, अगर हम यह कहे कि सब झूठ है, तब तो मुश्किल है। जीवात्मा यह

सब पार्थिव दुनिया से भिन्न हैं, पदार्थ (मैटर) हैं नही । ऊर्जा की तरह की कुछ वस्तुएँ हैं, जिनका मानस (माइण्ड) से सम्बन्ध है और उनसे मानस के द्वारा ही सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है या उनकी अनुभूति हो सकती है । वह भौतिक (कायिक) मस्तिष्क के बूते के बाहर की है । वह दुनिया ही अलग-अलहदा, अपनी तरह की है । उसके नियम-कानून का वैज्ञानिको को कुछ भी पता नही । वह विज्ञान है ही नही । उस साम्राज्य मे अभी 'विज्ञान' की पैठ हुई नही । पानी की दुनिया और मरुभूमि की दुनिया मे फर्क है । जल, समीर और पावक भी एक ही कानून नही मानते । उनके गुण भी भिन्न हैं । तैंराकी और उडनेवाले जीवो की दुनिया के नियम-कानून अलग-अलग है । सब तत्त्वो के गुण भी भिन्न हैं । स्थूल, नाद (ध्वनि) (आवाज), विचार शक्ति (थॉट) । जैसे भवन मे भूत रहता है, वैसे ही देह मे देही । (शरीर मे जीवात्मा) (चोला मे बल, पौरुष, 'एनर्जी') । (भूताविष्ट, भुतहा, घर-स्थान की प्रेत-योनि द्वारा प्रदर्शित घटनाएँ—जिसके अनेक लोग साक्षी हैं ।)

'मस्तिष्क'—भौतिक (पार्थिव) पदार्थ ।
'मानस'—ऊर्जा का एक रूप (विशिष्ट) (प्रकार)
   =शक्ति=लहर (तु० विचार-तरग) ।
लेकिन, आखिर यह 'पदार्थ' (मैटर) है क्या ?
मैटर—एनर्जी
(वेम्स) तरगो का सघनन (घनीकरण, कण्डेन्सेशन) ।

'मानस' एक सूक्ष्मतर (अति सूक्ष्म) प्रकार की तरग है, जो मैटर से बने मस्तिष्क के स्थूल प्रकार की तरगो से भिन्न है । 'मनस्'—अति-सूक्ष्म मानस ।

'मानस' एक प्रच्छद (पिधानक, ऑपरकुलम, आवरण, वृत्त, परिधि, मण्डल) है, जो मस्तिष्क को शायद आच्छादित किये हुए है अथवा जो मस्तिष्क के कोष कोष मे व्याप्त है । यह शायद वियोज्य (डिटैचेबल) है शायद योज्य (अनुबन्धनीय, सयोजनीय) है, जीवात्मा (और मस्तिष्क) से । जो मृत्यु के समय मस्तिष्क (काया) से सम्बन्ध-विच्छेद कर ले सकता है और जो जन्म के साथ जुट जाता है, जीवात्मा (मस्तिष्क) से । मृत्यु के पश्चात् और पुनर्जन्म तक जीवात्मा शायद 'जड' और 'निष्क्रिय' रहता हो । जहाँ कही भी, वह रहता हो, वह कर्मभूमि तो है नही । इसलिए, वह 'कर्म' करके उसके द्वारा फल का अर्जन कर नही सकता । ससार मे अर्जित कर्म-फल की धरोहर लिए वह अपने पुनर्जन्म की प्रतीक्षा मात्र ही कर सकता है । इस तरह वह अपने तथाकथित 'कयामत' के दिन का इन्तजार करता हुआ ठहरा (प्रतीक्षा मे) रहेगा । इस सन्दर्भ मे 'कयामत' की कल्पना भी ठीक मालूम पडती है । पर, वह हर इन्सान के लिए अलग-अलग होगा । सबके लिए कयामत एक ही दिन नही आयगी । तु० वह बीज जो अकुरित होने की बाट जोह रहा है । वह 'शद-गिलो' (गिलोय, गुरुच), जो जड पकडने के लिए मिटटी की ताक में बैठी है । वह शीतस्वापी (हाइबरनेटिंग) जन्तु, जो ग्रीष्म की प्रतीक्षा कर रहा है । वह मातृत्व, जो उर्वर बननेवाला है (सभी 'इन्तजार' ही तो करते है) । इन्तजार उस

दिन (घडी) का, जब वे अपने नये और अनुकूल परिवेश (वातावरण) मे फिर से प्रस्फुटित होकर एक नये तरह का जीवन-यापन करने का सुअवसर प्राप्न कर पायेंगे। दिल्ली से लाकर मैंने श्री एस० के० डे की दी हुई गुरुच की सूखी डाल महीनो के बाद पटना मे रोपी—नयी साज सज्जा के साथ, जब वह पल्लवित हुई, तब क्या उसने पुनर्जन्म नही प्राप्त किया ?

जब मनुष्य मर जाता है, तब पुनर्जन्म के समय उसकी आत्मा क्या मनुष्य के शरीर मे ही स्थापित होगी ? जीवात्मा अगर एक ऊर्जा है, एक खास तत्त्व है, तो वह किसी भी भोतिक शरीर मे प्रविष्ट हो सकता है या उसके द्वारा गिरफ्त (पकड) किया जा सकता है। (तु० मकान पर लगाये गये लाइटनिग ऐरेस्टर)।

सो, अगर कोई जीवात्मा मनुष्य-योनि से फिर मनुष्य-योनि ही मे आना चाहता हो, तो वह कैसे सम्भव है ? शायद इसे उसका कर्म और मानसिक अवस्था ही सम्भव कर सकते हो। और, दूसरी कोई नियम-कानून-व्यवस्था हो सकती है। किसी मनुष्य का जीवात्मा किसी कीडे-मकोडे के शरीर मे प्रविष्ट होकर पुनर्जन्म प्राप्त करे, यह असम्भव नही दीखता। पर, ऐसा क्यो और कैसे होगा ? आदमी स्वत इसके लिए कुछ कर सकता है। अपना पुनर्जन्म उपार्जित (अपने पुनर्जन्म का उपार्जन) किया जा सकता है क्या ? 'जीवाणु' को जाननेवालो के लिए यह अगर सम्भव हो, तो जीवात्मा-परमात्मा प्रकृति के लिए क्यो नही होगा ?

स्पन्दन, तरगो का रूप
सूक्ष्म = स्थूल पदार्थ (मैटर) (काया)।
सूक्ष्मतर = अन्त करण—मैटर—एनर्जी (मस्तिष्क)
(मानस) (पाटिक्ल्स-वेभ) (कण-तरग)।
सूक्ष्मतम = जीवात्मा—एनर्जी (ऊर्जा)।
मैटर—परमात्मा—एनर्जी।

ईश्वर ऐसा ऐश्वर्यवान् है कि उसका पता (सर्वांश या न्यूनाश मे) किसी को न कभी लगा होगा, न लगने जैसी सम्भावना ही है। हम जो कुछ भी जानते है, जिन तथ्यो को मानते-समझते है, वह वैसा है नही। हम 'मैटर' को जानते है, तो वह मैटर है नही। हम ऊर्जा, शक्ति इत्यादि से वाकिफ है, तो वह न परिचित ऊर्जा है, न 'शक्ति'। हमने इन्द्रियो से जो कुछ भी पहचाना है, मस्तिष्क से जिस किसी चीज की भी कल्पना की है, वह उन सबसे भिन्न है। वह न ऐसा है, न वैसा, वह है अद्वितीय। फिर तो उसे 'नेति-नेति' के सिवा और क्या कहा जाय ! वह अपने असली रूप मे आये, तो पहचाना भी नही जायगा। जो इन्द्रियगम्य नही है, जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती है, उसे कैसे पहचाना जा सकता है, अगर वह भूत पिशाच की शक्ल मे आ धमके, तो उसे ईश्वर कौन मानेगा ? वह अगर आदमी या जानवर के रूप मे दर्शन दे, तो वह 'भगवान्'-सा दिखेगा क्या ? नही। अगर किसी अजीब ढग से या किसी विचित्र रूप मे साक्षात्कार हो उसका, तो उसे लोग 'भ्रम' नही समझेंगे ? फिर, परमात्मा बेचारा करे

क्या ? कैसे आदमी से परिचय हो उसका ? उसकी मुसीबत को तो जरा सोचिये । त्रिशूल-धारी शिव 'साक्षात्' प्रकट हो भी जायँ, तो क्या परमात्मा का वही सच्चा रूप होगा ? पर, किया क्या जाय ? भगवान् की लाचारी पर तो जरा तरस खाइये । सारी सृष्टि क्या 'सर्वव्यापी' का रूप नही ? जहाँ भी असाधारण गुण और तेज है, वहाँ परमात्मा अधिकाश (?) मे व्याप्त है ।

परमात्मा के जो भी गुण हैं, वह कभी किमी को भी पूर्णत प्राप्त नही हो सकते । क्योकि, अपनी पूर्णता मे अगर परमात्मा का कोई एक गुण भी किसी मे समाविष्ट (जागरित) हो जाय, तो वह तत्क्षण परमात्मा बन जायगा । जैसे 'सत्य', 'अचाह' 'गुणातीत', 'सवव्यापी' इत्यादि गुण । जो पूर्णत गुणातीत हो गया, वह परमात्मा हो गया और जो परमात्मा हो गया, उसमे परमात्मा के अन्य सभी गुण स्वत स्फुरित हो गये । हाँ, जो परमात्मा के जितना निकट होता जायगा, वह उसके गुणो से उतना ही विभूषित होता चला जायगा । जैसे कोई रोशनी के निकट आता हुआ अधिकाधिक 'प्रकाशित' होता जा रहा हो, कि जैसे अन्धकार घुल-घुलकर मिटता जा रहा हो ।

ईश्वर अगर पहचान मे नही आ रहा है, तो अपना माथा क्यो पीटा जाय ? वह जितना-भर अनुभूत हो पाता है, उतना ही पर्याप्त है । क्योंकि, वह अपने सर्वांश मे कभी किसी की पकड मे नही आया, न कभी आ पायगा । वह तर्क से भी पहचाना नही जायगा। हमारा ज्ञान, हमारी तर्क की प्रणाली, हमारी इन्द्रियाँ, मानसिक शक्ति इत्यादि सभी सीमित और अत्यन्त सीमित हैं । सूई की नोक से कही कुआँ खोदा जा सकता है ? मरुभूमि को जानते नही, समुद्र कभी न देखा, न पहचाना, फिर भी बालू (रेत) को अपने नाखूनो से हटा हटाकर रोते हैं कि समुद्र दिखायी नही पडता । कैसी हास्यास्पद स्थिति है उन विद्वानो की, जो यह समझकर तर्क करते रहते हैं कि परमात्मा को वे खोजकर ही चैन लेंगे । समुद्र मे गोते लगाने से मोती मिल सकता है, परमात्मा नही मिलने का । शास्त्र, पुराणादि परमात्मा की याद-भर दिला सकते हैं, शायद उसके दरवाजे तक पहुँचा दें । लेकिन, वह न 'आउट' (निर्गत) होगा, न 'इन' (प्रविष्ट) और वह अगर 'दिखलायी' भी पडेगा, तो अपने मौज, कृपा और करुणा से ही । वह किसी का हुक्मी बन्दा नहीं है । उसे प्यार करने से ही, वह पसीजता है । निर्मल शान्त मस्तिष्क मे अहम् के मिटने पर सुनते हैं कि उसकी (कुछ) अनुभूति होती है । प्यार के जाल मे वह प्राणप्यारा आ फँसता है । ऐसा वे कहते हैं, जो जानते हैं । चाहनेवाले (भक्त) के लिए वह उनका निजी व्यक्तिगत भगवान् भी बन जाता है । उसपर मर मिटनेवाले के लिए, वह सब कुछ करने को तैयार रहता है, उनका 'योग', उनका 'क्षेम' इत्यादि सभी वहन करता है, सब भार उठाता है । भगवान् के हम न निजी सचिव हैं, न हम उसे पहचान पाये हैं । उसकी करुणा, दया, उसकी सृष्टि इत्यादि को देखकर, उसका आभास-मात्र मिलता है । प्रकृति का सुरम्य, ब्रह्माण्ड का विधान, आदमी की शारीरिक तथा मानसिक बनावट, सूर्य का तेज इत्यादि को देख-सुनकर परमात्मा की एक झलक मिलती है । बस । नही तो किसकी कूवत है कि परमात्मा को आँक ले ?

वह तर्क से परे है। वह तर्क का विषय हो भी नही सकता। उसके बारे मे तर्क-वितर्क करते रहना और बात बनाते रहना बेकार है, समय की बरबादी है।

अगर भगवान् सर्वव्यापी है, तो वह क्यो नही दीखता, कैसे पहचान मे नही आता ? और तभी, हमने देखा कि बादल की ओट मे सूरज छिप गया था, ऐसा कि दिखलायी नही पडता था। पर, धूप चारो ओर फैली थी। और, मेरे मन ने पूछा—"पहचानते हो 'धूप' को ?" धूप और उसके प्रकाश मे कोई भेद न दीखा। पृथ्वी की, आसपास की, सभी वस्तुएँ आलोकित हो रही थी धूप और प्रकाश से। यह मैं जानता था। इसलिए, जो सभी वस्तुओ को आलोकित या प्रत्यक्ष कर रहा था, उसे ही धूप (प्रकाश) मान बैठा था। पर, मैं सिर्फ उन 'वस्तुओ' को ही देख पा रहा था, चीजो को। पेड थे, उसके पत्ते-पत्ते दिखलायी पड रहे थे। फूल थे। मकान था। आदमी थे। जानवर थे। लॉन थी। सरो-सामान थे। प्रकाश मे वे साफ-साफ देखे और पहचाने जा रहे थे। पर 'धूप' को कैसे पहचाना जाय ? प्रकाश चारो ओर फैला हुआ था। पर, वह जिन-जिन वस्तुओ को आलोकित कर रहा था, उसी का एक हिस्सा बन गया था। पदार्थ (आबजेक्ट्स) प्रकाश (धूप) के जरिये दिखायी पड रहे थे। दृश्य को प्रकाश (धूप) मे ही देख पा सकते थे। पर, दृश्य से प्रकाश को अलग करके देखना या पहचानना सम्भव नही था। 'दृश्य' प्रकाश से ढका, ओतप्रोत था। धूप वही सर्वत्र बिछी फैली थी। पर, उसे दृश्य से अलग कर कैसे पहचाना जाय ? कैसे कहा जाय कि यह रही धूप, यह रहा प्रकाश और यह रहा दृश्य। 'दृश्य' अन्धकार मे डूबकर गायब हो जाता है। प्रकाश उसे प्रत्यक्ष कर देता है। पर, अगर एक अनजान बच्चा, एक ऐसा आदमी, जिसने कभी धूप को न देखा हो या जिसने कभी अन्धकार को न देखा हो या जिसे प्रकाश को जानने का मौका न मिला हो—अगर, वह दृश्य को देखकर पूछे कि यह तो पेड है, यह फूल है, यह आदमी है, यह जानवर है, यह मकान है, यह सरो-सामान है—यह सब तो ठीक ठीक दिखाई पड रहा है, पर, यहाँ 'धूप' कहाँ है ? जिसे आप 'प्रकाश' कह रहे हैं, वह 'प्रकाश' क्या है, कहाँ है, तो आप क्या जवाब देंगे ? 'धूप' को पेड पर से फाडकर या उसे साबुन से धोकर या पेड को धूप-रूपी कपडे से निरावरण कर तो दिखला नही सकते। कुछ इसी तरह परमात्मा से स्फुरित, आधृत और प्रेरित है, जो कुछ भी है। लेकिन, सृष्टि से अलग करके स्रष्टा दिखायी नही पडता, जैसे दृश्य से अलग प्रकाश का या प्रकाश से अलग दृश्य का अस्तित्व नही मालूम हो पाता।

अनजान आलोक से आलोकित को अलग नही किया जा सकता।

अनजान आलोक के आलोकित से अलग अस्तित्व का आभास पाना उतना ही मुश्किल है, जितना मधु से भिन्न उसके माधुर्य को पहचान लेना।

धूप, रोशनी (बिजली), चाँदनी—तीनो मे सामान्य गुण है, उनका प्रकाश या प्रकाशित कर पाने की शक्ति, फिर भी, उन तीनो मे भिन्नता तो है ही। 'धूप' पहचान पाने के प्रयास मे जब आप यह कहेंगे कि यह जो 'उजली' चीज दृश्य के ऊपर छायी हुई है, वह है 'धूप'—पर, नही। वहाँ कोई 'उजली' चीज है कहाँ ? धूप मे बगुला उजला लगता है, मोर नही, पेड हरे लगते हैं, उजले नही। हाँ, प्रकाश (धूप) मे दृश्य

अधिक उभर आता है, अधिक प्रत्यक्ष हो पाता है, विभिन्न रग अधिक खुलते हैं। पर, उन सबसे अलग कर धूप, रोशनी, चाँदनी को कैसे पहचानें ? और, अगर धूप, रोशनी, चाँदनी मे से, इनका सामान्य गुण, आलोक हटा लिया जाय, तो क्या बच जायगा ? जो उन तीनो को अलग कर पायगा ? और, दृश्य को तूलिका से कागज पर उतारने के लिये कलाकार विभिन्न रगो का प्रयोग करेगा, उजले रग से उन्हे लीप-पोत तो देगा नही, तो फिर, 'आलोक' को या 'धूप' को 'उजला' कहना ठीक नही। उजाला अतीव प्रत्यक्ष कर्त्ता कहा जा सकता है, उजला कैसे कहा जायगा ? दृश्य की रगीनियो को उभारनेवाली, उन्हे अधिक प्रत्यक्ष करनेवाली, जो वस्तु-स्थिति है, उसे 'प्रकाश' कहते हैं और उसे इसलिए पहचानते हैं कि जब अन्धकार आता है, तब वह प्रकाश से भिन्न होता है और अन्धकार मे दृश्य जैसे डूब जाता है, लुप्त-प्राय हो जाता है, न देखा जाता है, और न पहचाना जाता है, न उनका रग खुलता है। अगर अन्धकार न आता और धूप की 'तीव्रता' उसका 'प्रकाश' सदा सब जगह एक-सा रहता और रहता आया होता, तो 'दृश्य' से अलग 'प्रकाश' कभी भी पहचाना नही जा सकता।

उसी तरह शाश्वत सर्वव्यापी परमात्मा सर्वत्र और सर्वदा सृष्टि के कोने-कोने मे व्याप्त होकर भी व्यक्त नहीं हो पाता।

उसका भान होता है, आभास मिलता है और वह ज्ञान और प्रेम मे 'उपलब्ध' होता है 'पहचान' मे यो ही नही चला जाता। मिठासमधु, जीभ, मस्तिष्क सभी मे आधार रूप से स्थित है, पर मधु मिठास, जीभ, मस्तिष्क इत्यादि से अलग कोई भिन्न वस्तु सा नही लगता। सब प्रकार की ऊर्जा और शक्ति के पार्श्व मे भी वह उनका आधार बना बैठा है। पर, यहाँ भी वह कोई अन्य प्रकार की ऊर्जा-सा नही दीखता। इस विलक्षणता और ग़लतफहमी को ही 'माया' समझिये। और, सृष्टि के आधार (प्रकाश का) को परमात्मा।

अगर, शीशे के बने घर के बाहर प्रकाश है, तो वह अन्दर भी आ जाता है।

एक बुद्धि और मन का भी प्रकाश है, जिसके सहारे बुद्धि और मन प्रखर और ज्ञानयुक्त होते हैं। प्रकाश सपने मे भी देखा जाता है या उसका अनुभव होता है। अन्धकार उसकी याद दिलाता है।

आकाश खुला है, सूर्य का प्रकाश चतुर्दिक् छाया हुआ है या घुला-मिला है। बादल से सूर्य ढक गया या सूर्य ग्रहण से। फिर भी, प्रकाश है। शाम हो आयी। एक धूमिल प्रकाश अब भी है। रात आ गयी। चाँदनी का प्रकाश फैल रहा है। अमावस्या की अमा मे तारो का प्रकाश है। अँधेरी रात है। बरसात के तारे छिप गये। फिर भी, एक हलका-सा प्रकाश है। बादले छाये है। खिडकियाँ और दरवाजे बन्द है। घर के अन्दर कुछ प्रकाश-सा तो है ही। क्योकि उजला कपडा अब भी जरा-सा दिखलायी पड जाता है।

प्रकाश को इसलिए पहचान पाते हैं कि दृश्य है। दृश्य जितना ही साफ-साफ दिखायो पडता है, उसी परिमाण मे प्रकाश को उतना ही तेज मानते हैं, समझते हैं या अनुभव, अनुमान करते हैं, दृश्य से अलग प्रकाश को नही पहचान पाते।

प्रकाश की न्यूनाधिकता से भी उसे पहचान पाते हैं। प्रकाश के लुप्त हो जाने से और उसके फिर लौट आने से भी, उसको पहचानते हैं। प्रकाश से (का) एक उलटा असर रखनेवाली वस्तु भी है, जिसे अन्धकार कहते हैं। अन्धकार के सहारे भी प्रकाश को पहचान पाते हैं। जिसके द्वारा दृश्य प्रत्यक्ष हो सके, वह रहा प्रकाश और जिसके द्वारा दृश्य अप्रत्यक्ष हो, वह है अन्धकार। दृश्य के सहारे ही सही, प्रकाश और अन्धकार से और उनके असर से हम परिचित है—अपनी ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा। जन्मान्ध को प्रकाश और अन्धकार दोनो मे किसी की भी पहचान नही। वह उनकी कल्पना भी नही कर सकता।

भगवान् को पहचानने मे कुछ और दिक्कतें हैं—(१) भगवान् को लुप्त नही कर सकते और न उन्हे किसी भी तरह कम-बेश कर सकते हैं और न हटा सकते हैं। (२) भगवान् का 'उलटा' भी कुछ नही, जिसका सहारा लिया जा सके, समझने या पहचानने मे। (३) भगवान् इन्द्रिय-गम्य नही, (४) भगवान् 'कैदेबयान' मे आता नही, (५) वह अद्वितीय शाश्वत और सर्वत्र है, सर्वदा अपनी पूर्णता मे, समग्रता मे सतत व्याप्त है समस्त सृष्टि मे। दृश्य और प्रकाश उससे पनपते हैं। अन्धकार उसमे अँगडाइयाँ लेता है। सृष्टि से पहले भी वह जैसा था, आज भी वैसा ही है। वैश्वानर से भी बडी, बहुत बडी उम्रवाला। वह क्या है, कैसा है, नही जानते। वह कल्पना मे भी नही आता। वह अपने-सा ही है। बस, अपने-सा। स्वयम्भू। किस दूरबीन से उसे देखे, किस जाल मे फँसा ले ?

जन्म मे जननी दिखायी नही पडती। जनक का तो और भी पता नही चलता। पर, बच्चे मे, उसके माँ-बाप, दोनो छिपे बैठे हैं।

सृष्टि का स्रष्टा और उसका चिर-प्रकाशक परमात्मा विरलो को ही पहचान मे आता है, इसमे कोई आश्चर्य है क्या ?

जहाँ दृश्य है, वहाँ प्रकाश है (चाहे वह प्रकाश कही से, किसी केन्द्र या स्रोत से भी आ रहा हो)। जहाँ सृष्टि है, जगत् है, ब्रह्माण्ड है, जहाँ जो कुछ भी है, वहाँ और वही, परमात्मा भी है, अपने ही अजस्र स्रोत से स्वय उद्भासित, अपने ही प्रेम और करुणा से परिलक्षित है। उसी से प्रकाश के स्रोत फूट निकलते हैं। उसी की करुणा—किरणो के वेश मे—व्योम से पृथ्वी पर अवतरित होती है। चित्र मे चित्रकार की कला दिखायी भी पडे, तो चित्रकार नजर नही आता। खिलौने देखकर कौन कुम्हार पहचाने ? पुष्प मे पृथ्वी दिखायी पडती है ? और वानर मे समुद्र ? छाया किसकी ? प्रकाश की। प्रकाश गया तो छाया भी गयी। रही कहाँ ? पत्ते, जिनपर धूप खेल रही थी, वे भी और जो धूप मे नही थे, वे भी,'प्रकाशित' थे। और, प्रकाश के कारण ही, उनका अस्तित्व दिखलायी पड रहा था, वर्ना वे ओझल और लुप्त हो जाते। अन्धकार उन्हे निगल जाता। उनकी अनुभूति न हो पाती। प्रकृति मे जो परमात्मा की झलक और आहट मिलती है, वह कुछ इसी तरह की वस्तु या परिस्थिति है। इसे 'माया' मान लेंगे क्या ?

भगवान् सर्वत्र है, इसलिए उन्हे छोड और कुछ है नही। अगर, और दूसरी किसी वस्तु का अस्तित्व है—पार्थिव अथवा आध्यात्मिक—तो वह भगवान् की सर्वव्यापकता मे

कमी (उतनी) ला देगा, उसे सीमित कर देगा और परमात्मा असीम है न ? जहाँ दूसरी कोई चीज है, उतने मे (स्थान या समय) भगवान् न होगा ? चित्र चाहे सन्त की करुणा दिखला रहा हो या दैत्य की निर्दयता को। अगर चित्र अच्छा बना हो, सजीव उतरा हो, तो दोनो तरह के चित्रो के लिए कलाकार को श्रेय तथा प्रशसा प्राप्त होगी। प्रकृति मे हम जो 'अच्छे'-'बुरे' चित्र देखते हैं, उनका भी निर्णय—उनकी कलात्मकता—कोई पारखी ही कर सकता है। और, उनका 'पारखी' और 'न्यायाधीश' कौन होगा ? जो पक्षपात न करे, जो पूर्वाग्रही (प्रेजुडिस्ड) नही हो ? है न ?

भगवान् मातृत्व मे है—माता मे नही—इसलिए मानव-शरीरधारी, मनुष्योचित गुणोवाले मानस से प्रेरित माता का व्यवहार कभी-कभी कठोरता या क्रूरता का हो सकता है। पर, मातृत्व (ममता) का न होगा। माता वह पावन मन्दिर है, जिसमे मातृत्व बलता होता है। 'मातृरूपेण सस्थिता' का यही मतलब है। माता के माध्यम से परमात्मा का प्रेम और उसकी करुणा (मातृत्व, ममता की निर्भरिणी-सी) सतत बहती रहती है।

सृष्टि को समग्र रूप मे अपनाना। प्यार की आँखे अन्धी होती हैं। प्यार मे कोई अवगुण भी हो, तो क्या प्रेमी उस अवगुण के कारण प्यार नही कर पाता ? दोषो के कारण कोई माँ को छोड देता है ? माता और मातृत्व मे फर्क न हो, वृद्धावस्था के कारण या अन्य कारणवश, अगर माता का व्यवहार दुनियावी न हो, बच्चे मे 'अहम्' न हो, मृत्यु-'भय' न हो, तो बच्चे के लिए माँ से अलग रहना सम्भव न हो पाये। उससे बिछुडना प्राणघातक बन बैठे।

छाया मे भी प्रकाश का आभास मिलता है। पटना के बॉसघाट पर मेरी माँ (कमला) ने सृष्टि की माँ, दुर्गा (जगज्जननी), का मन्दिर बनवाया है। परमादरणीय परम सनेही श्रीत्रिभुवनप्रसाद सिह, आइ० सी० एस० (अब अवकाश-प्राप्त) की कृपा से जमीन मिल पायी। कण्ट्रैक्टर श्रीअयोध्याप्रसादजी की मदद रही। कृष्णानन्द पाण्डेय पुजारी बनाये गये। आज (९-१०-५०) (नवमी) (दशहरा) को दुर्गा-मन्दिर (बॉसघाट) से कमलाक्षी दुर्गा के दर्शन कर लौट रहा था, तो पेडो के नीचे छाया सोयी हुई थी। पर, उस छाया से ढकी वस्तुएँ, धरती, भी ठीक ठीक दिखायी पडती थी—तो फिर उस छाया मे भी तो प्रकाश था ही (कम मात्रा मे था सही, पर वह भी प्रकाश का ही रूप था)। छाया—प्रकाश की कम मात्रा, उसकी अनुपस्थिति नही। है न ?

जीवन एक प्रवाह है। जैसे गगा की धारा सतत बहती जा रही हो—न रुकावट, न ठहराव और हम सब उसकी तरगें, बुलबुले हैं, रहे हैं, सृष्टि के प्रारम्भ से ही, और रहेगे, वह माँ की गोद है, जिसमे हम विकास पाते हैं। शकर के जटाजूट से सदा प्रवहमान गगा इसी सृष्टि की धारा का द्योतक है। गगोत्री से गगासागर तक गगा की गरिमा एक सी गम्भीर है। कही कुछ भी कभी नही 'मिटता'—सिर्फ वह रूप बदल देता है।

समस्त सृष्टि एक वृत्त है, चक्रिल, एक चक्कर, सुतरा आदमी का न लोप हो सकता है, न सत्यानाश—विध्वस, और न वह घटाकर सिफर (नगण्य या शून्य) बना दिया

जा सकता है। उसे अपना अस्तित्व कायम रखना पड़ेगा, उसे बना रहना पड़ेगा, जिसमे कि वह फिर लौट आ पाये (पुनर्जन्म)। लिहाजा (चुनाचे) किसी भी अर्थ मे मृत्यु अन्तिम पटाक्षेप नही हो सकती। यह न बदलनेवाली, अपरिवर्त्तनीय, चिरस्थायी और नित्य एक 'अन्त' और 'अवसान' नही होने का।

जन्म-मृत्यु का जो घेरा या चक्र या पहिया है, उसका न प्रारम्भ है, न अन्त।

सपने दो तरह के—(१) जो सोया हुआ आदमी निद्रा मे देखा करता है, (२) जो जगा हुआ आदमी अथवा जगे हुए लोग 'सामूहिक सपना' देखते हैं—सब कुछ बदल रहा है, अनजान भविष्य द्रुत गति से चला आ रहा है, भूत भागा जा रहा है। पल-पल मे वर्त्तमान मिटता और फिर बनता जा रहा है। कुछ भी, कभी नही ठहरता, एक रूप मे। ऐसी दुनिया को सत्य तथा स्थावर समझना सपना नही तो और क्या है? जो मालूम पडा था, वह रहा नही, है नही। जैसे इन्सान प्रतिक्षण स्वप्न से जाग-जाग जाता हो, कुछ लोग मिल-जुलकर सामूहिक सपने देख रहे है और एक-दूसरे की पुष्टि और गवाही दे रहे हैं, इसलिए जाग्रत् अवस्था मे देखे गये सपनो को वे 'सच' की सज्ञा देते हैं। और फिर, जो सपने बगाली देखते है, वह पाकिस्तानी नही देखते। जो चीन सत्य मानता है, वह अमेरिका नही मानता। जिन्ना ने जो सपने देखे थे, वे महात्मा गान्धी को मिथ्या या भ्रमात्मक दीखे थे।

और, मेरे मस्तिष्क के रगमच पर अच्छे-बुरे, सुखद-भयकर अनेकानेक विचार आते-जाते रहे और मैं तटस्थ, चुपचाप, उनका आना-जाना देखता रह गया—अलिप्त। अभ्रष्ट। विथ अनकरप्टेड माइण्ड। अनकण्डिशण्ड।

माँ—गुरुदेव ने कहा—चाह + अह = जीवात्मा।

प्रकृति मे कोई वस्तु जमा (सचय, सग्रह) नही होती। सभी सचरित (सर्कुलेट) हैं—वर्त्तुल लहरे अदलती-बदलती, अन्तत 'पूर्वरूप' को प्राप्त करती हैं। आती-जाती—जाती-आती। जड है परम्परा, फल है अत्याधुनिकता। फिर फल जडे फेंकेगा और आधुनिकता परम्परा मे बदल जायगी। पेड से बीज और बीज से पेड।

पोखरा के पानी को भिण्डा देकर बाँधकर सडाइये मत। मानस को न मतो के मूत मे डुबाइये, न प्रतिबद्धता (कण्डिशनिग) की लीद का अम्बार ओढाइये।

जीवात्मा भी मरणोपरान्त इकट्ठा-जमा होते जा रहे होगे—सृष्टि के आरम्भ से कयामत के दिन तक। ऐसा ठीक नही जँचता। तब वे जीवात्मा के किस कुण्ड (निकाय) (पूल) से निकल आती होगी और जीवात्मा के किस समूह मे चली जाती होगी? और, कयामत के दिन तक तो इनकी भरमार हो जायगी। फिर, ऐसा मालूम पडता है कि—(१) वे कढ आती हैं 'समुद्र' की सतह पर, बुलबुले की नाई, और वैसे ही विलीन भी हो जाती हैं 'समुद्र' मे। (२) पुनर्जन्म यकीनन ठीक है। सचरण और उसका पुनरावर्त्तन, (३) वे जीवात्मा, जिनका अभी जन्म नही हुआ, वे, जो जन्म ले चुके और वे, जिनकी मृत्यु हो गयी, वे सब कहाँ से आये, कहाँ गये? निश्चय ही कही

उनका 'सामूहिक आवास' होगा, (४) जीवात्मा को जन्म-मरण का चक्कर काटना ही है, जबतक उसे मोक्ष न मिल जाय, (५) पुनर्जन्म का सुअवसर जोहता जीवात्मा = कयामत का दिन टोहती रूह।

जन्म — अन्तराल — मृत्यु — अन्तराल।

अपनी इच्छा से या अपने चाहे, अपने प्राण भी अपने शरीर को नही छोडते— लिपटे रहते है—जबतक कि शरीर रहने लायक न रह जाय। जब शरीर जर्जर, ऐसा अस्वस्थ या बेकार हो जाता है कि प्राण के लिए निष्प्रयोजन हो जाय, उसके लायक, उसके निमित्त अपनी नियति (भाग्य, भवितव्यता) और अपना कर्मफल भोगने के लायक आवास न रह जाय, तो प्राण उसे छोडकर हट जाता है, चला जाता है, बेपरवाह, बिना परवाह किये हुए (तु० साँप का केचुल छोडना)। हाँ, योगी जन विरले (ही सही) अपनी इच्छा से (अपने प्रयास से) (तु० खुदकुशी, आत्महत्या) प्राण और शरीर का विच्छेद करा पाते हैं।

हम ऐसे ईश्वर का (पर) विश्वास करते हैं, जो सर्वत्र हैं। हमारे कण-कण मे पडा है, ठसाठस, जो हममे ओत-प्रोत है। हम उसे हटाकर अपनी जगह नही बना सकते। क्योकि, तब उससे हमारी जगह रिक्त रहेगी, जो असम्भव है। उस अर्थ मे 'अह ब्रह्मास्मि'। लेकिन, लोहा—'एक लोहा पूजा मे राखत एक घर बधिक धरो'— का सब लोहे से एकत्व, सामजस्य है, पर सब लोहे अपने कर्म से बराबर हैं क्या? ईश्वरत्व-प्राप्त आदमी ईश्वर बन जाता है, फिर ईश्वर मे मिल जाता है।

जिसका परिणाम बुरा हो, जो हानिकर हो, जिसे करके आदमी पछताये, वह अनुचित कार्य है। जिसे करके आदमी अपने को कोसे, वह अनैतिक कार्य है। जिसके करने मे आदमी का अन्तरात्मा रोके—उसका विवेक मना करे—जिससे मानव या किसी की भी हानि (वास्तविक) होती हो—जिस कर्म का बुरा और कचोटनेवाला दु खदायी सस्कार बनता हो—जो मानस पर भार अथवा काई बनकर रह जाय—वही क्या 'पाप' नहीं?

ये भावनाये अन्त करण से सम्बद्ध है। और, आदमी का मन ऐसे कार्य भी शरीर के द्वारा सम्पादित करा सकता है, जो शरीर (अपने ही) के लिए भी हानिकर हो। ऐसे मन के लिए अपना भी शरीर वैसा ही बेगाना और पराया है, जैसे दूसरे का। जैसे, शराब पीना, तब अनैतिक हो जायगा, जब शराबी नशे मे कोई ऐसा कार्य करे, जिससे उसकी, उसके परिवार और समाज की हानि हो जाय। अच्छी शराब थोडी मात्रा मे पीकर आदमी अगर अधिक अच्छा काम कर सकता हो, अधिक आनन्द पा सकता हो, तो वह कदाचित् अनैतिक नही हो सकता। अस्वस्थ परम्परा की आती हुई गलत मान्यतायें, अपना जमा हुआ विश्वास, सडा समाज तथा देश के बीमार रिवाज इत्यादि भी आदमी को अच्छे बुरे का विश्लेषण करने मे बाधा डालते हैं।

फिर, किसी कार्य का फलाफल निकट मे अच्छा तथा भविष्य मे बुरा हो सकता है। अथवा निकट भविष्य मे बुरा, पर पीछे चलकर भला। अगर, आदमी सिर्फ अपनी हानि कर रहा हो, तो वह उतना बुरा नही है, जितना दूसरे की हानि करना।

क्योकि, वैसे मे दोनो की हानि अन्तत होनेवाली है। अपने शरीर (स्थूल शरीर) की हानि करना, उतना बुरा नही, जितना अपने अन्त करण की। क्योकि, पहले से सिर्फ कष्ट झेलने पडते हैं और शरीर 'स्वस्थ' भी किया जा सकता है, आसानी (सम्भवत) से। दूसरे से सस्कार पडते हैं, जो अमिट हो सकते हैं या जिनका मिटाना अपने बूते के बाहर की बात हो सकती है (अक्सर ऐसा होता भी है)।

कई बार शका उठी थी कि सोमनाथ के प्रतापी मन्दिर को तहस-नहस करनेवाले महमूद गजनी का सत्यानाश क्यो न हुआ? क्यो न आनन-फानन मे उसका काम तमाम होकर रहा और सोमनाथ के भक्त हिन्दुओ की क्यो कर दुगति हुई? उसी तरह जो लोग मूर्त्तियो पर पेशाब तक कर देते हैं, उनकी जननेन्द्रियाँ क्यो नही सड-गल जाती? ऐसे कुकर्म का फल उन्हे क्यो नही मिलता? फिर याद पडी, धर्मस्थानो की बात, जहाँ दिन-रात पापाचार हुआ करते हैं। मन ने कहा कि भगवान् के लिए मुस्लिम और हिन्दू या अन्य धर्मावलम्बी सभी बच्चे एक से है। माँ का शरीर हिन्दू बच्चा गन्दा करे या यहूदी, किसी भी प्रकार का वह भेद मानेगी क्या? भगवान् के लिए पानी और पेशाब दोनो बराबर हैं। गगाजल और गोमूत्र दोनो तो पूजा मे व्यवहृत होते हैं। फिर, पत्थर की मूर्त्ति मे भगवान् है, तो मूर्त्तिभजक ,हथौडे मे क्या नही है? मूर्त्ति मे भगवान् की सत्ता, उसका आलोक, उतना ही चमकता-दमकता है, उतनी ही मात्रा मे व्यक्त है, जितनी मात्रा मे भक्तो का विश्वास-भक्ति तथा प्रेम। सोमनाथ का मन्दिर टूटा होगा हिन्दुओ की कमजोरी और बुजदिली से, गजनी की बहादुरी या प्रकोप से नही। दो शक्तियाँ काम कर रही होगी—१ सुरक्षात्मक, और २ नाशात्मक। हिन्दुओ ने अपने शिव को धोखा दिया होगा, भक्ति का स्वाग रचा होगा। पोगापन्थी की होगी। वातावरण को दूषित किया होगा।

भगवान् केन्द्र मे होगा। भक्तो ने उस रस्साकशी मे ढिलाई कर दी होगी। विजय दुश्मनो के हाथ लगी होगी। माँ नोचनेवाले और पुचकारनेवाले दो तरह के बच्चो मे से किसी की हानि नही करती। हाँ, बचानेवाले बच्चो का गिरोह सदा सचेष्ट रहे, चौकस-चौकन्ना रहे, बलवान् बना रहे, तो माँ की रक्षा कर सकता है। इसलिए शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक किसी तरह की कमजोरी राष्ट्र के लिए हानिकर है। और, जो मूर्त्ति मे भगवान् मानता ही नही, उसके लिए पत्थर की मूर्त्ति सिर्फ पत्थर है और कुछ भी नही। अगर, गजनी को इतनी समझ होती कि अल्लाह सब जगह है, चुनाचे, बुत मे भी है, तो वह उसकी मर्यादा भग करने की न तो कोशिश करता, न कर पाता और न करके बच (भाग) सकता। औघड अपने लिए पानी और पेशाब को बराबर समझता है—सच्चे दिल और पूरी समझदारी से, अपने विवेक की रोशनी मे जिसके लिए दोनो की अलग पहचान नही रह जाती और उनकी आपसी भिन्नता मिट गयी होती है, वह पानी पिये अथवा पेशाब, मूर्त्ति पर जल चढाये या मूत्र, कोई फर्क नही पडता—न उसके लिए, न मूर्त्ति के लिए (तु० तान्त्रिक भक्त वामाक्षेपा)। धरती (पृथ्वी) पर जो शौच करते हैं। पशु-पालन विभाग मे जो कृत्रिम गर्भाधान करवाते हैं, वे कैसे लोग हैं? और, जो कसाई के हाथो बछडे बेचते हैं? भैंस का दूध

पीकर भैंसे की बलि जो चढाते आ रहे हैं। जो प्यार को जबह करते हैं। जो गले लगाकर गला काट लेते हैं। जो दिल मे बिठाकर दगा देते है। सीने मे साटकर दाँत काट लेते हैं। चकमा देकर हडप जाते हैं।

जिसे पत्थर की मूर्त्ति बेजान दीखती है, जिसे उसमे कोई शक्ति नही दृष्टिगोचर होती, जो उससे कुछ नही चाहता और उससे कुछ नही माँगता, न उसकी भक्ति कर पाता है, जो उसे अल्लाह की भर्त्सना-सी, भगवान् के अनादर का प्रतीक स्वरूप मानता है, वह अगर मूर्त्ति को देखना न चाहे, उसे तोड-फोड दे, तो सबका पिता सर्वव्यापी परमेश्वर ऐसे बेटो को क्या करे ? 'किसी से जो अलग नही हो, उसे भगवान् कहते है—भगवान् से तो हम जुडे ही हुए हैं, लेकिन देह से भी जुडे हुए हैं, यही है गडबडी का कारण' (स्वामी आनन्दानन्दजी)। हम ससार की ओर देख रहे है, भगवान् से मुँह फेरकर। सामने ससार ठीक दिखायी पड रहा है। पीछे परमात्मा छूट गया है।

शारीरिक क्लेश का उपाय है—१. सहना अथवा २. चिकित्सा कराना। ज्ञानी महात्मा भी शारीरिक कष्ट से उद्विग्न और व्याकुल हो जाते हैं। अपार कष्ट मे तटस्थ रहनेवाले विदेह विरले ही कही उपलब्ध हो।

प्रकृति मे शायद सभी रोगो की दवा भगवान् ने दे रखी है।

चिकित्सा-विज्ञान की पद्धतियाँ भी हैं। अनुसन्धान भी सम्भव है। फिर, रोग-निवारण के लिए यथाशक्ति प्रयास करना उचित ही है। यही डॉक्टर का लक्ष्य होना चाहिये।

उसका भान होता है, आभास मिलता है और वह ज्ञान और प्रेम से 'उपलब्ध' होता है, 'पहचान' मे आता है।

'पानी मे मीन पियासी मोहे देखत आवत हाँसी,
घट-घट ब्यापत राम रमैया कहाँ मिले अबिनासी।'

आवाज कहाँ से आ रही है ?

प्रकाश कहाँ से आ रहा है ?

मुँह मोडकर देखो। परमात्मा पीछे खडा है।

१. परमात्मा है।

२. परमात्मा चैतन्य है।

३. जीवात्मा परमात्मा नही है।

४ जीवात्मा आपस मे एक-दूसरे से भिन्न हैं। (कोई दो जीवात्मा एक-से नही हैं)।

५ जीवात्मा = जीव + आत्मा।

(क) आत्मा चैतन्य है, (ख) आत्मा अपार्थिव है, (ग) आत्मा का परमात्मा से जातीय सम्बन्ध है, (घ) आत्मा की खास खूबी यह है कि वह विकसित होता हुआ, पूर्णता को प्राप्त हो जाने पर, परमात्मा मे घुल-मिल सकता है। आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। आत्मा परमात्मा मे पूर्णत मिल जा सकता है। इस तरह,

आत्मा परमात्मा बन जा सकता है, (ङ) आत्मा का विकास हो सकता है—(अ) वर्त्तमान स्थिति (परिस्थिति) मे। (आ) जन्म-जन्मान्तर मे। जैसे समुद्र मे पडी बर्फ की चट्टान घुल-मिलकर समुद्र बनती जाती है और जब बर्फ (उस बर्फीली चट्टान) का अन्तिम कण भी समुद्र में मिल जाता है, तब उसी क्षण बर्फ समुद्र बन जाती है, बर्फ नही रह जाती, पल मारते, यकायक।

वैसे ही, आत्मा विकसित (घुलकर—'अहम् का हिम' गलते-गलते) होता हुआ परमात्मा बनने की पात्रता को उपलब्ध होता है।

और तब, किसी खास क्षण मे किसी खास विन्दु पर पहुँचकर, आत्मा परमात्मा मे डूब जाता है। और, यह गोता ऐसा होता है कि जैसे नमक का ढेला अथाह पानी मे पड जाय। डूबकर वह समुद्र बन जाता है। आत्मा (जीवात्मा) तब आत्मा नही रह जाता, वह परमात्मा बन जाता है। उसका अपना कोई व्यक्तित्व अलग नही रह जाता।

६ जीवात्मा—जीव + आत्मा।

(क) 'जीव' एक जीवन्त, प्राणवान् प्राणी का पारलौकिक सम्बन्ध-सूत्र है।

(ख) यह पार्थिव है भी और नही भी है। यह ऐहलौकिक भी है और पारलौकिक भी है।

(ग) यह एक 'गुण' (प्रोपर्टी) या 'ऊर्जा-सा' (एनर्जी लाइफ) है। यह कोई व्यक्तित्व नही है। यह कोई सत्ता नही है।

(घ) इस गुण (जीव) का स्वभाव क्या है ? यह किस काम आता है ? क्या करता है ? क्या प्रयोजन है इसका ?

जीव के द्वारा आत्मा का शरीर से सम्बन्ध (काया मे प्रवेश) और सम्पर्क होता है।

यह एक तरह की चुम्बक-सी आकृष्ट करनेवाली शक्ति है, जो आत्मा को काया से जोडती है या जिसके माध्यम से काया आत्मा को अपने मे प्रविष्ट कराती है। [जैसे, पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण या गुरुत्वीय शक्ति (पृथ्वी और पदार्थ के बीच), जैसे, चुम्बक के विपरीत ध्रुव-मेरु छोर।]

जैसे, विद्युत् के + धनात्मक और – ऋणात्मक आवेश।

(इनके बीच के आपसी खिचाव की कारण शक्ति)।

(ङ) जीव—जीवात्मा की व्यक्तिगत आकाक्षा, इच्छा, चाह, कामना।

[देह— वाछित, इप्ट, उपकरण—उपभोग के लिए (का) उपकरण, साधन।

ससार को भोगने का एक जरिया, एक रास्ता = जैसे देखने के लिए चश्मा अथवा ऐनक, आईना।]

(ससार के भोग—वाछित, इष्ट, लक्ष्य, भोज्य-सामग्री—सब कुछ प्रत्येक जीवात्मा के लिए एक-सा, साध्य।]

(जीवात्मा—भोक्ता, साधक)।

(च) = जीव—जो माया मे समेट या लपेट लिया जा सके (माया से आच्छादित

सासारिक (ऐहलौकिक) भोग भोगने का अभिलाषी जीवात्मा का वह अश, जो अव्यक्त आत्मा को व्यक्त, पार्थिव शरीर मे ला बिठाये, शरीर से मिला दे)।

(छ) जीव—जीव का सीधा सम्पक अन्त करण के साथ स्थापित होता है। अन्त करण का मस्तिष्क के साथ। मस्तिष्क का इन्द्रियो के साथ। इन्द्रियो का देह के साथ। देह का दुनिया (ससार) के साथ।

अव्यक्त से व्यक्त की, और सूक्ष्म से स्थूल की ओर।

(ज) = जीव—आत्मा (अव्यक्त) और अन्त करण (अव्यक्त) के बीच की सन्धि (अव्यक्त) है। आत्मा अन्त करण का प्रेरक है। अन्त करण (मन + चित् + बुद्धि + अहम्) आत्मा के द्वारा आलोकित होता है।

(झ) काया स्थूल है, अन्त करण सूक्ष्म है, जीवात्मा सूक्ष्मतर है, परमात्मा सूक्ष्मतम है।

(ञ) = काया व्यक्त है। अन्त करण, जीवात्मा, परमात्मा अव्यक्त है।

(ट) = काया और अन्त करण का आपसी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अन्त करण और मस्तिष्क का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मस्तिष्क काया का ही एक विशिष्ट अवयव (अवयव-विशेष) है। मस्तिष्क है सरचना (एनाटॉमी)। अन्त करण = क्रिया है (फिजिओलॉजी) + मन (सायकोलॉजी) = (साइको-फिजियोलॉजी)।

जीवात्मा अन्त करण के क्रियाव्यापार (फक्शन्स) (फिजिओलॉजी) को प्रभावित करता है।

मन, चित्, बुद्धि, अहम्। मोटर, सेन्सरी, ऑटोनामिक तथा स्पेशल सेन्सेज।

इन्द्रियॉ (दस द्वार का पिंजरा) (ऑख, नाक, कान, जननेन्द्रिय, त्वचा) (ससार = भोग-सामग्री)।

(ठ) = जीवात्मा—एक 'अर्द्धनारीश्वर'।

जीव की गति ससार की ओर है, आत्मा की गति परमात्मा की ओर है। जीव(→ससार) + आत्मा (→परमात्मा)। आत्मा→ आकर्षण, मूल-प्रवृत्ति→ परमात्मा (लय)। ससार ←आकर्षण कामना, चाह ←जीव।

ससार = (काया + माया)।

७. = अन्त करण—अन्त सयन्त्र (इनर मैकेनिज्म)

समानार्थी (सिनोनिम्स) (क) चित्त, (ख) मन।

भाग = (क) मन, (ख) चित्त, (ग) बुद्धि, (घ) अहम्।

इसकी गडबडी। (दो प्रकारो की)

(क) शरीर सरचनात्मक (फिजिओलॉजिकल) (ऑरगेनिक) (स्ट्रक्चरल + फक्शनल चेंजेज इन ब्रेन)।

(ख) मानसिक (साइकोलॉजिकल) (फक्शनल ऑलटरेशन ऑव माइण्ड)।

(क) मन
(ख) चित्त
(ग) बुद्धि
(घ) अहम्
} इनकी अलग-अलग या सामूहिक या किसी भी सयोग (कम्बिनेशन) सहृति मे। (अ) उन्नति, या (आ) अवनति, सम्भावी है।

'मन' मनन करता है, बीती को याद करता है—रिमेम्बर्स, ब्रूड्स। 'चित्त' चिन्तन करता है, भविष्य की बात सोचता है, मनसूबे बाँधता है—प्लैन्स।

बुद्धि—'अच्छे'-'बुरे' का विश्लेषण करती है, और निर्णय करती है।

(निर्णायक)—(वेज प्राज ऐण्ड कान्स ऐण्ड टेक्स, अराइम्स ऐट, डिसिजन्स)—ज्ञान और अनुभव का रास्ता।

अहम्—'मैं', निजत्व का भाव, अपना-पराया, सृष्टि मे अपने अलग व्यक्तित्व का मान।

मैं—मेरा और तू—तेरा भाव-जनित राग-द्वेष इत्यादि।

८. विवेक—आत्मा की चेतना (या चैतन्य), औचित्य का ज्ञान कराता है।

९ काया (चि + घञ् = काया) देह, शरीर, 'क्षेत्र'।

कायस्थ = देहस्थ = देही = शरीरी = क्षेत्रज्ञ।

(= पार्थिव, ऐहलौकिक, स्थूल।

= व्यक्त। = प्राकृतिक विधान के अन्तर्गत।

= मस्तिष्क काया का एक भाग, एक अवयव-विशेष है।

= काया अपने अनुरूप जीवात्मा चुन लेती है और उसका वरण कर लेती है।)

काया चुन लेती है। जीवात्मा की बाध्यता है, भाग्य है, भवितव्यता (डेस्टनी) है। काया जब आकृष्ट करेगी, तब उसे जाना ही पडेगा।

जीवात्मा ने अपने अरमान, अपनी हसरतें, अपनी हविश (?) अपनी कामनाये, इच्छायें, आशायें, अपनी चाह, लालसा, लिप्सा, सभी तो इकट्ठे कर रखे थे। अब एक उपयुक्त काया बनी, एक मौका उपस्थित हुआ। अब आनाकानी कैसी, अब देर-फरेब क्यो? अब खुशी-खुशी, हँसते-मुस्कराते चले आना है अपने नये माहौल मे, आवास मे।

१० 'प्राण'—'प्राण' और 'आत्मा' एक नही है।

प्राण = जीवन—मात्र एक प्रकार की ऊर्जा।

—जीवनी शक्ति (लाइफ-फोर्स) कोषो और अवयवो का, शुक्राणु और अण्डाणु का, बीज का, बैक्टिरिया—फगस—वाइरस इत्यादि का, ऑव स्पर्म ऐण्ड ओभा, ऑव सीड्स, ऑव बैक्टिरिया, प्रोटोप्लाज्म का।

= नॉट इनटेलिजेण्ट, नो बुद्धि, सेन्सिएन्स, नो प्रज्ञा,

= नॉट सेन्सिएन्स, नो चेतना,

नैसर्गिक (मूल) प्रवृत्ति (इन्सटिक्ट) ऑव ऑरगेनिज्म।

११ = जीवात्मा = जीव + आत्मा

जीव = एक प्रकार की ऊर्जा (?) = तु० विचार तरग (थॉट वेम्स)।

आत्मा के 'थॉट-वेम्स'—विचार-तरग, कामना तरग।

आत्मा = एक प्रकार की चैतन्य सत्ता = एक प्रकार की चैतन्य सृष्टि ।

जीवात्मा—एक प्रकार की चैतन्य सत्ता, जो अपनी कामनाओ और अपने सस्कारो से इस तरह घिरा हुआ और प्रभावित है कि उसका पार्थिव शरीर मे जन्म लेकर अपने कर्म-फल भोगना और अपने मनोरथ पूरा करना और अपना विकास करना—जो इस कर्म-भूमि + भोग-भूमि (कर्म + भोग = भूमि) मे सम्भव है—एकदम, बिलकुल, विधानानुसार अनिवार्य है ।

१२ प्रकृति—जड । प्राण, जीवात्मा (आत्मा), परमात्मा— जीवन्त ।

आत्मा (जीवात्मा), परमात्मा—चेतन ।

जीवात्मा 'चौरासी लाख' योनियो मे कही भी जन्म ले सकता है ।

परमात्मा का जन्म नही होता । वह अजन्मा है । मुक्त है । (अवतार ले सकता है) (अपनी विभूतियो से भर सकता है) (मानस को प्रभावित कर सकता है) (मानव के मुँह से बोल सकता है, काया से काम करा सकता है, 'जीवात्मा'—'मनुष्य', 'प्रकृति'—'सृष्टि' के अर्थों मे भिन्नता है ।

१३ =प्रकृति—प्रकृति जड है । प्रकृति मे चेतना नही है । प्रकृति विधानो की पोथी है । प्रकृति के विधान पार्थिव जगत् पर लागू होते हैं । काया पार्थिव है । उसपर प्राकृतिक नियम-कानून चलते है । आत्मा परमात्मा प्राकृतिक विधान के परे हैं ।

१४ = परमात्मा = परमात्म तत्त्व = परम + आत्मा = परम पुरुष ।

परमात्मा के गुणधर्म । परमात्मा की विशेषतायें तथा विभूतियाँ ।

शाश्वत, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ, सर्वत्र, सदैव, सर्वस्य, अजन्मा, असीम, अमर, करुणा-सागर, सत्य-शिव-सुन्दर, आनन्द घन, भक्तवत्सल, प्रेमस्वरूप, सृष्टिकर्त्ता, सृष्टिपालक, महाकाल, (सर्वसहारक) (डिस्ट्रक्टर), पूर्ण स्वतन्त्र, अनन्य अद्वितीय, अन्तर्यामी, प्रतिभू, स्वयम्भू इत्यादि-इत्यादि ।

परमात्मा एक है ।

जीवात्मा अनेक हैं और भाँति-भाँति के है । कोई दो जीवात्मा एक-से नही होते । (जैसे फिंगरप्रिण्ट्स—अगूठे का निशान, जैसे ई० सी० जी०, एलेक्ट्रो कार्डिओ-ग्राम ।

१५ = मूल सत्ताये तीन हैं—(क) परमात्मा
(ख) जीवात्मा (आत्मा)
(ग) प्रकृति ।

तीनो शाश्वत हैं । ये हैं । सदा से हैं । सदा रहेगे । परमात्मा सर्वव्यापी, सब कुछ का आधार है । वह समय और सीमा के परे है । वह प्रकृति और विधान के परे हैं ।

प्रकृति सृष्टि के लिए १ विधान और २ साँचा, प्रस्तुत करती है ।

जीवात्मा (आत्मा) सृष्टि का चेतना-तत्त्व है । जीवात्मा ऊर्ध्वगामी है—वह विकसित होकर परमात्मा मे मिलना चाहता है । ऐसी है उसकी प्रवृत्ति । ससार

उसके विकास की भूमि है। इस ससार मे वह प्राकृतिक विकास से (के अनुसार) ही आ (जनम) सकता है। जीवात्मा को (क) ससार मे रख पाने के लिए (ख) विकास का साधन जुटाने के लिए और (३) उसके विकसित होने के लिए परिस्थिति का निर्माण करने की मशा से—एक जाल बिछाया गया है, उस जाल का नाम है 'माया', यह माया तीन गुणों ('त्रिगुणी'— सत्त्व, रजस्, तमस) की बनी है। जीवात्मा को इसी के बीच रहकर इससे निकल जाना है। यही इसकी विकास-भूमि है। यही शिक्षण-प्रशिक्षण-महाविद्यालय है। यही चक्रव्यूह है, जहाँ महारथी बनना है। जहाँ कमजोरियो पर काबू पाना है। परमात्मा एक रेफरी, एक तटस्थ द्रष्टा, एक निर्मम, निर्लिप्त निर्णायक, एक प्रेमस्वरूप, करुणासागर, एक प्रतिभू, (जामिन) की तरह जीवात्मा का खेल-नाटक, पठन-पाठन, देखता रहता है। प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) आमने-सामने बैंठे होगे—शतरज के बिसात की तरह।

और, यह नाटक भी विलक्षण है। यहाँ नवरस अपनी अपनी साज-सज्जा के साथ हरवे हथियार से लैस होकर तरह तरह के मुखौटे चढा-चढाकर, स्वाग बना-बनाकर युद्ध के लिए इकट्ठे होगे। इस धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे माया अपना त्रिगुणी चक्रव्यूह रचेगी। इन्द्रियाँ बे-लगाम घोडो की तरह रणभूमि मे जिधर-तिधर भागती फिरेगी। काया धोखा देगी। बुद्धि (सारथी) ठिकाने न रहेगी। अहम् बेमौके और बे-वजह फूलेगा, पचकेगा। चित्त चचल होकर मुँह मोड लेगा। विवेक की बोलती बन्द होने सी लगेगी। साथी साथ छोड देंगे। अकेला सिपाही। बेशुमार दुश्मन। भूचाल। तूफान। अन्धकार। पैर के नीचे धरती फूट जायगी। आकाश मे मेघ गरजेगे। अटूट वर्षा होगी। बिजली कौंधेगी। जीवात्मा के पास होगा सिर्फ प्रभु-विश्वास, आत्म-निर्भरता और युद्धकौशल। धर्म की ध्वजा होगी। सुकर्म का कवच। त्याग के तरकस मे प्रेम के तीर होगे। अदम्य होगा साहस। दुर्जेय होगा मनोबल। आस्था ललकारेगी। विश्वास दहाडेगा। पार्श्व से परमात्मा की आवाज प्रतिध्वनित होगी 'न डिगो, न डरो, न हारो। लडो। लडो। लडो। मैं जो तेरे साथ हूँ।'

(परम पुरुष) परमात्मा सार्वभौम चेतना (सर्वसमर्थ सर्वव्यापी)

(चेतन 'पुरुष') (जड-विधान)
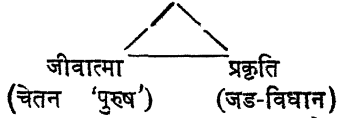
अब अगर (क) परमात्मा शाश्वत है और प्रकृति भी शाश्वत है, और जीवात्मा भी शाश्वत है, और, (ख) परमात्मा अद्वितीय है, तो बात कुछ ठीक बनती नही। क्योकि, अगर तीन पृथक् चीजो मे एक भी समान गुण हैं (शाश्वत-ता), तो उनमे से कोई भी अद्वितीय नही कही जा सकती सही मानी मे, असल मे। सुतरा, ऐसा हो सकता है कि ये तीनो शाश्वत तत्त्व एक ही मूल तत्त्व (परमात्मा) से (स्रोत) फूट पडे हो (उमड आये हो)।

विकल्पत , एक दूसरी धारणा यह हो सकती है कि (अ) सत्त्व—परमात्मा। (आ) रजस्—जीवात्मा। (इ) तमस्—प्रकृति।

(क) मूल तत्त्व एक ही है—वह है अव्यक्त परमात्मा, (ख) परमात्मा का व्यक्त रूप है 'प्रकृति' और 'पुरुष'—जड और चेतन, जो अव्यक्त परमात्मा मे से तरगो के रूप मे नि सृत हुए हैं ओर तरगो के ही हेर-फेर से बने हैं (तु० एटम्स ऐण्ड एलिमेण्ट्स, वेम्स एेण्ड वेभिकल्स)। एक तीसरा अनुमान यह लगाया जा सकता है कि (अ) परमात्मा के सिवाय कही कुछ भी नही है—न (प्रकृति, पुरुष, माया)। (आ) परमात्मा मे ही तीन गुण हैं (सगुण ब्रह्म)।

(१) सत्त्व, (२) रजस्, (३) तमस्—जबतक ये तीनो गुण साम्यावस्था मे शान्त रहते हैं, तबतक परमात्मा अपने निर्गुण अव्यक्त अवस्था मे रहता है। जब इन तीनो गुणो मे उत्तेजना पैदा होती है, तब सृष्टि का उद्भव होता है। सत्त्व गुण से रजस् (पुरुष, जीवात्मा, आत्मा, चेतना) और तमस् (जडावस्था, प्रकृति) उद्वेलित होने लगते हैं। तमस् से स्थूल जगत् प्रकृति (जड) बनने लगता है। रजस् से आत्मा, जीवात्मा, चेतना इत्यादि सूक्ष्म तत्त्व बनने लगते हैं।

सृष्टि के समस्त प्राणी सब पदार्थ, मात्र तरगो और कणो के परिवर्तित रूप हैं। अरूप जैसे नाना रूपो मे व्यक्त हो रहा हो। अमूर्त्त से मूर्त्त के फव्वारे छूट रहे हो। चिनगारियाँ छिटक रही हो, किरणे विकीर्ण हो रही हो, स्वर-सन्धान से राग और रागिनी तिरोहित हो रही हो। रे ! माटी नाना रूप धरे।

सृष्टि परमात्मा का यज्ञ-कर्म है, जिसे वह नि स्वार्थ तथा तटस्थ भाव से जीवात्मा की उन्नति और प्रगति के लिए, प्रकृति के द्वारा करता है।

स्वप्न अपने ('मैं') को तौलने का एक अच्छा सुअवसर है। अपना रास्ता ठीक करने का भी। अपने 'मैं' को जानकर उसका उचित ढग से नियन्त्रण करने का भी। शाश्वतता ही एक ऐसा गुण है, जिसमे बँधकर परमात्मा, प्रकृति और जीवात्मा एक हो गये हैं।

१६. =सृष्टि—परमात्मा के द्वारा प्रेरित—निश्चित। प्रकृति—(और) पुरुष के द्वारा अभिव्यक्त घोषित। स्वय सवरित—विधान से। सृष्टि=सार्वभौम चेतना का मौलिक विचार। क्रिएशन=ए थॉट इन दि कॉस्मिक माइण्ड।

ही विल्ड इट ऐण्ड हिज विल वाज एवैरिशन्ड। ही विल्ड इट एेण्ड हिज विल वाज क्रिएशन। ही विल्ड इट ऐण्ड हिज विल वाज मेटिरियलाइजेशन।

उसने यह सकल्प (कामना) किया और यह मूर्त्त (साकार) हो गया। उसने चाहा और सृष्टि हो गयी। उसने इच्छा की और यह पदार्थ मे परिणत हो गयी।

जैसा कहा गया, सृष्टि परमात्मा का यज्ञ-कर्म है, जिसे वह, नि स्वार्थ तथा तटस्थ भाव से, जीवात्मा की उन्नति और प्रगति के लिए, प्रकृति के द्वारा करता है। सद्भावना, प्रेम और खूबी के साथ। छिपा रहकर वह श्रेय की आकाक्षा भी नही करता। वह दूर से आवाज देता है। अज्ञ जीवात्मा को आँख मिचौनी खेलने का बुलावा मिलता है। यही माया है। यही उसकी लीला है। व्यक्त मे अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त। यही गुत्थी है। यही सृष्टि का राज है। इसी धन्धा के पार जाकर परमात्मा को प्राप्त करना है।

नव (नौ) रसो से निर्मित एक दरिया है। तीन गुणो की आँधी देह की नाव को झकझोर रही है। उस कछार पर परमात्मा की लौ बल रही है। चलो। पतवार सँभालो। लगर खोलो।

बाढ आ रही है। तूफान उठ रहा है। दिन बीत चला है। चलो, देर मत करो। लगर तो खोलो।

बाबा, लगर तो खोलो! देखते नही? दिन ढलता जा रहा है! जल्दी करो, जल्दी। चलो, चलो। हाँको नाव।

अब क्या सोच रहे हो? पतवार चलाओ!

इन वैज्ञानिक (तथा गणित-सम्बन्धी) उपलब्धियो का उल्लेख परमात्मा की माया के अनन्त विस्तार की एक झाँकी देता है।

जिन सत्यो की खोज कर वैज्ञानिको ने प्रतिष्ठा पायी, और अपने जीवन को सफल माना, वे सारे-के-सारे सत्य सृष्टि मे पहले से थे ही और परमात्मा की कार्य-कुशलता, ज्ञान और क्षमता के प्रतीक माने जा सकते हैं। ये विधान के रूप मे सृष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे हैं। कुछ ऐसे विधान है, जो परमात्मा ने प्रकृति (व्यक्त) को सौप दिये है। वे प्राकृतिक नियम कानून हैं, जिनके सहारे प्रकृति का व्यक्त ससार चलता है। इन प्राकृतिक विधानो के विषय मे भी विज्ञान का ज्ञान अधूरा है। वैज्ञानिको ने चन्द सवालो का जवाब पाने के साथ ही यह भी पाया कि अनेकानेक नये और बीहड सवालो का अम्बार दैत्य की तरह आ खडा हुआ। प्राप्त जवाब की 'सत्यता' के पीछे कितनी निश्चयात्मकता और असन्दिग्धता है,यह कैसे कहा जाय? इसका प्रतिभू सिवाय स्वयम्भू के कौन हो सकता है? क्योकि, वैज्ञानिको ने जिसे सत्य माना था, उसे ही बाद मे वे असत्य मानने के लिए बाध्य हुए। और, ऐसे उदाहरण विज्ञान-जगत् मे अनेक बिखरे पडे हैं। इसका मतलब कदापि यह नही है कि विज्ञान को सत्य का साक्षात्कार नही हो सका। विज्ञान ने बहुत टटोलकर कुछ पाया है। ककडियाँ बटोरी हैं, बहुत सारीं, बहुतेरी। पर, ज्ञान के समुद्र के किनारे सिजदा-भर हुआ। अभी बहुत बाकी है, खोजने को, पाने को। तभी तो नोबेल-पुरस्कार का वितरण अभी बन्द नही हुआ। प्रयोगशालायें चालू-की-चालू है। रात-भर लोग रोशनी जलाकर काम करते हैं—दुनिया-भर मे। सारी जिन्दगी के प्रयास मे कभी एक चुटकी सत्य मिलता है, कभी वह भी नही। और सत्य का कण मिला भी, तो उसका पारखी जल्दी नही मिलता। कौन परखे? अधिकतर लोग 'अन्धे' है, अधिकतर लोग 'चश्मे' लगाते है, अथाह समुद्र मे गोते लगाकर दो-चार 'मोती' असली भी मिल ही जाये, तो क्या हुआ? मोती और उसकी प्रामाणिकता भी सिद्ध होनी चाहिये। और, सिद्ध करने के तरीको मे, उपकरणो मे, यन्त्रो मे, क्या खामियाँ नही रही?

विज्ञान ने आशातीत प्रगति की है, अनेक उलझनो को सुलझाया है, ज्ञान-ग्रन्थियाँ खोली है, शमा जलायी है। मानवीय सभ्यता को आगे बढाया है और पीछे ढकेला है। जीवन की शहनाई फूँकी है, तो मौत के नगाड़े पर चोट भी दी है।

लेकिन व्यक्त प्रकृति के पार विज्ञान नही जा पाया है। और, जो तात्त्विक, मूलभूत, प्रश्न मनुष्य के सामने थे, वे अब भी जस-के-तस बिना समाधान के पड़े हुए हैं।

सच पूछिये, तो 'मूलतत्त्व' के 'मूल' और 'तत्त्व' के बनिस्बत जीवात्मा का अज्ञान गहन है। छाया और धूमिल रोशनी के सिवाय क्या जानते हैं ?

मन के अन्धकार मे एक रोशनी टिमटिमाती है। अज्ञ जीवात्मा को कूटस्थ परमात्मा का सम्पर्क ज्ञान का आलोक (अवदान) देता है। तब मेधा प्रस्फुटित होती है, ज्ञान जगता है, बुद्धि प्रखर होती है, दिव्य चक्षु प्राप्त होता है। तब जिज्ञासा कुरेदती है। तव मानस मे सवाल बनते हैं। तब कुछ सूझता है। तब परमात्मा अपना कुछ रहस्य खोलता है। अपना कुछ मार्ग बतला देता है।

किसी भी कम्प्यूटर (परिफलक) से, किसी भी यन्त्रपुत्रक (रॉबॉट) से, मनुष्य कही अधिक तगडा (रॉबस्ट) और सन्तुलित मशीन है, यह तो मानियेगा न ? यह सारा विज्ञान अध्यात्म, साख्य, योग, गणित, दर्शन, साहित्य इत्यादि मानव के मस्तिष्क की प्रतिक्रिया और उपज है न ? आदमी अपनी इन्द्रियो पर, अपने अन्त करण पर, अपने विचार और अपने सपनो पर, अपनी देह के अवयवो पर भी, शासन नही कर पाता। फिर, वह दुनिया मे इतना जो कुछ कर पाता है, इतना जो कुछ ले-दे पाता, वह सब कैसे हो पाता है ? नाक के आगे भी तो देखिये, जरा आँखे भी खोलिये। चश्मा भी उतारिये। ज़रा ठण्डे दिल से सोचिये तो सही।

किसने यह सब कुछ करके अपने-आपको छिपा रखा है ? विज्ञान व्यक्त (प्रकृति) तक जाता है। साख्य (कपिल मुनि) (गीता) अव्यक्त सत्ता (प्रकृति का अव्यक्त रूप) तथा चेतन जीवात्मा तक। परमात्मा स्वय सिद्ध है। वह सिद्धान्तो का निर्माता है, सिद्धान्तो और विधानो के परे है। अगोचर, अवर्णनीय, अव्यय और अनन्त है। अलख-निरजन ! अलख-निरजन !

विज्ञान की उपलब्धियाँ साख्य-सिद्धान्तो के अनुरूप ही हैं, बहुत हद तक। जड पदार्थों और जीवित पदार्थो मे अन्तर आत्मा के अतिरिक्त जीवन-शक्ति का भी है। साँस लेना, साँस छोडना, मासपेशियाँ तथा इन्द्रियो के कार्य इत्यादि यह जीवन है। सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ये आत्मा के लक्षण हैं। जीवन-कार्य तो शक्ति मात्र का परिणाम है। परन्तु, उस जीवन-कार्य को प्रेरणा और दिशा (विश ऐण्ड डिरेक्शन) देना आत्मा का कार्य है।

अण्वान्तरिक शक्ति (इण्टर एटोमिक एट्रैक्सन ऐण्ड रिपलशन), ससक्ति (कोहेजन) ऑव अणु (मालिक्यूल्स), रासायनिक आकर्षण (केमिकल एफिनिटी), भू-आकर्षण (ग्रैभिटेशनल फोर्स), विद्युत्-चुम्बकीय (एलेक्ट्रोमैग्नेटिक) और चुम्बकीय शक्ति (मैग्नेटिक फोर्स), ऊर्जा का विविध रूपान्तरण (मैनिफेस्टेशन ऑव भेरियस काइण्ड्स ऑव एनर्जी), पदार्थ की विभिन्न दशाओ (ठोस, द्रव, गैस और प्लाज्मा) के कारण (दि कॉज ऑव भेरियस स्टेट्स ऑव मैटर) उत्क्रान्ति विकास का कारण (दि कॉज ऑव इभोल्युशन), अन्त करण एव मन का प्रकटीकरण (मैनिफैस्टेशन), मूल-प्रवृत्तियाँ (दि इन्सटिंक्ट्स),

स्वप्न (ड्रीम्स), छठी इन्द्रिय (दी सिक्स्थ सेन्स), अतीन्द्रिय बोध (दि एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्सस) 'विचार-सयन्त्र (दि मैकेनिज्म ऑव थिंकिंग) और विचार-प्रभाव (परिणाम) (एफेक्ट्स ऑव थॉट्स), अनैच्छिक शारीरिक क्रिया (दि इनभॉलण्टरी ऐक्सस ऑव ऑवर बॉडी), मानस के अतिसूक्ष्म (गूढ) व्यापार (दि सट्ल फक्शन ऑव माइण्ड), और मानस स्वयं। अप्रत्याशित घटनायें, जो घट ही जाती हैं। ये सारी चीजे और अन्यान्य बातें, जिनका सम्बन्ध हमसे है, अव्याख्यापित रह गयी हैं। साख्य (दर्शन) ने, विज्ञान की अपेक्षा, इन सारे घटना चक्रो (क्रमो) की विवेचना और व्याख्या (स्पष्टीकरण) मे ज्यादा सफलता पायी है।

यह परमात्मा की माया का दूसरा एक और पहलू है। सृष्टि मे समन्वय और सगति (हार्मनी) है, एकरसता और ऊब (मोनोटोनी) नही।

वेदान्त के अनुसार, जगत् एक प्रतीति, दिखावा है, एक माया, जबकि यह पदार्थ जगत् 'वास्तविक' और 'ठोस'-सा लगता है।

एक लौह परमाणु (लोहा का एटम) पर यदि विचार करें, तो हम पायेंगे कि प्रोटोन और न्यूट्रोन के समूहबद्ध कुछ केन्द्रीय पार्टिक्ल्स हैं, और एलेक्ट्रोन्स की एक तादाद उनके चारो ओर विभिन्न कक्षो (पथ) मे तथा अनेक तलो (प्लेन्स) पर परिक्रमा कर रहे हैं।

लौह-परमाणु (एटम ऑव आइरन एलिमेण्ट, Fe) मे (के अन्दर या अन्तर्गत) ये पार्टिक्ल्स (कण) अत्यन्त लघु आयतन (भौलुम) ग्रहण (दखल) करते हैं, लौह-परमाणु का अधिकाश केवल (सिर्फ, महज) एक 'एम्पटी स्पेस' (खाली-खाली, शून्य-सी जगह) रह जाता है।

एक ठोस लौह-खण्ड का अधिकाश (बहुत बेशी हिस्सा या भाग) मात्र रिक्त स्थान (एम्पटी स्पेस) के अलावा (अतिरिक्त) और कुछ भी नही होता। और, उसमे 'कणो' की मात्रा बहुत थोडी (कम) होती है। और इन 'कणो' के रूप—गुण—स्वभाव—अस्तित्व के मुतल्लिक भी वैज्ञानिक आश्वस्त नही हैं, निश्चित, निर्विवाद कुछ भी नही है।

ये 'कण' (प्रोटोन और एलेक्ट्रोन इत्यादि) वास्तविक ठोस कणो के रूप मे प्रमाणित नही हैं। ये धनात्मक ('पोजिटिव') और ऋणात्मक ('निगेटिव') ऊर्जा-समूह (जोडे) (या 'सेट्स') कण्डेन्स्ड एनर्जी के स्रोत (जैसे) हैं। ये विरोधी (धनात्मक तथा ऋणात्मक) (लौह खण्ड) ऊर्जायें अपनी लीला—क्रिया से (के द्वारा) एक एटम, या एटम-समूह, अथवा 'ठोस लोहा' के रूप मे प्रकट होती है।

इस तरह, कठोर स्थूल लोहे का सम्पूर्ण ठोस अश केवल सब्स्टान्स लेस (असार, तत्त्व-रिक्त, अपार्थिव, अवास्तविक) फोर्सेज (शक्ति, सामर्थ्य) (प्रभाव, प्रेरणा) की लीला (अभिव्यक्ति) है। इसमे न कही 'पदार्थ' ('द्रव्य') है, न 'तत्त्व', न 'उपादान', न 'सार-साराश', न 'वास्तविकता'—'यथार्थता', न 'वस्तु (भाव)', न कोई 'ठोसपन', न कुछ 'मूलता', न 'भौतिकता'। केवल किसी अज्ञात शक्ति का सामर्थ्य, क्षमता, योग्यता तथा बल का प्रदर्शन, निरूपण। यही बात एक सोने का डला, एक लकडी का कुन्दा, एक

डोल (बाल्टी) पानी, एक सौन्दर्य-सम्राज्ञी का रूप-लावण्य या उसके प्यार के साथ भी लागू है। और, यही बात पार्थिव सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व (एलिमेण्ट्स) के लिए भी वैसा ही सत्य है, जैसे लौहखण्ड के लिए। चाहे वह मूलतत्त्व Fe (लोहा) का एटम (अणु, परमाणु) हो, किंवा As (आरसेनिक, संखिया), या Ca (कैलशियम, चूना), या Cu (कॉपर, ताँबा), या Au (गोल्ड, सोना), या H (हाइड्रोजन), या O (ऑक्सीजन, प्राणवायु) या Ag (चाँदी) या S (सल्फर, गन्धक) या Sn (टिन) या U (यूरेनियम) या Hg (पारा, मर्करी) या Pt (प्लैटिनम) इत्यादि का।

वास्तव मे, सच तो यह है कि प्रत्येक प्रकार का पदार्थ और इसलिए सारा पार्थिव जगत् (सम्पूर्ण भौतिक विश्व) एक प्रतीति (दिखावा)-मात्र है, एक माया-भर है। माया। और, माया का वास है सर्वव्यापी परमात्मा मे। जहाँ भी, जब भी, जिस वस्तु को भी, देखिये परखिये, वही आप देखेंगे कि धनात्मक और ऋणात्मक शक्तियो के जोडे ही मिलकर सब कुछ का सर्जन—रूप बनते-बदलते जाते हैं और अपना राज नही खोलते।

एक घटना याद आ पडी। बचपन मे जब मैं अपने मामाजी लोगो [श्री (महेश्वर, भुवनेश्वर, सर चन्द्रेश्वर, राजेश्वर) प्रसाद नारायण सिंहजी साहबान] के टुकडो पर पल और पनप रहा था। उन्ही दिनो की बात है। मामाजी बीरसिंहपुर मे अपने दालान (नौगोल) पर बैठे हुए थे। दूर खुले मैदान मे एक बढई—लोहार कुछ कर रहा था। वहाँ से खट्-खट्, घर्रर्र-घर्रर्र इत्यादि की आवाज आ रही थी। मामाजी ने अपने एक आबनूसी काला-चिमैंठ नौकर को आज्ञा दी,—"भुजुँगिया (भुचेंगिया)! जाकर देख आओ कि बढई क्या कर रहा है।" भुजगा चिडिया की तरह काला-कलूटा स्वनाम-धन्य नौकर जाकर देख आया (कि क्या हो रहा था) और सूचना दी—'सरकार! ऊ कथी दोन मे की दोन करैत् छै!' अँगरेजी मे अनुवाद करने पर 'इन ह्विच ही इज डूइंग दि ह्वाट!' एटम के कारनामे देखकर भी कोई क्या समझ पाता है, क्या कह पाता है! यही न कि 'इन ह्विच ही इज डूइंग दि ह्वाट!' अथवा 'ही इज डूइंग दि ह्वाट इन दि ह्विच!'

भुजुंगिया उर्फ भुचेंगी भुजगा की तरह, काग और कौआ की तरह, आबनूस-सा, अलकतरा-सा, स्याहजीरा-सा या आपके चेहरे पर जो तिल रहता (जन्म-चिह्न) आया है, वैसा ही, कोयल और कोयला-सा, जली हुई लुकाठी की नाई, काजल-सा, द्रौपदी-सा, कृष्ण की तरह, शालिग्राम की भाँति, दगा-सा, करैत-सा, पुतली-सा, नीग्रो-जैसा, मिस्सी सा, भौंरा-सा, कलकत्ता की काली-सा, जलद-सा, अमावस्या की अमा की तरह, नैराश्य की तरह, लन्दन की टैक्सी-सा और भैंस-सा काला था। उसने जो सूचना लाकर दी है, उससे मामाजी का दिल खुश हो गया, ऐसी बात थी नही। न खुशी हुई और न सन्तोष, न तसल्ली। भुचेंगी गया था, उसने देखा था, और वह आकर कह गया। कलकत्ता की काली-सा, जलद-सा (अब्र की सब्र-सा), अमावस्या की अमा की तरह, नैराश्य की तरह लन्दन की रॉल्स-रॉयस टैक्सी-सा और भैंस-सा काला था।

वह बयार की तरह गया था। लस्सा की भाँति लिपटा रहा, चीलर जैसा चिपटा रहा, मोम-सा जमा रहा, और हृदय के साथ ऐसा सटा-डटा-ठहरा रहा, मानो

कसकर बाँध दिया गया हो। वह ऐसा दत्तचित्त होकर देखता रहा था कि उसने देखा भर। और, जब नौगोल पर नजर गयी, नियत कर्म की सुधि आयी, तब वह विमान की तरह लौट आया।

उसने लौटकर जो कहा, वह कोई सन्तोषजनक सूचना थी नही। न कोई तसल्ली की बात थी।

भुचेंगी गया था, उसने देखा था, और आकर कह गया था वह सब कुछ जो उसने देखा था।

उसकी बात से, उस खबर को सुनकर और इस सूचना को प्राप्त कर—दि ह्वाट इन दि ह्विच इज बिइ ग डन—मामाजी को कोई खुशी हुई हो, उनका दिल हुलसा हो, उनका जिज्ञासु मन किसी निष्कर्ष पर पहुँचकर शान्ति को उपलब्ध हुआ हो, ऐसी बात नही थी। यह माफ जाहिर था। क्योकि, उनकी त्योरियाँ बदल गयी थी और चेहरा तमतमा गया था। आपको नागवार गुजरे, इसलिए भुच्चु गी की कद्रदानी मे भभके (व्यवहृत, इस्तमालित) शब्दो के उल्लेख से बाज आता हूँ। ऐसे वे थे बडे रोमाण्टिक!

परमात्मा परमाणु (एटम) मे है, विश्व मे है, जीवन-शक्ति मे है, सचेतना मे है, बुद्धि मे है और जीवात्मा मे भी है—सब कुछ मे व्याप्त, सबका आधार और आश्रय-स्वरूप।

और, यह माया का दूसरा पहलू (पक्ष) है।

परमात्मा सूक्ष्मतम (अव्यक्त) है। भ्रम और भ्रान्ति का निवारण ही स्थूलता (व्यक्त) की धारणा को अतिक्रान्त (ट्रान्सेण्ड) करने मे और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम (अव्यक्त) अवस्थाओ पर विचार करने मे, समर्थ होता है।

न पदार्थ और न ऊर्जा मे सोचने की शक्ति है। न वे सत्यासत्य का विवेचन कर सकते हैं और न धारणाये बना सकते हैं। यह सब किसी एक बुद्धि सम्पन्न स्रोत (सत्ता) से ही सम्भव है। यह स्रोत (सत्ता) आध्यात्मिक सत्य के रूप मे हमारे भीतर विद्यमान है।

सुप्तावस्था मे 'मैं' का ज्ञान खो जाता है। जागने के साथ ही यह आप-से-आप सहज ही आ उपस्थित होता है। इसलिए, 'मैं' का भान जाग्रत् मस्तिष्क (अन्त करण) को ही होता है। स्वप्न मे भी 'मैं' का आ जाना होता है, पर यह गाढी निद्रा मे सम्भव नही। इसलिए 'मै' (की अनुभूति) कभी रहती है, कभी नही। यह नीद मे छिप जाता है, जागर्त्ति मे आ धमकता है।

सुप्तावस्था मे काया के कार्यो की कौन देखभाल करता है? कौन निर्धारित समय पर सोने से जगा देता है? कौन है जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओ मे मेरी खबर रखता है और मुझे अपनी आँखो से ओझल नही होने देता? शरीर मे जो अनेकानेक काम हो रहे हैं—जिनकी वाकफियत, जिनका ज्ञान अपने को भी नही रहता—उनकी व्यवस्था के पीछे किसकी सत्ता है? अनगिनत रासायनिक प्रक्रियाये जो शरीर को स्वस्थ रखती हैं। रोज नये-नये जटिल और मिश्रित रासायनिक पदार्थ वैज्ञानिको की प्रयोगशाला से निकलकर बाजार मे जाते हैं दवाओ के रूप मे। ऐसे पदार्थ, जिन्हे आदमी के शरीर ने सृष्टि के प्रारम्भ से आजतक नही जाना होगा, वे

सब शरीर के अन्दर डाले जाते हैं। कौन-सी है वह शक्ति, जो देह को इन दयनीय परिस्थितियो मे बचाती है ? जब जीवात्मा को भी उसका कतई पता नही होता ? एककोषीय भ्रूण को महामानव बना देना यह किस जादूगर की माया है ? अव्यक्त को व्यक्त और व्यक्त को अव्यक्त कर देना। यह छू मन्तर किसके हाथ का खेल है ? मिट्टी को सोना बना देना, काठ मे मीठे फल लगा देना ? किसके आदेश पर सूर्य को समय की इतनी पाबन्दी रही है कि वह सृष्टि के प्रारम्भ से ही ठीक समय पर उगता रहा है ? कभी देरी नही की। कभी गैरहाजिर न हुआ। मृत्यु और जीवन के किनारे किसका भरोसा रहता है ? विषम परिस्थितियो के सूनेपन मे कौन सहारा देता है ? मन की बात कौन पूरी करता है ? ज्ञान की झोली कहाँ से भर लाते हैं ? सृष्टि की विभूतियाँ किसकी अहैतुकी कृपा है ? जीवन का उद्गम-स्रोत कहाँ है ? कर्म-फल का जामिन (प्रतिभू) कौन है ?

सुषुप्ति, घोर निद्रा, गहरी नीद, मे एकरसता रहती है। और उस अवस्था मे सब प्राणी एकसमान रहते हैं। जीवात्मा का परमात्मा के साथ सम्पर्क रहता है, पर अन्त करण (मानस) के 'सोये' रहने के कारण जीवात्मा को इस सम्पर्क और अनुभूति का ज्ञान नही रहता।

स्वप्न मे वैसी ही अनुभूतियाँ होती हैं, जैसे जाग्रत् अवस्था मे। पर स्वप्न सबके एक-से नही होते। स्वप्नावस्था मे प्राणी एक-से नही रहते। उनकी दशा एक-सी नही रहती। और, स्वप्न क्षणिक तथा परिवर्त्तनशील होता है। उसमे न एकरसता है, न समानता। स्वप्न स्वत आते हैं और उनके बनने-मिटने मे अपना सक्रिय सहयोग नही होता। स्वप्न तखलिये (गैबाने, एकान्त) मे देखा जाता है, उस गुप्त वाकया को अपनी कूटस्थ चेतना के सिवाय और कोई नही जानता। वहाँ जीवात्मा को परमात्मा उसकी (जीवात्मा की) खामियो से उसे वाकिफ कराता है, उसका असली अन्दरूनी रूप उसे दिखलाता है। उसकी छिपी हसरतो को पूरी होने देता है। उसे (उसकी जीवात्मा को) उसके (जीवात्मा के) अवचेतन से परिचित कराता है। स्वप्नावस्था के एकान्त मे वह परमात्मा जीवात्मा को अपनी बात सुनाता है। अपनी महत्ता और जीवात्मा की निमग्न शक्तियो का सिंहावलोकन कराता है। उसे चुपचाप, गुपचुप, कुछ मन्त्रणा देता है, कुछ सीख देता है, कुछ बल और अनुभूति देता है।

जाग्रत् अवस्था मे आदमी खुद-मोख्तार रहता है। सक्रिय और सतर्क। अपनी देखभाल के लिए स्वय जवाबदेह उसका शरीर उद्यम के लिए उद्यत रहता है। उसका उद्योग उसके स्थूल शरीर के द्वारा सम्पादित होता है। वह सूक्ष्म के गुह्य-गह्वर मे नही, बल्कि दुनिया की नजरो के सामने प्रत्यक्ष किया जाता है। इसलिए, दूसरो को भी उन कार्यों की जानकारी रहती है। शरीर और अन्त.करण की व्यवस्था के कारण जीवात्मा-परमात्मा के साथ का सम्पर्क कुछ ढीला पडा रहता है। यद्यपि विवेक का अकुश यहाँ भी उपलब्ध रहता है।

कहते हैं, जागरितास्था मे जीवात्मा का सम्पर्क स्थूल शरीर से, स्वप्नावस्था मे सूक्ष्म शरीर से तथा सुषुप्ति मे कारण शरीर से रहता है।

परमात्मा की प्रेरणा से, उसकी अध्यक्षता मे, प्रकृति चराचर जगत् को रचती है। यह परमात्मा का यज्ञ है। इसमे परमात्मा का कोई स्वार्थ नही। अनासक्त और उदासीन रहने के कारण परमात्मा इस सृष्टि और इस जगत् से बँधता नही।

अविभक्त च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्त्तृ च तज्ज्ञेय ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस परमुच्यते।
ज्ञान ज्ञेय ज्ञानगम्य हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥
(गीता, १३। १६,१७)

कामैस्तैस्तैर्हृ तज्ञाना प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता।
त त नियममास्थाय प्रकृत्या नियता स्वया॥
यो यो या या तनु भक्त श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च तत कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥
(गीता, ७। २०, २१.२२)

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता।
तेऽपि मामैव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
अह हि सर्वज्ञाना भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥
यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रता।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
(गीता, ९। २३, २४, २५)

गतिर्भर्त्ता प्रभु साक्षी निवास शरण सुहृत्।
प्रभव प्रलय स्थानं निधान बीजमव्ययम्॥
(गीता, ९।१८)

परमात्मा शक्ति का स्रोत है। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' इनमे जितनी और जहाँ भी जो 'शक्ति' मौजूद है, वह परमात्मा की शक्तियो (आदिशक्ति) का अश, प्रतिनिधि, प्रदर्शक, द्योतक अथवा निरूपक है। भूत-प्रेत, देवता, पितर, ज्ञान, विज्ञान, बल-पौरुष, प्रकृति, विधान, आईन-कानून, समाज, सरकार, हित-मित्र, पुत्र-कलत्र इत्यादि-इत्यादि सभी अपनी-अपनी न्यूनाधिक शक्तियो से सम्पन्न और विभूषित हैं। केवल परमात्मा सर्वशक्तिमान् शाश्वत, सर्वज्ञ और अनन्य है। उसके यज्ञ कर्म (सृष्टि-रूपी) से मानव-समुदाय के सभी यज्ञ-कर्म स्वत जुड जाते है। उसी तरह, जैसे समान स्वभाव-गुणवाले पदार्थ (और लोग भी) आसानी से घुल-मिल जाते हैं।

किसी भी शक्ति की अर्चना-पूजा उस शक्ति के स्रोत (परमात्मा) तक बिना पहुँचे नही रह पा (जा) ती। अगर आवाहन का क्रम अबाध हो, एक सीधा सम्पर्क

स्थापित हो जाता है। होकर रहता है। जब जहाँ जितनी (मात्रा) और जैसी कोटि की शक्ति उपलब्ध होगी, वैसी ही न प्राप्ति होगी ? वैज्ञानिक अनजाने भी इस सत्य को जानते हैं। भाप की पूजा से स्टीम-इजिन बने, शब्द की पूजा से ग्रामोफोन, टेलीफोन, इत्यादि आविर्भूत हुए।

वैज्ञानिको ने सूर्य के समक्ष नाक बजा-बजाकर पुत्र कलत्र की याचना नही की, क्योकि वे गान्धारी बनना नही चाहते थे। उन्होंने शक्तिदायिनी सूर्य की रश्मि का पता लगाया। अपना गुरु, इष्ट और अभीष्ट चुना और उस अनुसन्धान से मनोवाछित फल की प्राप्ति की। शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर उस शक्ति के सहारे यज्ञ-सम्पादन करनेवालो की सहायता परमात्मा सदा करता रहा है। सब यज्ञ-कर्म मे परमात्मा स्वय विराजता है। स्वय सम्मिलित हो जाता है। यज्ञ एक, अमिट, अचूक, आह्वान है। कहते भी हैं 'यज्ञ है जगदीश का'। और, यह एक निर्विकार सत्य है। प्रभु ने बडे-बडे यज्ञ पार लगाये हैं। छोटी शक्तियाँ छोटा दान दे सकती हैं। पार्थिव उपलब्धियाँ सिर्फ पार्थिव जीवन मे ही काम आ सकती हैं। क्षणिकता शाश्वतता कैसे देगी ?

ऊर्जा के पुजारी चन्द्रतल पर उतरे। पहाड पूजनेवाले (सागर-माथा) पर चढे। साहित्य की पूजा करनेवाले साहित्य-सर्जन करते हैं। आयुर्वेद की अर्चना करनेवाले स्वास्थ्य को उपलब्ध होते हैं। (और रोगी को भी !) लेकिन ये सारी सासारिक शक्तियाँ सीमित और क्षणिक है। यह नचिकेता भी जानता था, गौतम बुद्ध भी जानते थे।

उसकी श्रद्धा और (निष्ठा) के अनुसार परमात्मा, आदमी की पात्रता को जानकर, उसकी उचित फल-प्राप्ति की व्यवस्था कर देता है

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रता।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥ (गी० ९। २५)

भक्तो की जीवनी पढिये। साहित्यिको की भी। जीवन मे खोजिये। लिस्ट (सूची) बनाइये। क्लासिफाइ (वर्गीकरण) कीजिये। परमात्मा ने लोगो को किस-किस भाँति दर्शन दिये, किन तरीको से अपना ज्ञान दिया और कैसे-कैसे अपनी अनुभूति करायी।

आपके लिए भी वह वैसा ही कुछ कर गुजरेगा। प्राथना। प्रतीक्षा।

परमात्मा आपका बिलकुल पसनल (वैयक्तिक) मैटर (विषय) है। एकदम। सोलह आने। सौ पैसे।

आप उसी से पूछिये। दूसरे के दखल देने से क्या होने-जाने का।

'सास पतोहिया एके होइहे। भाभा कूटन घरे जइहे॥'

मैं सोचता रहता हूँ कुछ, और भाव आते रहते हैं कही से। यह सूझ की बात, ज्ञान का टुकडा, वास्तविकता का एहसास, मेरे बिना प्रयत्न के जैसे मेरे मानस पटल पर फ्लैश हो जाते रहे हो, उगते रहे हो। 'सोइ जानत जेहि देइ जनाई।' ज्ञान के स्रोत से स्वत बूँदें टपकती हैं। गुरु ओर शास्त्र (पुस्तके), समझानेवाले मित्र, अनुभव इत्यादि भी, वही अनायास भेजता रहता है। ('ज्ञान' ! माफ कीजियेगा !)

जैसा चश्मा, वैसा रग, वैसी दृष्टि ।

इन्द्रियो की शक्ति की सीमा ।

० से ∞ तक प्रगति की सम्भावनाये ।

कीडे-मकोडे, पशु-पक्षी, पेड-पौधो की इन्द्रियाँ ।

आमिषाशी पाधे (कार्निभोरस प्लाण्ट्स) ।

सम्भोग, मिथुनीकरण (कॉपुलेशन), बीज-विकीर्णन (सीड स्कैटरिग) ऐण्ड प्रालिफैरेशन (आत्मपुनर्जनन, प्रगुणन, अपनी वश-समृद्धि) ।

प्राडीजीज ऐण्ड जीनियसेस (विचक्षण एव प्रातिभ पुरुष) ।

सम्बुद्धि—चेतना और वुद्धि (सेण्टिएन्स ऐण्ड इण्टेलिजेन्स) ।

एक्स-रे, लेमर-रे इत्यादि ।

अध्यात्म और विज्ञान एक ही लक्ष्य की ओर सतत अग्रसर हो रहे हैं । यद्यपि, उनके रास्ते भिन्न लगते है, और उनकी चाल भी एक जैसी नही है । रास्ते अलग-अलग है । मजिल एक है । जाने (जानकर) (अध्यात्म) अनजाने (विज्ञान) (नास्तिक) वे सब अनेकानेक दिशाओ से आते हुए, उमी एक परमात्मा की ओर बढते जा रहे हैं

'यथा नदीना बहवोऽम्बुवेगा ।
यथा प्रदीप्त ज्वलन पतङ्गा ॥'

'क'

फिजिक्स (फिजिसिस्ट)—पदार्थ (मैटर) ।

(भौतिकी) (भौतिकीविद्) लम्बे अरसे से सभी पदार्थो की मौलिक अथवा बुनियादी एकरूपता या समरूपता के प्रति सन्दिग्ध रही है । उसका यह स्वीकार करना और मानना कि सारे पदार्थ एक ही अविभाज्य (अखण्ड) तथा मूल, आदि (परम) तत्त्व, कारण अथवा पदार्थ से व्युत्पन्न है—बिलकुल सही और ठीक है ।

एटम्स (परमाणु) स्प्लिट (विभाजित) = कम्बीनेशन ऑव थ्री टाइप्स ऑव पारटिक्ल्स, याने तीन प्रकार के 'कणो' का सयोग (समवाय) = एक्लेट्रोन्स + प्रोटोन्स + न्यूट्रोन्स ।

यदि 'एटम्स' के लिये 'अणु' शब्द का प्रयोग करे, तो 'परमाणु' शब्द एलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन इत्यादि के लिये व्यवहृत हो सकता है। तब 'फोटोन्स', 'क्वार्क' इत्यादि को 'कण' नही, बल्कि 'कणिका' कहना उचित होगा ।

फोटोन—एलेक्ट्रोन से भी कई गुना छोटा 'कण' ।

क्वार्क—परम (मूलभूत, आधारभूत) (?) पदार्थीय 'कण' (? अल्टिमेट मेटीरियल पार्टिक्ल)—जो सम्भवत सब कणो का जनक (मदर पार्टिक्ल) है (?) ।—जो आउटर

स्पेस (बहिरन्तरिक्ष) मे कॉस्मिक रेज (ब्रह्माण्डीय किरणो) के साथ पाया जाता है—यह सूक्ष्मतम (?) 'कणिका' क्वार्क से अभिहित है।

मॉडर्न फिजिसिस्ट इज कनभिन्स्ड दैट देअर मस्ट बी ए सिगल इनडिभिजिब्ल प्राइमरी सब्सटान्स ऑव व्हिच दि वर्ल्ड ऑव मैटर इज कम्पोज्ड। लेट अस कॉल इट, 'क'। (आधुनिक भौतिकशास्त्रियो के अनुसार एक अविभाज्य, अखण्ड, आदि (मूल) प्राथमिक कारण-तत्त्व अवश्य है (होना चाहिये) जिससे पदार्थ-जगत् निष्पन्न (निर्मित) है। इसे हम 'क' कह ले।

ऊर्जा—एनर्जी।

तरग—वेभ।

प्रकाश (लाइट), ताप (हीट), विद्युत् (एलेक्ट्रिसिटी), चुम्बकत्व (मैगनेटिज्म), ऑल एनर्जीज आर इण्टर कनवर्टिब्ल वन इनटू अदर (सब ऊर्जाएँ एक से दूसरे मे परस्पर परिवर्त्तनशील है)।

ऊर्जा-इकाई (एनर्जी-यूनिट)।

प्राथमिक ऊर्जा-इकाई (प्राइमरी एनर्जी-यूनिट)।

आल 'मैटर' इज कम्पोज्ड ऑव ए सिंगल इनडिभिजिब्ल सब्सटान्स—इज इट दि 'क्वार्क'? ऑर आर देअर पार्टिक्ल्स ऑव मैटर स्टिल स्मॉलर ऐण्ड फाइनर दैन दि ऑलरेडी डिस्कॉभर्ड—'क्वार्क'? (तु० पदार्थ की दशाये (स्थितियाँ)। ठोस, (सॉलिड), द्रव, (लिक्विड), गैस, प्लाज्मा इत्यादि)।

आल्सो व्हेदर मैटर कनसिस्ट्स ऑव डिस्क्रीट पार्टिक्ल्स ऑर ऑव स्टैटिक वेभ्स ऑर ऑव वेभ्स इन मोसन (गतिशील) (डिनामिक)।

तु०, 'वेभिक्ल', 'क्वाण्टम'।

चाहे पदार्थ या ऊर्जा समान भी हो या भिन्न भी।

तु० पार्टिक्ल एण्ड वेभ—'वेभिक्ल'।

क्वाण्टम।

मैटर ऐण्ड एनर्जी='मैटेनर्जी' या 'मैटर्जी'।

विश्व (युनिवर्स)। आकाशगगा (गैलेक्सीज)। नक्षत्र। सूर्य (सन)। पृथ्वी (अर्थ)। चन्द्र (मून)। उल्कापात (मेटिऑराइट्स)। ब्रह्माण्डीय रेणु-कण (कॉस्मिक डस्ट)।

मानस तत्त्व, मानस पदार्थ—(माइण्ड सब्सटान्स)

खाली दिखनेवाला आकाश (एम्प्टी लुकिग स्काई) कॉस्मिक क्लाउड—प्लैनेट।

तु० आत्मा का पदार्थीकरण, भौतिकीकरण (मेटीरियलाइजेशन)। भूत-प्रेतादि। यमुनाजोर नदी के किनारे खडा, देवघर-स्थित तटिनी-कुटीर की घटना।

सजीव (लिभिग)। निर्जीव (नन-लिभिग)

(प्रोटोप्लाज्म) जीवन-रस, प्राण-रस, प्ररस, जीवन-सार। मौलिक जीवन-शक्ति—(प्राइमोरडीअल लाइफ फोर्स)।

चैतन (सेन्टिएण्ट)। बुद्धिमान् (इण्टेलिजेण्ट)।

पशु (एनिमल)। पौधे (प्लाण्ट)। एककोषीय (यूनिसेल्यूलर)। बहुकोषीय (मल्टिसेल्युलर)।

मनुष्य। मानवीय अवयव (ह्यूमन ऑर्गन्स)। मस्तिष्क और बुद्धि (ब्रेन ऐण्ड इण्टेलिजेन्स)।

मादा (फिमेल)। नर (मेल)। हर्मोफ्रोडाइट (उभयलिंगी)।

खगोल-विज्ञान (अन्तरिक्ष-विज्ञान) (एस्ट्रॉनॉमी)।

'ख'

इस विश्व की सृष्टि का सिद्धान्त—इस सम्बन्ध मे खशास्त्रियो द्वारा कोई भी मान्य, प्रमाणित या ठोस सिद्धान्त या परिकल्पना (अवधारणा) को निश्चित रूप से स्वीकार नही किया गया है।

सूर्य एक नक्षत्र (तारा) है। नक्षत्र की उत्पत्ति कैसे होती है?

खगोलशास्त्रियो ने बाह्य अन्तरिक्ष मे, जहाँ कुछ भी स्पष्ट या दृश्य नही है, नक्षत्र के जन्म की प्रक्रिया को गौर से देखा (निरीक्षण किया), तो एकाएक पदार्थवत् ज्योतिर्मय मेघ के दर्शन हुए, जिसे ब्रह्माण्डीय मेघ, 'कॉस्मिक क्लाउड', कहकर पुकारा गया। ऊपर से स्पष्टत कुछ-नही दीखनेवाला यही 'मेघ' 'शून्य' मे स्वत आविर्भूत होता है और घनीभूत होकर नक्षत्र बनता है।

स्पष्टत खाली (रिक्त) दिखनेवाले अन्तरिक्ष मे अवश्य ही कोई वस्तु (सत्ता) है, जो इस कॉस्मिक क्लाउड को उत्पन्न करता है।

यह पदार्थ-तत्त्व=अन्तरिक्ष के सभी पदार्थों का स्रोत='ख' (इसे 'ख' कह लीजिये)।

यह भौतिक शास्त्रियो का—'क'=खगोल-विज्ञानियो का—'ख'।

प्राणिशास्त्र (जीव-विज्ञान)। (बायोलॉजी)। जीवविज्ञानी (बायोलॉजिस्ट)।

'ग'

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति, प्रगति या विकास।

धरती की उत्पत्ति के बाद, आवश्यक तापक्रम और आर्द्रता की अनुकूल (सही) परिस्थिति मे जीवन का उदय हुआ। प्रारम्भ मे जीवन का उदय जीव-द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) की समष्टि के रूप मे हुआ। शीघ्रता से घटते हुए पानी मे शरीरधारी (पदार्थ-निर्मित प्राणी) का उदय हुआ होगा। पानी के अन्त स्रोतो के समीप जमीन पर जिन्होने जडे जमायी, वे वनस्पति बन गये।

वे जो पानी मे रह (बच) गये, वे बाद मे मछली के जीवन मे जगे।

इनमे कुछ जीवो ने सूखी जमीन पर बसने का साहस किया और तब वे स्थल-जलचर, जलथलिया, जलभूमिया जीव (एम्फीबिआ) के रूप मे उदित और विकसित हुए।

इन एम्फीबिअन्स मे कुछ उच्चतर विकास पाकर स्थायी तौर से जमीन पर रहने लगे। इस प्रकार पशुओ का जन्म हुआ।

इस प्रकार, चेतन (चेतनावान्, सम्बुद्ध) जीवन का पृथ्वी पर उदय हुआ।

पशु ही विकास-प्रक्रिया-क्रम मे मानव (मानव-जाति) (होमोसैपियन्स) के रूप मे विकसित हुए।

मनुष्य के पूर्वज।

प्रोकॉनसल। रामापिथेकस। औस्ट्रैलोपिथेकस। होमो-एरेक्टस। नियानडर्थलमैन। क्रो मैग मैन।

मनुष्य की उत्पत्ति मे इस तरह बुद्धि-सम्पन्न जीवन (इण्टेलिजेण्ट लाइफ) का धरती पर अवतरण हुआ।

जड (निर्जीव पदार्थ) (इनर्ट मैटर)। सजीव पदार्थ (लिभिंग मैटर)। जीवन का मूल (आरजिन ऑव लाइफ)। सम्बुद्धि चेतनाशीलता (सेन्सिएन्स)। बुद्धि (इनटेलिजेन्स)। विवेक (रैशनेलिटी)।

क्या पृथ्वी और जल निष्प्राण हैं ?

क्या पत्थर और पहाड और नदी-समुद्र निष्प्राण है ?

सजीव बनाम निर्जीव। 'जीवन' और 'सजीव' की परिभाषा। जीवन के गुण-धर्म।

बुद्धि-विवेक।

क्या धरती की बुद्धि या 'मानस' पार्थिव है ?

पदार्थ (मैटर)—(अ) निर्जीव, (आ) सजीव। जीवन्त प्राणिपदार्थ (लिभिंग बायोलॉजिकल मैटर)।

शरीर (बॉडी)। मानस (माइण्ड)। विकास (डेभलपमेण्ट)। विविध इन्द्रियो और अवयवो का विशिष्टीकरण। विकास (डेभलपमेण्ट)। अपने गुण-वैशिष्ट्यो के साथ विवेकशील मानस का विकास।

मस्तिष्क (ब्रेन) बनाम मानस (माइण्ड)।

पदार्थ स्वभावत (प्रकृतित) जड है। यह स्वत परिवर्त्तित नही होता। यह तब परिवर्त्तित होगा या हो सकता है, जब किसी बाहरी बल (एक्सटर्नल फोर्स) की इसपर क्रिया हो।

इसलिए (अत), कोई सतत उपस्थित (उपलब्ध) बल अवश्य है और होना चाहिये, जो सदा और शाश्वत हो।

यह 'बल' (शक्ति) सृष्टि का (असृष्ट कारण) (अनक्रिएटेड कॉजेज ऑव क्रिएशन)। परम, मूल, आदि (अल्टिमेट) शक्ति है। निर्जीव को सजीव मे रूपान्तरित करने का उत्तरदायी, फिर इस सजीव पदार्थ को सचेतन सजीव (पदार्थ) मे, सचेतन सजीव पदार्थ को बुद्धिसम्पन्न सजीव पदार्थ मे, बुद्धिसम्पन्न सजीव पदार्थ को विवेकशील सजीव पदार्थ मे समर्थ है।

निर्जीव (जड) पदार्थ (प्राणहीन)
↓ बल (शक्ति) फोर्स
सजीव पदार्थ (लिभिग मैटर) जीवन (लाइफ)
↓ बल (शक्ति) फोर्स
पार्थिव मानम सृष्टि सम्बुद्ध मचेतन सजीव पदार्थ (सेन्सिएण्ट लिभिंग मैटर)
↓ बल फोर्स
बुद्धि-सम्पन्न सचेतन सजीव पदार्थ (इण्टेलिजेण्ट सेन्सिएण्ट लिभिग मैटर)
बल फोर्स ↓
मनुष्य-सृष्टि विवेकशील बुद्धि-सम्पन्न सचेतन सजीव पदार्थ
(रैशनल इनटेलिजेण्ट सेन्सिएन्स लिभिग मैटर)

जीवन-शक्ति (लाइफ फोर्स, लाइफ डिभाइन) (के रूप मे भगवान्) सर्वत्र और सतत (प्रवहमाण है) मौजूद है, उपस्थित है। उसकी सृष्टि नही होती, वह तो है ही। उस शक्ति के सम्पर्क (कण्टैक्ट)-मात्र से, उससे जो छू गया, वह जी गया। जीने की योग्यता होनी चाहिये, जीने के लिये समुचित परिवेश होना चाहिये। जी पाने की क्षमता होनी चाहिये। जैसे, बीज मे अकुर फूट पडते है। जैसे, भ्रूण विकसित होने लगता है। जन्म शरीर का होता है। रूह अजन्मा है। मृत्यु देह की होती है। आत्मा अमर है।

मानस (माइण्ड)। पृथ्वीसीमित (लिमिटेड)। पदार्थ (मैटर)। ऊर्जा (एनर्जी)। सार्वभौम सत्ता।

पदार्थ को स्वय मानस (माइण्ड) नही है। यह रहित है—जीवन (लाइफ), चेतना (सेन्सिएन्स), बुद्धि (इनटेलिजेन्स) तथा विवेक (रैशनेलिटी) इत्यादि से भी।

[विकास-प्रक्रिया-क्रम मे उस सर्वसमर्थ सक्रिय बल के कारण ही इन गुणो का उदय (प्राप्ति) हुआ।]

इसलिये, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि जिस सक्रिय बल (शक्ति) की प्रेरणा से जड पदार्थ विविध स्तरो से गुजरता हुआ अन्त मे मनुष्य-स्वरूप को प्राप्त हुआ (मे आया) उसमे जीवन के गुण अवश्य है (होगे), यानी उसमे चेतना और बुद्धिमत्ता अवश्य ही है (होगी)।

हम इस सजीव, बुद्धियुक्त बल (शक्ति) को 'ग' कहे अथवा सार्वभौमिक चेतना या पराबुद्धि (महद्‌बुद्धि) इत्यादि।

इसी शक्ति (बल) (फोर्स) का प्रदान,

१ जीवन (प्राण) (लाइफ)
२ सम्बुद्धि-चेतना (सेन्सिएन्स)
३ बुद्धि (इण्टेलिजेन्स) }
४ विवेक (रैशनैलिटी) } मानस (माइण्ड)

जड पदार्थ को मिला है।

यही शक्ति (बल) जो प्रत्यक्षत (स्पष्टत) (बाह्यत) शून्यवत् प्रतीत होती है ? इसी ने विश्व, नक्षत्र-ग्रह, व्यवस्थित ब्रह्माण्ड, की सृष्टि की है। इसी से (इसी ने) पदार्थो की सृष्टि हुई (की)।

प्रतीतित प्रत्यक्ष (स्पष्ट प्रकट) शून्यता मे से अपने द्वारा रचे-बेरचे अस्तित्वो के पीछे यही शक्ति (बल) (ऊर्जा) थी।

प्रत्यक्ष शून्यता (एपारेण्ट नथिंगनेस)। अव्यक्त (दि अनमैनिफेस्ट)। व्यक्त (दि मैनिफेस्ट)।

स्रष्टा (क्रीएशन)। हम नही जानते कि इसे एक बल (फोर्स) कहा जाय या एक ऊर्जा (एनर्जी)। यह बल या शक्ति (फोर्स) या ऊर्जा (एनर्जी) व्याख्येय कैसे हो ? 'बल' (फोर्स) या 'ऊर्जा' (एनर्जी) उस स्रष्टा के गुण-वैशिष्ट्य भर हो सकते है।

सृष्टि (क्रीएशन)। पदार्थ (मैटर)। ऊर्जा (एनर्जी)। (भौतिकीय नियम)। रासायनिक नियम (केमिकल लॉ)। मानस (माइण्ड), जीवन (लाइफ), शरीर (बॉडी) जैविक नियम (जीवशास्त्रीय)।

सृष्टि (क्रीएशन), कण (अणु, परमाणु) (पार्टिक्ल्स), तरग। (वेभ्म)। सृष्टि पदार्थ (मैटर), ऊर्जा (एनर्जी)।

सृष्टि सार्वभौम विधान (कॉस्मिक लॉ)। भौतिकीय (फिजिकल), केमिकल (रासायनिक), बायोलॉजिकल (जीववैज्ञानिक)।

सृष्टि, जीवन (लाइफ)। शरीर (बॉडी)। मानस (माइण्ड)।

सृष्टि, सावभौमिक विधान (कॉस्मिक लॉ)। विकास (इभोल्युशन)-सम्बन्धी विधान।

इभोल्युशन शरीर (बॉडी)। एककोषीय (यूनिसेल्यूलर) प्राणी से मनुष्य तक। अवयव, इन्द्रियाँ, मानस (माइण्ड)। इन्द्रिय (सेन्सेज), चेतना (सेन्सिएन्स), बुद्धि (इण्टेलिजेन्स), विवेक (रैशनेलिटी)।

सृष्टि (क्रीएशन)। विकास (इभोल्युशन ऑव) मनुष्य का।

शरीर-सरचना (एनाटोमी)।

शरीर-क्रिया (फिजिओलॉजी)। अवयव (ऑर्गेन्स)। ज्ञानेन्द्रिय (सेन्स ऑर्गेन्स)। मस्तिष्क और इसके क्रिया-व्यापार (ब्रेन ऐण्ड इट्स फिजिओलॉजिकल फक्शन्स)। माइण्ड (अन्त करण)।

अन्त करण (मानस) (माइण्ड) और इनके गुण-वैशिष्ट्य (ऐट्रीब्यूट्स)। मन (साइक्-इ)। मूल प्रवृत्ति (इन्स्टिंक्ट)। विवेक (रैशनैलिटी)।

शक्ति, बल (दि फोर्स)। मूल, आदि (प्रिमार्डिअल) सत्ता। जिसने उसे रचा और विकसित किया। सार्वभौम मानस चेतन (कॉस्मिक माइण्ड)।

सार्वभौम मानव (कॉस्मिक मैन)।

परम सत्ता (अस्तित्व), (दि सुप्रीम एग्जिस्टेन्स)। सार्वभौम शक्ति या बल और कॉस्मिक पावर ऐण्ड फोर्स, विधान ऐण्ड लॉज।

सार्वभौम मेघ (कॉस्मिक क्लाउड)। सार्वभौम सर्जनात्मक प्रक्रिया (कॉस्मिक क्रीएटिव प्रोसेस)। सार्वभौम मानस (कॉस्मिक माइण्ड)। (परम चेतन)। सुप्रीम कॉन्ससनेस परस्पर परिवर्त्तनीय का परिवर्त्तन।

जानकारी, वाकफियत, सज्ञानता, सावधानता (अवेयरनेस)। चिन्तन, विचार। (दि थॉट)।

अस्तित्व (एग्जिस्टेन्स)। सज्ञा (कॉन्ससनेस)। विधान (लॉ)।

सार्वभौम स्रष्टा (कॉस्मिक क्रीएटर)। परम सत्ता (दि सुप्रीम बीइङ्ग)। सार्वभौम मानस (दि कॉस्मिक माइण्ड)। परम सज्ञा (दि सुप्रीम कॉन्ससनेस)। सार्वभौमिक विधान (दि युनिवर्सल कॉस्मिक लॉ)।

दि सेल्फ—दि 'हम'—दि ओ३म्—दि 'ब्रह्म'—=ब्रह्म। परमात्मा—परमपुरुष।

गणित के नियम भी जो स्पष्टत मनुष्य-निर्मित है और जो अमोघ नही है—वे भी प्रकृति के घटना-क्रमो, वैज्ञानिको के अनुभवो और अनुसन्धानो से निर्गत और व्युत्पन्न (डिराइव्ड फ्रॉम) किये हुए है और उन्ही की व्याख्या-विवेचना के लिये ही है। वे पदार्थ-वैज्ञानिक, रासायनिक और जीव-वैज्ञानिक नियमो (विधानो) मे व्यापक है। लेकिन, अन्त करण के विधानो मे या अन्त करण (मानस) और मन के विविध परतो, तहो, स्थितियो और स्तरो मे उनकी पैठ नही है। भौतिकी (फिजिक्स), रसायन-शास्त्र (केमिस्ट्री), प्राणिशास्त्र (बायोलॉजी) और गणित (मैथेमेटिक्स) के नियमो का अन्त करण (माइण्ड) से कोई सरोकार नही और ये असमर्थ हैं अन्त करण और आत्मा के विधि-विधानो तथा तौर-तरीके को समझने-समझाने मे। अवलोकित घटना और इसके रूप-प्रकार (प्रकटीकरण, व्यक्तता) (दृष्ट वस्तु-स्थिति) आइसबर्ग की तरह है, जिसकी सिर्फ सतह, छोर या फ्रिज दिखायी पडता है, सिर्फ एक सीमान्त या किनारी, और जिसका समग्र आकार (स्वरूप) पार्थिव अस्तित्व तल पर नही देखा जा सकता है, क्योकि वह बुनियादी तौर पर, अधिकतया, और प्राय पूर्णत, विश्व-सिन्धु (कॉस्मिक ओसन, ब्रह्माण्डीय महासिन्धु) और इसके स्रष्टा (क्रीएटर) की असीमता मे निमग्न है।

महान् वैज्ञानिक आइस्टाइन, जेम्स और एडिंगटन इस निष्कर्ष और निश्चय (धारणा) (विश्वास) पर पहुँचे कि परमतत्त्व (अल्टीमेट सब्सटान्स) जिससे विश्व निर्मित है, पदार्थ एव ऊर्जा से परे है और केवल माइण्ड सब्सटान्स मनस्तत्त्व, मानस के रूप मे ही अभिहित किया जा सकता है, माना (पुकारा, पहचाना, समझा) जा सकता है। विचार आकृति बन जाता है और दृश्य बनकर व्यक्त हो जाता है। Thought dons a body and appears (उपस्थित होता है) dressed up

(सुसज्जित)। The liliputian imitation (अनुकरण) of the Herculean way is fair but funy, Amazing (आश्चर्यकारी) and Amusing (मनोरजक)। अपने छोटे दायरे मे मानव-मानस भी 'सृष्टि' का वही तरीका अख्तियार करता है।

आत्मा (सेल्फ) कहता है—शाबाश! और एक दमित आनन्द, हर्ष, छा जाता है सृष्टि मे। पूछिये कलाकार से, वैज्ञानिक से, माँ से, वैद्य से, गृह-निर्माण-शिल्पी (राजगीर, वास्तुकार) से, कि क्या ऐसा कहना गलत है? आत्मा स्वत अपने मे आनन्दित होती है। बेशक मे कमाल की चित्रकारी है, विचित्र विस्मयकारी वर्ण है और बडा ही विस्तृत और रग-विरगा चित्रफलक है। समुझत बने जाय नहिं बरनी। लफ्जो मे महदूद नही हो सकता यह। कोई शब्द ऐसा नही, जो इसका सही-सही बखान करे।

शुक्र है खुदा का (परमात्मा को धन्यवाद) कि आत्मा (सेल्फ) मनुष्य के चिन्तनो, विचारो और भावो को चालता रहता है, छाँकता-छानता रहता है और विवेक इसकी बागडोर थामे रहता है, इसे सयमित-नियमित रखता है, वर्ना आदमी की हवस क्या न कर बैठे! कबल इसके कि मनुष्य की इच्छा-शक्ति न सिर्फ इस लोक मे, बल्कि इसके बाद परलोक मे भी, अहितकर और दुष्ट परिणाम पैदा कर दे, विवेकी आत्मा (जीवात्मा) सजग हो जाया करता है और शरारती वाछाओ (चाह) का शमन-दमन करता रहता है।

उसने (परमात्मा ने) भी अपनी दुनिया (ब्रह्माण्ड) बनायी (बसायी) और उसने मुझको (जीवात्मा को) भी अपनी दुनिया (ससार-घर) बनाने (बसाने) की क्षमता दी। तरीके एक सरीखे रहे। क्योकि, विधान सबके लिये एक-सा है, पिण्ड के लिये और ब्रह्माण्ड के लिये।

वह असीम (इनफिनाइट) असख्य शक्ति (पावर) की ज्योति है। 'मै' मान लीजिये, १०० पावर का बल्ब है या जीरो पावर का। 'मै' की रोशनी इर्द-गिर्द भर तिरोहित होकर रह जाती है। लेकिन, दोनो प्रकाश एक ही जाति (तरह, कोटि, प्रकार) की और समान गुणधारी ऊर्जा है।

आदमी (मैं) अपने बल्ब-पावर (शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता, ज्ञान, बुद्धि, विवेक) को बढा सकता है। वह मानव से अति-और महा-मानव भी बन जा सकता है। लेकिन, जीवन एक है और दु साध्य हैं। वह अपने बूते जहाँ तक बढ पाता है, वहाँ तक पहुँचने के बाद प्रभु सुयोग्य का स्वय वरण कर लेता है। सामीप्य-सायुज्य-सालोक्य-सारूप्य। वर्ना आदमी की शक्ति सीमित है और जाना बहुत दूर है। साधन है ही कितना। साधक है ही कैसा?

इसान भी अपनी विचार (क), शक्ति को अधिक सक्षम बना सकता है, और लैसर-रे की नाई वह उसे व्यवस्थित कर एकरसता (एकसमानता एकसमता—

सगति) बिखरने न दे, बल्कि, तीर की तरह लक्ष्य-भेद करने के हेतु, निर्धारित दिशा मे, शर-सन्धान कर निशाने पर चलाये, तो मनोरथ की पूर्त्ति अवश्यम्भावी है ।

सृष्टि को एक दूसरे तरीके (ढग) (दृष्टिकोण) से भी देखा जा सकता है। मनुष्य जो कुछ करता है या कर सकता है, जितनी तरह के काम। मनुष्य अपने मे जिस भाँति के गुण-दोष पाता है, उन सब तरह की क्षमताओ को, उन सब प्रकार की शक्तियो को, उन सव भाँति-भाँति के गुणो को, दोषो को भी, वह परमात्मा मे आरोपित करता है ।

मनुष्य की नजर और विचार मे, उसकी राय मे, परमात्मा उसी (मनुष्य) का विराट् रूप है। जिसकी शक्तियाँ, गुण, क्षमता इत्यादि अपनी-अपनी चरम स्थिति पर है। 'एकोऽह बहुस्याम' और 'सोऽहम्' की कल्पनाओ मे यही भावना छिपी हुई है। मनुष्य आखिर अपने ही गज से तो भगवान् को नाप सकता है। जिस चश्मे से वह ससार को देखता है, परमात्मा को देखने के लिये भी उसके पास वही चश्मा उपलब्ध है। अपने खयालो मे, अपने स्वप्नो मे, अपने ध्यान मे, वह वही रूप देख सकता है, उसी वस्तु-स्थिति की कल्पनाये कर सकता है, जिसका उसे, आशिक या सर्वाश मे, अनुभव हो ।

और, जब वह सगुण ब्रह्म को प्रतिपादित (इण्टरप्रेट) करने मे अपने को असमर्थ पाता है, तब वह सगुण का उल्टा निर्गुण ब्रह्म की कल्पना मे डूब जाता है और अपने को (अपनी मानसिक स्थिति को) उस जटिल परिस्थिति से उबारने के लिये कहने लगता है कि परमात्मा वर्णनातीत और गुणातीत है। वह न यह है, न वह। सच पूछिये, तो मुझे कुछ भी पता नही चल रहा है कि वह परमात्मतत्त्व क्या है और कैसा—'नेति-नेति'। ऐसा अनुभव होता है कि परमात्मा है। उसकी स्थिति है, ऐसा प्रतीत होता है। यह कैसे ? अपार शक्तियो से भरी है प्रकृति, जो किसी प्रबुद्ध सृष्टिकारक की ओर सकेत करती है। निर्धारित पथ। अकाट्य क्रम। अनादि काल। और, कह आया हूँ न कि मार्त्तण्ड ने एक दिन भी अपनी समयनिष्ठता, समय की पाबन्दी नही तोडी और काल-चक्र एक पल के लिये भी न ठहरा। और कि, नैसर्गिक प्रवृत्तियो (इन्सटिंक्ट्स) ने मूढ प्राणियो की जीवन-सारिणी मे भी कभी गलती नही की। माँ के स्तन ने असहाय नवजात शिशु को कभी दूध देने से इनकार न किया। भक्तो को परमात्मा से कभी निराशा नही मिली। डेग-डेग पर परमात्मा की करुणा अपनी सुगन्ध बिखेरती रही, अपना सौरभ लुटाती रही ।

अगर परमात्मा न होता, तो अनादि काल की जराजीर्ण आस्था कब की मर-मिट गयी होती ।

परमात्मा जीवात्मा से सूक्ष्मतर है। जिस किसी स्रोत (उत्स) से विश्व का उद्भव हुआ हो, वैज्ञानिक सहमत है कि वह स्रोत (उत्स) सभी गणितज्ञो से (मे) महान् (महत्तम) है, सभी भौतिकशास्त्रियो से (मे) महान् (महत्तम) है, सभी रसायन-शास्त्रियो से (मे) महान् (महत्तम) है तथा सभी जीवशास्त्रियो से (मे) महान्

(महत्तम) है, क्योकि दुनिया के सारे जटिल भौतिक, रासायनिक, जैविक तथा गणितीय नियम (विधान) उसी (स्रोत या उत्स) से व्युत्पन्न अथवा निर्गत हुए है। ये सारे बौद्धिक विधान (नियम) तथा उनकी अन्त क्रिया केवल उसी से उत्पन्न हो सकते है, जिसके पास एक मानस (माइण्ड) (बुद्धि) होगा, (क्योकि) यही सारे बौद्धिक और चेतना-प्रेरक क्रिया-कलाप का आधार है। इसीलिये, वे कहते है कि विश्व मनस्तत्त्व बुद्धितत्त्व स्रष्टा (परमात्मा) के वैश्व अथवा सार्वभौम अथवा ब्रह्माण्डीय मानस तथा उस (स्रष्टा अथवा परमात्मा) की पराबुद्धिमत्ता अथवा सर्वोच्च बुद्धि मय-(शील)-ता पर आधृत है।

परमात्मा पूर्व-वर्णित 'क'+'ख'+ 'ग' का सर्व-योग (कुल जमा या योग-फल) है। देखिये 'विचारसेतु' स्वामी भूमानन्द तीर्थ)।

ईश्वर सर्व-कर्म-अध्यक्ष है।

ओ३म् (नाद-ब्रह्म, अनहद-नाद, बीज-मन्त्र, परमात्मा का द्योतक)। भूर्भुव स्व (त्रिभुवन, ब्रह्माण्ड, सृष्टि) (जन्म-जीवन-मरण)। तत् (उस) सवितु (सर्वव्यापी, जीवन-स्रोत-पार्थिव-सृष्टि का) (पार्थिव-सृष्टि का स्रोत और नियामक-सूर्य-रूप परमात्मा) वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ, वरण और हृदयगम करने योग्य) देवस्य (परमात्मा के) भर्ग (महान् ज्योति, प्रकाश) [का] धीमहि (हमलोग ध्यान धरते है) यो (जो) न (हमलोगो की) धियो (बुद्धि, मानस) [को] प्रचोदयात् (प्रस्फुटित, प्रभावित, प्रकाशित) (करने के निमित्त) (कि जिसमे कि) (करे)।

वह सन्तत, अखण्ड, अविच्छिन्न, अविरत—स्थिति।

=स्थिति-सातत्य परमात्मा का। चाहे इसे जो भी नाम दीजिये आप, लेकिन आपकी सकल्पना (धारणा, कनसेप्ट) साफ जाहिर होनी चाहिये।

विविक्त (असन्तत, डिसक्रीट) कणो से विपरीत, भिन्न और उल्टा (आपोजिट)। (ये 'कण' अलग-अलग गिने जा सकते है)।

दृष्ट (आभासी, अपैरेण्ट, प्रतीयमानत, 'ऊपर-ऊपर से', सन्तत (अखण्ड) मीडिआ (पर्यावरण, मध्यस्थ पदार्थवाहक) (अपैरेण्टली कण्टिन्युअस मीडिआ) गिना नही जा सकता (इसके अशभूत, सघटक, अगीभूत, कस्टिट्युएण्ट पार्ट्स अलग-अलग गिने नही जा सकते, लेकिन यह नापा और तौला जा सकता है और यह हिस्सो मे बाँटा भी जा सकता है (तु० जल, दूध, वायु)। लेकिन, वास्तव मे ये भी वस्तुत (असल मे, सचमुच) अखण्ड और अविरत नही कह जा सकते। चूँकि (अ) ये भी विविक्त (डिसक्रीट) कणो से निर्मित (बने) है (उदाहरणार्थ, परमाणु, अणु, H_2O, प्रोटीन, जीवाणु, इत्यादि), (आ) ये भी विभाजित किये जा सकते है और आपस मे एक दूसरे से अलग किये जा सकते हैं—उदाहरण और तुलनार्थ—(क) पानी की बूँदे, (ख) बर्फ-कण या हिम-तूल (फ्लैक्स ऑव आइस), (ग) बर्फ के टुकडे या चट्टान, (घ) समुद्र—अनन्त—सागर का जल भी अनेकानेक पात्रो मे अलग-अलग रखे जा सकते है और उनका एभैपोरेशन, बाष्पन, बाष्पीकरण इत्यादि द्वारा रूप भी बदला जा सकता है।

बदल जाना एक कम-या न्यून-या कमतर या अपूर्ण-अखण्ड स्थिति का एक 'अखण्डतर' या अधिक अखण्ड स्थिति मे—या एक न्यूनाधिक अखण्डता का एक-दूसरे मे।

सभी प्रकार की ऊर्जा और पदार्थ और घटना के पार्श्व मे यह स्थिति-सातत्य सदा सर्वत्र व्याप्त है। सभी कुछ इसी का परिवर्त्तित स्वरूप है (जैसे बर्फ—समुद्र)।

बर्फ-परत—बर्फ-खण्ड—बर्फ-पु ज [खण्डन से (टूटने से) चूर्णन से]।

गलने से

→

बर्फ————————————पानी

←

जमने से
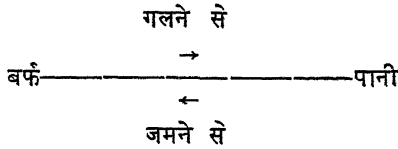
रबर बढाया जा सकता है और घटाया भी, और यह दोनो हालतो मे स्पष्टत, निरन्तर (सतत) रहता है। तुल्य—गैस, द्रव। शैत्य और ताप का ठोस वस्तुओ पर प्रभाव।

परमात्मा ईश्वर सचमुच निरन्तर (सतत)-(स्थिति) मे है। दो या दो से अधिक सर्वव्यापी स्थिति-सातत्य सम्भव नही, क्योकि यह सबमे—हरेक मे, हर जगह और हर हमेशा व्याप्त है। इसका विभाजन नही हो सकता और इसकी सततता सर्वव्यापी और सनातन शाश्वत है। यह न गण्य है, न परिमेय है। यह अपने तेजस् मे स्थित स्वय का ही विशद विस्तार है।

यह समस्त अस्तित्वो, समस्त विचार-प्रक्रियाओ, समस्त ज्ञान, समस्त काल और समस्त दिक् का आधार (पृष्ठभूमि) है।

यह विश्व एव प्रकृति-विधानो का आधार पृष्ठभूमि है। यह अपने ही जैसा था, है, और रहेगा। अपनी सर्वव्यापी और सन्तत प्रकृति के कारण यह अनुपम तथा अपनी प्रकृति और प्रकार मे अप्रतिम है—न ठोस, न तरल, न गैस, न प्लाज्मा।

यह समस्त गण्य तथा परिमेय अस्तित्वो तथा समस्त गणित के पीछे शून्य (०) की तरह है। जैसे शून्य की अपनी सत्ता है, उसी तरह ईश्वर शून्यता मे विद्यमान है और इसको अनुभूत, अनुमित तथा प्रमाणित किया जा सकता है। यह अन्धकार और प्रकाश दोनो के पीछे समान समग्रता-पूर्वक स्थित है।

एक अन्तराल है घटनाओ का, अणुओ-परमाणुओ का, ऊर्जा के क्वाण्टा का, तरगो के स्पन्दन के बीच का भी, चाहे पदार्थ स्थूल (सॉलिड), तरल (फ्लुइड), गैस या प्लाज्मा रूप मे हो, चाहे अन्य किसी रूप मे, वह निश्चय ही ऐसे तत्त्वो का बना हुआ है, जो पूर्णत अखण्ड नही है और जो अन्तराल तथ। निरन्तरालता (नैरन्तर्य, निरन्तरता) का घोल (मिश्रण) होगा।

इन सबकी पृष्ठभूमि मे एक ऐसा भी तत्त्व है, जो सतत और अखण्ड है, जिसका न रूप है, न अरूप और वही है परमात्मतत्त्व (परमतत्त्व), जिसमे सबका उद्भव और अन्त होता है, जहाँ से सृष्टि जन्म लेती है और जहाँ मृत्यु मर जाती है। उसी परमतत्त्व के लिये एक साकेतिक नाम 'स्थिति-सातत्य-रूपारूप' रख दिया है, जो ईश्वर (विभु) के अनेकानेक सुनामो मे एक ऐसा नाम है, जो उसकी महत्ता का द्योतक है।

जो विभिन्न (गण्य) कणो से निर्मित है—प्रकृति (सम्बद्ध) है, और जो सन्तत (अविभाज्य, अखण्ड) सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, सर्वान्तर्यामी, सार्वभौमचेतनाव्यापी है—वही परमात्मा (ईश्वर) है।

द्रष्टव्य पानी और हवा की तरह स्पष्टत सन्तत (निरन्तर) माध्यम गण्य नही हो सकता। परिमेय हो सकता है। लेकिन याद रहे, पानी भी विभिन्न H_2O कणो (अणुओ) से, तथा हवा अनेक गैसो और उनके परमाणुओ के मिश्रण से बना है। किन्तु, जैसे कौडियो और सिक्को का समूह गिना तो जाता है, तौला नही जाता। वह जो सन्तत स्थिति मे काल और दिक् पर वितान-सा तना हुआ है तथा इनके माध्यम से प्रत्येक पदार्थ मे फैला है, वही परमात्मा है। परमात्मा है, जिसका नाश नही हो (ता)। 'हम' वही है—यह (शरीर) बदल रहा है। उमी 'हम' मे ही परमात्मा है, उसकी प्राप्ति का जो स्थान है, वह 'हम' मे है। 'हम' का नित्यवास परमात्मा मे है। 'यह' उत्पत्ति भी 'हम' मे (से) है। शिवतत्त्व—'हम' तत्त्व (अनुत्पन्न—भगवान् सदाशिव) उमी के आश्रित गौरी मैया—मूला शक्ति। समर्थ—जो सबको अपना सके।

परमात्मा से हमारा जातीय नित्य आत्मीय सम्बन्ध है। परमात्मा अपना है, अपने मे है, अभी है। परमात्मा है—स्वीकार करना है। जगत् की स्थिति नही है, 'हम' से सन्तुष्ट होगे, तो 'हम' मे सत्तारूप परमात्मा रहेगा।

(गुरुवाणी+वेदवाणी+भक्तवाणी+सन्तवाणी से) 'सुनते' आये है—इस आधार पर स्वीकृत करें कि परमात्मा है (प्रारम्भ मे)। उसकी प्राप्ति के लिये पराश्रय और परिश्रम नही चाहिये। जगत्—सदैव नही है—स्थिति नही है इसकी। (सुतरा इसका क्या भरोसा)। अपने द्वारा—'हम' के द्वारा—शरीर द्वारा नही, प्रभु-प्राप्ति का सयोग सम्भव है।

आस्था-श्रद्धा-विश्वास—महामहिम है।

प्रभु-विश्वास, प्रभु-प्राप्ति का अचूक उपाय है।

जो इन्द्रियगोचर होता है, उसकी स्थिति बिना स्थिति के उत्पन्न नही होती। जल—लहर। प्रतीति मे स्थिति नही दीखती। इसलिये, जो आधार होगा, उसमे स्थिरता होगी। प्रकृति मे गति है, ज्ञान नही है, प्रेम नही है (बम निर्दोष को नही मारता ?)

विज्ञान (सायन्स) ने शरीर-धर्म की सीमा बढा दी। [पैदल—यान (प्लेन)]।

लकीर का फकीर न बने। गलतफहमियो मे कदापि न पडे। किंवदन्तियो से पिण्ड छुडाना ही ठीक है। अन्धविश्वास घातक है। ऐसी 'आस्था' त्याज्य है, जिसका कोई विश्वसनीय आधार न हो। मगर, अगर कोई उचित और दृढ (ठोस) आधार उपलब्ध हो, तब ?

सामान्य अविशेषज्ञ अज्ञ की बतलायी हुई दवा रोगी सेवन न करे, पर डॉक्टरी नुस्खे पर भरोसा क्यो कर न हो ?

वैज्ञानिक भी पहले 'आस्था' और 'विश्वास' के सोपान पर कदम रखकर ही अपनी प्रयोगशाला मे पैठते है। अनुसन्धान की पद्धतियो पर तथा विविध यन्त्रो पर विश्वास, पूर्वार्जित अन्य वैज्ञानिको के ज्ञान (सुने हुए, पढे हुए) का भरोसा, अपने द्वारा अनुसन्धान के 'औचित्य' पर 'आस्था'। उसके फलाफल की आशा। यह रही वैज्ञानिको का पहला कदम। दूसरा कदम है अनुसन्धान द्वारा परिणाम (फल, नतीजा) की प्राप्ति और 'आस्था' का दृढतर होना (होते जाना)। उनकी तीसरी सीढी (कदम) है लक्ष्य (सत्य) की प्राप्ति (आनन्द-विश्राम)।

अध्यात्म की राह पर भी उसी प्रकार तीन सोपान (कदम) है :

१ पूर्व-अर्जित अध्यात्मवेत्ताओ के ज्ञान पर (सुनकर, पढकर इत्यादि) 'आस्था', 'विश्वास'।

२ अनुसन्धान—अभ्यास—अनुभूति। अनुभूति द्वारा 'आस्था' का दृढतर होना (होते जाना)।

३ लक्ष्य की (परमात्मतत्त्व की) प्राप्ति (आनन्द-विश्राम)।

चाहना-कामना। परिस्थितियो की कामना। जगत् की चाह (और)। अभिलाषा—महत् की अभिलाषा।

'दृष्टि' (प्रकार) (अ) इन्द्रिय-दृष्टि, (आ) बुद्धि-दृष्टि, (इ) अन्तर्दृष्टि, (ई) दिव्य दृष्टि।

प्रभु एक है,—चरित्र अनेक।

'प्रवृत्ति ठीक है, लेकिन निवृत्ति उससे अच्छी है।'—श्रीभानुनन्दन सिह ने मास खाने या न खाने के प्रसग मे उद्धृत किया।

प्रवृत्ति एकरस और अखण्ड सदैव नही होती—जैसे बचपन मे खिलौने (से) खेलते हैं। उम्र बढने पर उसमे रुचि नही रहती।

किसी-न-किसी नाते सभी को अपना मानना—भौतिकवाद—उदारता। अत, मनसा-वचसा-कर्मणा बुराई-रहित होना अनिवार्य है। विवेकपूर्वक समस्त दृश्य (जगत्) से असग होकर अपने मे सन्तुष्ट होना—अध्यात्मवाद—स्वाधीनता। अपने मे अपने प्रेमास्पद है, इस वास्तविकता मे विकल्प-रहित विश्वास करना—आस्तिकवाद।

अध्यात्मवाद (कामना-निवृत्ति) के बाद आस्तिकवाद (प्रेम) है। उदारता, स्वाधीनता, प्रेम—मे जीवन है। मूल उपाय है—विश्राम—स्वाधीनता—अचाह होना, प्रेम—प्रेमी होना।

किसी कार्य के सम्पादन मे ये तीनो अनिवार्य है १ कार्यकुशलता-विधि (विधिवत्)—(टेकनिक प्रौपर)।

२. भाव की पवित्रता—साधन—(मीन्स) बुराई-रहित।

३. लक्ष्य पर दृष्टि—साध्य (ऐम) (टारजेट)। आस्था साधन है। भगवान् (ईश्वर ईश्वर का अस्तित्व)—साध्य है। आस्था बडी है या अस्तित्व बडा है ? 'हम' जिसमे रहता है, वही परमात्मा है।

विश्राम-काल मे 'हम' कहाँ चला जाता है ? परमात्मा मे। श्रमकाल = भोग (काल)। उद्‌गम परमात्मा है।

उदारता—स्वाधीनता—प्रेम।

परमात्मा का स्वरूप जो हुआ (हमने स्वीकारा) वही हमारी अपनी साधना हुई।

मनुष्य की साधना—परमात्मा की महिमा।

उदारता—सेवा + त्याग + प्रेम = (फल) = परमात्मा। भोग की रुचि नष्ट हो जाय = तप। तप और त्याग से प्रेम और परमात्मा नित्य प्राप्त है।

विश्राम हमारा लक्ष्य है।

मैंने स्वामीजी से पूछा कि ऐसा भी तो देखा जाता है कि भगवान् अपनी ओर से आदमी मे प्रभु-विश्वास (आस्था) को दृढ करने के लिये अलौकिक घटनाओ को उपस्थित कर या दर्शन देकर या किसी अन्य महात्मा इत्यादि को माध्यम बनाकर सशयवादी को भी रास्ता दिखलाता है। स्वामीजी ने कहा कि ऐसा नही होता। जो भगवान् पर विश्वास नही करता और विश्वास करना चाहता भी नही, उसके लिये भगवान् ऐसा नही करता। अकारण हम्तक्षेप नही करता (वह) बे-बुलाये, बे-चाहे नही आता (डज नॉट पोक हिज नोज, डज नॉट कम अनकॉल्ड फॉर ऑर अनवाण्टेड)। कोई विश्वास करना चाहता हैं, पर कर नही पा रहा है, तो ऐसे आदमी की मदद भगवान् अवश्य करता है और ऐसे अविश्वासी मे विश्वास पैदा करने का प्रयत्न दैव या दैवी शक्तियाँ करती हैं।

'हम' जिसमे रहता है, वही परमात्मा है। विश्रामकाल (योग) मे 'हम' कहाँ चला जाता है ? परमात्मा मे।

परमात्मा प्राप्त क्यो नही होता ?

उससे चाहते है, चाहने-माँगने लगते है—वस्तु, और 'वस्तु' की स्थिति है नही। परमात्मा को मानना इसलिये जरूरी है कि और अन्य कोई उपाय नही है, परमात्मा की प्राप्ति का। जब हम चाहते है, तो 'चाह' (वस्तु, 'वस्तु-स्थिति') से सम्बन्ध जुट जाता है और जिससे चाहते है (परमात्मा से) उससे सम्बन्ध छूट जाता है। ऐसी

गैरत मे 'चाह' (की चपेट मिलती) तो रहती है पास मे (हावी, बगलगीर) और परमात्मा दूर नेपथ्य मे पडा रह जाता है, याचक के।

दु ख-निवृत्ति—आनन्द की स्थिति—चिर शान्ति—परमात्मा—आनन्द—जीवन। यहाँ शब्द का फेर है, तत्त्व का फेर नही है।

काम सबल होगा, तो माँग निर्बल होगी।

विश्वास—अपने किया हुआ विश्वास और परमात्मा की ओर से दिया गया विश्वास प्रभु-दर्शन के लिये अनिवार्य है।

परमात्मा को अपना मान लिया—स्मृति, प्रियता जगने लगी—परमात्मा अपना प्रिय बन गया।

परमात्मा की स्मृति जगने से 'इन्द्रियाँ' 'मन' मे विलीन होगी और 'मन' 'बुद्धि' मे—तब 'बुद्धि' सम हो जाती है (अचाह)। 'याद' तो अपने मे ('हम' मे) उगती (आती) है। ससार की ओर जो इन्द्रियो (तथा मन, बुद्धि इत्यादि) का झुकाव और आकर्षण है—उस गति का निरोध='योग' है। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध.'। 'योग' के द्वारा अहम् मे ईश्वर की स्मृति और प्रियता जगेगी, ईश्वर-प्रणिधान।

'हम' की ओर (अपनी ओर) गति (क) स्वाधीनता, (ख) स्वतन्त्रता। (ग) प्रियता, प्रदान करेगी। परमात्मा की (क) स्मृति और (ख) प्रियता, हमको परमात्मा से मिलायगी, कोई 'क्रियाशीलता' नही मिला सकेगी।

भगवान् का होकर भगवान् का काम करना=पूजन। बुराई-रहित=साधन। प्रेमी होना=भजन।

तीर्थं। मन चगा तो कठौती मे गगा।

'प्रभावाददद्भुताद् भूमे सलिलस्य च तेजस ।
परिग्रहान् मुनीना च तीर्थाना पुण्यता स्मृता ॥'
'ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे
यो व शिवतमो रस । तस्य भाजयतेहन ।
उशतीरिवमातर ।'—वैदिक कविता।

'विद्यातीर्थे विमलमतय साधवो ज्ञानतीर्थे
धारातीर्थे धरणिपतयो योगिनश्चित्ततीर्थे ।
पातिव्रत्ये कुलयुवतयो दानतीर्थे धनाढ्या
गङ्गातीर्थे त्वितरमनुजा पातक क्षालयन्ति ॥'

१ वस्तु, २ योग्यता और ३ सामर्थ्य ये सेवा-सामग्री हो सकती है या भोग-सामग्री। 'भोग' से 'रोग' और 'शोक' की सम्भावनायें उत्पन्न होती हैं।

भगवान् अपना है, अपने मे है, अभी है—ऐसा सम्बन्ध (स्थापित करने पर)—प्रियता-स्मृति-प्राप्ति।

ससार के सम्बन्ध से दु ख होता है। इसलिये, ममता-रहित, चाह-रहित बनना

आवश्यक (अनिवार्य) है। इसे कहने-समझने से नही होगा। इसे स्वीकार करके चलने से ही काम चलेगा। सत्य प्रत्यक्ष होगा।

शान्ति—जिसे पाकर फिर पाना शेष न रह जाय। पराधीनता, जडता इत्यादि न रह जाय। शरीर और ससार से तादात्म्य तोडना आवश्यक (अनिवार्य) है।

सत्य को स्वीकारना। प्रभु से आत्मीयता स्थापित करना।

देहातीत, अविनाशी जीवन। ऐसे विदेह को भगवान् तो चुटकियो मे (अल्प समय मे) मिल सकते है। ऐसा जीवन, जिसमे देह को रहने और न रहने का भान भी न रहे।

ससार से सम्बन्ध टूट जाने से—निर्भयता।

साधना+साधक (+साध्य)। साधक मे ही साधना का उदय होता है और फिर साधना-साधक-साध्य तीनो एक हो जाते है।

साधना=(क) उदारता—ससार के लिये उपयोगी, (ख) स्वाधीनता—अपने लिये उपयोगी, (ग) प्रेम—प्रभु के लिये उपयोगी।

(क) उदारता, (ख) स्वाधीनता, और (ग) प्रेम—ये तीनो अविनाशी तत्त्व है। प्रभु की महिमा, साधक का जीवन, मनुष्य का पुरुषार्थ।

अपना कुछ नही है, मुझे कुछ नही चाहिये—स्वाधीनता (सामर्थ्य)।

सभी को अपना मानना=सभी अपने हैं—उदारता।

प्रभु को अपना मानना=प्रभु अपने हैं—प्रेम।

सत्य को स्वीकारो। अपना व्यक्तिगत कुछ नही है।

सुख की (इन्द्रिय) लोलुपता। उसकी आवश्यकता तो है नही। विषयासक्ति—प्रमाद—लोलुपता।

अधिकार माँगने के समान कोई बुरी (हानिकर) चीज है नही। जीवन मे अधिकार का कोई स्थान ही नही है। भोग का कोई स्थान ही नही है। केवल कर्त्तव्य का स्थान है। शरीर ससार-रूपी वाटिका की खाद है। (भगवान् की) याद को आबाद करना चाहिये (=बसाना चाहिये, अपने रोम-रोम मे)।

'चेतन वासनातत्त्व स्वात्मतत्त्वेऽवतिष्ठति।'

(योगवासिष्ठ, ३।५५।५)

'वासना-युक्त चेतना को या प्रकृतिस्थ पुरुष को जीव कहते है। जन्म या मृत्यु का विषय यही वासना-युक्त चेतना, अर्थात् प्रकृतिस्थ पुरुष-जीव है और इस जीवत्व का आधार (आत्मा) है।'

आत्मा का जातीय सम्बन्ध परमात्मा से है। देहातीत जीवन ही सुखमय जीवन है। लाइफ बियोण्ड कॉरपोरल, व्हिच डज नोट रिवाल्व राउण्ड बॉडी।

'मैं' और मेरा (जैसे मेरा शरीर) का फर्क अपने को सदा मालूम पडता रहता है, सर्वदा। इसलिये, 'मै' 'मेरा' (शरीर) नही हो सकता।

ऐसा मालूम पडता है कि आँख मेरी है और मै आँख से देखता हूँ। लेकिन, सोचिये तो, सूरज के बिना हम देख सकते है क्या ? जगत् के आकर्षण के कारण हम अविनाशी से युक्त नही हो सकते ।

शरीर अपना भी नही है। अपने नियन्त्रण मे भी नही है। अपने काम भी नही आता (क्योकि जिसकी हमको जरूरत है, वह इससे मिलता भी नही)। यह आपका जो शरीर है, वह आपके उद्देश्य की पूर्त्ति भी नही कर पाता।

केवल विचार कीजिये—अगर आपका शरीर काम आ गया, तो अपने को नाकामयाब क्यो समझते है । शरीर शरीर के ही काम आ सकता है। शरीर शरीर की जाति का जो है। आत्मा शरीर की जाति का नही, वह परमात्मा की जाति का है, वही आपके अपने काम आ सकता है।

जब कोई चीज अपने को अच्छी है, तो उसकी मुहर, छाप (स्टैम्प), अपने मस्तिष्क पर पड जाती है। सुख, दु ख या भावात्मक अनुभूति (इमोसनल एक्सपीरियस) सुखात्मक अनुभूति (प्लेजेण्ट एक्सपीरियस)—बन्धन। अपने मे सुख जमा करते जाने से, सुख को लेने जाने से, आकर्षण घना होता जाता है। सुख के आयाम। यह भूल है और वर्त्तमान मे मिटायी जा सकती है।

'सत्य' के लिये (अगर) आपके जीवन मे (सच्ची) वेदना है, तो वह भगवान् (हितैषी) से सहा नही जायगा। वह अपने को प्रत्यक्ष (रिवील) करने के लिये उतावला हो जायगा।

हजरत अबूबक्र सिद्दीक (रजियल्लाहु अन्हु—अल्लाह उनमे राजी हो) के शासन के बनिस्बत लिखा है कि वह इतने बडे इस्लामी राज्य पर शासन भी करते थे और अपने जरूरतमन्द रियाया का निजी काम भी स्वय कर देते थे। जैसे बकरी दुह देना। (तु० परमात्मा भी तो ऐसा कर सकता है—निर्वैयिक्तक (इम्पर्सनल) और वैयक्तिक (पर्सनल) परमात्मा।)

भगवान्—ठोस (सॉलिड), तरल (लिक्विड), गैस (वाति), प्लाज्मा प्रभृति स्थितियो मे भौतिकीकृत (पदार्थीकृत) (मैटेरियलाइज्ड) भी हो सकता है और अपने अव्यक्त स्थिति-सातत्य (स्टैटम कण्टिन्युयम) मे छिपा भी रह सकता है।

स्वामी शरणानन्दजी ने कहा कि भगवान् को पाने का एक सहज और अचूक उपाय है—कि भगवान् को अपना मानो और सब कुछ भगवान् का जानो (का है ऐसा समझो, मानो)। 'अगर इसपर भी भगवान् न मिलें, तो हमको फाँसी चढा देना।'

उन्होने कहा कि भगवान् अपने मे है, यही है, अभी हैं। भगवान् अपने निकट-तम है। उन्हे खोजने कहाँ जाओगे ? तुममे सामर्थ्य है 'गोलोक', 'साकेत' या क्षीरसमुद्र मे जाने की कि वहाँ भगवान् को उनके 'धाम' मे खोज लोगे ? और, अगर मान लो कि वर्षो और जन्म-जन्मान्तर, अनेक जन्मो, के बाद अगर तुम 'गोलोक' पहुँचने का सामर्थ्य बटोर भी पाये और वहाँ जाकर भगवान् से मिले भी,

तो भगवान् यही पूछेगा कि भाई, मै तो तेरे पास ही था, फिर इतना समय क्यो बरबाद किया ? वही क्यो न ढूँढ लिया ?

दूध और पानी की तरह, हर घटना मे भलाई-बुराई, ग्राह्य-अग्राह्य, सुख-दु ख, छिपा (प्रत्यक्ष) मिला हुआ है। इसलिये इस प्रत्येक मिश्रप (घटना) से कुछ-न-कुछ भलाई निकल ही आती है। इस बात पर विश्वास करना कही अच्छा है, बजाय ऐसा मान बैठना कि 'जो कुछ होता है, आदमी की सर्वोत्तम भलाई के ही लिये होता है।' यह निश्चय ही गलत धारणा होगी, क्योकि ऐसा नि सन्देह नही होता। 'भलाई' और 'बुराई' की व्याख्या जो भ्रामक है !

ईश्वर-प्रणिधान (ईश्वर पर ध्यान, चित्त की एकाग्रता, समाधि) के लिये ईश्वर पर 'आस्था' (विश्वास) जरूरी है। भगवान् पर 'विश्वास' कैसे प्रारम्भ हो ? कहते है 'सुने हुए' को मान लीजिये। उदाहरण के लिये, कहा जाता है कि जब टूअर बच्चे को लोग कहते है कि तुम्हारे भी कोई बाप-माँ थे और वह मान लेता है, अथवा किसी की माँ कहती है कि फलाँ आदमी उसका पिता है और वह विश्वास कर लेता है, तब जब साधु-सन्त और पहुँचे हुए फकीराँ कहते है कि भगवान् है, तो लोग एतबार क्यो नही करते ? [सुनकर मानना (सुने हुए पर विश्वास करना या आस्था रखना) इसी के प्रसग मे कहना यह है कि स्वामीजी ने कई ऐसी बाते (स्वास्थ्य-सम्बन्धी) मान रखी थी। इनमे कुछ बाते सही, कुछ बिलकुल गलत और निराधार भी थी।]

दुनिया मे शायद ही कोई वस्तु या परिस्थिति या घटना हो, जो सर्वाश मे अच्छी या सर्वांश मे बुरी हो। कुछ-न-कुछ अच्छाई, कुछ-न-कुछ बुराई सबमे मिली हुई है। इसलिये जबतक आदमी इस +(पोजिटिव) और − (निगेटिव) की द्वन्द्वात्मक परिस्थितियो से ऊपर उठ नही जाता, तबतक उसका छुटकारा न +'प्लस' से हो सकता है न 'माइनस' से। 'भगवान् जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है।' जो कुछ होता है, भलाई के लिये ही होता है। भगवान् चाहे सब कुछ हमलोगो की भलाई के लिये करता हो या नही, यह एलाहदा बात है। पर, यह बात ठीक मालूम पडती है कि हर बार जब कभी कोई घटना घटती है, तब उसमे कुछ अच्छाई और कुछ बुराई मिली हुई मालूम पडती है। उसमे कुछ-न-कुछ अच्छाई कमोबेश (?) रहती और दीखती ही है। 'अच्छाई' से फायदा उठा लेना ही उस परिस्थिति का सदुपयोग कहा जा सकता है। 'बुराई' के हाथ न लगना ही 'बुराई' का उचित उपयोग होगा।

कि वह हमारी काया और अन्त करण मे जो भी क्रिया-कर्म हो रहे है, इससे तटस्थ या निरपेक्ष तो है, किन्तु एक घनिष्ठ आत्मीय की तरह निरीक्षण करता होता है और उसका निर्णायक भी होता है, इस आधार पर (इस प्रकार) यह अनुभव किया जा सकता है (सकेगा) कि काया—अन्त करण—अह (मै का भाव) के पीछे निश्चय ही एक विशिष्ट कारण, एक विशिष्ट शक्ति, एक विशिष्ट विधान (व्यवस्था),

एक विशिष्ट सयन्त्र या एक आत्मा या एक विवेक या एक अधिचेतस् (पराचेतना) या एक सार्वभौम चेतना या एक 'परम-(आत्म) तत्त्व' है, जो बिलकुल वस्तुनिष्ठ भाव से 'मैं' और इसके विवर्त्त (क्रिया-वैविध्य) अन्त करण एव इसके सनियन्त्रित कार्यक्रम या इसके विक्षेप (पर्यावर्त्तन या विचलन) को जो भली भाँति देखता-परखता है और इस तरह मनुष्य के उसके 'स्व' या उसके अह की बजाय उसकी क्रिया-विधियो को उचित और न्यायपूर्वक निर्देशित करने मे समर्थ है, जिससे इस तरह के सारे दु ख-सुख, दुर्भाग्य-सौभाग्य, भी शरीर-सापेक्ष रहेंगे, न कि आत्मा-सापेक्ष और सुख-दु ख के प्रति शारीरिक प्रतिक्रियाओ को निषिद्ध निलम्बित किया जा सकता है, ताकि मनुष्य दु ख से अप्रभावित रह सके ।

प्रत्येक घटना का परिणाम सर्वोत्तम ही निकले (जो कि निश्चय नही होता) ऐसा मानने के बजाय यह विश्वास करना (मानना) बेहतर है कि प्रत्येक घटना से कोई अच्छा परिणाम निकाला जाय । हर एक घटना मे कुछ 'अच्छा' और कुछ 'बुरा' दीखेगा । हर एक का कुछ 'अच्छा-सा' और कुछ 'बुरा-सा' अजाम होगा। तटस्थ भाव से 'अच्छाई' को अपनाना, हृदयगम करना, और 'बुराई' के प्रति उदासीन रहना (हो जाना), उसे दूर हटाना, ही कल्याणकारी होगा । कोई रोशनी नही, जिससे छाया न जुडी हो । कोई छाया नही, जिसके साथ प्रकाश न जुडा हो ।

जो कुछ भी घटित होता है, उसमे हमेशा हमारी भलाई ही निहित है—अपने उचित एव सही (सच्चे) परिप्रेक्ष्य मे समस्या को प्रस्तुत करने, रखने, वस्तु-विषय को देखने तथा घटना-स्थिति को वर्णित (व्यक्त) करने का उचित और सही (ठीक) तरीका यही हो सकता है । तात्कालिक लाभ-हानि भी भविष्य के हानि-लाभ से स्पष्ट रूप मे या वास्तव मे अदल-बदल किये जा सकते है । लेकिन, घटना के आकलन (मूल्याकन) के समय इस रूप मे इसे नही देखा (सोचा) जा सकता है ।

ऑलसो ऐन इमीडिएट गेन ऑर लौस मे बी ऐपेरेण्टली ऑर इन रियलिटी बी रिप्लेस्ड ऑर ऑफसेट ऑर चेञ्ज्ड बाइ ए लौस ऑर गेन इन दि फ्यूचर, ऐण्ड दिस मे नॉट बी फोरसीन एट ऑल एट दि टाइम ऑव दि इभैलुएशन ऑर ऑव दि ऑकरेन्स ऑव दि इन्सिडेन्स ।

तटस्थ—आत्मपर्यवेक्षण—आत्मदर्शन—आत्मज्ञान ।

दिस मे कनसिस्ट ऑव (प्रोसिडियोरॅली) स्टैण्डिग ऐज रेफेरी ऑर बाइ साइलेण्टली वाचिग ह्वाटेवर हैपन्स इन दि बॉडी ऐण्ड इन दि माइण्ड (अन्त करण) ऐज इफ वन वाज वाचिग ए थर्ड परसन हू वाज मोस्ट इनटिमेटली नोन टू वन । दिस वे इट विल वी रियलाइज्ड दैट बिहाइण्ड दि बॉडी, दि अन्त करण ऐण्ड बिहाइण्ड इभन दि ईगो (ऑर दि 'आइ'-फिलिग) देअर इज ए फैकल्टी (ए पावर, ए मेकैनिज्म, ए लॉ, ए फोर्स ऑर ए परमात्मतत्त्व ऑर ए 'सोल' ऑर ए 'विवेक' ऑर ए सुपरमाइण्ड ऑर ए कॉस्मिक माइण्ड) ह्विच कैन भ्यू दि ईगो, दि माइण्ड ऐण्ड दि बॉडी डिस-इण्टरेस्टेडली, डिस-पैसनेटली ऐण्ड ऑब्जेक्टिवली ऐण्ड कैन नो

दि 'आइ' ऐण्ड इट्स मिऐण्डरिंग्स, दि 'माइण्ड' ऐण्ड इट्स 'मेकिनेशन्स' ऑर 'वेभरिंग्स', अनरफल्ड, अनट्रैमेल्ड, अनऑबट्रूसिवली, ऑब्जेक्टिवली ऐण्ड मोस्ट इनटिमेटली। हैभिंग दस नोन दि मैन ('हिम' इन्स्टेड ऑव ऑर रादर दैन दि 'माइसेल्फ') वन मे बी एबल टू डाइरेक्ट दि मैन्स ऐक्टिविटीज प्रौपर्ली, सुटेब्ली ऐण्ड जस्टिफायब्ली। इभ्न हैपिनेस ऑर सफरिंग, प्लेजर ऐण्ड पेन, फौर्चुन ऑर मिसफौर्चुन मे देन बिलाग टू 'हिम', नॉट टू 'माइसेल्फ'। ऐण्ड 'हिज' रिऐक्शन्स टू दि 'प्लेजर' ऐण्ड टू दि 'पेन' मे बी वाच्ड ऐण्ड डिसमिस्ड, निगेटेड, डिनायड ऑर बी पुट ऑफ ऑव बी पुड एसाइड सो दैट नो ग्रीफ कम्स टू एनी वन। ऐण्ड देन नो इम्प्रेसन्स प्लेग दि 'माइण्ड'। ऐण्ड ऑल इज वेल।

अनन्त विभाजन (इनफिनाइट डिभिजन) के बाद शायद परमाणु (पार्टिक्ल्स) स्थिति-सातत्य (स्टेटम कण्टिन्युयम)-सी अवस्था प्राप्त करते। ऐसे सूक्ष्मतम आत्मा भी एक दूसरे से भिन्न तो रहते ही हैं, अपनी विभिन्न वासनाओ से मण्डित। इसलिये वे भौतिक-शरीर-सा स्थूल (ग्रौस) नही होते हुए भी 'स्थिति-सातत्य' (स्टेटम कण्टिन्युयम) मे नही है। वासनाओ का खोल (आवरण, घेरा, वृत्त, परिवेश, प्रभा-मण्डल) जीवात्माओ को एक दूसरे से अलग रखता है, आजीवन भी और मरणोत्तर भी। शरीर का स्थूल वस्त्र (चोला) छूट जाने के बाद भी, 'केचुल' छूटने पर भी।

भगवान् न परमाणु (पारटिक्ल) है, न लहर (वेभ)। न मैटर, न एनर्जी। सूक्ष्म से सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम अवस्था मे भी (अ) परमाणु (पार्टिक्ल्स) और (आ) उनके बीच के स्पेस (अन्तर, स्थान, अवकाश) मे दोनो दो भिन्न प्रकार की अवस्थाये या वस्तुयें हैं, इसलिये वे 'स्थिति-सातत्य' (स्टेटम कण्टिन्युयम) मे नही हो सकते—भगवान् दो भिन्न तरह की चीजो (तत्त्वो) का नही बना है—वह स्थिति-सातत्य (स्टेटम कण्टिन्युयम) मे है (प्रसग—एपोलो-उडान की अवधि मे अन्तरिक्ष-शून्य का ध्वनि-तरग, साउण्ड वेभ्ज फ्रॉम स्पेस भैकुअम ड्युरिंग एपोलो फ्लाइट्स)।

मृत्यु की स्थिति मे जीवात्मा की अवस्था शायद निम्नाकित प्रकार की अवस्थाओ-सी हो

१ जीवित सामान्य मानव, जो शरीर-सम्बन्ध को भूल गया हो, 'विदेह'। २ चेतनाहीन रोगी—अर्ध, सम्पूर्ण, ३ कृत्रिम विधि से निद्राभिभूत मनुष्य (और जानवर), ४ सुप्त मनुष्य (और जानवर) हल्की नीद, गहरी नीद, स्वप्निल नीद, ५ गहन (गम्भीर) केन्द्रीकरण (एकाग्रता) (कनसेण्ट्रेशन—समाधि), ७ सभी सामर्थ्यो की समाप्ति। शरीर+सभी ऐन्द्रिय चेतना (शक्ति) (प्रवृत्ति) (प्रभाव) का अवरोध, सारे विशिष्ट इन्द्रिय (बोध) की अकर्मण्यता या विलयन। मृत स्थिति इस प्रकार या इन्ही के समान, या कही इन्ही के बीच की, हो सकती है।

यह सम्भव है कि शरीर के जल (जला दिये) जाने पर शरीर और आत्मा के बीच का सम्पर्क-सूत्र समाप्त हो जाता है, क्योकि इसमे शरीर पूर्णत नष्ट हो चुका

होता है। यदि शरीर गाड (दफना) दिया जाय, तो जबतक शरीर या मस्तिष्क तहस-नहस नही होता, तबतक सम्पर्क-सूत्र बना रह सकता है।

सम्पर्क-सूत्र (?) इसकी प्रकृति।

सम्भवत, वह चेतना कि यह मेरा शरीर है (था), जिसमे मैं स्थित था तथा जिससे अपने सम्बन्ध-विच्छेद के लिये बाध्य हुआ। शरीर के मृत एव निष्क्रिय एव जड होने के कारण, आत्मशक्ति (आत्मा की शक्ति) को प्रक्षेपित (प्रोजेक्ट) अभिव्यक्त या प्रकट करने का उपयुक्त माध्यम (साधन) नही रहा (तुल्य—पुनर्जन्म तथा कयामत का दिन, दफनाने के तरीके, तथा काया-विहीन अशरीर देहातीत योनियाँ, भूत-प्रेतादि।)

'चेतना' का पटल (अन्त करण)—शरीर के यन्त्र या कल-पुरजे तथा सस्कार-कोष के सचालन के लिये मस्तिष्क का उपयोग करता है। मस्तिष्क—सस्कारो (मेमरी ट्रेसेज) का कोष है।

शारीरिक सरचना (एनाटॉमी) और क्रिया (फिजियोलॉजी), तथा हारमोन (हार्मोन) और एनजाइम (प्रकिण्व, किण्वाणु) इत्यादि की सामूहिक प्रक्रियाए इसके (शरीर के) क्रिया-व्यापार के लिये जिम्मेवार है। 'चेतना का पटल' (अन्त करण) और मस्तिष्क को परस्पर अनुकूल (उपयुक्त) होना चाहिये। [तु० तरग-लम्ब (वेभ-लेग्थ) और रेडियो इत्यादि का सगीत] यदि मस्तिष्क हानिग्रस्त (बिगड गया या खराब हो गया) होता है, तो अन्त करण (मानस) (चेतना) ठीक से काम नही करती (जैसे घिसे हुए रिकार्ड से मधुर गीत की कर्कश आवाज।

कोलम्बिया-विश्वविद्यालय के सूचनानुसार आश्चर्यचकित वैज्ञानिको ने पृथ्वी से ऊपर १०० मील (१६० कि० मी०) से अधिक ऊँचाई पर उडान भरते हुए अपोलो-१२ और १३ चन्द्रयान के रॉकेटो से ध्वनि-तरगें प्राप्त की।

उन्होने कहा कि वरमुडा मे विगत नवम्बर, १६ (१९६९) को जब अपोलो-१२ चन्द्रमा की ओर छोडा गया तथा पुन अप्रैल ११ (१९७०) को जब अपोलो-१३ छोडा गया, उन तरगो को सवेदनशील उपकरणो (यन्त्रो) के द्वारा अकित किया गया था।

वैज्ञानिको को आश्चर्य हुआ कि इतनी अधिक ध्वनि बहिरन्तरिक्ष (आउटर स्पेस) की शून्य स्थिति मे उत्पन्न सथा सम्प्रेषित हो सकी। उपकरणो (यन्त्रो) के द्वारा इस ध्वनि को सारणी-क्रम से अकित किया गया। कोलम्बिया के वरिष्ठ शोध सहायक डॉ० विलियम डान ने कहा कि जब हमने इसे देखा, तब मुश्किल से विश्वास कर सका। उन्होने कहा कि इन उपलब्धियो ने यह दिखाया कि हमे अपने ऊपरी वायुमण्डल की प्रकृति के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जानने की जरूरत है।

१०० मील ऊपर वायुमण्डल अत्यन्त ही विरल है। नीचे की अपेक्षा वायुमण्डल के उस भाग मे हवा एक बिलियन गुना सूक्ष्म है। दूसरे कण को सक्रिय करने के पहले एक वायुकण को ५०० फीट (लगभग १५० मीटर) से अधिक की यात्रा करनी पडती है और इसी कण-सघर्ष के द्वारा ध्वनि का सम्प्रेषण होता है।

और फिर भी, केपकेनेडी से छोडे जाने के लगभग १७ मिनटो बाद, ११६ मील (१८५ कि० मी०) की ऊँचाइयो से गुजरते हुए दोनो अपोलो-रॉकेटो से अत्यन्त सबल आघात-तरगो को उपकरणो (यन्त्रो) द्वारा अकित किया गया।

मृत्यु के बाद भी परमात्मा का साक्षात्कार (हो जाता हो, ऐसी बात है नही) अनुभूति या अवलोकन, नही होता—बहुतो को। और, पार्थिव शरीर के सहारे भी परमात्मा की अनुभूति सम्भव है कितनो को।

[उल्लेखनीय—माध्यम (मिडियम) द्वारा मृतात्माओ का आवाहन और उनके द्वारा प्रेषित सवाद तथा उनका व्यवहार] (उ० पुनर्जन्म विकास की पृष्ठभूमि, जीवात्मा के लिये)।

'परमात्मा का अगर रूप ही खोजते हो, तो यह सृष्टि ही उसका रूप है'—पुरुषसूक्तम्। (तु० 'छ अन्धे और हाथी' की कहानी)।

और, भीमकाय व्यक्ति (दैत्य, पुरुष) की देह पर जूँ उस (पुरुष) के बारे मे क्या सोचे ? मच्छर किसका रक्त चूसता है ?

भगवान् का विश्वरूप अर्जुन (को) और दुर्योधन (को)—दोनो को (श्रीकृष्ण ने) दिखलाया। दोनो ने देखा—अर्जुन ने उसे सच्चा मानकर परम ज्ञान प्राप्त किया और दुर्योधन ने उसे तिलस्म समझकर उसकी उपेक्षा की और उसके हाथ कुछ नही लगा। मनुष्य अपने लिये ईश्वर की रचना करता है, लेकिन वह (ईश्वर) भी जिज्ञासु, सरलचित्त, प्राणी की आत्मा के झरोखे से झॉक-झॉक जाता है। जीवन मे अपनी छटा दिखला जाता है—जैसे बाहर बिजली कौध रही हो और हम घर के अन्दर बैठे हो और चपल प्रकाश (फ्लैश) कर जा रहा हो, रह-रहकर बार-बार चमक जा रहा हो, खिडकी से, हमारे अन्त करण के द्वार पर—कि जिसमे प्रयास जारी रहे, आदमी का दिल टूटे नही, अन्यथा सशय और गलत धारणा जिज्ञासु की आस्था और समझ को चोट पहुँचाते रहते है।

किसी-किसी का मस्तिष्क ऐसा बना रह सकता है [जीन्स (जीवाणु), वातावरण (एनवायरनमेण्ट), ट्रेनिंग (प्रशिक्षण), सत्सग (एसोसियेशन) इत्यादि] कि उसके द्वारा जो ध्यान हो (धरा जाय), उसके माध्यम से जो प्रभु का आह्वान किया जाय, इस एकाग्रता (कान्सेन्ट्रेसन) (ध्यानकेन्द्रण) मे उस पुकार (काल) मे, इतनी गहराई, इतनी तीव्रता, ऐसा गुण (क्वालिटी), ऐसी शक्ति (पावर) और बल (फोर्स) हो, इतनी वेसब्री हो (आ सके कि) कि वह भगवान् को सीधा खीच लाये।

अन्त करण (चेतना) (माइण्ड) विविध प्रकार के है—जैसे गणितीय प्रतिभा, कवि, सगीतज्ञ, अपराधी और उसी तरह अध्यात्मप्रवण अन्त करण, तथा वह अन्त करण, जो ईश्वर-सन्धान (खोज, प्राप्ति) मे समर्थ है तथा जो गहन आस्था उत्पन्न करने मे समर्थ है और एक महान् भक्त होने की शक्ति-सम्भावना से सम्पन्न है। (तु० वैज्ञानिको का अन्त करण, माइण्ड, भक्त का अन्त करण, सैनिक का अन्त करण)।

सभी अन्त करण (मानस) चेतना) (माइण्ड) एक समान नही होते। इसीलिये उनकी इच्छाये, आकाक्षायें, रुचियाँ-अरुचियाँ और उनके उद्देश्य-लक्ष्य भी एक-से नही होते। उनका व्यक्तित्व और व्यक्तिगत सम्भावनायें भी एक जैसे नही होते। अपने अस्तित्वो को अध्यवसायपूर्वक सरक्षित और सयत रखने की शक्ति भी एक-सी नही होती।

इसीलिये, यह सम्भव नही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्त करण और गुणो के द्वारा इतनी अधिक शक्ति उत्पन्न (उपलब्ध) करने मे समर्थ हो, जिसमें ईश्वर (परमात्मा) की मद्य प्राप्ति हो सके। इसलिये किस सीमा तक मनुष्य अपने लिये परमात्मा (ईश्वर) को रच (स्वीकार) सकता है, यह उसके अन्त करण की सरचना—सज्जा (बनावट—सजावट) तथा उसके अपने प्रयत्नो के गुण-स्तर पर निर्भर है। यहाँ वास्तविकताओ से भ्रान्तियो का भेद स्पष्ट करना (होना) पडेगा। मनुष्य स्वय किसी भी तरह, कही भी, किसी रूप-आकार मे, परमात्मा (ईश्वर) के दर्शन की इच्छा रख ओर कर सकता है। और, इसमे उसे सफलता भी मिल मकती है। लेकिन, किस हद तक यह सम्भव है, यह तो उसके वैयक्तिक अन्त करण और इसके गुणो (अन्त करण की सरचना, एनाटॉमी, और उसकी क्रिया, फिजियोलॉजी) पर निर्भर करेगा। मगर, अपनी तरफ मे परमात्मा (ईश्वर) अपनी कृपा और करुणा और सकल्प के द्वारा उस मनुष्य-विशेष को अपने दर्शन एव अनुभूति देने के लिये एक रास्ता (तरीका) निर्धारित (निरूपित) कर स्वय को उसके लिये अनुकूल (अनुमत) कर सकता है। यहाँ मनुष्य के मानसिक उपकरण का महत्त्व नही रहता। यह भगवान् की अनुकम्पा का विषय हो जाता है। ऐसी कृपा के लिये मनुष्य केवल प्रार्थना कर सकता है, प्रतीक्षा कर सकता है और आशा कर मकता है और फिर 'जा की रही भावना जैसी प्रभु-मूरति देखी तिन्ह तैसी' और फिर, फिर 'शरण गहे प्रभु काहु (कबहूँ) न त्यागा'।

आदमी अपने को उसकी कृपा के योग्य बना ले। अपना अन्त करण सुधार ले। मन-मन्दिर को पवित्र कर ले और आगमनी मे बैठे। प्रतीक्षा मे 'जागता' रहे। मनुष्य के अन्त करण की विविधता, भिन्नता होने से प्रत्येक व्यक्ति के लिये अपनी श्रम-साधना के द्वारा ईश्वर (परमात्मा) का साक्षात्कार (दर्शन) कर पाना सम्भव न भी हो। जैसे सभी कवि महान् गणितज्ञ नही हो सकते और कुछ लोग जन्मना अपराधी रहते है, इसलिये किसी को अधीर नही होना चाहिये और चुनौतियो को स्वीकार करने का साहस रखना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति राम-कृष्ण, विवेकानन्द, अरविन्द, मीरा और तुलसीदास की तरह नही होता। किन्तु, तब प्रत्येक व्यक्ति चिकित्सक, अथवा नर्त्तक, अथवा लेखक, अथवा वाणिज्य-विशारद भी नही होता। तथापि, परमात्मा (ईश्वर) के रास्ते मे भिन्न प्रकार के गुणो की अपेक्षा है और तब फिर ईश्वर परमात्मा की कृपा मूर्खो और विद्वानो, राजकुमारो तथा कगालो पर समान रूप से उजागर होती है। उपयुक्त अथवा सुयोग्य पात्र—

जो कि उनके दर्शन करेगा—के चुनाव के अपने तरीके है परमात्मा (ईश्वर) के पास ।

(तु० अर्जुन, शबरी, भस्मासुर, विदुर, द्रौपदी, रामतीर्थ, रामकृष्ण, अरविन्द, तुलसी, वाल्मीकि, महर्षि रमण, साईं बाबा, आ० रजनीश, सत्यानन्दजी, शरणानन्दजी, भूमानन्द तीर्थ, कृष्णमूर्त्ति इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि) ।

'निर्मल मन जन मो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥'
'हेतु रहित जग जुग उपकारी ।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी ॥'

जिससे आदमी अच्छा-से-अच्छा बन सके या जिससे अच्छे-से-अच्छे इन्सान की सम्भावना हो, वह माध्यम (मार्ग), चाहे वह नास्तिकता ही क्यो न हो—किसी भी धर्म मजहब या सम्प्रदाय से प्रशस्यतर (श्रेष्ठ) और स्वीकार्य है। जमात, समाज, सन्त-समागम, सत्सग । आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति तब कैसे हो ? विधानो का पता कैसे चले ? परमात्मा की प्राप्ति की राह कैसे दीखे ? भँकुअम में प्रकाश नही दीखता । दृश्य से रोशनी का ज्ञान होता है। जडता—हृदय की हो अथवा मस्तिष्क की—परमात्मा को पहचानने से रही ! विद्युत्-शक्ति की फिर से बात उठाता हूँ । वैज्ञानिक क्या बिजली दिखा देगा ? शक्ति बल (फोर्स)+ऊर्जा (एनर्जी), वास्तविक (रियल) भी है और अव्यक्त (अमूर्त्त, ऐब्सट्रैक्ट) भी ।

अथक परिश्रम से आदमी अपने मस्तिष्क को ऐसा (प्रशिक्षित) कर ले सकता है कि वह आत्मा (तु० माध्यम, मिडियम) और परमात्मा को अपने जीवन मे प्रत्यक्ष देख पा सके । और, यह शिक्षा उसे एक या अनेक जीवन मे प्राप्त हो सकती है । उत्कण्ठा की तीव्रता और इच्छा की गम्भीरता पर निर्भर करता है कि उसे कब क्या प्राप्त हो सकेगा ।

अपने जीवन मे उस अनुभूति को पनपने फूलने-फलने देने की बात है—सबमे ईश्वर को देखने का सच्चा प्रयास । उससे जो जीवन मे माधुर्य तथा सौन्दर्य उतर रहा है, आ रहा है ।

नही तो प्रभु-प्राप्ति के पश्चात् भी, कोई भस्मासुर ही बन पाता है । 'स्थिति-सातत्य' (स्टेटम कण्टिन्युयम) की पृष्ठभूमि मे यह दृश्य (और अदृश्य जगत् भी) बनते-मिटते रहते है—दृश्य के पीछे जिमे चित्रफलक (कैनवस) की प्रतीति होती है, वास्तव मे वही ज्ञानी है । भगवान् के दर्शन अनेक लोगो को अनेक प्रकार से हुए हैं और होते रहेगे— उस अनेकता का छिपा हुआ राज इस दृश्य जगत् मे भी कोई देखे ! वे भी दृश्य थे, जो स्थिति-सातत्य (स्टेटम कण्टिन्युयम) चित्रफलक पर खास परिस्थिति मे व्यक्ति-विशेष के लिये चित्रित हुए थे—भगवत्-कृपा से, प्रेरणा से, सदिच्छा से ।

मनुष्य के विकास के लिये मृत्यु उतनी ही आवश्यक है, जितना कि जीवन ।

'धर्म न पूजा-पाठ मे है, न जप-तप मे, न योग-समाधि मे है, न शास्त्र-चर्चा मे। धर्म पवित्र आचरण मे है, जो सबके लिये पवित्र हो, सद्भावना मे है, जो सबके लिये हो, और सबकी सेवा मे है, जो निष्काम हो।' (स्वामी सत्यानन्दजी)। 'धर्म' शाश्वत और सार्वभौम है। सामाजिक व्यवस्थायें—जो देश, काल और पात्र का ध्यान रखकर बनती है—वे 'धार्मिक' हो, वही ठीक है।

एक व्यक्ति ने बुद्ध से जाकर पूछा—'प्रभु, मैं आपकी बातो से प्रभावित हुआ हूँ। अब मुझे बताइये कि मैं दुनिया के लिये क्या करूँ।'

बुद्ध चुपचाप खडे रह गये। उनके साथ चलनेवाले भिक्षु हैरान थे। उस आदमी ने पुन पूछा—'आप क्या सोच रहे है ? मुझे आज्ञा दें, मै दुनिया के लिये क्या करूँ ?' बुद्ध ने कहा—'मेरे मित्र, मैं हैरान हूँ कि मेरी बाते तुम्हे पसन्द आयी, फिर भी तुमने यह नही पूछा कि मैं अपने लिये क्या करूँ। शायद तुम अपने को धोखा दे रहे हो। कही तुम दुनिया के लिये कुछ करने की बातो मे खुद के लिये कुछ करनें से बचना तो नही चाहते हो। नही मित्र, अच्छा हो, तुम स्वय को अच्छा बनाने के लिये कुछ करो।' (विजय अमरेश-सम्पादित 'कोशा' से साभार)।

शरीर जब अन्त करण (मस्तिष्क, माइण्ड) को ढक लेता है, आदमी सोने के लिये बाध्य हो जाता है। तब जो भी सकल्प हो, उसे अधूरा छोडकर नीद की गोद मे सो जाना पडता है। (प्रो० योगानन्द दास ने श्यामसुन्दर प्रसाद से और उन्होने हमसे कहा)।

मालवीयजी के यहाँ शायद स्वामी दयानन्दजी किसी कार्यवश गये थे, तो वह पूजा कर रहे थे और डेढ घण्टे के बाद उपलब्ध हुए, तो स्वामीजी ने कहा कि आपने डेढ घण्टे बरबाद किये। आप जानते हैं कि आपके द्वारा जनता की सेवा हो सकती है और अभी जनता की सेवा अभीष्ट है, तो आपका पूजा मे इतना समय लगाना समय की बरबादी है।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिहजी ने डेढ घण्टे वक्तृता देने के बाद स्वामी शरणानन्दजी से कई बार पूछा कि मेरा भाषण कैसा हुआ, तो स्वामीजी ने २-३ बार पूछने के बाद कहा कि आपने मात्र एक ही वाक्य कहने के लिये डेढ घण्टे बरबाद किये। आपका यह कहना कि जाने हुए का अनादर नही करना चाहिये, यही एक बात आपके भाषण मे तथ्य की थी।

ऐषणा (डिजायर) के तीन प्रमुख अग है

१ लोकैषणा (डिजायर फॉर वर्ल्डली रिकोगनिशन, पावर, प्रेस्टिज)।
२ सुतैषणा (पुत्रैषणा) (डिजायर टू बिगेट चिल्ड्रेन)।
३ वित्तैषणा (डिजायर फॉर वेल्थ)।

ये ही तीन एषणाये आदमी मे प्रमुख है।

किसी ने कहा था (शायद बैजनाथ सिह ने) कि वह रोज ३-४ घण्टे मे पूजा किया करते थे। बनारस मे। जिस मकान मे वे विधिवत् आसन-चन्दन-फूल-मन्त्र-घण्टी इत्यादि से (के साथ) पूजा करते थे, उस रूम के सामने एक दूसरे मकान मे एक सन्यासी रहते थे। एक दिन उन्होने बुलाकर उनसे कहा कि इतनी देर जो तुम पूजा करते हो, उसमे कितनी देर ध्यान लगा पाते हो ?

'शायद एक-दो मिनट।'

'तब क्यो नही एक-दो मिनट ध्यान ही लगाते हो, जो इतना समय बरबाद करते हो। एक-दो मिनट के लिये तीन-चार घण्टे रोज बरबाद करना क्या उचित है ?'

घास-फूस के बने पुतले के लिये आग और आँधी जितने सच्चे है—कच्ची मिट्टी से निर्मित मूर्त्ति के लिये सैलाब तथा वर्षा जितने अर्थपूर्ण है—पार्थिव शरीर के लिये यह दुनिया, यह प्रकृति और यह धरातल पर का जीवन उतना ही सच्चा और महत्त्वपूर्ण है, सारगर्भ है।

'यदि ईश्वर (परमात्मा) का अस्तित्व है, तो वह केवल तर्क तथा गणित के द्वारा साध्य हो सकता है।' (—बर्ट्रैण्ड रसेल)।

आइस्टाइन-सिद्धान्त—उनके (आइस्टाइन के) 'सापेक्षता-सिद्धान्त' ने आकाशीय पदार्थो की बहुत सारी घटनाओ को समझने (व्याख्या करने) मे सहायता की। ऊर्जाणु-यान्त्रिकी (क्वाण्टम मेकैनिक्स) के सिद्धान्तो के सहारे अनेक पार्थिव समस्याओ का हल ढूँढा जा सका। आइस्टाइन एक ऐसे सिद्धान्त-सूत्र की तलाश मे थे जिससे पार्थिव, अपार्थिव दोनो ही घटनाओ को समझने (विवेचित करने) मे सहायता मिल सकती।

युनिफायड फील्ड थ्योरी—उनके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ, फिर भी इससे सारी घटनाओ की समग्र व्याख्या सम्भव नही हुई। आइस्टाइन एक ऐसे नियम (सिद्धान्त) का स्वप्न देख रहे थे, जो एक साथ ही तर्कशास्त्रीय भौतिकवाद और ब्रह्मवाद (एकेश्वरवाद) (स्वार्थ और नैतिकता) की व्याख्या कर सके, लेकिन आइस्टाइन का यह सपना पूरा नही हो सका। दीन और दुनिया एक ही मुट्ठी मे एक साथ न अँट सके।

मानवीय ज्ञान की सापेक्षता—वह सिद्धान्त कि ज्ञात (परिचित) पदार्थो के गुणो के द्वारा ही हमारे ज्ञान की सीमा और प्रकृति का निर्धारण नही हो सकता, बल्कि हमारी ज्ञान-शक्तियो की अनिवार्य स्थिति के आधार पर ही हो सकता है। (रिलेटिभिटी ऑव ह्यूमन नॉलेज—"दि डॉक्ट्रिन दैट दि नेचर ऐण्ड एक्सटेण्ट ऑव आवर नॉलेज इज डिटरमिण्ड नॉट मिअरली बाइ दि क्वालिटीज ऑव दि ऑब्जेक्ट्स नोन, बट नेसेसरिली बाइ दि कण्डिशन ऑव आवर कॉगनिटिव पावर्स"।)

रात को पाँच घण्टे पीछे छोडकर दिन उठ आया है। सितम्बर की ३० तारीख है। वर्षा दो दिन पहले हुई थी। आज तो धूप फैली हुई है। धुप्। सुबह को अब गर्मी नही लगती। ग्रीष्म चला गया। जाडा आनेवाला है, इसका आभास मिलने लगा है। कॉस, सरपत, इँकडी और मूँज मे फूल फूटे हैं। त्युरा और गेदा की टहनियाँ पुष्पो से लद गयी है। कही पुष्पित-पल्लवित, कही पल्लवित-पुष्पित। गर्मी मे सिहरन घुलने लगी है। पैठने के पहले शीत झाँकने लगा है। कि जाडा आनेवाला है, खजन चिडिया सन्देश लायी है, बतास बोल गया है।

बिजली के पखे के नीचे, टेलीफोन के पास, खिडकी के सामने बैठ गया हूँ।

कोरे कागज, डॉट-पेन, घडी की टिक्–टिक्। सुदूर से कौए की काँव-काँव, महोखा का डुप्–पुप्। बार–बार टेलीफोन का बज उठना। आदी हो गया हूँ, वर्ना टेलीफोन को उठाकर फेक देता। अस्पताल मे आज कैजुअल (आकस्मिक) लीभ (छुट्टी) (अवकाश) लेकर लिखने बैठा हूँ, पर डॉक्टर को शान्ति कहाँ मिलती है। रोग आदमी को लगा ही रहता है। दूरभाष (टेलीफोन) बजते ही रहते हैं। ऐसे मे क्या कोई खाक लिखेगा।

मेरे क्वार्टर की बगल मे जो एक चौडा-सा गड्ढा है, उसमे बरसात का पानी जमा हो जाता है। सैकडो ढाबुस बेगो की वह कर्मभूमि बन जाता है, जहाँ उन्हे अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष की प्राप्ति अनायास हो जाती है। वर्षा प्रारम्भ हुई और उनका सामूहिक कलरव—वह टर्र-टर्र-टर्र, वह टर्र-टो, टर्र-टो, टर्र-टो—की पूर्व-परिचित आवाज सुनाई पडने लगती है। जन्म का देहाती हूँ, इसलिए उनके टर्र-टो पर भी दिल आसानी से आ जाता है। इस साल मैं वर्षा के इस लाउड-स्पीकर का इन्तजार करता रहा हूँ, लेकिन जब बेग नही बोला, तब मन चिन्तित हो गया। वह भी क्या बरसात हुई, जब बेग नही बोला, बिजली नही कडकी, कीचड से लथपथ पॉव घर नही लौटे।

हवाई जहाज आकाश मे चीखते-चिल्लाते आते-जाते उडते रहते है। सडको पर विभिन्न प्रकार के नारे सुनाई पडते है। चबूतरे के पास बँधा हुआ भुल्टू का कुत्ता रह-रहकर भूँकने लगता है। लेकिन वह टर्र-टो, टर्र-टो, सुनाई नही पडता। सूरज और बादल के लुका-छिपी के साथ प्रकाश और छाया के बदलते रूप दिखाई पडते है। आसमान मे बनते-बिगडते चित्र और कार्टून की भरमार है। रगो का क्या पूछना।

हरे और काले मान के बडे-बडे पत्ते गजराज के कान की तरह बढ गये है। लीली फूली है। जिनिया मुस्करायी है। बालसम झूम रहे है।

नन्दू भाईजी ने जो अपने गढसिसई-स्थित बलान के उस पारवाले बगीचे से केतकी (केवडा नही) के पेड दिये थे, वे बढ गये है। टीले पर मन्दार (अकवन नही) के पेड स्नान कर हरे वस्त्रा से सुसज्जित कितने भव्य दीखते है !

बगलवाली कोठरी से मलयागिर चन्दन की सुबास को बयार अपने अको मे भर-भरकर ला रही है। यह चन्दन का सिल्ला मेरे गाँव के पेड का है। मेरा गाँव, देहात, जहाँ चन्दन के पेड है, मोर है, हारियल है, झूले है, सियार है। जहाँ बलान भरत-नृत्यम् करती बहती है—मछलियो से भरी, शैवाल से सजी, मूँज और काँस के किनारो को चूमती, इतराती। जहाँ बड के विशाल वृक्ष है, ठाकुर-वाडी है, गढ है पुरातन। जहाँ महन्थजी का हाथी कभी-कभी आ जाता है। पिताजी के बँगले का अवशेष और उनके अपने हाथो रोपी गयी गन्धप्रसारणी नीम उस महात्मा की याद बराबर दिलाती है।

बेंग नही बोले। यह भी क्या बरसात आयी। अजीब-सी। न मुसलधार पानी पडा। न बादल गरजे। न बिजली कौंधी।

पूछने पर पता चला कि बरसात शुरू होते ही मौत के घाट उतारने के निमित्त मेडिकल कॉलेजवाले बेंगो को पकड कर लेते चले गये। चार आने प्रति बेंग। ढेर-के-ढेर। वह पडोस का पानी से भरा डबरा। आज वह भी मुखरित नही, जब मैं लिखने बैठ गया हूँ।

दो-तीन दिनो से कुछ तबीयत भी ठीक नही लगती। कोठे पर चढने से दाहिने ठेहुने मे दर्द-सा होने लगता है। रात पेट दुखने लगा, तो २-४ गोलियाँ गट कर गया।

पहले नियमित रूप से व्यायाम करता था, तो उम्र का कोई तकाजा न था। इधर कार्य-व्यस्तता और टेलीफोन के मारे व्यायाम भी छूटता चला गया और जो कुछ किया भी जाता रहा, वह इतना अनियन्त्रित ढग से कि उसका भला क्या असर होगा। चुनाचे देखता हूँ कि कभी-कभी प्राणो के भीतर उम्र बोलने लगी है। तन कोसने लगा है। मन भली-बुरी सुनाने लगा है। चौबीसो घण्टे स्ट्रेस और स्ट्रेन (तनाव और भार) की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है। जिसके दो-चार घण्टे भी कभी अपने नही हो, वह भी क्या आदमी है ?

कल (गत) रात जब तीन बजे क्लिनिक से थका-माँदा मै बिछावन पर लेट गया, तो क्या देखता हूँ कि मेरी चिर-सगिनी काया मुझसे अलग हो गयी है। रुआँसा, घोर चिन्ता मे निमग्न, वह मेरी ओर एक-टक देख रही थी। गुम-सुम। मैंने बरबस पूछ दिया—"क्यो, मितवा ? आज क्या हुआ कि तुम ऐसी अस्वस्थ, अवसन्न, चिन्तित, उदास, निराश, अन्यमनस्क, उन्मन और उद्विग्न दिखाई पडती हो ?

काया ने सुनी-अनसुनी कर मुँह फेर लिया।

मैं शयन-कक्ष की रोशनी गुम (बुझा) कर लेटा था। बाहर ओसारे पर बल्ब जल रहा था। इसलिए, कमरे मे दरवाजे की फाँक से होती हुई रोशनी की एक भर्टिकल (ऊर्ध्वाधर, उद्वृत, उदग्र) लकीर अन्दर घुस आयी थी, जो चौखट पर ठोकर खा, लडखडाकर फर्श पर धराशायी (होरिजाण्टल, क्षैतिज, अनुप्रस्थ) हो गयी थी। उस धूमिल (धीमा, हलका) प्रकाश मे मेरी काली-कलूटी काया आज कृश (दुबली) और खिन्न दीख पडती थी। मैंने अपने पैरो पर पडी चादर सरका दी, तकिये को हटाया और उठकर बैठ गया।

मेरी बगल मे पडी काया भी उठी और बिछावन (खाट) के एक किनारे (कोर) पर मेरे सामने जा बैठी। उसे इतनी दुबली पहले कभी नही देखा था। उसके झरते बाल भी सुफेद हो चले थे। गालो मे गड्ढे पड गये थे। मास-पेशियाँ ढीली पड गयी थी। चेहरे पर झुर्रियाँ झाँक रही थी।

मैं काया को सम्बोधित कर कुछ कहना चाहता ही था कि माथे मे एक चक्कर का भयकर झटका पडा।

प्रतीति मे,—भूकम्प हो रहा है। पृथ्वी उलटती जा रही है। घर-बाहर की सारी चीजे नाचने लगी। जिस खाट पर मैं बैठा था, वह उठने लगी। मैं गिरने लगा, जैसे मैं रसातल की ओर जा रहा हूँ और दुनिया के नीचे दबोच दिया जाऊँगा। मैंने कसकर बिछावन को पकड लिया। आँखे झप गई। कानो मे लाख-लाख झीगुर झनकारने लगे। जी मिचलाने लगा। पसीने से सराबोर हो गया।

क्षण-भर के लिए (?) मैं शायद बेहोश हो गया था। या अधिक देर के लिए। क्या जानूँ!

उसके बाद जो सब घटा, उसका मै ठीक-ठीक बयान कैसे दूँ! मैं स्वय क्या उसे पूरी तरह जानता हूँ! क्या बताऊँ!

यकायक मेरा 'मैं' दो बराबर हिस्सो मे विभक्त हो गया।

मेरा अर्ध 'मै' बिछावन पर बैठा अपनी (अर्धांगिनी) 'काया' से गुफ्त-गू करने लगा था। और साथ-ही-साथ, उसी समय, मेरे 'मै' का दूसरा आधा भाग मानो किसी पार्श्ववर्त्ती निकटस्थ द्वाभा (ट्वाइ-लाइट)-सिक्त रगमच पर आयोजित एक स्वप्निल रूपक, 'काया की माया', का एकमात्र द्रष्टा, खोया-सा, टकटकी लगाये खडा था। अकबकाया। मानो अन्धकार ने सारी सीटे दखल कर ली हो। सब जब्त कर ली हो

उद्घोषक ने रूपक का प्रारम्भ किया था। नाटक खेला जाने लगा।

रूपक : काया की माया

उद्घोषक आपने कभी सोचा? गतिशील समय की सीमा मे प्रगतिशील 'मैं' कभी-कभी कितना निरीह, कितना असहाय, कितना असमर्थ हो जाता है। उसे देखकर उसका ही तन कोसने लगता है, मन भली-बुरी सुनाने लगता

है—सम्पूर्ण जीवन तनाव और भार बन जाता है और जब प्राणो के भीतर से उम्र बोलने लगती है, तब ऐसा लगता है, जैसे कोई कह रहा हो— (स्वर-मण्डल की झकृत आवाज के साथ पुरुष-स्वर उभरता है)

पुरुष (सस्वर) कह रहा है आसमाँ, यह सब समाँ कुछ भी नही, पीस दूँगा एक गर्दिश मे, जहाँ कुछ भी नही। जिनके महलो मे हजारो झाड-व-फानूस थे, झाड उनकी कब्र पै है और वहाँ कुछ भी नही।

उद्घोषक सच !! निराशा के स्वर मे डूबी हुई यह हकीकत बहुत कुछ हमसे कह जाती है, पर आशा-आकाक्षा के ढेर सारे चित्रो के बीच फूली-फूली हमारी जिन्दगी उसे भूल जाती है। हमारा 'मै' अपनी प्रौढता के दर्प मे विवेक का परित्याग कर देता है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे विरुद्ध युद्ध छेड देती हैं और तब अशान्त-शान्त काया अपने अस्तित्व की अन्तिम वसीयत पर हस्ताक्षर कर सिसकने लगती है – (काया सिसकती है, सिसकने की आवाज तेज होती है, काया के पास ही विचरता हुआ विवेक किसी नारी के सिसकने की आवाज सुनकर चौक जाता है। रात की खामोशी मे किसी नारी की सिसकयाँ और रोते हुए कुत्ते की आवाज स्थिति को भयावह बना देती है।)

विवेक (स्वत) रात्रि के शून्य प्रहर को अपनी सिसकियो से स्पन्दित करनेवाली यह कौन हो सकती है। कौन है यह दर्द से दबे दिल के दायरे मे दम तोडती तडपती नारी ? चलूँ . पूछूँ . (गति-सकेत) (पास आकर) कौन हो तुम ? (सिसकी तेज हो जाती है। रुआँसी आवाज मे)

काया मैं अबला, अभागिन, असहाय, असमर्थ, उपेक्षिता ना री

विवेक वह तुम्हारी आवाज बतला रही है पर मै तुम्हारा विशेष परिचय चाहता हूँ अन्धकार के आवरण ने तुम्हारे साकार स्वरूप को ढक दिया है

काया अन्धकार के आवरण ने नही, विवेक तुम्हारी समर्थ दृष्टि की चतुराई ने मुझे पहचानने से इनकार कर दिया है।

विवेक (आश्चर्य) विवेक !!! तो क्या तुम मेरा नाम जानती हो ?

काया हाँ, मै काया हूँ। तुम्हारी काया (फूट पडती है)।

विवेक काया !!! (एक करुण ध्वनि उभरकर फेड आउट)

काया !! क्षत-विक्षत काया...रूप-रग-विहीन, जीर्ण-शीर्ण, दीन-हीन काया वक्त ने कैसा खेल रचाया है तुम्हारे साथ . पर पर इसके लिए दोषी तुम हो

काया (रोती हुई) हाँ हाँ हाँ मैं ही दोषी हूँ सब मुझे ही दोषी कहते हैं उसे कोई कुछ नही कहता जिसने अपनी प्रतिष्ठा के लिये हमे

अप्रतिष्ठित कर दिया उसे कोई कुछ नही कहता

विवेक कौन है वह

काया 'मैं', तुम्हारा मित्र 'मैं'। जिसने मेरे घर मे रहकर मुझे ही बेघर कर दिया... मेरी ज्ञानेन्द्रियों के सहारे सफलता की चोटी पर पहुँचकर, उसने अपना स्थान सुरक्षित रखने के लिये, मुझे ही धक्के देकर नीचे गिरा दिया . वही 'मैं' जालिम, जुल्मी, दगाबाज 'मैं'।

विवेक इसमें मेरा क्या कुसूर है काया ! मैंने हर क्षण, हर पल उसे टोका, रोका पर वह अपने मे फूला-फूला हम सबकी बातो को ताक पर रखता रहा किन्तु तुम्हे भी तो सचेत रहना चाहिए था..तुम्हे अपनी ज्ञानेन्द्रियो को वश मे रखना चाहिये था

काया इसीसे मैं कहती हूँ विवेक, तुम बहुत कुछ कह सकते हो, कुछ कर नही सकते। त्याग वशीभूत होकर नही किया जाता - मुक्त होकर किया जाता है तन से, मन से, मुक्त होकर

विवेक मगर त्याग के लिये रोने का अर्थ ?

काया ये आँसू त्याग के नही, परित्याग के लिये हैं। उपकार के लिये कोई नही रोता विवेक, उपेक्षा के लिये रोता है।

विवेक (उच्छ्वास लेकर) मैं समझ गया। दोषी तुम नही तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। सबने मिलकर 'मैं' के अह को मजबूत किया है (तीव्र स्वर मे) कहाँ हैं वे सब मैं उनसे सवाल पूछना चाहता हूँ

(कई स्वर-यन्त्रो की मिश्रित ध्वनि) (बहुत सारी सम्मिलित सिसकियाँ) (नेत्र, कान, नाक, जिह्वा, हाथ की उपस्थिति) (इन पात्रो की उपस्थिति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य-वृन्द की ध्वनि-प्रस्तुति)

विवेक क्यो नेत्र अब कहाँ है तुम्हारी ज्योति तुम्हे तुम्हारी काया नही दीख रही क्या ? भुला दिया समता का पाठ, जो कितने परिश्रम से मैंने पढाया था।

नेत्र (ध्वनि के माध्यम से उपस्थिति का बोध) नही विवेक - आज भी मुझे वह सबक याद है, पर जिसके लिये तुमने मुझे शिक्षा दी, वही मेरे ज्ञान का विरोधी बन गया। सौन्दर्य और वासना, रूप और रग, जीवन और मृत्यु का खेल देखते-देखते मैं घिस गया, घिसता गया। अपने आनन्द के लिये तुम्हारे 'मैं' ने मुझे निस्सार कर दिया . दोषी काया है, जिसने 'मैं' को आश्रय देकर, हमे निराश्रित कर दिया।

(काया के सिसकने का स्वर बीच-बीच मे उभरता रहता है)

विवेक और तुम कौन !! तुम क्यो बहरे बने रहे। सत्य ने तुम्हे कितनी बार

पुकारा। उसकी पुकार तुम्हारे द्वार तक जा-जा कर लौट आयी। तुम्हारे ही चलते काया की दुर्गति हुई नेत्र ज्योति-विहीन हो गया

कान (खीझकर) नही नही नही !! मैं बातो के बीच बहते-बहते बहरा हो गया हूँ .अच्छा-बुरा हर शब्द मेरे द्वार से गुजरता रहा और मै खामोश रहा। इसलिये नही कि मुझे तुम्हारी बाते याद नही रही । मैने हर घडी सोचा, वही सुनूँ, जो सबको सुहाये, पर हाय ! तुम्हारा फरेबी मित्र 'मैं' काया की छाया मे मनमानी करता रहा बेमानी करता रहा मुझे सब कुछ सुनना पडा, नेत्र को सब कुछ देखना पडा हमारी यह विवशता हमारी सेवाओ का पुरस्कार है विवेक, जो 'मै' ने दिया है। तुम्हारे 'मैं' ने ।

(काया के सिसकने की आवाज पुन उभरती है)

विवेक और, तुम क्यो नीची हो गयी नासिका ! काया जब जवान थी, तब बडी ऊँची बनी बैठी थी। नेत्र तुमसे ऊपर था, पर सब कुछ पहले तुम्ही देखती थी। आज तुम काया के लिये परेशान नही दीखती। उस दिन जब मैंने काया से कुछ कहा, तब बोली थी—नाक मेरे सौन्दर्य का प्रतीक है विवेक, इसे किसी हालत मे नही कटने दूँगी। पर, आज जब वह जीवन से कटकर रह गयी है, तब तुम उससे कटी-कटी फिरती हो ?

नाक (लम्बी साँस लेकर) मैं इतनी निर्मम, इतनी नासमझ नही हूँ विवेक !! इतनी बेवफा भी नही कि अपनी सहेली को पहेली बनाकर जीवन के पहलू मे बेपनाह छोड दूँ। मेरा अस्तित्व तो उसी दिन समाप्त हो गया, जिस दिन तुम्हारे 'मैं' ने मुझे गन्ध के पीछे पागल बना दिया। मैं दीवानी-सी सुगन्ध के पीछे भटकती हुई काया से बहुत दूर चली गयी...इतनी दूर, जहाँ से चीखने पर भी मेरी आवाज काया के कानो को नही सुनायी पडी। तुम्हारा 'मैं' मेरी असमर्थता से नाजायज फायदा उठाता रहा और आज मुझे यह दिन देखना पडा।

विवेक और तू गुमसुम क्यो है वाचाल जिह्वा ? पहले तो बोलती थी, तो दूसरो की बोलती बन्द हो जाती थी, आज क्या हो गया ? तुझे भी 'मै' से शिकायत है ?

जिह्वा शिकायत 'मैं' से नही, तुमसे है, जिसने मुझे वचनामृत पिलाकर मुझे चुप रहने को विवश किया। मैं अपना कहाँ कुछ कह सकी, मैं वही कहती रही, जो तुम्हारा 'मैं' चाहता था... ससार के प्रत्येक विषय के रसा-स्वादन का उत्तरदायित्व कोई आनन्ददायक वस्तु नही विवेक, कष्टदायक अभ्यास है। तुम्हारे 'मैं' ने कानो को ठगा और मैं वही कहती रही, जो तुम्हारा 'मैं' चाहता था। तुम्हारे 'मै' का शिकार बनी काया। स्वाद लेना

मेरी आदत बना दी गयी थी, किन्तु उस स्वाद के पीछे तुम्हारे 'मै' का ही स्वार्थ था

विवेक यह सब आज कह रही हो .

जिह्वा उस समय भी चाहती थी पर 'मैं' कुछ सुनने को राजी न था, काया 'मैं' के हाथो की कठपुतली थी और तुम मुझसे इतने हिले-मिले न

विवेक ठीक है मगर तुमलोगो के बीच रहनेवाले इन बहादुर हाथो का कमाल कहाँ गया था ?

जिह्वा उन्ही से पूछ देखो

हाथ मैंने जीवन मे कभी सवाल की कामना नही की, इसलिये बेहतर हो कि मैं खुद तुमसे सारी बातें कह दूँ। मेरा गतिशील एव कर्मरत अस्तित्व मुझे सब कुछ दे रहा था मैंने केवल काया की ही नही, काया की समस्त ज्ञानेन्द्रियो को भी कर्त्तव्य की नयी प्रेरणा दी। पर काया के विकसित होते ही सभी ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी सीमा छोडने लगी और मैं अकेला बिना आँखो वाला, कर्ण-विहीन, नासिका-हीन, कर्मरत रहकर सबको जिलाता रहा पर किसी ने मेरी पीडा न समझी मैं भी 'मैं' की बातो का शिकार हुआ और मेरे लिये 'मैं' की आज्ञा सब कुछ बन गयी मैं काया की माया से दूर, तुम्हारे 'मैं' की छाया मे भटकने लगा। मैंने तुम्हे 'मैं' के पास बार-बार देखा, मगर 'मैं' के सम्मुख हारे हुए तुम मुझे सफलता की सीढी पर कैसे ले जा सकते थे ?

(अचानक 'मैं' का प्रवेश, भय पैदा करनेवाले वाद्ययन्त्र की ध्वनि .नाक, कान, जिह्वा, नेत्र, हाथ के भागने की ध्वनि वाद्य-यन्त्र के माध्यम से सकेतित।)

मैं - (ठहाका लगाता हुआ) हा, हा, हा, हा ! क्यो विवेक, तुम्हारी पाठशाला के सभी शिष्य नौ-दो-ग्यारह हो गये ? इतने कच्चे शिक्षक हो तुम कि तुम्हारी कोई नही सुनता कितने भीरु हैं तुम्हारे छात्र !

विवेक - चलो अच्छा हुआ कि तुम आ गये न तो कोई यहाँ पाठशाला चल रही थी, न कोई मेरा छात्र था वे सब-के-सब तुम्हारी महिमा का बखान कर रहे थे

मैं - जो मेरी महिमा नही जान पाया, वह उसका बखान कैसे कर सकता है ?

विवेक लगता है, तुम्हारे ज्ञान को किसी ने विनम्र होना नही सिखलाया

मैं सीखने-सिखलाने का कार्य तो तुम्हारा है विवेक, मैं तो स्वत सिद्ध हूँ।

विवेक : यह सिद्धि तुम्हे कहाँ प्राप्त हुई ?

मैं - प्राप्ति के लिये वही व्यग्र होता है, जिसे कुछ न हो—'मैं' तो अपने-आप मे यथेष्ट है।

विवेक   तुम्हारा दर्प तो पहले से भी कही अधिक ठोस हो गया है, लेकिन ठोस चीज ऊपर कम उठती है 'मै' !

मैं   तुम कभी ऊँचाई पर प्रतिष्ठित नही हुए यदि मेरी तरह कभी ऊँचाई पर प्रतिष्ठित हुए होते, तो तुम्हारी समझ मे यह बात जरूर आ गयी होती कि बिना ठोस आधार के कोई ऊँचाई नही बनती और जो सबसे ऊँचा प्रतिष्ठित होना चाहता है, उसका आधार और भी ठोस होना चाहिये।

विवेक   मानता हूँ। पर, वह ऊँचाई व्यर्थ है, जहाँ औरो को स्थान नही मिले। उस ऊँचाई को क्या कहा जाना चाहिये, जहाँ से हर किसी को धक्के देकर नीचे गिराने की साजिश चलती है

मैं   मतलब ?

विवेक   मतलब साफ है . उधर देखो।
(काया की सिसकी उभरती है)

मैं   यह क्या षड्यन्त्र है मैं ऐसी चाल मे नही आनेवाला. .यह है कौन ?

विवेक   तुम्हारी काया .

मैं   काया नही-नही, यह काया नही हो सकती....!!

विवेक   वही हो ही सकती है 'मैं' ! तुम्हारी बेहोश निगाहे हकीकत से हमेशा कतराती रही हैं . आओ जरा पास से देखो (सिसकी) ..

मैं   काया !!!

विवेक   हाँ 'मैं', तुम्हारी ही काया जो कभी सँवरी-सजी मतवाली बनी थी, आज कितना कुरूप, कितनी भयावनी बन गयी है तुम्हारे अह मे पिसती ज्ञानेन्द्रियो के जोर-जुल्म की मारी बेचारी काया .। तुम खुद पूछो उसका हाल।

(सगीत-ध्वनि)

उद्घोषक   कैसी अजीब है काया की माया और उसकी छाया मे पलनेवाले 'मैं' की लीला। सारा विश्व इसी 'मैं' की प्रतिष्ठा मे अप्रतिष्ठित हो रहा है और विवेक घुट-घुटकर मर रहा है।

रूपक समाप्त-सा प्रतीत होता है) (अकस्मात् रगमच की धूमिल रोशनी गुम हो जाती है। दृश्य लुप्त हो जाता है। रगमच के स्थान पर मेरे शयनकक्ष की सामने-वाली दीवार पूर्ववत् खडी दिखलायी पडने लगती है)।

मेरी खाट पर एक किनारे मेरी काया मेरे सामने बैठी है।

'मैं' (एक लम्बी साँस लेकर)—'काया !'

काया—(मुँह को 'मैं' की तरफ घुमाकर) 'कहिये।' (फिर आँचल से आँसू पोछते हुए) 'क्या कहना चाहते हैं ?'

('मैं' कुछ नही बोलता। चुप रह जाता है। जैसे कुछ सोचने लगा हो। पलथी बदल कर बैठा रह जाता है)

(काया की आँखो से आँसू झर-झर कर गिरने लगते है। वह खिसक कर 'मैं' से कुछ और दूर हट जाती है। आँखो पर आँचल डालकर वह आँसू और नाक पोछती है)।

('मैं' हतप्रतिभ उसे देखता रहता है। किंकर्त्तव्यविमूढ।)

काया—(सिसकियाँ भरती हुई) हम और तुम एक साथ जनमे, सदा एक साथ रहे। तुमने जैसे भी चाहा, मुझे रखा, मैने कभी कोई शिकायत नही की, कोई उलाहना भी नही दिया। तुमने जो भी आज्ञाये दी, मैंने अपनी शक्ति-भर उनका अक्षरश पालन किया। तुम स्वर्ग और नरक जहाँ भी मुझे खीचकर ले गये, मैं तुम्हारे साथ लगी गयी। अपनी मौज-मस्ती मे, तुमने हमसे जो भी अच्छा या बुरा काम करने को कहा, मैने जहाँतक उचित समझा, तुम्हारी सुख-सुविधा के लिये कर डाला। तुम रात-दिन मुझसे काम लेते रहे, कभी यह भी न सोचा कि मुझे तनिक विश्राम लेने देते, कभी छुट्टी पर भेज देते। मै खटती रही, खटती रही। मेरी जिह्वा, मेरे नेत्र, मेरे कर्ण, मेरी त्वचा, सबसे तुमने सदा बुरा व्यवहार किया, उनसे गैरवाजिब फायदा उठाते रहे। अपने सुखोपभोग के लिये तुमने मेरी कोई परवाह न की। स्वाद के लिये तुमने ऐसे-ऐसे पदार्थ मेरे अन्दर डाल दिये जिनसे मुझे अनेकानेक कष्ट सहने पडे। इसी तरह तुमको जो हमने इन्द्रियाँ दी थी, उनके माध्यम से तुमने मेरे बडे-बडे अपकार किये। मैं कुछ न बोली। अपार दु ख झेलकर भी मै तुम्हारी चिर-सगिनी बनी रही, तुम्हारी मदद करती रही, तुम्हारे काम आती रही।"

(इतना कहकर काया चुप हो जाती है) ('मैं' सोचता रहता है। जैसे अतीत से आवाज आ रही हो)।

(अपने बाये हाथ की तीन मध्यवर्त्ती—तर्जनी, मध्यमा, अनामिका—उँगलियो से अपने ललाट और मस्तक को बार-बार रगडता हुआ, चिन्ता की मुद्रा मे, 'मैं')

'मैं'— (गला साफ करता हुआ) "ठीक ही कहती हो, काया। कैसा आश्चर्य कि मैने आजतक तुम्हारी बुराई-भलाई की बात नही सोची!" (फिर चिन्ता-मग्न हो जाता है)

काया—(ललाट पर से रूखे-उजले बाल हटाते हुए) "मेरा इस्तेमाल कर तुमने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष कमाया।"

'मैं'—(बात काटते हुए) "अभी मोक्ष कहा कमाया है, काया!" [हँसने का स्वाँग करता (रचता) है। चेहरे से उदासी झलक रही है]।

काया—(कुछ झुँझलाकर) "हाँ, ठीक ही तो कहते हो। अब 'मोक्ष'-प्राप्ति की ही तो बारी आ रही है।"

'मैं'—(जैसे नीद से जागा हो) "क्या कहती हो!"

काया—(अन्यमनस्क) "वही, जो तुम कहना चाहते हो।" (कुछ देर दोनो चुप रहते हैं)।

काया—(सिर झुकाये, नीचे की ओर देखते हुए) "अब तो तुम लम्बी-चौडी बातें करने लगे हो। कल तुम 'मोक्ष' और 'मुक्ति' की बात कर रहे थे। तुम इतने बेईमान और झूठे और मक्कार हो, यह मैं नही जानती थी। तुम इतने अकृतज्ञ और कृतघ्न हो कि तुमने मेरे सब किये पर पानी फेर दिया है।"

काया—(सिर उठा कर, 'मैं' की आँखो से आँखें चार कर, भर्त्सना की ऊँची आवाज मे) "दुष्ट ! ढोंगी ! पाखण्डी !"

'मैं'—(चौंककर, काया की ओर देखने लगता है, तैश मे)—"बेशक !"

काया—(डॉटने की-सी आवाज मे) 'बेशक' नही तो क्या ? अभी सारी पोल खोल दूँ, तो मिट्टी चाटोगे और मिट्टी मे मिल जाओगे, मिट्टी पलीद हो जायगी।" (रुककर) "जब तुम सपने देख रहे होगे या अर्धनिद्रा मे होगे या सवेदनाहरण, अनेस्थीसिया, की अवस्था मे होगे या पूरे सचेत नही होगे अथवा भूली-भूली-सी मानसिक अवस्था मे कुछ सोच रहे होगे, उस अननुमेय, अनप्रेडिक्टेब्ल, अवस्था मे अगर मैं सच्ची बाते उगलवा दूँ तो ?"

'मैं'—(एकदम धीमे स्वर मे जैसे किसी तीसरे को सुना रहा हो) "और करोगी ही क्या ?"

(काया उठ खडी होती है, मच्छरदानी डालने के डण्डे को पकडकर। (समझौता के स्वर मे)।

काया—"जरा सोचो तो सही। तुम कह रहे थे कि मैं किसी काल मे शरीर नही हूँ, मैं शाश्वत और अजर-अमर हूँ, कि शरीर से मेरा कोई जातीय सम्बन्ध नही है, कि शरीर की मृत्यु के बाद भी मैं जीवित रहूँगा इत्यादि-इत्यादि। नासमझ ! अव्यावहारिक ! बेकार ! बे-रहम !"

काया—(ऊँचे स्वर मे) "तो क्या यह सच है ? मैंने जो तुम्हे इतना प्यार दिया, तुम्हारे साथ तुम्हारा सब सुख-दुःख झेलती रही, सदा तुम्हारी आज्ञाकारिणी बनी रही, तुम्हारी जो जिन्दगी है—पार्थिव ही सही, उसे पुष्पित और फलित करती रही, उसमे चार चाँद लगाया। तुम्हारे लिये हर प्रकार के सुख की व्यवस्था की, तुम्हे कामयाबियाँ दी, ज्ञान दिया, भक्ति दी। और, आज तुम मुझसे अलग होने की बात कर रहे हो।"

काया—(कोसने की प्रक्रिया मे प्रश्न की मुद्रा अख्तियार कर ("मैं नही होती, तो क्या तुम इस पृथ्वी पर जन्म ले सकते थे ? मैं अगर ठीक काम नही करती, अगर तुम्हे धोखा दे देती, बीमार पड जाती, तो तुम्हारा क्या हाल होता ? तुम्हे सफलताएँ मिल पाती ? किसी भी तरह का सुख तुम्हारे हाथ लगता, चाहे कितनी बेशुमार सुविधाएँ उपलब्ध क्यो न रही होती ?"

(काया के चेहरे पर क्रम से क्रोध, क्षोभ और नैराश्य के भाव परिलक्षित होते गये) ।

मच्छरदानी का डण्डा छोडकर काया नि सहाय, उपेक्षित-सी, खडी होती है, उसके माथे पर पसीने की बूँदे है, जिन्हे वह पोछ रही है, उसके पैर लडखडाने लगे हैं, आँखो के सामने अँधेरा छाता जा रहा है, वह घबराकर जमीन पर ही बैठ जाती है और पलग का पाट पकड लेती है) ।

(काया की आवाज रुँध जाती है, वह रो-रो कर कहने लगती है)—
"मैं बूढी बनती गयी । तुम तो 'अजन्मा', 'शाश्वत', 'अनश्वर' थे और रहोगे । मुझे दु ख इतना ही है कि जब मैं मर जाऊँगी, और जब चिता मुझे धू-धू कर जला डालेगी, तब तुम्हारा साथ सर्वदा के लिये छूट जायगा । उस समय मैं तो मिट चुकी होऊँगी । रोने के लिये मेरी एक आँख भी न होगी । उफ् !!! ओ, मेरे प्राणप्रिय ! जीवनसाथी ! कुछ कहने के लिए मेरी जीभ भी न बचेगी । मैं शिकवा-शिकायत भी न कर सकूँगी । मैं तुझे दो नजर देख भी न पाऊँगी । मेरे प्राण ! क्या उस प्रहर मे तुझे मेरी याद भी न आयगी ?"

(काया फूट-फूटकर रोने लगती है, उसकी घिग्घी बँध जाती है ।)

(काया घबराकर 'मैं' की ओर भागती है और 'मैं' को अपनी भुजाओ मे समेट लेती है । 'मैं' धुँधला, अस्पष्ट, होता हुआ 'काया' मे विलीन हो जाता है) (मैं का अस्तित्व लुप्त हो जाता है) (भोर का प्रकाश फैलने लगा है) (काया स्पष्ट दिखायी पडने लगी है) (घर अधिकाधिक आलोकित होता चला जा रहा है) (वातायन खुलते जा रहे हैं) । (मन्द-मन्द हवा मे मच्छरदानी हिलने लगी है) ।

(काया एक लम्बी साँस भरती है । जैसे नीद से जगी हो, अँगडाइयाँ लेती है, चादर ओढने की कोशिश करती है) ।

(वह भाथी की तरह हाँफती-सी बिछावन पर गिर-सी पडती है और थोडी देर के लिये चादर के भीतर अचेत-सी दीखती है) । (हवा के एक झोके से चादर सरक जाती है, एक पुरुष-शरीर लेटा हुआ दिखाई पडता है) ।

(नेपथ्य से गायो की रँभाने की आवाज आ रही है)

[अपराजिता (विष्णुकान्ता)-सी रात चली जा रही है । वह गहरी श्याम नीलिमा ! वह चन्द्र-चूडामणि !]

[हरसिगार (शेफालिका)-सा बिहान (प्रात) बढता आ रहा है । वैराग्य पर आधृत पवित्रता । सिन्दूर और सेवन्ती । ई गूरी अन्तरिक्ष पर आलोक] ।

(शमी-सुमन-सी सुनहली-रुपहली रश्मियाँ बिखरने लगी है) ।

(कचबचिया का चहचहाना, मुनिया का गाना, बुलबुल का तराना, सुनायी पडता है) ।

(दुर्गा-मन्दिर मे किसी ने शख फूँका। घडी-घण्ट बजाया।) (पूजा समाप्त हुई)।

(ओसारे पर से वसुन्धरा का सुग्गा बोला—'मीठू!' —फिर, 'कौन है?' 'कौन है?'—और फिर, 'दीदी!') (अपनी पूरी शब्दावली का व्यवहार कर गया)। (और, वह निर्मम पछी स्वर्गीय व्रजकिशोर 'नारायण' जी (भगवान् उनकी पवित्रात्मा को चिर-शान्ति प्रदान करे!) की तरह,—

"मैं ज़ुबाँ से, आँसुओ से, रूह से, तीन ही कविता सुनाकर सो गया।")

कही दूर पर कोई देहाती पराती गा रहा है। कोई सगत कर रहा है

"सूतल रहलो सपन एक देखलो
देखल बड अजगूत, पिया हो!
देखल बडअ अजगूत।
नन्दन बन मे बाग उजाडैत
राम लला कर दूत, पिया हो!
राम लला कर दूत।
शरण गहो सिया-राम के, पिया हो!
शरण गहो सिया-राम।
लछमी सरोसती धान न कूटन (धानो न कूटए)
झखत मँदोदरी रानि, पिया हो!
चरण गहो सीरि राम के, पिया हो!
चरण गहो सीरि राम।"

"ढिमि - ढिढिमि - ढिमिक,
ढिमि - ढिमिकि - ढिमिक,
बजते त्रिताल पर ढोल - झाल
द्रिम-द्रिमिर-द्रिमिर मादक मृदग
टिन-टिन-टुन मुखरित अन्तराल।"

(बाणाम्बरी पो० रा० अ०)

[गिरजाघर के टावर (मीनार) ने डके पर छ बार चोट दी।]

[प्रभात की जीवन्त किरणें झरोखे से झाँक कर अभ्यागत-सी आने लगी। मानो कह रही हो

"बन्धु! न जीवन मे यह अवसर बार-बार आता है
अभ्यागत बस एक बार यह द्वार खटखटाता है।"

(मुक्ति-सग्राम के० ना० मि० प्र०)]

(खिडकी मे जडी ग्रिल की छाया फर्श पर एक सुन्दर अल्पना चित्रित करने लगी।)

[दृश्य द्रुत गति से बदलने लगा—

"यह विश्व झूलता महादोल,
परिवर्त्तन का पट रहा खोल।"

(कामायनी ज० प्र०)]

टेलीफोन बजने लगा और बजता ही जा रहा है— ट्रिङ्ग-ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग-ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग-ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग-ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग ....ट्रिङ्ग-ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग-ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग ट्रिङ्ग ट्रि . जैसे एक मन्वन्तर तक बजता ही रहेगा !

मैंने चादर उठा फेंकी और आँखे मीचता-मलता खडा हो गया। और, टेली-फोन के रिसीवर को उठाने के लिए हाथ बढाया ही था कि बाहर जाने किसकी मोटर-कार आकर लगी और हॉर्न बजा। हॉर्न-हॉर्न-हॉर्न !

(हवा के झोंके से शयन-कक्ष का दरवाजा खुल जाता है, बाहर का प्रकाश अन्दर को आलोकित करने लगता है, कोई दरवाजा खटखटा रहा है।)

यह शरीर परमात्मा-प्रकृति-प्रदत्त सबसे बडी नेयामत है। हमारी सबसे बडी धरोहर। इसी के सहारे इस ससार मे रहना है। इसी के सहारे आत्मोन्नति करनी है। इसी के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना है। इसकी सही-ढग से देख भाल करना नेहायत जरूरी है। इसे स्वस्थ रखना हर तरह से लाजिम है। यह हमारा उत्तरदायित्व है, जिसे हमे स्वय पूरा करना है। यावज्जीवन यह हमारा अन्तरग मित्र हमारे हर काम आता रहता है। प्रकृति के चाक पर आध्यात्मिक विधान और तकनीक से गढा गया यह मानव-शरीर एक ऐसा यन्त्र या फैक्ट्री है, जो बिलकुल अद्वितीय है। दुनिया की जितनी मशीने है, उन सबको बनानेवाला यह महानतम फैक्ट्री, कारखाना, उद्योगशाला, बेजोड है। कोई कारखाना, कोई कल-पुरजा, इसकी बराबरी नही कर सकता। कोई भी अभिकलित्र (कम्प्यूटर) इसके पसँगे मे नही आ सकता।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए 'योग' से बढकर कोई दूसरा तरीका आजतक ईजाद नही हुआ।

शरीर को प्रधानत तीन हिस्सो मे बाँटा जा सकता है (१) इसकी (शारीरिक) सरचना (एनाटॉमी), (२) इसकी (शारीरिक) क्रिया (फिजियोलॉजी), (३) इसकी अन्तश्चेतना (अन्त करण, मानस, साइकॉलॉजी या साइक्-इ)।

'योग' की ही एक ऐसी व्यायाम-प्रणाली है, जिसमे शरीर के इन तीनो भागो पर ध्यान दिया गया है।

शरीर को पूर्णत स्वस्थ रखने मे ऐसी कारगर (सफल) और कोई दूसरी पद्धति उपलब्ध नही है। स्वास्थ्य-लाभ के अलावा 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' (योग चित्त की वृत्तियो को निरोध करने का रास्ता है)। हमारे मस्तिष्क मे अनेकानेक

बेलगाम विचार, ऊहापोह, तरगित होते रहते हैं, उन्हे रोककर सही रास्ते पर लगाने का अमोघ उपाय योग है)। 'योग कर्मसु कौशलम् ।' ('योग' आदमी को कर्म-कुशल बनाता है, उसके हर काम को उच्चतर और अधिकाधिक सक्षम और कुशल तथा दक्ष और फलोत्पादक बनाता है) तभी तो भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मन्त्रणा दी थी कि 'योगस्थ कुरु कर्माणि' । यह मन को एकाग्र करता है। विचार-तरगो (लहरो) को सान्द्रित (सकेन्द्रित, कसेण्ट्रेटेड, समाहृत, एकत्र) कर यह मानव की विचारधारा को अत्यधिक प्रभावशाली बना देता है। (तु० 'लेसर' किरणें । रोशनी प्रकाश, लाइट, के छिन्न-भिन्न अनेक वेभ-लेग्थ्स की किरणो मे से समान वेभ-लेग्थ्स की किरणो को एकत्र कर किरणपुज—पैरलेल बीम—मे उत्सर्जन, विकीर्ण, प्रवाहित करना)।(ए बीम ऑव लाइट कम्पोज्ड ऑव रेज ऑल ऑव दि सेम वेभ-लेग्थ्स, कोहेरेण्ट लाइट । दिम मेक्स पॉसिब्ल ऐन इण्टेन्स कसेण्ट्रेशन ऑव एनर्जी एट ए शार्पली डिफाइण्ड प्वायण्ट) (तु० लोहे के छिन्न-भिन्न अणुओ को उचित ढग से एकत्र कर उसे चुम्बक बनाया जा सकता है। लोहे का नाल 'हॉर्स-शू'— या छड। लोहा मे कोई बाहरी फर्क नही मालूम होगा, लेकिन वह अपने प्रभाव मे पूर्णत बदल गया होगा। एक मामूली लोहा आकर्षण—गुण सम्पन्न 'चुम्बक' बन गया)। (तु० उचित वाद्य-यन्त्रो के प्रभाव से गायो का अधिक दूध देना अथवा पौधो की असाधारण प्रगति)।

आसनो का प्रभाव मुख्यत शरीर-सरचना-सम्बन्धी अवयवो पर पडता है। (जैसे हड्डियाँ, सन्धि-जोड, मास-पेशियाँ, बोन्स, ज्वायण्ट्स, मसल्स)। तन्तुओ (नर्म्स), धमनियो (आर्टरीज), शिराओ (भेन्स) पर भी। आसनो का प्रभाव शारीरिक क्रियाओ (फक्शस, फिजियोलॉजी) पर भी पडता है। तन्तु-केन्द्रो (नर्भ-प्लेक्सस) (तन्त्रिका-जालिका) पर भी। और उन अन्त स्रावी एण्डोक्राइन ग्रन्थियो (ग्लैण्ड्स) (जैसे, थाइरॉयड) पर, जो हार्मोन (रस) बनाती है, और उन बहि स्रावी (एक्सोक्राइन) (जैसे —पैंक्रियाज) ग्रन्थियो पर, जो पाचन-क्रिया इत्यादि के लिये अत्यावश्यक है। हार्मोन जैसे अनेक रासायनिक तत्त्व हैं, जो (रस के रूप मे) रक्त-प्रवाह मे मिलकर शरीर के लिये बहुतेरे अनिवार्य काम करते हैं और जिनके बिना शरीर का जीवित रहना और काम कर पाना असम्भव है।

'प्राणायाम' साँस लेने की विशिष्ट प्रणाली है। इससे साँस गहरी और सन्तुलित हो जाती है। साँस की क्रिया पर साधक का नियन्त्रण हो जाता है। जिससे चित्तवृत्तियो की उच्छृखलता का भी शमन-दमन, रोक-थाम, होता है। 'प्राणायाम' का असर हृदय तथा रक्त-सचार-सम्बन्धी अवयवो पर भी पडता है। प्राणायाम से आयु बढती है और युवावस्था टिकती है।

'ध्यान' से मानसिक क्षमताएँ बढती है। विचार-तरगो के सन्तुलन और एकाग्रता से उनमे असाधारण ऊर्जा का प्रादुर्भाव होता है। छिपी और दबी अलौकिक

शक्तियो का विकास होता है। उनकी सामर्थ्य और उनकी क्षमता बेहद बढ जाती हैं।

ध्यान-धारण-समाधि मुक्ति का मार्ग है, जो साधारण पुरुष (मानव) को महा-मानव बनाकर उसे पुरुष-विशेष (परमात्मा) का साक्षात्कार कराता है। (पुरुष-प्रकृति । अच्युतानन्तगोविन्द ।

'योग' की अपनी पद्धति है, अपने रास्ते, जिसपर चलकर साधक अपने मानसिक स्तरो को पार करता हुआ परमात्मा तक पहुँच जा सकता है।

'प्राणायाम' से लग्स (फुफ्फुस, फेफडा) का जो फैलना-सिकुडना होता है, उससे छाती की पसलियो तथा उनकी ग्रन्थियो (कोस्टोकाण्ड्रल, स्टर्नो-काण्ड्रल) तथा उरोऽस्थि (स्टर्नम) और उसके जोडो का भी व्यायाम हो जाता है। साथ ही उसका वेगस नर्भ (वेगस-तन्त्रिका) पर भी निश्चय ही असाधारण, अत्यधिक प्रभाव पडता है।

ऑटोनॉमिक नर्भस सिस्टम (स्वसचालित स्नायु-तन्त्र) से सम्बद्ध यह वेगस-तन्त्रिका शरीरस्थ सबसे बडा और सबसे अधिक प्रभावशाली तन्तु है, जो उन सब अवयवो के सचालन मे भाग लेता है, जो शरीर के लिए अत्यावश्यक हैं और जिनपर आदमी को कोई ऐच्छिक (भोलण्टरी) नियन्त्रण नही है और जो आदमी के वश मे नही होते। [जैसे . हृदय, फुफ्फुस, पाचन-क्रिया-सम्बन्धी अवयव, पेट, लिवर (यकृत्, जिगर), प्लीहा, वृक्क (किडनी) इत्यादि]। वेगस तन्तु का सम्बन्ध केरोटिड बॉडी, एयोर्टिक नर्भ-प्लेक्सस तथा अन्य नर्भ-प्लेक्ससो से भी है, जिन्हे योगी 'चक्रो' की उपाधि देते हैं। अन्त स्रावी ग्रन्थियो (हार्मोन ग्लैण्ड्स) पर भी इसका प्रभाव पडता है और कुछ बहि स्रावी ग्रन्थियो पर भी। कुछेक कपाल-तन्त्रिकाओ (क्रेनियल नर्भ्स) से भी वेगस-तन्त्रिका सम्बद्ध है। इस तरह, प्रत्यक्ष है कि वेगस-नर्भ का प्रभाव शरीर पर काफी व्यापक है। और, यह सम्भव है कि 'इडा' और 'पिंगला' नाम इसी तन्तु के लिए व्यवहृत हुआ हो (दक्षिण तथा वाम-राइट तथा लेफ्ट-वेगस नर्भस)। हृदय से जो विद्युत्-धारा स्वत सचालित होती है, उसके केन्द्र पर भी वेगस-तन्तु पाये जाते है। प्रधान धमनी, कैरोटिड साइनस, तथा कोरोनरी धमनियाँ (जो हृदय के पोषण के लिए उसमे शुद्ध रक्त पहुँचाती है) पर प्रभाव डालकर वेगस-धमनी बडा ही महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।

यौगिक आसनो का प्रभाव कितना व्यापक हो सकता है, इसका एक उदाहरण देखिये।

'पश्चिमोत्तान आसन' से तो आप निश्चय ही वाकिफ होगे। यह इतना प्रचलित आसन है कि इससे आप अनभिज्ञ हो ही नही सकते।

पीठ के बल आप सीधे लेटे हुए है। प्रधान धमनी (एयोर्टा) से होता हुआ शुद्ध रक्त अग-प्रत्यगो तथा विभिन्न अवयवो मे प्रवाहित हो रहा है। आप शान्त-निश्चिन्त पडे हुए पश्चिमोत्तान आसन प्रारम्भ करने जा रहे हैं। आपने अपनी दोनो भुजाओ

को अपने मस्तक की ओर दोनो कानो के समान्तर सीधा और पूरा फैला दिया है।

अब आप बिना हाथ के सहारे फर्श पर से पीठ को उठाइये। साँस छोडते हुए पीठ को सीधी खडी होने दीजिये, फिर आगे झुकने दीजिये। श्वास छोडकर, कमर मोडते हुए, आगे झुकते हुए दाहिने एव बाये हाथ की उँगलियो से क्रमश दाहिना तथा बायाँ अँगूठा पकड ले। एडियाँ एक दूसरे से सटी हो। पाँव सीधे रहे, ताकि घुटने बराबर जमीन से लगे रहे, उठे नही। अब धीरे-धीरे (यौगिक क्रियाओ मे जल्दबाजी करना कदापि उचित नही है) आगे झुकते हुए आप अपनी नाक को घुटनो के बीच मे सटाइये, ताकि आपका ललाट (मस्तक) घुटनो पर आ लगे। साँस पूरी बाहर छोड दी हुई है। पेट भीतर की ओर सिकुड (दब) गया है। अब आप थोडी देर उसी अवस्था मे ठहरिये। फिर, धीरे-धीरे साँस अन्दर लेते (भरते) हुए पूर्वावस्था मे चले आइये।

अब देखिये कि इस आसन मे कौन-कौन सी घटनाये घटी।

(१) पीठ और पेट की मासपेसियो का व्यायाम हुआ।

(२) मेरुदण्ड की हड्डियाँ तथा सन्धियाँ चलायमान हुई। [खास कर लोअर लम्बर, लम्बो-सैक्रल, सैक्रो-कॉक्सीजियल (त्रिकानुत्रिक) इलियो-सैक्रल (त्रिक-श्रोणि-फलक, सन्धियाँ]। ये सन्धियाँ कुचित (फ्लेक्स्ड) हुई, फिर प्रसारित (एक्सटेण्डेड) हुईं।

(३) धीरे-धीरे ग्रोआयन (ऊरु-मूल, वक्षण) के पास फिमोरल आर्टरी (और्वी धमनी) तथा भन (और्वी शिरा) दबती-चिपटती गयी। धमनी मे रक्त-प्रवाह घट गया, शिरा मे भी। अस्थियो की पोषक न्युट्रिएण्ट धमनिकाएँ, और भासा भेजोरम तथा भासा नरभोरम, का रक्त-प्रवाह भी घटा। शिराओ मे का खून-प्रवाह थमका, धमनियो (धमनिकाओ, कोशिकाओ, इत्यादि) का भी घटा।

जब आप पूर्व-अवस्था मे आने लगे, तब रक्त-सचार के रास्ते खुलने लगे और दोनो पैरो के कोने-कोने मे, कोष-कोष मे, शुद्ध रक्त सचारित होने लगा।

इस प्रक्रिया से पहले तो कोष शिराओ के रक्त मे 'जल-मग्न-से' हुए, फिर धमनियो के विशुद्ध रक्त से धुल गये, धोकर साफ कर दिये गये।

(४) शियाटिक नर्भ (आसन-तन्त्रिका) एक सबसे बडा तन्तु है, जिसकी शाखायें-प्रशाखाये दोनो पैरो की रग-रग मे फैली हुई है।

पैरो पर धड के झुकने, मुडने से आसन-तन्त्रिका पूर्णरूपेण स्ट्रेच्ड खिचाकर, कसा जाती है। उसके तार-तार झकृत हो जाते है और प्रत्येक कोष पर निश्चय ही उसका प्रभाव पडता होगा, जो अपनी सूक्ष्मता के कारण दुर्बोध रह जाता होगा।

एक दूसरा उदाहरण भी देता हूँ।

सर्वांग-आसन को ही लीजिए। इसमे थाइरॉयड (अवटु) तथा पाराथाइरॉयड (परावटु) नाम्नी अन्त स्रावी ग्रन्थियो का व्यायाम हो जाता है, साथ ही कैरोटिड

पिण्ड या साइनस का भी। गरदन से सम्बद्ध मासपेशियो, धमनियो, शिराओ तथा नन्तुओ के साथ ही ग्रैव मेरुदण्ड की अस्थियो (कशेरुका, भरटिब्रा) तथा सन्धियो का भी पूर्ण व्यायाम सम्पादित होता है। इतना ही नही, इस आसन मे मस्तिष्क के कोषो का भी प्रक्षालन (सफाई) हो जाता है। खासकर मस्तिष्क के उन भागो का, जो एनटिरियर तथा मिड्ल सेरिब्रल (प्रमस्तिष्क) धमनियो के द्वारा रक्त पाते हैं।

यौगिक आसनो मे एक आसन करने के पश्चात् उसका विपरीत आसन करने की भी पद्धति है, जो अनिवार्य रूप से व्यवहार मे लायी जाती है। इस तरह प्रत्येक सन्धि, टेनडन तथा मासपेशी पूर्णरूपेण फ्लेक्स, रोटेट, बेण्ट, एक्सटेण्ड तथा स्ट्रेच हो जाते है। और, यह सब आसानी से, बिना अनुचित भार के हो जाता है।

'सर्वांगासन' का विपरीत आसन है 'मत्स्यासन'। इसमे भरटिब्रल धमनियो पर अधिक प्रभाव पडता होगा। जिसके कारण मस्तिष्क का अन्य बचा हुआ भाग (मेडुला, पौन्स, सेरिबेलम इत्यादि) घुलता होगा।

सर्वांगासन तथा मत्स्यासन का प्रभाव मस्तिष्क पर काफी पडता होगा, क्रेनियल नर्भ्स पर भी, नेत्रादि स्पेशल सेन्सेज, ज्ञानेन्द्रियो, पर भी। साथ ही, आवाज से सम्बद्ध जो अवयव हैं (जैसे स्वरयन्त्र, लैरिंग्स)।

सर्वांगासन-मत्स्यासन तथा शीर्षासिन-ताडासन इत्यादि मस्तिष्क को स्वस्थ और निर्मल बनाते होगे और सेरिब्रोस्पाइनल-फ्लुइड (प्रमस्तिष्क-मेरुतरल) के स्राव पर भी असर डालते होगे। सुतरा भेण्ट्रिकिल्स (निलय—तृतीय, चतुर्थ, पार्श्व-लैटरल इत्यादि) से सम्बद्ध मस्तिष्क के भागो पर भी उनका असर होता ही होगा। सर्वांगासन मे जुगुलर (ग्रीवा) शिरा अवरुद्ध हो जाती है। शीर्षासन मे भी यही हालत रहती होगी, क्योकि ग्रीवा-शिरा मे भॉल्भ्स (कपाटिकाएँ) होते नही, सुतरा शीर्षासन के समय उस शिरा मे रक्त-प्रवाह बहुत घट जाता होगा और मस्तिष्क की ओर जाती हुइ धममियो मे रक्त-प्रवाह पूर्ववत् रह जाता होगा या कुछ घट-बढ जाता हो।

(गुरुत्वाकर्षण। कैरोटिड साइनस)।

इन आसन-प्राणायामो की बदौलत आदमी स्वस्थ रह सकता है, उसके शरीर के सभी पाट-पुरजे अपना-अपना काम ठीक ढग से करते रह सकते है। इनके प्रताप से बीमारियो से बचा जा सकता है और रोग-ग्रस्त आदमी को फिर से आरोग्य-लाभ हो सकता है।

सभी आसन-प्राणायाम इत्यादि सब आदमियो के लिये न एक समान आसानी से साध्य है और न सबके लिये एक-से उपयोगी और उचित। बीमार और कमजोर आदमी पूरी सावधानी बरते। आसनो के साथ 'हडबडी' और 'जबरदस्ती' वर्जित है।

हठयोग का दायरा आसन-प्राणायाम और ध्यान तक ही सीमित नही है।

'मुद्रा' तथा 'बन्ध' भी प्रयोग मे लाये जाते है। 'मुद्रायें' कुण्डलिनी को जगाती है। 'मूल-बन्ध' गुदा-स्थान को, 'जालन्धर-बन्ध' गला (थ्रोट) को नियन्त्रित करता है। 'शाम्भवी मुद्रा' मे भौहो के बीच मे टकटकी लगानी पडती है। (बन्ध=रेस्ट्रेण्ट) ('मुद्रा'=शटिंग, क्लोजिग, सीलिग)।

धौति, नेति, नौलि, सखप्रक्षालन, इत्यादि क्रियाएँ शरीर के खोखले अवयवो को स्वच्छ और स्वस्थ बनाती हैं। (क्रिया = प्रोसेस)।

'शवासन', 'योगनिद्रा' इत्यादि से अवर्णनीय शान्ति और उत्साह मिलते है। स्ट्रेस और स्ट्रेन घटते है।

'योग' से 'रोग-निवारण' के विषय मे शायद अभी इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जैसा रोग, वैसा योग।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह — इन पॉच 'यमो' का परिपालन सामाजिक स्वास्थ्य और सामूहिक शान्ति के लिए है।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान— ये पॉच 'नियम' वैयक्तिक शान्ति के लिए है।

मन की स्थिरता। मन की निस्तब्धता। विचार-तरगो का नियन्त्रण।

योग के आठ अग है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

ओ३म् के उच्चारण मे पेट (डायफ्रॉम) से ओठो तक जितने भी आवाज से सम्बद्ध शरीर के हिस्से है, उन सबका व्यायाम हो जाता है। डायफ्रॉम, लैरिग्स, ट्राकिया लग्स, चेस्ट, (पारा—) नेजल साइनेसेज, टग, लिप्स इत्यादि।

समत्व का नाम योग है — 'समत्व योग उच्चते'।

मुख्य आसन ८४ है।

'योग'— (१) ज्ञान-योग, (२) भक्ति-योग, (३) कर्म-योग, (४) हठ-योग (५) राज-योग।

भक्तो का 'योगक्षेम वहाम्यम्'

योग — 'इट इज दि ट्रू यूनियन ऑव आवर विल विथ दि विल ऑव गौड।'

(बी० के० एस० आयगर)

एक अपरिमेय (अकूत, अपरिमित असख्य) परिवर्त्ती (विचार) परिमाण (राशि) मे (का) सम्पूर्ण परिवर्त्तन के विषय मे। (ऑन टोटल चेंज इन ऐन इनफिनीटली भेरिएब्ल क्वानटिटी।) **परमात्मा की गणितीय अनुभूति।**

सपोज दैट, याने 'मान' लीजिये कि (या, 'जान' ही लीजिये कि ! अथवा, 'समझ' लीजिये कि !) – कि, अनन्त गुणनखण्डो (उपादानो) फैक्टर्स पर आधृत '*F*' एक चर (विचर, भेरिएब्ल) परिमाण (राशि, क्वानटिटी) है। प्रत्येक और सभी (कुल) फैक्टर्स मे परिवर्त्तन होने (होते रहने) के कारण '*F*' मे जो सम्पूर्ण परिवर्त्तन होगा,

उसका पता लगाने (पार पाने, कूतने) के लिए एक फार्मूला (सूत्र) निकाला जाय ओर उसपर विचार किया जाय ।

मान जाइये कि , — $v_1,\ v_2,\ v_3$ . .'F' के वे सब फैक्टर्स हैं, जो सतत (अनवरत, अविराम) विस्तृत (प्रसरणशील) हैं (विस्तृत या प्रसारित होते चले जा रहे हैं) (विस्तार या प्रसार होता जा रहा है जिनका) (कण्टिन्युअसली एक्सपैण्डिग) ।

और, $u_1,\ u_2,\ u_3$ . . वे सब फैक्टर्स हैं ' F ' के, जो सतत सकुचनशील है (कण्टिन्युअसली कण्ट्रैक्टिग) ।

प्रसरणशील और सकुचनशील फैक्टर्स जीरो (शून्य) (0) से प्लस इनफिनिटी ($+\infty$) तथा 0 से $-\infty$ (माइनस इनफिनिटी) नक क्रमानुसार (रेसपेक्टिवली बदल सकते हैं ।

अगर माना जाय कि, $-G= v_1,\ v_2,\ v_3$ . . . . . . के गुणनफल के तब 'G' को यूँ सूचित (निर्दिष्ट, द्योतित डिनोट) करते हैं (किया जाना है।

$$G = \overset{\infty}{\underset{r=1}{\pi}} v_r$$

अगर माना जाय कि, —

$$H=u_1,\ u_2,\ u_3 \ .$$

के गुणनफल के तब 'H' को इस तरह सूचित किया जाता है

$$H = \overset{\infty}{\underset{r=1}{\pi}} u_r$$

तदुपरान्त F ' मे (के) उस परिवर्त्तन को प्राप्त करने (जानने) के लिए जो v_r ($r=1,\ 2,\ 3,$) मे परिवर्त्तन के कारण होगा— किसी एक v_r के परिवर्त्तन को नोट करते हैं (परिवर्त्तन पर ध्यान देते हैं) और उसको सभी ऐसे v_s से गुणा करते है, जो उस v_r से भिन्न (डिफरेण्ट) हो और तब ऐसे (इस तरह के) समस्त गुणनफलो को (एक साथ) जोडते है । (v_s= व्यवहृत होता है, उन सख्याओ मे से प्रत्येक ऐसी सख्या के लिए जो v_r से भिन्न हो) ।

अत , v मे परिवर्त्तनो के कारण 'F' मे परिवर्त्तन

$$\begin{aligned} &= (dv_1)\ v_2\ v_3 \ . \\ &\quad + v_1 . (dv_2) . v_3\ v_4 \ . \\ &\quad + v_1\ v_2 . (dv_3)\ v_4\ v_5 \ . . . . \\ &\quad + \ . . . \quad . . . . . . \end{aligned}$$

जिसे ऐसे भी व्यक्त कर सकते है

$$\Sigma\left[(dv_s)\prod_{\substack{r=1\\ r\neq s}}^{\infty} v_r\right]$$

'*F*' मे यह परिवर्त्तन एक्सपैण्डिग फैक्टर्स (विस्तारशील गुणनखण्डो) के कारण है।

इसी तरह काण्ट्रैक्टिग फैक्टर्स (सकुचनशील गुणक) के कारण *F*' मे जो परिवर्त्तन होगा, उसे निकालने (पता लगाने) के लिए, - ऐसे किसी भी कण्ट्रैक्टिग फैक्टर *Ur* मे के परिवर्त्तन को नोट कीजिये, और तब इस परिवर्त्तन को गुणा कीजिये सभी अन्य बच रहे फैक्टर्स से, और तब इस भाँति (तरीके से) उपलब्ध सभी गुणन फलो का योग हासिल कीजिये।

इसलिये '*F*' मे (का) परिवर्त्तन जो *Ur* के परिवर्त्तन पर आधृत है, याने जो सकुचनो (सकुचनशीलता) के कारण है। वह

$$\begin{aligned}
&= (du_1)\quad u_2\quad u_3\quad u_4\quad \ldots\ldots \\
&+ u_1\quad (du_2)\quad u_3\quad u_4\quad \ldots\quad \ldots \\
&+ u_1\quad u_2\quad (du_3)\quad u_4\quad u_5 \\
&+ \quad \ldots\quad \ldots\quad \ldots
\end{aligned}$$

जिसे यूँ व्यक्त किया जा सकता है

$$\Sigma\left[(du_s)\prod_{\substack{r=1\\ r\neq s}}^{\infty} u_r\right]$$

यह परिवर्त्तन '*F*' मे (का) सकुचनशील गुणनखण्डो (काण्ट्रैक्टिग फैक्टर्स के कारण है।

इसलिए '*F*' में (का) सम्पूर्ण परिवर्त्तन—जो सभी फैक्टर्स (विस्तरणशील तथा सकुचनशील) (एक्सपैण्डिग और काण्ट्रैक्टिग) पर निर्भर करता है— निम्न-लिखित सूत्र, फार्मूला, के द्वारा प्रदत होगा (दिया जायगा) (सूत्र की मदद से मिलेगा)

$$\Sigma\left[(dv_s)\prod_{\substack{r=1\\ r\neq s}}^{\infty} v_r\right] - \Sigma\left[(du_s)\prod_{\substack{r=1\\ r\neq s}}^{\infty} u_r\right] \quad \ldots \quad (१)$$

जिसे शब्दो मे व्यक्त करने के लिए नीचे लिखी भाषा का प्रयोग किया जा सकता है (जो निम्नाकित भाष्य-शब्दो मे व्यक्त किया जा सकता है) ·

सभी गुणनखण्डो (फैक्टर्स) के कारण जो 'F' मे परिवर्त्तन होता है, उस सम्पूर्ण (समूल) परिवर्त्तन को प्राप्त करने के लिए—प्रथमत हम किसी भी एक जेनरल फैक्टर (सामान्य, आम, साधारण, सार्विक) (गुणनखण्ड, गुणक) मे जो परिवर्त्तन हो रहा है (होता है,) उसको नोट कर लेते हैं (विचारते, टाँक लेते, देखते या अंकित करते हैं)। और, अगर यह फैक्टर एक्सपैण्डिग है (विस्तृत हो रहा है, प्रसरणशील है), तो इस परिवर्त्तन की अन्य सभी विस्तरणशील (एक्सपैण्डिग) फैक्टरो से (के द्वारा) गुणा (गुणित) करते हैं। इस तरीके से (विधि, उपाय से) हम समस्त (कुल, सभी) एक्सपैण्डिग फैक्टर्स की गणना (गिनती, लेखा-जोखा) (खबर, स्पष्टीकरण) कर लेते है, तत्पश्चात्, हम फिर किसी जेनेरल फैक्टर (व्यापक, सामान्य) मे जो परिवर्त्तन होता है (हो रहा है), उसपर ध्यान देते है (नोट करते है)। और, अगर यह फैक्टर (गुणनखण्ड) सकुचनशील (काण्ट्रैक्टिग) है, तो इस परिवर्त्तन को अन्य सभी काण्ट्रैक्टिग फैक्टर्स के द्वारा (से) गुणित (गुणा) करते हैं। इस भाँति (तरीके से) हम सभी काण्ट्रैक्टिग फैक्टर्स की गिनती पा जाते हैं (हिसाब जमा कर लेते हैं)।

तदुपरान्त 'F' मे जो परिवर्त्तन हो रहा है, उस कुल जमा (समस्त) परिवर्त्तन को प्राप्त करने के लिए,—पहले प्रकार के कुल योगफलो से दूसरे प्रकार के कुल योगफलो (सम्स, सकल, जोड) को घटाना (सबट्रैक्टिग, वियोजन) पडेगा। इस दृष्टि से (ऊपर का, पूर्व-टकित) फार्मूला (1) को हम वैसे भी जाहिर (अभिव्यक्त, उद्घाटित, एक्सप्रेस) कर सकते है, जैसे नीचे दिया जा रहा है अत 'F' मे पूर्ण परिवर्त्तन :

$$= \Sigma \left[(dv_s) \prod_{\substack{r=1 \\ r \neq s}}^{\infty} v_r \right] + \Sigma \left[-(du_s) \cdot \prod_{\substack{r=1 \\ r \neq s}}^{\infty} u_r \right]$$

बेशक यहाँ हम एक सकुचनशील राशि (ए काण्ट्रैक्टिग क्वानटिटी) $+x$ (प्लस-एक्स) को एक विस्तरणशील राशि $-x$ (माइनस-एक्स) के जैसा प्रतिपादित करते हैं (मानते, समझते, प्रस्तुत, इण्टरप्रेट, करते हैं)।

मन्तव्य (रिमार्क)

ऊपर दी गयी परिस्थितियाँ (सीचुएशन) हमे रेखीय सान्तत्य (लीनियर कण्टिन्युअम) तथा बदलती विमाओ (बदलते आयामो) के सम्बन्ध मे नीचे लिखी गयी उपकल्पना (हाइपोथिसिस) प्रदान करती है।

रैखीय सान्तत्य (लीनियर कण्टिन्युअम) के समार (युनिवर्स) मे किसी खास समय (ऐट ए प्वायण्ट ऑव टाइम) पर कोई भी कण (पार्टिकल) अस्तित्वहीन है

(रैखिक सान्तत्यक समष्टि मे किसी भी समय-बिन्दु पर कोई भी कण विद्यमान नही रहता, याने किसी भी कण का अस्तित्व या उसकी सत्ता नही है) (देयर एग्जिस्ट नो पार्टिक्ल्स इन दि युनिवर्स ऑव लीनियर कण्टिन्युअम), क्योकि किन्ही दो भिन्न कणो के बीच (सिन्स बिटविन एनी टू डिस्टिक्ट पार्टिक्ल्स) मे अनन्त भिन्न कण (इनफिनीटली मेनी डिस्टिक्ट पार्टिक्ल्स) (देअर आर टू बी) हैं, और यह क्रम तबतक चलता है, जबतक कणो का अस्तित्व ही लापता न हो जाय। इस उपकल्पना (कजेक्चर) से यह निचोड निकलता है कि ब्रह्म ही एकमात्र वास्तविकता (दि औनली रियलिटी) है और सम्पूर्ण दुनिया (होल युनिवर्स) मिथ्या और नाटक है। अत , असल वास्तविकता(अलटिमेट रियलिटी) एक और केवल एक ही है।

गत (उपरिलिखित) विश्लेषण (एनालिसिस) के सीधे मुकाबले पर पूर्व-परिभाषित तथ्य की एक और दूसरी (अन्यतर) विवृति (टिप्पणी, व्याख्या) की जॉच की जा सकती है (दि एबभ एनालिसिस मे बी डायरेक्टली कण्ट्रास्टेड विथ स्टिल एनदर इण्टरप्रेटेशन ऑव दि एबभ फेनोमेना) ।

किसी भी एक खास (विशिष्ट, विशेष) मीडिया मे सर्वतरगो का निकाय (तन्त्र, सिस्टम) अपने-मे-सघन है, यद्यपि यह कही भी घना नही है। कोई एकाकी (अकेला, मात्र एक) तरग (लहर) अपने-मे-सघन है अथवा नही, इस सवाल का जवाब (परिस्थिति का स्पष्टीकरण इस बात पर मनहसर होगा (निर्भर करेगा) कि वह तरग क्वाण्टा से निर्मित (बना हुआ) है कि नही। दूसरे शब्दो मे, कि बहरहाल प्लाक की थ्योरी (सिद्धान्त) (मत, वाद) सत्य है या नही कि ऊर्जा (की तरग) क्वाण्टम (क्वाण्टा) (प्रमात्रा, कियत्ता, भाग, टुकडा, मिकदार, परिमाण, मात्रा) मे उत्सृष्ट (एमिटेड) होती है।

परमात्मा के विषय मे यह धारणा रखी जा सकती है कि वह स्थिति-सातत्य (मे) है। उसके आयाम (विमाएँ) असख्य हैं। प्रत्येक आयाम 0 से $+\infty$ और 0 से $-\infty$ तक बदलता रहता है (अथवा, बदल सकने की क्षमता रखते हैं, बदल सकते हैं।) याने परमात्मा न्यूनतम-सूक्ष्मतम-लघुतम से लगायत बृहत्तम-स्थूलतम-महत्तम तक की स्वस्थ सम्भावनाओ से हर घडी विभूषित है। वह पिण्ड मे भी है, ब्रह्माण्ड मे भी। उसका प्रत्येक आयाम सतत (अनवरत) एक्सपैण्ड (प्रसरणशील) और काण्ट्रैक्ट (सकुचनशील) किया जा रहा है, अबाध, अगाध, अथाह गति से। युगपत्, समक्षणिक, साइमलटेनिअसली, एक साथ, साथ-ही-साथ। विरोधाभास-विरोधोपमा-विलक्षण विज्ञप्ति।

इसी 'स्थिति-सातत्य' (स्टेटस कण्टिन्युअम) मे, जब किसी तरह की विकृति, विकार या उत्तेजना, विक्षोभ या विघ्न, अशान्ति या आन्दोलन, उपद्रव या गडबडी, विकर्षण या विक्षेपण—स्वत (ऑटोमेटिक) अथवा सकल्पित (डेलिबरेट) अथवा वैधानिक अथवा प्रेरित—होता है, तब सृष्टि का उद्भव-सवरण होता है। ठीक उसी तरह या शायद वैसे ही, जैसे पानी की शान्त सतह को उत्तेजित करने से (आलोडन से, हिलाने से, के शान्ति-भग से) लहरें जन्म लेती हैं। जैसे जल (तरल पदार्थ) की स्थिरता को

हाकता, पीटता, उद्वेलित करता, जब पवन चलता है, तब सोई हुई लहरें जाग उठती है, बुलबुले बनते-बिगडते-भभकते-हँसते-इतराते हैं। हाँ, जहाँतक परमात्मा की बात है, इस सृष्टि का वही एकमात्र नियन्ता, स्रष्टा और प्रेरक है। परमात्मा-प्रकृति के सिवाय कोई दूसरी शक्ति या माध्यम या मध्यस्थ, इस सृष्टि का सूत्रधार नही है।

अब एक तरग-चित्राभ की बात सोची जाय(लेट अस कमिडर ए वेभ-फार्म)। यह एक सूक्ष्म (अति लघुतम) (तरग) भी हो सकता है और एक बृहत्तम (दीर्घतम, अत्यधिक बडा) तरग भी। इसका एक तरग-दैर्घ्य (वेभ-लेग्थ) भी होगा। आसानी के लिये हम मान ले कि यह एक 'साइन' (ज्या)-वेभ के रूप मे है। कोई भी तरग वक्र ही होगी। वह तो एक मीधी रेखा होगी नही। फिर भी, उमके सचरण (प्रोपगेशन) की दिशा (राह) एक मीधी लकीर मे हो मकती है। दूसरे शब्दो मे, वह एक 'लीनियर (रेखीय) वेभ (तरग)' हो मकता है। अब कल्पना करे कि बहुतेरे लीनियर वेभ्ज है, जिनका नरग-दैर्घ्य समान है, जो समान्तर है और जो एक ही दिशा मे सचरित है। (उदाहरणार्थ, 'प्रकाश' तरगो की 'लेसर' किरण)। इम तरह के किरण-पु ज (रश्मिमाला, बीम ऑव रे या तरगावली) (समूह, कुलक, सेट) मे—(१) दो सन्निकट (ऐडजैसेण्ट, निकटवर्त्ती, निकटस्थ, सटा हुआ, सलग्न, जुटा हुआ) तरगो के बीच (मध्य) क्या रहता होगा, और (२) किरण किम वस्तु (पदार्थ, स्थिति) का बना होता है, और (३) क्या हम किमी एक किरण के विषय मे यह कह सकते है कि वह 'घना' है अथवा नही ? और, अगर हम ऐसा कहे भी, तो ऐसे कथन (वक्तव्य, उक्ति) के लिये हमारे पाम क्या कारण, आधार, मापदण्ड (कसौटी, निकष) या माबूत होगा ? और (४) अपने एक छोर से दूसरे छोर तक, शुरू से आखीर तक, प्रारम्भिक अवस्था से अन्तिम अवस्था तक और दोनो सिरा-बिन्दुओ (सीमान्तक बिन्दुओ, ऐण्ड प्वायण्ट्स) के बीच क्या यह किरण सचमुच अखण्ड, निरन्तर, सन्तत (स्पेस मे) तथा सतत (टाइम मे) दिक्काल मे मन्तत-सतत है ? अथवा यह किरण टुकडो मे बँटा हुआ है, 'भागो' का जोड या ममन्वय है, क्वाण्टा मे टूटा हुआ (विभाजित) है और यह 'झोको' या 'फुहारो' मे उत्सर्जित-सचरित और स्फुरित होता है ? याने इसके फुहारे छूट रहे है, झोके आ रहे है ? और (५) क्या कोई तरग (लहर, वेभ) बन (उत्पन्न हो) सकता है बिना किसी मीडिया के, और यह सिवाय किसी मीडिया मे क्या, यो भी सचरित हो जा सकता है, और (६) तरग तथा उसके मीडिया का आपसी सम्बन्ध (प्राकृतिक, व्यावधानिक, भौतिक—फिजिकल तथा दार्शनिक) क्या होगा ?

किसी दो समानान्तर तरगो के बीच असख्य तादाद मे अन्य दूसरी तरगे भी हो (रह मकती है) जिनके तरग-दैर्घ्य (वेभ-लेग्थ्स) की अनगिनत परिवर्त्तनीय हदे हो मकती हैं, तथाच जिसकी अनेक किस्मे हो सकती है। जैसे 'माइक्रो'-वेभ्स, 'मैक्रो'-वेभ्स इत्यादि (जैसे प्लेन वेभ, समतल तरग, स्फेरिकल वेभ, गोलीय तरग, कन्भर्जिग वेभ, अभिसारी तरग, डाइभर्जिग वेभ, अपमारी तरग, कैपिलरी वेभ, पृष्ठ-

तनावी तरग, प्रोग्रे सिभ वेभ, प्रगामी तरग; स्नेशनरी वेभ, अप्रगामी तरग, ट्रान्सभर्स वेभ, अनुप्रस्थ तरग लौजिट्युडिनल वेभ, अनुदैर्घ्य तरग, नौर्मल वेभ, अभिलम्ब तरग, स्पाइरल वेभ, सर्पिल तरग, वेभलेट, तरगिका, इत्यादि, इत्यादि) (जैसे विद्युत्-तरग, चुम्बकीय तरग, विद्यु त्-चुम्बकीय तरग, ज्योति-तरग, ध्वनि-तरग, ताप या ऊष्मा-तरग, थॉट-वेभ्स या विचार-तरग इत्यादि, इत्यादि) (जैसे, दो समानान्तर दीर्घ जल-तरगो के बीच वर्त्तुल या रेखीय जल-लहरियां)।

और, सच तो यह है कि किसी दो समानान्तर तरगो के बीच इतनी असख्य तरग खचाखच भरी रह सकती हैं कि वे सब एक दूसरे की बगल मे सट-पिट जायँ और एक-दूसरे को छूते रहे और मिल जायँ एक-दूसरे मे। और, तरगो का यह सघ (ग्रूप) एक सघन तरगो से कसा हुआ (पैक्ड) चादर (शीट) या परत की तरह बन जाय। इस 'परत' मे अब न रैखिक तरग रही, न समानान्तर रैखिक तरग-पु ज (बीम ऑव पैरेलल लीनियर वेभ्ज) बचे रहे, बल्कि एक तरगित (तरगायित) परत का प्रादुर्भाव हो गया। और फिर भी अगर इस तरगित परत के वेभ्ज कही समान्तर रह गये, तो अब कोई दो-चार या असख्य ही सही, अलग-अलग (विभिन्न समान्तर तरगे नही रह गयी, बल्कि मात्र एक ही समतलीय तरग (प्लेनर वेभ) का रूप बन गया। यह कोई एक रैखिक तरग न रही। यह एक विशाल तरगित तल (प्लेन) बन गया, एक द्विविमीय (टू डायमेन्सनल) इक्युलिडीन प्लेन (नलीदार लौह-चादर, कोरुगेटेड आइरन शीट, की तरह का)। ऐसा ही तर्क त्रिविमीय तरग के लिए भी उपयुक्त हो सकता है, और असख्य-विमीय तरग के लिए भी। यही अवधारण (सकल्पन, कॉनसेप्शन) लागू होता जायगा (रहेगा), तब भी, जब तरगो का दैर्घ्य (वेभ-लेग्थ) एक समान न भी रहे। लेकिन, एक पूर्णत सघन अखण्ड कसी परत के रूप को प्राप्त कर इन तरगो को शायद समान्तर ही रहना होगा। अगर द्विविमीय तल की बात सोची जाय, अथवा उन तरगो को कई या सभी प्रकार से एक सदृश होना पडेगा, अगर अनेक-आयामी मीडिया की बात हो। ऐसे 'ब्रह्माण्ड' (असख्य-आयामी) की शक्तियाँ और विभव (पावर ऐण्ड पोटेन्शियलिटीज) जबर-दस्त होती हैं, बनिस्बत लेसर किरण की शक्तियो के। और, किसी (एक, सम) अन्तर्निहित (अन्तर्भूत, सहज) (इनहेरेण्ट) विभव (शक्ति) (पोटेन्शियलिटी) के द्वारा सनातन अथवा शाश्वत (परपीचुअल) सामजस्य (हार्मोनी) मे विक्षोभ (बाधा) (डिस्टर्बेन्स) के कारण इस सगत एव समजस (हार्मोनियस) तरगो वाले सतत (कण्टिन्युअस) विश्व (युनिवर्स) के तल (सतह) (सरफेस) पर लघु (शॉर्ट) तथा दीर्घ (लौग) (ओर-छोर तक) (एण्ड-टू-एण्ड) एव विविध (विभिन्न) तरग-दैर्घ्य (तरग-आयाम) वाली तरगें (वेभ्ज ऑव डिफरेण्ट वेभ्स लेंग्थ्स) उत्पन्न हो सकती हैं, और इससे (बाइ दिस प्रोसेस या मेकेनिज्म) नये (न्यू) वस्तु-रूप (आकृति) (फॉर्म्स ऑव थिंग्स) (सतह पर) स्वत (ऑटोमेटिकली) समुद्भूत (समुत्पन्न) (क्रिएटेड) हो सकते हैं।

क्योकि, समस्त (और प्रत्येक) वस्तु केवल (मात्र) (मियर) विभिन्न (डिफरेण्ट) आवर्त्तिता (बारम्बारता) (फ्रिक्वेन्सी) और तरग-दैर्घ्यों (तरग-आयामो) (वेभ-लेंग्थ्स) वाली तरगो से ही बनी होती हैं। (सिन्स ऑल, ऐण्ड एवरी, थिंग्स क्रिएटेड आर कम्पोज्ड ऑव मियर वेभ्ज डिफरिंग इन देयर फ्रिक्वेन्सीज ऐण्ड वेभ-लेंग्थ्स)। स्वय कण (पार्टिक्ल्स) भी अन्तत एक साथ सवेष्टित (सकुलित) या पोटलित (गट्ठरबद्ध) (पैक्ड या बण्डल्ड टुगेदर) अत्यन्त लघुतम (सूक्ष्म) तरगे (इनफिनिटिस्मली स्मॉल वेभ्ज) हो सकती हैं। (दि पार्टिक्ल्स देमसेलभ्ज मे आफ्टर-ऑल बी कन्सिस्टिग आव इनफिनिटली स्मॉल वेभ्ज पैक्ड ऑर बण्डल्ड टुगेदर)।

सारे मूल (तत्त्वगत) (तात्त्विक, प्रारम्भिक) (एलिमेण्टल) उत्परिवर्त्तन (म्युटेशन्स) और समस्त जागतिक (भौतिक) (वर्ल्ड्ली) या सार्वभौमिक (युनिभर्सल) सृष्टियो (के आधार) मे यही घटना (तथ्य, सवृति, चमत्कार) (फेनोमेनन) या यान्त्र (यन्त्र) रचना, कला-विन्यास) (मेकेनिज्म) अन्तर्निहित (अण्डर-लाइण्ड) है। इस तरह से अप्रव्यक्त (अनमेनिफेस्टेड) स्थिति-सातत्य (स्टेटम कण्टिन्युअम) (अखण्डावस्था रूपा-रूप, परमात्मा) प्रव्यक्त (सम्भव) (मेनिफेस्टेड) हो जाया करता है या होता है— सृष्टि के स्वरूप मे। और, अप्रव्यक्त (अनमेनिफेस्ट) को प्रव्यक्त (मेनिफेस्ट) करने की क्रिया को अधिनियमित (नियन्त्रित) (गाभर्निंग) करनेवाले विधानो (लॉज, रूल्स) मे प्रकृति के ज्ञात-अज्ञात विधानो के विविध कुलक (सेट्स), भौतिकी (फिजिक्स) रासायनिकी (केमिस्ट्री), जैविकी (बायलॉजी), आदि के तथाकथित विधान अन्तर्निहित (इनक्लुडेड) हैं—अथवा मनुष्य द्वारा भविष्य के प्रत्याशित अनुसन्धानो के साथ वैज्ञानिको द्वारा आजतक के अनुसन्धानित (अन्वेषित) विधानो का समस्त योग (सम टोटल) उस विधान मे अन्तर्निहित हो सकता है। इसी मे मानसी-वृत्ति (सायकोलॉजी), अध्यात्म (स्प्रिचुअलिज्म), अतीन्द्रिय बोध (एक्स्ट्रा-सेन्सरी परसेप्सन्स), मनोविचार (मेण्टल थॉट), योग इत्यादि के क्षेत्रो (की सीमाओ) का भी समावेश हो जायगा।

अत्यणु (अत्यन्त) सूक्ष्म तरगो (इनफिनिटिज्मली स्मॉल वेभ) का सम्पिण्डन (ढेर, एकत्रित) (काग्लोमेरेशन) कणो की आकृति धारण करता है (प्रस्तुत होता है, स्वरूप ग्रहण करता है) और कण बृहत्तर आयामो मे प्रसार (प्रस्तुति) प्राप्त कर (ग्रहण कर) (स्ट्रेच्ड) (बढाना, खीचना, तानना, पसारना) तरगो के रूप मे दिखायी पडते और आचरित होते हैं, और कण इस तरह सघन सवेष्टित (सकुलित) और परस्पर स्पर्शबद्ध (एक दूसरे को छूते हुए) भी हो सकते (होते) हैं कि वे तरगो की तरह दिखलाई पडे और वैसा ही आचरण (व्यवहार, काम) करें, ठीक वैसे, जैसे पार्श्वबद्ध बिन्दुओ से रेखा बन जाती है (जस्ट ऐज प्वायण्ट्स प्लेस्ट साइड-बाइ-साइड और साइड-टू-साइड इन एपोजिशन फार्म ए लाइन)।

कोई एक एकल-तरग (सिगल-वेभ) सघन है अथवा नही, यह इसपर निर्भर

करेगा कि यह तरग एक अखण्ड (सतत, शाश्वत, निरन्तर, अवच्छिन्न, अविरत और चिरस्थायी, नित्य, अनन्त) तरग है या खण्डित अशो (दिक्काल मे) की बनी हुई है। यदि यह (नियमित या अनियमित ढग से) खण्डित अशो (कई टुकडो) से बनी होगी, तब यद्यपि यह रेखीय (लिनियर) होगी (तथापि) इसके पार्श्ववर्त्ती खण्डित सिराओ (छोरो) (एडजेसेण्ट ब्रोकन एण्डस्) के बीच कोई चीज अवश्य रखी होगी या रखनी पडेगी। तब इसे अखण्ड या सतत नही कहा जा सकता। और, यदि ऐसे बहुतेरे (बहुत सारे, बहुतायत। (टू मेनी) खण्डित अश (फ्रिक्वेन्सी) (आवृत्ति) ऑव स्पर्टस (लहरे, झोके, फुहारे) हो, जिनके टूटे (विच्छिन्न या खण्डित) सिराओ (सीमाओ, छोरो) के बीच अनिवार्यत (इनेविटेब्ली) बहुत-से रिक्त (खाली शून्य) स्थान बच रहे हो, तो ऐसी तरगो को सघन नही माना (कहा) जा सक्ता है। (तु० मैक्स प्लाक की क्वाण्टम-थ्योरी)। बहुत सारे वैज्ञानिक अनुसन्धान अमान्य (रद्द) (इनभैलिडेटेड), अपरिवर्त्तित (रूपान्तरित, बदल दिये गये, हेर-फेर हो गये) (मोडिफायड) या पुर्नविवेचित (री-इण्टरप्रेटेड) हो चुके है। बहुत सारे (अबतक) काल के निकष (समय की कसौटी) पर खरे भी उतरे है।

अनेक त्रुटिपूर्ण (सदोष) और निराधार (निर्मूल)(बेस-लेस) उप-कल्पनाओ (परिकल्पनाओ(अनुमान)के द्वारा विज्ञान (सायन्स) प्रौद्योगिकी(टेक्नोलॉजी) और कला-जगत् (ह्यूमैनिटीज) मे बडी-बडी प्रगति (उन्नति, विकास) हुई है। इसका सबसे जाज्वल्यमान उदाहरण 'यूक्लिद की ज्यामिति' है। यह गलत-सलत या त्रुटि (दोष)-पूर्ण अथवा अशुद्ध अवधारणाओ (कॉनसेप्सन्स) और हवाई उप-कल्पनाओ (हाइपोथीसिस) पर आधृत (खडी) है और तब भी सारे विज्ञान-जगत् मे यह सर्वाधिक पूर्ण (मोस्ट परफेक्ट ऑव ऑल साइन्सेज) मानी जाती है। यह निस्सन्देह सत्य है कि मानव-समाज यूक्लिद और उसकी ज्यामिति का बहुत-बहुत ऋणी है, यद्यपि (उसकी) ज्यामिति शाश्वत तौर पर मानवता के ऊपर थोपा और लादा हुआ एक सबसे बडा (महत्तम) झूठ है और जिसपर फिर भी मानव-समाज ने उत्कटता के साथ (उत्साहपूर्वक) इतना विश्वास भी किया है। (तु० नॉन-यूक्लिदिअन ज्योमेट्री)।

तो क्यो न हमारी एक आध्यात्मिक ज्यामिति (ज्योमेट्री ऑव गॉड) भी हो ? और यद्यपि इसकी स्वयसिद्धियाँ (अभिगृहीत एक्सिअम्स)और परिभाषाएँ (व्याख्याये) (डेफिनीशस) गलत और निराधार भी हो, तब (फिर) भी उन 'त्रुटिपूर्ण' (गलत, फॉल्टी) उप-कल्पनाओ (हाइपोथीसिस) के द्वारा मानवता का लाभ (कल्याण, हित, भलाई) ही (सिद्ध, साधित, प्रतिपादित) होगा। ऐसा एक स्वयसिद्धि-कुलक (सेट ऑव एक्सिअम्स) का सेट परमात्मा के सम्बन्ध मे मान्य स्वीकृत गुण-विशिष्टता का ही वाचक है। (वन सच सेट ऑव ऐक्सिअम्स कन्सर्न्स दि सपोज्ड ऐट्रिब्युट्स ऑव गाड)। उदाहरण के लिए, परमात्मा (ब्रह्म, ईश्वर, भगवान्) का अस्तित्व निश्चय ही एक बिन्दु की स्थिति की तरह सत्य हो सकता है। [जिस 'बिन्दु' मे

कोई वितान (विस्तार, मैगनीट्यूड) नही हो, उसका स्थान (स्थिति) (पोजिशन) कैसे सम्भव हो सकता है] वह (परमात्मा) भी उतनी ही सत्यता के साथ सर्वव्यापी, सर्वत्री, राम, हो सकता है, जितनी एक 'रेखा', जिसमे लम्बाई तो हो सकती है, चौडाई नही [कितनी भी पतली (क्षीण) रेखा क्यो न हो, इसमे कुछ चौडाई तो अवश्य होगी] और भी, यदि एक 'रेखा' उसे कहते है, जो अगल-बगल रखे बिन्दुओ के द्वारा निर्मित हो, जो पार्श्व-बिन्दुओ के मेल (योग) का फल (परिणाम) हो, तब चूँकि एक 'बिन्दु' का कोई वितान (विस्तार) (मैगनिट्यूड) नही होता, (पायण्ट की व्याख्या ही यही है) तो प्वायण्ट्स (बिन्दुओ) के समूह का भी योग शून्य के बराबर (समतुल्य) ही होगा और फिर रेखा का अस्तित्व ही नकार दिया जायगा। वह 'रेखा' काफूर हो जायगी, वह गायब, बिलीन, अन्तर्धान, लुप्त होकर रहेगी। शून्य मे लय हो जायगी। और भी, परस्पर पार्श्व-स्थित बिन्दु उसी आसानी से एक 'कर्व' (वक्र रेखा का स्वरूप अर्जित कर सकेगा, जितनी आसानी से 'हाथ-मे-हाथ डालकर' वह बिन्दु-समूह एक सीधी रेखा बना पायगा या एक गुट मे एकजुट होकर एक पट्टी या बैण्ड या टेप या फीता बना सकेगा।

युक्लिद का यह 'सत्य'-प्रतिपादन कि किसी भी सीधी रेखा के समान्तर किसी एक बिन्दु से, जो उस रेखा के बाहर हो, गुजरती हुई एक और केवल एक ही रेखा सम्भवत खीची जा सकती है, क्या एक थोथी दलीलो पर आधृत महज एक खोखली कल्पना नही है ? [वास्तव मे, एक से अधिक ऐसी समानान्तर रेखाएँ खीची जा सकती है। और, उदाहरणार्थ अनेक विभिन्न रेखीय तरगो (लीनियर वेव्स) वाली प्रकाश की एक किरण (लाइट वेभ) भी वह (वैसा ही) कार्य-सम्पादन कर सकती है।] (तु० नन-युक्लिदियन ज्यामिति)।

परमात्मा वैसे ही विश्व की सृष्टि के लिये जिम्मेदार (कारण) होगा, जैसे त्रिभुज के तीनो कोण मिलकर १८०° का योगफल बना लाने मे। (द्रष्टव्य स्फैरिकल ट्रैंगल)।

यूक्लिद हमारे कुछेक महान् सन्त महात्माओ और पैगम्बरो, जिन्होने आध्यात्मिक विधानो को प्रकाश मे लाया अथवा प्रत्यक्ष आध्यात्मिक विधानो का प्रवर्त्तन (प्रतिपादन) किया से ज्यादा बुद्धिमान् (मेधावी) अनुप्राणित (ऐनिमेटेड) और आत्मानन्दित, हर्षोन्मादित या ज्ञानोन्मादित या भाव-समाधिस्थ नही थे।

ज्यामिति ने विशाल स्तूपो (पिरामिड्स) को खडा किया होगा, बैठाया-टिकाया होगा, उनका निर्माण किया होगा।

लेकिन, अध्यात्मवाद ने तो अनेक ज्योतिष्को (ल्युमेनेरिज) तेजस्वी, सन्दीप्त मानव-नक्षत्रो और व्यक्तित्वो का निर्माण किया है। परमात्मा ने मनुष्य की रचना की और मनुष्य ने 'पिरामिड' बनाये। ईश्वर ने मानस (चेतना, माइण्ड) का निर्माण किया और मानस (चेतना) से जनमा विज्ञान। परमात्मा ने विधानो (लॉज) को सिरजा और विधानो के जरिये सृष्टि सम्पन्न हुई।

सृष्टि और प्रकृति, मानव और समष्टि, मानस और विश्व, यह सब परमात्मा को त्रिकाल (सभी कालो) मे एक महत्तम प्रौद्योगविद् (टेक्नोलॉजिस्ट) के रूप मे प्रगट करते हैं। उसके अस्तित्व को स्पष्ट (व्यक्त) करते हैं। वह चिल्ला-चिल्लाकर एलान करते हैं कि ऐसा महत्तम शिल्प-विज्ञानी कही किसी काल मे कल्पनातीत है।

युगपत् (सिमलटेनिअस) सकुचन एव विस्तरण सम्भव है। तु० (१) एक रबर की पट्टी (फीता) को बीच मे (उसकी लम्बाई-चौडाई के किसी बिन्दु पर) पकड रखा जाय। इस बिन्दु को 'क' मान लिजिए। अब मान लीजिए कि इसके दोनो शीर्षो (छोर) 'अ' और 'ब' को खीचकर ताना जाता है।। अब अगर 'क' को स्थिर (अटल, अचल रखा जाय, तब एक सिरा 'अ' को रबर की पट्टी को बढाने के लिए और ताना जा सकता है (एक साथ ही इसकी चौडाई मे सकुचन होगा और यह सकीर्ण हो जायगा)। उसी समय 'ब' सिरे को छोड दिया जाय, तो 'क-ब' भाग अपनी लम्बाई मे सकुचित हो जायगा। (एक साथ ही इसकी चौडाई मे विस्नार भी होगा), (२) उत्ताल तरगो पर जलपोत की गति, एक साथ विविध अक्षो (धुरियो) मे, विविध प्रकार की, (३) एक तरग की उच्चता (शिरोबिन्दु)• (शृ ग, शीर्ष) (क्रेस्ट) और गम्भीरता (अधोबिन्दु) (डेप्थ, नादिर), (४) कर्णकवक (उत्कोष्ठ, अलिन्द) (ऑरिकुलर) प्रजाति (स्फुरण) (फ्लटर) इत्यादि।

तरग उदग्र अक्ष (धुरी) (ऊर्ध्वाधर) (भर्टिकल एक्सिस) मे निर्मित हो सकती है या क्वत्पुच्छ (रैट्ल-स्नेक) की तरह क्षैतिज अक्ष (अनुप्रस्थ, सपाट) (होरि–जाण्टल एक्सिस) मे। क्षैतिज अक्ष की स्थिति मे यह पार्श्वत (बगल की ओर) स्पन्दित होगी (तु० गण्डपद) (केचुआ, अर्थवर्म, चाली) (फेरेतिमा), गेहुँवन (नाग) (कोबरा), कनगोजर (शतपदी, सेण्टिपीड) और गनगोआर (सहस्रपदी, मिलिपीड) की गतियाँ। उसी प्रकार, विभिन्न अक्षो मे स्पन्दित होती और विभिन्न रेखाओ, नलो और दिशाओ, आदि मे प्रसारित (सचरित, फैलित) (विस्तृत होती हुई) अनेक तरगो का एक सम्पिण्डन (ढेर, समूह, राशि) (कानग्लोमेरेशन) सम्भव है।

यदि एक तरग परिभ्रमित (घूर्णित) (रोटेटेड) होती है, तो एक स्पन्दनशील वृत्त (सर्कल) या गोले (गोलीय, गोलभि) (स्फियर) की कल्पना कोई भी कर सकता है। तु० केन्द्र के चारो ओर चतुर्दिक् परिभ्रमित (रोटेटेड) त्रिज्या (रेडियस) एक वृत्त (सर्कल) और इसकी परिधि (सरकमफ्रेन्स) का निर्माण करती है और अपने व्यास के चतुर्दिक् परिभ्रमित (रोटेटेड एराउण्ड) एक वृत्त गोले (स्फियर) का निर्माण करता है और, यदि यह एक सघन (गठा) (डेन्स) और सम्पूर्ण सकुलित (सवेष्टित, लबालब कसा, आकण्ठ या मुँहामुँह भरा) तरग है तो गोले (स्फियर) की सिर्फ सतह स्पन्दित होती प्रतीत होगी, जबकि भीतर और बाहर अन्तर्बहि इसका सारा कुछ थिरक रहा होगा। ऐसे स्पन्दनशील विश्व की कल्पना सम्भव है और यह असख्य स्पन्दनशील

आयामो (इनफेनाइट पलसेटिग डायमेन्सन्स) वाले स्रष्टा या सृष्टि, स्थिति-सातत्य (स्थिति-सान्तत्य, अखण्डावस्था, रूपारूप, स्टेटम कण्टिन्युअम) का अग (अश) हो सकता है।

'स्थिति-सान्तत्य' या 'स्थिति-सातत्य' या 'अखण्डावस्था' मे क्षोभ (आन्दोलन, उत्तेजना, आलोडन, विलोडन) (एजिटेशस) या विक्षोभ (बाधा, अशान्ति, विघ्न) (डिस्टर-बेंसेज) (प्राकृतिक विधानो के अनुसार) से तरगो के विविध रूपाकारो (फॉर्म्स), आवर्त्तिता (बारम्बारता) (फ्रीक्वेन्सीज), तरग-दैर्घ्य (दूरी) (तरग-आयाम) (वेभ लेंग्थ्स), कालावधियो (कालो) (ड्युरेशस), वेग (भेलासिटी) (विभिन्न कुलक) (समुच्चय) (सेट्स) और समूह (तरग-सघ मे भी) आदि की उत्पत्ति होगी, जो स्थिति-सातत्य (स्थिति-सान्तत्य, अखण्डावस्था, स्टेटम कण्टिन्युअम) मे विभिन्न स्थलो पर प्रकट (मालूम) होगी और इस प्रकार सम्पूर्ण नानाविध सृष्टि, विश्व की सृष्टि, इसके अगो-अवयवो (अशो) की सृष्टि, छोटी और बडी चीजें और अनेकरूपता (विविधता, डायभर्सिटी) जो इसकी विशिष्टता का बोधक है, सम्पन्न हो पायगी। तु० शान्त उदधि, सागर, का स्थिर तल (सतह) (सरफेस)—पवन के झकोरो से आहत, ज्वार-भाटो से क्षुब्ध (आन्दोलित), ह्वेल (तिमिंगल) और डोलफिन्स (शिशुक) के ऊबने-डूबने, गोता लगाने-उतराने, से ऊर्मिल, या किसी जलपोत के यातायात (गति) से आकुल—वह प्रशान्त अर्णव का महान् विस्तार।

कल्पना कीजिए, एक तल की, जो तरगो की तानी-भरनी (वेफ्ट ऐण्ड वार्प) से निर्मित है और जिसमे फूलो, फलो, पादपो, पशुओ, यन्त्रो और मनुष्यो के विविध रूप-प्रतिरूप प्रतिकृति या शैली या पैटर्न, नक्शा, नमूना, अकित हैं। यह भी कल्पना करें कि यह परिभ्रमित (घूर्णित) (रोटेटेड) (?) भी हो रहा है, ताकि एक बहुआयामी मल्टिडायमेन्सनल) सृष्टि का उद्भव हो सके—निर्माण हो सके।

तरगे विलीन (अधोगत) हो जाती है, शृ ग (क्रेस्ट) से गर्त्त (नादिर, ट्रफ) मे, और जल की सतह (तल) शान्त और स्थिर हो जाती है। विविधता (अनेकरूपता) एकता (एकरूपता) मे मिलकर लय-लीन हो जाती है, समाविष्ट हो जाती है।

निहारिये आकाश मे घिरते हुए, तिरते हुए, घुमडते हुए—बादल को। फिर, इससे बननेवाले विविध चित्रो को, प्रतिरूपो को, आकृतियो को, प्रतिमाओ और लघुमूर्त्तियो को। कुछ तो सुन्दर, सयत, सन्तुलित, मर्यादित। कुछ स्थिर, गम्भीर। कुछ विरूप और भद्दे। कुछ हास्यास्पद, कुछ विचित्र, निराले, अद्‌भुत। कभी बनते, कभी बिगडते कभी स्वाग रचते-बनाते, छद्‌मवेष धरते। इसी तरह सूर्य, चाँद और नक्षत्रो को ढापते हुए बादल का एक तिमिर-पुज की तरह हो जाना। एक अन्धकार की चादर-सा तन जाना। मानो, आकाश इसमे छिप गया या कही खो गया हो। और फिर, इसी काले-कजरारे बेढब-बेढगे बादलो से मूसलधार वृष्टि, बिजली की कौंध और ठनके का गर्जन-तर्जन। अन्धकार मे चकाचौध। और फिर, धरती पर लहलहाती फसलो का

लहराता आँचल। गुलजार हरीतिमा। निस्तब्धता मे बाँसुरी का बज जाना।

स्थिनि-सातत्य के असख्य बिन्दुओ पर असख्य प्रकार की तरगो और आवेपन (भाइब्रेशन) (कम्पन, स्पन्दन) का उदय और अस्त होना है। सम्भवत, इसी प्रकार, इसी प्रक्रिया-क्रम मे 'तरगे' उगती हैं, और वैसे ही उमी भाँति कणो का जन्म होता है और उसी बीच मे 'वेभिक्ल' का उद्भव, 'पदार्थ' बनते है और वैसे ही ऊर्जाएँ और बीच मे 'मैटनर्जी' भी, और फिर इमी तरह पेड-पौधे एव जीव-जन्तु, चीटियाँ और हाथी, 'भायरसेज' तथा मानव, 'दैत्य' और 'दानव' इत्यादि सभी कुछ, सारे-के-सारे निर्मित होते (बनते) है, गढे जाते हैं।

सभी प्रकार की ऊर्जा (एनर्जी) अपने-आप मे मूलत अप्रव्यक्त (अव्यक्त) (अनमेनिफेस्ट) होती है और अपनी प्रव्यजनाओ (प्रव्यक्तियो, मैनिफेस्टेशम) के द्वारा जानी जाती है। उमी प्रकार अनैच्छिक (अस्वैरी, अकाम्य) (इनभोलण्टरी) शारीरिक क्रियायें और विचार-तरगे भी है तथा हृदय की वैद्युत तरगे भी, जो कि एलेक्ट्रो-कार्डियोग्राम के द्वारा रिकार्ड्ड किये जाने के पूर्व अगोचर, अनजानी रहती हैं।

नक्षत्रो के सम्बन्ध मे स्पन्दन-सिद्धान्त (पलशेसन थ्योरी) की तुलना करे, जिसके अनुसार कुछ नक्षत्रो मे नियमित रूप से सकुचन और विस्तार होता रहता है। जितने ही लघुतम होते है, उतने ही जाज्वल्यमान, प्रकाशमान, द्युतिमान्, दीप्तिमान होते है वे।

और फिर, पलसार्स (**Pulsars**) की तुलना करे। गौर करें पित्र्यसूत्र (गुणसूत्री) (क्रोमोसोम्स) और पित्रैक (जीवाणुओ) (जीन्स) पर। ग्रहो-नक्षत्रो की गति पर, ऋतु-परिवर्त्तन पर। मनुष्य की मनोदशाओ-मुद्राओ पर।

स्थिति-सातत्य (स्थिति-सान्तत्य या अखण्डावस्था, स्टेटम कण्टिन्युअम) मे तरगो का उत्थान या उत्पत्ति बेतरतीब नही होती। आवेपन (भाइब्रेशन) मे कोई अव्यस्थिति (गड्डबड्ड) नही। कोई अविचारिता, अव्यवस्थितता, भ्रान्ति, दुर्व्यवस्था, उलझन गडबडघोटाला, तितर-बितरता नही। प्रत्येक वस्तु सामजस्य (हार्मोनी) मे स्थित है।

सृष्टि की हर वस्तु (पृष्ठभूमि मे) एक विराट् (महान्) बुद्धिमत्ता, विराट्, (महान्) प्रज्ञा, विराट् (महान्) मेधा (ग्रेट इनटेलिजेन्म), एक विराट् (महान्) अभियोजना (व्यवस्था) (प्लैनिग) और एक विराट् (महान्) प्रौद्योगिकी (टेक्नालॉजी) (हुनर) (शिल्प) (वैज्ञानिकता) का सकेत, सूचना या निर्देश देती है। अगर ऐसा नही होता, तो सम्भव नही कि डायनोसोर्स (भीमसरट, एक दैत्याकार जानवर, जो अब नही मिलता और जिसकी नस्ल विश्व और सृष्टि से लुप्त हो गई) पुन इस धराधाम पर अवतरित हो पडे और पशुओ और पौधो की सारी परिमृत या परिसमाप्त (एक्सटिंक्ट) जातियाँ (स्पेसीज) एकाएक जनम जायँ, किसी भी जगह, किमी भी समय। जो ऐसा हो, तो प्रत्येक वस्तु सयोगवश उदित-अस्तमित होगी और न्याय-विधान का नियम नही रहेगा और तब, सारा विश्व अव्यवस्थिति (सम्भ्रम, सविलयन या गडबडी, केओस) मे गड्डम-गड्ड हो जायगा, (अस्त-व्यस्त हो जायगा, छिन्न-भिन्न हो जायगा, चूर-चूर हो जायगा,

नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा, तहस-नहस हो जायगा, नेस्त-नाबूद हो जायगा)।

कितनी दिलचस्प बात है कि सयोग का विधान भी 'सयोग' से काम नही करता और नानारूपेण (कैलिडोस्कोप) समितीय (सिमेट्रीकल) रूपाकनो (आकल्पनो), अल्पनाओ, चित्रो, नक्काशिओ, और दृश्यो को हमेशा नवीन और फिर भी बराबर (सदा) परिवर्त्तित, रूपान्तरित, आकृति-प्रकृति के साथ, नितान्त निराले रूप मे दिखाता है—अनन्य, वेजोड, लाजवाब, अनुपम, अनोखा, निराला, अनूठा विलक्षण, गजब और अजब।

ON TOTAL CHANGE IN AN INFINITELY VARIABLE QUANTITY

Suppose that F is a variable quantity depending on infinity of factors It is proposed to find a formula which would give the total change in F due to changes in all the factors

Let v_1, v_2, v_3 be all those factors of F which are continuously expanding and u_1, u_2, u_3 be all those factors of F which are continuously contracting The expanding and the contracting factors may vary from 0 to plus infinity and 0 to minus infinity respectively

Let G = product of v_1, v_2, v_3 we denote G by writing

$$G = \pi_{r=1}^{\infty} v_r$$

Let H = product of $u_1, u_2, u_3,$ we write

$$H = \pi_{r=1}^{\infty} u_r$$

Then to find the change in F due to changes in v_r $(r=1, 2, 3, \quad)$ we note the change in any v_r and multiply it by all v_s different from that v_r and then we add such products [v_s = Stands for each of the quantities (which are) different of v_r]

Hence change in F due to changes in v_r

$$= (dv_1)\, v_2 \;\; v_3 \;\; \ldots \; + v_1 \;(dv_2)\; v_3 \;\; v_4$$
$$+ v_1 \;\; v_2 \;\; (dv_3).\; v_4 \;\; v_5 \qquad \ldots$$
$$+ \qquad . \qquad ..$$

which may also be denoted by

$$\Sigma[(dv_s) \pi_{\substack{r=1 \\ r\neq s}}^{\infty} v_r]$$

This is the change in F due to expanding factors

Similarly change in F due to contracting factors will be obtained by noting the change in any such contracting factor u_r and multiplying this change by all the remaining factors and then adding all the products thus obtained Hence change in F due to changes in u_r i e due to contractions

$$=(du_1)\ u_2\ u_3\ u_4+$$
$$+u_1\ (du_2)\ u_3\ u_4$$
$$+u_1\ u_2\ (du_3)\ u_4\ u_5$$
$$+$$

which may also be denoted by

$$\Sigma[(du_s)\ \underset{\substack{r=1\\ r\neq s}}{\overset{\infty}{\pi}}\ u_r]$$

This is the change in F due to contracting factors Hence the total change in F due to all the factors (expanding as well as contracting factors) will be given by the formula

$$\Sigma[(dv_s)\ \underset{\substack{r=1\\ r\neq s}}{\overset{\infty}{\pi}}\ v_r]$$
$$-\Sigma[(du_s)\ \underset{\substack{r=1\\ r\neq s}}{\overset{\infty}{\pi}}\ u_r] \qquad (1)$$

which may be expressed in language as follows

To find total change in F due to all factors, we note the change in any general factor and if this factor is expanding, multiply this change by all other expanding factors Thus we account for all expanding factors Then we note the change in any general factor and if the factor is contracting, multiply this change by all contracting factors Thus we account for all contracting factors Then the total change in F may be obtained by subtracting all sums of the second type from sums of the first type In this light the formula (1) may also be expressed as below

Total change in F

$$=\Sigma[(dv_s)\ \underset{\substack{r=1\\ r\neq s}}{\overset{\infty}{\pi}}\ v_r]$$
$$+\Sigma[-(du_s)\ \underset{\substack{r=1\\ r\neq s}}{\overset{\infty}{\pi}}\ u_r]$$

Here, of course, we interpret a contracting quantity x as an expanding quantity $-x$

REMARK The above situation leads to the following interpretation and hypothesis on linear continuum and changing dimensions

At any point of time there exist no particles in the universe of linear continuum since between any two distinct particles there ought to be infinitely many distinct particles and so on it goes till the existence of particles disappears This conjecture shows that God is the only reality and the whole universe is a fiction and drama Thus the ultimate reality is one and only one The above analysis may be directly contrasted with still another interpretation of the above phenomenon

The system of all waves in a particular media is dense-in-itself although it is no-where dense The question of one single wave being dense-in-itself or not will naturally depend upon whether it consists of quanta or not In other words, whether Planck's theory of energy (waves) being emitted in quanta is correct or not

God may perhaps be considered as being in 'Status continuum' He has infinite dimensions Each dimension varies from 0 to $+\infty$ and from 0 to $-\infty$ That is, He is the minute-smallest and at the same time the big-greatest He is in microcosm as also in macrocosm Each of his dimensions is expanding and contracting (cf wave) at unfathomable speed It is the disturbance in this statum continuum (स्थिति-सातत्य) which leads to creation just as waves are found on the agitated surface of water or bubbles result when wind (air) whips the tranquility of any liquid In the case of God no other agency is concerned in the creation than He Himself

Let us consider a wave-form It might be a minute wave or a giant-wave It will have a wave-length For simplicity let us suppose that it is in the form of a 'Sine'-wave Now a wave is a curve It is not a straight line However, its line of propagation may be a straight line In other words, it may be a 'linear' wave Now suppose we have linear waves of similar wave-lengths running parallel to one another and propagated in the same direction (For example the Laser ray of 'light' waves) In this beam or set of waves—(i) what is between two adjacent waves ? and (ii) what does the wave consist of and (iii) can we say whether any single wave is 'dense' or not ? and what will be our criteria or reasons for saying so ? and (iv) from its beginning to its end (i e between the two end-points) is the wave truly 'continuous' or is it divided into bits or parts or 'quanta' and propagated by spurts ? and (v) can a wave be formed without a medium and can it be propagated except in a medium and (vi) what

will be the (natural or physical or philosophical) relationship between the medium and its wave ?

Now between two parallel waves there may be infinite number of other waves with infinitely variable limits of wave-lengths (cf 'micro'-waves, 'macro'-waves etc) And there may really be so many (infinite) waves between two parallel waves that they all touch one another (say by their 'sides'), so that they constitute a densely packed sheet of waves Now if this sheet is taken into consideration we then have not a linear wave or a beam of parallel linear waves but rather a sheet of waves And if in this sheet all waves were parallel then we have a whole sheet of (not one or two or infinite parallel waves) a single planer wave where the wave is not linear but the great wave is in the form of a wavy Euclideon plane, i e , in two-dimensional plane (cf corrugated iron-sheet) Similar arguments can hold for three-dimensional wave or wave of infinite dimensions This conception will still hold even when all the waves are not of equal wave-lengths But for an 'absolutely' dense packing into a continuous sheet they will perhaps have to be parallel to one another if it is the question of a two-dimensional plane or they would have to be similar in many or in all characteristics if multi-dimensional media is considered Such a 'universe' (infinite demensional) may have tremendous power and potentialities, infinite times more than that of the Laser beam And since in this continuous 'universe' of harmonious waves there may be short or long-waves (end-to-end) and waves of different wave-lengths created on its surface through some inherent potentiality for disturbance in and of the perpetual harmony, new forms of things may get automatically created on and from it Since all (and every) things created are composed of mere waves—differing in their frequencies and wave-lengths, the 'particles' themselves may after-all be consisting of infinitely small waves packed or bundled together

This phenomenon or mechanism may under-lie all elemental mutations and all worldly or 'universal' creations The unmanifested statum continuum (स्थिति-सातत्य रूपारूप, परमात्मा) may in this way get manifested (or may manifest itself) as the creation And the Law (s) governing the manifestations of the unmanifest may include the various sets of known and unknown laws of Nature—the so-called laws of Physics, Chemistry, Biology etc etc —or the Law (s) may be the sum total of all the laws discovered by the scientists to-day (to-date) together with all those which man may hope to discover in future. This will include the realm or field of Psychology, Spiritualism,

Extra-sensory perceptions (E S P), mental thought and Yoga etc etc

Infinitismally-small wave – conglomerates may take the shape of 'particles' and 'particles' stretched into larger dimensions may look and behave like waves And 'particles' so densely packed that they touch one another may look and behave like waves – just as 'points' placed side-to-side (side-by-side in apposition) form a line

Whether a single-wave is dense or not will depend on whether it consists of a continuous (perpetual) wave or whether it consists of parts broken (in space and time) If it consists of broken parts (regularly or irregularly broken) then even if it is linear it has to have something between its adjacent broken ends It cannot then be called 'continuous' And if there are too many such broken parts (frequency of spurts) with too many (inevitably) 'empty spaces' between the broken ends, then the wave cannot be described (considered) as 'dense' (cf The Quantum Theory of Max Planck).

Many scientific discoveries have been invalidated, modified or re-interpreted Many have (as yet) stood the test of time

Many faulty and baseless hypotheses have led to great advances, in science, technology and humanities One glaring example is that of Euclidean Geometry It is based on erroneous conceptions and faulty hypotheses and yet it is considered to be the most perfect of all sciences And it is indeed true that human society owes a lot to Euclid and his Geometry although geometry is the greatest lie ever perpetuated on mankind and so ardently trusted by the human society (cf. Non-euclidean geometry) Let us have an 'spiritual' geometry', a God—'Geometry', and even if its axioms and definitions be wrong and baseless yet the 'faulty' hypotheses could work for the benefit of mankind One such set of axioms concerns the supposed attributes of God. For example, God may certainly exist as much as a 'point' exists (How can a 'point' which has no 'magnitude' can ever have a 'position') He may be as truly 'omnipresent' as a line may have length but no breadth (Howsoever thin a line may be it must have some breadth Also if a line consists of points placed side-by-side, then, since a point has no magnitude, their sum would be equal to zero, and a line would vanish into nothingness—also if 'points' are placed side-by-side, they could as easily carve out a curve as they could join hands to create a straight line) or as one and only one line can be drawn parallel to another passing through a point outside it (More than one such parallel lines actually can be drawn—and a ray or beam of light consisting of many different kinds of linear waves could accomplish the same feat) He may be as much responsible for

the creation of the Universe as the three angles of a triangle sum-totalling to one-hundred-and-eighty degress (Note— 'Spherical Triangle') Euclid was no more intelligent or animated or in Ecstacy than some of our great saints and sages and prophets who propounded the revealed spiritual laws Geometry may have parked and perched pyramids But spiritualism has created luminaries and personalities God made Man and Man made pyramids God made mind and Mind made Science God made Laws and laws led to Creation

The Man and the Universe reveal God as the greatest imaginable Technologist of all times

Simultaneous contraction and expansion is possible cf (i) A rubber band held at its centre or, for that matter of fact, at any point along its lengh or breadth Call this point 'P' Now suppose it is stretched by pulling at its two ends, A and B Now if 'P' remains immobilized then one end, 'A', may be pulled out to further stretch (expand) the rubber band (simultaneously its breadth will contract and narrow down) The end 'B' may be released at the same time, then the part PB will shorten (contract) in length (simultaneously this part will expand in its breadth) (ii) Movements of a ship sailing on very rough waves—simultaneous movements, in several axes, of varied types (iii) the height (top) and depth (nadir) of a wave (iv) Auricular-flutter etc

The wave may be formed in the vertical axis or like the rattle-snake in the horizontal axis In the latter case it will pulsate side ways (cf The movements of the earth-worm, the cobra, the centipede and the millipede) Similarly there may be a conglomeration of many waves pulsating in different axes and being propagated in different lines, planes, directions etc

If a wave gets rotated then one can imagine a pulsating circle or sphere cf Radius rotated around centre forms a circle and its circumference—and a circle rotated around its diameter forms a sphere And if it is a wave, dense and 'packed to the brim', then the surface of the sphere only will appear to pulsate although all of it, inside and outside, will be pulsating Such a pulsating 'Universe' can be imagined and may be part of the 'statum continuum', a creation or creator of infinite pulsating dimensions

Agitations or disturbances (according to 'Natural Laws) in the 'statum continuum' will cause waves (of various forms, frequencies, wave-lengths, durations, etc) (also in different sets and groups) to appear at different places in the statum continuum, thus leading to 'Creation'—Creation of the Universe, Creation of its parts, small and

big things and the diversities whith characterize it (cf Tranquil ocean surface lashed by wind, agitated by the throw of a pebble, by movement of a ship or by diving and surfacing of whales and dolphins)

Imagine a plane woven with the weft and warp of waves and containing various patterns of flowers, fruits, trees, animals, machines and men, Imagine it being rotated (?) to form a multidimensional creation (Stacked clothes) (Built and sacked personalities)

The waves subside and leave the water surface peaceful and tranquil The diversity merges into unity Mirror

See the figures and figurines some beautiful and sober, some ugly and comical, that appear and disappear as the clouds sail about in the sky And then the clouds themselves become one mass of darkness covering the sun and the moon and the stars and the 'sky' seems to get lost under them From this dark, shapeless cloud, there is a downpour of heavy rain, lightening and thunder and lush crops on earth

Waves and vibrations of infinite sort appear and disappear on infinite points in the 'statum continuum' From this process, in this manner perhaps, the 'waves' arise, so do 'particles' and the 'Wavicles' in-between, 'matter' forms and so do energies and matnergy, in between, the flora and fauna, the ants and elephants, the viruses and the men all get created Mattergy, Matengy, Matnergy

All kinds of energy are basically unmanifest in themselves, are known only by their manifestations So are the involuntary body functions and the thought-waves Electrical waves of the heart are unmanifest till an electro-cardiogram is recorded

Compare the Pulsation Theory about stars which says that certain stars under-go regular expansion and contraction, being brightest when at their smallest

And compare the Pulsars

Note the chromosomes and the genes and the movements of stars and planets and the change of seasons and the moods of man

The waves in the statum continuum do not arise haphazardly There is no chaos in the vibration Everything is in harmony Everything in the creation indicates great Intelligence, great Planning and great Technology Was it not so the Dinosaurs may appear again on this earth and all extinct species of plants and animals can be born at random at any place and at any time Everything then would appear and disappear by chance and there will not be the rule of law or of justice The Universe would crumble in chaos and confusion

How interesting that even the 'Law of Chance' does not work by chance and that the Kaleidoscope shows symmetrical designs and scenes of ever unique and yet ever varying form and nature

एक आवाज आ रही है 'हूँ, मगर क्यूँ ?'

अस्पताल से लौटकर ब्यालू के बाद जरा लेटा हूँ । कई दिनो से सोच रहा हूँ, अपनी चिन्ताधाराओ को लिखकर उनसे छुट्टी पा जाता। पर, क्या लिखूँ कोई खास बात भी तो हो ।

जिन्दगी धूप-छॉह, सुख-दु ख की तानी-भरनी से बुनी हुई एक नियामत भी है और अभिशाप भी । जिन्दगी जीने के लिये है । हम किस परिवेश मे, इसे जिये जा रहे हैं, इसका एहसास रहना चाहिये । ससार मे क्लेश, कष्ट, रोग, शोक, जरा, मृत्यु इत्यादि तो प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है । अगर ऐमा न होता, तो सिद्धार्थ को राजपाट, सुख-सम्पदा, यशोधरा, राहुल इत्यादि को त्याग कर वन-वन भटकने की क्यो जरूरत महसूस होती ? ऐश्वर्य से ओत-प्रोत जिन्दगी व्याकुल हो क्यो दर-दर की धूल छानती ? हम कुछ भी करें, कही भी जा बसे, कितना भी अपने को भरमाते रहे, स्वाग रचते रहे, कौतुक करते रहे, नाटक खेलते रहे, उससे जीवन की कठोर सचाइयो से बच नही सकते । चोआ-चन्दन लगाकर तन-बदन मजाएँ । लाव-लश्कर लेकर सतत इसकी सुरक्षा मे सतर्क रहे । पर, उससे क्या होने-जाने का । एक-न-एक दिन बुढापा सवार हो जाएगा और असमय काल सम्मुख आ खडा होगा। इम अवश्यम्भावी को आजतक एक इन्सान भी चकमा न दे सका—न राम, न कृष्ण, न रामकृष्ण, न गान्धी, न नेहरू, न स्टालिन, न लिंकन, न रावण, न हिटलर, न आइन्स्टाइन, न चरक, न ओस्लर, न डॉक्टर शीतलप्रमाद मिन्हा, न डॉक्टर टी० एन० बनर्जी । प्रकृति का यह विधान अटूट रहता आया है और सदैव अडिग रहेगा। फिर, इस चन्दरोजा जिन्दगी को क्यो न भरपूर जिया जाय ? जब वृद्धावस्था आ जायगी, तब देखा जायगा । जब मृत्यु सन्निकट होगी, तब सोच लेंगे। अभी तो बुढापे की छाया भी नही पडी । अभी तो मौत का नगाडा बजा भी नही । अभी तो काल बहुत दूर है । लेकिन, अभी ऐसी खूसट बातें लिखने की तबीयत नही हो रही है । और, सोचता चला जा रहा हूँ कि लिखूँ कि न लिखूँ ? अभी इसी उधेड-बुन मे पडा हुआ था कि एकाएक तबीयत कुछ खराब-सी होने लगी । अन्दर से ऐसा महसूम होने लगा कि कुछ भयकर गडबडी होने जा रही है । और फिर, हमारे हृदय की गति एकाएक बढने लगी और बढती जा रही थी । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ (लगने लगा) कि मृत्यु सन्निकट हो सकती है । कुछ पता नही चल सका कि ऐसा क्यो हुआ । मैने समझा, शायद लहसुन अधिक मात्रा मे खा लिया, उसी का असर तो नही । अगर ऐसी बात थी, तब तो जबतक उसका असर हटेगा नही, तबतक तो हृदय की गति ठीक होगी नही और अभी तो तुरत ही भोजन समाप्त कर आ बैठा हूँ, इसलिए आगे क्या होगा, राम जाने । तब मैं चुपचाप बाई करवट लेट गया और एक अनजान भविष्य की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ निस्सहाय-सी अवस्था थी। लेकिन, तब उसी समय तबीयत ठीक मालूम पडने लगी । ऐसा प्रतीत हुआ कि कल्ब की

रफ्तार ठीक हो रही है। दो-चार साँसे ली और सब ठीक हो गया। याद पडा, हमारी माँ ने कहा था—'पल का तो भरोसा नही, फिर कल की कौन जाने।' जीवन के चालीस वर्षो मे जो सम्पत्ति इकट्ठा कर सका, जो ज्ञानोपार्जन कर सका, उन सबके सहारे भी भवितव्यता को जानना-समझना नामुमकिन। प्रत्येक साँस के सहारे, प्रत्येक दिल की धडकन के साथ जिन्दगी पिरोयी हुई है।

वी डू नॉट रिमेम्बर हाउ वी डेवेलप्ड इन दि उम्ब ऑव आवर मदर ऐण्ड इभ्न हाउ वी वेयर ऐक्चुअली बॉर्न।

वी जस्ट ग्रेजुअली बिकेम अवेयर ऑव दिस वर्ल्ड ह्वेयर वी हैड कम ऐण्ड ह्वेयर वी हैड टू लिभ, ऐडजस्ट ऐण्ट ग्रो।

फॉर मोस्ट ऑव दि पिपुल डेथ मस्ट बी ए पेनलेस अफेयर।

इन फैक्ट वन माइट हैभ हैड सफरिंग प्रायर टू डेथ, ई० जी० इल्नेस, फिजिकल ऑर मेण्टल टॉरचर, ऑपरेशन, ऐक्सीडेण्ट्स, एटसेट्रा, बट नेभरदलेस दि ऐक्चुअल प्रोसेस ऑव पासिम अवे ऐण्ड लिभिंग दिस मॉरटल क्वायल इज पेनलेस। ऐण्ड दि ट्राजीशन फ्रॉम दि कण्डीशन ऑर स्टेट ऑव लिभिंग टु दि स्टेट (अवस्था) ऑव डेथ इज एक्स्ट्रीमली शौर्ट, इन फैक्ट, सरप्राइजिंगली ब्रीफ—इट इज दि अफेयर ऑव ए मोमेण्ट ऑर जस्ट ए फ्यू सेकेण्ड्स। इन अदर वर्ड्स, ए मैन मे बी लिभिंग वन मोमेण्ट ऐण्ट बी डेड दि नेक्स्ट मोमेण्ट। देअर वाज मच ट्रुथ इन ह्वाट बुद्धा वार्न्ड दैट वी मस्ट वाच आउट एभरी मोमेण्ट, कीप वीजिल ओभर एभरी बिट ऑव टाइम लेस्ट दि ब्रेद दैट हैज गौन आउट मे नॉट रिटर्न।

जो साँस बाहर निकली है, वह फिर लौट भी सके या नही। मैकेनिज्म—हाउ डेथ इज मेड पेनलेस ?

ग्रेजुअल लौस ऑव कन्शसनेस—अवेयरनेस गोइग इनटू ऑब्लिभियन—ए सडेन फेण्टनेस (ई० जी०, स्टोक्स—ऐडम्स सीजर्स और साइनस अरेस्ट —ए प्लीजैण्ट स्लीप—ए मेण्टल शट डाउन ऐण्ड देन ए रिलीज—स्वीचिंग ऑव दि लाइट ऐण्ड देन स्वीचिग इट ऑन। दी इम्पेण्डिग ऐक्सीडेण्ट इनभॉलभिग दि प्लेन ड्युरिग माइ फ्लाइट टू गया ऑन एकाउण्ट ऑव सडेन ऐपियरेन्स ऑव गेल ऐण्ड टौरेन्सियल रेन ऐण्ड लाइट्निग।

डेथ ड्युरिंग शॉक—कोल्ड पर्सपिरेशन—लौस ऑव कन्शसनेस—डेथ फ्रॉम ऐक्सिडेण्ट्स।

चिल्ड्रेन चार्ड इनसाइड प्लेन ड्युरिंग ऐक्सिडेण्ट ऐट गौचर (काठमाण्डू) एयरो-ड्रोम ट्रेन डिजास्टर इन्भॉलभिग वन ऑव माइ डियर फ्रेण्ड्स। दि केनेडी फैमिली ऐक्सिडेण्ट्स।

एक्सपीरियन्सेज इन दि वार्ड्स। दि डेथ ऑव दि एसाइटिस केस ऐट

डोरण्डा ह् वाज टॉकिग वन मोमेण्ट ऐण्ड वाज डेड जस्ट दि नेक्स्ट मोमेण्ट। ह्वाट हैपेन्स ह्वेन ऐ मैन डाइज ?

वन इज नॉट नो फॉर सरटेन। हाउएभर, एनी ऐप्रीहेन्सन्स दैट वी मे हैभ मे बी अनफाउण्डेड। इन 1947 – आइ, ए भिलेज ब्वाय, विथ ऑलमोस्ट नो एक्स–पीरियन्स ऑव लाइफ इवन इन ए बिग टाउन—वाज टू गो टू यू० एस० ए०। आइ हैड मेनी डाउट्स, मिसगिभिंग्स ऐण्ड ऐप्रीहैन्सन्स इन कनेक्शन विथ माइ ट्रैवेल, फ्लाइट, टू यू० एस० ए० ऐण्ड देयर आफ्टर सोजौर्नीग देअर। हाउएभर, आफ्टर स्लाइट प्रीलिमीनरी डिफिकल्टीज फॉर ए कप्ल ऑव डेज आइ कुड ऐडजस्ट माइ-सेल्फ क्वाइट वेल टू फाइण्ड इट ए गुड ऐण्ड कम्फौरटेबुल प्लेस टू लिभ इन। डॉ० पॉल डडले ह्वाइट। डॉ० एडमण्ड्स ग्रे डायमण्ड। फ्रेण्डशिप्स ह्विच हैभ लास्टेड ऐण्ड हैभ बीन वार्म।

ऑव माइ भ्वाएज टू स्टॉकहॉल्म फ्रॉम यू० के०। हाउ आइ वाज बिफ्रेण्डेड।

इन दि सरकम्स्टान्सेज ऐण्ड इन सिचुएशन्स हे्वयर यू माइट बी फाइण्डिग यौरसेल्फ हेल्पलेस ऐण्ड फोरलौर्न, यू मे रिसिभ अनएक्स्पेक्टेड हेल्प ऐण्ड कम्पैनियन-शिप। (तु० अमेरिका मे स्वामी विवेकानन्द।)

दि सफरिग मे बी फ्रॉम ऐप्रीहेन्सन्स, फ्रॉम डिसबिलिभ, आर फ्रॉम लैक ऑव फेथ इन दि काइण्ड प्रौसेस ऑव लॉ, बट देयर इज नो ट्रबुल इन पासिग अवे। दि अटैचमेण्ट टू दिस वर्ल्ड ऐण्ड टू आवर नियर ऐण्ड डियर वन्स मे एनगल्फ अस इन ग्रीफ। सेपरेशन्स फ्रॉम दि नोन ऐण्ड फियर ऑव दि अननोन मे बी देअर। बट दि अननोन मे ऐक्चुअली बी प्लीजेण्टर दैन दि वर्ल्ड वी नो एराउण्ड अस आवर पॉसिब्ल एक्जिस्टेन्स आफ्टर डेथ ऑर आवर सौजौर्न इन ए डिफरेण्ट स्टेट ऐण्ड ऐट ए डिफरेण्ट प्लेस मे बी हैपीयर–हू नोज !

आफ्टर दि डेथ वी मे जस्ट वेक अप टू दि रियलिटी दैट वी हैव एराउण्ड अस ए न्यू काइण्ड ऑव एन्भिरनमेण्ट ह्वेअर पिप्ल आर इगर्ली सीकिंग आवर एक्वेण्टेन्स ऐण्ड हेल्पिग अस टू एडजस्ट ऐण्ट टू लिभ मेरीली। दि बिलिफ एबाउट दि मेसेन्जर्स ऑव डेथ एटसेट्रा मे हैव सच कन्नोटेशन्स। ऐण्ड देयर इज येट अनदर आस्पेक्ट। सिन्स डेथ इज इनएभिटेब्ल इट इज इन आवर इन्टरेस्ट, ने इट बिहोव्स अस, टू डेभलप ए हेल्दीअर ऐट्टीच्युड टूवार्ड्स इट ऐण्ड टू ट्राइ टू सीक आउट ऐन्सर्स टू दि क्वेरिज् एबाउट इट।

दि एलिमेण्ट ऑव हि्वच दिस बॉडी ऑव आवर्स इज बिल्ट इज ऑव दिस अर्थ, अर्दी। इट इज बिल्ट ऑव ऑल दि एलिमेण्टस् हि्वच वी रिकोग्नाइज फॉर सरटेन ऐज बिलौंगिग टू दिस मैटेरियल वर्ल्ड।

'दिनभर काम करके हम थक जाते हैं, तो रात को निद्रा लेकर दूसरे दिन

उत्साह से काम शुरू कर देते है। लेकिन, प्राण को सतत, चौबीसो घण्टे काम करना पडना है, उमकी थकान मृत्यु से ही मिटती है।' (नोट ओभरवर्क्ड, ओभर-स्ट्रेस्ड-ऐण्ड-स्ट्रेण्ड पिपुल डाइ अर्ली)। 'वास्तव मे, मृत्यु तो प्राणी को दु ख और वेदना से छुडाती है। जब हमारे निकटतम नातेदार, मित्र, विशेषज्ञ हमे दु खो से नही बचा पाते, तब मृत्यु ही छुटकारा देती है।' 'मृत्यु के बारे मे मेरी यह श्रद्धा पक्की बनी है कि उमका एक क्षण या एक मिनट भी आगे-पीछे नही हो सकता। मरण का सतत स्मरण ही पाप से मुक्त रहने का उपाय है।' (विनोबा,।

जिसको अभी तक नही देख पाया हूँ, उमका अस्तित्व नही है, ऐमी बात भ्रमोत्पादक है, ऐसी धारणाएँ अग्राह्य है। ल्युवेनहॉक ने जब पहले-पहल शीशे घसकर लेन्स, मैग्निफाइ ग ग्लास, बनाये और उनके माध्यम से गन्दी नालियो को देखा, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उम दूरबीन को अपनी ऑखो और उस जल-बिन्दुओ के बीच रख कर उमने एक नयी दुनिया ढूंढ निकाली थी। एक ऐसी सृष्टि का आविष्कार हुआ था, जिसके विषय मे किसी आदमी को कोई ज्ञान न था, जिसकी किसी ने सपने मे भी कभी आशा न की थी। कल्पना नही की थी। अवाक् वह देखता रह गया था उस सूक्ष्म प्राणी-समुदाय को। प्रोटोजोआ, बैक्टिरिया, या एक-कोषीय प्राणियो की वह अपनी दुनिया थी। और, ल्युवेनहोक उम बहुरगी दुनिया के जटिल फाटक को पहली बार खोलकर उम सिहद्वार की चौखट पर आ खडा हुआ था। ऑखे चकाचौध थी। ऐमा तो कभी न देखा गया, न मुना गया था। न किसी की कल्पना मे आ सका था।

और, अब आपने सुना ही होगा कि एक ऐमी सृष्टि की कल्पना की जाने लगी है, जो हमारी इसी सृष्टि के प्रतिबिम्ब-स्वरूप ('एण्टी मैटर' मीरर् इमेज, ड्यूटू रिभर्स स्पिनिग ऑव एलेक्ट्रोन्स ऐण्ड प्रोटोन्स इन दि एटम्स) हमारे माथ, हमारे बीच मे ही, रह रही है और जो हमारे लिए अगोचर है। ऐसा मोचा जाने लगा है कि हमारे बीच मे, हमारी देह पर, हमारे अन्दर, ऐसे ही एण्टी-मैटर के बने लोग रह रहे हो, जिनका हमको ज्ञान नही है और जिन्हे हमारी सृष्टि का ज्ञान नही है, जो इस तथाकथित सम्भावना का लेश-मात्र भी भान करा मके। वह ऐसे पदार्थो के बने हुए है, जिनका व्यवहार हम लोगो की दुनिया की सृष्टि-रचना मे नही होता। ऐसा सम्भव है कि उस सृष्टि का प्राणी हमारी देह से होता हुआ आ-जा रहा हो, हमारी देह पर अपनी 'कुर्मी' रखे बैठा हुआ हो और इस वैचित्र्य का न हमको पता हो और न उसको।

इसी सन्दर्भ मे आती है भूत-प्रेत और मृतात्माओ की बात। जिन लोगो ने इन पर विश्वास किया है, वे सब हमलोगो से अधिक मूर्ख थे या सिर्फ वे ही मूर्ख थे, ऐसी बात तो है नही। उन्होने पक्ष और विपक्ष के तर्को का खयाल रखा ही होगा और

सोच-समझकर ही अपनी राय दी होगी। ऐसो मे बहुतेरे सच्चे, बुद्धिमान् और विद्वान् लोग है। अनेक प्रकाण्ड पण्डितो ने, महर्षियो ने और वैज्ञानिको ने इस समस्या पर विचार किया है, तर्क-वितर्को मे दिलचस्पी ली है। और तब, इसके पक्ष मे अपनी राय व्यक्त की है। वैसे, शब्दशास्त्री कहते है, 'भूत' और 'प्रेत' दोनो का अर्थ है 'पास्ट'।

एक घटना याद आती है। देवघर मे जमुनाजोर नदी के किनारे तटिनी-कुटीर मे हमलोग रह रहे थे। गर्मी की छुट्टी मनाने गये थे। सन् १९३६ ई० की बात है। हमारी उम्र १५ वर्ष (साल) की थी। एक दिन दोपहर मे। घर के बडे लोग सोने चले गये थे। समाने बरामदे पर मैं अकेले बैठा हुआ था—क्या कर रहा था, ठीक याद नही। दिन का भोजन १२-१ बजे के लगभग समाप्त हो चुका था। नौकर चाकर भी इधर-उधर जाकर सो गये थे। दो-ढाई बज रहे होगे। मकान की एक तरफ एक बडा-सा आँगन था। आँगन की दो तरफ बरामदे थे, रसोईघर था, भाण्डार-घर था, और टूटी-फूटी वस्तुओ को जमा कर रखने के लिए एक-दो कोठरियाँ थी। नौकरो के लिए भी एक-दो कमरे थे। आँगन के एक कोने मे पानी का कल था। जहाँ एक टहलुआ बरतन माँज रहा था। आँगन मे कोई नही था उसके सिवाय। बरामदे, कोठरियाँ सब निर्जन थी। मैं वहाँ नही था। एकाएक टहलुआ भागता हुआ बाहर निकल आया और मुझे बैठा देखकर घबराहट के साथ बोला कि कोई भूत मिट्टी के बडे-बडे ढेले आँगन मे फेक रहा है। मैं उसके साथ झटक कर आँगन मे दाखिल हुआ। सचमुच, कई बडे मिट्टी के ढेले बिखरे, टूटे, पडे थे उस आँगन मे। मैं विस्मित था कि यह क्या बला है। पूछने पर पता चला कि आँगन से सटा हुआ नौकरो के लिए जो पुराना शौचालय था, वह कुछ ढहती-सी दीवारो से घिरे एक छोटे-से आँगन मे था। उसी के अन्दर से कोई ढेला-पर-ढेला रुक-रुक कर फेंकता जा रहा है। ढेला उस छोटे से आँगन की ओर से आ रहा था, दीवार के पीछे से, उसकी ओट मे से। यद्यपि मैं एक तग दरवाजे से उस शौचालयवाले आँगन के अन्दर जा सकता था, लेकिन मेरी हिम्मत नही हुई। अनजान भूत! क्या जाने, कौन-सी मुसीबत का सामना करना पडे! कौन बला मोल ले। लेकिन, उत्सुकता और उत्कण्ठा प्रबल थी। 'भूत' नाम सुना करता था। कहानियो मे वर्णन पढ चुका था। बडी-बडी बाते बतलायी गयी थी। कारनामो की याद आ रही थी। कौतूहल बेतरह बढ गया था। मैंने एक उपाय सोच निकाला। मकान की छत पर जल्दी से जा चढा और ऊपर से झाँकने लगा उस शौचालय के आँगन मे। यहाँ कोई नही था। पाखानावाली कोठरी का दरवाजा यो ही खुला पडा था। एकाएक क्या देखता हूँ कि उस आँगन की चहार-दीवारी के पीछे एक मिट्टी का ढेला (बडे बेल या ५ नम्बर फुटबॉल के आकार का) आप-से-आप हवा मे तैयार, तैरता-सा, नजर आने लगा। वह आप-से-आप ऊपर की ओर बढा,

चहार-दीवारी के ऊपर से पार होता हुआ धम से आँगन मे आ गिरा। जैसे किसी के मजबूत हाथ ने दीवार की ओट से उसे जोर के साथ फेंका हो। मैंने घूर-घूरकर छत पर से आँगन का कोना-कोना छान डाला। वहाँ कोई नही था। मैं छत पर ही डटा रहा। इतना विस्मित था। एक अभूतपूर्व घटना। आँखो के सामने। दिन-दहाडे। मेरे लिये अविश्वास का कोई कारण नही रह गया था। फिर भी, मैंने छत पर से आँगन को घूरना जारी रखा अपनी सन्तुष्टि के लिये और दृष्टि की सम्पुष्टि के लिये। अब कुछ डरने भी लगा था। सब लोग नीद मे विभोर थे। खर्राटे ले रहे होगे। छत पर मैं, नीचे आँगन मे सिटपिटाया, काँपता, दुबला, टहलुआ। दो ही प्राणी जगे हुए थे। भूत का सामना था। इतने मे फिर एक काफी बडा-सा मिट्टी का ढेला पूर्ववत् दीखने लगा। आप-से-आप हवा मे उसका आविर्भाव हुआ, वह भारी ढेला हवा मे स्वत ऊपर उठने लगा, दीवार के ऊपर से गोले की तरह टूटता हुआ इतने धमाके के साथ ठीक बरामदे से सटकर आँगन मे गिरा कि मैं मूर्त्तिवत् उसे देखता ही रह गया —एकटक। पाँच-दस मिनटो के बाद मुझे डर सताने लगा। मेरी हरकत नागवार न गुजरे उनको, जिनके भयकर कारनामो के बारे मे लोगो से सुन रखा था, जिनकी हरकतो को साक्षात् देख रहा था, लेकिन जो दृष्टि के परे थे, आँखो से ओझल थे, इन्द्रिय-गम्य न थे। सहमा, डरा, मैं चुपके-से नीचे उतर आया। एकान्त मे दिल धडका, पैर लडखडाये, भयाक्रान्त हुआ। नीचे पहुँच कर मदन वात्स्यायन को जगाया और उनके पास ही बैठकर बात-चीत मे मन बहलाने की कोशिश की। उन दिनो मदन वात्स्यायन १४ वर्ष के प्रतिभावान् बाल-कवि कहे जाते थे। भूत के नाम से भडकते थे।

तुरत ही, तत्पश्चात् लगे हाथ हम तीनो (टहलुआ, मदनजी और मैंने) जाकर देखा, निश्चित किया कि आँगन मे यथावत् पाँच मिट्टी के ढेले, फूटे पडे थे। सम्भावनाये थी कि कुछ और ढेले चले या प्रेत और कुछ कर बैठे। इसलिये, टहलुआ दौडा जाकर ५-६ अन्य लोगो को बुला लाया। सबने देखा, शौचालय के आँगन के भीतर-बाहर जाकर खोजा, कही कोई न था। तबतक शोरगुल से कई और लोग जग गये थे। सबने ढेले देखे। किसी को पता न चला कि वे कहाँ से आये थे या लाये गये थे। बडे नारिकेल (नारियल) के आकार के थे वे। पाँच थे तादाद मे। अहाते मे या पडोस मे भी वैसे अन्य ढेले कही थे नही।

उसी दिन मेरे मन ने कहा था—"अगर भूत है, तो ईश्वर क्यो नही होगा?" अब तो सोचता हूँ कि जब विद्युत् है, चुम्बक का आकर्षण है, धूप की गर्मी है, रेडियो की लहरे हैं, टेलीविजन है, तब ईश्वर-शक्ति क्यो नही हो सकती? किसी ने बिजली नही देखी, कोई नही कह सकता कि बिजली वास्तव मे है क्या? लेकिन, उसके प्रभाव से लोग पूर्णत परिचित होते जा रहे हैं और उसका फायदा उठा रहे हैं। ईश्वर-शक्ति का, आत्मशक्ति का, प्रकटीकरण सर्वत्र फैला दीख रहा है। क्यो न उस

पर आस्था हो ? क्यो न उसे करुणा बरसाने दे ? क्यो न उसे जीवन मे आनन्द घोलने दे ? उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक, आकाश-पाताल मे, समस्त ब्रह्माण्ड मे, वह व्याप्त है, कण-कण मे। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। आपका विश्वास रेडियो पर न भी हो, फिर भी तो आकाशवाणी आपके इर्द-गिर्द मौजूद रहती ही है।

आम्र-मजरियो की भीनी वास किस खिडकी से नही झाँकती ? लाजवन्ती किसके स्पर्श से नही सकुचाती ? मधु किसे मीठा नही लगता ? आकाश किसके लिए चित्र नही खीचता ? तारो-भरी रात्रि किसको नही लुभाती ? पपीहा किस पिया को नही पुकारता ?

क्यारियो मे गुलाब के रग-बिरगे सुवासित फूलो को देखकर आप कितने खुश होते है। उनकी पखुडियो मे, कलियो मे, कितनी मोहकता है, कैसी मादकता, कैसा भव्य सौन्दर्य। आप उनको निहार रहे हैं। हृदय आनन्द से भरता जा रहा है। दुनिया दो क्षण के लिये बदलती जा रही है। उसी समय अगर माली आपको यह सूचना दे जाय कि जिस फूल को आप इतने प्यार से देख रहे थे, वह आपके अग्रज ने लगाया था, आप ही के लिये। मरते समय उन्होने कहा था 'यह घर, यह बगीचा मेरे छोटे भाई को दे देना। कहना हमने उसी के लिये यह दुनिया बसायी थी।' उस वक्त आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? तो, इस सृष्टि के नियम साधु-सन्त, चोर-डाकू, सभी के लिये एक-से है। भूखा बच्चा माँ को दाँत काटकर कहेगा कि भाग, तू मेरी माँ नही है। उससे क्या माँ उसको दूध नही पिलायगी, और क्या उस दूध मे मिठास और पोषण-शक्ति न होगी ? हर्ज किसका होता है ? प्रकृति का ? माँ का ? ईश्वर का ? नही। जो उनके प्रेम पर, करुणा पर, महिमा पर विश्वास नही करते। खुमट बोतल से स्वय ढाल अकेले मनहूसियत के माहौल मे मय घोटना और साकी का जाम पिलाना क्या एक ही अन्दाज रखता है। किसी नारी के स्तन का निचोड दूध दूधपीनी मे पीना और माँ के क्रोड मे प्यार से मण्डित होकर दूध चूसना क्या एक ही बात है ? होटल के मिष्टान्न और घर के रूखे-सूखे खाने मे क्या फर्क नही ? पद्मिनी और सिहनी क्या एक ही किस्म की बला है ? वही प्रकृति और सृष्टि लाखगुना अधिक भव्य और आनन्ददायिनी और उपकारी, करुणामयी लगेगी, अगर आप यह विश्वास कर ले कि ईश्वर है, वह सबका माँ-बाप है, अपार प्यार और करुणा का वह सागर है, और आपकी सुख-शान्ति के लिये उसने इतनी सारी चीजे निर्मित कर आपको बिना माँगे दी हैं। स्वच्छन्द बनाया। स्वतन्त्र बनाया। आशा और विवेक का साथ कर दिया। कि कभी आपका दिल न छोटा हो। कि आपके पैर न भटक जायँ। माया के परदे की ओट से ममता-भरी आँखो से वह जगन्नियन्ता, वह जगन्माता, आपको निहारती रहती है। जैसे माँ खिलौने लेकर बच्चे को खेलने देती है, लेकिन उसका उमडता प्यार सीमा तोड-तोड जाता है।

God's ways of manifesting his kindness and affection are

different. Non-obtrusive and yet so subtle and kind God does not poke His nose in your affairs till you sincerely, intensely, passionately and persistently want it He does not rob you of the independance He has granted to you till He is sure that you eagerly and totally want His help Total resignation is the way to capture Him in the noose of your love No interference, intruding or disturbing Pre-ordained Law

The great all round FREEDOM that He has given to man Advantages-Disadvantagee विवेक and ज्ञान are teachers on this earth and so are Incarnations and Books

Repentence is potent, Prayer is potent

'कर्ममार्ग मे कर्म का प्रतिफल मिलता है, जैसा करो, वैसा पाओ। भक्तिमार्ग मे परमेश्वर से क्षमा माँगी जाती है। तो क्या भक्ति से कर्म के फल टल जाते है? नही। भक्तिमार्ग से कर्म का अटल नियम टल नही सकता, फिर भी भक्ति से भगवान् कर्म का फल भोगने का धैर्य देता है।' (विनोबा)। (यह भी सम्भव है कि कर्म का असह्य फल या सचित फल किसी दूसरे जन्म मे भोगने की व्यवस्था कर दी जाय या कई जन्मो मे, बाँटकर, , भुगतना पडे)। [ऐसा भी सम्भव है कि पश्चात्ताप (शुद्ध, सच्चा, अटूट) के कारण अगर अन्त करण पूर्णरूपेण उस किये हुए कर्म तथा कर्म-फल से निर्लिप्त हो गया हो, तो उसका कर्म-फल न भुगतना पडे। जैसे अगर बाघ सचमुच गाय-सा बन जाय, तो उसे मारने से क्या प्रयोजन? अगर चोर का अन्तरात्मा बिलकुल साधु-सा हो गया हो, तो उसे मार-पीट करने से क्या फायदा?।]

'प्रायश्चित्त' का अर्थ ही है कि 'की हुई भूल' की पुनरावृत्ति न हो और 'जानी हुई बुराई' दोहराई न जाय, वर्त्तमान मे सहज, स्वत होनेवाले शुभ कर्मो मे कर्तृत्व का अहम्-भाव न हो, और उसकी फलाशा या फलाकाक्षा न हो। तभी सर्व-दु खहारी हरि के मगलमय विधान से पूर्वकृत कर्मो के फल से छुटकारा मिलता है, क्योकि प्रभु के साम्राज्य मे करुणा का सागर लहराता है, वे करुणासिन्धु जो ठहरे और, 'प्रकृति के विधान मे फल की प्रधानता ही रहती है।' (श्यामसुन्दर प्रसाद)।

पुण्य and पाप? Depends on ones' mental attiude—Aim, purpose, object-means and ways of doing anythtng जो करके पछताना पडे, वह पाप है।

When you want to rob the freedom of others and thereby try to snatch the boon granted to all mankind, you invite trouble Personal independence vs Social independence

'बेला फूले आधी रात, बेला आधी रात को खिलता है और चमेली को तो सबेरे

का खिलना पसन्द है। लोकगीत की महिमामयी वाणी ने बेला और चमेली के बीच जाने कब से सीमा-रेखा खीच रखी है'—'बेला फूले आधी रात, चमेली भिन-सरिया हो।' 'पसन्द अपनी-अपनी। कोई किसी को मजबूर तो नही करता।'

'कौन है यह सुन्दरी, जो रतजगा कर रही है ? तुम लाख अपने गीत का बोल गुनगुनाओ, बेला के फूल तो ठीक समय पर खिलेंगे'—'बेला फूले आधी रात, गजरा मैं केके गरे डारूँ। तुम्हारे प्रियतम को भी जागते रहना होगा। क्योकि बेला के फूल किसी का लिहाज नही करते। धैर्य रखना होगा। फूलो को खिलने दो, फिर शौक से गजरा गूँथना, शौक से इसे अपने प्रियतम के गले मे डालना।' (देवेन्द्र सत्यार्थी)

लुत्फ अकेले उठाया नही जाता—दूसरो की सहायता, सहयोग, सहवास न हो, तो लुत्फ ढूँढे न मिले। स्वास्थ्य ठीक रखना—सुख भोग के लिए—लेकिन शरीर कितना साथ देता है।—सीमाये लक्ष्मण रेखा। दवा।—तब सुख की प्राति कैसे हो ?

कैसी विडम्बना है कि आँखे रखते हम अपना ही मुँह नही देख पाते। जब आईना ईजाद नही हुआ था, उस वक्त अपना चेहरा पूरी तरह देखना मुश्किल होता होगा। सारी खूबसूरती चेहरे पर ढोना चाहते है। उसके लिए अनेकानेक प्रयास करते हैं। भाँति-भाँति से उसे सजाते है। दूसरो की शक्ल की नुक्ताचीनी करते हैं। और, अपना ही चेहरा नही दिखाई पडता। आईने के ईजाद के बाद चेहरे की झलक कभी-कभी मिल जाया करती है। इतना ही पर्याप्त है। अगर अपनी आँखे अपना चेहरा मनचाहे देख पाती, तो वह एकटक देखती ही रह जाती। सतत गडी रहती उसी पर और हम **Narcissus** (नारसीसस) की तरह बन जाते *या* सदा अपनी 'फुल्ली' देख-देख कर शोक और क्षोभ मे पडे रहते। दूसरे का 'टेटर' कौन निहारता !

प्राणिमात्र का शरीर अन्न, जल और वायु पर ही निर्भर है। या यो कहिये कि वायु, जल और अन्न पर, क्योकि वायु (Oxygen) के बिना प्राण मिनटो के दरम्यान ही निकल जायेंगे। बिना पानी पिये आदमी चन्द रोज रह सकता है। भूख-हडताल तो हफ्तो चल ही सकती है। इनमे जो वस्तुएँ जितनी अधिक जरूरी है, वे उतनी ही तादाद मे ज्यादा-से-ज्यादा ऐसी फैली हुई है कि प्राणी को आप से-आप बिना किसी खास मेहनत के मिलती रहे। इनके लिए न कही दौडना पडता है, न किसी के आगे दाँत निपोरना पडता है, न किसी किस्म का 'कर' देना पडता है। वे स्वत प्राप्त हैं। हमारे चारो ओर प्रकृति की इस करुणामयी अवस्था को गौर कीजिये और फिर याद कीजिये वे मारे टैक्स—पानी-टैक्स, और वायु-टैक्स भी, क्योकि शहर मे रहने पर स्वच्छ हवा दूषित होकर ही मिल सकेगी। वन-प्रान्तर के माहौल पर ध्यान दीजिये—शीतल बतास, कलरव करते झरने और नदियाँ, फलो से लदे वृक्ष, सुगन्ध को बिखेरते सलोने फूल। रग की बहार। सौन्दर्य का प्रसार। याचना की आवश्यकता नही। कोई कृतज्ञता की बात नही। चुपके से सब कुछ दे जाता है। पर्दे की ओट से, छुपकर यह सारा साम्राज्य आपका है। अगर आपके ही

जैमा दूमरा इन्सान खलल न डाले, प्रतिद्वन्द्विता न करे, आपत्ति न करे, हानि न करे, रास्ते पर काँटे न बिछाये। और, आपसे वह कुछ माँगता भी नही। अपनी कृपाओ का, प्रेम का, वह कोई मूल्य नही आँकता। और आप उसे देगे भी क्या ? सारी चीजें उसकी। सोना उसका, मोती उसके, हीरे उसके, फूल, फल, बेल, बूटी, मभी उसके, क्या चढायेंगे उमके चरणो पर ? क्या दाम देंगे इन्द्र-धनुष का ? चम्पा का ? ममता का ?

और जरा गौर फरमाइये इस धरती पर। इसमे कैसे राज छिपे पडे है, कैमी हैं यह मिट्टी ? और इसकी गरिमा भी। इसपर क्या-क्या काण्ड नही होते। फिर भी, इसकी अनुकम्पा मे कमी नही आती। और जब कभी आती है, तब नजारा सामने आता है—दुर्भिक्ष का, भूकम्प का, बाढ का, ज्वालामुखी-विस्फोट का। वह भयकर हो सकती है। पर कब होती है। कितनो के लिए ? और क्यो ? सोना, चाँदी, अबरख, हीरा, कोयला प्रभृति सभी सज्जित कर रखा है। जिसे आप खोद-खोदकर मनमानी निकालते रहते हैं। इसी धरती के कणो मे यह जादू है कि उसपर फूल भी खिलते है और काटे भी। गुलाब के फूलो के अनगिनत रग तो देखिये और उनके शेड। बेला, चमेली, जूही, चम्पा, केवडा, मबके अपने-अपने प्रकार की सुवास। अपना-अपना ढग। कैक्टस की हरीतिमा पर सजती भाँति-भाति के कलात्मक ज्या-मितिक नमूनो मे सुव्यवस्थित सुगठित काँटो की पक्तियाँ—बेल-बूटो मे, कसीदे-सी। धान, गेहूँ, बूँट, तिल, तीमी, आलू, प्याज, लहसुन, साग, कोबी, परवल, आम, कटहल, सेव, नारगी, अनन्नास, अगूर—सभी तो इसी धरती पर उपजते है, इसी मिट्टी के कणो को हेर-फेर करके इनकी शक्ले, इनके स्वाद, इनके रग, इनकी गन्ध और इनके गुण, अपनी असख्य विभिन्नताओ मे मामने आते हैं। इनका जीवन, इनका भरण-पोषण, इनकी प्रगति सभी तो इसी मिट्टी पर निर्धारित है। मिट्टी के करिश्मे को देखिये और सिर धुनिये। कौन-सा जादू छिपा है इस धरती मे।

फिर सुबह होगी, तारे छिटकेंगे, लोग उत्सव मनायेंगे,—सिर्फ हम न होगे। हमारा यह पार्थिव शरीर इसी मिट्टी मे मिल जायगा और हमी तब कोयल की कूक बनकर डालियो को मुखरित करे गे, रजनीगन्धा की सुगन्ध बन रात को मनोहारी बना दे गे। किमलयो की कोमलता मे हम छिपे होगे, तितलियो के रग से झाँकते होगे।

'प्रारब्ध' का विश्लेषण चाहे आप जैमा भी करना चाहें, यह तो हमारे रोज के अनुभव (Experience) की बात है कि प्रारब्ध या भाग्य जैसा कोई वस्तु हमारे जीवन को आक्रान्त किये रहती है या हमारी गति-विधि पर निरन्तर असर डालती रहती है। आदमी प्रारम्भ मे अपनी माता के गर्भ मे सिर्फ एक कोष के रूप मे रहना है। उस कोष मे क्रोमोसोम्स रस्सी की टुकडो की तरह गुँथे और उलझे रहते हैं। इन डोरियो पर प्रत्येक बिन्दु एक 'जीन' कहा जाता है। ये Amino-acid

molecules (DNA, RNA इत्यादि) के बने रहते है और असख्य 'जीने' उस आदमी के असख्य गुण-दोषो के निर्माता होते है। कोष के छियालीस क्रोमोसोम्स मे से तेईस पिता के प्रदत होते है और तेईस माता के। प्रत्येक 'जीन' की बनावट मे माँ-बाप दोनो की प्रतिक्रियाये होती हैं। ऐसे एक कोष-मात्र मे प्राणी का प्रारम्भ होता है। अपने 'जीनो' मे यह उसके (सब) कुल लक्षण—शारीरिक तथा मानसिक का निर्माण करने लगता है। प्राणी अपने माँ-बाप को तो चुनता नही, जनक-जननी के कौन-से क्रोमोसोम्स उनके जनन-कोषो के द्वारा उसे कौन और किस भाँति के 'जीन' प्रदान करेंगे, इसपर उसकी राय तो पूछी नही जाती। वह न इसे जानता होता है और न इस दिशा मे कुछ भी करने की शक्ति रखता है और न कुछ कर सकता है। अकुरित होने के पहले ही उसकी जिन्दगी इन्ही 'जीनो' पर आधृत हो जाती है। मकान-मालिक के परोक्ष मे ही मकान का नक्शा बना तैयार है, ईंटे खरीद ली गयी है। इमारत का हर कोना, हर मजिल बनने लगी है और जब वह भव्य नगरी बन कर तैयार हो जाती है और प्रस्फुटित होते-होते विस्तृत हो जाती है, तब धीरे-धीरे मालिक को एहसास होने लगता है कि वह तो इसी अपने मकान मे रह रहा है और रहनेवाला है। किस कारीगर ने, कब, किस सामग्री से और कैसे उसके शरीर का निर्माण किया, यह वह कैसे जाने ? अण्डा को क्या मालूम कि वह चूजा कैसे बना ? उसके बाप-माँ कौन थे ? अपना शरीर और अपने 'मैं' मे मनुष्य को कोई फर्क नही मालूम पडता। आइनो की बनी अट्टालिका मे रहनेवाला बच्चा देखता है और विश्वास करता है कि वही सर्वत्र है, वही मकान है, और मकान छोडकर यह कुछ भी नही। प्रत्येक 'जीन' अपना असर दिखलायगा। आदमी अपने व्यक्तित्व को लेकर ससार के सामने खडा होगा—अपने खास रग मे, अपने व्यक्तिगत ढग से। दुनिया देखेगी एक नया इन्सान आ गया है और वह भी दुनिया मे रहने लगा है, खाने-पीने लगा है, जीने की चेष्टा मे है, व्यवस्था कर रहा है। वह कैसा आदमी है ? उन सब लोगो से भिन्न। एक अजनबी। उन्ही के जैसी भूख है उसकी, उन्ही की तरह पानी पीता है, साँस लेता है। उसकी भी अपनी इच्छाएँ है और वह दूसरो की जिन्दगी से गुँथने लगा है, नोक-झोक करने लगा है। ससार की दौलत मे अपना हिस्सा चाहने लगा है। उन्ही के जैसा है वह आदमी, पर दुनिया पहचानती है उसके शरीर को, उसकी आवाज को, उसकी बुद्धि को, उसके मन को, उसकी वृत्तियो को। रग है, पर रग-विरगी है दुनिया। शेड्स (Shades) हैं, अनेक। अनगिनत। बात वही नही है। हरेक इन्सान अपने मे अकेला है। जिस साँचे मे वह ढला है, वह एकदम नया था। और फिर, वह साँचा सृष्टि मे किसी समय भी, किसी युग मे भी, कतई इस्तेमाल न होगा। न मेरे जैसा कभी कोई हुआ, न है और न होगा। मैं जैसा इन्सान हूँ, वैसा अनूठा इन्सान न किसी ने देखा, न देखेगा।

लेकिन, मैंने अपना चोला नही चुना, अपना मस्तिष्क नही मढा, सघर्ष करने की शक्ति नही गढी। मेरा क्या दोष कि मै कैसा बनाया गया और कबतक के लिये। यही मेरा भाग्य है। यही मेरी किस्मत, मेरा 'प्रारब्ध' सबसे बलवान् है। "यदि मेरा प्रारब्ध इस क्षण समाप्त हो जाय, तो मैं यही गिर जाऊँगा।" (विनोबा)।

"खिलौने देके भरमाया गया हूँ,
न अपनी मौज से लाया गया हूँ।"
"लाई हयात आई कजा ले चली, चले,
न अपनी खुशी आये थे हम, न अपनी खुशी चले।"

आप कहेगे यह 'भाग्य' की बात नही, महज 'आकस्मिक घटना' है, शायद वही हो। नाम जो भी दीजिये उसका, काम वही होगा। आपकी जिन्दगी पर 'ब्रेक' का 'गेयर' का, 'एक्सेलेटर' का। हाँ, एक बात और महत्त्वपूर्ण है इस परिवेश मे। कुम्हार ने बरतन बना दिया है। आप उसपर कलई चढा सकते है, रँगाई कर सकते है, झाड-पोछ कर सकते है, चमक-दमक वाले जामे पहना सकते हैं और शो-केस मे उसे सजाकर रख सकते है कि लोग लट्टू हो जायँ और अधिक-से-अधिक दाम पर उसे खरीदने के लिए बेताव हो जायँ। सरकस मे बाघ के सर पर बकरा चढा सकता है, बन्दर साइकिल चला सकता है, काका-तुआ तीरन्दाजी कर सकता है, लेकिन बाघ, बकरी, बन्दर और तोते की अनेकानेक विभिन्नताये मिट जायेगी क्या? और सरकस के घेरे के बाहर क्या होनेवाला है, क्या हो सकता है? ससार की रगभूमि मे कितने गान्धी, लिकन, आइन्स्टाइन, गामा, अर्जुन, तानसेन, मनुहाइन, न्यूटन, लिओनार्दो हुए है। फिर भी, वातावरण और प्रशिक्षण इत्यादि का असर तो निश्चित रूप से होगा ही। गूँगे गणेश को कोई गाना कैसे सिखाये? फिर भी, बीथोभेन का कमाल क्या आपको मालूम नही? हेलेन केलर की कथा से क्या आप अवगत नही? कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स भी एक जबरदस्त शक्ति है। हैबिट्स (आदत पडना या सीखना) का भी अपना ही गुण है—जैसे इजिन के लिए लुब्रिकेटिंग ऑयल। वातावरण। कल्चर।

ये सभी जीवन-निर्माण मे हाथ बँटाते हैं। सभी का अपना मोल है। जीवन को सयत करने मे। पर, इन सबका असर सभी इन्सान पर एक-सा नही होता। बाघ मर जायगा, पर घास नही खायगा। बकरी कबाव नही खाती। सिंह के सामने सादर साष्टाग कर सत्यनारायण का प्रसाद अर्पण कीजिये और तब देखिये कि क्या रग लाता है। मनुष्य बनकर आता है कुछ और, बनाया जाता है कुछ और। पर कल्पना कीजिये,—गणितज्ञ ताक धिना-धिन नाचने लगे, गवैया हिसाब करने बैठे, तुरहा ताल ठोके, भैरवी जादूगर अलापे और हम चले सागरमाथा की ओर प्रयाण करने या दर्रे दानियाल मे दम साधने। स्वाभाविक प्रवृत्तियो की बात ही तो है।

वशानुगत जीन्स (जीवाणु या गुणाणु) के पीछे कोई विधि (कानून) (विधान) भी है या यह सब कुछ महज गौंज-मौज, गोरखधन्धा या (Accidental) ऐकसीडेण्टल (अ-पूर्वज्ञेय) मात्र है। प्रकृति मे चारो ओर तो विधान-ही-विधान नजर आता है। फिर, ससार की सबसे उत्कृष्ट सृष्टि के लिए कोई निर्दिष्ट रास्ता नही होगा, यह क्या मानने की बात है ?

"बन्दापरवर (दीनबन्धु) ! मैं वो बन्दा (भक्त) हूँ के बहरे बन्दगी (भक्ति के लिए) जिसके आगे सर झुका दूँगा, खुदा हो जायगा।" (आजाद असारी)

"न बुतखाने को जाते हैं न कावे मे भटकते है।
जहाँ तुम पॉव रखते हो, वहाँ हम मर पटकते है।।" (इश्क अजीमाबादी)।

ससार का इतिहास पुरातन काल से यह दिखला रहा है कि अकारण कुछ नही होता और प्रकृति अपना नियम प्रवीणता से, न्याय से, और प्यार से, पालन करती आयी है। तो, इस जीवाणुओ का खेल जो प्रकृति शतरज की तरह मुहरे बदल-बदल कर खेलती आ रही है, उसके पीछे क्या राज है, क्या नियम है, क्या कायदा है ? अगर 'भाग्य' कोई पूर्वनिर्धारित वस्तु है, तो मेरा क्या ? जैसा है वैसा है। मेरा बस ही क्या ? कुछ करना-धरना तो रहा नही। प्रकृति अपने नियम कठोरता से पालन करती जायगी, चाहे हम पर जो भी बीते। भगवान् के या प्रकृति के हुक्म के बिना एक पत्ता भी नही डोलता। और, वहाँ कोई खुशामद-बरामद, घूस-चूस की भी बात नही। रगमच पर कठपुतलियो का नाच है। नाचा करें, जैसे-तैसे हाव-भाव से। क्या जहालत है, कैसी भीषण निर्भरता, कैसी सर्द और दर्दनाक अधीनता। परतन्त्रता की पराकाष्ठा। ऐसी इन्सानियत को दफना न दे ? जी के क्या करेंगे, जब अपना कोई बस कभी नही चलने का। कैसे माँ के गर्भ मे बढे, कैसे इस मनहूस धरती पर आ गिरे, चिल्ल-पो करते, कैसे जीवन-निर्वाह होगा, कहाँ जायेंगे और फिर किस बेरहमी के साथ मिटा दिये जायेंगे। चार दिन की बेहूदी जिन्दगी मे खिलौने से खेलते रहे। वधिक की कठोर तलवार, जबसे जनमे, सर पर लटकती ही रहती है। मौत की सनातनी छाया मे अब क्या विहाग की बात। कैसी लज्जास्पद उच्छृ खलता। और फिर, अगर बस एक ही जिन्दगी है और इसके बाद सिर्फ अनश्वर अन्धकार, तो क्यो नही इस जिन्दगी का पूरा लुत्फ उठावे।

क्यो न 'यावत् जीवेत्, सुख जीवेत्, ऋण कृत्वा घृत पिबेत् ?' पर, सभी 'ऋण' पाने की सतत चेष्टा मे अधीर, व्याकुल, एक-दूसरे का सचित द्रव्य येन-केन-प्रकारेण लूटने का दॉव-पेच लगा रहे है। मन का उद्वेग समाज का हनन करने के लिये उद्यत है। प्रशासन का राजदण्ड, बलवान् का ऐश्वर्य, जन-समुदाय को स्वच्छन्दता-पूर्वक जिन्दगी का लुत्फ उठाने देने मे घोर बाधक बन रहा है। बीमारियाँ पीछे पडी हुई हैं। अब क्या करे ? कैसे खुशियाली बटोरे ? कैसे उसकी ऐसी सुरक्षा करे कि कभी उसका अन्त न हो ? जो प्राण से भी प्यारे हैं, आँखो के तारे हैं, कैसे उन्हें

सदा बाहु-पाश मे पकड कर रखें, और जो आँख की किरकिरी बने बैठे हैं, उनकी जड ही काट डालें ? मूलोच्छेदन कर मट्ठा पटा दें ? औरो के पास मोटरें हैं, मकान हैं, धन, जन, पौरुष, ऐश्वर्य है । वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सभी की तैयारी मे सतत सफल बन रहें हैं। हमे क्या यह सब उपलब्ध नही हो मकेगा ? हम आफताबे मूसीकी फैयाजखॉ की तरह गाना चाहते हैं, उदयशकर की तरह नाचना चाहते हैं, । राजहस की तरह मानसरोवर मे तैरना चाहते हैं, गरुड की तरह उडना चाहते हैं चॉद की रश्मियो मे हम हो, शिशु की मुस्कान मे हम हो, सारा सौन्दर्य हमारा हो, सारी प्रतिष्ठा हमारी हो, सारा ज्ञान हममे हो । कैसे यह सब सम्भव हो मकेगा ? कोई रास्ता है भी ?

पुनर्जन्म तथा कर्मफल का सिद्धान्त इन मब समस्याओ का ममाधान करता है । इन दोनो को आजतक कोई गलत न ठहरा सका। इनकी सत्यता के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध भी होते रहे हैं। ऐसे बेजोड और स्नेहार्द्र विचारो का फायदा हम अपने और ममाज के कल्याण के लिए उठा सकें, तो हर्ज क्या ? भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् सबसे नाता जोडता है यह । हम शाश्वत हैं । चर-चराचर सबमे एकरसता लाता है। हम सभी के हैं, सब मेरे हैं। हमारा समार असीम है। हम एक प्राण हैं, चाहे जैसे भी हो, जहॉ भी हो। हमारा कल्याण सबको कल्याणकारी होगा । किसी का भी उत्थान हो, वह मेरा ही होगा। किमी भी देश के वन-प्रान्तर मे रहनेवाले किसी भी परिवार का भला हो, क्योकि कौन जाने अगले जन्म मे हम वही पैदा लें ? हमारे परिवार के लोग इस जन्म-भर के लिए एक माथ एक मच पर एक नाटक खेलने के लिए इकट्ठे हुए हैं —सब फिर अपने-अपने रास्ते चले जायेंगे। अगाध समुद्र की लहरे पाम आयी हैं फिर लौट जायेंगी। बिखर जायेंगी। लेकिन, यह अनन्त सागर है और रहेगा। और हम उसी मे रहेंगे, सागर का होकर, लहरो का बनकर।

"प्रतिफलित हुई सब आँखें
उस प्रेम–ज्योति विमला से,
सब पहचाने-से लगते
अपनी ही एक कला–से
समरस थे जड या चेतन
सुन्दर माकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनद अखड घना था।"

(कामायनी ज० प्र०)

पुनर्जन्म को मान भी ले, तो यह सवाल सामने आता है—किसका पुनर्जन्म होता है ? शरीर का, अन्त करण का या प्राण का ? शरीर मिट्टी मे मिल जाता है।

जिम धरती से बना था, जिन पदार्थों को पृथ्वी से उधार लेकर देह मे सचित किया था, उसे मृत्यु ने लौटा दिया। जिससे लिया था 'दास कबीर जतन से ओढी जस की तस धर दीनी चदरिया', उमी को वापस कर दिया और यह पार्थिव शरीर फिर पूर्ववत् पृथ्वी का ही एक हिस्सा (टुकडा) बन बैठा।

Tell me not in mournful numbers
Life is but an empty dream

And things are not what they seem,
Life is real, life is earnest
And the Grave is not its goal
Dust thou art to dust returnest
Was not spoken of the Soul"   (Longfellow)

मानव का निर्माण। "प्रकृति के परे के विधान से यह स्पष्ट सिद्ध है कि मानव का निर्माण मानव के अपने प्रयास का फल नही है, क्योकि प्रयाम का दायित्व मानव होने के पश्चात् ही आता है। मानव का निर्माण उसी ने किया है, जिसने सृष्टि रची है। यदि कोई यह कहे कि सृष्टि का निर्माता नही है, वह तो स्वय सिद्ध है, तो मानना होगा की सृष्टि का ज्ञाता होने के कारण मानव का अस्तित्व सृष्टि के पूर्व है। इम दृष्टि से मानव को निर्मित न मानकर सनातन और अविनाशी मानना होगा, परन्तु यह सभी विचारको का मत नही है। सृष्टि के ज्ञाता का अस्तित्व सृष्टि की अपेक्षा अधिक सनातन और अविनाशी है, परन्तु जो मानव को किसी की रचना मानते हैं, उन आस्थावान् साधको के जीवन मे सृष्टि और मानव का कोई आश्रय तथा प्रकाशक है और वही सनातन सत्य है और सब प्रकार से पूर्ण है। पूर्ण से निर्मित मानव प्राप्त विवेक, आस्था और बल के द्वारा शान्ति, मुक्ति एव भक्ति का जन्मजात अधिकारी है।" (स्वामी शरणानन्दजी)

एक शका उठी। अगर परमात्मा, 'जीव' (जीवात्मा मनोमय प्राण) और प्रकृति तीनो ही शाश्वत हैं, तो तीनो का आपसी सम्बन्ध कैसा होगा ? तब यह कैसे कह सकते है कि 'जीवात्मा' को परमात्मा ने बनाया और इसलिए 'जीवात्मा' की जवाब-देही, उसके कर्म का उत्तरदायित्व, अन्तत परमात्मा पर ही होना चाहिए? कुम्हार ने अगर घटिया मूर्त्ति बना दी, तो दोष किसका ? अष्टावक्र ने कहा था न कि, 'मोका हँसही कि कोहरही ?' फिर, 'जीवात्मा' का परमात्मा पर कोई 'हक' कैसा ? उसमे मिलकर मिट जाने की हवस कैसी ? तीन ये अलग-अलग शक्तियाँ (?) है न ? अनादि काल से ? फिर 'जीव' परमात्मा से मिलकर एकाकार हो सकता है क्या ? और मिल कर, मिटकर, लय होकर करेगा क्या ? साउण्ड वेभ्स, लाइट वेभ्स मे क्यो बदलना चाहेगा ? हीट-एनर्जी को एलेक्ट्रिकल-एनर्जी मे रूपान्तरित क्यो करे ?

और तभी, आँखो के सामने एक दृश्य उत्पन्न हुआ, मानस-पटल पर। एक पेड खडा था। उसमे फल लगे हुए थे। पेडऔर फल के अन्तरतम मे सतत प्रवहमाण था उसका Sap (रस, सत्, सत्त्व, सार), वह बह रहा था वृक्ष के मध्य मे, Xylem (दारु) and phloem (अधोवाही) से होता हुआ। एक फल से लदा हुआ वृक्ष था। वृक्ष, फल, Sap (रस, सत्) तीनो अलग-अलग होकर भी एक थे। 'वृक्ष'-प्रकृति। 'फल'-जीवात्मा। Sap (रस, सत्)-परमात्मा। जैसे Sap के बिना 'वृक्ष' और 'फल' समाप्त हो जायेंगे, उसी तरह परमात्मा के बिना सृष्टि समाप्त हो जायगी। जैसे वृक्ष के बिना Sap (रस, सत्) प्रवाहित कहाँ होगा ? वैसे ही प्रकृति (त्रिगुणी माया) के बिना परमात्मा अपने को व्यक्त कैसे करेगा ? और, फल कहाँ लगेंगे ? प्रकृति परमात्मा की Machinery (शक्ति-रूपिणी) है, जीवात्मा को उसकी 'छाया' (प्रतिबिम्ब) समझिये। तीनो अविभाजित है, एक दूसरे से न अलग किये जा सकते हैं, न कभी अलग होगे। तीनो शाश्वत है, भिन्न है, फिर भी अभिन्न हैं। परमात्मा उसकी शक्ति, और उसका प्रतिबिम्ब। चाँद, चाँद की चाँदनी, चाँद का प्रतिबिम्ब। सूर्य, सूर्य की किरणे, सूर्य की किरणो की गर्मी। उपमा भी आदमी क्या दे, भगवान् के लिए ? प्रज्वलित दीप, उसकी लौ (Flame), और उसका प्रकाश।

शरीर मे जो ठोस वस्तुएँ हैं, वह पृथ्वी-तत्त्व मानी गयी हैं, तरल वस्तुएँ जल-तत्त्व, ताप अग्नितत्त्व, ऑक्सीजन प्रभृति गैसें वायु-तत्त्व, तथा शरीर के अन्दर जो शून्यस्थान है, उसे आकाश-तत्त्व माना गया। शरीर एक बृहद् जटिल फैक्टरी है, जिसके विषय मे कार्य की रीति (ढग) डॉक्टरी मे पढाया ही जाता है। शरीर-विज्ञान (एनाटॉमी) उसकी स्थूल बनावट के विषय मे बतलाता है, जिसे मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी शरीर-विच्छेदन (डिसेक्शन) के द्वारा देखकर जान लेते है। शारीरिकी, रासायनिकी, भौतिकी (फिजियोलॉजी, केमेस्ट्री और फिजिक्स) को पढकर उन्हे पता चलता है कि देह के विभिन्न यन्त्र (अवयव) कैसे अपना काम करते रहते हैं (कर पाते हैं)। शरीर-विच्छेदन से प्राप्त ज्ञान के द्वारा भारत के प्राचीन आयुर्वेद को बहुत कुछ पता चल गया था और चरक, सुश्रुत, जीवक इत्यादि आयुर्वेदाचार्यों के पास यह ज्ञान समुचित रूप मे था। आयुर्वेद ने 'वात', 'पित्त' और 'कफ' का सहारा लेकर बीमारियो के उद्भव के विषय मे अपनी राय जाहिर की थी। यह बात हम एलोपैथ को ठीक-ठीक समझ मे नही आयी थी। प्रसिद्ध वैद्यो से बातचीत करने के बावजूद कुछ साफ नजर नही आया। उसका कारण शायद यह था कि उनकी भाषा आजकल की एलोपैथिक विज्ञान की भाषा से इतनी भिन्न है कि चाहे ऋषियो के द्वारा व्यवहृत 'वात', 'पित्त', 'कफ' शब्दो का जो भी अर्थ रहा हो, वह आजकल के वैद्यो की पकड के बाहर चले गये है, और इन शब्दो का व्यवहार उनके लिये भी उतना ही निरर्थक प्रतीत हुआ, जितना कि मेरे अपने लिये और जब उन्होने उनकी व्याख्या करने की कोशिश की, तो सिर्फ मनोरजन का साधन-

मात्र बन सके, ज्ञान जहाँ का तहाँ रह गया और वह विज्ञान के लिये हास्यास्पद बनते-बनते बच गये। बचे इस तरह कि हमने जब होमियोपैथिक सायन्स की पद्धति के विषय मे सोचा, तब ऐसा लगा कि सम्पूर्ण ज्ञान किसी के पास नही। चुनाचे एलोपैथिक सायन्स सभी कुछ नही जानता। 'वात', 'पित्त' और 'कफ' बीमारी के कारण नही हो सकते। शायद ऋषियो का मतलब था कि जितनी गडबडियाँ शरीर को बीमार बना देती हैं, वह सब शरीर के प्रधानत इन्ही तीन तरह के सिस्टम्स की फिजियोलॉजिकल गडबडियाँ होती हैं। 'वात' है एलेक्ट्रिकल इम्पल्सेज। 'पित्त' है हार्मोनल (एण्डोक्राइन ऐण्ड एक्सोक्राइन) सिक्रीशन्स। और, 'कफ' से मतलब है कोषो को धारण करनेवाला स्तर या सिमेण्टिग सब्स्टान्स, कोलाजेन, ग्राउण्ड सब्स्टान्स अथवा कोशीय साइटोप्लाज्म।

लेकिन, जब हम 'मानस' और 'आत्मा' के विषय मे जिज्ञासु बनना चाहते है, तब, उस समय एलोपैथिक या होमियोपैथिक या आयुर्वेदिक प्रभृति जैसी सभी विज्ञान की पद्धतियाँ बगले झाँकने लगती हैं। चिकित्सा-विज्ञान बहुत कुछ सिर्फ पार्थिव शरीर तक सीमित हो जाता है। इनकी नाव पर चढकर साधारणत: वही तक जा पाते हैं, जहाँतक डॉक्टरो या अनुसन्धानकर्त्ताओ की इन्द्रियाँ उन्हे ले जा सकती है। या उनके कुछ औजारो (जैसे स्टेथिस्कोप, माइक्रोस्कोप इत्यादि) की पहुँच है। लेकिन, ऋषियो ने इन बातो को पहले ही ताड लिया था। उन्होने 'मानस' की रचना और प्रक्रियाओ के विषय मे आश्चयजनक शोध किये थे। यह ऐसा विषय था, जो इन्द्रिय-गम्य न था। मानस के द्वारा मानस के विषय मे जानकारी हासिल करनी थी। और, मानस के अलावा कोई दूसरा साधन काम आने को न था। उनकी चामत्कारिक उपलब्धियाँ निश्चय ही मनुष्य-मात्र के लिए एक अदभुत वरदान थी।

उन्होने ध्यान देकर कुछ इस भाँति सोचा होगा। आँख एक प्रमुख इन्द्रिय है। जब आँखें खोलते हैं, तब सारा दृश्य देख पाते हैं। आँखें बन्द कर लेते हैं, तो दृश्य गायब हो जाता है। आँखें बन्द हैं, उसी अवस्था मे, जब उस दृश्य का ध्यान धरते हैं, तब वह मिटा हुआ दृश्य फिर देखने लगते है। इतना ही नही, जब हम जाग्रत् अवस्था मे नही रहते, सो जाते है, उस समय भी सपने मे वह दृश्य उसी सचाई के साथ देखने लगते है। और, अब तो हम जानते हैं कि सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) के द्वारा नये दृश्य चेष्टा करके दूसरे को सम्मोहन की अचेतन अवस्था मे दिखलाये भी जा सकते है। तब सवाल यह उठता है कि वास्तविक द्रष्टा कौन है। और फिर, जब दृश्य देखते हैं, तब न सिर्फ उसका चित्र ही निहारते रह जाते हैं, वरन् वह कितनी ही बीती हुई बातो की याद ला देता है और हम अनेक भावनाओ की पृष्ठभूमि मे उसे देखने लगते हैं। फिर, यह भान होने लगता है कि देखनेवाला 'मैं' हूँ। वह 'मैं', जिसने अपना चेहरा भी न देखा हो (आईना के बिना)। इन बातो के विषय मे सोचने पर ऋषियो को यह पता लगा होगा कि इन्द्रियो की पहुँच के परे एक

आन्तरिक (भीतरी) यन्त्र (या प्रक्रिया) है, जो पार्थिव पदार्थों की बनी नही हो सकती। यह चाहे एक तरह की शक्ति हो (जैसे एलेक्ट्रोमैग्नेटिक) या कई तरह की शक्तियो का सन्तुलित समवाय (जैसे : हीट, साउण्ड, एलेक्ट्रिसिटी, मैग्नेटिज्म)। देखते हैं आँख से (लाइट वेभ्स), सुनते हैं कान से (साउण्ड वेभ्स), छूते हैं उँगलियो से (एलेक्ट्रिकल नर्व इम्पल्सेज), पर इन सबका सपने मे एकत्र साक्षात्कार होता है, एक ही मानस-पटल पर, सब भाँति की अनुभूतियाँ आ उपस्थित होती हैं।

इस आभ्यन्तरिक यन्त्र का नाम अन्त.करण पडा। इसके कई पुरजे सोचे गये (१) 'मन'=जो मनन करता है, यानी बीती हुई बातो को याद करता है, मनुतेऽनेनेति मन । (२) चित्त=जो चिन्तन करता है, भविष्य के मनसूबे बाँधता है। (३) अहम्= जिसे 'मैं' का भान होता है—अपने को औरो से भिन्न पहचानता है, कर्त्तृत्व-भाव है जिसका। (४) बुद्धि=जिसे अच्छे-बुरे का ज्ञान रहता है। जो अच्छाई-बुराई, भला-बुरा, मान-अपमान, प्रेम-घृणा इत्यादि भावनाओ का प्रेरक भी है और जिसमे ये भावनाये उठकर विलीन होती रहती हैं। सागर मे लहरो की भाँति या पानी की सतह पर उठते बुलबुले की तरह। (५) विवेक=जिसे 'आत्मा' की पुकार कह सकते हैं। यह अन्तस्तम मे उठती हुई शुद्ध, पवित्र उत्प्रेरणा है, जो बुरे कामो से रोकती है और अच्छे कार्यो (सुकार्यों) मे प्रवृत्त करती है। इसकी सीख गुरु की सीख-सी है, जो सदा उपलब्ध होती रहती है, अगर हम उसके योग्य बने रहे।

यह अन्त करण किस वस्तु का बना हुआ है, हम नही जानते, लेकिन यह किसी पार्थिव ठोस वस्तु से निर्मित नही है। हमारी 'विचार-धाराओ' (थॉट्स) की जननी है और अपार शक्तिशालिनी है। यह दुर्गा है, जो शरीर-सिंह पर आरूढ है।

अन्त करण का रूप तरगो-जैसा हो सकता है और इसके विभिन्न पुरजो का वेभ-लेंग्थ्स मे फर्क रहता हो। विवेक शायद 'आत्मा' के निकटतम हो। कौन जाने ?

लेकिन, जब आदमी मर जाता है, तब आत्मा निकल जाता है, शरीर छोडकर। और साथ शायद ले जाता है अन्त करण के कुछ (कुल) हिस्से—आवरण की भाँति।

जैसा कि चर्चित है, 'आत्मा' एक एनर्जी (ऊर्जा) है, फोर्स है—ईश्वर का साक्षात् अश है। शरीर मे रहकर भी वह शरीर के गुणो का 'द्रष्टा'-मात्र रहा हो, उससे अछूता रहा है। उसी के विषय मे गीता ने गाया था

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ।।

सच पूछिये, तो वह (आत्मा) मालिक का एक दूत था, सिर्फ शरीर को सचालित रखने के लिए शक्ति था, जो नियत अवधि तक अपना काम सम्पादन कर चला गया। उसे इस ससार से, इस शरीर से कोई लगाव न रहा। इस पार्थिव जिन्दगी की सौगात,

अन्त करण, लेकर वह उड गया। वही अन्त करण पार्थिव शरीर का प्रतिनिधित्व करता रहेगा, जबतक फिर उसका पुनर्जन्म नये शरीर मे न हो।

शरीर का प्रत्यक्ष पुनर्जन्म असम्भव है। हाँ, उसका एक अश माँ-बाप का प्रतीक बन बच्चे मे अवतरित होता है। और इसी, नवरूप मे उसका पुनर्वास होता है। उसका अन्त करणाच्छादित आत्मा तो दूसरा घर बसाने चला गया होता है। चार्वाक ने पुनर्जन्म-सिद्धान्त को देहाश्रित मानकर कहा 'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत।' उनकी गलती यह थी कि उन्होने देह का पुनर्जन्म असम्भव समझकर पुनर्जन्म के सिद्धान्त को ही अस्वीकार कर दिया।

देह के किस कोने मे आत्मा छिपा रहता है कि दिखलायी नही पडता? मृत्यु के समय वह किस राह से निकल भागता है कि पकडाता नही?

आत्मा ऐसे पदार्थो से निर्मित है, ऐसे तत्त्वो से मण्डित है, जिसे हम नही जान सके हैं। जितनी वस्तुओ को प्राणिमात्र किसी भी भाँति जानते-पहचानते है, वह उन सभी से भिन्न है, न वह किसी के जैसा है और न उसके जैसा कुछ भी है। तब उसका वर्णन कैसे किया जाय?

"काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा, तोही सग समाई ॥
पुष्प मध्य ज्यो बास बसत है, मुकुर माँहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर, घट ही खोजो भाई ॥
बाहर भीतर एकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई ॥
जन नानक बिन आपा चीन्है, मिटे न भ्रम की काई ॥" (नानक)

हाँ, तो आत्मा का वास देह मे कहाँ है? ठीक नही जानते, लेकिन कुछ सोचने की बात है इस दिशा मे।

जब बच्चा सिर्फ दो मीलीमीटर लम्बा माँ के गर्भ मे रहता है, उसके शरीर का वह कोष, जो आगे हृदय के रूप मे परिवर्त्तित होनेवाला है, धडकना शुरू कर देता है। उसके पहले भी माँ से प्रदत्त कोष ने, जो जिन्दा था, पिता के प्रदत्त कोष, जो जिन्दा था, से मिलकर पहला एक कोष बनाया, जो बच्चा कहलाया। यह सिर्फ एक कोष (सेल)-मात्र था, छोटा-सा, जिसे सिर्फ दूरबीन (माइक्रोस्कोप) से ही देख सकते थे। यह एक कोष विभाजित होने लगा। एक से दो, दो से चार, चार से सोलह और इस तरह कोषो की सख्या बढती जायगी और धीरे-धीरे उसी एक कोष

से असख्य कोष बन जायेंगे, जिनमे जिगर, प्लीहा, हृदय, यकृत् (लिवर, स्प्लीन, हार्ट, किड्नी), मस्तिष्क (ब्रेन), आँख, दाँत, कान, हाथ-पैर, पेट जैसे विभिन्न अवयवो का निर्माण हो जायगा। इसी एक प्राथमिक कोष से पुरुष बनेगा, या महिला बनेगी। इसी एक कोष मे सुन्दर मानवता का भविष्य होगा या एक दैत्य का, प्रखर प्रतिभा का या बुद्धू का। कैसी है यह विधि की विडम्बना। इसी से बनेगी किड्नी, जो पेशाब तैयार करेगी, हृदय, जो रक्त-सचालन करेगा, मस्तिष्क, जो सोचेगा, पढेगा।

अपनी (त्रिगुणात्मक) त्रिगुणी माया के द्वारा वह प्रकृति और जीवात्मा का सयोग बनाये रखता है। सहज प्रवृत्तियो का वरदान देकर उसने सृष्टि को सुरक्षित और सुव्यवस्थित कर रखा है। 'भय' दिया कि जिसमे हम अपने शरीर की सुरक्षा सतत करते रहे। 'अहम्' का भान दिया कि ससार का सुख भोग सके। और, यौन प्रवृत्ति के द्वारा सृष्टि का नव-निर्माण जारी रखा। इन सहज प्रवृत्तियो को ऐसा प्रबल बनाया कि सृष्टि मे कभी कही रुकावट न हो जाय। विवेक दिया कि आदमी बाँध न तोड पडे।

आस्था, विश्वास के लिए कोई जरूरी नही कि आदमी अपनी आँखो पर ही भरोसा करे। पहले तो जो हम देखते हैं, वही सच है, ऐसी बात नही। चश्मा लगाकर देख पाना, दूरबीन की सहायता से देखना यह सब बतलाता है कि अगर हमारी आँख ठीक न हो और जिस वस्तु को हम देखना चाहते हो, वह दिखाई पडने के लायक न हो, तो हम ठीक-ठीक नही देख पायेंगे और तब हम ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वह भी मिथ्या ही होगा। माँ कहती है, यह तुम्हारे पिता हैं, हम विश्वास कर लेते हैं, लोग कहते हैं हमारे परबाबा गाँव मे आ बसे थे, हम अविश्वास नही करते। ऐसी ही बहुत सारी बातें हम सुनकर विश्वास करते हैं। जिन महर्षियो ने भगवान् का साक्षात्कार किया है, जब वे कहते है कि सच मानो, हमने भगवान् को देखा है, तो हम हँसी उडाते है। विवेकानन्द ने भी शुरू मे ऐसा ही किया था। फिर, एक बात और सोचने की है। दृश्य कान से नही देखे जाते। तराने आँख से नही सुने जाते। मधु नाक से नही चखा जाता। सोचना पेट से नही किया जाता। भगवान् इन्द्रियो से नही पहचाने जाते। इनकी अनुभूति के लिए अन्त करण का उपयोग करना पडता है। रेडियो की मदद के बिना प्रसारित सगीत-लहरी आप कदापि न सुन सकेगे। ये लहरे सर्वत्र फैली हुई है। आपके इर्द-गिर्द—न आप उन्हे सुनते है, न देखते है, तथापि उनके अस्तित्व को आप मानते ही हैं। रेडियो को साफ-सुथरा करके रखिये। उचित समयानुसार पूर्व-निर्धारित वेभ-लेग्थ पर उसे ट्यून कीजिये। सगीत का सामीप्य हुआ न? जो जानते थे, उनसे रेडियो बजाना सीखा। कौन गाना कब सुना जायगा, इसका ज्ञान प्राप्त किया। फिर, क्यो नही अन्त करण को स्वच्छ बनाया जाय, भक्ति और ध्यान पर ट्यून किया जाय?

"घट-घट व्यापत राम रमैआ कटुक बचन मत बोल रे,
घूंघट का पट खोल रे तोहे पिया मिलेंगे।" (कबीर)

उसका प्रादुर्भाव आपके मस्तिष्क मे हो जायगा। उसके प्रकाश से आपका व्यक्तित्व आनन्द-स्वरूप बन उठेगा। उसे आप देख लेंगे, मानस-पटल पर। आपका उसके साथ तादात्म्य हो जायगा। जिन्दगी थिरक उठेगी। सब अपने, सब कुछ अपना हो जायगा। तब अनन्त प्रेम, त्याग, अचाह, आपके जीवन-साथी बन जायेंगे। घबराइयेगा मत। अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखलाया था न। रामकृष्ण परमहस को मातृ-रूप मे मिला था न। और फिर, अवतारी पुरुष के रूप मे राम, कृष्ण, गान्धी, मुहम्मद, ईसा बनकर आपके साथ जीवन व्यतीत नही किया क्या ? अगर आपकी प्रबल इच्छा होगी और आप उसके योग्य साबित होगे, तो वह मनुष्य का भी रूप धारण कर आपको दर्शन देगा। उसकी मौज। आपकी भक्ति। वह सक्षम है। निर्गुण है। सगुण भी दीख सकता है।

"पानी मे मीन पिआसी
मोहे देखत आवे हाँसी,
घट-घट व्यापत राम-रमैआ
कहाँ मिले अविनासी।" (कबीर)

और अब सुनिये एक घटना की बात—पटना मेडिकल कॉलिज अस्पताल मे। अयोध्या दिव्यकला स्थान के एक सन्त हमारे वार्ड (अस्पताल) मे भरती हुए। हमारी पूज्या माँ की इच्छा थी कि उनकी देख-भाल ठीक से हो। उसकी व्यवस्था कर दी गयी। अपने पैसे से फल और कुछ दवाइयाँ भी मँगा दी। लेकिन, उनकी सतत सेवा-शुश्रूषा के लिए कोई आदमी न मिल सका था। ऐसा सम्भव भी न था। नर्स, वहारू इत्यादि थे, लेकिन उनके काम नही आ रहे थे। बीमारी पेट की थी। बार-बार शौच को जाना पडता था। कमजोर थे। सखी-सम्प्रदाय के दीखते थे। बालको जैसे भोले थे। निश्छल व्यवहार था उनका। मर्द थे। किन्तु, अर्द्धनारीश्वर-से प्रतीत होते थे। हँसमुख चेहरा म्लान पड गया था। दो दिन के बाद ही एक अप्रत्याशित घटना घटी। मरीजो के भरती का दिन आया। सुबह मे जाकर देखा कि ठीक उनकी बगलवाली खाट पर एक रोगी भरती हुआ—तेज ज्वर से पीडित। उम्र से उनकी धर्मपत्नी ३०-३५ वर्ष की रही होगी, पढी लिखी, होशियार, साफ-सुथरा रहनेवाली। और, वह जुटी रही स्वामीजी की अथक सेवा मे, जबतक वह रहे। उस महिला ने स्वामीजी के लिये माँ से मेहतरानी तक का काम किया, स्वेच्छा और खुशी के साथ। पति की भी रजामन्दी रही, प्रोत्साहन रहा। सखी के रूप मे भगवान् की यह सेवा देखिये! उदना ने जो विद्यापति की सेवा की, वह भी याद कीजिये!

विज्ञान और अध्यात्म। अन्वेषण और दर्शन। विज्ञान को इतना ही भर मालूम है

कि प्रकृति के ज्ञात नियम 'क्या' करते हैं और 'कैसे' करते है। उसे यह नही मालूम कि वह 'क्यों' ऐसा करते है? 'हूँ! मगर क्यूं?' ('आई, ह्वाई?') इसका उत्तर विज्ञान के पास कतई नही, धर्म (रिलिजन) तथा दर्शन (फिलॉसफी) के पास हो सकता है। जब कभी विज्ञान प्रकृति का कोई राज खोल पाता है, तभी परमात्मा की महत्ता का भान अधिकाधिक प्रत्यक्ष हो जाता है। उसकी अपार शक्ति से, निकटतर परिचय पाता है इन्सान। जैसे किसी वैज्ञानिक ने 'एलेक्ट्रोन' को नही देखा है, न उसके स्वरूप या स्थान के विषय मे उसकी कोई जानकारी है, उसी तरह परमात्मा भी अगोचर है और कल्पनातीत है। जैसे इन सब बातो के बावजूद वैज्ञानिको के लिए 'एलेक्ट्रोन' बिलकुल सत्य है, वैसे ही धार्मिक दार्शनिको के लिए परमात्मा परम सत्य है। विज्ञान के ऐक्सियम्स क्या काल्पनिक नही है? ज्यामिति का 'प्वायण्ट' (बिन्दु), 'लाइन' (रेखा) इत्यादि क्या एब्स्ट्रैक्ट नही? क्या उनकी व्याख्या के लिये हम अस्पष्ट (व्हेग) शब्दो (टर्मिनोलॉजी) का व्यवहार नही करते? फिर, जब जगत्-नियन्ता प्रभु के विषय मे आदमी सोचने चलता है और उसका मस्तिष्क चकरा जाता है, उसकी वाणी अवरुद्ध होने होने लगती है, तब हम क्यो अपनी आस्था, अपना विश्वास, अपना विवेक-जन्य ज्ञान छोडने के लिए उतारू हो पडते है? विज्ञान के पास इसका भी कोई उत्तर नही कि हमारे आचरणो मे कौन 'अच्छा' है, कौन 'बुरा' है, और क्यो?

एक वैज्ञानिक हाथी को और चीटी को वैसे ही पहचानता है, जैसे एक दार्शनिक। लेकिन, वैज्ञानिक के लिए अन्तत हाथी, चीटी, पहाड, पानी इत्यादि सभी अणुओ के द्वारा बना हुआ विद्युत् (?)-लहरियो का सिर्फ समूह-मात्र ही तो है। और, उनकी यह वस्तुत भावात्मक कल्पना वैज्ञानिको के लिए 'सच' है, क्योकि वह प्राकृतिक घटनाओ को स्पष्ट-सी कर पाती है। दार्शनिक भी समस्त सृष्टि मे एक ही परम तत्त्व का अनेकानेक रूप देखता है। वैज्ञानिक अणु इत्यादि तक पहुँचकर थमक जाता है। दार्शनिक उसके बहुत आगे तक बढ जाता है। विज्ञान की सीमा जहाँ समाप्त हो जाती हे, अध्यात्म वहाँ प्रारम्भ होता है। शरीर की सीमाये जहाँ टूटती है परमात्मा वही खडा दीखता है।

'मैं', 'आइ' (अहम्) को अगर परमात्मा का स्वरूप मानें और विवेक को सुप्रीम कन्शसनेस (सर्वांगीण या पूर्ण चेतना या विशुद्ध ज्ञान), तो जैसे-जैसे विवेक बढता जायगा, अहम् स्थूल (ग्रौसर) से सूक्ष्मतर (फाइनर) ऐण्ड स्टील मोर फाइनर होता जायगा और तब वह ईश्वर के सन्निकट होगा। ईश्वरत्व को प्राप्त हो जायगा। जैसे लाइट स्पेक्ट्रम के सात रग अपने वेभ-लेंग्थ्स के कारण अपना निजी रग प्राप्त करते है। या एक तरह की ऊर्जा दूसरे तरह की ऊर्जा मे बदल सकती है। हीट—लाइट।

शब्दशास्त्र के अनुसार आत्मा मे 'अत्' धातु और 'मन्' प्रत्यय है। अत् का अर्थ है भ्रमण। 'अतति शरीरात् शरीरम् इति आत्मा।'

सृष्टि अविराम गति से चलती जा रही है। आत्मा अजर-अमर और शाश्वत है।

पार्थिव शरीर रास्ते पर के मोटेल है, जहाँ वह मोकाम करती है, जहाँ उसे अपने अन्त करण को सुधारने का सुअवसर प्राप्त होता है। जो उसकी पवित्र कर्म-भूमि है। इस तरह इस पार्थिव शरीर की भी बडी भारी उपयोगिता है। यही माध्यम है जीवात्मा के सुधार का। यह शरीर ईश्वर-प्रदत्त नियामत है। यह भगवान् की धरोहर है, जो हमे मिली है अपने उत्थान और प्रगति के लिये। इसकी अच्छी तरह देख-भाल करना, इसे निरापद तथा स्वस्थ रखना हमारा एक परम कर्त्तव्य है, हमारी एक बडी जवाबदेही है, एक महान् उत्तरदायित्व। इसके प्रति उदासीन रहना, इसे बरबाद होने देना, इसे बीमार बना देना, भारी मूर्खता और पाप है। इसीलिये, 'योग' मे आसन-प्राणायाम को प्रथम स्थान दिया गया। स्वस्थ, सुदृढ शरीर तथा मानस ही परमात्मा का आवास बन सकता है। मन्दिर साफ-सुथरा, पवित्र रहे, तब न परमात्मा का आविर्भाव हो ? मानस निर्मल और शान्त रहे, तो भगवान् का प्रतिबिम्ब उसमे झलके। मूर्त्ति के प्रति श्रद्धा और प्रेम हो, तब न उसके अन्दर से देवता का आलोक निखरे और बिखरे ? सच तो यह है कि आत्मा 'न जायते न म्रियते वा कदाचित्'। उसका न कोई पुनर्जन्म है, न उसके लिए भूत, भविष्यत् या वर्त्तमान जैसा कोई बन्धन है। वह पार्थिव शरीर को उपलब्ध होता है, जिसके माध्यम से जीवात्मा अपने अन्त करण का सुधार करता चला जाता है और जैसे-जैसे उसकी उन्नति होती जाती है, वैसे-वैसे वह परमात्मा के गुणो से विभूषित होता हुआ, परमात्मा का निकटतम होता चला जाता है, उसका सान्निध्य प्राप्त करता है। मानस की प्रगति, अन्त करण की उन्नति, प्रगति, आदमी को देवता और जीवात्मा को परमात्मा (या परमात्मा-सा) बना देती है। प्रकृति का लक्ष्य भी यही होगा कि 'मैन' बदलकर 'सुपरमैन' बन जाय।

(जैसे डार्विन्स थ्योरी ऑव इभॉल्युशन—इभॉल्युशन ऑव बॉडी ऐण्ड इभॉल्युशन ऑव माइण्ड)।

किसी ने कहा था कि 'आस्तिक' और 'नास्तिक' मे यही फर्क है कि आस्तिक एक (ईश्वर) का गुलाम है और नास्तिक सर्वमुखापेक्षी अनेक का दीन दास है। चाहे ईश्वर पर भरोसा रखिये, (विश्वास मानिये—वह दीन-दयालु है, बिना माँगे देता है। आपकी आवश्यकताओ का स्वय ध्यान रखता है और उनकी पूर्त्ति करता है) (अहैतुकी कृपा) या मनुष्यो पर (मनुष्य और उसकी सस्थाओ से बिना माँगे नही मिलता। वे आपकी निजी समस्याओ को नही समझती, न समझना चाहती है। बिना किसी-न-किसी रूप मे मूल्य चुकवाये कुछ भी नही देती। और, अच्छे, बुरे सभी—अनेक—की खुशामद कर अपने आचरण को बिगाडिये, अपने व्यक्तित्व का ह्रास कीजिये)। आपकी खुशी, जो मन भाये।

अगर यह कल्पना निराधार होती, फिर भी यह ऋषियो की असीम अनुकम्पा की प्रतीक, लावण्यमयी, सन्मार्ग पर ले जानेवाली है और इसलिये भी पूर्णरूपेण ग्राह्य है। यह कल्पतरु है। आनन्द का स्रोत है।

दुनिया मे जो नियामते दी गयी (मिली) हैं, उनके प्रति आपका क्या रुख रहता है। यह इसपर मुनहसर करेगा कि वे आपके लिए कितना सुख या दु खप्रद बन जाती हैं, हो सकेगी। मीराँ का विष-पान (वह भरमायी न थी)। भूत, बाघ, दानव, बकरी या मच्छर, आदमी इत्यादि के रूप मे आना—इनमे तो कोई भी परमात्मा का अपना रूप नही होता। मन्सूर का हँसते हुए सूली पर चढ आना। यह सब कैसे सम्भव था ? आस्था। विश्वास। ये ऐसे अमोघ अस्त्र हैं, जो होनी को अनहोनी, असम्भव को सम्भव बना देते हैं। और आस्तिक ? वह तो उस सर्वशक्तिमान्, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, शाश्वत, आदिशक्ति पर विश्वास करता है। उसका क्या कहना ! 'मूक होहिं वाचाल पगु चढै गिरिवर गहन।' मान लीजिये, आप घर पर नही थे, जब दो जन आपके दर पर दाखिल हुए। इसी पुस्तक की एक प्रति भेट-स्वरूप आपके शयनागार मे रख दी और वापस हो गये। आप जब घर लौटे, तब नौकर ने सूचना दी, दो आदमी आये थे, किताब रख गये और बोले कि अगर कोई नाम भी पूछे तो 'ऐ कासिद' बता देना, तखल्लुस है पस्त-कलन्दर—मस्त-बन्दर—रिपु-रजन—गोत्र-गजन। आप अब जैसा सोचेंगे, किताब वैसी ही प्रतिक्रिया आपके मस्तिष्क मे पैदा करेगी। तफरीहन ही सही—जरा सोचकर देखिये न। दो आदमी। कौन थे ? किताब रख जाने का क्या मकसद ? शयनागार ही मे क्यो रखा ? यह 'तखल्लुस' का क्या माजरा है ? नाम क्यो नही बतलाया ? कहाँ गये ? इत्यादि-इत्यादि। वे कौन हो सकते थे ? आपके मस्तिष्क की प्रतिक्रिया, आपकी भावनाएँ आपके ही सुख-दु ख का निर्माण करेंगी, न कि किताब रख जानेवाले के। ईश्वर का प्रेमोपहार आप किन भावनाओ के साथ ग्रहण करते हैं, वही प्रधान बात है। लेनेवाला क्या सोचकर लेता है, देनेवाले के प्रति उसकी क्या भावना है, ये सारी बातें मूल है। आप अपना ससार बहुत कुछ अपने ही मानस-पटल पर बनाते है।

"हाय, प्रेयसि ! मिल हम-तुम साथ
नियति के, रचकर कोई षड्यन्त्र
पकड (जान) सकते यदि यह सम्पूर्ण
जगत् का दु ख-सकटमय जन्त्र,
न क्या हम करके चकनाचूर
मिटाते इसका सत्त्व समूल—
बनाते एक नया ससार
हृदय के स्वप्नो के अनुकूल !"

(खैयाम की मधुशाला 'बच्चन')।

"Ah love ! could thou and I with Fate conspire,
To grasp this sorry scheme of things entire,
Would not we shatter it to bits—and then,
Re-mould it nearest to our Heart's Desire !"

अगर माँ के प्यार के बिषय मे मनोविज्ञानविद् सुपुत्र यह सोचे कि वह दिखावटी है, भविष्य की किसी छिपी प्रत्याशा-मात्र का द्योतक है, लिबिडो-सम्बद्ध है, और इन सारे फितूरो की बदौलत उस प्यार की शीतलता और मधुरता से वचित रह जाय, तो इसमे अपराधी कौन है ? इसी तरह सुने हुए शब्दो के घात-प्रतिघात की बात भी है। मान लीजिये, दस आदमी बैठे है। मित्रो की मजलिस है। विभिन्न पेशे के लोग है। उनके दरम्यान किसी ने कोई एक शब्द कहा—इस शब्द का किस पर क्या असर होगा, यह कहना मुश्किल। कोई खुश होगा, कोई बुरा मान जायगा, किसी को बीती हुई बाते याद आ जायेगी, कोई इसमे भविष्य के लिये सीख पा लेगा, कोई मूर्खता की निशानी समझेगा, कोई घबरायगा, कोई ईर्ष्या करेगा। एक ही शब्द दस आदमियो के लिए दस असर, दस मतलब रखते है, चाहे सबको उसका व्यावहारिक या कोशीय अर्थ क्यो न मालूम हो। यह सब हमे सहनशीलता (टौलरेन्स) सिखलाता है। हमने कितनी गलतियाँ की होगी, कितनो के दु ख का कारण बने होगे— जाने अनजाने— समाज ने कितनी माफियाँ हमको दी। कितनी बार क्षमा की। हमारी खामियो को भुलाया। तो हमको भी सहनशील बनना चाहिये। उतना पाते रहे है, कुछ भी तो दे।

'दे' शब्द लिखना अभी समाप्त भी नही किया था कि फिर याद आयी वे सारी बाते।

ऑस्कर रेड्ल ने पहले-पहल प्रोलैक्टिन नामक हॉर्मोन की डिस्कभरी की थी। और उसे लेबोरेटरी मे, पीच्युटरी ग्लैण्ड द्वारा सिक्रेटेड अन्य हॉर्मोन्स से, अलग किया था। यह हॉर्मोन गर्भवती माता के प्रसव के चन्द रोज पहले से स्रवित होने लगता है और इसी के प्रभाव से माता का स्तन प्रस्फुटित होता है और दूध बनने लगता है। साथ-ही-साथ माता का ममत्व बढता है और बच्चा जब जन्म लेता है, तब उसके पोषण के लिये, उसकी भूख मिटाने के लिये पहले से ही माँ का दूध तैयार रहता है। ऑस्कर रेड्ल ने एक बिल्ली को इस हॉर्मोन्स की कई सूइयाँ लगायी और जब उसका स्तन बडा हो गया और उसमे दूध आ गया, तब बिल्ली के पिजडे मे कुछ विलायती चूहो के बच्चे रख दिये गये। क्या आश्चर्य ! बिल्ली ने प्यार से चूहे के बच्चो को दूध पिलाना शुरू कर दिया। तो यह है ममता का जोर और यह है भगवान् की अहैतुकी कृपा, जो एक अन्त स्रावी रस (प्रोलैक्टिन हॉर्मोन) बनकर अवतरित हुई— जैसे भागीरथी। बाघिन—खूँखार—जो दूसरे जानवरो के बच्चो को चबा जाय, अपने बच्चे (कब्स) का कितने ममत्व के साथ भरण-पोषण करती है ! वह उसकी देह पर चढते-उतरते रहते है, उसे नोचते है, दाँत गडाते है, लेकिन ममत्व सब सह कर बच्चो को प्यार करता ही जाता है। यह है प्रभु की महिमा। वही महती परा-शक्ति माता की अदम्य ममता है, पति-पत्नी का प्रबल प्यार है। बादल से उसी की करुणा बरसती है, और धरती से उसी की सोधी सुगन्ध फैलने लगती है। 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण सस्थिता..

चार कोष्ठो, ग्यारह कपाटो, तन्तुओ, धमनियो, शिराओ तथा अन्यान्य पुर्जों को जोडकर एक ऐसा हृदय-रूपी 'पम्प' बनाया, जो जन्म-भर धडकता ही चला जाता है और जिससे प्रत्येक धडकन के साथ बिजली की धारायें प्रस्फुटित होकर सर्वांग मे फैलती हैं और हृदय को स्वत सचालित रखती हैं।

लीवर (जिगर) को ऐसी फैक्टरी बनाया कि उसमे ३०० से अधिक एंजाइम्स का व्यवहार होता है। प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, हार्मोन्स, ड्रग्स, प्वायजन्स, भेरिअस फूड्स ऐण्ड ड्रिंक्स सभी उस एक फैक्टरी मे मेटाबोलाइज होते हैं, बनते-बिगडते हैं। मस्तिष्क की रचना का तो कुछ कहना ही नही। इसी के द्वारा दीन-दुनिया दोनो मिलते है (की प्राप्ति होती है)। इसकी बनावट देखकर आदमी चकाचौध हो जाता है!

ईश्वर के विषय मे बहुतेरे सवाल मन मे उठते रहे है। शक-शुबहा, अविश्वास, झिझक, यह सब बार-बार मस्तिष्क पर समुद्र की उत्ताल लहरो की नाईं आते रहे हैं, टकराते रहे है, मानो आस्था और विश्वास को डुबोकर ही छोडेगे। लेकिन, मैंने यह देखा है कि अविश्वास की भावनाओ को नही रोका गया है, बल्कि अनेकानेक तर्कों से उसे पोषित किया गया और बीच-बीच मे हमारे सवालो के उत्तर एक-एक कर दिलाये गये, जिसका फल यह हुआ कि वे सवाल हल होते गये हैं और ऐसा मालूम पडता है कि अविश्वास-रूपी डाकिनी को इतना खिला-पिला दिया गया कि वह सो गयी, मर गयी, मिट्टी मे मिलकर खाद बन बैठी और उस धरती पर अकुरित हुई एक विश्वास की नयी पौध, जो दिन-ब-दिन बढती गयी है। सुदृढ होती गयी है और जिसके लिये उस अविश्वास की राक्षसी का मृत शव अब भी उर्वरक देता जा रहा है। (श्रीरामकृष्ण ने कहा था—माँ! मुझे भक्ति दे, तर्क-वितर्क की शक्ति छीन ले)। मानस मे उद्वेलित सवालो का उत्तर कब मिलेगा, कैसे मिलेगा, यह मैं नही जान सका था। मिलेगा भी कि नहीं, यह भी नहीं मालूम था। लेकिन, बहुत-से सवालो का उत्तर आप-से-आप मेरे मानस-पटल पर आये थे—कभी ट्रेन मे, कभी कार्यरत रहते थे उसी समय दो-चार मिनटो के लिए जैसे कोई कह गया हो, कभी बाथ-रूम मे, कभी सोने के समय। कोई वक्त मुकर्रर नही है, किसी खास परिस्थिति की बात नही है।

कभी-कभी ऐसी स्थिति मे थे कि सवाल का जवाब उसी वक्त मिलना एक हास्यास्पद-सी बात मालूम हुई थी। एक ऐसी ही घटना का वर्णन करना यहाँ अनुचित न होगा—तब मै एक मजबूत, रोज व्यायाम करनेवाला, युवक था। मेरा एक बूढा नौकर एक दिन मेरी धर्मपत्नी से सवाल-जवाब करने लगा, उलझ गया। पहले से ही उसकी आदत थी वाद-विवाद करने की, उत्तर-प्रत्युत्तर की, जिससे हम-लोग बिलकुल तग आ गये थे। आज तो उसका रुख और भी तीव्र था। बढ-बढ-कर बाते कर रहा था, ऊँचे स्वर मे चिल्ला रहा था। तीखे शब्द-बाण छोडने से बाज ही नही आ रहा था। 'बबुआ की माँ' कुछ देर तक तो उसका साथ देती रहीं,

फिर हारती गयी, हार ही गयी, सिसकने लगी। और वह था, जो मुँह बन्द करना जानता ही नही था। किशोरी को छोडकर अब वह मेरी माँ से भिडने लगा। मुझे गुस्सा आया, प्रज्वलित हुई क्रोध की अग्नि और मै चला उससे बदला लेने, उसे सीख देने। आखिर पति और पुत्र का कुछ कर्त्तव्य तो होता ही है न। जब मैं बवण्डर की तरह उसके पास पहुँच गया, और नाग की तरह उसपर टूटने ही वाला था कि वह चुप हो गया, मेरे पैरो के निकट ही बैठ गया, मेर आगे सर झुकाकर बोला, 'जितना चाहिये, मार लीजिये, बौआ!' यह सब काण्ड एक-दो मिनट मे ही हो गया। मैं सन्न रह गया, हाथ नही उठे। मेरी आँखो मे आँसू छलछला आये। एक गरीब इसान। बूढा-सा। हमसे कमजोर सर्व-प्रकारेण, शरणागत। मेरा दिल कचोटने लगा। मारता-पीटता क्या, अपना-सा मुँह लेकर लौटने ही वाला था कि पीछे से पत्नी घबरायी हुई बोल उठी—यह क्या करते है, छोड दीजिये, छोड दीजिये। मैं उनकी राय सुनने के पहले ही हार चुका था, पस्त हो गया था। रूमाल से आँखे पोछता हुआ लौटा। मन ने कहा—तुम उससे बलिष्ठ हो, इसीलिये न उसे मारने जा रहे थे। तब अगर तुमसे भी कोई बलिष्ठ आदमी तुम्हारी भर्त्सना करे, तुम्हे सबक सिखाने की ठाने, तो किस मुँह से उसका प्रतिरोध करोगे, प्रतिकार करोगे? क्या उस वक्त तुम्हारा कोई हक होगा, उस सर्वशक्तिमान् के आगे, जिसे जता सको, कोई नालिश, जो उसके समक्ष रख सको? और, देखो उस गरीब को, वह क्यो गरीब है? इतने दिनो तक तुम्हारे ही साथ उसने जीवन व्यतीत किया है न, तुमलोगो की सेवा करते-करते ही तो उसकी जवानी बीत गयी है। उसके दिल मे भी तो इसान का दर्द है? वह कैसे उसे व्यक्त करे? बाते भर तो बोलता था? कोई भयकर हानि करने की भावना तो न थी! और तुम? पढे-लिखे हो। मजबूत हो। समझ भी है। इस बल-वैभव का क्या ऐसा ही प्रयोग करना उचित है? रूमाल सचमुच भीग गया था। मैं लज्जित था। क्षोभ का तीर उद्विग्न कर रहा था। लेकिन, वह सीख कभी न भूल सका हूँ। भगवान् की वह करुणा थी, जो अकस्मात् मिली थी और ऐसी परिस्थिति मे मिली थी कि क्या बताये। 'निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय, मुई खाल की साँस से सार भस्म ह्वै जाय'। यह सब पढते-सुनते आ रहे थे। लेकिन, आज ही समझ पाया था, इनका अर्थ। टौलरेन्स ने क्रोध की कोख मे जन्म लिया था।

एक और रोचक घटना के विषय मे कहूँ।

बहुत-सी शकाओ के दूर हो जाने के बाद भी एक सवाल बार-बार मेरे मन मे आया करता था और आज भी आता है। किन्तु, मैली चादर जैसे साफ होती जा रही हो, वैसा अन्दर से प्रतीत होता है, यद्यपि यह नही कह सकता कि वह पूर्ण स्वच्छ और विमल हो पायी है। सवाल साधारण-सा है। अगर सब कुछ भगवान् की आज्ञा से ही होता है, तो ससार मे लोग दु खी क्यो है? क्यो इस धरती पर भीषण यन्त्रणाये दी गयी, नर-मेध हुए? जब निस्सहाय, निर्बल शिशु को जानवर उठा ले जाता है

और उसे मार कर खा जाता है, तब गज-ग्राह को बचानेवाली करुणामयी शक्ति क्यो नही सुदर्शन-चक्र लेकर धाती आती है ? द्रौपदी का चीर बढानेवाला औरो की लाज क्यो नही बचाता ?

इसके पहले कि जवाब मिले, हमारे ध्यान मे कई बातें आती गयी (१) सभी मनुष्य भगवान् की सन्तान हैं, जैसे एक बाप के अनेक बेटे-बेटियाँ। इनका एक-दूसरे के प्रति व्यवहार उसकी नजर मे एक परिवार के सदस्यो के बीच आपस की समस्या जैसी है। अगर हम ऐसा करके देख सकें, तो एक मनुज का दूसरे के प्रति दुर्व्यवहार को 'भाई-चारा' समझना—समझाना पडेगा और उसका तीखापन घटेगा। दुर्व्यवहार की मात्रा घटेगी सबके लिये। सर्वोदय की भावना जगेगी। (२) भगवान् ने जो एक सबमे बडा वरदान अपनी सृष्टि को दी है, वह है पूर्ण स्वतन्त्रता का 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'। सभी को यह पूर्ण स्वतन्त्रता मिली है। कोई भाई-भतीजावाद की बात तो है नही। लेकिन, इस स्वतन्त्रता की कोई सीमा भी है ? इसका जवाब देते हुए पूज्य बापू ने कहा था—मनुष्य की स्वतन्त्रता वही तक सीमित है, जहाँ से उसके पडोसी की स्वतन्त्रता प्रारम्भ होती है।

जब सभी स्वतन्त्र है सब कुछ करने के लिये, तब तो आपसी सघर्ष अनिवार्य ही है। फिर, एक आदमी का सुख दूसरे आदमी के दु ख का जनक (कारण) बन जाता है, इसमे क्या आश्चर्य है !

स्वतन्त्रता उच्छृ खलता मे न बदल जाय, इसके लिए बुद्धि, विवेक, सामाजिक व्यवस्था, सरकारी कायदे-कानून तो अपनी-अपनी जगह पर ठीक ही हैं। पर, इन सबसे अधिक प्रभावशाली है अपना विवेक और अपनी आस्था।

हाँ, तो भगवान् इस निज प्रदत्त (स्व-प्रदत्त) स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण और विमल रहने देना चाहता है। इसमे अगर रात-दिन वह रोडे अटकाता रहे, लक्ष्मण-रेखाएँ खीचता रहे, बाध्य करता रहे, तो फिर 'स्वतन्त्रता' कहाँ रही ? इसीलिये, यह विवेक और समाज का काम है कि स्वतन्त्रता का सुघड उपयोग करे, उसकी सीमाये निर्धारित करे। और, जब इनके बावजूद सीमाये टूट जाती है, और आदमी और आदमी के दिमाग से निकले सभी रिजन्स जब ठीक नही हो, तब रिजल्ट्स फ्लॉलेस कैसे होगा और तब उसका इण्टरप्रेटेशन भी गलत होगा और उसपर निर्धारित कन्क्लुजन्स भी मिथ्या होगे। ह्यूमन रिसर्च की यही खामियाँ हैं। आदमियत सड जाती है, धर्म धराशायी हो जाता है, मिट जाता है—तब अवतार होते है, ताण्डव होता है, रणचण्डी जागती है।

(३) सुख और दु ख एक ही वस्तु है। एक ही सिक्के के दो पहलू। दु ख घटते-घटते सुख मे परिवर्त्तित हो जाता है। सुख घटते-घटते दु ख बन बैठता है। एक और दिलचस्प बात है, सोचने की। कि सुख बढते-बढते दु ख मे बदल जाता है। और दु ख बढते-बढते सुख मे लीन हो जाता है। एक तीसरी बात है कि दु ख की पृष्ठभूमि मे ही सुख का अनुभव कर सकते है और दु ख इसीलिये महसूस करते है कि पृष्ठ-

भूमि मे सुख दीखता है। एक चौथी बात यह है कि सुख-दु ख की अनुभूति एक तदात्म वस्तु है, जो दूसरे स्वजातियो (मनुष्य-जाति) के सुख-दु ख के तुलनात्मक परिवेश मे ही भोगी जाती है। एक पाँचवी बात यह है कि सुख और दु ख की वास्तविकता का ज्ञान जितना गहरा होगा, उतना ही उनका असर कम होगा। अगर दुनिया मे सिर्फ सुख ही सुख हो, फिर भी 'कम सुख' पानेवाले दु ख का अनुभव करेंगे। और इसी भाँति केवल 'दु ख' के ही साम्राज्य मे 'कम दु ख' को 'सुख' मानेंगे। एक छठी बात है कि प्रत्येक सुख मे दु ख मिला हुआ है और प्रत्येक दु ख मे सुख मिश्रित है। एक सातवी बात यह है कि एक ही वस्तु न सबके लिए सुखद होती है, न दु खद और कितनो को दु ख मे सुख का रस मिलता है और सुख मे दु ख का जहर नजर जाता है। (ऐसी अवस्था मे 'मिड्ल पाथ'— 'मध्यम मार्ग' की मन्त्रणा ही उचित दिशा-निर्देशन करती है) (यही एक व्यावहारिक कुजी है)। एक आठवी बात यह है कि सुख-दु ख का अन्त अवश्यम्भावी है। 'सब दिन रहत न एक समान'। न कोई सदा सुखी, न कोई सदा दु खी रहता है। एक नवी बात यह है कि सुख के भी अपने गुण-अवगुण है और दु ख के भी। एक दसवी बात है कि आशा, विवेक, आस्था, भक्ति और सब्र के सकट पर आरूढ होकर इस माया को इसान पार कर जा सकता है।

'तुई कि मानस मुकुल भाजिबे आगुने,
तुई कि फुल फोटाबी फल फलाबि शबुर बिहने ?

और, एक आखरी (ग्यारहवी) बात यह है कि हम अपने-आप निज को छलते रहते है जो 'सुख' दीखता है, हो सकता है कि वह 'दु ख' हो या उसका अजाम दु ख हो, और जो 'दु ख'-सा प्रतीत हो रहा है, उसका वास्तविक रूप या प्रतिफल 'सुख' का हो सकता है। और, एक आखरी-से-भी-आखरी (बारहवी) और गुप्त-से-भी-गुप्त बात यह है कि व्यक्तिगत 'सुख-दु ख' किसी ब्रह्माण्डीय 'सुख-दु ख' से कही जुटा हुआ (सम्पर्कित) है।

सुख भोगने के लिये दूसरे की मदद लेनी पडती है। दूसरे के सहयोग के बिना सुख की प्राप्ति नही होती। इसलिये इसमे परतन्त्रता है, और सुख की प्राप्ति मे जब बाधा होती है, तब क्रोध, मतिभ्रम, सम्मोह और नशा आ खडा होता है। ऐसी बाते, जिनपर किसी का जोर नही चल सकता और जो सबके जीवन मे निश्चित रूप से आती ही है और जो सबके भाग्य मे बदी है, उनसे आदमी कैसे बच सकता है। इनके लिए क्लान्त या म्लान नही होना चाहिये, दु ख नही मानना चाहिये। जैसे मृत्यु। इसकी निश्चितता से न भयभीत होना चाहिये, न आतुर। तैयारी करनी चाहिये, रखनी चाहिये, प्रयाण की।

'तावद् भयस्य भेतव्य यावद् भयमनागतम्'। और 'भय जब आये पास तुरत कुछ करना चाहिये"। (कुमार झा)

'चलती बेरिया हमको ओढावे चदरिया।'

और, एक बात यह देखिये न कि अगर मृत्यु के साथ और उसके बाद डर, भय,

प्रेम, मोह, सुख, दु ख सभी लगे रहनेवाले है, तब तो पुनर्जन्मवाली बात या मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व अकाट्य है। और, अगर मृत्यु के साथ और उसके बाद न शरीर है, न अन्त करण, और आत्मा निर्लेप निर्विकार आनन्द-स्वरूप विराट् शक्ति है, तब फिर डर किसका ?

हाँ, तो मै दुनिया के सारे दु ख-दर्द के लिए तथाकथित 'भगवान्' को ही दोषी समझता था, उन्हे ही कोसा करता था, खरी-खोटी सुनाया करता था। मन मे एक बात निरन्तर टीसती रहती थी कि इसमे क्या करुणा है कि दुर्भिक्ष हो, भूकम्प हो, कुष्ठ, कैन्सर इत्यादि जैसे भयकर रोग इसान की देह को सालते रहें, चबाते रहे, माँ की गोद सूनी होती रहे, इसान का अत्याचार आदमी की नीद हराम करता रहे ? चालीस वर्षो तक यह सवाल मेरे माथे मे गूँजता रहा है। अन्यान्य ग्रन्थियाँ इस बीच मे धीरे-धीरे खुलती रही थी। लेकिन, इस सवाल का कोई डायरेक्ट जवाब नही मिल पाया था। पोथियाँ पढता गया। दो-चार साधु-सन्तो से जिज्ञासा भी की। पर मसला हल न हुआ। ऐसा लगता था, कोई इधर-उधर की बात मे बहला कर सन्तोष दिलाने की चेष्टा करता है, लेकिन इस सवाल का उत्तर देने से भाग रहा है। और, इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी जिज्ञासा दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढती चली गयी। आस्था की नाव इस भयकर मँझधार मे ऊब-डूब करने लगी।

और, तब एक दिन। रात के दो बज रहे थे। मरीजो का एक हुजूम आया था, जिसके साथ निबटते-निबटते थक गया था। नीद पलको तक पहुँच कर ठिठक गयी थी। भूख आकर वापस चली गयी थी—मुँह बिचका कर। एक लम्बी साँस ली, एक अँगडाई, और एक बार खुली खिडकी से देखा—रात भागी जा रही थी। मै कुर्सी से उठकर अन्दर जाने ही वाला था कि याद पडा, किशोरी के फूफाजी को बिठा दिया था प्रतीक्षा करने के लिए। उन्होने स्वय ही कहा था—हम ठहरते है। सब मरीजो को देखकर समाप्त कर (हो) (!) लीजिए तब मिलेंगे। कोच पर घण्टो से इन्तजार करते-करते वह सो गये थे। याद पडे, तो उठाये गये। मिले। बात जो शुरू हुई, तो वन-प्रान्तर, कान्तार, पहाड, नदियो से घूमती-फिरती जा पहुँची अध्यात्म पर। जब यह विषय आया, तब हमने वाजिब ही मान लिया कि आज की रात पलको मे ही बीतनेवाली है। वह सो चुके थे। ताजे थे। कहना-सुनाना चाहते थे। मैं पस्त था, तन्द्रा मे डूब-उतरा रहा था और उसपर भी सुनने की ही सजा मिलनेवाली थी। नीद पर अफीम।

अपनी मोटर-गराज के पीछे, एकान्त मे, कठबेल और गुल-मोहर की साया मे रग-विरगी सीमेण्ट से बने धूल-धूसर गोलाकार चबूतरे पर, तारो-भरी आकाश के नीचे, ब्राह्म मुहूर्त्त मे टीन की दो आराम-देह कुर्सियो पर, हम दोनो बैठ गये— एक विद्रोही जिज्ञासु, दूसरा पवित्र गृहस्थ। उनका परिचय किशोरी मेरी पत्नी का नाम है। उनके पूज्य फूफाजी, नाम है श्रीरामखेलावन सिंहजी। आप बडे ब्रह्मनिष्ठ,

उदारचरित, सरल स्वभाव के पवित्र गृहस्थ तथा सुयोग्य नागरिक है। वलीपुर, जमालपुर घर है। इसलिए, 'आनन्द-मार्ग' से अछूते न रह सके है। हम दोनो मे जो बाते हुईं, वह आप भी सुन ही लीजिये

"दिवा निरीक्ष्य वक्तव्य रात्रौ नैव च नैव च।
विचरन्ति धूर्त्ता सर्वे वने वररुचिर्यथा॥"

मैं (डॉ० श्रीनिवास) अच्छा, बतलाइये, जब भगवान् की नजरो के सामने ही, उन्ही की हुकूमत मे, लोग भयकर पीडा पाते रहते है, तब ऐसे निष्ठुर, निर्दय, मायावी शक्ति के प्रति कैसे प्रेम उमडे, कैसे आदर से सिर झुके ? ऐसी कठोर, नीरस, दानवीय व्यवस्था क्यो बनायी गयी ?

फूफाजी पहले तो आप इसको अवश्य ही मान लेंगे कि अगर सृष्टि मे बुराइयाँ हैं, तो अच्छाइयाँ भी है। अगर आदमी अपने सम्पूर्ण जीवन के विषय मे पूर्णत सोचे, तो वह देखेगा कि उसे दु ख से कही अधिक मात्रा मे सुख ही मिला है। ससार के सभी प्राणियो का यही अनुभव होगा। रही कठोरता, निर्दयता इत्यादि की बात, तो मै यह नही जानता कि भगवान् ने ऐसा क्यो किया। जिन्हे करुणासागर कहते है उन्होने ।

मै (बात काटकर) ऐसा इन्तजाम क्यो किया कि एक निरपराध असहाय शिशु को, जो न कुछ जानता है और न अपने को बचा ही पाता है, एक खूँखार भेडिया उठाकर ले जाय और उसकी बोटी-बोटी नोचकर खा जाय और उसकी माँ आजीवन बिसूरती रह जाय ?

फू० इसका जवाब हम नही जानते। लेकिन, हम आपसे चन्द सवाल करना चाहते है। आप उसका उत्तर दे सकेंगे ?

लेने के देने पडे। मैंने अपनी स्वीकृति दी।

फू० किशोरी रात-दिन जो कुछ करती रहती है और उसके जीवन-भर के जितने कार्य हैं उन सबको आप जानते है ?

उत्तर देने की तैयारी मे जैसे ही मैं कुर्सी पर रीढ सीधी करने लगा कि उन्होने फिर सवाल किया।

फू० और, किशोरी से आपका जो चौबीस घण्टो का निकटतम सम्बन्ध है, वैसा तो और किसी के साथ भी नही है। तब उसके बारे मे तो आप सब कुछ जानते ही होगे। है न ?

सरल सवाल थे। ममता के साथ पूछे गये थे। गाँव के एक गृहस्थ ने पूछा था, बडे स्कूल के हेडमास्टर ने।

उत्तर देने के लिए लपका। पर, 'दर्द की तरह उठा, गिर पडा आँसू की तरह।' मैं सोचने लगा—उचित उत्तर क्या होगा ?

आप धूमिल-से मालूम पडे। आप धूमिल नही थे। मैं ही चश्मा लगाये हुए था।

सोचकर कहा—नही, मैं कुछ तो जानता हूँ, सब कुछ कैसे जानूँगा।

फू० खैर, यह बतलाइये कि जिन कामो के विषय मे आप जानते है, उन्ही के विषय मे आप बतला सकते है कि किशोरी ने उन कामो को क्यो किया था , उसके क्या कारण थे ?

मैं अन्दाज लगा सकता हूँ। लेकिन, यह नही कह सकता कि उनके प्रत्येक कार्य के पीछे कौन-से कारण थे।

फू० अच्छा, अगर आप उससे पूछिये कि तुमने यह काम क्यो किया, वह काम क्यो किया, तो क्या वह सब बतला देगी ?

मैं नही।

फू० क्यो नही ? वह आपकी पत्नी है, रात-दिन का साथ रहना, आपका सुख-दु ख उसका सुख-दु ख है। निकटतम का सम्बन्ध। दोनो के जीवन की समस्याएँ एक हैं। फिर, आप ऐसा क्यो कहते हैं ?

मैं हर एक इसान के जीवन मे ऐसी घटनाएँ घटती है, जिन्हे वह अपने तक ही रखना चाहता है। सब राज खोले नही जाते। सारी बातें बतायी नही जाती, और इसके विविध कारण होते है।

फू० ठीक। अच्छा, यह तो बतलाइये कि अगर आपकी तीव्र उत्कण्ठा हो उसकी गुप्त बातो को जानने के लिए, या उसके किसी कार्य का कारण जानने के लिए, तो आपके पास उसका क्या उपाय है ?

मैं उपाय क्या है ? उनसे पूछ लूँगा।

फू० और वह बतला देगी ?

(मैं सोचने लगा। कैसे बतला देगी ? जान बचाने के लिए गलत ही बतला दे। फिर, कैसे पता चलेगा कि ठीक ही बतलाया हो ? यह सब पूछना उचित भी तो नही। आखिर इसान के लिए कही तो गोपनीयता छोडी जाय, जहाँ वह हो और वही हो और सिर्फ अपना ही साथ हो।)

मैं नही भी बतला सकती है।

फू० तब ? क्या कीजियेगा ?

मैं अगर उनसे पूछने पर वह नही बतलाती है और उनसे सम्बद्ध दूसरो मे छानबीन करने पर भी पता न चले, तो क्या करूँगा, चेष्टा छोडकर बैठ जाऊँगा।

फू० और आपकी उत्कण्ठा ?

मैं हँसने लगा। वह कुछ गम्भीर होकर बोले।

फू० मैं एक रास्ता बतलाऊँ ?

मैं कौन-सा रास्ता ? बतलाइये।

फू० एक रास्ता है। अगर किसी तरह आप किशोरी के मन की बात जान सकिये, तब तो आप उसकी सब गुप्त बातो से तुरत अवगत हो जायेंगे और उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओ को पहचानकर, जानकर, उसके प्रत्येक कार्य के कारण से पूर्णतया अवगत हो जाइयेगा।

मैने अपने मे कहा—(बे-मतलब की बात है। पहाड से चुहिया निकली) मैं, हाँ, यह तो समझा। किन्तु, मन की बात तब कैसे जानी जाय ?

फू० क्यो ? अगर आप अपने मस्तिष्क की प्रतिक्रियाओ को उनके साथ मिला सकिये।

मैं लेकिन, यह सम्भव कैसे होगा ?

फू० अच्छा, अब छोडिये उस बात को। कहना यह था कि भगवान् के बारे मे जानने के लिये उनके साथ भी निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना पडेगा। उनका होना पडेगा। उनके मस्तिष्क से जब आपका मस्तिष्क एक हो जायगा, उनसे जब ऐकात्म्य हो जायगा, तब सृष्टि की सारी उलझनें आपको अपना राज आप-से-आप बतला देंगी, तब सब कुछ करुणामय दीखने लगेगा। तब आप स्वत अपने सवालो का जवाब पा लेंगे। मैंने अन्धकार मे प्रकाश देखा—धूमिल-सी ही सही, एक रोशनी मेरे मानस के अन्धकार मे बल उठी थी।

मैं पर भगवान् से तादात्म्य स्थापित कैसे हो ?

फू० भक्ति-भाव से, आस्था-विश्वास से　　(वह चुप हो गये)

फा (फू०) ध्यान से। योग से।

मैं और ?

जी (फू०) उनकी मौज से।

इस सन्दर्भ मे 'आलोक' जी ने जो कहा, वह भी ध्यातव्य है 'ससार'=ससृति का अर्थ हुआ—सम्यक् रूप से जो ससरण करे, याने ससार। एक व्यक्ति के सम्यक् रूप से ससरण करने पर ससार का बोध नही हो सकता। अनेक प्रकार के मनुष्य, जीव-जन्तु अपने स्वभाव और गति के अनुसार ससरण करते है। सभी सम्यक् रूप से ही ससरण करते है, किन्तु गति मे भिन्नता रहती है। भिन्नता के साथ-साथ साम्यभाव रहने के कारण ही जगत् को ससार अथवा ससृति कहते है। इस ससार की स्थिति का आधार ही है भ्रम और अज्ञान (क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, ईर्ष्या आदि) (त्रिगुणी माया, प्रकृति की)। यह अज्ञान, यह भ्रम न रहे, तो ससार का क्या रूप होगा ? क्या स्थिति होगी ? कैसे कोई आदमी कुछ करेगा ? सृष्टि (ससार) रुक जाये।

'किसी की मौज से लाया गया हूँ। खिलौने दे के भरमाया गया हूँ।' अज्ञान-रूपी (माया-रूपी) खिलौने उपलब्ध न हो, तो खेल न बिगड जाय ? माया से अलिप्त परमात्मा की तरह सिर्फ 'साक्षी' रहना पडे ! सिर्फ सूत्रधार का काम करना पडे, परोक्षा मे ! सृष्टि के इस महान् खेल मे हम मैदान के किनारे रेफरी बने ? कि खिलाडी ? हाँ, खेल को पूर्ण ईमानदारी और होशियारी के साथ खेलना है, और नियम भग नही करना है, और दूसरे खिलाडियो का पूरा-पूरा ध्यान रखना है, प्रेम और सहिष्णुता के साथ। इसमे आश्चर्य नही कि बाघ आदमी का बच्चा खा गया। बाघ करेगा भी क्या ? महान् आश्चर्य तो यह है कि कोई आदमी इतनी नृशसता, इतनी बर्बरता, बरतता है, जो हिस्रक जानवरो को भी मात कर दे !

जो सर्वज्ञान का स्रोत है। प्रकृति के सारे नियम, चिर युगो से सचित मनुष्य की सम्पूर्ण विद्या, ग्रह-नक्षत्रो की गति-विधि का बोध, सभी सर्वज्ञ की महिमा है, सबका वही उद्गम है। फिर, उसी को कैसे जाना जाय? अण्डा चूजा के विषय मे क्या सोचे? मुर्गी का ज्ञान कैसे प्राप्त हो उसे और फिर अगर वही अण्डा अपने मालिक के मस्तिष्क के विषय मे अन्वेषण करना चाहे, तो कहाँ पहुँचेगा?

"मैं कहता हूँ। मिटो, ताकि हो सको। बीज मिटता है, तो वृक्ष बनता है। बूँद मिटती है, तो सागर हो जाती है और मनुष्य है कि मिटना नही चाहता है। फिर, परमात्मा प्रगट कैसे हो? मनुष्य बीज है, परमात्मा वृक्ष है। मनुष्य बूँद है, परमात्मा सागर है।

"ईसा का एक वचन है माँगो और वह मिलेगा। पर, कोई माँगे ही नही, तो कसूर किसका है? प्रभु को पाने से सस्ता सौदा और कुछ भी नही है। केवल उसे माँगना ही होता है। यद्यपि माँग जैसे-जैसे प्रबल होती है, माँगनेवाला वैसे-ही-वैसे विसर्जित होता जाता है। एक सीमा आती है, वाष्पीकरण का एक बिन्दु आता है, जहाँ माँगनेवाला पूरी तरह मिट जाता है, और केवल माँग ही शेष रह जाती है। यही बिन्दु प्राप्ति का बिन्दु भी है। जहाँ 'मैं' नही है, वही सत्य है, यह अनुभूति ही प्रभु-अनुभूति है। अह का अभाव ही ब्रह्म का सद्भाव है।'

"प्रभु अपने अमृतद्वार उन्ही के लिए खोलता है, जो स्वय प्रभु के होते हैं। मनुष्य का जन्म दासता मे है। हम अपने ही दास पैदा होते है। वासना की जजीरो के साथ ही जगत् मे हमारा आना होता है। बहुत सूक्ष्म बन्धन हमे बाँधे है। परतन्त्रता जन्मजात है। वह प्रकृति-प्रदत्त है। हमे उसे कमाना नही होता। मनुष्य पाता है कि वह परतन्त्र है। पर, स्वतन्त्रता अर्जित करनी होती है। उसे वही उपलब्ध होता है, जो उसके लिए श्रम और सघर्ष करता है। स्वतन्त्रता के लिए मूल्य देना होता है। जीवन मे जो भी श्रेष्ठ है, वह निर्मूल्य नही मिलता। प्रकृति से मिली परतन्त्रता दुर्भाग्य नही है। दुर्भाग्य है, स्वतन्त्रता को अर्जित न कर पाना। दास पैदा होना बुरा नही, पर दास ही मर जाना अवश्य बुरा है। अन्तस् की स्वतन्त्रता को पाये बिना जीवन मे कुछ भी सार्थकता और कृतार्थता तक नही पहुँचता है। वासनाओ की कैद मे जो बूँद है, और जिन्होंने विवेक का मुक्ताकाश नही जाना है, उन्होने जीवन तो पाया, पर वे जीवन को जानने और जीने से वचित रह गये हैं। पिजडो मे कैद पक्षियो और वासनाओ की कैद मे, पडे आत्मा मे, जीवन मे कोई भेद नही है। विवेक जब वासना से मुक्त होता है, तभी वास्तविक जीवन के जगत् मे प्रवेश होता है। प्रभु को जानना है, तो स्वय को जीतो। स्वय से ही जो पराजित है, प्रभु के राज्य की विजय उसके लिए नही है।" (आचार्य रजनीश)

योग।

"दो वियुक्त उपादानो के सयोग को योग कहते है। परन्तु, हमारा लक्ष्य किसी

व्यावहारिक वस्तुओ के योग से नही, किन्तु दो सत्ता का योग किस प्रकार होता है, हम इस विषय मे विचार-विनिमय करने जा रहे है। अब सबसे पहले यह मन मे लाना चाहिए कि कौन है दो नियुक्त वस्तुये, जो योग को प्राप्त हो। हम जिसे ज्ञानयोग कहते है, उसका यही सिद्धान्त है कि अपने वास्तविक स्वरूप से स्खलित व्यष्टि जीव जब अपने को कूटस्थ के रूप मे वरण करता है, तब वह तत्त्वज्ञान है और इसे मोक्ष की सज्ञा भी दी गयी है। तब जीवन और कूटस्थ क्या है? सर्वत्र निश्छिद्ररूपेण व्याप्त जो महाकाश है, वह कूटस्थ-स्थानीय है, क्योकि उसमे विकास की शका नही। उसी प्रकार किसी उपाधि द्वारा अविच्छिन्न आकाश जीवस्थानीय है, क्योकि वह घट-पटादि से उपाधिभूत है। व्यष्टि माया को अविद्या कहते है और उसमे उपाधिभूत परमात्मा जीव सज्ञा को प्राप्त होता है, किन्तु जो निर्द्वन्द्व और निरुपाधिक महाकाशवत् निष्पक्ष रूपेण 'सूत्रे मणिगणा इव' ग्रथित अथवा व्याप्त है, वह किसी अविद्यावश न होकर परमात्मत्व को प्राप्त होता है। यद्यपि दोनो मे तारतम्य अथवा अन्तर होने की भावना काक-दन्त-वत् है, फिर भी उसे वियोग कह आये हैं, और उसके ही सम्मिलन को योग की परिभाषा दी गयी है।

"ब्रह्मज्ञान अन्त करण की एक वृत्ति है, जिसका तात्पर्य हे कि मै वही हूँ। इसी 'मै' को 'वह' बनाना योग कहा जाता है। तन्तु को अपना समुद्भव-स्थान कपास का ज्ञान हो, जल-बुदबुद को अपने उद्गम जलराशि का ज्ञान हो, वैसे ही किसी पात्र-विशेष को, उपाधिरुपेण अगीकृत आकाश को स्वच्छन्द महाकाश के होने का ज्ञान हो, यही एकत्व का ज्ञान है अथवा योग की पराकाष्ठा है, अथवा मोक्ष और ब्रह्मज्ञान है, जीवन्मुक्ति या विदेहमुक्ति तथाविध कैवल्य-प्राप्ति है।

"इस योग के अभ्यास के लिये अनेक मार्ग ह और अनेक सिद्धान्त भी। इसे राजयोग के द्वारा पहुँच सको, इसे हठयोग के द्वारा अथवा कर्मयोग के द्वारा प्राप्त करो। प्राप्य केवल एक ही है, नाना मार्ग है और नाना विधि-विधान। राजयोग के द्वारा साधक यम-नियमो की सीढी पर ही नैतिक दृढता को प्राप्त कर लेता है, फिर ध्यान और समाधि वैसे ही सरलता से प्राप्त हो जाती है। उसी प्रकार, ज्ञानयोग का साधक भी साधनचतुष्टय को अर्जन करते हुए चारित्रिक पवित्रता प्राप्त कर लेता हैं और फिर धीरे-धीरे मनन और निदिध्यासन के योग्य हो जाता है।

"हठयोग पर विचार करे, तो वैसे ही है। पहले साधक प्राणो के नियन्त्रण मे पर्याप्त श्रम करता है और तत्फलत मनोजवा गति निर्बल हो जाती हे। ऐसा एक हठयोगी ध्यान की अवस्था को प्राप्त कर समाधि की ओर अनायास ही पदार्पण कर लेता है। निष्कर्ष यह हुआ कि योग की पहली सीढी है चरित्र की दुर्बलताओ का निराकरण और इस एक अभाव को ही किसी भी योग के अधिकारियो के लिए प्रवेशमार्ग समझते है।

"सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य और अस्तेय पर बारम्बार विचार करो और देखो तो इन वस्तुओ के प्राप्त होने के उपरान्त तुम्हारे पास अप्राप्य कुछ रहता है? कदापि नही। ऐसा एक व्यक्ति राजयोग के मार्ग से भी गमन करता हो, अथवा

हठयोगी हो, अत्यल्प काल मे ही समाधि को प्राप्त करेगा, वैसे हा ज्ञानयोग का अधिकारी भी। अब हमने योग की विवेचना की और उसकी पहली सीढी तो चरित्र की पवित्रता बताई। साधक इसका अभ्यास आरम्भ करे। ईश्वरानुग्रह से, सस्कार-पाटव से अथवा गुरुकृपा से उन्हे एक-एक पग पर चिरन्तन प्रकाश मिलेगा और वे जाने से रुकना नही चाहेगे। 'असतो मा सद्गमय'।" (स्वामी सत्यानन्द)

'शरीर के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करना बन्धन है। आत्मा के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित करना मुक्ति है।' (स्वामी शिवानन्द)

एकतत्त्वघनाभ्यास प्राणाना विलयस्तथा।
मनोविनिग्रहश्चेति मोक्षशब्दार्थसङ्ग्रह ॥ (योगवाशिष्ठ)

"Brahman is indivisible It is all pervasive as well Hence the साधक has to reform his thinking every moment on the basis of this infallible truth The reformation may be described thus If everything is ब्रह्म then my existence or the 'I' in me must also be ब्रह्म I am not so much concerned about the other things as about myself, the 'I' in me For only as long as there is the 'I' in me, there are the others also Every knowledge and experience that I derive, it appears, inheres in the 'I' in me As such, my object must be to know the real nature of the 'I' first, leaving all the rest to be known later It is this 'I' that वेदान्त declares as ब्रह्म On a deep study, it is also found that the 'I' remains changeless, where as all the other aspects of my personality go on changing The changelessness, being a nature of ब्रह्म, it sounds true that the 'I' is in reality ब्रह्म Now that this truth is recognised by me I will constantly remember it, and at the same time endeavour maximum to realise it for myself The separateness about the 'I', 'you', etc, will be constantly dismissed from my mind, and the singleness installed To dismiss the wrong notion and install the correct notion, let me remember the truth, 'I am ब्रह्म' as often as I can As ब्रह्म the all pervasive entity, is nischala, I must also remain nischala, by virtue of the Brahmic अनुसन्धान।

"In meditation I will try to dissolve my mind completely and remain absorbed in the stillness of the Soul Like the light which illumines itself as well as other things, the Self will reveal itself to you, without the interference of any medium at all Practice meditation and realise this truth yourselves" (स्वामी भूमानन्द तीर्थ)

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपैति नैवावर्निं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश न कश्चिद् विदिश न कश्चिद् स्नेहक्षयात् केवलमेति भातिम् ॥
जीवो तथा निर्वृतिमभ्युपैति नैवावर्निं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश न कश्चिद् विदिश न कश्चिद् क्लेशक्षयात् केवलमेति भातिम् ॥
(सौन्दरनन्दकाव्य अश्वघोष)

इसमे भी क्या कोई शक है कि अगर रोटी एक हो और पिल्ले हो सात, तो उनकी आपसी लडाई अवश्यम्भावी है । वह रोके नही रुक सकती । भूख की ज्वाला ऐसी भयकर होती ही है । उसकी तडप ने विश्वामित्र तक को कुत्ते का मास खाने के लिए बाध्य किया था । पेट की खातिर पाण्डवो को भी बिकना पडा (अज्ञातवास मे) और पेट के ही कारण आज चतुर्दिक् नारो की भरमार है । वेतन बढाने का आग्रह । नौकरी के लिए मार-पीट । जरूरी जिन्स, माल, का दाम घटाने के लिए सत्याग्रह । भूख-हडताल । गल्लम-गाली । नोच-चोथ (खसोट) । हाथा-पाई । उल्का । दमकल । हत्या । गोली । कभी बस जलाना । कभी आग लगाना । कही दरवाजे तोडना । कही शीशे फोडना । झूठ । फरेब । चोखा-धोखा । चोरी-डकैती । सब ओर छीन-छोर । बोर-बोर-बोर । रेलमपेली । मकान एक । कुनबे अनेक ।

चिलबिलाती भूख को न दीन चाहिए न दुनिया, उसे बस दाना मे काम है । भूखे पेट मे परमात्मा भी याद नही आता, अच्छा भी नही लगता । भूखे पेट ध्यान भी नही धरा जाता । सुजाता की खीर नसीब हो, तब काम चले । शरीर की अपनी जरूरते है, उनकी पूर्त्ति के बिना तन गल-मिट जायगा । मन की भी अपनी माँगे है, वे न मिले, तो मन भी मिट जायगा । मन और तन को उसकानेवाले (उसकाने, सभालने, प्रोत्साहन और सहायता देनेवाले, उनके अवलम्ब, हिमायती और पृष्ठपोषक और प्रेरक, पोषक, तोषक और आधार) दो वीर-अधीर है (एक),—हमारी सहज प्रवृत्तियाँ (मूल, नैसर्गिक) (अन्त प्रेरणा) (इन्सटिंक्ट), (दूसरा),—हमारी शारीरिक सरचना और क्रिया (एनाटॉमी तथा फिजियोलॉजी) और मनोवृत्ति (साइकॉलॉजी) (एटिट्युड) ।

मूलप्रवृत्तियो मे प्रधान सेनानी है दो (१) प्रथम, वे प्रवृत्तियाँ, जो अपने को बचाकर रखने मे काम आती है, (२) द्वितीय वे प्रवृत्तियाँ, जो अपने लिये सुख बटोरने का काम करती है । हम बचे रहे और मौज मारते रहे । हमारी जरूरते (आवश्यकताये) (डिजायर्स, नीड्स, वाण्ट्स) पूरी होती रहे और हम निरापद और सुरक्षित (सिकियोर) बने रहे । 'बचे रहे' मतलब किसी हालत मे भी हमारा काम तमाम न होने पाये । हमारा अवसान न हो, हम समाप्त न हो जायँ । हमारा मौत भी अगर आये, और हमे बाध्य होकर 'मरना' भी पडे, तो हम कजा को भी धोखा दे सके और अन्ततोगत्वा फिर जी उठे, कब्र मे, सलीब पर, पुनर्जन्म के किनारे ।

एक दिन बात-बात मे मेरे एक घनिष्ठ मुस्लिम मित्र ने मुझसे कहा—अरे यार, तुम हिन्दू तो मरने के बाद वतन को छोडकर ऊपर आसमान मे फिर कही दूसरी

जगह जन्म लेने के लिए चले जाते हो और हम मुस्लिम तो कयामत तक यही इसी मातृभूमि की पाक मिट्टी के अन्दर कयाम करते है। चुनाचे, मरकर भी हम जिन्दा रह जाते है।

सेल्फ-प्रिजर्वेशन (आत्मसुरक्षा) की जो हमारी मूलप्रवृत्ति है, वह बडी प्रबल और कारगर है। इसके कई पहलू है। जैसे (क) भय, (ख) प्रजनन और (ग) भूख। भय के साथ चिन्ता लगी हुई है, ममता बँधी हुई है। मृत्यु का भय, हानि का भय, रोग का भय। हानि जान की, माल की, प्रतिष्ठा की, सुयश की, प्रभाव की, शक्ति-सामर्थ्य की, आबरू और इज्जत की। मृत्यु अपनी और अपनो की। 'भय' एक बहुत बडी नेयामत है, वह न हो, तो आये दिन काया मुसीबतो मे झोकाती रहे। 'भूख' शरीर के पोषण के लिए निहायत जरूरी है और कर्म-सन्धान या साधने के पीछे एक महती प्रेरणा है। कर्म के बिना काया टिक नही सकती। जैसे, पार्थिव जगत् के मिट जाने से दिक्+काल (स्पेस+टाइम) मिट जायगा। 'प्रजनन' से आदमी की हवस (हविस) मिटती है, जिन्दा रहने की—कम-से-कम तबतक, जबतक दुनिया-वाले रहें। हम अपनी औलाद मे जिन्दा रह जाते है, मिट्टी उठने के बाद भी। सृष्टि चलाने के लिए यह प्रकृति का ऐसा प्रतापी अकुश है, जिसने महादेव को भी हिला दिया था, मेनका को भी। पराशर को भी। जैमिनि को भी। ऐसा प्रचण्ड है इसका चाप कि आदमी बरबस सूकरी को अप्सरा के रूप मे देखने लगता है। उसकी आँखो पर पर्दा पड जाता है, बुद्धि काम नही करती, विवेक साथ नही देता। और वह कामुक प्राणी भ्रान्ति मे, माया मे, पडा बिना अपनी पिपासा पूरी किये रह नही पाता। उसका अपना वश नही चलता, वह बुरी तरह बाध्य हो जाता है। ऐसा मालूम पडता है कि प्रकृति सृष्टि को चलाते रहने पर तुली हुई है। प्राणियो से जब वह प्रजनन का पूरा-पूरा काम ले लेती है (पूरा-पूरा काम करा नही लेती, तबतक उसको चैन कहाँ ?) तब जैसे रस चूसकर गुठली को फेक देती है, और तभी बुढापा आने लगता है, मृत्यु झाँकने लगती है। 'आत्मसुरक्षा' (सेल्फ-प्रिजर्वेशन) की मूल-प्रकृति सब प्राणियो मे पायी जाती है, चाहे वह एककोषीय अमीबा हो अथवा मानव की असख्यकोषीय जटिल काया। आदमी के सन्दर्भ मे 'आत्मसुरक्षा' का अधिक व्यापक अर्थ लेना पडेगा और इसके लिये 'परसोनैलिटी-एरोजन', 'व्यक्तित्व का क्षरण' (अपरदन, क्षय, विनाश) जैसी शब्दावली (टर्म) का भी प्रयोग करना उचित होगा। 'भय' और 'प्रजनन' मे कौन अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली है, और किसमे आदमी की अधिक मजबूरी और लाचारी है और इन दोनो मूलप्रवृत्तियो मे कौन अधिक अप्रतिरोध्य और अकाट्य (कम्पेलिंग) है ? 'स्व-सुरक्षा' की प्रवृत्ति जिन्दगी-भर कायम रहती है, इसलिए 'भय' का साम्राज्य अधिक विस्तृत है। 'प्रजनन' की प्रवृत्ति सदा स्थायी नही रहती। सदा प्रत्यक्ष भी नही होती। फिर भी, सम्भोग एक विस्मृति है और वह इतना मादक है कि आदमी उसके पीछे अपनी जान भी दे देता है। यद्यपि वह जान देना चाहता नही। न प्राण के मोल उसे खरीदना चाहता है।

'सेक्स' के बिना जिन्दगी का कुछ भी बिगडता नही, लेकिन उस 'दिल्ली के लड्डू' को खाये बिना लोग रहते भी नही। और, समाज मे गौर करने से पता चलता है कि 'प्रजनन' की प्रवृत्ति का प्रभाव औरतो पर अधिक रहना है और 'स्व-सुरक्षा' की प्रवृत्ति का मर्दो पर।

सुख के साधन सबके लिए सतत (ऑलवेज) और सन्तत (एभरी ह्वेयर) उपलब्ध (एभेलेबल) रहते नही। फिर भी, सुख भोगने की प्रवृत्ति अनवरत सक्रिय रहती ही है और लोग सुख-सामग्री बटोरते ही रहते है। साडिस्ट (क्रूर-सम्भोगी), मेशोसिस्ट (पीडा-मैथुनी) इत्यादि भी यही करते है। सुखोपभोग मे बाधा क्रोध को पैदा करती है, क्रोध से मतिभ्रम होता है। मतिभ्रम से विनाश। मकान (आवास) (खोता) (नीड) बनाना, बैंक मे रुपये जमा करना, जमीन-जायदाद खरीदना, वाणिज्य-व्यवसाय मे लगना, यह सब 'सुख बटोरने' की ही किम्मे तो है। हॉ, ऐसा हो सकता है कि आदमी एक बडे सुख की खातिर, एक छोटे सुख को त्याग दे, फिर भी उसकी मूलप्रवृत्ति सुख भोगने की ओर ही उसे ढकेलेगी, उत्प्रेरित करेगी। कितने लोगो ने अपनी जान इसलिये दे दी कि उनका नाम अमर हो जाय। कितने लोगो नें अपनी प्रेयसी के प्रेम मे अपना सब कुछ गॅवा दिया। गॅवार से ज्ञानी तक, भोगी से योगी तक, भक्त से अलमस्त तक, कर्मठ से अलस्त तक, सभी सुख के पीछे दीवाने हे। लोग से लुगाई तक, खसम से हरजाई तक, सभी सुख की मरीचिका के पीछे मरे जा रहे है। चैन पाने के लिए बेचैन है। परमानन्द की प्राप्ति के लिए सासारिक सुख को तिलाजलि देना स्वजन-परिजनो को त्यागना, चाह छोडना, ममता छोडना, यह सब क्या यह नही बतलाता कि सुख की इच्छा कैसी मायाविनी है! कैसी सर्वग्राही और सत्यानाशी है।

नीद (निद्रा) भी एक स्वाभाविक आवश्यकता है। इसे भी एक मूलप्रवृत्ति माननी चाहिये। जो 'स्व-सुरक्षा'-प्रवृत्ति के अन्तर्गत भूख-प्यास की तरह, जीवन की एक जरूरी स्थिति है। फर्क इतना है कि इस प्रवृत्ति की पूर्त्ति या तुष्टि के लिए हमको बाहर से कुछ लेना-देना नही पडता। सिर्फ सो जाना पडता है। शरीर और मस्तिष्क दोनो की भलाई के लिए निद्रा काफी महत्त्वपूर्ण है।

आदमी किस परिस्थिति मे क्या कर बैठेगा या क्या करना चाहेगा, यह उसके अपने मूल स्वभाव और अपनी जिन्दगी के अनुभवो पर निर्भर है। उसकी शिक्षा पर भी। उसके कल्चर (सस्कृति) पर। उसके ऐतिहासिक-भौगोलिक परिवेश तथा परम्परागत प्रभावो पर। 'स्वभाव' आदमी के निजी 'मस्तिष्क' पर और 'मस्तिष्क' जीवाणुओ (जीन्स) पर आधृत है, पर जिन्दगी के अनुभव उस (स्वभाव) मे अनेक रग भर देते है और आदमी का मानस स्मृतियो का भाण्डार बन जाता है, जो दिशाये निर्धारित करने लगती हैं, मस्तिष्क के झुकाव और प्रवाह के लिये, आदत और सस्कार के लिये। स्मृतियॉ कण्डिशण्ड रिफ्लेक्सो (सोपाधि प्रतिवर्त्त) की पृष्ठभूमि बन जाती है। और इन्सान की प्रतिक्रियाये अधिकाश मे (या करीब-करीब सर्वाश मे ?) (अधिकतर)

सोपाधि प्रतिवर्त्तो (कण्डिशण्ड रिफ्लेक्सो) के समूह का आवरण ओढकर जीवन मे—आचार-विचार मे—व्यक्त होती रहती है। सोपाधि प्रतिवर्त्त (कण्डिशण्ड रिफ्लेक्स) की छाप इतनी सूक्ष्म और गहरी पडती है कि कभी उसका पता चलता है और कभी वह एक विवादास्पद (कण्ट्रोवर्शियल) विषय (विचार-वस्तु) (इशू, प्वॉयण्ट) बनकर रह जाता है। मजा तो यह है, और यही समस्या भी कि आदमी को अपनी याददाश्तो का पता खुद नही होता। वह स्वय अपने मानस की शक्तियो से अनभिज्ञ रहता है। वह अपने ही को नही जानता और उसे इसी का पता नही होता कि वह क्यो वैसा करता है, जैसा कि वह करता-सा दीखता है, अपनी और दूसरो की आँखो मे। एक उदाहरण देता हूँ। समाज मे किसी भी तबके, व्यवसाय अथवा पेशा या पार्टी (दल), मण्डली, के आदमी को यह हक (प्राधिकार, विशेषाधिकार) (प्रिभिलेज) हो सकता है कि वह व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से अपनी माँगे (डिमाण्ड्स) अपनी सरकार (गवर्नमेण्ट, सत्तारूढ व्यवस्था) के सामने (समक्ष) पेश करे (रखे)। माँगे वाजिब (जायज) भी हो सकती ह। लेकिन, उनके औचित्य और अनौचित्य की बात अपनी जगह पर है। ऐसा हो सकता है कि किमी कारणवश (जैसे, आर्थिक सकटावस्था) सरकार उन माँगो को पूरी नही कर सकती हो। अब अगर ऐसी परिस्थितियो मे अपनी माँगो के लिये नारे लगाता जुलूम यकायक हिसात्मक (भायोलेण्ट) बन जाय, तो उसका कारण यह भी हो सकता है कि 'जुलूस' का वह अनुभव (तजुर्बा) पर आधृत मात्र एक कण्डिशण्ड-रिफ्लेक्स हो। 'जुलूस' के 'माइण्ड' (सामूहिक) को पता हो कि हिसा का रास्ता अपनाने की बदौलत ही माँगे पूरी हुआ करती हैं। और, सरकार को घुटने टिकवाने और धूल चटवाने के लिए यह अमोघ शस्त्र है। इस 'अचूक' तरीके का पूर्व-अर्जित ज्ञान एक कण्डिशण्ड-रिफ्लेक्स के रूप मे नारे लगाते, प्रदर्शन करते 'जुलूस' को ऐन मौके पर (परिस्थिति की किसी खास साइकोलॉजिकल मोमेण्ट पर, मनोवैज्ञानिक परिवेश मे) स्वत हिंस्रक बनाकर छोडेगा। चाहे उस जुलूस मे शामिल 'व्यक्ति' और 'नेता' स्वय पूर्णरूपेण अहिंस्रक या भीरु भी क्यो न हो। लेकिन, यह कोई बडे आश्चर्य की बात नही है। क्योकि, हम अपने अन्य अवयवो के कार्यो और उनके सम्पादन (प्रणालियो) के बारे मे भी वैसे ही अनभिज्ञ हैं। उदाहरणार्थ, हमे यह नही पता कि हमारा हृदय क्यो और कैसे काम करता है, हमारी अँतडियाँ, हमारा लिवर (जिगर, यकृत्), हमारी आँखे, हमारे कान, हमारा मेरुदण्ड, हमारी किड्नी (गुरदा, वृक्क) इत्यादि कैसे, क्यो और क्या करते रहते है।

फर्क इतना ही है कि मस्तिष्क के कुछ कारनामे प्रत्यक्ष हो जाते है—हमारी हरकतो के माध्यम से (या उनके द्वारा)—दूसरो के लिये भी। और, हमारे अन्य अवयवो की करतूते बहुत कुछ परोक्ष मे चलती रहती है, जिससे दूसरो को कोई खास मतलब नही होता। जैसे, अन्य अवयवो की सरचना (एनाटॉमी) तथा क्रिया (फिजियोलॉजी) से सम्बद्ध ज्ञान मेडिकल साइन्स (आयुर्वेदीय विज्ञान) के द्वारा उपलब्ध हो सकता है, वैसे ही मानस के मुतल्लिक (बारे मे) भी आदमी बहुत-कुछ (लेकिन, सब

कुछ नही) आयुर्वेदीय विज्ञान, मनोविज्ञान (सिगमण्ड फ्रॉयड, पैवलव, इवान पेट्रोविच), साइकोएनालिसिस (मनोविश्लेषण) तथा योग-(शास्त्र)-विज्ञान (पतजलि) और उपनिषदो की मदद से जान सका है और जान सकता है ।

मानव का मानसिक स्तर कितना निगूढ, रहस्यमय और सूक्ष्म है इसका एक उदाहरण देता हूँ हमारी इन्द्रियाँ जो अनुभव करती है, उसका अर्थ हमारा मानस क्या लगाता है, हम जो पढते है, ज्ञानोपार्जन करते है, उसका अभिप्राय (सिगनिफिकेन्स) और महत्त्व (इम्पोर्टेन्स) हमारे मानस (व्यक्तित्व) के लिए क्या (निर्धारित) होता हे, यह सब भी हमारे कल्चर (सस्कृति), हमारे लालन-पालन (शैशवावस्था के अनुभव) और हमारे कण्डिशण्ड-रिफ्लेक्स (जो हम अपने जीवन-काल मे उपार्जित करते हे, 'सीखते' है) पर मनहसर (आधृत) (अतिरजित) हो सकता है। हमारी अभिव्यक्ति (हमारा रुख, ट्रेण्ड, एक्सप्रेशन) का ढग-कुढग (वेज, प्रोपर या इम्प्रोपर) (अच्छा या बुरा तरीका) भी हमारे 'व्यक्तित्व' की बनावट (प्रधानत मनोवैज्ञानिक) पर ही आश्रित (निर्भर) हे।

हमारी मूलप्रवृतियाँ (इस्टिक्ट्स) भी हमारे लिये बडी आवश्यक, महत्त्वपूर्ण और उपादेय है, जैसे 'भय' और भय से सम्बद्ध 'चिन्ता'। अगर 'भय' नही हो, तो आदमी अपने को खतरे मे डालता रहेगा और विनष्ट हो जायगा। भविष्य की 'चिन्ता' न हो, तो अपनी महत्त्वाकाक्षा (अभीप्सा) की पूर्त्ति के लिए भी शायद तकलीफ उठाकर यथासम्भव प्रयास नही करेगा। आजकल की प्रतियोगी, प्रतिद्वन्द्वी ओर स्पर्द्धी दुनिया मे, जहाँ पारिवारिक सम्बन्ध बिखरते-टूटते जा रहे है, जहाँ एक अवैयक्तिक (इमपरसनल) यन्त्र-(मशीन)-वत् समाज मे इन्सान अपने को बिलकुल अकेला और आश्रयरहित पाता है (महसूस करता है), वह दुश्चिन्ताओ से घिरा, पनाह माँगता, जिन्दगी को येन केन प्रकारेण ढोता, घसीटता, चला जा रहा है। दुर्वह भार मे लदा। अगर ऐसे मे उसकी मन स्थिति बिगडकर चकनाचूर हो जाती है, तो उसमे क्या आश्चर्य है। 'भय' और 'चिन्ता' की भी एक हद होती है, जो आदमी की भलाई कर सकती है। 'बेहद' या 'हद के बाहर' जाकर वह आदमी को बीमार (साइको-सोमॅटिक इलनेसेज) (मन कायिक, मनोदैहिक) या विक्षिप्त (पागल) (भीति, फोबिया, उन्माद, मैनिया, अवसाद, डिप्रेसन, परिक्लान्ति, एग्ज्हॉसन, सिजोफ्रेनिया, विखण्डितता इत्यादि) बना देता है। ऐसा प्रतीत होता हे कि यह दुनिया अब दो ही तरह के लोगो के लिये (लायक) रह जायगी। चाहे तो उनलोगो के लिये, जिनमे कोई महत्त्वाकाक्षा (उच्चाकाक्षा), तृष्णा, लालसा अथवा चाह नही रह गयी हो और जो 'समय' के प्रवाह मे बहते रहने (बह जाने) के लिये (टिप्पणी तैरने के लिये नही) तैयार हो, अथवा उन लोगो के लिये जो 'प्रवीण', 'क्षमतावान्', 'समर्थ' और 'योग्य' हो, ओर जो प्रतिकूल परिस्थिति के खुले डैनो पर उडते रह सकने की कला जानते हो। परिस्थिति की 'प्रतिकूलता' जबतक कायम रहेगी, तबतक तो सब ठीक रहेगे, वर्ना सघर्ष निश्चित है। ऐसे माहौल मे उद्देश्य-विहीनता, जीवन की निरर्थकता और अपनेपन के अनिश्चित बोध (भाव) के कारण आदमी अपने लिये कोई दिशा निर्धारित नही कर पाता और

ससार मे अपनी जगह (स्थान) नही बना पाता। स्ट्रेस (दबाव, तगहाली) (प्रतिबल) एव स्ट्रेन (तनाव, भार) का असर (प्रभाव) भ्रूणावस्था से ही पडने लगता है। विश्व-युद्ध के समय जो गर्भवती माताएँ हवाई हमलो के बीच विचलित नही हुई और अनुद्विग्न तथा शान्त रही, उनके बच्चे शान्त प्रकृति के हुए। और, जो भयाक्रान्त होती रही, उनके शिशु भयातुर देखे गये। 'भय' अनुकलन (एडैप्टेशन) के लिए जीवन मे एक सार्थक प्रवृत्ति भी हो सकता है। अन्यथा, भय का बाहुल्य आदमी को बरबाद भी कर सकता है। यह सक्रामक (कनटेजियस) भी हो सकता है। और, भय का विषय (आब्जेक्ट) अपने सदृश, समान या समरूप वस्तु-स्थिति मे भी 'डर' को समाविष्ट कर सकता है। (स्टीमुलस जेनेरलाइजेशन थ्योरी) अर्थात् भय का जो कारण है, उसके जैसा, सदृश, दीखनेवाली वस्तु से भी आदमी को भय लगने लगता हे। कभी-कभी भय को दबाकर विवेक आगे आता है,— जैसे लडाई के मैदान मे। कभी 'भय' का सहारा लेकर माँ-बाप, शिक्षक, समाज इत्यादि बच्चो को 'सभ्य' नागरिक बनाते है। बडे-बूढो को भी 'सभ्यता' का पाठ पढाया जाता है, भय दिखलाकर।

ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आ सकती है, जिनसे 'डर' लगे। अनागत 'भय' से डरना बेमानी हो सकता है। 'भय' के उपस्थित हो जाने पर भी मानसिक सन्तुलन रख पाना और साहस (हिम्मत) बनाये रखना बहादुरी है।

'साहस' की बात बडी मार्मिक है। यह एक इतनी सूक्ष्म और जटिल प्रक्रिया (प्रतिक्रिया) है, जो मनोवैज्ञानिको की पैठ के परे रह गयी है। 'साहस' उनकी समझ मे अभी तक नही आ सका है। पतले-दुबले निरीह-से व्यक्ति भी साहसी हो सकते है और मोटे-ताजे बलिष्ठ आदमी भी डरपोक। और, जो आदमी किसी खास परिस्थिति मे अपार साहस बटोर ले सकता है, वही किसी दूसरी परिस्थिति मे बुरी तरह भयभीत भी हो जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'साहस' के लिये कोई खास मनोवैज्ञानिक नियम-कानून नही है। वह किसके लिये, किस परिस्थिति मे, कैसे आ खडा होता है, यह एक रहस्य है। आदमी की समझ के परे। 'भव-भय-हारी करुणासागर' का कौन-सा विधान 'साहस' को यथासमय कैसे उत्पन्न कर जाता है, यह (मनो-)वैज्ञानिको की पकड मे अभी तक नही आ सका है।

अतीन्द्रिय ज्ञान या बोध (ई० एस० पी०—एक्स्ट्रासेन्सरी परसेप्सन)।

ज्ञान या बोध के अधिग्रहण के वे साधन (माध्यम, सूत्र), जो विवेचना अथवा व्याख्या के कायिक (भौतिक) सिद्धान्तो से परे है (दि ऐक्वीजिसन ऑव नॉलेज बाइ मीन्स ह्विच आर बियोण्ड फिजिकल प्रिंसिपुल्स ऑव एक्सप्लेनेशन)। यह (ई० एस० पी०) मानस (माइण्ड) के शोध (अनुसन्धान) के लिये सुपरिचित (ज्ञात, सुख्यात) परा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत (सम्बद्ध) है। ई० एस० पी० बिलौंग्स टू ए फील्ड ऑव रिसर्च इनटू दि माइण्ड नोन ऐज पारासाइकोलॉजी)।

परोक्षदर्शन (क्लैयरभौएन्स) (बिना इन्द्रियो के उपयोग के वस्तु अथवा घटना का

बोध), नॉलेज एक्वायर्ड ऑव एन आब्जेक्ट ऑर इवेण्ट विदाउट दि यूज ऑव दि सेन्सेज)। दूरसवेदी (टैलिपैथी)—बिना किसी सीधे कायिक (भौतिक) सम्प्रेषण (माध्यम) सम्पर्क के दूसरो के विचारो का ज्ञान (बोध) (ए परसन्स अवेयरनेस ऑव अनादर्स थॉट्स विदाउट देअर बीइग एनी डाइरेक्ट फिजिकल कम्युनिकेशन बिट्वीन देम), भविष्याभिज्ञान, पूर्व-परिज्ञान (प्री-रिकॉग्नीशन) (भविष्य की घटनाओ को कहने की योग्यता या सामर्थ्य) (दि एबिलिटी टू फोरसी फ्यूचर इवेण्ट्स)। ई० एस० पी० की घटना अचेतन के स्तर पर कार्यकारी होती है, प्रातिभ अथवा प्रवीण (पटु, कुशल, दक्ष) व्यक्तियो का इसपर सजग नियन्त्रण नही रहता) (दि फेनोमेनन ऑव ई० एस० पी० ऑपरेट्स ऑन ऐन अनकान्सस लेभल, दि परसन हू पजेसेज दि गिफ्ट ऑर स्किल हैज नो कानसस कण्ट्रोल ओवर इट) (वैसी ही दक्षतावाले योगी, जो अपनी इच्छा के अनुसार नियन्त्रण रख सकते है और अपनी ही इच्छा से सजगतापूर्वक प्रस्तुत भी कर सकते है, के साथ ऐसी बात नही) (कण्ट्रास्ट दि योगी हू क्लैम सिमिलर स्किल्स ह्विच दे कैन भोल्यनटैरिली कण्ट्रोल ऐण्ड समन कानससली ऐट देअर स्वीट विल)।

कुछ सुख्यात मनोविज्ञानविद्, जैसे Sir Cyril Burt (स्वर्गीय) और H J Eysenck और J B Rhine, ई० एस० पी० (अतीन्द्रिय बोध) (एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्सन) को प्रमाणित (सिद्ध) मानते है। इगलैण्ड मे, सन् १८८२ ई० मे स्थापित 'दि सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च' और अमेरिका मे मन अनुसन्धान के लिए सन् १८८५ ई० मे स्थापित 'अमेरिकन सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च' ने ई० एस० पी० की घटनाओ की अनेकश खोज-पकड की है। अमेरिकी लेखक Upton Sinclair की पत्नी का ई० एस० पी० से सम्पन्न होना सही और वास्तविक सिद्ध हुआ।

'जीवन के लिए सघर्ष' का सिद्धान्त टॉमस राबर्ट मालथुस (सन् १७६६–१८३४ ई०) ने ईजाद किया था, जिसे डारविन ने मान लिया। वह बच्चा था मालथुस का, लेकिन डारविन के यहाँ वह पलने-पोसाने लगा। (मालथुस एक अँगरेज पादरी थे, जिन्होने सन् १७९८ ई० मे अपनी पुस्तक, 'ऐन एसे ऑन दि प्रिंसिपुल ऑव पोपुलेशन' प्रकाशित किया था)।

जैसा पहले कहा जा चुका है, रोटी हो एक और कुत्ते हो सात, तो आपस मे सघर्ष अवश्यम्भावी है ही।

डारविन ने यह भी कहा कि ऐसे सघर्ष के बीच जो प्राणी उचित विभूतियो से सुसज्जित रहेगा, जो अधिक बलवान् और 'सुयोग्य' होगा, वह जिन्दा रह पायगा। और अपने वश मे, औलाद मे उन आवश्यक वशागत गुणो का प्रजनन के द्वारा प्रसार (प्रचार) कर सकेगा और उन्हे जीवित रख पायगा। इस सिद्धान्त को डारविन ने 'सरभाइभल ऑव दि फिटेस्ट' (= 'वीरभोग्या वसुन्धरा') कहा। जो जितना अधिक फिट (अनुरूप, वातावरण के, 'योग्य' और 'तन्दुरुस्त') होगा, उसमे उतनी ही अधिक टिके रहने, बने रहने, जिन्दा रह पाने की क्षमता होगी। वह और उसके वश बढते

जायेंगे, दूसरे घटते जायेंगे। एक की उन्नति दूसरे की अवनति का कारण होगी। 'बलवान्' 'निर्बल' को खा-पका जायगा। (तु० आदिम जातियाँ)।

डारविन ने एक और बात कही। 'नेचुरल सेलेक्शन' के प्रक्रम (की प्रक्रिया) (प्रोसेस) मे 'नये गुणो' (ट्रेट्स) का प्रकट होना, उनका आविर्भाव, अनिवार्य है। नित्य नव गुणो की विविधता प्राप्त, उपलब्ध, न हो, तो किसका 'चयन' होगा? इसलिये यह निहायत जरूरी है कि किसी भी स्पीशीज के विभिन्न सदस्यो मे कुछ-न-कुछ फर्क उपस्थित हो। जब 'गुणो' की भिन्नता रहेगी, तभी न 'नेचुरल सेलेक्शन' की प्रणाली कारगर होगी? वर्ना कौन-से 'गुण' का नैसर्गिक वरण (नेचुरल सेलेक्शन होगा) और कौन-से गुणो की छँटाई होगी?

डारविन के पहले मान्यता यह थी कि सभी स्पीशीज सदा निश्चित और अटल और अपरिवर्त्तनीय है, (अपनी? सृष्टि के) प्रारम्भ से ही वे अपने नियत गुणो और अपनी निश्चित, अटल आकृति मे बराबर आबद्ध रहते आ रहे थे। और, उनमे फेर-बदल होने की कोई बात ही नही थी। कि सृष्टि के प्रारम्भ मे जितने प्रकार के प्राणी बनाये गये थे, बस वे ही स्पीशीज जस-की-तस वश बढाती-घटाती चली आ रही थी। डारविन इस 'गलतफहमी' से क्यो कर सहमत हो सकते थे? डारविन तथा वैलेस ने इस विचार का विरोध किया। इस विचार-विश्वास का तारतम्य 'नैसर्गिक वरण' (नेचुरल सेलेक्शन) के सिद्धान्त से जो नही बैठ रहा था।

स्पीशीज की व्याख्या अन्तराभिजनन (इण्टर-ब्रीडिग) की शक्यता, सम्भवता, सम्भावना, पर आधृत है।

विरोधी नस्ल के प्राणी जिनके बीच अन्तराभिजनन (इण्टर-ब्रीडिग) सम्भव नही है, वे 'एक ही स्पीशीज' के नही माने जाते।

विभिन्न स्पीशीज अपनी अनेकता (विविधता, नानारूपता, असमानता, असदृशता) को हजारो-लाखो-करोडो वर्षों से बचाती चली आयी है, उसका कारण यही है कि उनके बीच अन्तराभिजनन कतई सम्भव न था, वर्ना उनकी अनेकता कब की घुल-मिल कर गण्डगोल हो गयी होती। सृष्टि मे सब पेड-पौधे, पशु-पक्षी एक ही नस्ल (रूपाकार) के होते और सृष्टि (प्रकृति) की विरसता (नीरसता) सिवाय एक ऊब (मोनोटोनी) के और क्या रह जाती?

कुछ बात थी कि स्पीशीज की हस्तियाँ मिट नही पायी। दो भिन्न नस्लो के बीच कोई ऐसा विलक्षण और रहस्यमय (गूढ) व्यवधान (अवरोध) है, कोई ऐसी नाकाकशी है, कोई ऐसी परिधि (परिध), ऐसी 'लक्ष्मण-रेखा' है, जिसे दिक्काल तोड नही सका और जिसे लाँघकर, पार कर, किसी भी दो भिन्न नस्लो के प्राणी मिलकर (जुटकर) न सम्भोग कर सके, न बच्चे जन सके। (तु० घोडा-गदहा-खच्चर, बाघ-सिह, कुत्ता-बिल्ली, पण्डुक-कबूतर, हारियल, मोलाटो, गाय-भैस, हरी-क्रान्ति, बरवैंक का कण्टक-विहीन कैक्टस, पोटैटो+टोमैटो=पोमैटो, उल्फ-डॉग, 'टेस्ट-ट्यूब बेबीज', भाइरसेज इत्यादि-इत्यादि) (ट्रिटिकेल=डरम ह्वीट+राइ)।

डारविन इसके लिये भी विश्वस्त थे कि असामान्य रूप से बदलते हुए परिवेश का प्रभाव इतना गहरा पड सकता है कि नैसर्गिक वरण' (नेचुरल सेलेक्शन) के द्वारा मौके-बेमौके, यथाक्रम, यथासमय, कालान्तर मे, नये-नये स्पीशीज भी पैदा हो जायँ। (ऐसा तो होना ही था, नही तो डारविन ने सृष्टि-विकास की जो कल्पना की थी, वह कैसे घट पाती।)

स्तरित शैल (स्ट्रैटिफायड रॉक) के फॉसिल (जीवाश्म), जीवाश्म-अश (कण्टेण्ट), तथा अवशेष (रिमेन्स), और जीवाश्मी वशावली (फॉसिल पेडिग्री) के सम्बन्ध मे बैरन कुभियर (सन् 1767—1832 ई०) ने अपनी एक राय पेश की। कुभियर ने कहा कि पृथ्वी कई आपाती भयकर (कैटैस्ट्रोफिक) उथल-पुथल (कायापलट) (अपहीभल) से गुजरती रही (गुजरा की) है। और, जब कभी ऐसे प्रलयकारी दृश्य उपस्थित हुए है, तब धरातल के सब जीव-जन्तु, पेड-पौधे एक साथ मर-मिटकर रसातल मे चले गये है, उनकी सारी जातियाँ विलुप्त हो गयी है। और, इस स्रैष्टिक 'महानिशा' के बाद एक बिलकुल नयी सृष्टि, नये जीव-जन्तु नये पेड-पौधे, किसी करामाती (चामत्कारिक) स्वत प्रवर्त्तित (स्पौण्टेनियस) प्रक्रिया से स्वय उत्पन्न, (उद्भूत) हो गये है।

सन् 1816 ई० मे जे० बी० द'लामार्क (सन् 1744—1829 ई०) ने अपनी 'फिलासॉफी जूओलॉजिक' मे सुझाया कि बदलते हुए वातावरण के साथ अपनी अनुकूलनीयता स्थापित करने के अथक प्रयास मे कालान्तर मे युगो के बाद साधारण, मामूली-से, जीव अपना (स्पीशीज-रूपान्तरण) रूपान्तर कर बडे जटिल (काम्पलेक्स) बन जा सकते है। लामार्क ने भी स्वत सर्जन की बात उठायी। और यह भी कहा कि पुरखो के (उनके जीवन-काल मे) उपार्जित गुण वशानुक्रम मे उनकी सन्तति (सन्तान) को 'विरासत' मे प्राप्त हो सकते है। तात्पर्य यह कि 'उपार्जित' (ऐक्वायर्ड) (वशानुगत नही) गुण भी अपनी जनक-जननी से बच्चे रिक्थ रूप मे (वशागत लक्षणो के रूप मे) ग्रहण कर सकते है (पा सकते है)।

उपार्जित लक्षणो की वशागति के सिद्धान्त ने लामार्क को बदनाम कर दिया, क्योकि वह वैज्ञानिक कसौटी पर खरा नही उतरा। अगर लामार्क का सिद्धान्त ठीक होता, तो चोर का बेटा जन्म से ही चोर होगा और किसी तैराक की बेटी की मासपेशियाँ जन्म से ही बलिष्ठ (होती)। यह 'इनहैरिटेन्स ऑव दि एफेक्ट्स ऑव यूज-ऐण्ड डिसयूज' का सिद्धान्त समयानुक्रम मे लुप्त होता गया।

ऐसा ही कुछ हाल आस्ट्रिया के पाल कैमरर का भी हुआ, जिनकी जान मिडवाइफ टोड (एलिटीज, Alytes) की बदौलत गयी, और रूस के आई० डब्ल्यू० मिचुरिन तथा टी० डी० लाइसेको की भी, जो अपने सिद्धान्त के पक्ष मे प्रचुर सबूत न पेश कर सके।

और, इसी तरह ई० बी० टेलर तथा एल० टी० हॉबहाउस के सिद्धान्त कि सामाजिक तथा सास्कृतिक गुण भी वशानुगत हो सकते है, हवा मे उड गये है।

भौगोलिक तथा वातावरण मे परिवर्त्तन का प्रभाव विभिन्न प्राणियो के स्पीशीज

को बदलता (रूपान्तरित करता) रहा है—कही बहुत धीमी रफ्तार से, (तु० कीडे-मकोडे), कही कुछ तेजी मे (तु० बैक्टीरिया) ।

डारविन ने वशानुगति की बात तो कही थी, लेकिन उनके पास कोई ऐसा उपयुक्त सीधा सिद्धान्त नही था, जिससे वह यह बतला पाते कि वशानुगत 'गुण' माँ-बाप से वेटे-बेटियो को किस प्रकार (कैसे) मिलता है। यह बात ग्रीगर मेण्डल (सन् 1822—1884 ई०) के अनुसन्धानो द्वारा तथा ई० बी० विलसन (सन् 1856—1939 ई०) के प्रयास से पीछे चलकर स्पष्ट हुई। विलसन ने क्रोमोसोम्स (गुण-सूची, पित्र्यसूत्र) का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, डब्ल्यू जोहानसेन ने जीन्स (जीवाणु, पित्रैक) का म्युटेशन (उत्परिवर्त्तन) (युग्मकी उत्परिवर्त्तन, गैमेटिक म्युटेशन, जीवाणु उत्परिवर्त्तन, जीन म्युटेशन) के सिद्धान्त ने भी मान्यता प्राप्त की। अब यह पता चला है कि उत्परिवर्त्तन (म्युटेशन) डी० एन० ए० (डेस्ऑक्सी-राइबोन्यु-क्लिक एसिड) के द्वारा कोषो (सेल्स) के प्रोटीन की सरचना मे हेर-फेर से सम्भूत होता है। जानवरो तथा पौधो मे जो प्रोटीन पाये जाते है, वे करीब २० (बीस) विभिन्न एमीनो-एसिड्स के बने हुए है। इन एमीनो-एसिड्स के विभिन्न विशिष्ट सयोजन (सँजोना) (एरजमेण्ट) के द्वारा प्रोटीन की पक्तिबद्धता मे वर्गीकरण हो पाता है और एमीनो-एसिड्स के इसी क्रम-विन्यास के द्वारा स्पीशीज (प्राणी) अपना रूप-गुण प्राप्त करते है। गुणसूची (पित्र्यसूत्र) (क्रोमोसोम्स) डी० एन० ए० के दोहरा (युग्म, उभय) लड (लडी) (स्ट्रैण्ड) से बनता है। यह सर्पिलाकार (कुण्डलित) होता है। इसकी खास शिफत यह है कि यह अपने को दो भागो मे बाँटकर (विभक्त होकर) ठीक अपने मूल रूप का दूजा स्वरूप (प्रतिरूप) बना सकता है। इसी गुणसूत्री के 'धागो' (लटो, लडियो) पर जीवाणु (जीन्स) ऐसे गुँथे (सजे) ('टँके') रहते है, जैसे माला के मोती। (अथवा माला, क्रोमोसोम्स, के ही नन्हे टुकडे)। शायद प्रत्येक 'जीवाणु 'एक खास तरह का प्रोटीन बना सकता है। यही वशानुगतता, म्युटेशन आदि की कुजी है, जो सृष्टि का द्वार खोलती है। डी० एन० ए० का यह विलक्षण गुण उसे कब, कहाँ और किससे प्राप्त हुआ, यह एक टेढा सवाल है जिसका जवाब सीधा है। कोषो मे जैसे प्रोटीन रहते है, वैसा ही स्पीशीज का गुण होता है। प्रोटीन (एमीनो-एसिड्स) बायोकेमिकल रिऐक्शन्स तथा स्ट्रक्चरल डेवलपमेण्ट मे प्रधान भाग लेता है। और, प्राणवन्त कोषो मे वह रेट ऑव केमिकल रिऐक्शन्स को कण्ट्रोल करता है।

दि स्पेसिफिक सीक्वेन्स ऑव ईच एमीनो एसिड चेन (प्रोटीन) इज नोन टू बी रिप्रेजेण्टेड ऐज ए कोड इन दि डी० एन० ए०।

म्युटेशन कम्स एबाउट बाइ अलटरेशन ऑव दि स्ट्रक्चर ऑव दि डी० एन० ए०, ऐण्ड ए रिजलटिंग चेंज इन दि कोड फॉर दि फॉरमेशन ऑव ए प्रोटीन।

'जीन'—'गुणो' तथा 'अवयवो' का बीज-रूप, स्पार्क, प्रेरक तथा स्थापक प्रोटीन (एमीनो-एसिड) है।

डारविन के सिद्धान्त की सत्यता अभी अन्तिम रूप से, सदा के लिए (अन्तत , अन्ततोगत्वा, पूर्णत) सिद्ध, प्रमाणित और स्थापित नही हुई है।

मानव-जाति के पूर्वज (पुरखा, पूर्वपुरुष) कौन थे, यह बात अभी तक विवादास्पद है। टी० एच० हक्सले (सन् 1825— 1895 ई०) तथा बिशॉप विलबरफोर्स के वाद-विवाद, 'शास्त्रार्थ' के बाद (सन् 1860 ई०) (ऑक्सफोर्ड) यह बात कुछ जँचने-सी लगी कि हो-न-हो, मानव-जाति (के पूर्वजो) और बन्दरो के पूर्वजो मे कोई आपसी (?) निकट सम्बन्ध रहा हो। हक्सले ने बतलाया कि आदमी की ककाल (अस्थि)-सरचना और कपि (एप) (पुच्छहीन बानर। जैसे गोरिल्ला, चिम्पैजी, गिबन्स आदि) के अस्थि-पजर की बनावट मे कुछ ऐसी समानता है, जो कपि की ठठरी और बन्दर की हड्डियो के बीच भी नही है। यही बात उन प्राणियो के मस्तिष्क की बनावट के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। इन कारणो से यह पता चलता है कि कपि और मनुष्य के पूर्वज शायद सम्बद्ध रहे हो, सृष्टि की शृ खला मे। नियर भूत-काल मे।

डारविन और हक्सले ने जब आदमी को वानर का वशज कहा, तब उनका मतलब कदापि यह नही था कि कोई आदमी किसी वानर की औलाद (सन्तान) (अपत्य, वशज, सन्तति, अन्वय) हो सकता है, कि आदमी का बाप बन्दर था और आदमी उसका बेटा।

उनलोगो ने कहा कुछ और, पतले कान के आदमियो ने सुना कुछ और। और, अर्थ-का-अनर्थ हो गया।

उन वैज्ञानिको के कहने का अभिप्राय (मतलब) यह था कि १० लाख वर्ष पहले (या शायद उससे भी अधिक काल पूर्व) प्राणियो की एक या कई ऐसी जातियाँ (स्पीशीज) थी, जिनकी शक्ल आजकल के आदमियो से बहुत-कुछ मिलती-जुलती थी। पूर्वी अफ्रिका की बाशिन्दा (वासी) उस स्पीशीज (के प्राणी) को 'जिनजान-थ्रोपस' या 'नियर-मेन' कहते है। वह भौमिकी (भूवैज्ञानिक) युग, प्लिस्टोसीन (अत्यन्त नूतन युग) एपाक (सीनोजोइक महाकल्प) मे इस धरातल पर रहता था। उस वश की अनेक शाखाये जनमती और विकसित होती गयी और कई विभिन्न स्पीशीज मे बँटती चली गयी। उसकी एक शाखा से ओराग-उटान, दूसरी से गोरिल्ला, तीसरी से चिम्पैजी का जन्म हुआ। उसकी चौथी शाखा से केनियापिथेकस विकेरी, रामापिथेकस पजाबिकस, ऑम्ट्रालोपिथेकस, अफ्रिकानस, होमो नियानडरथैलिस इत्यादि पैदा हुए। और, उसकी इसी चौथी शाखा मे कही पर २० लाख साल के भीतर और १० हजार साल पहले 'मानव'-जाति का प्रादुर्भाव हुआ ! यही जाति आजकल 'होमो सेपियन्स' (मॉडर्न मैन) के नाम से विख्यात है। इस सिद्धान्त मे कही कोई कुटिल सकेत (इनसिनुएशन) नही है कि आदमी का बाप (पूर्वज) बन्दर, वानर या कपि था। पता नही, इस सीमियन (नरवानर, वनमानुष) स्टॉक (कुल, परिवार, नस्ल) की कितनी शाखाये, प्रशाखायें (उस 'कॉमन ऐन्सेस्ट्रल स्पीशीज' से प्रस्फुटित) हुई होगी। पता नही, वे किस भाँति विकसित हुई होगी। पता नही, कब ओर किस शाख पर मानव-शिशु जनमा

होगा । पचास लाख साल का समय कोई कम होता है ? पृथ्वी का भू-तल कोई कम विस्तृत है ? सृष्टि की शृ खला, उसके तरीके और उसका विधान कोई ऐसा-वैसा गूढ और जटिल है !

सृष्टि-विकास-सम्बन्धी इन सिद्धान्तो (धारणाओ) मे कोई ऐसी बात सन्निहित नही है, जिससे परमात्मा के अस्तित्व पर आँच आये । 'नैसर्गिक वरण' (नेचुरल सेलेक्शन) परमात्मा-प्रदत्त एक प्राकृतिक उन्नायक विधान हो सकता है, जो सृष्टि के विकास की पृष्ठभूमि मे काम कर रहा हो । यह विधान दुर्धार्य और जटिल हो सकता है । अन्य दूसरे विधान भी शायद कार्यरत होगे, जिनका अन्वेषण अभी तक सम्भव नही हो सका हो । काल अनन्त है, पृथ्वी विस्तृत है, करोडो वर्ष के अन्तराल की बात है । पता नही, कितनी बार भूकम्प आये, ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ, सृष्टि बनी-बिगडी, पृथ्वी पर भयकर उलट-फेर हुए, प्रलय और कयामत के दिन आये-गये, इतिहास उलटा-पलटा-सुलटा, भौगोलिक नक्काशे (नक्शे) धरातल पर नये सिरे से नक्श हुए, पहाड समुद्र बन गया और उदधि पर्वत, जमीन के स्तरो मे फेर-बदल, अदला-बदली, हुई, नदियाँ खीची गयी और मिटा दी गयी । कौन जाने, 'मानव' कब आया, कहाँ जनमा, कैसे विकसित हुआ ! डारविन के विचार सिद्धान्त-रूप मे उपलब्ध हे । प्राकृतिक विधान का पता उस वैज्ञानिक ने लगाया था । इतना ही भर उसका कसूर था ।

'क्यो तीरगीये वक्त खफा हम से हुई है,
एक शम्मआ जलाने की खता हमसे हुई है ।' (वफा मलिकपुरी)

जहाँतक 'मानव' की उत्पत्ति का सवाल है, डारविन के सिद्धान्त, उसे ठीक तरह से समझा नही पाते, स्पष्ट नही कर पाते । उन सिद्धान्तो मे अनेक त्रुटियाँ रह गयी है, जो प्रत्यक्ष झलक जाती है ।

पहली बात तो यह है कि यह सिद्धान्त मूलत निम्न श्रेणी के जीव-जन्तु और पेड-पौधों के परीक्षण और उनके वातावरण के अध्ययन पर आधृत है । दूसरी बात यह है कि बहुत सारे सबूत फॉसिल्स (जीवाश्म) और भौमिकीय 'स्तरो' की बनावट पर आधृत है । फॉसिल्स भी अधिकतर खण्डित, आशिक और अपूर्ण थे । और, 'स्तरो' (जियोलॉजिकल स्ट्राटा) के काल-निर्धारण का भी कोई सुस्पष्ट, निश्चित, दोष-रहित, फूल-प्रूफ, तरीका उपलब्ध नही था । तीसरी बात यह है कि बनावट (शारीरिक सरचना की समता) यह नही बतलाती कि उसके पीछे कोई 'विकास' की प्रक्रिया काम कर रही थी अथवा किसी रहस्य का 'रेड-कार्पेट' (लाल-पॉवडा) (अथवा 'पलक-पॉवडे') खुल रहा था (अन-राल या उद्घाटित हो रहा था) । अनेक सृष्टियाँ बनेगी, भाँति-भाँति के जीव-जन्तु बनेंगे, पेड-पौधे रचे जायेंगे, तो उनमे समानताये रहेगी ही (तु० विभिन्न कलाकारो के द्वारा बनाये गये किसी एक आदमी के विभिन्न पोर्ट्रेट्स, अथवा अनेक चित्रकारो के द्वारा खीची गयी विभिन्न लोगो की तस्वीरे) । ऐसा भी सम्भव है कि जब कभी भौगोलिक उथल-पुथल हुई, तब उसके अनुरूप, कालान्तर मे, नयी

सृष्टियाँ बनी। एकदम नयी। नये सिरे से। पुरानी स्पीशीज के विकास से नही। नये-पुराने 'अनुभव' के आधार पर अथवा औचित्य और योग्यता और अनुकूलता का खयाल रखते हुए। अगर 'पुरानी' (विलुप्त) और 'नयी' सृष्टियो मे शारीरिक सरचना इत्यादि के आधार पर समानताये जाहिर हो, तो उससे यह नही कहा जा सकता कि वह विकास की एक प्रवहमाण धारा थी। परमात्मा वही, पृथ्वी वही, प्रकृति भी वही, तो पुरातन और नवीनतम सृष्टियो मे सामजस्य रहेगा ही। कुम्भकार वही, चाक वही, मिट्टी भी वही, बरतन गढने के तरीके (प्रणाली) भी वही, तो क्या विभिन्न नये-पुराने घटो (बरतनो) मे कोई समानता नही रहेगी ? सृष्टि की अनेकता मे एकता भी तो है। हर पहिये की धुरी भी तो होती है। चौथी बात यह है कि मानव अपनी 'आकृति' से नही, बल्कि अपने 'मानस' और अपनी रैशनालिटी (विवेक, ज्ञान-शक्ति, तर्क-शक्ति और बुद्धिमत्ता) के कारण 'मानव' माना और गुना गया। वह विवेक-पूर्ण था, ज्ञानवान् था, वह तर्क कर सकता था, उसके पास एक अपनी भाषा थी, वह अपने विचार बोलकर व्यक्त कर सकता था, अपनी बात दूसरो तक पहुँचा सकता था और दूसरो की बात सुन-समझ सकता था, वह विभिन्न औजार बना सकता था और उन्हे काट-छाँट कर, घीसकर, सुन्दर और सुडौल कर सकता था, वह नक्काशी कर सकता था, वह सामाजिक जीवन व्यतीत कर सकता था। और, नि स्वार्थ भावना से दूसरो की भलाई और उनसे प्रेम कर सकता था। वह अपने अगूठे को अपनी हरएक अँगुली से पूरी तरह सटा सकता था, बराबर सीधा दो पैरो पर चलता था, उसकी तर्जनी का और सब उँगलियो से अलग अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था, उसकी श्रोणी-अस्थि (पेलभिक बोन) भी अपने ढग की थी, खोपडी भी और भेजा (मस्तिष्क) भी, हाथ-पाँव की हड्डियाँ भी, हस्तरेखाएँ भी, अगुली-प्रतिमुद्रा (फिंगर-प्रिण्ट) भी। ऐसे प्राणी थे वे, जो मानव स्पीशीज के सदस्य थे।

डारविन, हक्सले इत्यादि ने जो अस्थिशेष और जीवाश्म (फॉसिल्स) इकट्ठे किये थे, उनमे 'विवेक' कहाँ परिलक्षित था, 'भाषा' का कौन-सा सबूत मिला था ? और, रही मेधा और ज्ञान की बात, तो हजारो-लाखो वर्ष पहले जिस मानव ने अग्नि, भाषा, पहिया और अन्न का ईजाद किया था, वह किसी तरह भी आज के शिल्प-विज्ञानविद् वैज्ञानिको से कम मेधावी नही था।

अगर यह कहा जाय कि जब पृथ्वी बसने के लायक हो गयी थी (और प्रकृति न सर्जन के हुनर को सीख लिया था) तब परमात्मा ने एकदम एक नये फर्मे से मानव की सृष्टि की, तो इस वक्तव्य या दलील मे सोद्देश्यवादी (उद्देश्यपरक) (टेलियोलॉजिकल) आपत्ति के अलावा और क्या दोष निकलेगा ?

फॉसिल्स भी इतने कम मिले है कि उनके आधार पर कोई साख्यिकीय (स्टेटिटिस्टिकल) राय देना भी अनुचित समझा जाना चाहिये था, जब कि जाहिर है कि किसी भी प्राणी की ठठरी मे जन्मजात दोष रह सकते है। अगर कोई स्पीशीज (जैसे, बनमानुस) पत्थर या लकडी को तोड-मरोड, फोड-फाडकर काम निकाल पाता था,

तो उसमे 'मानवीय' चेष्टाओ की समानता देखना वैसा ही होगा, जैसे मकडे को मैजिशियन या ज्यामितिज्ञ (ज्योमेट्रिशियन) और मधुमक्खी को वास्तुकार (आरकिटेक्ट) या बाया (चिडिया) को अभियन्ता (इजीनियर) मान लेना ।

एक और खास तार्किक सारगर्भ बात (विषय) या सारवस्तु यह है कि अपने 'मानसिक' गुणो से परिपुष्ट मानव को अपनी सुरक्षित पारिवारिक और साधनयुक्त सामाजिक जिन्दगी मे 'फिटेस्ट' (सबसे सुयोग्य और पराक्रमी) होने की आवश्यकता नही थी। उसपर 'नैसर्गिक वरण' (नेचुरल सेलेक्शन) का विधान भी लागू होना आवश्यक नही था और जहाँतक वातावरण के साथ अपने को अनुकूल (एडैप्टेशन) बनाने की बात थी, कौन ऐसा दूसरा प्राणी (स्पीशीज) था, जो इस फन मे 'मानव'-जाति की बराबरी कर पाता ।

आज के युग मे भी (नवयुगीन) कॉकेशियन, मौगाल्वायड, आस्ट्रालॉयड, केपॉयड, तथा नीग्रॉयड प्रजातियो (रेसेज) मे काफी आपसी विभेद है, उनकी अस्थियो मे, उनकी आकृतियो मे, उनके त्वचा, केश, आइरिस इत्यादि के रग मे, उनके ब्लड-ग्रूप मे, उनकी सस्कृति मे। अगर एलेक्ट्रोफोरेसिस इत्यादि द्वारा अनुसन्धान किया जाय, तो शायद उनके कायिक प्रोटीन मे भी सूक्ष्म भिन्नता प्रत्यक्ष हो जाय। इतनी सारी भिन्नता के रहते हुए भी कौन कहना चाहेगा कि प्रजातियो के बीच कोई 'विकास' की बात है। और, वह भी जब कहनेवाले यहाँतक कह गये कि इन तीनो प्रजातियो की उत्पत्ति तीन विभिन्न पूर्वजो (वानरो) (ओरग उटान, गोरिल्ला तथा चिम्पैजी) से हुई ।

कोई नही कह सकता कि सृष्टि की शृ खला मे 'विवेक' का जन्म 'कब' और 'किसमे' हुआ। जबतक इस मूलभूत सवाल का विश्वसनीय जवाब नही दिया जायगा, तबतक मानव की सृष्टि का प्रश्न पूर्ववत् बना रहेगा और इस समस्या का समाधान नही हो पायगा। क्योकि, 'मानव' वह था, जिसमे 'विवेक' आ गया था। जिसमे 'विवेक' नही आया था वह 'मानव' था नही। इसलिये 'विवेक'-युक्त मानव 'मानव' के रूप मे ही जनमा, उसका कोई पूर्वज नही हो सकता था। कोई 'विवेकी' 'अमानव' था नही, कोई 'अविवेकी' 'मानव' भी था नही, न हो सकता था। इसलिए, 'मानव' का पूर्वज भी 'मानव' ही था और 'मानव के पूर्वज' का पूर्वज का पूर्वज का पूर्वज का पूर्वज का पूर्वज 'भगवान्' (स्रष्टा, सृष्टिकर्त्ता, जगन्नियन्ता) के सिवाय और कौन हो सकता था ? क्यू० ई० डी० (साध्य उपपन्न) ।

एक और बात है कि चट्टानो और रॉक्स के परीक्षण से ऐसा देखा गया कि पृथ्वी के इतिहास मे ऐसी अनेक, आकस्मिक, उथल-पुथल, सारे धरातल पर, (लगभग) एक साथ, हुई कि सारी-की-सारी जातियाँ (स्पीशीज) विलुप्त और विनष्ट हो गयी। अमेरिका मे सैकडो डिनॉसार्स का ऐसी अनेक कब्रे मिली थी। और, उसी युग की चट्टानो मे ससार के अन्य देशो (भागो) मे भी उनके अवशेष प्राप्त हुए थे। देखने से ऐसा मालूम पडता था कि काल की उस छोटी-सी अवधि मे सारे-के-सारे डिनॉसार्स 'सामूहिक' कब्रो मे एक-साथ मृत या जिन्दा दफना दिये गये थे। धरती पर जब ऐसे

वाकयात हो रहे थे, ऐसी 'विश्वव्यापी' घटनाये घट रही थी, तब ऐसे मे समीचीन, और क्रमिक, मन्द-मन्द सतत प्रवाहित स्पीशीज-विकास की धारणा (मत, वाद, बात) कुछ अनर्गल-सी प्रतीत होती है।

रही उन सबूतो की बात, जिन्हे डारविन इत्यादि ने इकट्ठे किये थे, तो जिस तरह के प्रमाण पेश किये गये, उनका कोई खास महत्त्व नही दीखता। लाखो वर्षों से बिल्लियाँ चूहो को निगलती गयी है, लेकिन अबतक चूहे छुछुन्दर की तरह बसा भी नही पाये। और, आदमी अपने को 'कोल्ड-वाइरस' (सर्दी-खाँसी) से बचा नही पाया। और हाँ, जहाँ काल 'अनन्त' हो, 'चालीस करोड' (प्रकार, भेराइटी, के) प्राणियो की सृष्टि का माहौल हो, वहाँ दस-पचास हड्डियो और फॉसिलो को जोड-जाडकर कोई भी सिद्धान्त प्रतिपादित करने मे क्या लगता है।

लाइसेन्को का सिद्धान्त था कि अगर किसी पेड मे किसी दूसरे पेड की कलम (ग्राफ्ट) लगायी जाय, तो कलमवाले (प्रतिरोपित) वृक्ष का गुण उपरोपित पेड मे समाविष्ट हो जायगा। उनका यह भी मत था कि बीज को रोपने के पहले ठण्डा-गर्म करके उस बीज से प्रस्फुटित होनेवाले पेड का गुणावगुण (कैरेक्टरिस्टिक फीचर्स) बदला जा सकता है। लामार्क की तरह वह यह भी विश्वास करते थे कि माँ-बाप के जीवन-काल मे 'अर्जित' गुण उनके बच्चो को भी वशानुक्रम मे प्राप्त हो सकते है।

तो सिद्धान्त प्रतिपादित होते रहते है। वैज्ञानिको को श्रेय मिलते रहते है। उनकी प्रतिष्ठा, ख्याति, कीर्त्ति, फैलती रहती है।

और, विधाता सृष्टि करता है।

जीवन और मृत्यु के बीच एक लमहा मिलता है, कुछ सोच-विचार करने का, एक लुकमा निगल लेने का, कुछ कह-सुन लेने का, जरा दिल लेने-देने का, तनिक हँस-रो लेने का।

सृष्टि का पार पाना आसान नही।

और, इस 'कालो ह्यय निरवधि' मे आदमी की उम्र की अवधि 'क्षणिक' नही, तो और क्या है? उसकी जिन्दगी सहर की एक लौ-भर है, जो एक फूँक मे अदृश्य होकर कहाँ चली जायगी, पता नही।

आज जब मस्तिष्क (ब्रेन) और मानस (माइण्ड) के विषय मे कुछ लिखने का प्रयास करनेवाला हूँ, तब सर्वप्रथम यह सवाल उठा कि 'मानस' क्या काम करता है (जो 'ब्रेन' नही कर पाता) और कि 'मानस' की किन क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ से उसे पहचाना जा सकता है? 'ब्रेन' और 'माइण्ड' मे क्या सम्बन्ध है? 'ब्रेन' (मस्तिष्क) एक स्थूल अवयव है। यह शारीरिक सरचना (एनाटॉमी) मे (एक) सबसे प्रमुख स्थान रखता है। खोपडी के भीतर पडा (रखा) हुआ मस्तिष्क अन्य उपनामो से भी अलकृत है—जैसे 'भेजा', 'मगज', 'दिमाग' इत्यादि।

मस्तिष्क चेतना (कन्शसनेस) तथा विचारो (थॉट्स) का केन्द्र है। यह ज्ञान (नॉलेज) तथा स्मृति (मेमरी) का भी सहारा (आधार) है। यह अन्त करण (मन, चित्त, बुद्धि, अह और विवेक) का भी आधार है। यह (अनेकानेक, भाँति-भाँति के) सोपाधिक

प्रतिवर्त्तों (रिफ्लेक्सेज) की भी पृष्ठभूमि है। और, प्रतिवर्त्त जन्मजात (सहज, कानजेनिटल, मूल) (बेसिक), या उपार्जित (ऐक्वायर्ड) अथवा सोपाधिक (कण्डिशण्ड) हो सकते है।

फिर यह 'मानस' क्या बला है ?

इसके पहले कि इस प्रश्न पर विचार किया जाय, हम एक तुलनात्मक परिवेश को लाना चाहेगे, सन्निविष्ट करना चाहेगे, और उसके विषय मे कुछ सोचना-समझना चाहेगे। कल्पना कीजिये कि आकाशवाणी-केन्द्र से एक गायक के गीत प्रसारित हो रहे है। आपके पास का रेडियो-सेट ट्यून-इन हो गया है और आप गीत सुनने लगे है। और, गुनगुनाने भी लगे है। गीत समाप्त हो गया, आप गुनगुनाते रहे, रेडियो अभी ऑन (चालू) है, आप आगे प्रसारित होनेवाले गीति-कार्यक्रम (प्रोग्राम) की प्रतीक्षा मे बैठे है और सुने हुए गीत की पक्तियाँ गुनगुना रहे है। फिर रेडियो मे डिस्टर्बेन्स (गडबडी, बाधा) होने लगा, जब गीतो मे विकृति सुनाई पडने लगी और आपका ध्यान-भग होने लगा, तब आपने रेडियो के तरग-दैर्घ्य या तरग-आयाम (वेभ-लेग्थ) को बदल डाला और किसी दूसरे केन्द्र से युगपत् (एक साथ, साथ-साथ, उसी समय) (साइमलटेनियसली) प्रसारित 'समाचार' सुनने लगे। कि इतने मे आपकी नजर घडी पर पडी और आपको याद आया कि दफ्तर जाने का समय हो गया। आपने एक ठण्डी लम्बी साँस ली, झिझककर रेडियो बन्द कर दिया और ऑफिस जाने की तैयारी करने लगे। काश, पूरा समाचार तो सुन पाते! बडी महत्त्वपूर्ण खबरे सुनायी जा रही थी, नस्र हो रही थी। और, उन गीतो मे कितना दर्द था!

रेडियो-सेट एक जरूरी माध्यम था, जिसके बिना गीत आप तक नही पहुँच पाते। रेडियो बन्द कर दिया गया। रेडियो से गीत का निर्गमन, या निस्सरण बन्द हो गया। लेकिन, गवैया गाये जा रहा था और आकाशवाणी का केन्द्र उन गीतो को पूर्ववत् प्रसारित किये जा रहा था और वे गीति-लहरियाँ आपके रेडियो-सेट के अन्दर और उसके इर्द-गिर्द फैलती रही थी और सर्वत्र व्याप्त थी। अब रेडियोग्राम की बात लीजिये। और, एक ऐसे रेडियो-मशीन की कल्पना कीजिये, जिसमे अपने मनपसन्द चुने-चुनाये रेकार्ड्स के गाने भी आप अपने मन-मुताबिक निर्गत करा सकते है (या जो उन गानो को स्वत निर्गत कर सकता है) और जो आकाशवाणी-केन्द्र से प्रसारित गीत भी निस्सृत कर सकता है। और किसी गुप्त, अनजाने केन्द्र से प्रसारित ऊल-जलूल बातो अथवा धार्मिक साहित्य का भी प्रचार कर सकता है। यह प्रचार किस वेभ-लेग्थ पर हो रहा है, यह ज्ञात नही, लेकिन गीतो के दरम्यान अकस्यात् उस गुप्त रेडियो-केन्द्र की बाते सुनाई पड जाया करती है और हमे प्रभावित भी कर जाती है।

खैर, जाने दीजिये। अब इस प्रसग को अभी यही छोडकर हम यह सोचे कि मानव-मस्तिष्क की क्या क्षमताएँ है। यह कौन-कौन से कार्य कर सकता है।

१ यह शरीर के तन्त्रिका-तन्त्र (नर्भस-सिस्टम) को चलाता है (प्रेरक सचालक)।

२ यह बीती हुई या भूली हुई बातो को फिर से स्मरण कर सकता है, और नयी बाते याद कर ले सकता है (मेमोराइजिग ऐण्ड रिकालेक्टिग, रिकॉलिग)।

३ यह 'अप्रिय', 'अनुचित' या 'अवैध' घटनाओ को अपनी स्मृति की ऐसी गहराई मे (ऐसे गत्त मे) गाड दे सकता है कि उनका फिर से स्मृति-पटल पर उग आना साधारणत नामुमकिन और असम्भव हो जाय। (मन)।

४ यह चिन्तन कर सकता है, भविष्य की बाते सोच सकता है, मनसूबे बाँध सकता है, योजनाये वना सकता है। (चित्त, चित्)।

५ इसमे अपने-पन (अहम्) (ईगो) का भाव स्थित है। यह 'मै' को जानता-पहचानता है। 'मै', 'मेरा', 'तुम', 'तेरा' का विभेद कर सकता है। स्वार्थी या परमार्थी बन सकता है। 'अपने' बारे मे गलत या सही एक अपनी विशेष प्रकार की राय कायम कर ले सकता है और तदनुसार समाज मे एक खास (अपनी) तरह का आचरण प्रस्तुत कर सकता है। अपना सुरक्षा के लिये सचेत रह सकता है। (अहम्)।

६ यह द्वन्द्वात्मक परिस्थितियो मे निर्णायक का काम कर सकता है। इसमे नीर-क्षीर को अलग कर पहचानने की योग्यता है। 'भला'-'बुरा' 'लाभ'-'हानि' 'उचित'-'अनुचित', 'सुख-'दु ख', 'पाप'-पुण्य', 'सही'-'गलत' इत्यादि का निर्णायक, निरूपक या निर्धारक के रूप मे विश्लेषण कर सकता है। (बुद्धि)।

७ यह ज्ञानी सलाहकार है। पथ-निर्देशक है। और मूल प्रवृत्तियो (इनस्टिक्ट्स) को दबा कर अहम् का नेतृत्व कर सकता है। (विवेक)। (जैसे, भयभीत इन्सान को खतरे के मुकाबले खडा कर सकता है, भूख-प्यास से तडपते सिपाही को अपने साथी के हित मे अन्न-जल का त्याग कर मृत्यु के मुख मे भी सुख का अनुभव करा सकता है। महाराणा प्रताप को देश के गौरव की खातिर वन-वन की धूल छनवा सकता है, सुधन्वा को गर्म तेल के खौलते कडाह मे भी हँसा सकता है, महात्मा गान्धी को अकेले दण्डी-यात्रा पर या नोआखाली मे भेज सकता है। यह दूसरो के लिए अपनी जान दे सकता है (शहीद, शिवि, दधीचि)।

८ यह प्रज्ञावान् है। इसको अन्तर्दृष्टि और अन्तर्ज्ञान (सिक्स्थ सेन्स) है।

९ (क) यह विचार-तरगो का अवतरण-आरोहण तथा उनका उत्पादन कर सकता है। (ख) ओर, उन विचार-तरगो के द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप (भाव) से दूसरो को प्रभावित कर सकता है। (ग) और इस प्रभावित करने मे दिक्काल (स्पेस-टाइम) का न कोई बन्धन रहता है, न उसकी आवश्यकता। विचारो का प्रभाव दिक्काल की सीमा नही मानता, वह उसके परे है।

१० (क) यह स्वप्न देख सकता है। (ख) स्वप्न अप्रासगिक या प्रासगिक हो सकते हैं। (ग) स्वप्न सत्य भी हो सकते है, मिथ्या भी, (घ) स्वप्न आगम की सूचना दे सकने हैं। (ङ) स्वप्न मे जटिल समस्याओ (वैज्ञानिक, गणितीय, भौतिकी, साहित्यिक, सामाजिक अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी या व्यक्तिगत) के समाधान प्राप्त हो सकते है (और हुए भी है)।

(च) स्वप्न मे इन्सान वाछित (सभ्य या असभ्य, प्रशसित या लाछित) जीवन का भोग (उपभोग) कर सकता है, बिना अपनी हानि किये हुए, बिना नुकसान उठाये। 'अनहोनी' को 'होनी' मे बदला जा सकता है और दुर्लभ सुलभ बन सकता है।

(छ) स्वप्न मे स्वर्गवासी या दूरस्थ या विछुडे, खोये, प्रियजनो के 'साक्षात्' दर्शन हो सकते है और इस तरह आदमी का मानसिक कष्ट और उसकी तडप घट सकती है।

(ज) स्वप्न अपने 'मै' को सही-सही पहचानने का खासा अच्छा मौका प्रदान करता है और इस तरह जीवन की परिस्थितियो से जूझने-लडने के लिए आदमी को सही रास्ता बतलाता है और उचित तैयारी के लिये मन्त्रणा देता है।

(झ) स्वप्न वह गगा है, जहाँ हम अपने 'मै' को नहा-धुलाकर अधिक साफ-सुथरा और चुस्त तथा ज्ञानी बना सकते है।

(ट) स्वप्न दमित (रिप्रेस्ड) भावनाओ (इमोशन्स) के स्पष्टीकरण तथा उनके ऊर्ध्वपातन (सबलिमेशन) का एक अच्छा तरीका प्रस्तुत करता है।

११ इसमे ई० एस० पी० की भी क्षमता है। अतीन्द्रिय ज्ञान या बॉध (एक्स्ट्रासेन्सरी परसेप्शन) की। क्लेयरभॉएन्स, टेलीपैथी तथा प्रीरिकॉगनिशन इत्यादि।

१२ यह ध्यान धर सकता है, 'धारणा' मे प्रविष्ट हो सकता है और 'समाधि' को प्राप्त कर सकता हे।

१३ यह 'विश्वास' कर सकता है। 'आस्था' (फेथ) रख सकता है, 'आशा' कर सकता है, 'धैर्य' धर सकता है। यह 'सुख मे दु ख' और 'दु ख मे सुख' का अनुभव कर सकता है। यह 'सन्तोष' कर सकता है।

१४ यह 'विद्या' और 'ज्ञान' का उपार्जन कर सकता है 'सभ्य' बन सकता है। मातृभाषा के अलावा अनेक अन्य भाषाएँ सीख ले सकता है और बोल ले सकता है। वह शास्त्र, विज्ञान, गणित, तथा अनेक विभिन्न कलाओ को सीख (योग्यता प्राप्त कर) सकता है और उसमे प्रवीण बन सकता है।

१५ यह अलौकिक-प्रतिभा-सम्पन्न (प्रोडिजी या जीनियस) के रूप मे आविर्भूत हो सकता है। या बन जा सकता है। अपनी अदम्य मेहनत तथा अजेय आत्मबल के द्वारा यह असम्भव को सम्भव बना सकता है। यह जीवन-पर्यन्त या जीवन के किसी काल (कालावधि) मे ऐसी अद्भुत, विलक्षण प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकता है।

१६ यह 'साहस' कर सकता है। भयभीत होता हुआ भी निर्भीक बना रह सकता है।

१७ यह मेसमेराइज (अचेत, वशीकरण-विद्या से प्रभावित) तथा हिप्नोटाइज (सम्मोहित, मोह-निद्रित) किया जा सकता है और योग-निद्रा की प्रणाली से शान्त तथा सुप्त भी हो सकता है।

१८ यह भ्रान्ति (इल्यूजन), विभ्रम (मिथ्याविश्वास) (डल्यूजन) तथा मतिविभ्रम

(निर्मूल भ्रम, दृष्टिबन्ध) (हैल्युसिनेशन) की स्थिति मे पड सकता है। और इसे इन्द्र-जाल, मरीचिका (मृगतृष्णा), माया इत्यादि मे फँसाया जा सकता है। साइकोथेरापी तथा साइकोडेलिक दवाओ या अमलखोरा के द्वारा बिगाडा बनाया जा सकता है।

१९ यह मृतात्माओ से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। (झरिया-राँची के स्वर्गीय श्रीहरगोविन्द दत्त)। (मीडियम)।

२० यह आदतो की लीके डाल ले सकता है।

२१ यह 'सस्कार' इकट्ठे कर ले सकता है, बटोर ले सकता है, उन्हे जमा कर अपने ऊपर 'लाद' ले सकता है। [तु० वेदान्त मे निरूपित आत्मा के पाँच आवरण।]

२२ यह (मनोबल के द्वारा) (या ध्यान को केन्द्रीभूत कर) (या किसी गुप्त पद्धति या प्रेतयोनि का सहारा लेकर) (उचित ढग से और मात्रा मे अभ्यास की बदौलत) कही मे कोई वस्तु अकस्मात् (दिक्काल के परे) मँगा दे सकता है या किसी एक वस्तु को किसी दूसरी वस्तु मे बदल दे सकता है। (स्वर्गीय श्रीबँसुलिया बाबा) (आदरणीय सत्य साईं बाबा)।

२३ यह गलतफहमी (मिस-अण्डरस्टैण्डिग) मे पडकर उल्टे-सुल्टे निर्णय पर पहुँचकर अपनी या दूसरो की हानि कर सकता है।

२४ यह सुप्तावस्था मे भ्रमण कर सकता है (स्वप्न-सचरण, निद्राचारी) और प्रगाढ (गाढी) निद्रावस्था मे भी जाग्रदवस्था की भाँति विविध प्रकार के कार्य कर सकता है। (सोमनामबुलिज्म)।

२५ यह (अ) सात्त्विक, (आ) राजसी, (इ) तामसी, अथवा (ई) उनके 'मिश्रप' (मिश्र, सम्मिश्र) स्वभाववाला हो सकता है।

२६ यह 'प्रचार' या 'कान भरने' या दूसरो के विचार-आचार, शिक्षा, मन्त्रणा इत्यादि के प्रभाव मे आ सकता है।

२७ इसकी कई परते (अवस्थाये, सतहे, मजिले) है, जैसे (क) सज्ञापूर्ण (सचेत) (कॉनशस), (ख) सज्ञा-लोप (अचेत, बेसुध) (अनकॉनशस), (ग) अर्द्ध-सचेत (सेमी-कॉनशस)। (घ) अत्यधिक सचेत (अति सचेत) (अधिकाधिक सचेत) (सुपर-कॉनशस), (ङ) उपचेतनावस्था (अवचेतन) (सब-कॉनशस)।

२८ इसका अधिकाश अव्यक्त रूप मे अप्रयुक्त (अन-यूज्ड), असमस्वरित (अन-ट्यूण्ड), यावज्जीवन (जीवन-पर्यन्त, भर) पडा ही रह जाता है। इसका अव्यक्त अश व्यक्त किया जा सकता है, काम मे लाया जा सकता है। जिससे एक महती मेधाशक्ति अपनी अनेकानेक खूबियो के साथ प्रकट हो सकती है।

२९ यह रोग-ग्रस्त (अस्वस्थ) हो जा सकता है (फोबिया, मेनिया, सिजोफ्रेनिया, पारानोया इत्यादि) और इसे फिर स्वस्थ भी बनाया जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियो की गडबडी अथवा मस्तिष्क की सरचना मे गडबडी (जन्मजात अपसामान्यता, अप्रसमत, एबनॉरमैलिटी इत्यादि) के कारण यह अविकसित (अनडेवलप्ड) रह जा सकता है। (पूर्णरूपेण या ठीक ढग से व्यक्त नही हो पाता है) (तु० कजेनिटल ईडिअट्स, मौगोलिज्म)।

३० यह विकसित होता हुआ (विकास प्राप्त करता हुआ) परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है, सार्वभौम चेतना, औद्भौम मानस, से इसका सीधा सम्पर्क स्थापित हो सकता है। (भक्तो का अनुभव, योगियो का दावा)।

अब इस प्रसग की भी यही समाप्ति कर हम एक धारणा (सम्प्रत्यय, विचार, सकल्पना) (कानसेप्ट) आपके समक्ष प्रस्तुत करते है। यह धारणा पूर्णत अथवा मूलत हमारी नही है। आपने (इसके) पहले भी अवश्य ही इसको, इस जीर्ण-शीर्ण के विषय मे, सुना-पढा-जाना होगा। लेकिन, हम इस नटी को एक अर्ध-नवीन आवरण के साथ रगमच पर लाते है। देखे, आपका समर्थन इसे प्राप्त होता है या नही।

देखने मे आता है कि हर सगठन (सघटन), व्यवस्था, सस्था, सस्थान अथवा आयोजन का कोई आयोजक या प्रबन्धक होता है। प्रबन्धक कोई 'समिति' या कोई 'व्यक्ति' हो सकता है। अगर 'समिति' हुई, तो उसका कोई 'नेता' होगा ही। और, वह अग्रग, प्रमुख, प्रधान, सर्वश्रेष्ठ और प्रभुसत्ता-सम्पन्न (साभरेन) होगा, नही तो न उसका काम चल सकेगा, न वह मार्ग-निर्देश कर सकेगा और न अपने पद पर स्थापित रह सकेगा।

किसी भी व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुछ नियम-कानून-तरीके, पूर्वनिर्धारित, उपलब्ध होना चाहिए। और, उसे 'सयोग' (चान्स) पर नही आधृत होना चाहिये। जबतक 'अन्धेर नगरी' की बात न हो, तबतक 'टके सेर खाजा और टके सेर भाजी' भी नही बिकनी चाहिये, 'गेहूँ के साथ घुन' भी नही पिसना चाहिये और जब 'खेत खाय गदहा' तो 'मार खाय जोलहा' वाली परिस्थिति भी उत्पन्न नही होनी चाहिये। नही तो 'नेता' जी स्वय 'चौपट' गिने जायेगे और उनके नेतृत्व मे सब कुछ चौपट होकर ही रहेगा।

तो अगर इस ब्रह्माण्ड का भी कोई नियामक, शासक, उद्बोधक हो, तो क्या हर्ज है ? सारी सृष्टि को नियन्त्रित करने के लिए उस 'शासक' को सर्वज्ञ होना ही पडेगा।

इसी सन्दर्भ मे यह कल्पना की जा सकती है कि विश्व-ब्रह्माण्ड मे, दिक्काल के परे, कोई सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सार्वभौम चेतना होगी। जो सर्वसमर्थ भी होगी। जो शाश्वत भी होगी।

इस सार्वभौम चेतना को कॉसमिक माइण्ड (विश्वव्यापी मानस या महा-मानस कह सकते है।

परमात्मा के द्वारा प्रसारित (तु० आकाशवाणी-केन्द्र के द्वारा प्रसारित) यह महा-मानस सर्वत्र सर्वदा फैला हुआ है (तु० प्रसारित गीति-लहरियाँ दुनिया-भर मे फैल रही है)। मानव का मस्तिष्क एक यन्त्र अथवा उपकरण है (तु० रेडियो-सेट) जिससे इस महा-मानस का सम्पर्क होता है। अगर मानव का मस्तिष्क (मानस) ठीक काम करता रहा, तो 'महा-मानस' मानव-मानस के साथ सम्पर्क स्थापित कर लेता है। और, अगर समुचित परिस्थिति उपलब्ध है (मानव-मानस शान्त और पूर्वाग्रहो से रिक्त

तथा स्वच्छ और सुव्यवस्थित है) तो ट्यूनिग ठीक हो पाता है। फिर तो मानव-मानस मे महा-मानस के गुण प्रकट होने लगते है। (तु० अगर रेडियो-सेट ठीक काम कर रहा है—तब अगर समस्वरण, ट्यूनिंग, ठीक किया जाय—तो प्रसारित गीति-लहरियो और रेडियो-सेट का तालमेल ठीक बैठेगा और रेडियो-सेट के द्वारा, माध्यम से, प्रसारित गीत बिना विघ्न-बाधा के ठीक मे सुने जा सकेंगे, बिना विरूपण या विकृतता के, बिना डिस्टॉर्शन के)।

अगर मानव-मानस निर्मल, उदात्त, सन्तुलित, पवित्र और प्रखर और ठीक से, पूर्णरूपेण, समस्वरित (ट्यूण्ड) नही है, तो महा-मानस की 'छाया'-मात्र उसपर पडती रहेगी और वह मानव-मानस 'साधारण'-सा या अपेक्षया (कम्परेटिवली) निम्न कोटि (श्रेणी, वर्ग) का प्रतीत होगा (तु० अगर कल-पुरजे खराब, घिसे-पिटे हो, और ट्यूनिग भी ठीक नही हो पायी हो, तो प्रसारित गीत के बदले उसका विकृत स्वर सुनायी पडेगा और निर्गत शोरगुल बर्दाश्त करना पडेगा। सुतरा, वह रेडियो-सेट भी घटिया माना जायगा)।

लेकिन, आखिर यह मानव-मानस है क्या बला ?

यह अति-सूक्ष्म तरगो का जाल, समूह, परत या तल है, जिससे मस्तिष्क (मानव-) आच्छादित है। 'देश, काल, पात्र' के अनुसार (मस्तिष्क की योग्यता और क्षमता के अनुसार) वह अभिव्यक्त और परिलक्षित होता रहता है। आदमी के 'विचार' भी एक किस्म की तरग है, मस्तिष्क से उत्पन्न विद्युत्-धाराये (तु० एलेक्ट्रोएनसेफेलोग्राम) भी तरग है, तन्त्रिका-तन्त्र (नर्भस-सिस्टम) का प्रेरक तन्त्र (मोटर सिस्टम) (पिरामिदी तन्त्र, पिरामिडल सिस्टम), सवेदी (सेन्सरी) तन्त्र, परानुकम्पी (परासिम्पैथेटिक) तथा अनुकम्पी (सिम्पैथेटिक) तन्त्र, सभी तरगानुगामी है। ज्ञानेन्द्रियो के कर्म (कार्य)-कलाप भी तरगित ही है। स्वय स्थूल पार्थिव मस्तिष्क भी क्या एक तरग-सघ नही ? लेकिन 'मानसिक तरग' किसी खास-तरह की अति-सूक्ष्म तरग है, जो अत्याधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानो की पकड मे अभी तक नही आ सकी है।

अभी तक मनोविज्ञान की पैठ भी 'चेतना' (कन्सशनेस) तथा 'विचार' तक नही हो पायी है। फ्रॉयड, पावलव प्रभृति महान् वैज्ञानिको से लेकर आजतक के जितने अनुसन्धान फिजियोलॉजी अथवा साइकालॉजी मे किये गये है, वे सभी जानवर या मनुष्यो के व्यवहार (बिहेवियर) तक सीमित रहे और उसी पर आधृत भी। 'विचार-प्रक्रिया', 'चेतना' इत्यादि तक तो लोग पहुँच ही नही सके, माइण्ड (मानस) तो और दूर की बात रही।

जिस 'मानव-मानस' के विषय मे चर्चा हो रही है, उसके कुछ खास विशिष्ट (विशेषतासूचक, अभिलाक्षणिक) (कैरेक्टरिस्टिक) लक्षण (फीचर्स) है, जो अविकसित या अव्यक्तीकृत (अण्डर-डेवलप्ड) मस्तिष्क (ब्रेन) मे नही पाये जाते।

(क) यह 'हम' ('मै' से भिन्न) रूप है।

(ख) यह 'विवेक'-रूप है।

(ग) 'हम' (तटस्थ)+'विवेक' (विषयपरक, वस्तुनिष्ठ) (विशुद्ध ज्ञान) के मिश्रित भाव के कारण यह सब मानव-जाति मे व्याप्त है (सर्वव्यापी ?) और सबका अन्तरग गुरु (सर्वज्ञ ?) है।

(घ) यह महा-मानस मे आसानी से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इसलिये दूसरे मानस से भी।

(ङ) यह मस्तिष्क तथा अन्त करण को प्रभावित कर सकता है। मस्तिष्क से सूक्ष्म है अन्त करण और अन्त करण (मन+चित्त+बुद्धि+अहम्) से अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतर) है 'मानव-मानस'। और 'महा-मानस' सूक्ष्मतम है।

(च) मानव के मस्तिष्क से सम्बद्ध (बद्ध) रहने के कारण यह 'सीमित' हो जाता है और अपनी अपार शक्तियो का प्रदर्शन नही कर पाता, न उन्हे जान पाता है।

(छ) इसका विकास इसी जन्म मे या जन्म-जन्मान्तर मे हो सकता है। (निर्देश-१ इभॉल्युशन ऑव ब्रेन ऐण्ड माइण्ड, २ श्रीमहर्षि अरविन्द तथा महात्मा बुद्ध के विचार)।

(ज) शायद इसका विनाश नही होता और यह मरणोत्तर 'चित्' (चाह) (सस्कार) और 'अहम्' के साथ किसी दूसरी काया मे पुनर्जन्म पाता है। चाह, अरमान, हसरते, इच्छा, लिप्सा इत्यादि की पूर्त्ति के लिये पुनर्जन्म होता है। 'सस्कार' निर्धारित करते है कि कब, कहॉ और किस काया-विशेष मे पुनर्जन्म होगा।

(झ) यह 'आत्मा' का अशत (पारशियली) व्यक्त रूप है। 'आत्मा' इससे भी सूक्ष्म और अव्यक्त है। 'आत्मा' अजर, अमर, गुणातीत और सब प्राणियो मे 'एक-सा' विद्यमान है। वह लाइफ-फोर्स (जीवनी-शक्ति) है, परमात्मा की अनेकानेक असीम शक्तियो मे से एक शक्ति। चुनाचे वह जीवन्त मानव गे भी है, मस्तिष्क मे भी, और मानस मे भी। वह किसी प्राणिविशेष की सम्पत्ति या उसका गुण-धर्म नही है। आत्मा का 'पुनर्जन्म' नही होता।

(ञ) अन्त करण के विभिन्न भागो—जैसे, 'मन', 'चित्', 'बुद्धि' और 'अहम्'—मे मे शायद यह कुछ भागो को (मरणोत्तर) अपने मे समाविष्ट कर काया से अलग हट जाता हे। शायद 'चित्त' (चित्) और 'अहम्' ('मै') को लेकर। इसका कारण यह हो सकता हे कि 'चित्' और 'अहम्' की तरगो मे अधिक सूक्ष्मता हो। सस्कार। 'मै'—पने (अहन्ता) का भाव।

(ट) प्रत्येक अणु, परमाणु, जीवाणु तरगित है। प्रत्येक मूलद्रव्य, मूलतत्त्व, एलिमेण्ट तरग है। चुनाचे प्रत्येक प्राणी (मनुष्य भी) जो अणु, परमाणु, मूलद्रव्यो, तत्त्वो, जीवाणुओ के मिश्रण (मिश्र, सम्मिश्र) मे निर्मित है, वह भी विभिन्न प्रकार की तरगो का एक समूह, एक जमघट, ही तो है। एक एलिमेण्ट (मूलतत्त्व) का दूसरे एलिमेण्ट मे उत्परिवर्त्तन (म्युटेशन) सम्भव हो सका है। शायद इस तरह एक काया किसी दूसरी काया मे बदल जा सकती हे। आदमी के चोले के बदले जानवर का चोला अथवा निर्जीव पत्थर का 'शरीर' मिल सकता है। वास्तव मे, ऐसा होता भी है

कि नही, मै नही जानता, सोच भी नही सकता। लेकिन, ऐसा होना नितान्त असम्भव नही मालूम पडता। (तु० अहल्योद्धार)। [अव्यक्त शक्ति (महा-मानस) जीवाणु को भी बदल दे सकती है, जीवाणुओ मे उत्परिवर्त्तन कर नये प्रकार के प्राणियो की सृष्टि भी कर सकती है]। (तु० आखिर एक ही निषेचित, फरटिलाइज्ड, कोष-मात्र से भ्रूण और भ्रूण से पूरा आदमी बन जाता है) (तु० फॉसिल्स, जीवाश्म, फॉसिल-फुएल्स, जीवाश्म-ईन्धन, कोयला इत्यादि) (निर्देश पटना म्यूजियम मे प्रदर्शित एक विशाल पेड का फॉसिलाइज्ड रूप, जो लकडी न रहकर पत्थर बन गया है)। 'जीवाणु-उत्परिवर्त्तन' को 'सयोग' या 'चान्स' पर आधृत मानना युक्तिसगत (युक्तियुक्त) नही जँचता। ऐसे मे तो डिनासॉर्स फिर से जन्म ले सकते है, चाहे जन्म लेकर उनकी जाति, नस्ल या वर्ग (स्पीशीज, क्लास) दुबारे विलुप्त हो भी जाय। और भी, 'चान्स' के हाथो सृष्टि को सौपना खतरनाक हो सकता है, वह 'अन्धा', 'अचेत', सृष्टि को 'प्रगति' या 'अवनति' के किस राह पर ले जायगा, राम ही जाने। (तु० थ्यौरी ऑव आरथोजेनेसिस, नियत विकास-सिद्धान्त—सृष्टि-विकास का वह सिद्धान्त, जो 'सयोग' या 'चान्स' को सृष्टि का श्रेय नही देता, वरन् यह विश्वास करता है कि विकास का लक्ष्य और उसकी दिशा विभिन्न स्पीशीजो के लिए पूर्व-निर्धारित है)। और फिर, अगर यह माना जाय कि जिसे हम 'चान्स म्युटेशन' कहते है, वह महा-मानस के पूर्वनिर्धारित लक्ष्य (सृष्टि का विकास) की ओर एक नियन्त्रित प्राकृतिक विधान के अन्तर्गत, ठोस कदम है, तो इसमे कौन-सी 'मूर्खता' या 'अवैज्ञानिकता' दीखती है? और क्यो?

(ठ) 'मानस' को प्रमस्तिष्क (सेरिब्रल कॉर्टेक्स) से और उसके व्यापार (सेरिब्रेशन) से मतलब है।

उसे अनुमस्तिष्क (सेरिबेलम), मध्यमस्तिष्क (मिड-ब्रेन), मेतु (पान्स), मेरुशीर्ष (मेडुला), मेरुदण्ड (स्पाइनल कॉर्ड), जागरूक जालाकार (रेटिकुलर फॉर्मेशन) कपाल-तन्त्रिका (क्रेनियल नर्भ्ज), मेरु-तन्त्रिका (स्पाइनल नर्भ्ज), हाइपोथैलमी-पीयूषिका-तन्त्र (हाइपोथालामिक-हाइपोफीजियल सिस्टम), स्वचालित तन्त्रिका-तन्त्र (ऑटोनॉमिक नर्भस सिस्टम), परिसरीय तन्त्रिका-तन्त्र (पेरिफेरल नर्भस सिस्टम), थैलेमस (चेतक) इत्यादि से कोई खास सम्बन्ध नही।

ज्ञानेन्द्रियो का प्रभाव मस्तिष्क को विकसित करने के लिये अत्यावश्यक है, नही तो मेधा प्रस्फुटित नही होगी, चेतना प्रौढ नही होगी, विचारो की शृंखला तैयार नही होगी। अन्त करण बौना रह जायगा।

अन्त स्रावी ग्रन्थियो (एनडोक्राइन ग्लैण्ड्स) तथा हार्मोन्स की भी भूमिका (पार्ट) आवश्यक है।

(ड) 'मानस' भी अपार्थिव है और अन्त करण भी। दोनो अव्यक्त है। मस्तिष्क स्थूल है और उसकी क्रियाये व्यक्त है और उनके विषय मे वैज्ञानिक प्रयोगशालाओ मे आसानी से अनुसन्धान किये जा सके है। कुछ हद तक मामूली, सामान्य, ऊपरी और

सतही तौर से मनोवैज्ञानिको ने 'अन्त करण' का टोह-पता पाया है। लेकिन, 'मानस' ('हम' + 'विवेक' + 'चेतना' + 'आत्मा') का पता न वैज्ञानिको को मिल पाया है न मनोविज्ञान को। 'विचार-तरगो' के साथ भी उनका अनुभव ऐसा ही रहा।

(ढ) 'अन्त करण' मस्तिष्क और 'मानस' के बीच एक लिक (कडी) (सम्बन्ध-सूत्र) है। 'मानस' 'जीवात्मा' और परमात्मा (महा-मानस) के बीच एक सेतु है। 'मानस'-मण्डित, अन्त करण-प्रभावित, आत्मा को जीवात्मा कहते है।

(ण) 'मानस' जबतक शरीरस्थ रहता है, तबतक वह सिर्फ अपने को और अन्त-करण को जानता है। वह ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा अन्त करण के माध्यम से, प्रभावित भी होता है। अपने छोटे दायरे मे वह इस अर्थ या अभिप्राय (सेन्स मे) के साथ 'सर्वज्ञ' है। हाँ, जैसे-जैसे उसका सम्पर्क महा-मानस (सार्वभौम चेतना, कॉस्मिक माइण्ड) के साथ निकटतम होता जाता है, वैसे-वैसे उसकी प्रतिभा विकसित होने लगती है, उसकी शक्तियाँ बढती जाती है, और उसकी 'सर्वज्ञता' अधिकाधिक व्यापक होती चली जाती है। मस्तिष्की→मानस→मनस्→सार्वभौम-चेतना।

सृष्टि के विकास (इभॉल्युशन) के सम्बन्ध मे चार्ल्स राबर्ट डारविन (सन् 1809—1882 ई०) ने जब अपना सिद्धान्त प्रस्तुत (प्रतिपादित) किया, तब लोगो ने डारविनवाद के अर्थ का अनर्थ कर दिया। डारविन की पहली पुस्तक 'दि ओरिजिन ऑव स्पीशीज बाइ मीन्स ऑव नेचुरल सेलेक्शन, ऑर दि प्रिजर्वेशन ऑव फेवर्ड स्पीशीज इन दि स्ट्रगल फॉर लाइफ', सन् 1859 ई० मे छपी और उसका प्रथम सस्करण प्रकाशित होने के पहले दिन (को) ही हाथो हाथ बिक गया।

डारविन के पहले लोगो के बीच यह धारणा थी कि प्रकृति मे जितनी भी तरह के पशु-पक्षी, पेड-पौधे, पाये जाते है, वे सब-के-सब अलग-अलग उत्पन्न हुए थे और उनकी रचना (सरचना) अलग-अलग साँचे (फरमा) (मूल्ड, कास्टिग) मे गढी गयी थी और वे अपने-अपने अलग-अलग ढाँचे (फ्रेम) मे ढाले गये थे। कि प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक स्पीशीज आपस मे एक-दूसरे से पूर्णत भिन्न एक अपने मे ही विशिष्ट सृष्टि थी।

३० जून, 1858 ई० को अल्फ्रेड रसेल वैलेस (सन् 1823—1913 ई०) के साथ डारविन ने एक सम्मिलित वक्तव्य निकाला था। वक्तव्य मे यह कहा गया था कि प्रकृति के जितने प्राणी है, वे सब किन्ही प्राचीन (प्रारम्भिक, पूर्वज) आकृतियो की मन्थर गति से (धीरे-धीरे) (शनै-शनै) विकास-प्राप्त (विकसित) प्रतिमूर्त्तियाँ-भर है। तात्पर्य यह था कि सृष्टि की पृष्ठभूमि पर विकास की मन्द-मन्द, धीमी धारा सतत प्रवाहित थी। विभिन्न स्पीशीज विकसित होती हुई बदलती जा रही थी और उनके नये मुखौटे विकास से जरिये प्राप्त हो रहे थे।

कि इस जैवी विकास का कोई लक्ष्य था, ऐसी बात डारविन ने नही कही थी। कि इस विकास की कोई परिणति सम्भाव्य थी, यह भी डारविन ने नही कहा था। किसी स्पीशीज के विकास का क्या अजाम होगा और उसका कहाँतक जाकर, किस

रूप मे अन्त होगा, यह अनजान भविष्य के क्रोड मे (डारविन के लिये भी) छिपा था।

'इभॉल्युशन थ्रू नेचुरल सेलेक्शन' से डारविन का मतलब यह था कि किसी स्पीशीज के विकास के अन्तर्गत, 'सयोग' से (बाइ चान्स), व्यक्तिगत रूप मे, अगर उस स्पीशीज के सदस्यो मे कुछ विशेष गुण प्रकट हो गये और यदि वे गुण उस खास परिवेश या वातावरण मे उपयोगी सिद्ध हुए, तो वे गुण फैलने के लिये, प्राकृतिक ढग से, चुन लिये जायेगे (स्वत , ऑटोमेटिकली, परिस्थिति-वश) और तबसे उन गुणो की वृद्धि ओर उनका 'विकास' होने लगेगा।

यह ध्यान देने की बात है कि 'विकास' से क्या मतलब निकाला जाय, इसका स्पष्टीकरण न हो सका था।

यह एक-दो दिन की तो बात थी नही। यह पृथ्वी बदलती गयी थी। प्रिकैम्ब्रिअन एरा (युग) के 4,500 मिलियन (दस-लाख) (याने 45,000 लाख) साल गुजश्त हो गये थे जबकि पृथ्वी के तल (धरातल) पर एक-कोषीय प्राणियो की सृष्टि सवरित हुई थी। कैम्ब्रियन (केम्बरी) युग को बीते 6000 लाख वर्ष, परमियन को 2750 लाख वर्ष, ट्रियासिक को 2250 लाख वर्ष, जुरासिक को 1800 लाख वर्ष, क्रिटेशियस को 1400 लाख वर्ष, इयोसिन को 700 लाख वर्ष, ओलिगोसिन को 500 से, 250 लाख वर्ष, मायोसिन को 250 मे 120 लाख वर्ष, प्लियोसिन को 100 से 20 लाख वष, प्लिस्टोसिन को 20 लाख से 10,000 वर्ष और होलोसिन को 10,000 वर्ष बीत गए। काल की इतनी बडी अवधि मे पशु-पक्षियो ओर पेड-पौधो की कितनी सारी जातियाँ (स्पीशीज) भू-तल पर उत्पन्न हुई और, कालान्तर मे, चाहे तो विलुप्त हो गई, अथवा 'विकसित' होती हुई किसी तरह अपने को कायम रख पाई।(45,000 लाख=450 करोड।)

डारविन का कहना यह था कि कुल-के-कुल प्राणी अपने एककोषीय पूर्वज (जो प्रिकैम्ब्रियन युग मे 45,000 लाख वर्ष पहले पैदा हुए थे) (जैसे, एक-कोषीय पौधे, ऐलगी, एक-कोषीय जानवर, भॉलभॉक्स, मेडुसा इत्यादि) से ही 'विकसित' हुए थे। साराश कि वही एक-कोषीय जीव सबके पूर्वजो का जनक-जननी था।

प्रत्येक स्पीशीज (प्राणी) इतनी अधिक सन्तान जनता (पैदा करता) है कि उनमे जीवन-निर्वाह के लिए आपसी सघर्ष होना अनिवार्य था। डारविन ने उसे 'स्ट्रगल फॉर एग्जिस्टेन्स' का नाम दिया (जिन्दा रह पाने के लिये लडाई) (विद्यमान रहने का सघर्ष) (जीवन के लिये जेहाद) (बने रहने के निमित्त दूसरो की हालत बिगाडने की कोशिश) (जान बचाने के लिये जान मारना)। और, ऐसी परिस्थिति मे जो किसी तरह भी अधिक 'बलवान्' या अधिक 'योग्य' रहे होगे, वे फलीभूत हुए, तो इसमे क्या आश्चर्य! अपने प्रतिपक्षियो (विरोधियो) की लाशो पर क्या आजकल भी आये दिन चुस्त-चालाक, योग्य, बलवान्, लोग खडे होने की चेष्टा नही करते? सन्ताप।

क्या बात है कि तोता (काकातूआ, बजरीगर) बोलता है आदमी की भाषा (बोली), लेकिन समझता खाक नही है और कुत्ता बोलता नही (आदमी की वाणी), लेकिन समझ लेता है आदमी की बात। लगूर आदमी को अपनी भाषा समझा भी पाता है, गूँगे-बहरे भी ऐसा करतब दिखलाते ही है। अमेरिका का मॉकिंग-बर्ड अन्यान्य चिडियो की नकल कर लेता है।

फिर, आदमी कैसे सीखता है अपनी (कोई) भाषा और कैसे करता है उसका व्यवहार ? और, वह कई एक भाषाएँ सीख ले सकता है अपने एक जीवन-काल मे, और उनका 'औपचारिक' और 'अनौपचारिक' व्यवहार भी करता है, उनका 'अर्थ'-'अनर्थ' भी समझता है, अपनी एक खास 'शैली' भी बना लेता है और वर्त्तनी के अपने नूतन ढब और ढग भी। जैसे वह 'भाषा' से खेल रहा हो, उसका उलट-फेर कर पा रहा हो।

"Humanity has in the course of time had to endure from the hands of science two great outrages upon its naive self-love The first was when it realized that our earth was not the centre of the universe (Galileo 1564—1642), but only a tiny speck in a world-system of a magnitude hardly conceivable The second was when biological research robbed man of his peculiar privilege of having been specially created, and relegated him to a descent from the animal-world (Darwin, 1859), implying an ineradicable animal nature in him But man's craving for grandiosity is now suffering the third and most bitter blow from present-dav psychological research which is endeavouring to prove to the 'ego' of each one of us that he is not even master in his own house, but that he must remain content with the veriest scraps of information about what is going on unconsciously in his own mind" [Freud, 1920]

हमारे मस्तिष्क के विभिन्न स्तर है, जिनके विषय मे हम स्वय अनभिज्ञ है। इस तरह हमारा 'मै' अपने व्यक्तित्व को भी ('अपने' को भी) नही जान पाता। (आदमी अपने ही 'शरीर' को और अपने ही 'मानस' को कितना कम जान पाता है ! शारीरिक सरचना तथा प्रक्रियाओ से अनभिज्ञ ! मानसिक स्तरो और उनकी सूक्ष्म व्यापार-वृत्तियो के प्रति एक अजनबी, उनसे अपरिचित !) (व्यष्टि की जानकारी नही, समष्टि का पता नही ! कोरे ज्ञानी !)

'मस्तिष्क' (ब्रेन) और 'मानस' (मनस्) (माइण्ड) एक ही वस्तु नही है। मस्तिष्कीय क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ (मेण्टल प्रोसेसेज) तथा 'मानसिक' शक्ति (शक्यताओ) (ऊर्जा) मे फर्क है। सृष्टि-विकास के क्रम मे पहले 'तन्त्रिका-तन्त्र', तब मस्तिष्क मिला, उसके बहुत काल बाद 'मानस' (और मानव) की सृष्टि हुई। मस्तिष्कीय क्रियाओ को हम देख सकते है, दिखला सकते है, प्रयोगशालाओ मे 'वैज्ञानिक' पद्धति (ढग) से उनपर अनुसन्धान कर सकते हैं, वे सब, मस्तिष्क और उसके कार्य, हमारी इन्द्रियो के द्वारा

पहचाने जा सकते है, हमारे प्रभाव मे आ (पड) सकते है, हमारे सस्कार उनपर हावी हो सकते है, नैसर्गिक प्रवृत्तियो (इन्सटिक्ट्स) से वे सम्बद्ध है। सृष्टि का जैसे-जैसे विकास होता गया, मस्तिष्क भी विकसित हुआ। लेकिन, जब 'मानव' की सृष्टि हुई, तब उसे 'मानस' (मनस्) का वरदान मिला। यह 'मानस' अपनी अनेकानेक विभूतियो से परिपूर्ण एक नवीनतम-विलक्षण शक्ति था, जो सिर्फ 'मानव'-जाति को उपलब्ध हो सका। 'मानस' (मनस्) 'मानव' के 'योग्य' था। 'मानस' स्वय अपने विषय मे अन्वेषण कर सकता था, वह आत्मा और परमात्मा से 'सम्पर्क' स्थापित कर सकता था, वह न सिर्फ 'ज्ञानवान्' था बल्कि 'विवेकी' भी था। वह सब (सभी) मानवो मे एक-सा था और ब्रह्माण्डीय चेतना (सार्वभौम चेतना) (कॉस्मिक माइण्ड) का अश और उपादान था। वह न व्यष्टि का था, न व्यक्ति-विशेष का। वह समष्टि की एक सर्वव्यापी शक्ति था, जो मानव-मस्तिष्क को छू पाता था। वह सर्वज्ञ परमात्मा और अल्पज्ञ मानव के बीच एक सूक्ष्म कडी है, एक दुभाषिया। एक सम्पर्क, एक सन्धि, एक व्याख्या। महत्तम विकास के लिये एक उपकरण। पार उतरने के लिये एक तरी। विश्व-सृष्टि के साथ एकात्म स्थापित कर पाने के लिये एक कमन्द।

मानव 'बन्दर की सन्तान' ही होता, तो वह बात भी कोई 'महत्त्व' नही रखती। कौन पूछने जाता है कि वेदव्यास, लियोनार्दो, जाबालि, हनुमान्, कर्ण, रैमजे मैकडोनाल्ड, न्यूटन इत्यादि-इत्यादि किसकी सन्तान थे। कितने लोग जानते है कि उनके बाबा के बाबा के बाबा कौन थे। और पिण्डा (पिण्ड-दान) देने के सिवा हम उनके लिये क्या कर पाते है! वे कोई भी रहे हो, उससे अपना क्या बनता-बिगडता? वर्त्तमान सामने खडा है, क्या यही पर्याप्त नही? इतना मालूम है कि सृष्टि के प्रथम प्रहर मे भी मैं था और आप भी थे। और, तबसे आप तो विकसित हुए ही हैं, इस नाचीज ने भी कुछ-न-कुछ प्रगति की ही होगी, नही तो आपके पसँगे (पासग) मे भी न आ पाता (देखिये, जातक कथाये)। और, जब मै पहले भी किसी शरीर का था, तब यह मेरा वर्त्तमान शरीर क्या असख्य पुनर्जन्मो का सबूत नही है? और, जब प्रत्येक शरीर मे ज्ञान और चेतना थी, तो बतलाइये, मै पूर्वजन्मो मे क्या अचेतन और निर्जीव-निस्तेज था? और, अगर 'विकास' मे अपना कुछ भी हाथ है, और अपनी कोई भी जवाबदेही, तो क्या मात्र एक मानव-जीवन समुचित और पूर्ण विकास के लिये आपको यथेष्ट और पर्याप्त दीखता है? चुनाचे हम प्रगति की राह पर जन्म-जन्मान्तर से अग्रसर होते रहे है और होते रहेगे। इसमे मानव-शरीर पाकर जो विकास पाया है, उसकी इतिश्री इसी जन्म मे (इसी जन्म के साथ) हो जायगी क्या? फिर, कोई मौका नही मिलेगा? सृष्टि के प्रारम्भ से सुअवसर प्राप्त होते रहे है, आज मानव-शरीर पाकर प्रगति रुक जानेवाली है क्या? सब किया-कराया मृत्यु के साथ चौपट हो जायगा? समाप्त हो जायगा? ऐसा तो अपने लिये सृष्टि के प्रारम्भ से इस वर्त्तमान जन्म तक नही हुआ। फिर, भविष्य मे अपने लिये कोई खास नया विधान

बननेवाला है क्या ? विकास और प्रगति का जो रास्ता सृष्टि के प्रथम प्रहर मे प्रारम्भ होकर आजतक चलता आ रहा है—और जिसकी मिसाल आप और हम दोनो है, वह यकायक बन्द हो जायगा क्या ?

डारविन ने सृष्टि-विकास-धारा के विषय मे जो धारणाय प्रस्तुत की, उनका सम्बन्ध विशेषत दैहिक विकास से सम्बद्ध था। प्रमाण (सबूत) मे उन्होने शारीरिक सरचनाओ पर जोर दिया था। मस्तिष्क (ब्रेन) (भेजा, दिमाग, मग्ज) और बुद्धि और चेतना की बाते सोची गई थी, लेकिन छिट-फुट सतही सबूतो के अलावा इस दिशा मे उन्हे कुछ भी उपलब्ध हुआ नही। आजतक कोई यह न बता सका कि इस धरती पर 'मानव' का कब प्रादुर्भाव हुआ। आस्ट्रेलिया, अमेरिका, चीन, तिब्बत, योरप, भारत और अफ्रीका की विभिन्न मानव-मानी-जाने-वाली जातियो की शरीर-सरचना मे पर्याप्त विभिन्नता देखी जाती है, जब एक ही कुनबे के लोगो की आपसी शारीरिक बनावट तथा मस्तिष्कीय कोटि और क्षमता (योग्यता) मे प्रत्यक्ष और काफी फर्क पाया जाता है, तब इक्के-दुक्के जीवाश्मो (फॉसिल्स) के आधार पर कोई दृढ धारणा बना लेना उचित नही जॅचता। जीवाश्मो की तादाद भी इतनी कम है कि आश्चर्य होता है कि इतने सारे 'अ-मानवो' और 'मानवो' के अवशेष आखिर क्या हुए, जो मिलते नही।

'मानव' की व्याख्या करने की जब बात चलायी जाती है, तब ऐन्थ्रोपोलॉजिस्ट्स (नृतत्त्वविज्ञानी) और आरकियोलॉजिस्ट्स (पुरातत्त्वज्ञ) बगले झॉकने लगते है।

जब यही पता नही कि सृष्टि की शृ खला मे प्रथम 'मानव' किसको कहा जाय, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि 'मानव' बन्दरो की सन्तान है अथवा यह कि मनुष्य और बन्दर दोनो ही किसी एक पूर्वज की सन्तति है, जो न 'मानव' था, न 'बन्दर', शायद एक 'बनमानुस'-सा कोई था। फर्क भी क्या पडता है, सच पूछिये तो ! 'बनमानुस' के वशज, 'बन्दर' की सन्तान अथवा 'वानर के भतीजा' इनमे से कोई भी पद (स्थिति) एक दूसरे से कम प्रतिष्ठित थोडे ही है ! (उनकी सम्भोग-प्रणाली, यौन-सम्बन्ध, दिन-चर्या, कन्दरो का आवास, और अस्थि-सरचना के आधार पर, कुछ वैज्ञानिको ने भालू और आदिम मानव मे समानता देखी और यह मत प्रस्तुत किया कि आदमी 'बन्दर' से नही, बल्कि आदमी और बन्दर दोनो भालू से अलग-अलग विकसित हुए है। तु० जामवन्त।) इसमे खीझने की भी कोई बात नही। हम मानवो ने अपने पूर्वजो को तो स्वय चुना नही था। और, न डारविन इत्यादि के पास अपना कुर्सीनामा रख छोडा था। हॉ, इतनी बात फायदे की रही कि हम और आप सगे-सम्बन्धी, 'भाई-बिरादर' निकले। और, जितने जीव-जन्तु, पेड-पौधे इत्यादि है, वे सब (और हम-आप भी) मूलत कोषो (सेल्स) से बने हुए प्राणी (लोग) है, जो आपसी भिन्नता के भ्रम मे पडे हुए है और प्राकृतिक अनेकता मे एकता नही देख पा रहे है। डारविन के अनुसन्धानो के मुताबिक यह 'एकता' शारीरिक स्तर पर (स्तरीय) होनी चाहिये। क्योकि, 'चेतना', 'मस्तिष्की' अथवा 'मानस' की एकता का कोई

समुचित और अकाट्य प्रमाण वैज्ञानिक नही दे पाये है। इसके कई कारण है। पहली बात तो यह है कि 'मानस' (माइण्ड) (मनस्) एक शक्ति है, एक अत्यन्त सूक्ष्म ऊर्जा, यह कोई स्थूल पदार्थ नही है। (विद्युत् की तरह)। इसे कोई दिखा-सुना नही सकता। यह अपने प्रभावो के द्वारा जाना जाता है और व्यक्त होता है। और, व्यक्त भी होता है अपने-आप मे, मानव के अन्तरतम मे। उसकी अन्तरात्मा मे। उसके अन्त करण मे। उसके द्वारा प्रभावित अन्त करण क्रमश स्थूल शरीर ओर इन्द्रियो को प्रभावित करता है। और, जब यह प्रभाव देह के द्वारा व्यक्त और प्रत्यक्ष होता है, तब दैहिक-सा दीखता है। ऐसी दुरवस्था मे मस्तिष्क की हद तक जाना भी दुष्कर है। और, 'मानस' (मनस्)? मजा यह है कि उसका ठीक-ठीक पता न स्थूल मस्तिष्क को चल पाता है, न सूक्ष्म अन्त करण को। ध्यान देने पर, सोचने पर, एक आभास-भर मिलता है। शारीरिक हरकतो से रोष (गुस्सा) का पता चल सकता है, भाव-मुद्रा से चिन्तन का, पर 'विवेक' का पता कैसे चले। वह अव्यक्त सूत्रधार (अन्त करण के लिये भी) पर्दे के पीछे रह जाता है। डारविन ने शारीरिक सरचनाएँ देखी, हड्डियाँ (कही पूरी ठठरी, कही अस्थि-पजर के आशिक अवशेष-मात्र, कही कक्काल की कोई एक हड्डी-भर) इकट्ठी की गई, जीवाश्म विश्लेषित हुए। वहाँ न 'विचार' था, न 'मानस', न 'मस्तिष्क' ही। और 'मानव'। वह शरीर-धारी है, पर शरीर नही, वह अन्त करण से परिपूर्ण है, पर न मस्तिष्क है, न मन, चित्, बुद्धि अथवा अहम्। 'मानव की खास शिफत है कि वह मानस-मण्डित है। आत्मा परमात्मा से, और मानस सार्वभौम चेतना से, किसी सूक्ष्म विधान के सहारे, समवायिकता के कारण, जुटा (सम्पृक्त) हुआ है। जैसे, वर्षा की बूँदे और ओस के कण उदधि से।

डारविन मस्तिष्क तक, फ्रॉयड अन्त करण तक, और योग-विज्ञान मानस तक पहुँच पाये है। परमात्मा तक कोई नही पहुँचा। कभी कभी, कही-कही, वही करुणासागर स्वय मानव तक पहुँचकर अपनी दिव्य छटा दिखला गया है। वैज्ञानिको को भी।

डारविन को स्रैष्टिक विकासानुगत चन्द विधानो का पता चल गया। मैण्डेल को भी। वैज्ञानिक अनुसन्धानो का यही तो अजाम होता है कि प्रकृति अपने अनेकानेक राजो (भेद, रहस्य, मर्म) की जटिल गुत्थियो मे से कुछ को ढीली कर देती है, शायद कुछ खोल भी देती है। पसीने से सराबोर राही को कभी अपने प्रयास से, कभी सयोग से, कभी सह-यात्रियो की मदद से, अथाह अमूल्य निधि के कोषागार मे कुछ दिव्य मुहरे मिल जाया करती है (तु० फ्लेमिंग, पावलव, केकुले, प्रभृति लोग।)

जरा ठहरिये, और ठहरकर सोचिये भी सही।

प्राकृतिक विधान से स्रैष्टिक विकास के अन्तर्गत प्रोटोप्लाज्म बना, कोष बने, एक-कोषीय और अनेक-कोषीय काया बनी, प्राण बने, चेतना बनी, बुद्धि बनी, अन्त करण बना। तत्पश्चात् मानस और मानव बने। क्रमिक विकास चलता रहेगा। कालान्तर मे महा-मानव (की सृष्टि) अवश्यम्भावी है और महा-मानस (की) भी।

मानव किस प्राणी का पुत्र और वशज है। हिम-मानव का? बनमानुस का?

लगूर, गोरिल्ला, चिम्पैंजी, ओरॉंग-उटॉंग का ? अथवा किसी ऐसे प्राणी का, जो उन सब प्रकार (जाति) के प्राणियो का पूर्वज रहा होगा ? सच पूछिये, तो यह सवाल उठता ही नही।

मानव का पूर्वज वह प्राणी था, जिसमे (को) मानस था। और जिसको मानस मिल गया था, वह मानव बन चुका था, वानर नही रह गया था। और, मानस की प्राप्ति मे 'ऑल-ऑर-नन लॅ' लागू हुआ होगा। जैसे, 'प्राण' के साथ भी निश्चय ही हुआ होगा। चाहे कोई जिन्दा रहता है या मर गया होता है। प्राण और मृत्यु की प्राप्ति सदा सर्वांश मे होती है। टुकडो मे न प्राण मिलते है, न मृत्यु मिलती है। वहाँ भी 'ऑल-ऑर-नन लॅ' ही चलता है। उसी भाँति 'मानस' की प्राप्ति भी सर्वांश मे हुई होगी। मानस टुकडो मे नही मिल सकता, क्योकि वह ऐसी वस्तु-स्थिति नही, जिसके टुकडे किये जा सकते हो। किसी एक प्रहर मे, किसी काया मे, मानस अवतरित हुआ होगा। और, तत्क्षण मानव का प्रादुर्भाव हो गया होगा। जैसे निर्जीव का जीवित हो जाना।

मै सृष्टि के क्रमिक विकासशाली विचारधारा का विरोधी नही हूँ। हो भी नही सकता, होना चाहता भी नही और विपक्षी बनने की जरूरत भी महसूस नही करता। मै दकियानूसी दलीलो मे जाना भी नही चाहता।

लेकिन, मैं यह कहना चाहता हूँ कि फूल (गुल) का फूल जाना एक बात है और कली की वृद्धि एक दूसरी बात। माना कि दिन और रात के बीच गोधूलि और उषा का भी अस्तित्व होता है, कि जाग्रदवस्था और गहरी निद्रा के बीच खुमारी आती है। फिर भी, दिन रात नही, जागता हुआ आदमी सोया हुआ नही हो सकता।

चाहे 'क्रम' जो भी रहा हो अथवा क्रमबद्धता नही भी रही हो, फिर भी मानस के आगमन के साथ मानव बना होगा और जैसे ही वह मानव बन गया होगा, वह वानर नही रह गया होगा। और, ऐसे मानस-सम्पन्न प्राणी के वशज 'मानव' के वशज माने जायेंगे, न कि वानर के।

जहाँतक बुद्धि के प्रदर्शन और उसके प्रमाण की बात है, यह कहना बिलकुल उचित और न्यायसगत होगा कि जिन मानवो ने घर्षण-द्वारा अग्नि का ईजाद किया, जिन्होने अन्न को खोज निकाला और उसकी खेती करनी शुरू की, जिनकी बारीक सूझ के फलस्वरूप पहिया (चक्र और चाक) बने, वे किसी भी तरह आधुनिक मानव से कम होशियार नही थे। हाँ, मनुष्य का वैज्ञानिक ज्ञान उस युग मे वहाँतक नही पहुँच पाया था, जहाँतक वह आज पहुँच चुका है। चुनाचे उन मानवो ने उतनी तकनीकी सफलता प्राप्त नही की थी, जितनी आज सम्भव है। यह उनकी लाचारी थी। न उनके मस्तिष्क का दोष था, न उनमे 'मानस' का अभाव था। उनकी बुद्धि भी कोई कम प्रखर नही थी। जिन्होने पत्थरो को काट-छॉटकर औजार बनाये थे, लकडियो के बने तीर-धनुष और बूमेराग का प्रयोग सीखा था, लोहा पैदा किया था, 'शून्य' (साइफर, जीरो) की कल्पना की थी, वे लोग आजकल के विद्वान्-वैज्ञानिको

से कम होशियार थे क्या ? और, आधुनिक मानव-समाज मे सभी एक-से बुद्धिमान् है क्या ? क्या कुल आदमियो की मस्तिष्की क्षमता और उपलब्धियाँ एक-सी है ? क्या समाज मे वज्रमूर्ख और पागल लोग नही हे ? क्या मानव के पूर्वजो मे कोई 'गदहा' नही था ?

मानस अव्यक्त शक्ति है। वह ज्ञानवान्-विवेकपूर्ण-प्रज्ञाशील है। वह अन्त करण को जानता है और उसका नियन्त्रण कर सकता है। जिसे व्यष्टि से समष्टि तक का आभास मिलता रहता है और जिसका सम्पर्क एक तरफ मस्तिष्क से है, तो दूसरी तरफ सार्वभौम चेतना से, और जिसमे परमात्मा (सर्वव्यापी, सर्वज्ञ) को छूने की क्षमता है और जो वैयक्तिक (अनेक) होते हुए भी सामूहिक (एक) है, अर्थात् मानव-जाति का मानस अनेक मस्तिष्को से सम्बद्ध होने हुए भी अपने समान गुण-धर्मो के कारण एक है। और, जहाँतक बुद्धिमत्ता और तकनीकी ज्ञान की बात है, तो यह भी सच मानिये कि हजारो वर्षो बाद हमारे अपने 'मानव'-बच्चे हमारी 'अत्याधुनिक' 'मूर्खता' पर तरस खायेगे और हमलोगो को अपने पूर्वज मानने मे हिचकेगे और झेपेगे। प्राकृतिक विधान मे विकास और प्रगति अनिवार्य है। दैहिक विकास जब समुचित पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था, तब वह मानव को सौपा गया, और साथ-ही-साथ मानव को मानस का अलौकिक वरदान भी मिला, क्योकि विकास प्राप्ति मे मानव-मस्तिष्क अब मानस को धारण करने के योग्य बन चुका था।

जिस क्षण मानव मानव बन गया होगा, वह वानर नही रह गया होगा और तब से उस मानव ने मानव-शिशु को जना होगा।

"　　　if variations useful to any organic being ever do occur, assuredly individuals thus characterized will have the best chance of being preserved in the struggle for life, and from the strong principle of inheritance, these will tend to produce offspring similarly characterized　This principle of preservation, or the survival of the fittest, I have called natural selection　It leads to the improvement of each creature in relation to its organic and inorganic conditions of life, and consequently, in most cases, to what must be regarded as an advance in organization" (— Darwin, Charles, 1859)

ऐसा मानते हैं कि 'प्राण' (लाइफ) का प्रादुर्भाव इस धरती पर शायद दो अरबो वर्ष पहले (2000,000,000 वर्ष पूर्व) हुआ था। जीवन का प्रारम्भ जल मे हुआ होगा। समुद्र मे विकास प्राप्त करने के बाद कोई प्राणी सागर के तट पर पहुँचा होगा। और, तब से (शायद 1000,000,000 वर्ष पहले) कोई जीव—पौधा अथवा जन्तु—थल पर रहने लगा होगा। आज उन प्राथमिक प्राणवान् जीव-जन्तुओ, पेड-पौधो, का कोई निशान नही मिलता। वे एककोषीय अमीबा, पारामिशियम इत्यादि से भी प्राचीन थे। उनका कोई अवशेष, कोई चिह्न, कैसे रह पाता। कैम्ब्रियन (कैम्बरी) युग (600,000,000 वर्ष पहले) के बाद से जीवन्त प्राणियो के प्रमाण

मिलने लगते है। प्लिस्टौसीन (ग्लैसियल) (प्रातिनूतन) काल करीब 2,000,000 ($=2\times10^6$) वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ और इसी काल मे जीवाश्मो (अवशेषो) की भरमार-सी दिखाई पडने लगती है। पर्पटीय (क्रस्टेशियन) प्राणी सबसे आदिम अवशेषो के आगार है, जो 500,000,000 वर्ष पहले से पृथ्वी की चट्टानो मे दबे पडे रहे है। पता नही, आगामी इस दुनिया मे कब आया, शायद 2,000,000—4,000,000 वर्ष पहले आदमियत आयी और तबसे वह विकसित होती गयी, अपना रग-ढग बदलती चली प्रगति की राह पर। आधुनिक बन्दरो के पूर्वज 25,000,000 से 50,000,000 वर्षो पहले धरातल पर कूद-फाँद करने लगे थे और स्तनपायी (मैमेल्स) जानवर शायद 60,000,000 वर्ष पूर्व जनमे थे। आधुनिक बन्दरो का उत्पत्ति-काल सम्भवत 10,000,000 वर्ष होगा (गिब्बन, औरॉग-उटॉग, चिम्पैजी, गोरिल्ला इत्यादि)।

शारीरिक विकास के साथ तन्त्रिका-तन्त्र (नर्भस-सिस्टम) का विकास हुआ। ज्ञानेन्द्रियाँ प्रस्फुटित हुई। मस्तिष्क का विकास हुआ। आदमी के मस्तिष्क का वजन करीब तीन पाउण्ड (1 3–1 5 किलोग्राम), हाथी का दस पाउण्ड (4 5–5 किलोग्राम), ह्वेल का पन्द्रह पाउण्ड (6 8–7 किलोग्राम) के लगभग होता है। गोरिल्ला के ब्रेन को तौल (करीब एक पाउण्ड या 0 454–0 50 किलोग्राम) आदमी के मस्तिष्क की तौल से कम है। मस्तिष्क के विभिन्न भागो का विकास समानान्तर नही रहा। बहुतेरे जानवरो के बहिःकरण, इन्द्रियाँ, आदमी की इन्द्रियो से अधिक शक्तिशालिनी बन गई। जैसे चमगादडो की श्रवण-शक्ति, कुत्ते की घ्राण-शक्ति, गीध की दृष्टि इत्यादि-इत्यादि। छुई-मुई (लजौनी) (लाजवन्ती, अलम्बुषा) क्या किसी नवोढा से कम नाज-नखरे करती है! मस्तिष्क के ललाट-खण्ड (फ्रौण्टल लोब) के अग्रिम भाग के विषय मे वैज्ञानिको (ऐन्थ्रोपोलॉजिस्ट्स, बायलॉजिस्ट्स, फिजियोलॉजिस्ट्स तथा साइकोलॉजिस्ट्स) ने यह समझा था कि इसकी सरचना-क्रिया मे मानव-मस्तिष्क-विकास का रहस्य छिपा हुआ है। लेकिन, आधुनिक अन्वेषणो के द्वारा उनकी धारणाएँ भ्रान्त प्रमाणित हुई।

वैज्ञानिको का विश्वास, उनकी उम्मीदे, तब आदमी के बिहेवियर्स, चेष्टाओ, चर्याओ और आचरणो पर आ टँगी और लटकी रही। वे आज भी वही अँटकी हुई हे। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव की महत्ता का भेद उसके प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम) मे छिपा है, लेकिन वह कही खास स्थान पर नही पाया जाता। ललाट-खण्ड (फ्रौण्टल लोब) को काट देने से भी आदमी अपनी विशेषता से च्युत नही होता। उसकी चिन्ताएँ, फिक्र और परेशानियाँ घट जाती है, उनका महत्त्व घट जाता है, थोडी अन्य प्रकार की तब्दीलियाँ भी हो जाती है, मस्तिष्की प्रतिक्रियाओ मे कुछ फर्क पड जाता है, लेकिन आदमी मनुष्य ही बना रह जाता है। प्रमस्तिष्क (सैरीब्रम) का अर्धभाग (दाहिना या बायाँ) भी काटकर अलग कर दिया जाय, फिर भी इन्सान होमोसेपियन ही रहता है, उसके मानवीय व्यक्तित्व मे कोई विशेष अन्तर नही पडता। शायद मानव का मानस उसके मस्तिष्क मे सर्वव्यापी है। सम्भवत , प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम)

ही वह उपकरण (तु०, रेडियो, कम्प्यूटर) है, जिसके माध्यम से मानस मानव-मस्तिष्क को विशिष्टता प्रदान कर पाता है। साइवरनेटिक्स और सेरीब्रेशन मे कुछ तादात्म्य, कुछ तनिक समानता, जो दृष्टिगोचर होती है, वह 'मानस' की माया को और भी गूढ और रहस्यात्मक बना डालती है।

मानव-मस्तिष्क का विकास-धारा से सम्बन्धित (सम्बद्ध) धारणाओ का आधार ठोस नही है। खोपडी और ठठरी मे न 'ब्रेन' है, न 'मानस' होता है।

ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के क्रम मे प्राइमेटिज (नर-वानरगण) की कोई जाति थी, जिससे दो धाराये फूटी थी। एक की वशवृद्धि के अन्तर्गत मानव का जन्म हुआ और दूसरी धारा के वशज आजकल की वानर जातियाँ है।

[Order—Primate (Tree-shrews, lemurs, tarsiers, monkeys, apes)
Suborder—Anthropoidae (Monkeys, Apes and Man)
Superfamily—Hominoid*ea* (Great apes and man)
Family—Hominid*ae* (Tool-making primates)
Genus—Homo (All living and extinct human beings)
Species—Homo sapiens s-apiens]
[Animal → Vertebrate → Mammal → Primate → Anthropoid → Hominid → Homo → → S-apiens]

अगर रामायण की कथा सत्य है, तो बालि, सुग्रीव, अगद इत्यादि, शरीर से वानर थे, लेकिन मेधा से मानवीय। 'स्वभाव' से वे अपनी बन्दर-प्रकृति को नही छोड पाये थे। हो सकता है कि वह जीनम कालान्तर मे लुप्त हो गया हो। लेकिन, पूँछ-वाली मानुषिक ठठरी के आधार पर उस वश का पता पाना आसान नही होने का। हो सकता है, वे किसी पानगिड या होमिनिड परिवार के प्राइमेट रहे हो या किसी अन्य शाखा के प्रतिनिधि। [ऐसा भी हो सकता है कि 'वानर' और 'भालू' इत्यादि महज उपनाम और/या कुलनाम (सरनेम) हो, जैसे वर्त्तमान मे व्यवहृत 'सिह', 'सा(शा)ही', 'सादा', 'शेर' इत्यादि]। [यह भी सम्भव है कि 'वानर' बानरजी, बैनर्जी, बन्दोपाध्यायजी इत्यादि का अपभ्र श या 'आर्षप्रयोग' रहा हो !] ['चूडीवाला', 'त्रिपाठी', 'चतुर्वेदी', रसूलपुरी', 'शास्त्री'।]

नृ-विज्ञानी (एन्थ्रोपोलॉजिस्ट्स) यह भी मानते है कि मनुष्य की सृष्टि सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका मे हुई। [जब गुज ग्लेसिएशन उत्तरी अक्षाशो (लैटीट्यूड्स) मे बढता आ रहा था और पृथ्वी का उत्तरी भाग शीत से जकडा हुआ था, प्राणियो का वास-स्थान बनने के नाकाबिल!] लेकिन, भूविज्ञानी (जियोलॉजिस्ट्स) यह भी जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीका और भारतवर्ष इत्यादि पहले एक ही भू-खण्ड के जुडे हुए हिस्से थे। अफ्रीका तथा दक्षिण भारतवर्ष के आदिम निवासियो के बीच कोई ककाली (स्केलीटल) समानता देखी गयी है या नही, नही जानता।

आज के मनुष्य—कुल—विश्व-भर के—सब राष्ट्र, सभी जातियाँ—'होमो-सेपीयन' (='वाइज मैन'=) स्पीशीज के है।

पेलिऑण्टोलॉजिस्ट्स को प्राइमेट्स (प्राइमेटीज, नर-वानरगण) के जीवाश्म (फॉसिल्स) बहुत कम प्राप्त हुए है। ककाल के अवशेषो मे पूरे-के-पूरे अस्थिपजर दुर्लभ रहे। कभी किसी अश की एक-आध हड्डी मिली, कभी सही-सलामत खोपडी-भर, कभी वह भी टूटी-फूटी। आश्चर्य है कि इतने सारे प्राइमेट्स (प्राइमेटीज) जो मरे होगे, उनका हाड भी कौन चबा गया, जो वे नही मिलते। अगर यह भी माना जाय कि मुरदाखोर (शवभक्षी) पशु-पक्षियो ने उनका सफाया कर दिया होगा, तो भी उनकी मास-रहित हड्डियाँ तो बचनी चाहिये थी। भूकम्प, सैलाव इत्यादि ने सबका सत्यानाश कर उनको क्या दबोचा नही होगा? ग्लेसियर्स, भॉलकैनिक एरपशस (ज्वालामुखी विस्फोटो) के बीच सब प्राणियो का काम तमाम नही हुआ होगा?

मनुष्य का पूर्वज जब वृक्षो पर से कूदकर जमीन पर आ बैठा और पेडो पर रहने के बजाय (अतिरिक्त) स्थलचारी (टेरेस्ट्रियल) जीवन व्यतीत करने लगा, तब उसकी शारीरिक सरचनाओ मे कुछ अनुकूल उलट-फेर हुए। वह सीधा खडा होकर दो पैरो पर चलने लगा। उसकी खोपडी उसकी गर्दन पर सीधी बैठने लगी। उसके हाथो (हस्त) और पैरो (पाद) मे, भुजाओ और टॉगो मे, फर्क आ गया। उसके हाथ का अँगूठा (अगुष्ठ) अन्य (सभी) अँगुलियो से अलग अस्तित्व रखने लगा और हाथ की अन्य चारो (कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी) अँगुलियो को पूर्णत (जड से अग्र-सिरा तक) छूने लगा। उसकी तर्जनी (देशिनी) हाथ की दूसरी अँगुलियो से स्वतन्त्र, स्वाधीन और स्वच्छन्द हो गई। उसकी श्रोणी (गोणिका, पेलविस) वदल गयी। उसकी खोपडी (करोटि, स्कल, कपाल, क्रेनियम) की सरचना मे भी सुधार हुआ। स्वरयन्त्र (लैरिंग्स) और गला (थ्रोट) बदला। दाँत बदले। जबडे बदले। हथेली और तली की, हस्तागुलियो और पादागुलियो की स्तनाग्र (अकुर)-सदृश मेडो (कूट) (पैपिलरी रिजेज) तथा कुच (क्रीजेज) और सीताओ (फरोंज) मे विकास हुआ और वे भी बदल गयी। और वे, ऐसी बदली कि हस्त और पद-तलो के अधिचर्म पर आच्छादित इन व्यक्तिगत मेड-वैचित्र्यो का विस्तार आदमी-आदमी का अपना-अपना निजी, वैयक्तिक, अपरिवर्त्तनशील, 'हस्ताक्षर' या 'सही'-सा अकाट्य पहचान बन गया कि जिनकी प्रतिकृतियो (पैटर्न) के आधार पर अगुलाक-विज्ञान (फिगरप्रिण्ट-साइन्स) की नीव डाली जा सकी।

साथ-साथ प्रमस्तिष्क (सेरीब्रम) की आकृति मे भी परिवर्त्तन हुआ। हुआ ही होगा, क्योकि 'मस्तिष्क' न जीवाश्म मे मिला, न कपाल मे। और न खोपडी की सरचना और उसकी मस्तिष्की क्रियाओ मे किसी भाँति का सामजस्य ही पाया गया।

आधुनिक मानव-जाति और उसके तथाकथित पूर्वजो (पॉनगिड्स-होमिनिड्स) के बीच सतत प्रवहमाण अविरल धारा की अविच्छिन्नता-निरन्तरता-अखण्डता-सन्ततता (सान्तत्य) की गवाही देने के लिये पर्याप्त सश्लिष्ट (लिक्ड)-सबूत भी गायब थे (मिसिंग लिक्स)।

[टिप्पणी   लगूर की शक्ल के प्राइमेटीज, अथवा नर-वानर या वन-मानुष जाति के प्राणी। विवादात्मक ठठरियाँ। प्रोप्लिओपिथेक्स (इजिप्ट), इजिप्टोपिथेक्स, ड्रायोपिथेक्स (अफ्रीका) (केनिया), रामापिथेक्स (भारत), ऑस्ट्रालोपिथेक्स (दक्षिण अफ्रीका), पारान्थ्रोपस, जिनजानथ्रोपस, होमो हाबिलिम, पिथेकानथ्रोपस एरेक्टस (जावा), सिनानथ्रोपस पेकिनेनसिस (पीकिंग, चीन), होमो एरेक्ट्स जो सीधा आदमी की तरह चलता था और जिसकी खोपडी की धारिता (कैपेसिटी) (मानव-खोपडी की तरह) 1,000 *ml* – 1,300 *ml* (1,000*cc* – 1,300*cc* क्युबिक सेण्टीमीटर) या उससे अधिक थी, वह 400,000 वर्षो आगे इस पृथ्वी पर रहा करता था। वह पत्थर को तोड-फोड, छाँटकर उनके औजार-हथियार बनाता था, उसने अग्नि का आविष्कार किया था, मृगो (हिरण) का शिकार करता था और मास-भक्षी था। ऐसा भी सम्भव है कि वह नरभक्षी (मनुजाद) रहा हो (जैसी अब भी कुछ आदिम जातियाँ है)। जिन खोह, गुफाओ (कन्दरो) मे वह रहता था, उनमे इन कर्म-कलाप के, उसकी दिन-चर्या के चिह्न मिले है।

इसके बाद सृष्टि की धारा जैसे ऑख से ओझल हो जाती है। मानो, वह सोता कही लुप्त हो गया हो। 300,000 सालो पहले होमो एरेक्ट्स की जाति विलुप्त हो जाती है। एक पटाक्षेप होता है। मानो खेल स्थगित हो गया। रोशनी गुम हो गयी। होमो एरेक्ट्स और उसकी औलाद जैसे धरती पर से उठा लिये गये। सृष्टि का रगमच खाली पड गया, होमो एरेक्ट्स जैसे प्राणियो से वह रिक्त हो गया। फिर, उस नाटक के, उम खेल की, अभिनय की झिलमिल मे, उस द्वाभा के धुँधले प्रकाश मे करीब 2,50,000 वर्ष बीत जाते है। पर्दे के पीछे क्या सब होता रहा, राम जाने।

करीब 75,000 वर्षो पहले पर्दा हटता है और अब देखिये, निहारिये, गौर कीजिये। सृष्टि के रगमच पर वह कौन आ खडा हुआ है? वह है होमो सेपियन नियानडरथैलेनसिस (मेधावी मानव) (समझदार आदमी)। एक अन्तराल के बाद मध्यान्तर, एक 20,000 वर्षो का क्षणिक विराम और 25,000 वर्ष पहले सजा-सजाया, मनुष्योचित भाव-भगिमा से भरपूर, मानवीय गुणाभरणो से सुसज्जित, सृष्टि का प्यारा-पुतला, नैन (नयन) का तारा, मानव का पूर्वज (होमो सेपियन्स सेपियन्स) (पश्चादुषस्य मानव) आ विराजता है। रगमच की चकाचौध करनेवाली रोशनी मे देखिये, उस मानव-के-पूर्वज की आभा। यह 'क्रो-मैगनन मैन' कैसा मानवीय दीखता है! ठीक आधुनिक मानव-जैसी आकृति है उसकी। वह लम्बा है, सीधा खडा होता है, उसकी खोपडी के आकार-प्रकार-परिमाण (औसत 4,000*ml*) आजकल के अपने ही लोगो जैसे है! वह पत्थर के चकमक, सुन्दर औजार-हथियार बना सकता है! वह अस्थियो से सूई-सूआ बना लेता है! उसको कला से भी दिलचस्पी (अभिरुचि) है! वह मूर्त्ति बनाता है, अपनी गुफाओ की दीवारो पर चित्र खीचकर उन्हे सजाता भी हे!

सुना आपने? धरती पर मानव का अवतरण हुआ है! उसके 'पूर्वज' का पता कही खो गया है! प्रकृति ने जाने कैसी विस्मृति उत्पन्न कर दी! कैसी माया

फैला दी ? अन्धकार यकायक आलोकित हो गया है। ठहरिये, वह देखिये, 'मानव' आमने-सामने खडा है ! उसके जनक-जननी की खोज कीजियेगा ? जात पूछियेगा ? न वह बतला सकता है, न आपको पता चलेगा। वह नेपथ्य से आया है। अन्धकार (अमा) से कढ कर, पर्दे की ओट से। अमा ! वह 'वोट' के द्वारा नही भेजा गया है ! न किसी मामा के घर से भाग कर आया है ! इन 5,000 वर्षो के अन्तर्गत 'मानव' मूलत जैसा तब था, वैसा ही अब है। उसमे कुछ भी फर्क नही पडा है। उसका चेहरा-मोहरा (आकृति) (शारीरिक और मस्तिष्की सरचना) उसकी मस्तिष्की क्षमता, उसकी सवेदनशीलता, उसकी भावुकता, उसकी स्मरण-शक्ति (याददाश्त), उसकी ज्ञानोपार्जन-शक्ति, उसकी बुद्धि, उसका तर्कणा-कौशल, उसकी समझ-बूझ और उसकी योग्यता, पूर्ववत् रही हे। उसमे कोई परिवर्त्तन नही हुआ है।

फिर, इन 25,000 वर्षो मे 'मानव' ने क्या कुछ भी प्रगति नही की ? विकास की धारा क्या अवरुद्ध हो गई ? सदा के लिये ?

ऐसा नही होने का।

यह अवश्यम्भावी है कि फिर पटाक्षेप होगा। और, एक अन्तराल के पश्चात्, एक उद्भवन-(ऊष्मायन-) अवधि (इनक्यूबेशन पीरियड) के बाद, सृष्टि एक महा-मानव की स्पीशीज महा-मेधा मण्डित मानस का अधिकारी होगा और महत्तर क्षमता का उपहार लेकर वह अवतरित होगा।

तबतक जैसे प्रकृति और सृष्टि होमो-सेपियन्स को लेकर अनुसन्धान और अन्वेषण कर रही हो और अनुभव प्राप्त करती जा रही हो।

महामानव की सृष्टि कब अवक्षेपित (प्रेसीपिटेट) होगी, यह कहना मुश्किल है। भविष्यवाणियो का क्या ठिकाना, लेकिन 25,000 वर्षो लगभग की अवधि का अनुमान असगत नही प्रतीत होता।

मासाहारी जानवरो की सख्या घटती जा रही है, घटती जायगी। भेडिया (हुँडार, वृक), पैन्थर (राजगृह इत्यादि का काला पैन्थर तो निर्मूल हो गया), जागुआर, चीता, बाघ, सिंह, यहाँ तक कि कुत्ते भी, तीव्र गति से घटते जा रहे है और उनके बहुतेरे स्पीशीज (जातियाँ) लुप्त-प्राय हो गये। बाज-शिकरे भी कम दिखाई पडते है। गाँवो मे सियार-लोमडियो की तादाद भी घटती जा रही है। जैसे-जैसे गाँव-शहर साफ-सुथरे होते जायेगे, गीध-कौवे भी गायब हो जायेगे। कीडे मारने की दवाओ (इनसेक्टिसाइडस) के अनियन्त्रित प्रयोग से गाँव के पशु-पक्षियो की सख्या घटती जा रही है। मेकेनाइज्ड खेती और हरित-क्रान्ति की सफलता के साथ, कृत्रिम प्रोटीन फैक्टरियो (कारखानो) मे बनने लगेगे। जानवरो के पालन की असुविधा के कारण उनके पालने-पोसने का शौक (रिवाज) घटेगा। घोडो के साथ ऐसा हो चुका है। ढोर-डाँगर (मवेशी) के साथ भी होगा। भेड-बकरियो के बनिस्वत भी। डेरी-उद्योग (डेअरी-प्रोडक्ट्स) से सम्बद्ध खाद्य-वस्तुओ के प्रयोग की लोकप्रियता घटती जा रही है। चमडे के बदले प्लास्टिक का इस्तेमाल हो रहा है। हृदय-रोग से

बचाव के निमित्त (लिये) ऐसा उचित भी है। मास-भक्षण से जिन्दगी घटती है, ऐसा डॉक्टर कहने लगे है। अण्डे तो हानिकारक है ही। इन कारणो से लोग शाकाहारी होते जायेंगे।

मैथुनिक सृष्टि के विषय मे चन्द बाते सोचने की है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर-वधू के बीच एक तीसरा आदमी आनेवाला है। इसका (इस बात का) एक धुँधला, अस्पष्ट, आभास पहले से ही मिलने लगा है। दाल-भात मे मूसलचन्द ने हस्तक्षेप करना शुरू किया है। (१) परिवार-नियोजन के तरीको का बाहुल्य और 'पिल' बाँटनेवाले, मन्त्रणा देनेवाले लोग, (२) जीवाणुओ पर सफल अनुसन्धान और उनके नियन्त्रण तथा परिचालन (मैनिपुलेशन) की आसन्न सम्भावनाएँ (३) कृत्रिम बीजारोपण तथा शुक्राणुओ (स्पर्म्स) को बहुत दिनो तक सुरक्षित रखने के उपाय, (४) कृत्रिम गर्भाधान (क) 'टेस्ट-ट्यूब बेबीज', (ख) यूटरस (गर्भाशय) का प्रतिरोपण, (ग) अण्डाणु का कृत्रिम निषेचन और प्रतिरोपण, (५) यौन-सम्बन्ध की स्वतन्त्रता, गर्भपात की वैधानिक अनुमति (परमीसीभ सोसाइटी), (६) एक अण्डाणु का दो भिन्न शुक्राणुओ के द्वारा निषेचन की शक्यता [(क) कुछ निम्न-श्रेणी के जीवो मे इसकी सम्भवता, (ख) हो सकता है कि कुछ यमज बच्चे इसी तरह जनमते हो, (ग) कुछ जानवरो मे स्वभावत एक मादा का कई नरो के साथ सम्भोग, (घ) वेश्या-वृत्ति की परम्परागतता और उसकी वृद्धि, (ङ) पालिनेशन (परागण) के प्राकृतिक तरीके] [हायालुरैनुडेज और शुक्राणु के प्रवेश से सम्बद्ध अण्डाणु के किण्वक (एन्जाइम) की खोज।] (७) खाद्य पदार्थ और स्थान की कमी तथा आबादी की बाढ। [समुद्र-सतह पर या जल मे कृषि, खेती-बारी, की योजना।]

यद्यपि यह एक विचित्र और अप्रत्याशित बात होगी, फिर भी सम्भव है कि आगे चलकर मैथुनी सृष्टि द्वि-लिगी न रहकर त्रि-लिंगी बन जाय। (टि० त्रि-लिगी सृष्टि मे स्पष्टत जनसख्या स्वत घटेगी और मानव-जाति की किस्मे बढेगी, सहकारिता बढेगी)। खाद्यान्न के पेड काफी लम्बे हो, महामानव की जाति मे सिर्फ ठिगने (बौने, पिग्मीज) लोग हो, जिनकी भूख महज थोडी हो ओर जिनकी जैविक (बायलॉजिकल) जरूरते कुछेक दानो से ही पूरी हो जाया करे। जिनका मानस महान् हो, उनकी छोटी-छोटी कोठरियो के मकान जमीन पर नही, आकाश की ओर फैले, उनकी लम्बाई-चौडाई कम और उनकी अनेक मजिलो की ऊँचाई अधिक हो। चूँकि, इन उपायो से मानव की समस्याओ का समाधान हो सकता है और महामानव की नस्ल मे और अधिक (वेराइटीज) तथा परस्पर-निर्भरता समत्व तथा एकात्मत्व स्थापित किया जा सकता है, इसलिये सम्भव है कि प्रकृति सृष्टि को इसी रास्ते ले चलने की बात 'सोच' रही हो। और परोक्ष मे चुपचाप उचित अनुसन्धान भी करती जा रही हो। (टि० मैलेरिया के इलाज के लिये मेपाक्रीन, एटेब्रिन, क्विनाक्रिन,—कई लाख कनेरी पर प्रयोग करने के बाद मार्केट मे लाया गया।) (टि० अण्डाणु के पोलर बडीज का बहिष्कार)। (त्रैलिगी सृष्टि पर प्रयोगात्मक अनुसन्धान) (As usual Nature might

have started its researches already on its 'guinea-pigs', the plants, first) शायद जब वह अपने नये अनुभवो से परिपूर्ण हो जायगी, तब एक बार फिर प्रलय होगा। आधुनिक युग का भूगोल और उससे सम्बद्ध पूरी सृष्टि अचानक बदल जायगी। ऐसा होना असम्भव नही है, लेकिन जबतक वह फलित होगा, तबतक एक 10 से 100 करोड वर्ष की अवधि का अन्तराल बीत गया होगा।

पहले अण्डा बना या कि बच्चा ?

इस प्रश्न का उत्तर अब आसान लगता है। अण्डा मूलत एककोषीय है। (तु० asexual reproduction, self fertilization etc also) अण्डाणु मे फर्क (परिवर्त्तन) लाना आसान है, चूजे को बदल कर दूसरी किस्म का जानवर बना देना मुश्किल। म्युटेशन-ऑव-जीन्स (जीवाणु मे उत्परिवर्त्तन) होता ही है, बच्चा अपनी 'किस्म' (रूप-रग) नही बदल सकता। इसलिये पहले अण्डा हुआ होगा, तब बच्चा। क्योकि सृष्टि अन्तत जीवाणु (अण्डा) (एककोषीय 'अण्डा') (निषेचित अण्डाणु) का ही कमाल है।

कई कारणो से आजकल के प्रचलित, व्यवहृत और लोकप्रिय क्रमिक-स्रैष्टिक विकास के सिद्धान्त सोलह आने (शत-प्रतिशत) सही नही मालूम पडते। ऐसा लगता है कि सतत प्रवहमाण विकास की धारा मे अवरोध होते रहे है और वे अनिवार्यत तथा विधानानुसार हुए है। अवरोध (विराम) के काल मे सृष्टि ठमक-सी गई हो, सुस्ता रही हो, विश्राम कर रही हो। 'विश्राम' से मेरा मतलब 'अकर्मण्यता' अथवा 'दिन काटना' से नही है। मैने उसका व्यवहार इनक्यूबेशन पीरियड, उद्‌भवन-(ऊष्मायन) अवधि, के अर्थ मे किया है।

सृष्टि के विकास का क्रम आगे बढता है, फिर रुक जाता है, फिर आगे बढकर ठहर जाता है, फिर आगे बढता है। 'रुकना', अर्थात् गति का धीमा पड जाना। अनुमानत, ये पडाव निम्नोकित स्थलो अवस्थानो और मजिलो पर पडे होगे (१) निर्जीव और जीवन्त। प्राण-प्रतिष्ठा। (२) (क) एककोषीय और (ख) बहु-कोषीय जीव, (ग) अयौन (अलिगी) और मैथुनी, (लैगिक) सृष्टि (३) जल-जन्तु और थल-जन्तु, (४) जीव-जन्तु और पेड-पौधे, (५) थल-चर और नभ-चर, (६) डिनो-सॉर्स, (७) चेतना का प्रादुर्भाव, (८) तन्त्रिका-तन्त्र (नर्भस-सिस्टम) की उत्पत्ति, (९) अण्डज, पिण्डज और स्तनपायी जानवरो मे विभेद, (१०) शाकाहारी और मासाहारी, (११) वृक्ष-वासी जानवर, (१२) चतुष्पद और द्विपद, (१३) मस्तिष्क की प्रधानता और उसका विकास, (१४) वानर, (१५) नर-वानर और वन-मानुष (१६) अवमानवीय (सब-ह्यूमन) प्राणी, (१७) प्रज्ञा का पनपना और प्रौढता-प्राप्ति, (१८) (क) मानव का जन्म और साथ ही (ख) मानस का विकास और (१९) विवेक का उदय होना। (२०) सभ्यता, सस्कार और सस्कृति।

सृष्टि का प्रवाह कभी द्रुत गति से और कभी मन्द-मन्थर गति से चला है। कही-कही पर जरा रुककर। हृदय के सिस्टोल (प्रकुचन), डायस्टोल (अनुशिथिलन) के

तर्ज पर। एक अभिनव (नाटक) के विभिन्न दृश्यो के बीच पटाक्षेप की नाई, मध्यान्तर-अन्तराल (इण्टर्वल) की तरह। जैसे कोई किये हुए का, अतीत का, लेखा-जोखा ले रहा हो। जैसे कोई अपनी तबतक की उपलब्धियो का सघटन-समाहरण (कॉनसोलिडेट) करने चला हो, जैसे उसे पुष्ट-पक्का कर चकबन्दी की जा रही हो, जैसे (बैटकर) आगे की (अग्रिम) यात्रा (दौड) के लिये सोच-विचार किया जा रहा हो, तैयारियाँ की जा रही हो। जैसे महाभारत-युद्ध मे प्रत्येक दिन की लडाई के बाद (रात्रि मे) पश्चात् (अन्त मे) दूसरे दिन (की लडाई) के लिये योजनाये बनायी जाती थी।

कहना नही होगा कि (मेरा) यह विचार महज खयाली (अनुमान, अटकलबाजी) नही है। इसके दो-चार प्रमाण देता हूँ।

(१) पहला सबूत है प्राइमेटीज के विकास-क्रम मे होमो एरेक्टस की उत्पत्ति और तत्पश्चात्, एक अन्तराल के बाद, एक-ब-एक होमो सेपियन्स का आगमन, फिर एक पटाक्षप और तदनन्तर आधुनिक मानव (होमो-सेपियन्स-सेपियन्स) का सृष्टि के क्षितिज पर अकस्मात् और 'अनायास' उदय हो जाना। जैसे, नेपथ्य (शाला) (ग्रीन-रूम) से शृ गार कर कोई नटी रगमच पर झम्-से आ खडी हुई हो। (२) दूसरा प्रमाण डिनोसॉर्स (डाइनासौर, दनुसरट) से सम्बद्ध है। 100,000,000—75,000,000 (तकरीबन 7 से 10 करोड) वर्ष पहले की बात है। तब पृथ्वी वैसी नही थी जैसी आज है। एक दूसरी समा थी, एक दूसरी रौनक थी। न पृथ्वी का नाक-नक्शा आज की तरह का था, न उसपर उगनेवाले पेड-पौधे वैसे थे, जैसे आज देखे जाते हे और न आज के जैसे पशु-पक्षी थे। वह एक विचित्र दुनिया थी, अपने आधुनिक जगत् (ससार) से इतना-इतना भिन्न कि उसकी ठीक-ठीक कल्पना करना भी असम्भव-सा, नामुमकिन, लगता है।

आज हम धरती पर जो भी दृश्य देखते है, उनमे से कुछ भी उन दिनो न था। वह एक बिलकुल दूसरी (एलाहदा) दुनिया थी, जैसे एक 'दूसरी' ही पृथ्वी।

परमियन (कार्बोनिफेरस, पेलिओजोइक) युग को समाप्त हुए पच्चीस-तीस करोड वर्ष बीत गये (250,000,000–300,000,000 वर्ष)। तब मेसोजोइक युग आया। इसकी अवधि करीब पन्द्रह-बीस करोड वर्ष की थी—(250,000,000 से 50,000,000 वर्ष पहले) (प्रिकेम्ब्रियन कैम्ब्रियन युग मे) हिमालय और विन्ध्य-पहाडियाँ कब की (साठ से सौ करोड वर्ष पहले) बन चुकी थी। हिमालय से सटा उसके दक्षिण मे सिन्धु-नदी से गगा तक की घाटियो के बदले जो समुद्र का जल लहराया करता था, उसकी रूप-रेखा बदलती जा रही थी और भारतवर्ष हिमालय के साथ जुटता जा रहा था। (करीब 25 करोड वर्ष पहले)। उत्तर और दक्षिण भारत के बीच पश्चिम मे रन ऑव-कच की ओर से आयी हुई समुद्र की धारा भारत के उन दोनो हिस्सो का अलग किये हुए थी। गोण्डवानालैण्ड मे तीव्रगति से परिवर्त्तन हो रहे थे। हिमालय और विन्ध्य पहाडो पर से ग्लेसियर्स (हिम-नदिया) की धाराएँ बहा

करती थी। दक्षिण भारत—अरेबिआ—अफ्रिका—मालागासी—आस्ट्रेलिया इत्यादि से निर्मित गोण्डवानालैण्ड टुकडो मे विभाजित हो चला था (5—15 करोड वर्ष पहले) और उसके टुकडे भारतवर्ष से अलग हट रहे थे, (यत्र-तत्र दक्षिण, पूरब और पश्चिम दिशा मे) बहते जा रहे थे। भूगोल नई करवटे ले रहा था। ऐसा था वह युग, जब डिनोसॉर्स धरती पर चतुर्दिक् फैले हुए थे।

मेसोजोइक युग को तीन भागो मे बॉटते है

(१) ट्रायसिक (20—25 करोड वर्ष पहले)

(२) जुरासिक (15—20 करोड वर्ष पहले)

(३) क्रिटेसियस (10—15 करोड वर्ष पहले)

ट्रायसिक-काल मे उत्पन्न होकर जुरासिक-काल तक मे डिनोसॉर्स का आधिपत्य भू-तल पर पूर्णत छा गया था और वे भीमकाय और भयकर बन चुके थे (15—20 करोड वर्ष पहले)। ये सब सरीसृप-वर्ग (रेप्टाइल-वर्ग) (रेप्टीलिया) के (जानवर) थे। जिनमे डिनोसॉर्स का थल पर, इकथिओसॉर्स और मेसोसौरस (मोसासॉर्स) का जल पर, और टेरोसॉर्स का नभ पर साम्राज्य था। टरोसौरिया उडनेवाले रेप्टाइल्स थे (उदाहरणार्थ, टेरोडैक्टिल्स) (टरोडैक्टाइलस) और आरकेइऑप्टेरिक्स (आर्किऑप्टेरिक्स)।

कुछ थलचर डाइनासौर (दनुसरट) बृहत्काय थे। वे अपनी पिछली दोनो टॉगो पर चलते थे (द्वि-पद थे)। और, अपनी बलिष्ठ पूँछ का सहारा लेते थे। उनकी भुजाये प्रतापी पजो और नखो से सज्जित-भूषित थी, जिनके द्वारा वे नृ-सिह भगवान् की तरह पेड-पौधो को मनमानी फाडकर, खा जाते थे। मासाहारी डाइनासोर तो और भी भयावह थे। वे सीधा खडा होकर दोनो मजबूत पिछले पैरो पर तेजी से दौड सकते थे। उनकी भुजाये लम्बाई मे (कद मे) छोटी थी। पर, उनके चगुल और नख बडे खौफनाक थे। दॉत बडे-बडे और तेज-तीक्ष्ण (तर्रार) थे। अपने असहाय शिकार का मास वे आसानी से फाड-फाडकर गटक जाते थे।

आर्किआप्टेरिक्स भी एक अत्यन्त विचित्र नभचर रेप्टाइल था। उसकी 'चोच' मे दन्तावली (दाँतो की पक्तियाँ) सुसज्जित थी, छिपकिली की तरह उसकी पूँछ थी, उसके डैनो मे शल्क (स्केल्स) की जगह, पख (फेदर्स) लगे हुए थे।

क्रेटेसियस-काल (क्रिटेशस-कल्प) मे पौधो और जानवरो—दोनो का विकास और वृद्धि हुई। फूलनेवाले (पुष्पित, कुसुमित) पेड, अन्नदाता (खाद्यान्न, अनाज, धान्य) पौधे, और आधुनिक-युगीन वृक्षो की भी उत्पत्ति हुई।

लेकिन, डाइनासौर इत्यादि जैसे विशाल, बलिष्ठ और विचित्र जानवरो का क्या हुआ ?

वे, सब-के-सब, अचानक (एकाएक, सहसा), पृथ्वी के सभी भागो मे, जहाँ वे रहते थे, मौत के घाट उतर गये। सहसा एक स्नैष्टिक पटाक्षेप-सा हुआ। रेप्टाइल्स के साम्राज्य का अन्त हो गया। उनकी सृष्टि बन्द हो गयी। बच्चे, युवा बूढे, नर

और मादा सभी विशालकाय रेप्टाइल्स की नस्ल सदा के लिये समाप्त कर दी गयी। अण्डे पडे रहे, फूट भी नही पाये। डिम्बो के भीतर से बच्चो को निकलने का मौका भी नही मिला। (मगोलिया—सन् 1922 ई० मे, फ्रान्स, मोनटाना, ब्राजिल, पोर्तुगाल, अफ्रीका इत्यादि मे प्राप्त विध्वस के अवशेष)। जल-चर, थल-चर, नभ-चर और अन्य नाना प्रकार के रेप्टीलिया, सभी, सब जगह, साथ-ही-साथ, समाप्त हो गये। उनके परिवार मे कोई 'रोनेवाला', 'पिण्ड-दान करनेवाला' भी न रह गया (तु० महामारी)।

रेप्टाइल्स का खातमा हो गया।

पृथ्वी के प्रत्येक भाग से वे विलुप्त हो गये।

ऐसा क्यो और कैसे हुआ, इसके कारण का पता नही चल सका, कोई कैफियत, कोई सफाई, भी न दी जा सकी, इस समूल विध्वस का व्याख्यात्मक स्पष्टीकरण, विवृति, भी कोई प्रस्तुत न कर सका।

जमीन के अन्दर, पहाड-पत्थरो के भीतर, उनकी सामूहिक कब्रे सर्वत्र मिली हे, जीवाश्म प्राप्त हुए है, जिनसे पता चलता है कि वे अचानक काल-कवलित हो गये थे। यत्र तत्र जुरासिक कालान्तर की चट्टानो मे दबी-दबोची उनकी समसामयिक कब्रे सरीसृप डाइनासौर के वश-विनाश का उत्कृष्ट प्रमाण पेश करती है—जब वे किसी नियत समय पर नियति के चपेट मे आ गये थे। और, यह विपत्ति सारी पृथ्वी पर किसी एक ही समय आयी थी और सृष्टि का 'प्रलय'-सा कुछ हुआ था।

काश, डार्विन की मृत्यु के पहले ही इन बातो का पता चला होता!

पैलिऑण्टोलॉजिस्ट्स, जीयोलॉजिस्ट्स इत्यादि एक-दूसरे का मुँह देखते, माथा खुजलाते, रह गये। एक सौ साल तक खोज करते रहने के बाद भी इसका रहस्योद्घाटन न हो सका।

'It is difficult to account for the simultaneous extinction of great tribes of animals so diverse in relationships and in habitats of life" "It is as if the curtain were rung suddenly on a stage where all the leading roles were taken by reptiles, especially dinosaurs, in great numbers and bewildering variety, and rose again immediately to reveal the same setting but an entirely new cast in which the dinosaurs do not apear at-all, other reptiles are mere supernumeraries and the leading parts are all played by mammals" (Historical Geology Carl O Dunber)

"The great extinction that wiped out all of the dinosaurs, large and small, in all parts of the world, and at the same time brought to an end various other lines of reptilian evolution, was one of the outstanding events in the history of life and in the history of the earth it was an event that has defied all attempts at a satisfactory explanation" (The Age of Reptiles Edwin H Colbert) (Dinosaurs, Idem)

मेसोजोइक (मध्य-युग) के बाद 'नया' युग आया।

पेलिओसिन (=पुरातन नया) काल का पदार्पण 7 से 10 करोड वर्ष पहले हुआ। इस काल के प्रारम्भ से ही मैमेल्स (स्तनी–, स्तनपायी–, जानवर) मिलने लगते है। मिओसिन (कमाधुनिक काल) पीरियड (2 से 3 करोड वर्ष पहले) मे चिडियो की उत्पत्ति हुई और प्लिओसिन पीरियड (=अधिकाधुनिक काल) (2 करोड वर्ष पहले) से मानव के बन्दरनुमा पूर्वजो ने जन्म लिया।

रेप्टाइल्स से मैमेल्स के बीच का सृष्टि-क्रम अन्धकार मे पडा रहा है। स्तनी (मैमेल्स) सृष्टि कैसे बनी, इसका, सच पूछिये तो, कोई भी युक्तिसगत जवाब नही मिलता। सरीसृप (रेप्टाइल) 'पूर्वजो' से स्तनी (मैमेल्स) 'सन्तानो' के उद्भव का अकाट्य प्रमाण नही मिलता। आधुनिक काल के पेड-पौधे, कीडे-मकोडे, और स्वय मानव-जाति, बिलकुल अनूठे बने है, जिनका कही भी, किसी तरह भी, मध्य-युग के प्राणियो से साम्य (सामजस्य) नही बैठता।

मध्य-युग (मेसोजोइक) के अन्त मे पृथ्वी पर कोई महापरिवर्त्तन, कोई कायापलट, कोई भयकर उलट-फेर, उथल-पुथल, प्रलय-सा कुछ हुआ था। कोई महती क्रान्ति आयोजित-सी हुई थी, जिसने पृथ्वी की रूप-रेखा बदल डाली। पेड-पौधे, पशु-पक्षी, कीडे-मकोडे सब बदल गये। एक नयी सृष्टि शुरू हुई।

जब पेड-पौधे मौजूद थे ही और शाकाहारी जानवरो के लिये मुफीद और पर्याप्त थे, तो फिर मासभक्षी प्राणियो को जनमने की क्या आवश्यकता थी और उसका क्या प्रयोजन था ?

जब मध्ययुगीन स्टेगोसोर (डाइनासौर) द्विपदी हो चुका था, तो आधुनिक युग के प्रारम्भ मे सिर्फ चतुष्पद क्यो पाये गये ? और, जब आर्किआप्टेरिक्स (उडनेवाला रेप्टाइल) को डैने और पख मयस्सर हो चुके थे, तब चिडियो की सृष्टि कमाधुनिक (मियोसिन) (मध्यनूतन) कल्प (पीरियड) (दो-तीन करोड वर्ष पहले) तक कैसे और क्यो कर रुकी रही ?

[विचारणीय जुरासिक पीरियड मे ही एक साथ दो प्रकार के उडनेवाले रेप्टाइल्स की सृष्टि हुई थी—(१) टेरोडैक्टिल्स और (२) आर्किऑप्टेरिक्स। दोनो डैनेवाले नभचर थे। टेरोडैक्टिल्स के डैने बे-पर, बिना पख (फेदर्स) के, थे (तु० चमगीदड, बैट, भैमपायर)। आर्किऑप्टेरिक्स के डैने परो से भरे थे, फेदर्ड। ऐसे प्राणियो का निर्माण कर क्या प्रकृति परो, पख-हीन और पख-मण्डित (सपक्ष) (परदार) डैनो, और 'पर' विरुद्ध (के मुकाबले) (भरसस) 'वल्कल (शल्क, स्केल्स) (छिलका, चोइयाँ)' की उपयोगिता तथा उनके तुलनात्मक गुण-दोषो (रिलेटिव मेरिट्स-डिमेरिट्स) के बारे मे अनुसन्धान करती-सी नही मालूम पडती ? इन नभचरो की नस्ल सदा के लिये लुप्त हो गयी (कर दी गयी)। लेकिन, इस अनुसन्धान से जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त हुए वे दो-तीन करोड वर्ष बाद,—(मियोसिन पीरियड) पक्षियो की सृष्टि मे काम आये। तबतक स्थूल (मैक्रोस्कोपिक) रिसर्च समाप्त कर, शायद

प्रकृति डैनो और परो की बनावट के मुतल्लिक सूक्ष्मतम (माइक्रोस्कोपिक, सट्ल) अनुसन्धानो मे व्यस्त रही हो। आखिर जीवाणुओ को ठीक-ठाक करना जो था! विभिन्न प्रकार के डैने, पर तथा पक्षी जो बनाने थे! यादगार-स्वरूप टेरोडैक्टिलस-के-से डैने चमगीदड के सुपुर्द कर दिये गये और सृष्टि अपने सरो-सामान के साथ आगे बढती चली गयी।] [('ह्वेन इन रोम डू ऐज दि रोमन्स डू।') (पृथ्वी पर परमात्मा और प्रकृति भी 'वैज्ञानिक' अनुसन्धान करते है।) (राम और कृष्ण भी मनुष्यो की भाँति बरतते है।)]

[“करते थे जो यहाँ-वहा की व्याख्या रात-रात भर जाग,
सब धकियाये गये अन्त मे, भूल गया सब ज्ञान-विराग।
कहाँ गयी उनकी वह वाणी, किये गये सबके मुँह बन्द,
भर दी गयी धूल उनमे, या भर दी गयी धधकती आग!”
(रुबाइयात उमरखय्याम मै० श० गु०)।]

जब आदमी के कलात्मक दृष्टिकोण के बावजूद 'शूकरी अप्सरायते' तो नर, पशु-पक्षियो को अपनी मादा को लुभाने-आकृष्ट करने के लिये साज-शृगार की क्या आवश्यकता थी? (तु० रगीन और सुफेद मोर, तोते और बजरी, सुग्गा और कोयल, सिह और सूअर इत्यादि) (प्रकृति डार्विन को भरमाना तो चाहती नही रही होगी।)

समान वातावरण मे अनेक विभिन्न, विरोधी और सन्तुलित (समित) (डिफरेण्ट) (कण्ट्रास्टिग), (सिमेट्रिकल) रगो से चित्रित चिडियो और तितलियो की अनेकानेक किस्मो (उपजाति, वैराइटी) की उत्पत्ति किसलिये हुई? (तु० पण्डुक, हारियल, कबूतर) (कबूतरो की किस्मे जैसे लक्का, शिराजी, लोटन, गिरहबाज इत्यादि)।

डायटम (रूप-सौन्दर्य), कैक्टस (काँटो की साज-सज्जा, फूलो का वैचित्र्य), ऐंजियोस्पर्म (आवृतबीजी पुष्पित) (फूलो की बहार), बैक्टिरिया (के कारनामे) इत्यादि की इतनी सारी स्पीशीज और वैराइटीज की उत्पत्ति से सृष्टि को क्या मतलब साधना था?

फलो का स्वाद, कुसुमो का सौरभ और सुगन्ध, बेला का आधी रात मे फूलना, रजनीगन्धा की सुगन्ध से रात का भीग जाना, प्रभात मे हरसिगार का दूब पर झडना और लोट जाना, कीचड से कमल और रेत मे नागफणी की उत्पत्ति, क्रूसिफरी (भोज्य, खाद्य) पौधो का चतुर्दिक् विस्तार, चन्दन के वृक्ष, चाशनी के गन्ने, औषधीय प्राणी, सीप का मोती, कुत्ते की स्वामिभक्ति, भेड का ऊन, रेशम के कीडे, मधुमक्खी के छत्ते, मकडे का जाल, बया का घोसला, वट-वृक्ष का नन्हा-सा बीज और मन्दार की फली, छीमी (छिम्बी) मे 'रेशमी पलने' पर बीजो का पलना, बन्दर का कौतुक, मृग की कस्तूरी, व्याघ्र का जगल मे दहाडना। गोबरछत्ते के नीचे गनगोआर का आश्रय पाना। डॉ० ई० ग्रे डायमण्ड के बगीचे (कैन्सस, यू० एम० ए०) मे मौकिंग-बर्ड का ठिठोली करना। पाराकीट (टुइयाँ तोता) का राम-नाम सुमरना। डॉ० पॉल डडले ह्वाइट (बास्टन, मासाच्युसेट्स) का ह्वेल (तिर्मिगल) का विद्युत्-हृद्लेखन (एलेक्ट्रो-

कार्डियोग्राफी) के पीछे अपनी जान जोखिम मे डालना। और, बीज-प्रकीर्णन (स्कैटरिग) के अद्भुत तरीके, और प्रजनन की स्वचालित क्रियाये, नैसर्गिक वृत्तियाँ, ऋतुओ का बदलना, सूरज का चमकना और तारो का टिमटिमाना, उषा का अवतरण और सन्ध्या का विदा हो जाना और आकाश मे बादलो का बहकना, घुमडना, गडगडाना, और बिजली का रह-रहकर कौध जाना, और ओस-कणो का किसलयो पर चुपके से इतराना, और हरी दूब पर व्योम के जाम से नशे मे छलक जाना, और विरात्र मे पछियो का पराती (भैरवी) गाना और क्षितिज पर दिवारात्रि का होली खेलना और इन्द्रधनुष का कढ आना। यह सब देख-सुन-जानकर भी क्या आपका दिल नही कहता कि सृष्टि का कोई नियामक, नियन्त्रक और प्रेरक है ?

प्रकृति इतनी विदग्ध, साधन-सम्पन्न, और कार्यकुशल—व्यवहारकुशल दीखती है कि वह बिना किसी सर्वसमर्थ, शाश्वत, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी सत्ता की सहायता के कुछ भी नही कर पाती।

ब्रह्माण्ड एक सहयोगी, समन्वयी उद्यम है, जो अचेतन पार्थिव प्राकृतिक विधानो के द्वारा स्वयसाध्य कदापि न हो सकता था। परमात्मा तो चुप, गुमसुम (टेसिटर्न) है, पर सृष्टि जो बोलती और बनलाती है !

अगर एडैप्टेशन, नेचुरल सेलेक्शन और सरवाइभल-ऑव-दि-फीटेस्ट की ही बात रहती, तो इण्टर-ब्रीडिग काफी फायदेमन्द रहता। तब घोडा-गदहा (म्यूल, खच्चर), बिल्ली-कुत्ते (डौगेट), बाघ-सिह (टाइलन), दनुज-मनुज, हाथी-हिपो, साँप-छछुन्दर की साठ-गाँठ, अच्छी बैठती। मोलाटो की तरह, हाइब्रिड गेहूँ की तरह, पोमैटो की तरह, कण्टक-विहीन सीज की तरह, एक ऐसी सृष्टि बनती, जिसमे सर्व-गुणसम्पन्न, आतक-रहित, दो-चार वैराइटी के लोग (शायद गौरिला मानव का मिश्रप, तन-मन का धनी कोई विशिष्ट प्रकार का प्रबुद्ध वानर अथवा असुर) निरन्तन और चिरकाल तक रमण-भ्रमण करते हुए सुख के साथ जीते-जागते रहते। (तु० सुपरमैन)।

मेरे सामने पद्मश्री उपेन्द्र महारथी की कलाकृति, उनका पुराना शिव-पार्वती का एक लोकप्रिय चित्र दीवार पर टँगा है। डॉ० कुमार विमल की समीक्षा, प्रो० निशान्तकेतु की कविता, श्रीभानुनन्दन सिह का अखबार, श्रीजगदीशचन्द्र माथुर का नाटक, प्रो० हरिमोहन झा का विनोद, श्रीमहेश प्र० ना० शर्मा का फरमान, श्रीमती सुखदा पाण्डेय का लेख, प्रो० योगेन्द्र मिश्र का सौहार्द, प्राचाय डॉ० नन्दकिशोर प्रसाद का पत्र, डॉ० के० के० झा का हिसाब-किताब, श्रीरॉबिन शॉ 'पुष्प' की कहानी, और स्वर्गीय ब्रजकिशोर नारायणजी की याद मेरे पास उपस्थित है। मैं क्या करूँ ? एक वैज्ञानिक की प्रायिक, घिसी-पिटी परम्परा मे उनकी छान-बीन करूँ ? उनका मीन-मेख निकालूँ ? उनपर अनुसन्धान करूँ ? पता लगाऊँ कि चित्र के बनाने मे जो रग व्यवहृत थे, उनका केमिकल कम्पोजिशन (रासायनिक सघटन) क्या था ? कि कविता के कोरे कागज, कलम, और काल के पीछे पडूँ ? प्रिण्टिग-प्रेस की मशीनो से जाकर जूझ आऊँ ? समीक्षा के वर्णाक्षरो का इतिहास टटोलूँ ? 'स्मृति' का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करूँ ? रगमच की तकनीकी व्यवस्था मे उलझा रहूँ ? पत्र की

'गहराइयो' मे जाकर डूब जाउँ ? कि सरकारी तौर-तरीको, लालफीता-वाद, के पीछे सिर धुना करूँ ? या दल-बदली के चक्कर मे पडकर तिलमिलाता रहूँ और ठोकरें खाऊँ पर ठौर न पाऊँ ?

अपनी जगह पर अनुसन्धान भी उचित है, अनुभूति भी। विज्ञान भी ठीक है, अध्यात्म भी। और, कला भी। विषयनिष्ठता-वस्तुपरकता भी वाजिब है, व्यक्ति-निष्ठता-आत्मपरकता भी।

विज्ञान 'कैसे', 'कब', 'कहाँ' के पीछे लगा रहा है। अध्यात्म ने 'क्यो' और 'कौन' के जवाब की खोज की है। एक ने 'व्यक्ति' को टटोला है, दूसरे ने 'अव्यक्त' का आह्वान किया है। उन्होने बहि करणो का सहारा लिया है, इन्होने अन्त करणो का। वे व्यष्टि मे समष्टि ढूढँते रहे है, ये समष्टि मे व्यष्टि पाते रहे हे। जिस सगम पर उनका पडाव पडता है, उस मोटेल से इनका तीर्थाटन शुरू होना है। जहाँ वे पहुँचते है, वहाँ से ये लौट आते है। जिसे वे पकडते है, उसे ये त्याग देते हे।

ऐसा प्रतीत होता है कि भाँति-भाँति के जीवो, कायिक सरचनाओ और नियाओ के साथ प्रकृति अनुसन्धान और अन्वेषण करती गयी है—और जैसे अनुभव बटोरती गयी है। विश्व की प्रयोगशाला मे 'प्राण' का इस्तेमाल उसने स्रृष्टिक विकास के साथ खूब बारीकी से किया है। और, जब किसी खास लक्ष्य तक पहुँचकर आगे की सम्भावनाओ पर तनिक ठहरकर गौर किया है, तब वहाँ से यथोचित दिशा मे मुड गयी है, और रास्ता बदल दिया है। कुछ मोडेल्स (प्रतिमानो) को रेफरेन्स (अभिदेशन) के निमित्त, या अन्य किसी आज्ञात प्रयोजन से (तु० मच्छर—मलेरिया), छोडकर, बाकी 'बेकार' और 'अनावश्यक' नमूनो, प्रतिमाओ, को उसने विनष्ट कर अपनी प्रयोगशाला को सुरम्य, सुरक्षित और साफ-सुथरा रखने की चेष्टा की है।

पार्थिव काया पर पूरा प्रयोगात्मक अनुसन्धान करने के पश्चात् अब प्रकृति शायद 'मानस' को विकसित करने की धुन मे लगी हुई है, 'शायद' ही तो !

पुरुष-प्रकृति का यह कर्म-कलाप। जीवात्मा को वह किस चोटी तक पहुँचाकर छोडेगा। इसका अनुमान श्रीअरविन्द जैसे योगी या रामकृष्ण जैसे भक्त, अथवा बुद्ध, गान्धी तथा लेनिन जैसे महामानव ही कर सकते थे।

एक महती चेतना, मेधावी शक्ति है, जो सृष्टि के क्रम को अग्रसर करने की प्रेरणा दे रही (प्रेरक) है। और, एक दूसरी शक्ति है, जो सृष्टि के निर्माण मे हाथ बँटा रही है। रगमच पर जो-कुछ दिखाई पड रहा है, उससे अधिक कुछ पर्दे के पीछे और नेपथ्य (ग्रीन-रूम) मे हो—चल रहा है।

जीवन की कसौटी पर बार-बार सृष्टि ने अपनी उपलब्धियो को कसा है और बारम्बार गुणो-अवगुणो को दिक्काल और परिवेशो के तराजू पर तौला है। असीम ब्रह्माण्ड मे अनन्त काल से एक कोई शाश्वत, सर्वशक्तिमान् सत्ता सदा सर्वत्र सचेष्ट रही है।

'स्वय' और 'सयोग-वश' क्या हो पाता ! क्या हो पाता है !

"रक्त, स्वेद, आँसू से मैंने यह इतिहास लिखा है
मैं हूँ भेट मरण को, पर अक्षय यह दीप-शिखा है।" (के० ना० मि० 'प्रभात')

जी मे आता है कि कह दूँ कि परिस्थिति सर्वोपरि है, कि वातावरण प्रधान है और प्राणी गौण, कि काया प्रमुख है, प्राथमिक (प्राइमरी) है और जीवात्मा है माध्यमिक (सेकेण्डरी), अनुपूरक (सप्लिमेण्टरी), कि कोष (सेल, साइटोप्लाज्म) राजा और नेता है और बेचारा न्युक्लियस (नाभिक, केन्द्रक) एक अनुचर, अनुयायी, उसके पीछे-पीछे चलनेवाला एक अनुगामी अनुषगी, (सबॉर्डिनेट), एक उपग्रह-सा (सैटेलाइट), एक तद्धित-प्रत्यय-सा, एक अनुमोदक (समर्थक), एक अधीनस्थ, आश्रित, पराधीन व्यक्तित्व है।

बात न सत्य है, न सीधी, और न सरासर झूठी।

पार्थिव सृष्टि (१) जीवाणु (जीन) और (२) वातावरण के बीच एक अनुकूलता का खेल और (अथवा) एक प्रतिकूलता का सघर्ष है।

वातावरण सम्भोग के लिए अनिवार्य है। वातावरण निषेचन के लिए अनिवार्य है। वातावरण युग्मनज (जाइगोट) के वास्ते अनिवार्य है। वातावरण युक्तूत (कलल) (मोरुला) के लिए अनिवार्य है। वातावरण है भ्रूण के लिये अनिवार्य। वातावरण शिशु के लिये अनिवार्य है। वातावरण यौवन और जरा के लिये अनिवार्य है। वातावरण व्यक्ति के लिये अनिवार्य है। अनिवार्य है वातावरण किसी आबादी (जन-समुदाय) के लिये। वातावरण अनिवार्य है समाज के लिये। राष्ट्र के लिये अनिवार्य है वातावरण। वातावरण केन्द्रक के लिये अनिवार्य है, तो वातावरण कोशिका-द्रव्य (साइटोप्लाज्म) के लिये भी अनिवार्य है, गुणसूत्री (क्रोमोसोम) के लिये भी, अणु और परमाणु के लिये भी। सस्कार, विचार, सस्कृति और उपलब्धि के लिये भी। वातावरण अनिवार्य है पल्ली (हैमलेट) के लिये। कॉसमॉस (ब्रह्माण्ड) के लिये वातावरण अनिवार्य है। अनिवार्य है वातावरण प्रतिभू और परिभू, स्वयम्भू के लिये। है वातावरण अनिवार्य लाल-, पीली-, और हरी क्रान्ति के लिये। ध्यान, धारणा, समाधि के लिये। प्रचार, आचार, घोषणा (घोषणा-पत्र, नीति-घोषणा, मैनिफेस्टो), क्षेत्र-क्षेत्री, व्यक्त-अव्यक्त के लिये। वातावरण सूरज, ससार और सरकार और जाति, वर्ग और धर्म-अधर्म और स्पीशीज और स्पास्की-फिशर के शतरज के लिये अनिवार्य है। मोहरे के लिये अनिवार्य, अनिवार्य बिसात के लिये। सिंह और शावक के लिये, शास्ति, शास्ता तथा शिजन के लिये। हार-जीत, मगल-अमगल, उन्नति-अवनति के लिये। नव और भव के लिये। आकार, प्रतिकार के लिये। शोध, प्रतिशोध के लिये। समझौता, और झगडे के लिये। मरने-मारने के लिये, नारे लगाने और पुतले जलाने के लिये, एक माहौल, एक परिवेश चाहिये। लख्ते जिगर से गोद भरने के लिये गोद चाहिये। लाश दफनाने के लिये कब्र चाहिये। अनिवार्य कला और विज्ञान के लिये भी है वातावरण। वातावरण सृष्टि और समष्टि के लिये अनिवार्य है। अनिवार्य सबके लिये है वातावरण।

प्रत्येक प्राणी कोष (सेल्स) और उनके समूहो का बना हुआ है। शरीर की वे इकाइयां है। प्रत्येक कोष स्वय एक जीवन्त प्राणी है (तु० अमीबा), अपने-आप मे।

और, शरीर विभिन्न प्रकार के कोषो का एक जमघट है । ऐसे कोषो का सम्पिण्डित स्वरूप (ढेर), जो व्यवस्थित ढग से, सम्मिलित और सहयोगी जिन्दगी बसर करने के लिये एकत्र हो गया है (कर दिया गया है) । मात्र एक प्राथमिक कोष की विभाजन-प्रक्रिया के द्वारा वह एक से अनेक हुआ था । वह एक प्राथमिक निषेचित कोष जादू की पुडिया था। वह किसी दिव्य ('प्राकृतिक', 'दैवी') विधान और व्यवधान के अन्तर्गत विभक्त होता गया, होता गया, होता गया । और, उससे अनेक तरह के, भाँति-भाँति के, कोष बने । वह 'एक किस्म' से 'अनेक किस्म' का भी बन गया । एकता से अनेकता और विविधता फूट निकली । 'एक' जो था, वह लाख, करोड, अरब, खरब, सदस्यो का मिश्रित सगठित सुसहत (सुसम्बद्ध) सगत और मित्रमण्डल बन गया, एक सविद (चेतनायुक्त) सविधान (व्यवस्था, रचना, प्रबन्ध) । एक जीती-जागती काया मे बदल गया वह अकेला एक कोष । किसने किया यह जादू ? कौन था वह बाजीगर, जिसका ऐन्द्रजालिक हाथ इतना साफ था ? कहाँ से आयी वह प्रेरणा, किसने सिखाया वह अद्भुत हुनर कि जिसके जरिये एक, बस मात्र एक ही, ईट से मकानात बन गये, सडके सज गयी, कूचे कढ आये, और एक खासा सुन्दर शहर बस गया। देखते-देखते । चुप-चाप । गुप-चुप । आँख के सामने । नजर के पीछे । 'रातो-रात' 'विश्वकर्मा' ने एक गजब ढा दिया । भौचक मे डाल दिया । और, उस 'विश्वकर्मा' को न किसी ने देखा, न जाना !

कहते है, यह कला 'केन्द्रक' को मालूम थी—कोष (सेल) के केन्द्रक (न्युक्लियस) को । जिसको उसने सृष्टि के पहले (प्रथम) पल मे कही से, किसी से, किसी भाँति, सीख लिया था—शायद करोडो, अरबो वर्ष पहले उसने प्राप्त किया था वह 'गुरु-मन्त्र', वह 'तकनीक' ।

अगर केन्द्रक न होता, तो कोष न जिन्दा रहता, न कोई काम कर पाता, न किसी काम का रहता, न किसी के काम आ पाता । और, अगर कोष और कोषरस (साइटोप्लाज्म) न होता, तो केन्द्रक कहाँ रहता, क्या करता और कैसे पलता ? केन्द्रक को एक परिवेश चाहिये, जो उसे कोष मे (के भीतर, अन्दर) प्राप्त होता है। कोष को एक केन्द्रक चाहिये, जो उसकी गति-विधि का नियामक हो सके। नेता को अनुयायियो का हुजूम चाहिये, भीड को भडकानेवाली परिस्थिति चाहिये ।

समाज को जानने के लिये उसके सदस्य को जानना जरूरी है । काया को जानने के लिये कोष को जानना आवश्यक है ।

कोष काया (अवयव) की बनावट (सरचना) (स्ट्रक्चर, एनाटॉमी) और उसकी क्रिया (फकशन्स, फिजियोलॉजी) दोनो की ही लघुतम इकाई है ।

और, तथ्य यह है कि हम अभी तक कोष को ठीक-ठीक नही जान पाये है। उसकी अनेकानेक क्रियात्मक गुत्थियो को सुलझाया नही जा सका है । उसकी सरचना का भी वास्तविक ज्ञान उपलब्ध नही हो सका है । कोष इतने छोटे है कि उनको सिर्फ दूरबीन से देखा जा सकता है—लाइट माइक्रोस्कोप, एलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप, फेज

माइक्रोस्कोप इत्यादि से। दूरबीन से देख पाने के लिये भी पहले उनका पतला सेक्शन काटना पडता हे, उन्हे कई तरह के रासायनिक द्रव्यो के द्वारा फिक्स किया जाता है, उनको सुखाया (डिहाइड्रेशन) जाता है, फिर उनको स्टेन (रॅंगा) किया जाता है। माइक्रोइनसिनरेशन (जलाकर राख कर देना), अल्ट्रासेण्ट्रीफ्युगेशन (जिसके द्वारा पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के 500,000 अधिक ताकत के साथ प्रभाव डाला जा सकता है और कोष बेचारे को 'नचा छोडते' है) इत्यादि-इत्यादि कई तरीको का सहारा लेकर कोष की गति-विधि का, तथा उसकी बनावट का पता लगाने की चेष्टा की गयी है। जाहिर है कि जिन्दा कोषो की इतनी दुर्गति करने के बाद उनके विषय मे जो थोडा-बहुत ज्ञान प्राप्त हो सका है, वह कितना नकली और बनावटी और ओछा, सतही, छिछला और सामान्य होगा। कुल वैज्ञानिक इस बात को मानते है, और सिर धुनते है, फिर भी किया क्या जाय। कोष जैसे प्राणी की लघुता, सूक्ष्मता, अत्यल्पता जो बीच मे आ खडी होती है, उसकी आभ्यन्तरिक सजावट-बनावट और अन्दरूनी कारोबार का क्या कहने ! बहुत है, थोडा जाना जा सका है। और, जो जाना जा सका (गया) है, वह भी सत्य से इतना दूर प्रतीत होता है कि कह नही पाते कि कुछ जाना भी गया है अथवा नही।

कोषो का रासायनिक विश्लेषण (केमिकल एनालिसिस) और साइटोलॉजिकल डिस्क्रिप्शन उनकी जीवितावस्था मे तो हो ही नही पाये है। वैज्ञानिको ने सिर्फ कोषो के शवो को नोचा-खसोटा है। कोष की लाश जीता-जागता कोष नही होती। कहॉ कोई मुर्दासराय और क्या कहाँ रगमच की चहल-पहल ! दोनो मे क्या तुलना ! क्या मुकाबला है कब्र मे गडे इतिहास का वर्त्तमान की रौनक से ?

कोष मे पानी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, इनॉरगैनिक सॉल्ट्स हे। प्रोटीन अमीनो-एसिड्स के बने है। प्रत्येक प्रोटीन मे खास तरह के अमीनो-एसिड्स, खास तादाद, खास मात्रा और खास क्रम मे, व्यवस्थित है। अमीनो-एसिड्स की एक खास सिफत है कि वे आपस मे मिलकर बडे-बडे लच्छो का रूप धारण कर सकते है। इन लच्छेदार अमीनो-एसिड्स को पॉलिपेप्टाइड्स कहते है। कोषो मे 'सिम्पल प्रोटीन्स' भी मिलते है और 'कजुगेटेड प्रोटीन्स' भी। 'कजुगेटेड प्रोटीन्स' मे 'प्रोटीन' के अलावा अन्य प्रकार के रासायनिक द्रव्य भी समाविष्ट रहते हे। अनेक प्रकार के 'कजुगेटेड प्रोटीन्स' मे 'न्युक्लियो-प्रोटीन्स' भी है, जो प्रोटीन के साथ 'न्युक्लिक एसिड' के मेल-जोल से बने होते है। 'एनजाइम्स' भी एक प्रकार के प्रोटीन ही है, जो कोषो के साइटो-प्लाज्म मे पाये जाते है। इनके कई प्रकार कोष के अन्दर 'माइटोकॉण्ड्रिया' मे (तथा अन्यत्र साइटोप्लाज्म मे) पाये जाते है। 'माइटोकॉण्ड्रिया' कोष (प्राणी) की रासायनिक-खाद्य-फैक्टरी है। जहाँ कोष के जीवनकाल मे विविध प्रकार के केमिकल रिऐक्शन्स चलते रहते हैं।

'न्युक्लिक एसिड्स' कोषो की अत्यन्तावश्यक उपलब्धियॉ है। न्युक्लिक एसिड्स प्रोटीन नही है। लेकिन, जहॉतक मालूम है, वे प्रकृति मे जहॉ और जब भी पाये

जाते है, बराबर किसी-न-किसी प्रोटीन (जैसे, हिस्टोन्स, और प्रोटामीन्स) के साथ सम्बद्ध, 'न्युक्लियो-प्रोटीन' के रूप मे मिलते है।

'न्युक्लिक एसिड्स' ऐसे रासायनिक द्रव्य हे, जो जटिल और सश्लिष्ट है और जो फॉसफोरिक एसिड, कार्बोज और पिरिमिडीन्स तथा प्युरीन्स क्लास के कार्बनिक क्षारक [ऑरगैनिक बेसेज ऑव दि क्लास (I) पिरिमिडीन्स ऐण्ड (II) प्युरीन्स] पदार्थो के मिश्रण से बने हुए है [जैसे (I) (१) साइटोसीन, (२) युरासिल, (३) थाइमिन, और (४) मेथिल साइटोसीन] [जैसे, (II) (१) एडेनीन, और (२) गुआनीन]। 'न्यूक्लिक एसिड्स' के सरचनात्मक (स्ट्रक्चरल) इकाई (यूनिट) को 'न्यूक्लियोटाइड' कहते है। 'न्यूक्लियो-टाइड' मे से फॉसफोरिक एसिड को निकाल देने से 'न्युक्लियोसाइड' बनता है। 'न्युक्लियोसाइड' मे प्युरीन अथवा पिरिमीडीन क्षारक (बेस) तथा एक पेण्टोज शुगर (शर्करा) (जैसे १ डी-रिबोज या २ डेजौक्सीरिबोज) रहता है।

'डेजौक्सीरिबोन्यूक्लिक एसिड' (डी० एन० ए०) निम्नाकित केमिकल्स (रासायनिक पदार्थो) का बना रहता है,—(१) डेजौक्सीरिबोज (एक शर्करा) (ए पेण्टोज, फाइवकार्बन शुगर), (२) फॉसफोरिक एसिड, (३) पिरिमिडीन्स,—(क) थाइमीन, (ख) साइटोसीन (४) प्युरीन्स,—(क) एडेनीन और (ख) गुआनीन।

क्षारक (बेस) (थाइमीन, साइटोसीन, एडेनीन, गुआनीन) शर्करा (शुगर) के साथ जुडे रहते है और फिर शुगर (शर्करा) आपस मे फॉसफेट बैण्ड के द्वारा जुट जाते है

(कम्पोजिशन ऑव वन सिग्ल हेलिक्स इन ए डी० एन० ए० मौलिक्यूल)।

डी० एन० ए० का प्रत्येक मौलिक्यूल 3,000— 4,000 से भी अधिक 'न्यूक्लियो-टाइड्स' का बना होता है।

वाटसन ऐण्ड क्रिक हैभ प्रोपोज्ड ए मोडेल ऑव दि वे इन ह्विच सच चेन्स मे प्रोड्यूस कॉपिज ऑव देमसेल्वज। दि एशेन्शियल फीचर्स आर ऐज फॉलोज—(१) दि स्ट्रक्चरल यूनिट ऑव डी० एन० ए० कन्सिस्ट्स ऑव टू लॉङ्ग चेन्स ऑव न्यूक्लियोटाइड्स क्वायल्ड इन ए हेलिक्स (हेलिकल फॉर्म)। दैट इज ऐज इफ दि टू हेलिसेज आर इण्टर-ट्वाइण्ट एबाउट ए कॉमन ऐक्सिस। दे आर कनेक्टेड बाइ हाइड्रोजन बॉण्ड्स बिटवीन दि प्यूराइन ऐण्ड पिरिमिडीन बेसेज ह्विच ऑकुपाइ ए पोजिशन ऐट राइट ऐंग्लस टू दि ऐक्सिस ऑव दि हेलिसेज। (२) दि टू चेन्स आर कम्प्लिमेण्टरी टू ईच अदर इन

सच ए वे दैट ए प्यूराइन ऑन वन इज ऑलवेज पेयर्ड विथ ए पिरिमिडीन ऑन दि अदर, दि टू बीइग ज्वायण्ड बाइ हाइड्रोजेन बॉण्ड्स। (३) ऐडेनीन मस्ट ऑलवेज पेयर विथ थाइमीन ऐण्ड गुआनीन विथ साइटोसीन। वाटसन और क्रिक (सन् 1953 ई०) के मतानुसार डी० एन० ए०-मौलिक्यूल पॉलीन्यूक्लियोटाइड्स के दो लम्बे लच्छेदार लडियो (चेन्स) से निर्मित है। दोनो चेन्म एक दूसरे के चतुर्दिक् कुण्डलित (क्वायल्ड) है। दो कुण्डलियो की तरह दो घोघा, स्पाइरोकीट्स अथवा सर्पो के एक जोडे की तरह। बँटी रस्सी की भाँति स्क्रू की नाई। सर्पिल सीढियो (स्पाइरल स्टेअर-केस) से। और, जैसे दोनो हेलिक्सो का एक ही केन्द्रित आधार हो।

डी० एन० ए० कोषो के न्यूक्लियस मे और विशेषत उसके गुणसूत्री (क्रोमोजोम्स) मे पाया जाता है। इसलिये वह आनुवशिकता (हेरेडिटी) के लिये परमावश्यक है। [तु० माइटोसिस (सूत्री-विभाजन), तथा मिओसिस (अर्धसूत्रण, अर्धसूत्री विभाजन)]।

आर० एन० ए० अधिकतर न्यूक्लिओलस (केन्द्रक) और साइटोप्लाज्म (कोशिका-रस) मे मिलता है। वह न्यूक्लियस (केन्द्रक) मे भी रहता है।

आर० एन० ए० कई किस्म के होते है, जिनका काम एक दूसरे से भिन्न होता है। (अपने विभिन्न कार्यों के कारण आर० एन० ए० कई किस्मो मे विभाजित है।)

कोष आपस मे एक दूसरे से, अपने डील-डौल मे, आकार-प्रकार मे और अपनी सरचना और क्रिया मे, भिन्न होते है। फिर भी, सब प्रकार के कोषो मे कई कारणो से असाधारण समानता रहती है।

विभाजन के बीच, विश्रामावस्था (रेस्टिग) (इण्टरफेज, इण्टरमाइटोटिक) मे, न्यूक्लियस (केन्द्रक) मे भीतर निम्नाकित वस्तुये पायी जाती है—(१) न्यूक्लियस (केन्द्रक), (२) न्यूक्लियर मेम्ब्रेन, (३) न्यूक्लिओलस (केन्द्रिक), (४) न्यूक्लियो-प्लाज्म (केन्द्रिक रस) (कैरोलिम्फ), (५) दानेदार (कणीय) पदार्थ, जिन्हे क्रोमैटिन कणिका (केरिओसोम्स) कहा जाता है।

न्यूक्लियर (केन्द्रक) मेम्ब्रेन (झिल्लिका) की दोहरी परते होती है, जिनमे छिद्र (सूराख) रहता है।

क्रोमैटिन कणिका का रग, चोखा, (गहरा, चमकीला) उतरता है। यह डी० एन० ए० + प्रोटीन का बना होता है और क्रोमोसोम्स (गुणसूत्री) का अश (हिस्सा) होना है। औरतो मे एक भिन्न, पृथक्, सुस्पष्ट, सुव्यक्त 'सेक्स क्रोमैटिन' का भाग (ढाँचा) भी आसानी से, प्रत्यक्ष, साफ-साफ, देखा जा सकता है, जिसे 'एक्स' क्रोमोसोम कहते है। यह जुडवाँ 'एक्स क्रोमोसोम्स' मे का एक क्रोमोसोम (गुणसूत्री) है, जो अपने सह-जाति (सहधर्मा) (समानधर्मा) क्रोमोसोम्स से भिन्नता रखता है। यह विषमवर्णी (हेटेरोक्रोमोमैटिक) होता है। डी० एन० ए० प्रतिकृति (रेप्लिकेशन) मे यह पिछडा रहता है (विलम्ब, देर, करता है) (दीर्घसूत्री है)। मर्दो मे यह नही मिलता। पुरुषो का वह अकेला एक्स-क्रोमोसोम नारियो के उस 'एक्स-क्रोमोसोम' से मिलता-जुलता है,

जो अ-विषमवर्णी (नन-हेटेरोक्रोमैटिक) होता है । इस क्रोमोसोम का पता सन 1949 ई०) मे (बार और बरट्राम द्वारा) लगा। लिग-विभेद तथा जन्मजात 'सेक्स क्रोमैटिन' से सम्बद्ध बीमारियो मे इसकी जॉच सुफल होती है ।

कोष-विभाजन के समय गुणसूत्री (क्रोमोसोम) सुस्पष्ट और सुव्यक्त हो जाते हे । प्रत्येक क्रोमोसोम (क्रोमोजोम) एक या अधिक पॉलिपेप्टाइड की लच्छी (चेन) का बना होता है, जो उसकी पूरी लम्बाई (मे हाथ बॅटाता है) का होता है। क्रोमोसोम का प्रधान (खास, विशिष्ट) द्रव (साराश) (सब्स्टान्स) उसमे का डी० एन० ए० होता है, जो एक क्षारकीय (क्षारीय, बेसिक) प्रोटीन हिस्टोन, से और एक अक्षारकीय (नन-बेसिक) प्रोटीन (जिसमे ट्रिप्टोफेन रहता है, ट्रिप्टोफेन-सहित) के साथ, मिला रहता है। पिछली तरह के प्रोटीन को 'सरचनात्मक प्रोटीन' की व्याख्या (नामजद, सज्ञा) भी दी जाती है, क्योकि गुणसूत्री की अन्दरूनी सरचनात्मक व्यवस्था के लिये यह परमावश्यक समझा जाता है (जरूरी होता है) । क्रोमोजोम्स मे आर० एन० ए० की भी कुछ मात्रा रहती है, यद्यपि आर० एन० ए० प्रधानत न्यूक्लिओलस तथा साइटोप्लाज्म मे ही पाया जाता है ।

माइटॉसिस (गुणसूत्री-विभाजन) के (सम्पादन के लिये) (हेतु) अन्तर्गत डी० एन० ए० का द्विगुणित (दुगुना) (दूना, दोहरा) हो जाना जरूरी है, जिसमे कि दोनो हिस्सो ('अनुजात कोशिकाओं') के लिये पर्याप्त डी० एन० ए० उपलब्ध हो सके ।

और, इसकी व्यवस्था कोष की विश्रामावस्था ('आराम' के अन्तराल) मे ही करनी पडती होगी (चुनाचे विभाजन की पूर्वावस्था को 'आराम का समय' की सज्ञा देना अनुचित होगा) ।

न्यूक्लियस (केन्द्रक) के काम

(१) 'जीन्स' (=जीवाणुओ) का जत्था है वह । वशानुगत लक्षणो (गुणावगुण) का वाहक और नियन्ता (नियन्त्रक) ।

गुणसूत्री की डोरी से वे माला की तरह गुँथे रहते है—बहु-रगे नगो की भाति, मनका (दाना, मोती) की तरह । जीवाणुओ का अपना सुनिश्चित और सीमाकित क्रम, सगठन, सघटन, और स्थान होता है, जो उन्हे प्रत्येक गुणसूत्री पर जन्म-जन्मान्तर से प्राप्त रहता है । आनुवशिकता के लिये ऐसी व्यवस्था अनिवार्य है ।

(२) कोष-विभाजन का प्रेरक और प्रबन्धक ।

(३) चयापचयी (मेटाबॉलिक) क्रियाकलाप (ऐक्टिविटीज) (कर्मकलाप) ।

(४) साइटोप्लाज्म (कोशिका-द्रव्य) पर प्रभाव ।

(५) कोष का कायाकल्प, नवशक्ति, नवयौवन, नवजीवन ।

(६) (क) आर० एन० ए० तथा (ख) कोषीय प्रोटीन के बनाने मे हाथ बँटाना । (केन्द्रक, केन्द्रिक और माइटोकॉण्ड्रिया की सम्मिलित योजना और उसका उनके सहयोग से कार्यान्वित होना) ।

साइटोप्लाज्म (कोशिकाद्रव्य) और उसका काम

साइटोप्लाज्म मे कुछ ऐसे ठोस पिण्ड, खण्ड, पदार्थ (बॉडीज) है, जिनका अपना रूप-आकार, अपनी मूर्त्ति-आकृति, होती है । ये सब एक समरूप (समागी, होमोजिनस) पारभासी (ट्रान्सलुसेण्ट) पदार्थ (जमीन मे) जडे-जैसे दिखलायी पडते है—मानो घर्षित-कॉच (ग्राउण्ड-ग्लास) मे विभिन्न आकृति के नग जडे हो अथवा सन-पापडी मे चिनिया-बादाम, पिश्ता, किसमिस, अखरोट इत्यादि डाले गये हो ।

ये पिण्ड-पदार्थ (फार्म्ड-बाडीज) दो प्रकार के होते है

(क) ऑर्गन्वायड्स (ऑरगनेल्स) (अगक, कोशिकाग)—ये जीवन्त साइटोप्लाज्म के अग माने जाते है । (ख) इनक्लूजन बॉडीज (अन्तर्विष्ट, अन्त स्थ) (खण्ड) ।—ये अस्थायी होते है और कोषीय उपापचय (मेटाबॉलिज्म, विपचन, चयापचय) के कारण (दरम्यान) इकट्ठे होकर पीछे निष्कासित कर दिये जाते है (=मल-त्याग) अथवा वे अन्तर्गृहीत खाद्यान्न इत्यादि होते है, जिनका उपयोग कोष अपने आवश्यकतानुसार कर लेता है ।

अगक (ऑर्गन्वायड्स) के अन्तर्गत निम्नाकित खण्ड है

(१) तारककेन्द्र (तारककाय) (सेण्ट्रल बॉडीज, सेण्ट्रिओल्स, सेण्ट्रोसोप या सेण्ट्रो-स्फियर, तथा ऐस्ट्रोस्फियर) । (तारक-परिकेन्द्र) । —इसका सम्बन्ध माइटोटिक सेल डिवीजन (गुणसूत्री-विभाजन) से है ।

(२) गोल्जी ऐपेरेटस (गॉल्जीकाय)—यह लाइपोप्रोटीन्स से बना है और यह क्या काम करता है, इसका पता नही चल सका है ।

(३) माइटोकॉण्ड्रिया—यह कोष का कारखाना है । इसमे 'साइटोक्रोम आक्सीडेज' प्रभृति अनेक एनजाइम्स (विकर, प्रकिण्व, किण्वाणु, पाचक द्रव्य) मिलते है । माइटो-कॉण्ड्रिया भॉति-भॉति के प्रोटीन और किण्वक (एनजाइम्स)' बनाता है, जो कोष के अनेक काम आते है ।

(४) राइबोसोम्स (रग-ग्राही माल) —प्रोटीन के उत्पादन (मैनुफैक्चर), निर्माण, मे महत्त्व रखता है ।

(५) एण्डोप्लाज्मिक (अन्त प्रद्रव्यी) रेटिकुलम (जालिका) ।

इसमे फॉसफोलिपिड्स की प्रचुरता है—इसके द्वारा आवेग (इम्पल्सेज) द्रुतगति के साथ कोष की बाहरी सतह से कोष के भीतर तक चला जा (कण्डक्ट) सकता है ।

(६) लाइजोसोम्स (७) फाइब्रिल्स (तन्तुक) (८) भैकुओल्स (रिक्तिका) ।

(क) प्रत्येक कोष किसी ऐसे पूर्वज कोष के विभाजन से ही पैदा हुआ है, जिसका उसके पहले अस्तित्व था, पूर्व-स्थित । (भिरशॉ) ।

(ख) किसी भी काया (शरीर) के समस्त (कुल) कोष एक ही प्राथमिक निषेचित अण्डाणु-कोष से उत्पन्न हुए है ।

(ग) जीवन एक अजस्र, अनन्त, अखण्ड प्रवाह है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से आजतक चलता आ रहा है । प्रोटोप्लाज्म (प्ररस, प्राणरस, चिद्रस, जीवद्रव्य, जीविसार, जीवन-

रस, आद्यफेन) (अमृत) की यह अभग्न जीवन-धारा बहती रही है, सन्तत, सतत, अनवरत, निरन्तर। एक अनजाने अतीत से आजतक। प्रत्येक प्राणी, जीव, एक बुलबुले की तरह बना और विलीन हो गया। धारा बहती चली गयी। जीव क्षणभर के लिये धारा की सतह पर दिखलायी पडा, फिर न जाने कहाँ लुप्त हो गया (छिप गया), कैसे फूट गया।

प्रजनन। माइटोसिस (कैरियोकाइनेसिस, सूत्री-विभाजन)। कोष-विभाजन (खण्डन, विभक्ति)।

(१) अमाइटोसिस (=असूत्री विभाजन)—सोधा (प्रत्यक्ष) कोष मे केन्द्रक तथा साइटोप्लाज्म का सकुचन और सकीर्णन (कन्सट्रिक्शन), फिर सीधे-सीध विभाजन।

(२) माइटोसिस—परोक्ष, अप्रत्यक्ष, टेढा (=गुणसूत्री विभाजन)।

यही कोष-विभाजन का सामान्य, साधारण, प्रायिक, रिवाजी, (नॉरमल, कॉमन, कस्टमरी) तरीका है। इसके द्वारा कोष-विभाजन की प्रक्रिया मे एक कोष का क्रोमेटिन उसकी दोनो सन्तति-कोशिका मे ठीक (सही, सटीक, एग्जेक्ट) बराबर-बराबर बॅट जाते है।

माइटोसिस—फेजेज (प्रावस्था, पहलू, कला) की चार अवस्थाये है

(क) प्रोफेज (पूर्वावस्था)।
(ख) मेटाफेज (मध्यावस्था)।
(ग) अनाफेज (पश्चावस्था)।
(घ) टेलिओफेज (अन्त्यावस्था)।

गुणसूत्री (क्रोमोसोम्स) केन्द्रक (न्यूक्लियस) का प्रधान भाग है। यह ऊन के टुकडो से बना गोले की तरह अथवा एकत्रित राउण्ड वर्म्स (गोल-कीट) के गेंद (लोदा) की तरह दीखता है। (सेवई के थोका की तरह)। प्रत्येक क्रोमोसोम ऐसा लगता है, जैसे एक धागा (क्रोमोनीमा) हो, जिसपर जगह-जगह काफी सघन रग जम (इकट्ठा) गया हो (क्रोमोमियर्स)। हर क्रोमोमियर सम्भवत एक या अधिक जीवाणुओ का जमघट (समूह) है। प्रत्येक जीवाणु आनुवशिक तत्त्वो की इकाई है।

प्रत्येक क्रोमोसोम कॉर्क-स्क्रू अथवा स्पाइरोकीट अथवा बॅटी-रस्सी या सर्पिल सीढी या घोघे के खोल, की भॉति पेचदार, चक्करदार, (स्पाइरल) (कुन्तल) दीखता है। क्रोमोसोम के ये टुकडे धीरे-धीरे अधिक ठोस (सुसहत, सघन) होकर एक दूसरे से अलग-अलग होने लगते है, और अब गिने जा सकते है। आदमी मे इनकी तादाद (सख्या) 46 है। (गोल-कृमि मे इनकी तादाद 4 है)। प्रत्येक स्पीशीज के लिये यह तादाद निश्चित (निर्धारित, नियत, तय) है। वास्तव मे, यह कहने के बजाय कि क्रोमोसोम की सख्या 46 है, इससे अधिक उचित यह कहना होगा कि वे 23 जोडे है। कि आदमी (होमोसेपियन्स सेपियन्स) के कोषीय केन्द्रक मे 23 जोडे गुणसूत्री पाये जाते है। क्रोमोसोम का हर टुकडा एक जोडा सर्पिल धागे की तरह है (बालो की गुँथी हुई चोटी की नाई) (जैसे दो धागो को बाँट दिया गया हो, रस्सी की तरह)

(जैसे, दो साँप एक-दूसरे के शरीर से पूर्णत ('आपादतलमस्तक') लिपट गये हो (जैसा कि वे सम्भोग के समय किया करते है)।

क्रोमोसोम की इस जोडी के प्रत्येक धागे को 'क्रोमोटिड' कहते है। प्रत्येक 'क्रोमोटिड' भी सूक्ष्मतर रेशो (तन्तुओ) की जोडी से निर्मित है, जिन्हे 'क्रोमोनिमाटा' कहते है। क्रोमोनिमाटा स्वय और भी अधिक सूक्ष्मतर रेशो से बने होते है, जिन्हे एलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता है। (तस्वीर, फोटोग्राफ, लेकर प्रत्यक्ष किया जा सकता है)।

कोष के विभाजनार्थ केन्द्रक झिल्लिका (दीवार, लक्ष्मण-रेखा) लुप्त हो जाती है। केन्द्रक (न्युक्लियस) और साइटोप्लाज्म एक हो जाते है। न्यूक्लिओलस (केन्द्रिक) भी लुप्त हो जाता है और उसका आर० एन० ए० मुक्त हो जाता है।

केन्द्रक के परिवर्त्तन के साथ-ही-साथ साइटोप्लाज्म मे भी परिवर्त्तन होते चले जाते है। साइटोप्लाज्म के मध्यस्थ भाग (पदार्थ) मे भी फर्क दिखायी पडने लगता हे। यह सेण्ट्रिओल (तारक-केन्द्रक) दो भागो (डिप्लोसोम्स) मे विभक्त हो जाता है। दोनो डिप्लोसोम्स अपने-अपने भामण्डल (प्रभा-मण्डल, हैलो), अपनी आभा से, घिरे रहते है। (तु० अम्ब्रा-पेनम्ब्रा)। इस आभासित (भासित) क्षेत्र को सेण्ट्रोस्फियर (तारक-परिकेन्द्र) कहते है। दोनो डिप्लोसोम्स एक-दूसरे से अलग हटने लगते है। जैसे दो नाव मँझधार से निकलकर दोनो विभिन्न किनारो की ओर बहती जा रही हो। दोनो अपवाही (ड्रिफ्टिग) डिप्लोसोम्स एक-दूसरे से सम्पर्क स्थापित किये रहते है (जुडे रहते है) अतीव सूक्ष्म प्रोटो-प्लाज्मिक फाइब्रिल्स (तन्तुक, तन्तुकी तार) के माध्यम से (द्वारा) (सहारे), जो उनके बीच फैले रहते है और उनका आपसी सम्बन्ध-विच्छेद नही होने देते। जैसे 'टग ऑव वार' मे दोनो जूझते दलो के बीच का रस्सा। देवघर मे शिव-पार्वती के पावन मन्दिरो को जोडनेवाले धागे। जैसे मनमुटाव-मध्य दम्पति का प्रेम-सूत्र। जैसे, मुखियाजी तथा सरपचजी के बीच समझौते का प्रयास। जैसे प्राणी-परमात्मा का योग। द्विविधा की 'धी'। जैसे 'त' और 'थ' के बीच का 'ह्'। (त्+ह्=थ)। (तु० दो टिमटिमाते तारो को जोडती उनकी रश्मियाँ, दो हीरक कर्णफूलो के बीच किसी मोनालिसा की सौम्याकृति)। (गगा और पद्मा के बीच की पावन धारा)। [जैसे पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच वह अन्तरिक्षीय (ब्रह्माण्डीय) विधान, जो अपनी-अपनी धुरी पर नाचते (चक्रिल), और अपने विभिन्न ग्रहपथो पर परिक्रमण (—शील) करते दोनो सगे-सम्बन्धियो को एक दूसरे से मुँह नही मोडने देता, पीठ नही फेरने देता, रूठने नही देता। उनकी गति, धुरी तथा परिक्रमण-पथो (ग्रहाक्षो) की आपसी विभिन्नता के बावजूद।]

दोनो डिप्लोसोम्स के बीच के इन सूक्ष्म तन्तुको (ऐस्ट्रल रेज, तारक-किरण), की सरचना लट्टू के आकार की (तर्कु-रूपी) होती है। इसे 'केन्द्रिक' अथवा 'अरग'-लट्टू (एक्रोमैटिक स्पिण्ड्ल) (अवर्णक =या अरज्य तर्कु) की सज्ञा दी गयी है।

(तु० पृथ्वी, ग्लोब, के नक्शे, एटलस, मानचित्र पर खीची गयी देशान्तरीय रेखाये, जो दोनो ध्रुवो को जोडती है ।) (जैसे, सूर्य की किरणे वसुधा को छूने आती है) ।

यह समस्त अरग (रग-विहीन, फीका)—आकृति, जिसे ऐम्फिऐस्टर (द्वितारक) कहते है, निम्नाकित भागो से बना हुआ है

(क) मेण्ट्रियोल्स (तारक-केन्द्रक)
(ख) सेण्ट्रोस्फियर (तारक-परिकेन्द्र)
(ग) ऐस्ट्रल रेज (तारक-किरण)
(घ) सेण्ट्रल स्पिण्ड्ल (केन्द्रिक अरज्य तर्कु)

ध्यान देने की बात है कि यह साइटोप्लाज्मिक ऐम्फिऐस्टर (द्वितारक) रग-रहित (फीका, अरग, अरज्य) है और यह भी कि (प्रधानत केन्द्रक-स्थित) क्रोमैटिन (क्रोमोसोम इत्यादि) रगीन (सरग, रजित, अल-पक्का रग) है (याने वह वैज्ञानिक रँगरेजो के द्वारा रँगा जा सकता है और रगीन मेक-अप (शृगार) के साथ खुर्दबीन मे झाँकता है ।

पूर्वावस्था (प्रोफेज) के अन्तिम चरण मे दोनो डिप्लोसोम्स (सेण्ट्रियोल, तारक-केन्द्र) एक दूसरे से हटकर कोष के दोनो प्रतिमुख (विपरीत) ध्रुवो पर डट जाते है ।

मध्यावस्था क्रोमोसोम के विपाटन (विदारण) और उनके वियोग, विछोह, विच्छेद और पृथक्करण की अवस्था है । (सूखे-टेढे बाँस-के-टोना का फट जाने जैसा) (और फिर, उन फटे भागो को चीरकर अलग कर देने जैसा) । (एक टोना से दो फट्ठियो का बनना) । मध्यावस्था मे क्रोमोसोम्स आकार मे छोटे (ठिगने) और गठीले (सघन) बन जाते है । केन्द्रिक अरज्य तर्कु के चतुर्दिक् वे समवेत (एकत्र) ('युद्ध' के लिये नही !) हो जाते है, एक तथ्यत (ठीक-ठीक) मध्यावर्त्ती सतह पर, जो दोनो सेण्ट्रोसोम्स (तारक-काय) (दोनो डिप्लोसोम्स) के बीचोबीच मध्यक्षेत्रीय 'इक्वेटेरियल (विपुवत्, निरक्ष, भूमध्यवर्त्ती) प्लेट (पट्टिका, थाली)' जैसा लगता है । अब ऐसा दीखने लगता है कि प्रत्येक क्रोमोसोम लम्बा-लम्बी ठीक बराबरी के दो भागो मे बँट गया हो (जैसे बाँस का टोना सीधे-सीध दो बराबर फट्ठियो मे फट गया हो) (एक क्रोमोसोम से दो समान क्रोमैटिड्स) । प्रत्येक क्रोमोसोम (गुणसूत्री) के ये दोनो हिस्से (क्रोमैटिड्स) क्रोमोसोम के एक बिन्दु पर आपस मे सटे-चिपके रहते है (जैसे वियोग के समय गले मिल रहे हो) । (तु० फटती हुई बाँस की गिरह ।) यह एक सकुचित स्थल (स्थान) (कन्स्ट्रिक्टेड रीजन) होता है ('प्राथमिक या प्रधान निकुचन या कटि') जिसके भीतर एक (स्पष्ट) साफ, निर्मल मण्डल (क्षेत्र) होता है । उसे सेण्ट्रोमियर (गुणसूत्री बिन्दु) कहते है ।

मध्यावस्थी गुणसूत्रियो की अपनी विशिष्ट आकृतियाँ होती है (जैसे टोकरियो की ककडियाँ) । इनकी आकृतियो का निर्धारण अशत (इन पार्ट) उनके 'प्राइमरी कन्स्ट्रिक्शन' (सेण्ट्रोमियर) की स्थिति (लोकेशन ऑन दि क्रोमोसोम) पर निर्भर करता है ।

टिप्पणी प्रत्येक क्रोमोसोम की अपनी खास आकृति होती है, जो प्रत्येक कोष मे अटल (नियत अपरिवर्त्तनीय, एक समान) रहती है। उस स्पीशीज (जाति) के प्रत्येक प्राणी के प्रत्येक कोष मे जस-की-तस (हूबहू, अटल, नियत, अपरिवर्त्तनीय, एक समान) रहती है। इस अटल आकृति की बडी महत्ता है, क्योकि इसकी अद्वितीयता तथा अपरिवर्त्तनीयता पर उसकी पहचान की मुहर दी हुई है। विभिन्न जातियो की शिनाख्त का यह अकाट्य निशान है। (पूर्ण विकसित होकर जीवाणु-विज्ञान हर एक प्राणी को भी एक दूसरे से अलग-कर पहचानने मे कारगर सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।)

पश्चावस्था—क्रोमोसोम्स का पर्यटन (प्रव्रजन, माइग्रेशन) और एक युवा कोष से दो बच्चे कोषो (सन्तति) की उत्पत्ति (एक पूर्व-विकसित कोष से दो नवीन कोषो का जन्म)। केन्द्रक अरज्य तर्कु के प्रोटोप्लाज्मिक फाइब्रिल्स (ऐस्ट्रल-रेज, तारक-किरण) प्रत्येक क्रोमोसोम को सेण्ट्रोमियर (गुणसूत्र-बिन्दु) पर पकडे रहते है (प्रत्येक क्रोमोसोम से उसके सेण्ट्रोमियर स्थल, बिन्दु, पर जुडे रहते है) (यही वह स्थल है, जहाँ एक क्रोमोसोम के 'दोनो क्रोमैटिड्स भी एक-दूसरे से अलग होने की प्रक्रिया मे, अन्ततक एक-दूसरे से चिपके रहते है। अन्तत, प्रत्येक सेण्ट्रोमियर भी विलग हो जाते है, आपसी सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते है [जैसे, कटते हुए बाँस के टोना मे दोनो फट्ठियो का गिरह (गाँठ) पर जुडे रहना। फिर, गिरह का भी फट जाना)]। (तु० सब कुछ त्यागने के बाद त्याग-का-अभिमान बचा रह जाना, फिर उसका भी त्याग हो जाना) (तु० ससार से पूर्णत सम्बन्ध-विच्छेद होने तक प्राण के मोह का घेरे रहना।) सेण्ट्रोमियर्स (गुणसूत्र-बिन्दु) भी दो भागो मे बँटकर दोनो क्रोमैटिड्स के साथ अलग हो जाते है। फलस्वरूप, प्रत्येक क्रोमोसोम के दोनो क्रोमैटिड्स एक-दूसरे से पूर्णत (सर्वांश मे) अलग होकर दो (अलग) सन्तति (नवीन) क्रोमोसोम बना डालते है।

नवीन क्रोमोसोम्स के दो जत्थे सेना की दो टुकडियो की भाँति ('धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे मामका पाण्डवाश्चैव') आमने-सामने कोष के 'इक्वेटेरियल प्लेट' पर ऐटेशन (सावधानी से) मे खडे हो जाते है (ऐरेन्ज्ड केयरफुली ऐण्ड सिमेट्रिकली)। तब प्रोटोप्लाज्मिक फाइब्रिल्स (ऐस्ट्रल रेज) (तारक-किरण) जो नवीन क्रोमोसोम्स को उनके सेण्ट्रोमियर (गुणसूत्र-बिन्दु) पर पकडे रहते है और जो सेण्ट्रोसोम्स (डिप्लोसोम्स→ नवीन सेण्ट्रोसोम्स) से जुटे रहते है, सिकुडने लगते है और दोनो नवीन क्रोमोसोम-पुजो (समूह) (जत्था) को अपनी ओर खीचने लगते है। इस तरह दोनो नवीन-क्रोमोसोम-पुज एक दूसरे से अधिकाधिक दूर होते हुए अपनी ओर के डिप्लोसोम्स (=नवीन-सेण्ट्रोसोम) के निकट कोष के ध्रुव के पास पहुँच जाते है। [तु० क्रेन से सामान उठाना]। ऐसा भी सम्भव है कि नवीन क्रोमोसोम-पुजो के बीच कोई विकर्षण-(प्रतिकर्षण) (रिपेलिंग) शक्ति पैदा हो जाती हो, जो उन्हे एक-दूसरे से दूर हटा छोडती हो। [जैसे पुलिस का जत्था नगर के दोनो छोर पर सरकारी हुक्म से अपनी-अपनी छावनी मे बुला लिया गया हो (पुल्ड-आउट फ्रॉम फील्ड ऑव कन्फ्रण्टेशन)।

यह स्थानीय हुक्म से भी हो सकता है, केन्द्रीय आज्ञा से भी ।] और, तब वे तारक-किरण सिर्फ मार्ग-निर्देशक (पथ-प्रदर्शक, गाइड) जैसा काम करते हो ।

अन्त्यावस्था—सन्तति (नवीन-बच्चे) कोषो का पुनर्गठन, विकास । केन्द्रक-करण तथा कोष-रस-भरण । नये न्यूक्लियस का नव-निर्माण (पुर्नानिर्माण) तथा साइटोप्लाज्म (कोषीय द्रव्य) का विभाजन (बॅटवारा) । अन्तिम सोपान । यह नव-निर्माण का आखिरी दृश्य (घटना, मजिल, अभिनय) है । अब एक कोष से दो नवीन कोष बन गये । एक केन्द्रक से दो । साइटोप्लाज्म का दोनो नवीन कोषो के बीच बराबर बॅटवारा हो गया ।

तत्पश्चात् ये नव-कोष उसी रास्ते पर अग्रसर हुए, जिन रास्तो पर उनके पूर्वज कोष चले थे । और, जिस राह पर उनकी सन्तति भी चलेगी । अटल प्राकृतिक विधान के आयाम किसी के लिए भी नही बदलते । हमारी सस्कृति बदल सकती है । मानव-पना मे हम मूलत पूर्ववत् रह जाते है ।

माइटोसिस (गुणसूत्री-विभाजन) की अवधि सर्वत्र एक-सी नही है । अक्सर यह घण्टे-भर से कम ही मे समाप्त हो जाती है । अधिकाश समय पूर्वावस्था (प्रोफेज) की तैयारी मे चला जाता है । दूसरी अवस्थाये तीव्र गति से सम्पादित हो जाती है ।

माइटोसिस (गुणसूत्री-विभाजक) की प्रधान विशेषता यह हे कि उसके द्वारा क्रोमोसोम (जीवाणुओ का वश-धन, कोष-भाण्डार, वशानुगतिता के द्वारा अर्जित कुल माल, पैतृक सरो-सामान, विरासत मे मिली विशिष्टताये) बिलकुल बराबर-बराबर हिस्सो मे सन्तति-कोषो मे बॅटते जाते है । मजा यह है कि एक कोष से असख्य कोषो मे बॉट देने के बाद भी वह कारू का खजाना खत्म ही नही होता । एकता अनेकता मे बदल भी गयी और एकता बची भी रह गयी । इसे विश्वकर्मा का कमाल भी कह सकते हे । प्राकृतिक तकनीक की करामात भी ।

कोष का विभाजन कोष के विकास के लिये अनिवार्य है । बिना विभाजन के कोष का विकास बन्द हो जाता है । माइटोसिस की अन्त्यावस्था तक कोष के परिमाण तथा उसके सचित द्रव्यो मे कोई द्रष्टव्य फर्क नही पडता । लेकिन, जैसे ही केन्द्रक दो सन्तति नव-केन्द्रको मे विभक्त हो जाता है, वैसे ही दो सन्तति नव-कोषो के लिए सारे कोष-द्रव्य इकट्ठे हो जाते है और कोष-रस की मात्रा भरपूर हो जाती हे । नयी केन्द्रिका, नये राइबोसोम्स नयी माइटोकॉण्ड्रिया, नया गोल्जी-पिण्ड इत्यादि-इत्यादि सभी यथेष्ट मात्रा मे उपलब्ध हो जाते है । नव केन्द्रक का कोष धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाता है । (तु० आदमी और उसका राज्यक्षेत्र या प्रभाव-प्रदेश, मैन-ऐण्ड हिज टेरीटरी) (तु० आबादी और आहार) (तु० हिस्रक जन्तु अथवा मृगया-लोलुप मानव-जातियाँ और उनके निर्वाह तथा भरण-पोषण के निमित्त उनके आखेट-क्षेत्र) ।

मृत कोष का चोला, उसकी आकृति (चेहरा) सर्वथा बदल गयी होती है । वह धीरे-धीरे गल-पचकर समाप्त हो जाता है (टि० निक्रोबायोसिस, निक्रोसिस, साइटो-

लाइसिस, ऑटोलाइसिस, पिक्नोसिस, कैरियोरेक्सिस, कैरियोलाइसिस या क्रोमेटोलाइसिस—यह सब शव-सम्कार के कर्मकलाप है) (श्राद्ध के बाद एक याद-भर रह जाती है)।

जीवन-मृत्यु की, आलोक-अमा-की, धूप-छाँह की, 'सिलवट बडी ही सूक्ष्म होती है', दोनो का ताल-मेल ही जिन्दगी का चरम रहस्य है।

ऋत वदन्तौ सुकृतस्य लोके
गुहा प्रविष्टौ परमेऽपरार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता ।। (कठोपनिषद्)

माइटोसिस (गुणसूत्री विभाजन) का जादू आपने देखा। आदमी के प्रत्येक कोष-केन्द्रक मे 23 जोडे (=46) क्रोमोसोम्स रहते है, जो आदमी को अपने पूर्वजो (जनक-जननी) से वशानुगत विरासत मे प्राप्त होते है। अगर प्रत्येक क्रोमोसोम को हम एक फीता-का-टुकडा के रूप मे देखे, तो प्रत्येक फीते पर उसके मालिक की आकृति-प्रकृति-गुण-दोष सभी लक्षण उसके जीवाणुओ के रूप मे अकित है। जीवाणु (जीन्स) की सख्या भी शायद अरबो मे होगी।

माइटोसिस के दरम्यान (अन्तर्गत) जैसे फीता (क्रोमोसोम्स) दो बराबर (लम्बान)-हिस्सो मे फट जाता है और एक कोष के दोनो सन्तति-कोषो को बराबर बॉट दिया जाता है। इसलिए, प्रत्येक सन्तति-कोष को फिर 46 क्रोमोसोम्स (23 जोडे) प्राप्त हो जाते है।

काया के प्रत्येक कोष (सोमाटिक सेल्स) का विभाजन-विकास इसी पद्धति (माइटोसिस) से होता रहता है और आदमी की जिन्दगी चलती रहती है।

(३) मेइओसिस (=अर्धसूत्री विभाजन, अर्धसूत्रण)।

लेकिन यौन-सम्बन्ध कोष—गैमीट (युग्मक)—के विभाजन का रास्ता (तरीका, पद्धति) अलग ढग का है। गैमिटिक (युग्मकी) कोशो मे भी पुरुष-युग्मक (शुक्राणु) (जनक-युग्मक) का और नारी-युग्मक (अण्डाणु) (जननी-युग्मक) का रवैया एक सदृश नही होता और दोनो प्रकार के युग्मको की सरचना (एनाटॉमी, हिस्टॉलॉजी) और प्रक्रिया (फक्शन्स, फिजियोलॉजी) मे भी काफी विभेद रहता है, लेकिन उनकी मूलभूत समानताये भी रहती है। मान लीजिये, आपके पास 46 छोटे-बडे, विभिन्न आकृति-प्रकृति के, फीते हो। उनमे प्रत्येक फीता ऐसा हो कि उसका जोडा उन्ही 46 क्रोमोसोम्स मे उपलब्ध हो। और, एक तरह के फीते को उसी के प्रतिरूप फीते के निकट रख दीजिये, तो आपके पास 23×2 फीते हुए—मतलब 23 प्रकार के कुल जमा 46 फीते। इसे 2n (या 2×23) नम्बर या डाइप्लवायड नम्बर (डिप्लॉइड, द्विगुणित) भी कह सकेगे। और, ऐसा कोष, जिसमे इसी तरह के क्रोमोसोम्स मौजूद हो, उसे डिप्लॉइड कोष कहते है। कोष-विभाजन (माइटोसिस) मे 23 जोडे क्रोमोसोम्स

पुर्नविभाजित होकर दो नये 23 जोडे क्रोमोसोम्स बन जाते है और इसी प्रत्येक सन्तति-नव-कोष को 23 जोडे (याने 46 क्रोमोसोम्स) प्राप्त हो जाते है।

शुक्रजनन (स्पर्मेटोजेनेसिस)

आदमी मे सात जन्म लेकर (के बाद) स्पर्मेटोगोनियम (शुक्राणुजन, पुमणुजन) [जो आदमी के अण्डकोष मे पाया जानेवाला मूल-जनक (पेरेण्ट-कोश) है] प्राथमिक स्पर्मेटोसाइट बनता है।

पूर्ण विकास के बाद प्रत्येक स्पर्मेटोसाइट दो बार विभाजित होता है (एक विभाजन के बाद वह फिर दूसरी बार विभाजित होता है)। इन विभाजनो को परिपक्वन विभाजन (मैचुरेशन डिवीजन) कहते है। पहले विभाजन के प्रतिफलस्वरूप एक 'प्राथमिक (आद्य-प्रथम) स्पर्मेटोसाइट' से दो विभिन्न 'द्वितीयक' (सेकेण्डरी) स्पर्मेटोसाइट्स की उत्पत्ति होती है। प्रत्येक 'द्वितीयक स्पर्मेटोसाइट' विभाजित होकर दो भिन्न स्पर्मेटिड्स बनाता है। शुक्र-जनन मे यह आखरी पीढी है। इसके बाद बिना किसी और (अतिरिक्त, अपर) विभाजन के स्पर्मेटिड्स सीधा स्पर्मेटोजोआ मे परिवर्त्तित हो जाते है। दोनो परिपक्वन विभाजन (मेचुरेशन डिवीजन) का मुख्य फलन यह होता है कि प्रत्येक स्पर्मेटिड (और स्पर्म, शुक्राणु) मे क्रोमोसोम्स की सख्या कायिक (सोमाटिक)-कोष-क्रोमोसोम की आधी होती है। याने आदमी मे 23 जोडे नही, बल्कि सिर्फ 23 क्रोमोसोम्स-मात्र शुक्राणु मे पाये जाते है। अण्ड-जनन (ऊजेनेसिस) मे भी पूर्ण-विकसित-अण्डाणु-कोष मे सिर्फ 23 क्रोमोसोम्स (23 जोडे नही) ही रहते है।

इस तरह युग्मक कोश (गैमीट, यौन-सम्बन्धी कोष) के विभाजन की क्रिया मे गैमीट्स मे (शुक्राणु और अण्डाणु मे) सिर्फ 23 क्रोमोसोम्स बचे रह जाते है, जो कायिक (सोमाटिक) कोष की आधी सख्या (याने 'n') (2n नही) के बराबर है। (इसे हैपलाइड, अगुणित, सख्या-सम्पन्न कोष कहते है)। अण्डाणु-कोष के शुक्राणु-कोष को द्वारा निषेचन के समय दोनो अगुणित कोषो के क्रोमोसोम्स मिलकर ($n+n^1$) निषेचित युग्मनज (जाइगोट) कोष को पूरी सख्या (2n) मे क्रोमोसोम प्रदान करते है।

टिप्पणी मूल जनक शुक्राणुजन (स्पर्मेटोगोनियम) तथा मूल अण्ड-जननी (ऊगोनियम) दोनो ही डिप्लॉइड कोष है, जिनमे कायिक कोषो की नाईं प्रत्येक कोष मे 46 क्रोमोसोम्स पाये जाते है। [लेप्टोटीन अवस्था।] मेइओसिस (अगुणित कोष-विभाजन) का सार तत्त्व (एसेन्स) यह है कि इसमे 23 जोडे क्रोमोसोम्स के विभाजनान्तर प्रत्येक सन्तति गैमीट कोष को सिर्फ 23 (—विभिन्न प्रकार के एक-एक) (होमोलोगस=समजात) (दो समजात कोषो मे से एक) क्रोमोसोम्स ही मिलते है (हैपलाइड, अगुणित सख्या)। होता यह है कि दो समजात (होमोलोगस, समान) क्रोमोसोम एक-दूसरे मे सटकर एकाकार (अनुबद्ध, सयुग्मित) हो जाते है। ['बाइ-भैलेण्ट' युगली] इस तरह, विभाजन के पहले 23 जोडे क्रोमोसोम की जगह

यथार्थत (फलत) सिर्फ 23 क्रोमोसोम रह जाते है, जो विभाजित होकर भी प्रत्येक सन्तति-गैमीट कोष को मात्र 23 (हैपलाइड अगुणित) क्रोमोसोम्स ही दे पाते है। तत्पश्चात् इन हैपलाइड (अगुणित) गैमीट-कोषो का विभाजन माइटोटिक पद्धति से होने पर भी उनकी सन्तति (कोषो) मे वही 23 क्रोमोसोम्स की सख्या (हैपलाइड) रह जाती है।

[टि० विभिन्न अवस्थाएँ गैमीट-विभाजन के,—लेप्टोटीन गाइगोटीन (पैकीटीन), डिप्लोटीन इत्यादि ।]

आनुवशिक विज्ञान (आनुवशिकी) (जेनेटिक्स) के आधार पर बीमारियों का तशकीस (निदान) एक नया आयाम प्रस्तुत करेगा। यो तो, क्रोमोसोम्स की अपनी निजी बीमारियाँ भी होती ही है, जो कोष की जीन-सरचना सेल-एनजाइम्स (कोष-किण्वाणु) अथवा कोषीय प्रोटीन इत्यादि की बनावट मे गडबडी पैदा कर अनेक जन्म-जात, आनुवशिक या लैगिक बीमारियो का कारण बन जाती है।

[तु० टरनर्स सिण्ड्रोम, क्लाइनफेल्टर्स सिण्ड्रोम, x x x-सिण्ड्रोम, y y-सिण्ड्रोम, x x/x y मौजेक्स और ऐम्फीगोनाडिज्म, मौगोलिज्म, ट्राइसोमी, क्रि-दु-चेट, ल्युकीमिआ, ट्युमर्स, ट्रासलोकेशन, नन-डिसजक्शन, डीलीशन, चि(शि)मेरिज्म, डाइ-स्पर्मिया इत्यादि ।]

एक डी० एन० ए० या आर० एन० ए० के अणु मे अनेक (उदाहरणार्थ, 100,000) न्यूक्लियोटाइड्स की इकाइयाँ सगृहीत रह सकती है। डी० एन० ए० और आर० एन ०ए० की रासायनिक भिन्नता के कारण

(१) न्यूक्लियोटाइड्स इकाइयो का मूल सरचनात्मक क्रम।

(२) प्रत्येक अणु मे ऐसी इकाइयो की सख्या।

(३) पेण्टोज शुगर की भिन्नता (आर० एन० ए० मे राइबोज, डी० एन० ए० मे डिऑक्सीराइबोज)।

(४) आर० एन० ए० मे यूरासिल (डी० एन० ए० के थाइमिन के बदले) की उपस्थिति।

(५) आनुवशिकता सिर्फ डी० एन० ए० पर निर्भर है, आर० एन० ए० पर नही।

[वैषम्यात्मक तुलना—अनेक ऐसे भाइरस है, जो प्रोटीन+आर० एन० ए० (डी० एन० ए०) से बने है। जैसे, टोबैको मोजैक भाइरस (टी०एम०भी०), ह्यूमन पोलियो-मायलाइटिस भाइरस ।]

बैक्टीरियल भाइरस (बैक्टिरियोफाज या 'फाज') सिर्फ एलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप के द्वारा देखे जाते है। वे जीवन्त बैक्टिरियल कोष की अनुपस्थिति मे न विकसित हो पाते है और न प्रजनन (पुनरुत्पत्ति) कर सकते है।

किसी जीन (जीवाणु) के वैकल्पिक (विकल्पी) रूप को एलील (युग्मविकल्पी) कहते है (उदाहरणार्थ चमडे के विविध वर्णाभा-भेद के उपयुक्त तत्सम्बन्धी एलील)। कुछेक जीन के एक सौ एलील तक ज्ञात है। प्रत्येक जीन का अपना अलग कार्य

और अपनी अलग उपयोगिता है। "इन टाइम, ओनली वन ऑव दि फैमिली ऑव एलील्स ऑव ए गिभ्न जीन इज ऑन ए क्रोमोसोम, इन स्पेस, इट इज ऑलवेज इन दि सेम पोजिशन ऑन दि सेम क्रोमोसोम। वी कैन, देयरफोर 'मैप' ए जीन, लोकेट इट्स पोजिशन ऑन ए पार्टिकुलर क्रोमोसोम, ऐण्ड वी नो दैट वी कैन फाइण्ड इट देयर ह्वेन वी विश टू इन दि प्रोजेनी सेल्स ऑव दि ऑरगैनिज्म आफ्टर मेनी जेनेरेशन्स।"

जीनी विन्यास (सरूपण) (जीन कनफिगरेशन) अटल नही है। किसी भी जीन के अनेक (कई) एलील (अलटरनेटिव डिफरेण्ट फॉर्म्स) हो सकते है।

जीन के अपने सामान्य निर्धारित प्रकार (रूप-गुण-विधान) के परिवर्त्तित रूप (एलीलाकृति) को म्युटेशन (उत्परिवर्त्तन) कहते है।

उत्परिवर्त्तन के द्वारा ही नवीन-(नूतन), और अभिनव-अनूठा-अनोखा-अद्भुत-विलक्षण-निराला प्राणी पैदा होता है।

उत्परिवर्त्तन (म्युटेशन) क्या सिर्फ 'सयोग' या 'चान्स' पर निर्भर है? कहना मुश्किल है। लेकिन सृष्टि के विशाल क्रूसिबल (मूषा) (प्रयोगशाला) मे 'दि लॅ ऑव चान्स' भी एक 'लॅ ऑव कैलकुलेटेड (परिकलित, मतलबी, निरूपित, व्यवस्थित, सुविचारित) चान्स (सयोग)' हो सकता है।

कोई भी वस्तु-स्थिति किसी भी दिक्काल मे तद्रूप, हू-ब-हू, एक-सी नही होती। इस शाश्वत और सर्वव्यापी विधानान्तर्गत उत्परिवर्त्तन अनिवार्य है, वातावरण का बदलना भी अनिवार्य है, सुतरा वस्तु और स्थिति का, प्राणी और परिवेश का, आपसी समन्वय (समझौता, ऐडजस्टमेण्ट) और अनुकूलन (मेल-मिलावट, ऐडैप्टेशन) भी अनिवार्य है।

मान लीजिये कि ताश से पत्तो (कार्ड्स) की सख्या हो 'एक्स' और वे पत्ते 'वाइ' तरह (भाँति, प्रकार) से (सख्या मे) खुलवाये (ड़अ) जा सकते हो, तो लॅ-ऑव-चान्स के मुताबिक वे कुल-जमा 'वाइ' तरह से ही खुल सकते है (भाँजे जा सकते है)। उस गिनती मे न एक कम होगा और न एक बेशी। वह 'वाइ'-प्लस-वन या 'वाइ'-माइनस-वन भी न होगा। इस तरह देखते है कि लॅ-ऑव-चान्स भी एक ऐसे उससे भी बडे-अधिक-बीहड-अटल-प्रतापी लॅ से नियन्त्रित है, जो स्वय 'सयोग'-परक कतई नही है। लॅ-ऑव-चान्स पर हावी होनेवाले विधान को परमात्मा का एक विशिष्ट विधान मान लीजिये। जो 'सयोग' के अपने नकली रूप मे प्रकट होता है, परन्तु वैसा है नही।

एक जीन=एक विशिष्ट-रासायनिक (बायोकेमिकल) क्रिया=एक जैविक (वैयक्तिक) (बायोलॉजिकल) गुणावगुण।

हो सकता है कि म्युटेशन के द्वारा,—

(१) एनजाइम की तादाद और उसके उत्पादन की द्रुतता (रफ्तार) (क्वाण्टिटेटिव), और

(२) एनजाइम (किण्वाण्) की रूप-रेखा (सरचना, स्ट्रक्चर) (क्वालिटेटिव), नियन्त्रित होती हो।

(टिप्पणी कुल किण्वाणु प्रोटीन है और सैकडो-हजारो अमीनो-एसिड्स के मिश्रण से निर्मित है) ।

जीन, प्रोटीन की सरचना मे अमीनो-एसिड्स का क्रम निर्धारित करता है । (जीन=डी० एन० ए०) ।

डी०एन०ए० (=जीन) विट्रो (टेस्ट-ट्यूब) मे भी बनाया जा सकता है, लेकिन उसके लिये सब 'कच्चा' माल के अलावा भी डी० एन० ए० का जोरन (तु० दही जमना) (प्रथमक, आदिचालक, प्राइमर) की उपस्थिति अत्यन्तावश्यक और अनिवार्य है और इसके लिये डब्ल-स्ट्रैण्डेड-डी० एन० ए० (कोमोसोम-का-जोडा) (होमोलोग्स, समजात दोहरा-चपेता फीता) से कही अधिक कारगर 'जोरन' सिग्ल स्ट्रैण्डेड डी० एन० ए० साबित हुआ है ।

कुछ जीन अक्सर म्यूटेट करते है, कुछ यदा-कदा, कुछ कभी नही ।

जीन की मूल इकाई (-सिस्ट्रन)=न्यूक्लियोटाइड का एक जोडा=सरचनात्मक-, क्रियात्मक-, विकासगत-, वशपरम्परागत-, इकाई=किण्वाणुगत इकाई ।

माइटोसिस=रूढिवादिता ।

म्युटेशन=आधुनिकता, क्रान्ति ।

मिओसिस=सहकारिता ।

माइटोसिस+मिओसिस=परम्परता ।

ऐसा सम्भव है कि न्यूक्लियर इनहेरिटेन्स मेइओसिस के आधार पर, तथा साथ-ही-साथ साइटोप्लाज्मिक इनहेरिटेन्स माइटोसिस (पिण्ड, फॉर्मडबडीज) और एमाइ-टोसिस (रस, फ्लुइड) के आधार पर, होता हो ।

अगर आदमी प्रकृति के सभी विधानो को जान ले, और उसकी सभी कार्य-प्रणालियो, तकनीक, से अवगत हो जाय, उसके सभी हुनर को सीख ले, फिर भी उससे क्या होने-जाने को है ? आदमी को तब भी परमातमा की जरूरत रहेगी । विज्ञान की प्रगति होती जायगी । लेकिन, मानवीय मसले अध्यातम के बिना हल कदापि न होगे। परमातमा पर वैज्ञानिक उपलब्धियो का तनिक भी असर नही पडेगा । परमातमा फिर भी पूर्ववत् मानव-मन मे अपनी अजस्र करुणा और जाज्वल्यमान विभूतियो और अपार प्रेम के साथ स्थापित रहेगा । प्रभु उसके अकेले का साथी होगा, उसका सहायक, उसका आश्रय और पनाह। (कुत्ते रोटी के लिये लडते है, आदमी विशेषता के लिये भी।)

अगर वातावरण एक सवाल है, तो म्युटेशन उसका जवाब ।

[तु० (क) बैक्टिरिया और ऐण्टीबायोटिक्स ।

(ख) मक्खियाँ और डी० डी० टी० ।

(ग) मनुष्य और पेस्टीसाइड्स, आयोनाइजिंग रेडिएशन्स, वेट-लेस-नेस, स्पेस के मसले और प्रभाव, साइबरनेटिक्स, सर्वोदय इत्यादि ।]

टि० (क) बैक्टिरियल ट्रासडक्शन तथा (ख) पॉलिनेशन ।

टि० फेनाइलकीटोन्यूरिया, गैलेक्टोसूरिया, सिक्ल-सेल एनीमिया, ब्लड-ग्रुप्स और टाइप्स, आर-एच फैक्टर, हीमोफिलिया, कलर-ब्लाइण्डनेस इत्यादि ।

टि० इम्यून-रिऐक्शन्स, एपिडेमिक्स ।

टि० ल्युकीमिआ, कैन्सर इत्यादि ।

टि० बम-विस्फोट और सृष्टि ।

टि० जरा और जिन्दगी ।

प्रकृति और भौतिक सृष्टि मे विभिन्नता बडी (अतीव) व्यापक है । कही कुछ भी एक समान कभी नही मिलता । प्रतिपल दृश्य बदलते रहते है और नजर भी बदल जाया करती है । लघुतम वस्तु की आपसी भिन्नता भी उतनी वैसी ही विस्तृत है, जितनी जैसी बृहत्तम वस्तुओ की । न दो प्राणी एक-सरीखे होते है, न उनके कायिक कोष । किसी दो शारीरिक कोष मे भी समानता नही है । कोई दो केन्द्रक, केन्द्रिका, माइटोकॉण्ड्रिया राइबोसोम्स, साइटोप्लाज्म, क्रोमोसोम्स अथवा शुक्राणु, अण्डाणु, किण्वाणु अथवा कोई दो जीवाणु (जीन्स) ही, एक सदृश नही होते। कोई दो डी० एन० ए० या आर० एन० ए० या एक ही प्रोटीन या अकार्बनिक (अजैव) पदार्थ के दो अणु भी समान नही होते । कोई दो परमाणु (एटम) भी नही । न दो आँखे एक-सा देखती हे, न दो कान एक-से सुनते है, न दो मस्तिष्क एक-सा सोचते-समझते, कार्य करते है । न किसी के करने-कहने का प्रभाव किसी दो प्राणियो पर कभी एक-सा पडता है । दो मरीजो पर किसी दवा का असर भी एक-सा नही पडता, न चिकित्सा का प्रभाव ही ।

कोलचिसीन (कौलसेमाइड) (हिरण्यतुत्थी) का प्रभाव कोष के स्पिण्ड्ल (तर्कु-पिण्ड (तर्कु) की सरचना पर पडता है । उसके प्रभाव से केन्द्रिक-अरज्य-तर्कु (सेण्ट्रल-एक्रोमेटिक-स्पिण्ड्ल) की सरचना बन्द हो जाती है, क्रोमोसोम्स के विभाजन के बाद माइटोसिस की क्रिया जहाँ-की-तहाँ रुक जाती है । क्रोमोसोम्स का बँधा गट्ठा (गट्ठर) बिखर जाता है ।

फाइटोहीमैग्लुटिनिन (पी० एच० ए०) का विशिष्ट प्रभाव लिम्फोसाइट्स के माइटोसिस पर पडता है । पी० एच० ए० के प्रेरक, उत्तेजक, उद्दीपक प्रभाव से माइटोसिस का जैसे विस्फोट हो जाता है ।

(टिप्पणी कोलचिसीन और पी० एच० ए० दोनो ही पौधो मे पाये जाते है) ।

स्ट्रेप्टोमाइसीन और डाइहाइड्रो-स्ट्रेप्टोमाइसीन का असर प्रधान श्रवण-तन्त्रिका (मेस्टिबुलो-एकाउस्टिक) के न्यूक्लियस पर भी एक-सा नही होता । ऐण्टीबायोटिक्स तथा ऐण्टीमाइटोटिक दवाओ का असर देखिये । एलर्जी की बात सोचिये । यहाँतक कि एसिड एसेटिलसैलिसिलिक जैसी साधारण दवा और रासायनिक यौगिक (कम्पाउण्ड) का प्रभाव भी मरीजो के पेट और दर्द इत्यादि पर एक-सा नही पडता । 'ग्लूटेन' को गुनिये । साइकोथेराप्युटिक्स को समझिये । डिजिटेलिस, क्वीनीडीन इत्यादि दवाये, ऐण्टीप्रोटोजोअल दवाइयाँ, इन्सेक्टिसाइड्स, उर्वरकादि । खाद्य पदार्थों मे किसी को कुछ (विभिन्न कारणो से) भाता है, तो किसी को कुछ । अपनी,

पच्चीस वर्षो की डॉक्टरी जिन्दगी मे मैंने तीन ऐसे मरीजो को देखा, जिनके दॉत मिठाई खाने से कोथे हो जाते थे, खटाई खाने से नही। और एक ऐसा मरीज भी देखा, जिसके मुँह के अन्दर पानी पीने मे थोडी जलन-सी होने लगती थी। एक महिला-मरीज थी, जिसका स्लाइभा (लाला, लार) चूने के गाढे घोल की तरह था। एक मेरे डॉक्टर-शिक्षक थे, जिनकी हृदय-गति (रफ्तार) केवल एक साधारण सिगरेट पीने के फलम्वरूप, सत्तर से एक-सौ-तीस-चालीस तक बढ जाया करती थी। औरगजेब कला से घबराता था, अकबर उसपर फिदा था। पृथ्वी के परिक्रमण (परिभ्रमण) की दीर्घवृत्तीय कक्षा (एलिप्टिकल ऑरबिट) भी बदलती रहती है। और, चार वर्ष पहले जब पेट का दर्द मिटाने के निमित्त किशोरी ने लोकप्रिय बहु-व्यवहृत 'स्पाजमिण्डन' की मात्र एक गोली खायी, तो ड्रग-रिऐक्शन के रूप मे उनकी जॉघ पर एक नीले रग का पैच (धब्बा) उभर आया, मानो ऐरावत ने नील कमल को अपनी सूँड मे उठा लिया हो। वर्षो बाद वह धब्बा फीका पडते-पडते छूटा। पुन उनके पेट मे कुछ दर्द हुआ, तो डॉ० अखिलानन्द ठाकुर ने बहुचर्चित 'बेलरगल' की एक गोली खिला दी, तो फिर इलाज के फलस्वरूप वही नीला धब्बा पूर्वस्थल पर आविर्भूत हुआ, मानो कदली के पेड मे अपराजिता का फूल खिला हो, अथवा विमल व्योम मे नीलाभ अमिताभ उगा हो, अथवा धर्म ने कही धीरज खो दिया हो, या यमुना मे वशी बजी हो। लेकिन, इस बार वह धब्बा दो-चार दिनो मे ही मिट गया, वह मण्डलाकार नीलिमा शीघ्र ही सिमट गयी। वह नीली सूर्यमुखी दिन मे ही मुरझा गयी।

मानव-जाति के जो 46 क्रोमोसोम्स है, उनमे 22 जोडे है आटोसोम्स (अलिंग-सूत्र) के और एक जोडा है सेक्स-क्रोमोसोम्स (लिग-सूत्र) का। सेक्स-क्रोमोसोम्स मे भी आपसी विभिन्नता है। महिलाओ के xx-क्रोमोसोम्स है और पुरुषो के xy-क्रोमोसोम्स। और वे तीनो 'x-क्रोमोसोम्स' भी एक जैसे नही होते। 'y'-क्रोमोसोम्स की तो बात ही छोड दीजिये। वह तो और भी निराला अवधूत है।

एक ही कोष के विभिन्न क्रोमोसोम्स की सरचना-गति भी एक-सी नही है। कोई क्रोमोसोम्स अपना डी० एन० ए० शीघ्र ही बना (या बनवा) लेता है। किसी को देर लगती है। कोई क्रोमोसोम जल्दी द्विगुणित (दोहरा, प्रतिरूपित) हो जाता है, कोई दीर्घसूत्री बना रहता है। उदाहरणार्थ 'x-क्रोमोसोम' अपनी लेथार्जी (आलस्य) के लिये बदनाम है।

स्वस्थ जनो मे भी सभी क्रोमोसोम्स सदा अपरिवर्त्तनीय 'स्वस्थ' और ('सुव्यवस्थित' रहते हो, ऐसी बात नही है। कुछेक अप्रसम, असाधारण, क्रोमोसोम्स अक्सर दिखलायी पड जाते है।

आर० एन० ए० भी कम-से-कम तीन तरह के है (शायद स्ट्रक्चरली भी और फक्शनली भी)।—(क) मेसेंजर (सन्देशवाहक) आर० एन० ए०।

(ख) ट्रान्सफर (स्थानान्तरित करनेवाला) आर० एन० ए०।

(ग) राइबोसोमल (कोष के राइबोसोम्स से सम्बद्ध) आर० एन० ए० ।

मान लीजिये कि श्रीनि [किन्द्रक] को खास तरह के 23 जोडे अण्डे [क्रोमोसोम्स, डी० एन० ए० (प्रोटीन+पेण्टोज शुगर+पाइरीडीन+पिरीमिडीन+फॉसफोरिक एसिड)] चाहिये। राँची [साइटोप्लाज्म] मे सनि (माइटोकॉण्ड्रिया+राइबोसोम्स+राइबोसोमल–आर० एन० ए०) अण्डा (क्रोमोसोम-डी० एन० ए०)-उत्पादन का काम करते है। गिनि राँची मे सनि के साथ रहते है और अण्डा छाँटने और वितरण करने का भार उठाये हुए हैं [गिनि=ट्रान्सफर-आर० एन० ए०]। लनि पटने मे श्रीनि के यहाँ ठहरे है और राँची आते-जाते है। श्रीनि ने 23 जोडे अण्डो का पूरा विवरण लिखकर [कोडिग—साकेतिक भाषा या शब्दो मे] लनि के द्वारा सनि के पास वह सन्देश [फरमाइश, आर्डर-फॉर्म]–पत्र भेजा।

(लनि=मेसेजर-डी० एन० ए०)। सनि ने अण्डो की व्यवस्था कर गिनि के पास वह सन्देश-पत्र अग्रसारित कर दिया। गिनि [ट्रान्सफर-आर० एन० ए०] ने आर्डर-फार्म (आदेश-पत्र) के मुताबिक अण्डो [क्रोमोसोम की सरचना मे व्यवहृत होनेवाले विशिष्ट डी० एन० ए० की सूची] को छाँट-चुन कर इकट्ठा करवाया और लनि के सुपुर्द कर राँची [साइटोप्लाज्म] से श्रीनि [किन्द्रक] के पास भिजवा दिया।

श्रीनि=केन्द्रक।

सनि=माइटोकॉण्ड्रिया+राइबोसोम्स+राइबोसोमल-आर० एन० ए०।

गिनि=ट्रान्सफर-आर० एन० ए०।

लनि=मेसेजर-आर० एन० ए०।

जीवन एक रहस्य है। जितना अधिक 'रहस्यौद्‌घाटन' हुआ, उतने ही अधिक विस्मयात्मक रहस्य सामने आते गये। द्रौपदी-का-चीर की भाँति परते खुलती रही, पर द्रौपदी जस-की-तस रही, आवरण-विहीन नही हुई। विज्ञान ने अनेक दरवाजे खोले, बहुतेरी गुत्थियाँ सुलझाई, प्राकृतिक विधानो का पता किया (लगाया) और उनसे तकनीकी सहायता ली, प्रगति की। लेकिन, मूल प्रश्नो का जवाब न मिल सका। उसने 'मूल प्रश्न' की खिल्ली उडाकर भी देखा—'मूल-प्रश्न' नामक कोई वस्तु है ही नही, यह एक वितण्डा है, तार्किक वाक्चातुरी है—'अध्यात्म' की धज्जियाँ उडायी गयी—'जीवन' केवल फिजिकल-केमिकल-प्रक्रियाओ का सघटन है—लेकिन इन सबके बावजूद पहेली सुलझ न सकी। कई अन्य सवाल उठ खडे हुए है, जब कुछेक के जवाब मिल गये। रक्त-बीज दानव की तरह।

(१) 'जीवन' अगर टेस्ट-ट्यूब मे भी जन्म ले, तो महज उससे उसकी महत्ता घट नही जाती, न उसका भेद खुल पाता है। जीवन क्या और क्यो है?

(२) डी० एन० ए० क्या 'जीवित' है? आर० एन० ए० भी?

(३) डी० एन० ए० क्या कोई भाइरस है, जो आदिकाल से कोष के साथ सहजीवन (सिमबायोसिस) व्यतीत कर रहा हो? (तु० टोबेको-मौजेक-भाइरस इत्यादि)।

(४) होमोलोगस (सहजातिक) क्रोमोसोम्स मिटोसिस मे क्यो बिछुडते है और मियोसिस मे क्यो घुल-मिल जाते है ?

(५) ऐस्ट्रल-रेज क्या है और नियत समय पर कैसे प्रकट हो जाते है ? उनपर कोलचिसीन का असर कैसे और क्यो पडता है ?

(६) गैमीट और सोमैटिक कोषो के क्रोमोसोम्स मे क्या समानता या विभेद है ?

(७) अण्डाणु जब 'पौलर बडीज' (ध्रुवीय पिण्ड) को बहिष्कृत करता है, तब उनमे किन-कैसे क्रोमोसोम्स को किस आधार पर छाँटकर हटा (फेक) देता है ?

(८) माइटोकॉण्ड्रिया, राइबोसोम्स इत्यादि भी क्या 'जीवन्त' है ? क्या वे भी अपना प्रतिरूप पैदा कर सकते है ?

(९) आनुवशिकता क्या साइटोप्लाज्म के फार्मड-बडीज पर भी लागू होती है ? और किस तरह ?

(१०) निषेचनार्थ शुक्राणु के चुनाव का क्या आधार है ?

(११) निषेचन के बाद अण्डाणु-कोष को शुक्राणु का केन्द्रक ही प्राप्त होता है, साइटोप्लाज्म नही। ऐसा क्यो होता है ?

(१२) क्या यह सच है कि एक अण्डाणु कभी एक से अधिक शुक्राणुओ के द्वारा निषेचित नही हो सकता ? और क्यो ?

(१३) माइटोसिस के द्वारा एक कोष अपने प्रतिरूप दो सन्तति-कोषो मे विभक्त हो जाता है। फिर, क्या कारण है कि एक जाइगोट (युग्मनज) विभाजित होकर अपना प्रतिरूप नही बनाता, बल्कि विभिन्न प्रकार के (उ० नर्भ-सेल, हार्ट-सेल, लिवर-सेल, मास-पेशियाँ, हड्डी, आँख, कान, त्वचा, जीभ, दाँत, केश, नाखून, किड्नी और मस्तिष्क और फिर गैमीट-सेल्स भी) कोषो को बना पाता है और काया का उचित निर्माण कर पाता है। (एक युग्मनज एक मानव कैसे बन जाता है ? एक नन्हा-सा बीज एक विशाल वट-वृक्ष कैसे हो जाता है ?) (एक ही युग्मनज-रूपी साँचा भाँति-भाँति की मूर्त्तियाँ, कोष, कैसे गढ लेता है ?)

(१४) 'जीन' क्या सिर्फ रासायनिक पदार्थ है अथवा शक्ति-समूह अथवा मैटर्जी-जैसी कोई वस्तु ?

(१५) कोडिग (जीन-) का आधार और उसका प्रेरक कौन है ? उसका 'इण्टरप्रेटर' कौन है और वह कैसे काम करता है और म्युटेशस को कैसे पहचानता है ?

(१६) न्यूक्लियस, साइटोप्लाज्म, न्यूक्लिओलस, गोल्जी-बडीज इत्यादि मे कैसा सम्बन्ध और कैसी निर्भरता है ?

(१७) क्या 'जीन' अवयवो के सीधे (डाइरेक्ट) आधार या बौने-या प्राथमिक-रूप है ?

(१८) एक ही अवयव मे उसके विशिष्ट (पैरेन्काइमा, मृदूतक) कोष और अन्यान्य सामान्य कोष कैसे एकत्र हो जाते है ?

(१९) भ्रूण मे त्वचा बनानेवाले कोष कैसे और क्यो तन्त्रिकीय (न्यूरल) कोष बनाने मे प्रस्तुत-प्रविष्ट हो जाते है ? (तु० बिनाइन सेल्स का मलिगनैण्ट बन जाना)।

(२०) म्युटेशन के प्राकृतिक (आन्तरिक-आभ्यन्तरिक) और उपनिवेशिक-पर्यावरणिक (वातावरणी, एनभिरनमेण्टल) कारणो मे क्या सम्बन्ध है ? (और, तु० रासायनिक म्युटाजेन्स,—नाइट्रस एसिड, 5-ब्रोमोयूरासिल, 6-अमीनोप्यूराइन, साइटोसीन-यूरासिल, ऐडेनीन-हाइपोजेनथीन) (तु० नाइट्रोजेन मस्टर्ड, एटोमिक फॉल-आउट्स, एक्स-रेज इत्यादि-इत्यादि, इन्मेक्टिसाइड्स इत्यादि ।

(२१) क्या सभी जीनो की कार्य-प्रणाली समान है ?

(२२) यूरासिल और थाइमीन, रिबोज और डिऑक्सी-रिबोज मे ऐसा क्या फर्क है, जो आर० एन० ए० और डी० एन० ए० मे इतनी समानता और इतनी ही विभिन्नता पैदा कर देता है ? (जब कि आर० एन० ए० भी वैसा ही—उदाहरणार्थ भाइरस और पौधे इत्यादि मे—करतब दिखला सकता है, जैसा कि डी० एन ए०)।

(२३) डी० एन० ए० और आर० एन० ए० की साठ-गाँठ का क्या भेद है ?

(२४) न फॉसफॉरिक एसिड मे, न पेण्टोज शुगर मे, न अमीनो-एसिड्स मे, न प्यूराइन या पाइरिमिडाइन मे, न न्यूक्लिक एसिड मे—कही भी 'प्राण' नही है। फिर, कोष मे 'प्राण' (लाइफ-फोर्स) कहाँ से, कैसे और कहाँ पर है ? काया मे जीवात्मा कहाँ है ? कैसे है ? और, क्यो है ?

(२५) पिण्ड का ब्रह्माण्ड से और व्यष्टि का समष्टि से क्या सम्बन्ध हे ? सूर्य का सृष्टि से, रश्मि का, इन्स्टिक्ट्स का, मानस का और एलेक्ट्रिसिटी इत्यादि का, जीन्स से क्या सम्बन्ध है ?

एवरीथिंग इज समह्वाट एडभाण्टेजस ।

(क) कोई भी ऐसी वस्तु-स्थिति इस दुनिया मे नही, जिसमे कुछ-न-कुछ फायदा न हो और जिससे कुछ भी नुकसान न हो ।

(ख) कोई भी दो वस्तु-स्थिति आपस मे एक दूसर के शत-प्रतिशत समान हो ही नही सकती ।

(ग) हर वस्तु-स्थिति एक-दूसरे से भिन्न होती है । यहाँतक कि दो पिन-प्वायंण्ट्स, भी एक-से नही होते, दो क्षण भी समान नही होते, दो जीन्स (जीवाणु), भी बराबर नही होते । दो 'एक' या 'दो' 'द्वि' भी एक-सरीखे नही होते ।

(घ) इनफिनिटी एक तुलनात्मक सज्ञा है । (देखिये—कलन, कैलकुलस)

(च) सभी वस्तु-स्थिति अद्वितीय है । परमात्मा पूर्णत अद्वितीय है, सर्वांश मे सर्वप्रकारेण, इन हिज ऐब्सॉल्युटनेस, विथ रेसपेक्ट टू ऑल ऑव हिज इनफिनाइट नम्बर ऑव डाइमेन्शन्स ।

(छ) भगवान् एक ही है । गॉड इज वन । जो एक ही है, वह अद्वितीय नही तो और क्या होगा ।

(ज) असम्भव कुछ भी नही है । ब्रह्माण्ड अपरिमित है । काल अनन्त है ।

(झ) प्रत्येक कोष की अनेक बीमारियो के लिये जब अनेक स्पेसिफिक (विशिष्ट) ओषधियाँ उपलब्ध हो जायेगी, तभी कोई डॉक्टर बाहुसौण्डिक बन पायगा । यह आशा निराधार नही है ।

Much of what goes on in our life are merely bundles of conditioned reflexes Suppose that stimulus A normally evokes a reflex response X And that a stimulus B normally cannot or does not (or is not capable of doing) do so If B is constantly associated with A then in course of time B is able to elicit the response X The reflex type of response, X, has thus been 'conditioned' 'Conditioning' refers to a process by which a response comes to be elicited by a stimulus, object, or situation other than to which it is the natural or normal response The term 'conditioned reflex' was used by Pavlov The phenomenon was discovered almost accidentally by the great man (Pavlov) The principle explains many complex behaviour phenomena

To explain, food (the sight or smell or memory or mention of) causes salivation If a bell is rung every-time the food is brought then an association is established between the food and the bell Thereafter the bell itself will cause salivation even in the absence of the food (if the food be absent) The bell obviously does not normally evoke the reflex (salivation) It has been conditioned to do so (by the process of association, with the food) The word 'conditioned' is not quite apt but it has been used in this context and has come to stay

The 'conditioned reflex' has certain characteristics—e g

(i) (its dependence on) 'conditioning'

(ii) extinction

(iii) spontaneous recovery and

(iv) re-inforcement with unconditioned stimuli

The response which a psychiatrist is able to elicit from his patient may be 'conditioned'

Objectivity of the mind is not assured Even if it be the mind of the experimental psychologist Even of Freud himself

Ideas, and even their methods of verifications and conclusions arrived at, may be contagious Hence the belief and the faith that

anything is 'factual' because it has been verified by so many people is not correct It is not a justified stand It is not reliable

Compare the similarities of views held by the preceptor (गुरु) and his disciples (चेला, चेले), between the founder of a sect (religion) and his ardent followers, between the leader and the led, between the hero and the eulogizing herd

There are perpetuating prestige 'suggestions', pseudo— or no— 'verifications' Subjectivity doning the garb of objectiveness Re-inforcements occuring, nevertheless

Compare and think of the 'Skinnerian technique', of Prof Lorenzo Ducklings taught to disregard their own true parents (mother duck) and to follow him He taught pigeons to play pingpong

Accidental connections between cause and effect, and the contiguity between two variables may give rise to a false notion of cause and effect

Compare the similarities (of approach) between Superstition and Science Verily, there is a very thin line lying between and separating the two It is actually difficult to say what is or may be Science or Superstition In the case of both and either an attempt is made to establish some sort of a 'cause and effect' relationship One observes a phenomenon (an 'effect') and attaches a 'cause' to that Is that not what you do in the case of either 'Superstition' or 'Science' In 'Science' you try to verify it, 'variously', singly or in groups, and may be in ways more than one You may have, as you might think, 'succeeded' in doing so That indeed is what makes all the difference to you between Science and Superstition

However, even 'Naturalistic Observations' are not always possible To be able to observe events in their natural setting or surroundings without interference, is often difficult It is almost impossible in the realm of microbiology or when abstractions, like mental processes, are investigated and studied

'Ultimately' the distinction between Science and Superstition rests on (i) 'Experimentation' (a man-made tool), and (ii) Psychometry (Psychometric approach or 'correlation') That is to say that the experimental 'results' (Observations) and the statistical methods

of verification and proof-gatherings convinces us that a relationship (of the nature of cause and effect) has been found out between the two variables In fine, that Science has been distinguished, and set apart, from Superstition

When psychologists try to be 'Objective' and say so, and doggedly persue 'Objectivity'—the poor things do not realize that they are being 'subjective' (That in their die-hard puritan approach they are being 'subjective' about 'objectiveness That their own 'mind' is an imperfect gadget constantly swept by hidden storms and gales and winds and perpetually lashed by mysterious torrential blitz and tides and waves)

How can an 'imperfect' implement he expected to give a 'perfect' result ? How can a defective, tainted, prejudiced and conditioned mind give out a 'true', 'correct' and 'factual' interpretation of an observed phenomenon ?

Psychological researches are all 'behavioural' The manifestations of neurological processes are all that comes in their perview, it is all the 'raw-material' they can lay their 'scientific' experimental hands on They do not know the 'mind' and, therefore, they are unable to work with it

The 'psychologist' may know everything but he, for certain, does not know two things He does not know two things He does not know the 'mind' of his 'guinea-pigs' And he little knows his own 'mind' God alone knows what he is doing when he is experimenting with and interpreting them His indeed is an enviable position who does not know his own tools ! The pre-requisite of knowing one's own 'self' reamains a far cry in the wilderness

They have said that the distinction between 'man' and other species of animals is primarily based on the fact that man has a 'mind', a 'human-mind' endowed with the unique capacities for 'learning', 'language', 'speech', and 'culture'

But moron deaf-mutes do not have either 'speech' or 'language' and animals can 'learn' Parakeets (and parrots, love-birds, 'maina' etc) can utter and imitate human (as babies and children also do) 'speech' and 'dogs' (and elephants, horses and monkeys etc) can

understand and follow human 'language' Mocking birds can 'learn' Apes may have some (little ?) 'conscience' Confronted with these 'happenings' they argue that it is a 'relative' thing But fail to delienate the limits of this 'relativity'

And so they prosper Behind the human cloaks and curtains of 'ignorance'

Freud's own 'Oedipus complex' has been referred to by his own colleagues They have also divulged that Freud was getting just what he wanted from his patients And that Freud was unaware of this 'trick' his own mind was playing on the conscientions man

Freud was indeed administering a 'third' shock to mankind [after (i) Galiles and (ii) Darwin] when he happened to tell them in so many clear terms that people do not know themselves or their mind or their behaviour (behavioural causes) As though Freud knew it all !

Learning is a process akin to 'imprinting' It is not equal to सस्कार, Sanskar, (because of its 'past') Habits may be acquired or learnt and they may be tenacious (The strength of learning determines the resistance to extinction What happens to all the knowledge and all the experience that man acquires in his life time ?)

हमारे जीवन मे जो कुछ हो रहा है, उसका अधिकाश केवल अनुबन्धित प्रतिवर्त्त (कण्डिसण्ड रिफ्लेक्सेज) का बण्डल है। मान लीजिये, एक उद्दीपक (स्टीमुलस) 'ए' साधारणत एक अतिचारी प्रतिवर्त्त (रिफ्लेक्स रिस्पोस) 'एक्स' (x) को उद्बुद्ध (इभोक) करता है और एक उद्दीपक (स्टिमुलस) 'बी' साधारणत ऐसा नही करता अथवा कर सकता है। यदि 'बी' (का) 'ए' के साथ सतत आसग (एसोसियेशन) (मे) रहे, तो कालक्रम मे बी एक्स (x) प्रतिचार (रिस्पोस, प्रत्युत्तर) एलिसिट करने मे समर्थ होगा। प्रत्युत्तर या प्रतिचार (रिस्पोस) का प्रतिवर्त्त रूप (रिफ्लेक्स टाइप) 'एक्स' इस प्रकार अनुबन्धित हो गया। अनुबन्धन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक स्टिमुलस (आब्जेक्ट, उद्दीपक वस्तु) से प्रत्युत्तर (प्रतिचार) प्राप्त होता है, या अपेक्षया उस स्थिति से इतर जिससे स्वाभाविक और सामान्य प्रत्युत्तर या प्रतिचार (रिस्पोस) सम्भव है। 'अनुबन्धित प्रतिवर्त्त' पद का प्रयोग पावलोव ने किया। आकस्म योग से पावलोव ने इस घटना-निदर्शन का शोध (खोज) कर लिया। इस सिद्धान्त से अनेक मिश्र (सम्मिश्र या मिश्रित) व्यवहारो (आचारो) के घटना-दृश्यो की व्याख्या होती है।

व्याख्या के तौर पर, भोजन (के दृश्य, घ्राण, स्मृति या उल्लेख) से लार पैदा होती है। अगर कोई घण्टी आहार प्रस्तुत होने के सूचक समय पर बजे, तो घण्टी और आहार के बीच एक आसग (एसोसिएशन) स्थापित हो जाता है। तब आहार की अनुपस्थिति मे यह घण्टी ही लार चुलाने की प्रेरक बाध्यता उत्पन्न कर दे सकती है। स्पष्ट है (बाह्यत) घण्टी साधारण तौर पर प्रतिवर्त्त नही उद्दीपित कर सकती। आहार के आसग की प्रक्रिया मे यह ऐसा करने को अनुबन्धित हुई। 'अनुबन्धित पद' पूर्ण समीचीन (उपयुक्त) नही है, किन्तु इस प्रसग (सन्दर्भ) मे व्यवहृत हो गया है।

अनुबन्धित प्रतिवर्त्त की कुछ खास विशिष्टतायें (विशेष लक्षण-प्रकृति) है। उदाहरणार्थ (१) अनुबन्धन (कण्डीशनिग) (पर इसकी आश्रिति)। (२) विलोपन (एक्सटिक्शन), (३) स्वत स्फूर्त्त पुनर्लाभ (स्पॉण्टेनियस रीकभरी) और (४) पुन शक्ति-सवृद्धि (री-इनफोर्समेण्ट)—अ-अनुबन्धित उद्दीपको के साथ। एक मनश्चिकित्सक के द्वारा अपने मरीजो से नि सृत होनेवाले प्रत्युत्तर या प्रतिचार (रिस्पोस) अनुबन्धित हो सकते है।

वस्तु-विषयता (पदार्थ-विषयता) (ऑब्जेक्टिभिटी) का निश्चय नही किया जा सकता। यद्यपि यह प्रायोगिक मनोविज्ञानी का मानस (माइण्ड) ही हो। स्वय फ्रॉयड का भी।

विचार और उनके सत्यापित करने के तरीके और प्राप्त निष्कर्ष सक्रामक हो सकते है। कोई चीज अनेक लोगो के द्वारा सत्यापित हो चुकी है—इसलिये वह वास्तविक या यथार्थ हो—ऐसा विश्वास, आस्था ठीक नही, सही नही, दुरुस्त नही। यह न्याय नही। यह विश्वसनीय नही।

गुरु और शिष्य, उपदेशक और अनुसर्त्ता के विचारो की समानताओ या एक-रूपताओ (उसी तरह धर्मसस्थापक और धर्मानुयायी, नेता और अनुशासियो एव किसी शूर-वीर नायक तथा उसके प्रशसक प्रेमियो के बीच भी) की तुलना करे। 'स्किनैरिअन टेकनीक' पर तुलनात्मक विचार करे। प्रो० लॉरेंज पर। उन्होने बत्तख के बच्चो को उनके अपने माता-पिता की अवहेलना करने और अपना अनुकरण करने की शिक्षा दी। उन्होने कबूतरो को पिग-पौग खेलने की सीख दी।

कार्य और कारण के बीच के आकस्म सम्बन्धो और परस्पर नैकट्य (सान्निध्य) से कार्य-कारण के गलत विचार उत्पन्न हो सकते है।

अन्धविश्वास एव विज्ञान की समानताओ की तुलना करे। स्पष्टत, बहुत ही बारीक रेखा दोनो के बीच है, जो दोनो को अलग करती है। वास्तव मे, यह कह सकना कठिन है कि क्या विज्ञान (हो सकता) है और क्या अन्धविश्वास (अन्धधर्मता)। किसी एक मे या दोनो मे ही एक प्रकार के कार्य-कारण-सम्बन्ध की स्थापना का प्रयास किया जाता है। कोई एक घटना (दृश्य) (कार्य) का अवलोकन करता है और उसे किसी 'कारण' से सम्बद्ध कर देता है। क्या यह वही नही है, जिसे आप या तो अन्धविश्वास के धरातल पर या विज्ञान के आधार पर करते होते है? विज्ञान मे

आप अनेक तरह से (एकल या समूह-बद्ध) इसका सत्यापन करते है। आप ऐसा करने मे सफल हो सकते है। वास्तव मे, यही कारण है, जो आपके समक्ष अन्धविश्वास और विज्ञान की सारी विभिन्नता को प्रस्तुत करता है।

जो हो, 'प्राकृतिक अवलोकन' भी सदा सम्भव है। अपने प्राकृतिक प्ररूप और पर्यावरण (सेटिग ऐण्ड सराउण्डिग्स) मे बिना किसी हस्तक्षेप (इण्टरफेरेस) के—घटनाओ का अवलोकन प्राय कठिन है। सूक्ष्म जीवाणु-शास्त्र के जगत् मे यह प्राय असम्भव-सा ही है या तब, जब मानसिक प्रक्रियाओ की तरह एब्सट्रैक्सन का अध्ययन और अन्वेषण किया जाता है।

(अन्तत) विज्ञान और अन्धविश्वास के बीच भेद इन बातो पर निर्भर है—(१) प्रयोग, परीक्षा, अनुसन्धान (एक्सपेरिमेण्टेशन), मानव-सृष्ट साधन (उपकरण) और (२) साइकोमेट्री (साइकोमेट्रिक एप्रोच या 'कार्रीलेशन') प्रायोगिक परिणाम (अवलोकन) और स्टैटिस्टिकल मेथड्स—जिससे सत्यापन और प्रमाण सग्रह होता है—हमे विश्वास दिलाते है कि कार्य-कारण की प्रकृति का सम्बन्ध दोनो चलनशीलो (भेरिएबुल्स) के बीच पाया गया है। सारत , अन्धविश्वास और विज्ञान का भेद स्पष्ट किया गया।

जब मनोविज्ञानी वस्तु-विषयी होने की कोशिश करते है और वस्तु-विषयता का अनुसरण करते है, उन बेचारो को महसूस नही होता कि वे सब्जेक्टिव हो रहे है। कैसे एक अपूर्ण कार्यान्वयन से पूर्ण परिणाम की प्रत्याशा की जा सकती है ? कैसे एक दोषपूर्ण, पूर्वाग्रहयुक्त और अनुबन्धित मानस (माइण्ड) से एक 'सत्य', 'सही' और 'वास्तविक' या यथार्थ विवेचना या व्याख्या प्रस्तुत कर सकते है—अवलोकित घटना दृश्य की ?

मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान (शोध) व्यवहारात्मक या आचारात्मक होता है। न्यूरोलॉजिकल प्रक्रियाओ की प्रव्यजनाएँ (मेनिफेस्टेशन्स) जो उनकी व्युत्प्रेक्षा (अवलोकन, परीक्षण, परमिउ) मे आती है—वे सारा कच्चा माल (रॉ-मेटेरियल) है, जिनपर उनके 'वैज्ञानिक' और 'प्रायोगिक' हाथ पडते है। वे मानस (माइण्ड) से अनभिज्ञ रहते है, अत उनके साथ क्रिया-व्यापार मे असमर्थ भी। मनोविज्ञानी 'हर चीज' जान सकता है। लेकिन, वह दो चीजे नही जान पाता। वह अपने गिनी-पिग्स के 'माइण्ड' को नही जानता। वह अपने माइण्ड के बारे मे भी कम ही जानता है। केवल परमात्मा जानता है कि वह क्या कर रहा है, जबकि वह अपने प्रयोग और विवेचन मे रत रहता होता है। वास्तव मे, एक ईर्ष्यालु स्थिति है उसकी, जो अपने उपकरणो को नही जानता ! अपने सेल्फ को जानने की पूर्वापेक्षाये अरण्यक्रन्दन-मात्र है।

उनके अनुसार मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियो मे प्रधान अन्तर यह है कि मनुष्य को एक माइण्ड, एक ह्यु मन माइण्ड है, जो ज्ञान, भाषा, वाक् और सस्कृति-विषयक अपूर्व-अप्रतिम सामर्थ्य से सम्भरित है। लेकिन, पूरे-पक्के बहरे-गूँगे के पास न वाणी,

न भाषा होती है, और जानवर जान सकता है, सीख सकता है। पैरेकीट्स (और पैरोट्स, लभबर्ड्स, मैना इत्यादि) मनुष्य की बोली बोल सकता है या उसका अनुकरण कर सकता है। (जैसा कि बच्चे प्राय करते भी है)। और कुत्ते (और हाथी, घोडे, बन्दर आदि) मनुष्य की बोली समझ सकता है और उसका अनुकरण-अनुसरण कर सकता है। लगूर (एप) को कुछ विवेक (कॉन्शेन्स) हो सकता है। इन घटनाओ के मुकाबले वे दलील देते है कि यह एक सापेक्षिक वस्तु है। किन्तु, वे सापेक्षता का सीमाकन करने मे समर्थ नही होते।

और इस प्रकार, वे विकसित-समृद्ध होते है। मनुष्य के आवरण और अज्ञान के पर्दे के पीछे।

फ्रॉयड का 'आडिपस कम्प्लेक्स' उनके सहयोगियो के द्वारा निरूपित, निर्दिष्ट और प्रमाणित हुआ है। उन्होने यह भी प्रकाश मे लाया कि फ्रॉयड ने अपने मरीजो से जो कुछ अपेक्षा की, उसे पाया। फ्रॉयड भी इस ट्रिक से अनवगत था। जिसका जादूई खेल उसका अपना ही माइण्ड उस महामानव पर कर रहा था। फ्रॉयड वास्तव मे मानव-जाति को (१) गैलालियो और (२) डार्विन के बाद एक तीसरा आघात पहुँचा रहा था, जबकि उसने अनेकश स्पष्ट पदो मे यह कहना शुरू किया कि लोग स्वय को नही जान पाते, न अपने माइण्ड को और न अपने व्यवहार को (अथवा व्यावहारिक कारणो को)। जैसे फ्रॉयड यह सब जान गया हो!

लर्निंग 'इम्प्रिण्टिग' सरीखी एक प्रक्रिया है। यह 'सस्कार' के समान नही है। क्योकि, इसमे अतीत का महत्त्व है। आदते हासिल की जा सकती है, सीखी जा सकती है और वे अडियल और चीमड (अटल) हो सकती है।

कल (गत दिवस) का दिन मेरे जीवन मे एक सुदिन, स्वर्ण-दिन (शुभ दिन) था। मैं सुकवा (शुक्रतारा) (भुरुकवा) के उगने के समय तक मरीजो को देखना समाप्त कर अपने क्लिनिक ('त्रिभुवन') से लौटा था। थका-माँदा तो था ही। ब्रह्मवेला थी, मै सो गया। एक प्रश्न मेरे मन मे उठता रहा है, जिसका जवाब नही मिल पाया था। उस दिन जब विद्यार्थियो ने भी वही सवाल मेरे सामने रखा था, मै, सच पूछिये तो, निरुत्तर हो गया था। सवाल टेढा है। किसी ने उसका समीचीन सुलझाव अभी तक नही पाया था। कल मेरी समस्या का समाधान हो (मिल) गया। सवाल हल हो गया।

उषा मे हमारी बजरियाँ (बजरी, बजरिगर्स, लभ-बर्ड्स) जग जाती है, सुग्गा बोलने लगता है, कुत्ता भूँकने लगता है। जब बिछावन पर लेटा, वह सवाल माथे मे आ धमका। चिडियो की भैरवी, उनका चहचहाना। वह मधुर सगीत। प्राणो मे उस मृदुल झकृति को सँजोये, प्रश्नोत्तर मे उलझा मै न जाने कब चन्द घण्टो के लिए गाढी नीद मे मृतवत् हो गया। जब जगा, तब दुनिया कब की जग चुकी थी। मनो-वैज्ञानिक मसलो पर लिखने बैठा, तो टेलीफोन बजा। टेलीफोन बजा, तो मन भिन्नाया। देह मे आग लगनेवाली ही थी कि परमप्रिय आदरणीय मित्र

प्रो० हरिमोहन झा के पत्र पर नजर पडी, जिसे उन्होने विजयादशमी के उपलक्ष्य मे अपनी शुभकामनाओ के साथ भेजा था—"सहृदय-शिरोमणि डॉ० . को विजया की शुभकामनाओ-सहित सादर सप्रेम समर्पित—

पूछते हो, 'मै कहा हूँ ?'
हो रहा मुखरित स्वरो मे,
प्रश्न का उत्तर यही है,
'तुम हृदय मे हो'।
विश्व का है केन्द्र मानव
केन्द्र मानव का हृदय है,
तुम हृदय मे हो।
कृष्ण ने ऐसा कहा था—
'भक्त मेरे है जहाँ गाते । वहाँ मै हूँ'
है कहा जा सकता तुम्हारे भी विषय मे यह
'आर्त्त रोगी है जहाँ, रोते वहाँ तुम हो' ।
कृष्ण की अँगुली बजाती बाँसुरी
औ चलाती थी सुदर्शन चक्र भी ।
छातियो पर है तुम्हारी अँगुलियाँ
धडकने पढती व्यथा की, मर्म की
औ अमृतमय स्पर्श से हरती व्यथा
अभय की मीठी बजाकर बाँसुरी ।
और वे ही कुशल कोमल अँगुलियाँ
सूक्ष्मतम 'सर्जन' क्रियाओ मे निपुण
काम करती है सुदर्शन चक्र का
ग्राह के मुँह मे बचाती प्राण है ।
प्राणियो के आर्त्तिनाशन मे सदा
लिख रही मुसकान जीवनदायिनी
है जहाँ, वह पुण्यतीर्थ समान है
औ वही श्री का पुनीत निवास है ।
'मैं कहाँ हूँ' ? पूछते तुम हो,
तुम वहाँ पर हो, जहाँ 'श्री' है,
'श्री' वहाँ पर है, जहाँ तुम हो,
है जहाँ प्रज्ञा, दया, करुणा,
हृदय मानव का जहाँ पर है,
अनुप्राणित कर रहे प्रतिक्षण
तुम वही पर हो, वही पर हो
औ सदैव रहो, सदैव रहो ।"—हरिमोहन

معالجینِ جہاں کے رئیس و راس ہیں آپ
بسانِ حسرت و ارمان دلوں کے پاس ہیں آپ
مرض شناس و کرم گستر و غریب نواز
طبیبِ مشفق و ہمدم شری نواس ہیں آپ

وہ چارہ ساز و خلیق و کرم شناس ہیں آپ
کہ درد سن لیں کسیکا تو بس اداس ہیں آپ
طبیبِ وقت پکارا یہ کون ہیں ممدوح
مسیح بولے ادب سے شری نواس ہیں آپ

(ڈاکٹر معصوم نواب دانش)

वह एक प्रेरक प्रतापी पत्र था। मैने टेलीफोन उठाया। कोई डॉक्टर क्या खाक लिख पायगा। रात-दिन लोगो ने बीमार पड-पडकर, नाक मे दम कर रखा है। कुछ सोचने बैठिये, तो टेलीफोन। कुछ लिखने बैठिये, तो टेलीफोन। कुछ करने बैठिये, तो कही-न-कही कोई कराहता सुनायी पड जाता है। क्या मुसीबत है। झख मारकर टेलीफोन उठाना पडा। धन्वन्तरि ने कैसी औंधी-उलटी परम्परा चलायी कि हम सबकी जान आफत मे डाली। और, अपने लोग भी ऐसे नासमझ है, ऐसे बेतरतीब कि ऐन मौके पर बीमार पड जाते है। पता नही, वे कैसे जान जाते है कि 'डाक्टर साहब' अभी जरा फुर्सत मे दो-चार लाइन (पक्तियॉ) लिखने बैठे है! पता नही, ये 'प्रिभेण्टिव-मेडिसीन' वाले अनवरत पीनक मे रहते है क्या! सब-के-सब अमलखोरी मे दिन बिताते (व्यतीत करते) है क्या! जान आफत मे है! कोई सकट मे पड गया क्या? हॉ। कोई सकट मे ही पड गया था, टेलीफोन ने बतलाया। और दो सौ मील दूर एक रोगी को देखने, मै कार (मोटर-गाडी) मे बैठकर चल पडा।

गाडी पर लिखने की कोशिश की, तो जो भी टेढे-मेढे, उलटे-सीधे, कीडे-मकोडो जैसे अक्षर राजनीतिज्ञो की विखण्डित-मनस्कता-ग्रस्त (साइजो फ्रैनिक)-सूझ-सी ऊटपटॉग, बनती-बिगडती, अप्रत्याशित-अज्ञात पक्तियो मे, लिखे पाये गये, वे अमूल्य थे!

आरकीमिडिज की तरह मै भी, दबी जुबान (जबान) मे, चिल्ला उठा—'यूरेका!' ('मैने पा लिया!')

शास्ता ने प्राकृतिक विधान मे एक जाब्ता देख ली थी। मेरे मन ने भी चुपके से कहा— कि उस प्रखर प्रकाश की एक धूमिल रश्मि मेरे मानस-पटल पर भी उतरी थी।

ऋषि-महर्षियो ने वेद-उपनिषद् लिखे थे। उन्ही के वश मे जनमा मैं भी आज उपनिषदो की परम्परा मे, दो-चार बाते बतलाने की स्थिति मे अचानक, अकस्मात्, अनजाने, आ गया था।

सवाल—'अगर कर्म-फल की परिकल्पना (हाइपोथेसिस) सिद्धान्त (थियोरी) या अनुमान (कल्पना) सही है, तो क्या यह उचित और उपयोगी नही था कि आदमी को पता रहे (रहता) कि (उसके) (वह) अपने किस कर्म का (वह) कौन-सा फल भुगत रहा है?

जवाब— १ आदमी को बहुतेरी बातो का पता नही होता, वर्त्तमान मे भी। भविष्य अज्ञात है। भूत भूल (भुला) जाता है।

इन्सान को अपनी भ्रूणावस्था का एहसास नही होता, उसे अपना शैशव भी याद नही आता (पडता)। बीते दिनो (भूतकाल) की बहुत सारी बाते वह भूल गया होता। 'ए ट्रू लर्निंग इज ए जुडिशस फारगेटिंग'। अगर आदमी को उन नौ (नाइन) महीनो की बात याद रहे, जब कि वह अन्धकूप मे पडा गन्दे पानी मे ऊब-डूब कर रहा था, तब इस याददाश्त से उसका कौन-सा फायदा हो जायगा? सभी (कुल) आदमियो की

वही (वैसी-ही) गति रहती (होती) है। चुनाचे कोई भी मनुष्य, अध्याहार (अनुमिति, इन्फरेन्स) के आधार पर अपनी (निजी) भ्रूणावस्था-शैशवावस्था की कल्पना आसानी से कर सकता है और उसे अपने जनक-जननी (माता-पिता) से पूछकर (के वक्तव्य पर) सत्यापित (भेरिफाइड) कर सकता है। यह जानकारी उसे आयुर्विज्ञान (डॉक्टरी) से भी प्राप्त हो सकती है।

मनुष्य को अपने शरीर का भी ज्ञान नही होता। खाल (चाम) के खोल के भीतर उसका अपना चोला कैसा है, वह यह भी नही जानता। उसके अवयव क्या, कैसे और कौन से काम करते है, उसका भी आदमी को पता नही। उसका हृदय, उसका मस्तिष्क, उसकी अपनी ज्ञानेन्द्रियाँ, वे सब आदमी के लिये अजनबी रह जाते है। बिना आईने के वह अपनी मुखाकृति भी न देख पाता और न अपने को पहचान पाता। उसे कुछ भी मालूम नही कि वह कैसे कुछ सीखता, सुनता-गुनता, विचारता, याद करता और भूल जाता है। निद्रा क्या है और कैसे आती है, स्वप्न क्या है और वे कैसे पनपते है ? आदमी सब देख-सुनकर भी कुछ नही जानता।

इतना अज्ञान, इतनी विस्मृति, के बीच जीता-जागता इन्सान क्यो पूर्वजन्म की याददाश्त के लिए इतना बेचैन है !

२ सुप्तावस्था मे, बेहोशी मे, बीमारी मे, औपपातिक दुर्घटनाओ मे, कभी इत्तफाकन भी, कभी जानकर भी, कभी औषधि के प्रयोग से, आदमी स्मृति खो बैठता है। इसलिये, 'भूलना' अपने-आप मे कोई ऐसी बला नही है।

३ अगर पूर्वजन्म (जन्मो) की बाते याद रहा करे, तो उनसे अनेक प्रकार की असुविधाएँ, अनिष्ट, अहित, पीडा और क्षति (नुकसान) होने की (निश्चित) सम्भावनाएँ उपस्थित होगी।

आदमी अतीत (की याद) मे दिन-रात डूबा रहेगा ! वर्त्तमान मे हाथ-पर-हाथ रखे वह निरर्थक सोचता (विचारमग्न)—सोचता-सोचता बेकार बन जायगा। मानसिक रोगी की तरह।

अनेक जन्मो की अनेक जिन्दगियाँ अनेकानेक रगो मे आयी-गयी, कभी आँसू आये, कभी 'जिन्दगी मुस्करायी', मुस्कान छिटकी। सबको सब भाँति के दिन देखने पडे होगे [तु० जातक कथाएँ और पूर्व-जन्म की धारणा के पृष्ठपोषक और पूर्ण-हिमायती बोधिसत्त्व (भ० बुद्ध)]।

उन्हे याद रखने या याद करते रहने से क्या मिलेगा ? सब तरह के लोग, सब तरह की चाह, हसरते, अरमान लिये, सब की आँखो के सामने, सब तरह की जिन्दगी बसर कर रहे है। सब तरह के सुख भोग रहे है। सब तरह की यन्त्रणा सह रहे है। कर्मो के फल पा रहे है। क्या हम उनसे नही सीख सकते ? क्या हम उनकी जिन्दगी से अछूते रह जाते है ? क्या यह जरूरी है कि हम अपनी वर्त्तमान, एक ही, जिन्दगी मे सारे-सुख और सारे-दु ख का बोझा एक साथ उठा कर चले ?

जिस बोझा का वर्त्तमान मे सचमुच कोई न महत्त्व है, न व्यवहार। जो वर्त्तमान जीवन के सन्दर्भ मे निराधार है। पूर्वजन्म से जो कुछ प्राप्त होना था, वह सब इस वर्त्तमान जीवन मे मिल चुका होगा और जो मिलने के लिए धरा है, वह निश्चय ही मिलेगा, फिर अतीत की बेकार याद को क्यो सताने दे ?

पूर्वजन्मो की गाथायें कौन सुनने के लिये तैयार बैठा रहेगा, वे किसके आगे (समक्ष) गायी जायेगी ? किस-किस का दु ख कौन उठायगा ? बे-मतलब के ऑसू कौन पोछेगा ? सपने के ससार मे, आलम मे, कौन 'अपना' साथ देगा ?

आज की सन्नारी (एकानुगता, पतिव्रता) अगर कल की वेश्या (व्यभिचारिणी, बहुगामिनी) के रूप मे अपने पूर्व-प्रेमियो के पीछे पडे, तो उनका क्या हाल होगा ? और, अगर आप अपने अनेकानेक पूर्वजन्मो के विभिन्न प्रियजनो और पुरानी पत्नियो को याद की मशाल लेकर अपने इस जन्म (और इसी तरह अपने प्रत्येक जन्म मे) ढूँढते फिरे, तो आप कहाँ के रह जायेगे ? आप कहाँ-कहाँ किस-किसके दरवाजे पर फूल-चढाते चलेगे, प्यार-प्रदर्शन करते चलेगे, प्रेम की भीख माँगते चलेगे नन्ददास की नाईं ? किस-किस घर को बरबाद करते चलेगे (चारु मजूमदार की तरह) ?

और पूर्वजन्म की पीडा, टीस, यातनाये, यन्त्रणाये, कसक, दु ख, दुर्घटना, दैन्य, यह सब आप फिर से इस जिन्दगी मे भी अकारण भोगना चाहेगे ? वे बेकरारियाँ, बेवफाइयाँ, बेसब्री के आलम, सब इसी जिन्दगी मे अनेक बार (दोबारा) भुगतना चाहियेगा ?

क्या जरूरी है अपने को फिर से शिकजो मे बॅधवाना, फाँसी पर लटकवाना, किसी भूली-बिसरी हसीन की दो-तरफा दुलत्ती खाकर लौटा लाना ?

४ कर्मफल (पूर्वार्जित) के आधार पर 'फल' भोगना (पाना) अनिवार्य है। अटल है।

अब अगर अपनी पुरानी हरकत, अपना किया गया पाप, अपने जघन्य कार्य, अपनी निष्ठुरता, अपनी मूर्खता, अपना विश्वासघात इत्यादि-इत्यादि उस समय भी ऑखो के सामने, स्मृति-पटल पर नाचते रहे (याद आते रहे) जब हम सजा भुगत रहे हो, तब हम सजा की पीडा के साथ-साथ पश्चात्ताप की भयकर अग्निज्वाला मे भी झुलसते-जलते रहेगे और अपना-किया-हुआ मानस को उद्वेलित करता और दिल को कचोटता, रहेगा। हम सजा के साथ नरक भी भोगते रहेगे। सचमुच, वहाँ वैतरणी का नजारा प्रस्तुत होगा! और उस पीब और मूत-भरे भॅवर मे याद-की-गाय अपनी पूँछ पकडनेवाले को पार न कर पायगी, बल्कि डुबा छोडेगी (मारेगी)।

अगर अच्छे कर्मों के फलस्वरूप हम सुख भोग रहे होगे, तो हमारा जिन्दगी के चौराहे पर खडा होकर, ठहरकर, निशि-वासर बेबुनियाद अतीती 'वर्त्तमान' की उपलब्धियो-सुकर्मों का स्वप्नवत्-नजारा देख-देखकर उसपर गाजते रहना, हमारी हँसी-हैकडी को हास्यास्पद बना देगा। और, जब हम उस 'टेलीविजन' के बन्द हो जाने पर 'अन्धकार' से बाहर खुली रोशनी और खुली हवा मे निकलेगे, तब हमारी प्रसन्नता

पश्चात्ताप मे बदल जायगी । जो काम हम स्वय कर चुके है, उसी को, देखते-देखते (देखते रहने मे) हमने अपना इतना बहुमूल्य समय गँवा दिया । और, अन्त मे कुछ भी हाथ न लगा । 'याद' जस-की-तस रह गयी । न आयी, न गयी, न भूली, न भटकी । सिर्फ जख्मो को हरा कर गयी । जख्म जिन्दा हो गये । फलित-सुख के दिन बीत गये । और अपना बुरा हाल है कि इस बीच मे कुछ उपार्जन न कर सका, केवल स्वर्णिम समय बरबाद करता गया, करता गया, याद मे, काम (कर्त्तव्य) मे नही । जैसे कोई अपना मूल-धन खोता गया हो और रोकड मे कुछ जमा न हो (कर) पाया हो ।

पूर्वजन्मो मे व्यतीत की गयी जिन्दगी के चर्वित-चर्वण से क्या होने-जाने को है ! कर्म का फल मिलेगा, भुगतना ही है, भुगत लेंगे । भविष्य को सुन्दर बनाने का प्रयास न कर, अतीत का पागुर करे ? मनमौजी अहम्मन्य वाहवाही और निरर्थक पश्चात्ताप मे समय-का-मौका व्यर्थ बरबाद कर भर्त्सना मे बैठे ?

अपने पूर्वजन्मो के कुकर्मो और दोषो और अपराधो का अनवरत स्मरण कर हम सारी दुनिया को दूषित देखने लगेगे । उस याद की बारम्बारता हमारे व्यक्तित्व को कुण्ठित कर देगी । हमारा मन मैला बनता जायगा, मैल और मैला ढोता-ढोता । मनोवैज्ञानिक कारणो से ऐसी परिस्थिति हमारे विकास मे एक भयकर बाधा उत्पन्न करेगी । स्वयमेव-प्रशसित जिन्दगी भी इतनी खतरनाक है । आसमान पर चढे हुए सिर को धरती कभी पनाह नही देती ।

अपने पाप-पुण्यो की तालिका बनाकर और तत्सम्बन्धी दण्ड-पुरस्कार, सजा और इनाम, का लेखा-जोखा ज्ञात कर, हम अपनी जन्मजात सृष्टि-प्रदत्त स्वतन्त्रता को खो, और अपनी क्रियाशीलता, कर्मण्यता और गतिविधि मे अवरोध पैदा कर लेगे । हमारा हिसाब-किताब भी गलत होगा, हमारे द्वारा टकित-लिखित बही-खाते मे भी भूले होगी । क्योकि, अपने पास न विधना के विधानो की वाकफियत होगी, न नियति की सार्वभौम चेतना की प्रौढता । न हम 'अपने' 'मै' को पहचानते-जानते होगे, न दूसरो को । हम झख मारते, सिर धुनते, छाती पीटते रह जायेगे । वहाँ न कुछ पाप है, न पुण्य । वहाँ 'पापी' दण्डित नही होता, बुराई मिटायी जाती है । वहाँ 'पुण्य' पुरस्कृत नही होता, भलाई प्राश्रय पाती है । 'पुण्य-पाप' और 'इनाम-सजा' का जो सम्बन्ध हमको भाँपने-आँकने मे आता है, वैसा है नही । [तु० बीमार का (क) निदान और (ख) इलाज । एक ही बीमारी से ग्रस्त अनेक मरीजो के लिये कई उपयुक्त दवाओ मे से किसी का चुनाव—'क्वैक' की पकड मे आना नामुमकिन, प्रौढ-माहिर चिकित्सक के लिये बाये हाथ का खेल ।] (तु० विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ) ।

५ पूर्व-स्मृतियाँ अतीव असहनीय हो सकती है । यह किसी भगवान् बुद्ध की अन्दरूनी रूहानी ताकत ही थी कि जो जातक-कथाएँ बयान कर सकी और वह गरल पी सकी ।

कितने लोग हैं, जो दावानल मे जल सकने की ताकत रखते हैं ? और उस ऊष्मा मे पनप सकते है ?

६ जैसे-का-तैसा । प्रकृति ऐसी सीधी-सादी बेलौस लकीर का फकीर नही है। मान लीजिये, किसी एक आदमी ने एक दर्जन आदमियो की हत्या कर डाली, तो उसकी सजा मे वह कितनी बार मौत के घाट उतारा जायगा ? मान लीजिये, कोई बेकसूर आदमी अपने को सामाजिक शिकजो से न बचा सका और फॉसी के तख्ते पर खडा कर दिया गया। उस सकट के समय कौन उसकी पीर हरेगा ? परमात्मा का विधान सूक्ष्मतम है और बडा व्यापक है। वह कानूनी किताबो मे छप नही सका है।

अगर आदमी को किसी तरह यह पता चल जाय कि किस गुनाह की कौन-सी सजा उसे मिली है, तो वही और उतना ही ज्ञान पर्याप्त नही होगा। सन्तोष उसे तब होगा, जब वह यह भी जान ले कि दूसरो को उनके गुनाहो की कौन-कौन-सी सजाये दी गयी। और, तब वह आपबीती को दूसरो के भाग्य से तुलित करके ही तसल्ली पायगा। लेकिन, ऐसे मे भी उसे तुष्टि-तृप्ति-शान्ति नही मिलने की। वह 'अपने' को 'दूसरे' के व्यक्तित्व के साथ ठीक-ठीक तौल नही पायगा। वह अपने पाप-पुण्यो को दूसरे के पाप-पुण्यो की तुलनात्मक पृष्ठभूमि मे ऑक नही सकेगा। वह पुण्य-पाप की यथार्थता मे न जाकर पारितोषिक और दण्ड का महत्त्व न बूझ सकेगा और शायद वह परमात्मा को उसके तथाकथित और मिथ्यारोपित बेईमानी, बेइन्साफी, बेदर्दी इत्यादि के लिये कोसता रहेगा। हॉ, एक बात और। उसे न सिर्फ अपना, बल्कि दूसरो के पूर्वजन्म का इतिहास भी, पूर्णत याद रखना पडेगा।

७ अगर सचमुच, इसका पूरी तरह और ठीक-ठीक पता चल जाय कि प्रकृति किन गुनाहो की क्या सजा देती हे और किन सुकार्यो के लिये क्या पारितोषिक, तो इसके कारण (फलस्वरूप) निम्नाकित हानियॉ होगी

बहुत तरह के काम उधेड-बुन मे ठप पड जायेगे।

लोग और सरकार ठीक उसी तरह के कानून बनायेगे और लागू करेगे—सारी दुनिया के सभी देशो मे। ऑख मूँदकर, मानव-समाज उसी रास्ते पर चलेगा अथवा उसको असगत, अन्याय, मानकर अपनी राह चलेगा। (तु० विश्वामित्र के द्वारा सम्पन्न नयी सृष्टि)। (और, तब प्राकृतिक विधान क्या निष्क्रिय हो जायगा ?) (और आदमी क्या आध्यात्मिक विधान की जटिलता-गहनता-पेच को पूर्णत पहचान लेगा ?)

प्रकृति का 'मारे हुआ' को कोई भी नही पूछेगा (तु० समाज से बहिष्कृत नागरिक) और परमात्मा से पुरस्कृत आदमी (तु० किताब, पदवी, डिग्री) छाती तानकर चलेगा और दूसरो को कुछ न समझेगा (तु० भस्मासुर इत्यादि, 'गलित-कुष्ठ' के रोगी)। और बराबर 'कर्म' और उसके 'फल' की विवेचनाये होती रहेंगी। और, वह मानसिक मकडी का जाल आदमी को बुरी तरह घेरे रहेगा।

करुणा, सहानुभूति इत्यादि मानवीय गुण घटते चले जायेगे, क्योकि तब वे जरूरी नही रह जायेगे। 'न्याय' अगर जीवित रहा, तो वह बिलकुल यन्त्रवत् होकर रह जायगा।

जन्म से ही आदमी आमन्न या भावी (भविष्य मे आनेवाला) पारितोषिक की प्रतीक्षा मे रहेगा और दण्ड का डर उसका जीना हराम कर देगा। निश्चित विपत्ति की चिन्ता उसे जीने नही देगी, दण्ड का भय उसके जीवन मे जहर घोल देगा, उसे चैन से सोने भी नही देगा। और, यह चिन्ता न सिर्फ उसपर, बल्कि उसके कुल हित-मित्रो पर छायी रहेगी, तबतक, जबतक कि वह सजा भुगत नही लेगा। (तु० मृत्यु-दण्ड का कैदी)।

८ विगत जन्मो मे जो अपने दुश्मन बने रहे, उनके प्रति प्रतिशोध की भावना जगेगी। जन्म-जन्मान्तर (के अन्तर्गत) ऐसे अनेक प्राणी रहे होगे, जिन्होने हमारा अहित किया था, हमे नानाविध कष्ट पहुँचाया था। इस जन्म मे अगर उन सबसे बदला लेना पडे, तो समाज 'मित्रो' से कम और 'आततायियो' से अधिक भर जायगा। अपने चारो-ओर वैरी-वैरी ही दीख पडेगे। और, वे वर्त्तमान जीवन मे 'नजदीकी' और 'अपने' होकर भी जन्म ले सकते है या ले भी चुके हो।

और, अगर कही यह पता चल गया कि फलॉ आदमी हमको कष्ट देने के लिये धरती पर आया है, तब तो अत्यन्त विषम परिस्थिति आ खडी होगी। हम उस आदमी को निर्मूल करना चाहेगे, उसकी जान ले लेना चाहेगे। (तु० कस और देवकी)। वह भागता फिरेगा, हम टोहते फिरेगे। परीशान-परीशान। और, कही वह अपना भावी हत्यारा अपने ही घर मे जन्म पाकर अपना 'लख्ते-जिगर' बना बैठा हो, तब क्या होगा ? [तु० जासूस, भेदिया, नेपाल के इतिहाम मे राणाओ के बीच स्वजनो की हत्याये, नोआखाली-बगाल-पजाब-बिहार के जातीय (साम्प्रदायिक) (दगे)। (कुर्बानी, बलि)]।

जब जन्म, मृत्यु, अपनी शारीरिक सरचना और क्रिया, और अपने-आप को, बहुलाश मे अपने भविष्य को, अपने पूर्वजो के इतिहास को, जाने बिना भी अपना काम बे-रोक-टोक चलता (चल) ही जाता है, तब ऐसा बोध पाकर विश्वस्त क्यो न हो जायँ कि बिना अपने पूर्वजन्म के विषय मे जाने हुए भी, उस अज्ञान के बावजूद, जिन्दगी चली थी, चलेगी, विकसेगी और सब कुछ ठीक रहेगा। विधना के साथ अपनी कोई पुश्तैनी दुश्मनी तो है नही। न आपने उसकी जमीन दखल की, न उसके छप्पर मे आग लगायी, न उसका घर फोडा, न उसके साथ 'जातीयता' की, न उसके खिलाफ झूठी गवाही दी, न उसकी फाइल भुलवा दी, न उसका हक हडप गये। न उँगली उठायी। न कनखी मारा किये। न पान की पीक फेक दी। और, न वह (विधान) अज्ञानी है और न अनभिज्ञ और न आपसे अपरिचित। फिर डर क्या है ! मौज से रहिये। न दूसरे का बुरा कीजिये, न अपना। न झॅपना, न तपना, न सपना। सब अपना-अपना-अपना। फिर काहे को कॅपना ?

९ ऐसा सम्भव है कि अपने सुकर्मो-कुकर्मो की जानकारी (स्मृति) रखे बिना जो वर्त्तमान जीवन मे भोगना पडता हो, वह एक लघुतर (हलका) भार हो और अगर पुण्य-पाप की जानकारी रखते हुए जो सहना पडे, वह कडी सजा हो अथवा एक दुर्वह

और कठिन परिस्थिति। क्योकि प्राकृतिक विधान का एकमात्र लक्ष्य होगा विकास, न कि अवरोध या अत्याचार। अनजान मे दिया गया दण्ड कदापि सन्तापन-उत्पीडन (टॉरचर) के लिये नही हो सकता। निवारक (डेटरेण्ट) से ज्यादा वह सुधारक होगा। उसका अभिप्राय-उद्देश्य मात्र आतक और भय पैदा करना कभी नही हो सकता। परमात्मा के सामने आदमी की क्या हैसियत, जो वह उसे डराया-धमकाया करे। लेकिन, अगर आदमी अपने अर्जित कर्मो का पता लगाने पर आमादा हो जाय, तो प्रकृति का प्रयोजन बदल जा सकता है। तब सजा गैबाने मे नही, प्रत्यक्ष मे काटनी पडेगी, और वह कडी और सख्त होगी, ताकि उसका गहरा व्यापक और भयावह असर पडे।

कर्मफल और कण्डिशण्ड रिफ्लेक्स (अनुबन्धित प्रतिवर्त्त)।

१० मान लीजिये कि हमको अपने पूर्व-जन्म की घटनाये याद है। और किसी (उस) खास वारदात (वाकया) का, जिसका फल हम इस जन्म मे पानेवाले है, (उसका) वर्णन-चित्रण पर जाहिर हो कि, वह गर्मी की रात थी। मै उस जन्म मे एक डाकू था। लोग घर से निकलकर बाहर मैदान मे सोये हुए थे। मै चुपके से वहाँ जा पहुँचा। पाँच वर्ष का एक लडका गाढी नीद मे सोया हुआ (खर्राटे भर रहा) था। उसके कानो मे सोने के कुण्डल थे। मैने, उस लडके का गला दबोचकर उसकी हत्या कर डाली। कुण्डल नोचते समय बच्चे के दोनो कान फट गये। बगल मे सोया (लेटा) हुआ एक बूढा (आदमी) जग गया, तो मैने तत्क्षण उसके सीने मे छूरा भोककर उसका भी काम तमाम कर दिया। लहू से लथपथ लौट रहा था, तो रास्ते मे एक कुत्ता भूँकता हुआ टूट पडा। मैने उसके सर पर ऐसी लाठी दे मारी कि उसका सर फट गया और उसका भेजा निकल आया।

अब इस वर्त्तमान जन्म मे—ये सारी बाते याद आती रहती है। कर्मफल निश्चित है यह जानकर दिल घबराता रहता है। चिन्ता जान खाये जाती है। पता नही, जो किया है, उसका फल कब, कैसे और किन हाथो भुगतना पडे।

जब कभी गर्मी की रात आती है, तो चिन्ता के सागर मे डूबता रहता हूँ। किसी बच्चे को देखता हूँ, तो भाग खडा होता हूँ, डर लगता है कि कोई मुझे सजा देने आ रहा है। किसी बूढे पर नजर पड जाती है, तो दरवाजे और खिडकियाँ बन्द कर लेता हूँ, दिल बेतहाशा धडकने लगता है। कुत्ते की आवाज सुनायी पडती है, तो देह काँपने लगती है, पसीना छूटने लगता है। मै शाम होने के बाद घर से निकल नही पाता। डर के मारे घर मे बैठा रह जाता हूँ। मैने बूढे विश्वासी नौकर को भी पेन्शन देकर हटा दिया है। मेरी हालत खराब हो रही है। नियति का चक्र एक दिन चलेगा और मेरे सिर चढ बोलेगा। मै कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। मेरी बूढी माँ मुझे कितना प्यार करती है और मै भी उन्हे कितना मानता हूँ, लेकिन जहाँ उनकी याद भी आती है कि वह बूढा आदमी आँखो के सामने आ जाता है और साथ ही जेल का दरवाजा और फाँसी का तख्ता भी। मै अब माँ से भी कतराने लगा हूँ। अपने

बच्चे से भी। शाम होने लगती है, तो मै आतंकित हो जाता हूँ। मै सन्ध्या से भी डरने लगा हूँ। जब किसी अजनबी को अपनी ओर आते देखता हूँ, तब भयभीत हो जाता हूँ, कही पकडने तो नही आ रहा है। घर के नौकर-चाकर, माली सभी को एक ही नजर से देखने लगा हूँ, पता नही, कौन-कौन से लोग मेरे दुश्मन बननेवाले हो। किसके खतरनाक काले हाथ मेरी गरदन पर पडनेवाले हो। मै अब सोच भी नही सकता, क्योकि कुछ भी सोचने बैठता हूँ, तो अपने कुकर्म की याद आ जाती है और वह डरावना दृश्य ! वह लाल खून से लथपथ हाथ ! अपने हाथो को भी मै देखना नही चाहता। उन्हे देखते ही मुँह सूखने लगता है,—मै सजावार हूँ, मै जुल्मी हूँ, मैने जुर्म किया है, मै उस जन्म का मुजरिम हूँ, जो सजा का इन्तजार कर रहा है, एक खौफनाक सजा का, जो पता नही, कब और किसके नापाक हाथो से मुझे मिलनेवाला है। मै पागल बनता जा रहा हूँ। कई बार मैं अपने हाथो को काटने के आवेश मे आया।

मेरे कटे खूनी हाथ ! हटिये ! हटिये !! वे हवा मे तैरते आ रहे है ! उनमे से खून के कतरे टपक रहे है ! उन्हे कीडे खाये जा रहे है ! भागिये ! भागिये !! भागिये !!! वे जालिम किसी को नही छोडेगे ! बडी बद-बू है उनकी ! बडा घिनौना रग है उनका ! अरे, बचिये ! बचिये !! काला—हरा—नीला—लाल—धब्बे-दाग—फफोले-फोके—कीडे ! रेगते, ससरते, चाटते ! हटिये ! भागिये !! बचिये !!! नाक बन्द कीजिये !

चाहता हूँ सब बूढे, बच्चे और सभी कुत्तो को मार डालूँ। कभी-कभी मा की ममता मे 'धोखा' दीखता-सा है। कही ऐसा तो नही है कि मै उसकी कोख मे इसलिये जन्मा हूँ कि वह मुझे मारकर उस बूढे की मौत, बलिदान, का बदला ले, जो मेरे हाथो पूर्वजन्म मे मारा गया था। उस काली रात को जब मैने हत्याये की थी, मै भूखा था। और वही भूख इस जन्म मे मेरे लिए मुसीबत बन गयी है। जहाँ भूख लगी कि वह रात याद पडने लगती है और मै सजा की बात सोचकर बिलकुल मायूस हो जाता हूँ। खाना भी हराम हो गया है। पता नही, वह कुत्ता, वह लडका और वह बूढा कहाँ जन्म पा चुके हो और मेरी मौत उन्हे मेरे पास खीचती चली आ रही हो। एक-एक दिन एक-एक युग बन गया है। मै सहज एक जिन्दी लाश बन गया हूँ, बेपनाह। मैं मृत्यु की यन्त्रणाओ के अलावा अब कुछ भी नही हूँ। मेरा मस्तिष्क उन्ही खयालो से भर गया है। मेरे सपनो (जब कभी आँखे झप पाती है) मे, मेरे प्रतिपल की जिन्दगी मे मौत और सजा घुल गयी है। ऐसी सजा, जो निश्चित है, पर जिसका हुक्म सुनाया नही गया और जिसके इन्तजार ने इतना अशान्त बना डाला है कि मै क्या बतलाऊँ ! उफ ! किसी तरह चुपके से मर जाता, तो अच्छा होता। किसी प्रकार भी बीती हुई बातो को भूल पाता, तो राहत मिलती। किसी मूल्य पर भी कोई मुझे जिन्दगी के ऐसे माहौल से अलग कर पाता, तो मै टुक, दो-जून, सो लेता। हे भगवान्, मुझे बेहोशी और विस्मृति की भीख दो, ताकि मै कम-से-कम पूर्वजन्म की बातो को भूल जाऊँ ! यह जिन्दगी नही, एक कैद है, एक दोजख, यह काया जेल की एक तग

काली कोठरी है, जिसमे प्रकाश की एक धूमिल किरण भी भटककर नही आती। एक कालकोठरी, जिसमे रहना अब असह्य हो गया है। न अपनी हयात का पता है, न मयाद का। कोई कह दे कि सजा इस वर्त्तमान जन्म मे न मिलकर किसी अगले जन्म मे मिलेगी! मै जीना चाहता हूँ! भगवान्! मै जीना चाहता हूँ!!! अब मुझे बचा लो, मै रोज दिन कितनी बार मर चुका! अब मुर्दे को क्या मारना! अब राहत बख्शो! अब भी तो क्षमा कर दो!

पूर्वजन्मो की बाते याद रह गयी, तो उनके साथ इस वर्त्तमान जीवन मे कण्डिशण्ड रिफ्लेक्सेज (अनुबन्धित प्रतिवर्त्त) की एक ऐसी शृखला बन जायगी कि जिसका जाल मस्तिष्क और व्यक्तित्व पर बुरी तरह छाया रहेगा। आदमी इस नयी जिन्दगी का उपभोग नही कर पायगा। वर्त्तमान मे वह जी न सकेगा। और, उसका विकास रुक जायगा। वह कुण्ठित हो जायगा। वर्त्तमान मे भी आज के लिये कल को—सर्वाश मे न सही—भूलना पडता है। जरा के हित मे यौवन को, यौवन के लिये शैशव को, बिसारना ही पडता है। जिन्दगी के बहते दरिया मे लगर डालकर बैठे रहना क्या लाभप्रद और उचित होगा?

११ सीखने के लिये यह जरूरी नही है कि हम सीखने के प्रति सजग रहे। हम बिना जाने, बिना सक्रिय प्रयास के भी, सहज ही सीखते रहते है (तु० बच्चो का मातृ-भाषा सीखना)। 'सुधरने' के लिये भी यह आवश्यक नही कि हम उसके प्रति सदा-सर्वदा सचेष्ट रहे। जीवन स्वय सचेत, सतर्क, जागरूक और सावधान है। उसमे स्वत सीखने और सुधरने की गुणशीलता, प्रकृति और कला पर्याप्त रूप मे विद्यमान है। जीवन जगत् के सग-सम्पर्क और अनुकरण-अनुसरण से सीखता, सुधरता और विकसित होता है।

नवजीवन आप-ही-आप मे एक ऐसी 'सजा' है, एक ऐसा 'इनाम'—दण्ड और पारितोषिक का, दु ख और सुख का एक ऐसा समवाय, मिश्रण, घोल, और वितान—कि जिसमे 'विकास' निहित (परोक्षत) और अवश्यम्भावी है। वर्त्तमान जिन्दगी भय, भ्रान्ति और पूर्वाग्रह तथा स्मृति का 'भार' वहन करने के लिए नही बनी है। वह अनुभूतियो के आधार पर स्वयमेव अग्रसर होती जाती है। आदमी कुछ 'करता' रहता है, जीवन कुछ 'होता' जाता है। (तु०, 'ग्रीनम्पून एफैक्ट'—अचेत ज्ञानोपार्जन तथा आचरण-व्यवहार)।

१२ इतना काफी है कि आदमी को मालूम (ज्ञात) रहे कि जीवन मे दु ख (और सुख भी) है। और, आदमी अपने (व्यक्तिगत) (और सामाजिक) जीवन मे दु ख का अनुभव करे। यह जान लेना जरूरी है कि धूप-छाँह की तरह, सुख-दु ख का आपसी जातीय सम्बन्ध है। सर्वांगीण विकास की यह एक पृष्ठभूमि है। हम रात-दिन देखते है कि कुछ भी अकारण नही होता, कि जो कुछ भी घटता है, उसकी जड मे (उसके पीछे) कोई-न-कोई कारण (वजह) रहता ही है। यह तथ्य आदमी अपने निजी जीवन से भी सीखता है और दूसरे प्राणियो की जिन्दगी से भी। बचाव (प्रिभेन्शन)

के लिये (सर्फरिग) जरूरी नही है। (तु० एपिडमिक कण्ट्रोल, चेचक का टीका इत्यादि)। अपनी इस छोटी जिन्दगी मे कोई आदमी आखिर कितना दुख (सुख) उठायगा और कितने प्रकार का दुख पायगा ?

आदमी देखकर सीखता है, सीखकर सुधरता है। 'सजा' और 'सीख' समाज को नही सुधार सकेगा। इसका असर (प्रभाव) सब पर एक-सा नही पडता।

दुख का जान लेना यथेष्ट है। उसकी सकारणता को मान लेना पर्याप्त है। निजी अनुभव के आधार पर।

दुख-दैन्य को हटाने का सामूहिक प्रयास होना चाहिये। हम जानते है कि अपना जो 'दुख' है, उसका कोई-न-कोई कारण अवश्य ही होगा। और, किसी का कोई भी दुख, जो कही भी दृष्टिगोचर हो रहा है, अकारण नही हो सकता। इतना जान लेने के बाद क्या यही काफी नही है कि आदमी, जिसे वह (अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर) 'कुकर्म' और 'पाप' और 'अनुचित' मानता-समझता है, उससे बाज आये, उसे न करे ? पूर्वजन्म पर रोना अच्छा है या भविष्य बनाना ? जो बिगाडना था, बिगाड चुके, जो बिगडना था, बिगड चुका, अब पश्चात्ताप की अग्नि मे अनवरत झुलसने मे अच्छा है 'बुराई' को पहचान लेना और उसका त्याग कर डालना (देना)। कर्म फलित होता ही है, सो होगा। हम कर क्या सकते है ? सिवाय इसके कि फलैषणा का त्याग कर दे ? और, जो भी मुसीबत सिर पर आ पडे उसे मुस्करा कर उठा ले, झेल ले ?

विवेकपूर्ण प्रायश्चित्त और यथाशक्ति क्षतिपूर्त्ति ठीक है। लेकिन वह बुद्धिसगत-तर्कणापरक हो, तो अच्छा।

'मूर्खता' जघन्य 'पाप' है। उसका निवारण मुश्किल से हो पाता है। जो दृष्ट के प्रति अन्धा, सृष्ट के प्रति उदासीन और अनुभव के प्रति असावधान रहे। जो अपने विवेक का अनादर करे। और, अपने ज्ञान को ताख पर रख रास्ता चले।

समाज के सुधार का एक ही रास्ता है। जैसी कथनी वैसी करनी। बात जिधर, लात उधर। नेता सेवक बने, अनुयायियो के स्तर पर सुख को त्याग करके नि स्वार्थ भावना से उतरे। त्याग और अचाह बनने से सुख और आनन्द फैलेगा और समृद्धि बढेगी, 'स्टैण्डर्ड' (जीवन-स्तर) बढाने से कदापि ऐसा नही होने का। (तु० महात्मा गान्धी और महात्मा लेनिन)।

अपनी तरह जो दूसरे दुखी है, उनकी शक्ति-भर सेवा कर देना, उनके दुख-निवारण की भरपूर कोशिश करना, त्याग और तपस्या है।

सजा समाज की हीनता, क्रूरता और जडता का द्योतक है और शासन की जटिलता का। न जन्म अकारण हुआ है, न परिस्थिति अकारण बनी है। अनेक जन्मो के अनेक कारण अनेक परिस्थितियो मे परोक्ष से प्रत्यक्ष हुए है।

अगर 'पूर्वजन्म' वर्त्तमान पर हावी हो जाय, तो जिन्दगी आतकित और अस्तव्यस्त-अव्यवस्थित हो जायगी। (तु० परम्परा का आधुनिकता को रौदने की चेष्टा करना)।

दीघा जागरतो रत्ति दीघ सन्तस्स योजन ।
दीघो बालान ससारो सद्धम्म अविजानत ॥

[जागते को रात लम्बी होती है, थके के लिये योजन लम्बा होता है, सच्चे धर्म को न जाननेवाले मूढो के लिए ससार (आवागमन लम्बा होता है ।]

(धम्मपद बालवग्गो)

(मेरी समझ से 'आवागमन' के दो अर्थ है— (क) अनेक पुनर्जन्म, (ख) ऊहा-पोह मे फँसा, पेण्डुलम की तरह डोलता, आता-जाता अस्थिर अन्त करण ।)

किच्छो मनुस्सपटलाभो किच्छ मच्चान जीवित ।
किच्छ सद्धम्मसवण किच्छो बुद्धान उप्पादो ॥

[मनुष्य (योनि) का लाभ कठिन है, मनुष्य का जीवन (मिलना) कठिन है, सच्चा धर्म सुनने को मिलना कठिन है, बुद्धो (परम ज्ञानियो) का जन्म कठिन है ।]

(बुद्धवग्ग)

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

[यहाँ (ससार मे) वैर से वैर कभी शान्त नही होता, अवैर से ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म (नियम) है ।] (यमकवग्ग)

अनवत्थितचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।
पुञ्ञापापपहीणस्स नत्थि जागरतो भय ॥

[जिसका चित्त मलरहित है, जिसका मन अकम्प्य है, जो पाप-पुण्य-विहीन है, उस सजग रहनेवाले (पुरुष) के लिये भय नही ।]

(धम्मपद चित्तवग्ग) (अनु० राहुल साकृत्यायन)

"There are many ways to mass suicide but only one way to human survival It is the road to faith which inspires us with the strong hope of things to come" (S Radhakrishnan)

सामष्टिक आत्मसहार के अनेक तरीके, रास्ते, हो सकते है, किन्तु मानवता के अतिजीवन के लिये एक ही मार्ग है और वह है आस्था तक पहुँचनेवाला मार्ग, जिससे हमे प्रेरणा मिलती है, और कि क्या कुछ होनेवाला है, आनेवाला है, भवितव्य है, सम्भाव्य है, उसके लिये दृढ आशा बँधती है । (राधाकृष्णन्)

"Heaven and Hell are not physical areas A soul tormented with remorse for its deeds is hell, a soul with satisfaction of life well lived is heaven The reward of virtuous living is the good life itself"

(S Radhakrishnan)

स्वर्ग और नरक भौतिक क्षेत्रातीत है । अपने किये के प्रति शोकसन्तप्त और पश्चात्ताप-पीडित आत्मा का नाम नरक है और सम्यक् जीवन। व्यतीत कर (किये)

सन्तोष-सम्पन्न आत्मा का नाम स्वर्ग है। श्रेष्ठ एव समुत्तम जीवन स्वय (खुद) ही धर्ममय अथवा पुण्यशाली जीवन का पुरस्कार अथवा पारितोषिक है। (राधाकृष्णन्)

× × × ×

इन्सानियत जज्ब-ए-कौम और हुब्बे-वतन से ज्यादा अहम होती है। इन्सानियत का मुकाम इन दोनो से अव्वल और बुलन्द है।

× × × ×

'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' (उपनिषद्)।

ब्रह्म ही सत्य है, अन्यथा इस जगत् का कुछ भी सत्य नही होता। ब्रह्म ही ज्ञान है, जो कुछ भी विद्यमान है, वह उन्ही का ज्ञान है। वे जो जान रहे है, वही विद्यमान है, वही सत्य है। वे अनन्त है, वे अनन्त सत्य है, वे अनन्त ज्ञान है।

× × × ×

को ह्येवान्यात् क प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। (उपनिषद्)

"कौन शरीर की चेष्टा करता और फिर कौन जीवित रहता, यदि आकाश मे यह आनन्द नही रहता। महाकाश को पूर्ण किये हुए निरन्तर आनन्द विराज रहा है, तभी तो हम प्रतिक्षण नि श्वास ले रहे है, प्रतिक्षण प्राण धारण किये हुए है।"

× × × ×

आविरावीर्म एधि।

हे स्वप्रकाश, मेरे समक्ष प्रकाशित होओ।

× × × ×

सन्तोष हृदि सस्थाय सुखार्थी सयतो भवेत्।

(सुखार्थी सन्तोष को हृदय मे स्थापन करके सयत हो।)

सुख—सन्तोष—सयम।

× × × ×

सन्तोष, धैर्य, क्षमा, प्रेम इत्यादि तो अन्दर मे है।

× × × ×

न तथैतानि शक्यन्ते सनियन्तुमसेवया।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यश॥

विषय का त्याग करके वैसा सयम नही किया जा सकता, जैसा विषय मे नियुक्त रहकर ज्ञान द्वारा किया जा सकता है। विषय मे नियुक्त न होने से ज्ञान अपूर्ण रहता है। और, जो सयम ज्ञान का परिणाम नही, वह पूर्ण सयम ही नही। वह तो केवल जड अभ्यास है, अनभिज्ञता है। वह प्रवृत्ति-गत नही, मूल नही, बाह्य सयम है।

बीते हुए युग की तलछट बनने से क्या लाभ ?

× × × ×

ईश्वर होगा, किवा नही होगा। आजतक ईश्वर के होने अथवा न-होने के पक्ष या विपक्ष मे पर्याप्त सबूत कोई भी पेश न कर सका। तर्क से कोई परमात्मा के

अस्तित्व के विषय मे ऐसे अकाट्य तथा प्रचुर प्रमाण न प्रस्तुत कर पाया कि जिसके आधार पर आस्तिकता जमकर बैठे। ऐसी गवाही भी न दी गयी, ऐसे दृष्टान्त भी न मिले, कि जिनकी कसम खाकर नास्तिकता सुदृढ बन जाय। मन की मौज पर आस्तिक या नास्तिक बनकर काल-यापन करना, समय काटना, जीते चलना, यह एक दूसरी बात रही। आँखे बन्द रखना, सोचना ही नही, सोचने की जरूरत भी महसूस न करना, सोच भी न पाना, ध्यान नही देना, यह भी कोई बात है ! भगवान् नही है, यह कोई साबित न कर सका।

आस्तिकता अप्रमाणित रही, तो नास्तिकता अप्रमाणित ही रह गयी। ईश्वर है या नही, यह सवाल जैसा का तैसा रह गया। उत्तर नही मिला।

सृष्टि स्वत बन गयी होगी या किसी ने इसे बनाया होगा। अकारण कुछ होता नही, जो घटता है, उसका कोई कारण होता है, जिस वस्तु-स्थिति से सृष्टि प्रकट और प्रत्यक्ष हुई, वह वस्तु-स्थिति तो होगी ही। उस 'कारण' 'कर्त्ता' या 'करण' को खोजने का काम वैदिक काल से चलता आया है।

खोज चलती रही, अनुसन्धान के नाम पर कुछ विशेष कर नही पाये। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँच न सके।

नास्तिकता भी बे-सहारा, निरवलम्ब, पडी मुँह ताका करती है। ईश्वर नही है, इस धारणा के लिये न कोई प्रमाण है, न आधार।

इस ब्रह्माण्ड मे, सृष्टि मे, अगर कोई सत्ता है, कोई विधि और व्यवस्था है, इसके सचालन मे जो करीने का, सलीके का, सगठन (सघटन) दीखता है, वही विधाता है, वही परमात्मा है।

अब अगर ईश्वर पर विश्वास नही जमता, तो इससे ईश्वर की तो कोई हानि है नही। लोग अकारण ही अपने को अनीश्वरवादी या नास्तिक बन जाने के लिये बाध्य करते है। माना कि ईश्वर नही है, तब इस सृष्टि की उत्पत्ति, इसका निर्माण, और इसका नियमन, नियन्त्रण (गभर्नेन्स) (सचालन) निश्चय ही एक आकस्मिक घटना होगी, जो किसी सयोगवश घटी होगी।

यह अकस्मात् कैसे घट गयी, यह सयोग कैसे आ उपस्थित हुआ ?

दैवयोग से तो नही ?

ग्रह-नक्षत्रो का सुसगत यातायात (गतिविधि, क्रियाकलाप) देखकर, ब्रह्माण्ड के असीम, अपार, विस्तार का विचार कर, इस अनिवार्य, अप्रतिरोध्य (अपरिहार्य), परिणाम पर पहुँचते है कि सयोग का हामी भरनेवाला मानवीय मस्तिष्क का निर्माण किसी महामानवीय मेधा की प्रेरणा (प्रचेष्टा) से ही हुआ होगा। अचेतन 'सयोग' के पास 'जीवन', 'चेतना' तथा 'बुद्धि' जैसी अमूल्य (निरुपम-सुविशिष्ट) निधियाँ कहाँ से आयी होगी ?

सूरज की 'समयनिष्ठता', 'कर्त्तव्यपरायणता' तो देखिये ! उसने उगने मे कभी देरी की ? कभी छुट्टी पर गया ? अपने निर्धारित समय पर वह क्षितिज के किनारे

उपस्थित होता रहा, दस्तबस्ता। कभी चूक नही हुई। कभी गैरहाजिर न हुआ। बाइ-चान्स ही सही, कभी बीमार नही पडा, कभी व्योम मे किसी से टकरा नही गया, कभी राह से भटक नही गया।

'परमात्मा' या 'सयोग'। देवता अथवा 'दैव'। आप अपने लिये किसको चुनेगे ?

एक दानिशमन्द दुश्मन भी बेहतर है एक नादाँ दोस्त से।

और हाँ, देखिये, आत्मा (जीवात्मा) की यह सम्भावना है कि वह अपनी उन्नति और विकास करता हुआ परमात्मा-सा बन जाय, लेकिन वह 'सयोग-सा' नही बन सकता। अगर आपने 'सयोग' को अपना आराध्य-देव माना है, और उसी की पूजा करते है, तो सच मानिये, आपकी मुट्ठी मे अनिश्चितता भर जायगी और सदा 'वियोग' का ही साथ रहेगा। अनिश्चित बिसात पर आप एक निराधार, 'बे-पेंदी के' मुहरा होगे, जो बाइ-चान्स ठहरेगा, कटेगा कि मात होगा, कुछ भी नही कहा जा सकता। और, कौन जाने, कही अकस्मात् जीवन की बिसात हवा मे उड न जाय, कही अनायास खेल खत्म न हो जाय। विश्व का इतिहास इसका साक्षी है। आप दो-चार पन्ने उलटकर तो देखिये। क्या से क्या हो गया जरा-सी बात मे। एक सुवर्ण-कण भी न मिला रावण को मरती बार मे। सिकन्दर की लाश जब धरती से पनाह माँग रही थी, तब 'थे दोनो हाथ खाली बाहर कफन से निकले'। ऐसी अप्रत्याशित घटनाओ के ऊहापोह मे, बवण्डर मे, क्या आप अपनी जीवन-नैया को 'सयोग' के मस्तूल और 'चान्स' की पतवार के सहारे उस पार ले जा सकेंगे ? क्या अपना मानसिक सन्तुलन ठीक रख सकेंगे ? देखिये, बकरी की मौत मर जाना, उन्माद और विक्षिप्तता मे अपनी जीवन-लीला का पटाक्षेप होने देना, क्या ठीक जॅचता है ? आशकित, असुरक्षित, असहाय ! यह कैसी कोरी जिन्दगी होगी ! किसी का भरोसा नही, आशा नही। बस बाइ-चान्स कुछ हो जाना, कही लुप्त हो जाना। वैज्ञानिक या प्राकृतिक विधान भी 'सयोग-गत' नही चलते (होते)। उनमे भी एकनिष्ठता, निश्चयता है। फिर, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के आध्यात्मिक विधान क्यो कर 'आकस्मिक' होने लगे ! 'सयोग' से बने आईन-कानून मे ही घोर अनिश्चितता होनी चाहिये थी।

परमात्मा के गुण। व्याख्या। वर्णन। चित्रण। विभूतियाँ। असीमता। सर्वव्यापकता।

'लॉ ऑव प्रोबैबिलिटी', (चान्स) का गणित, उसका गुणावगुण और उसकी व्याख्या। एक वैधानिक लकीर। शुष्क। अचेत। सीमित। खण्डित।

सम्भाव्यता की तरी का न आने का ठिकाना, न रहने, न जाने का। उसे किस किनारे लगाइयेगा ? उसका मस्तूल, उसकी पतवार, सभी अनिश्चित होगे। उसका लगर भी आवारा होगा।

निर्जीव, अचेत, गूँगा-बहरा-अन्धी-अज्ञ आकस्मिकता (चान्स) वह भला किसकी सुनेगी ? किसका लोर पोछेगी ? विधि का एक धारा-मात्र ही है न वह ? अन्तत ?

लकीर का फकीर। भैंस के आगे वीणा बजेगी क्या ? उस जड कानून के साथ कैसे बैठेगा प्राणो का सम्पर्क ? कैसे पूरेगी मन की मुराद ? सकल्पो का क्या होगा ? जीवन का कोई प्रोग्राम, कार्यक्रम, बन सकेगा ? 'सयोग' की आराधना होगी, उसी का आह्वान होगा, उसी की प्रार्थना, उसी मे याचना ? क्या मिलेगा ? क्या फूले-फलेगा ? मन मे कौन भरेगा सुरीली तान ? किसके दिव्य सगीत से आत्मा झकृत हो उठेगी, सकेगी ? मूढ 'सयोग' के ?

बेहोशी मे मर जाना है, नीद बडी गहरी है, यात्रा बडी लम्बी, गन्तव्य का पता नही, अकेले की होगी राह, बचाव के लिये एक पैसा भी तो न होगा पास मे, फिर कैसे करे 'चान्स' का भरोसा ? कैसे जुटाये हिम्मत ? कैसे, कैसे, कैसे जीये उसके बूते ? बोलिये न।

परमात्मा के साये मे सन्तोष तो मिलेगा, अपना विकास तो होगा, मानवता के नित्य नये आयाम सुसज्जित और सुवासित तो होगे ? नीरसता और नीरवता तो मिटेगी।

'आकस्मिकता' का आँचल पकडकर जलील तो न होगे। उसके साये मे, सुलगती बेपनाह आग मे जलेंगे तो नही। पश्चात्ताप और परवशता की बेडियाँ पैरो तो न पडी होगी। मुँह पर ताले तो न जडे-मढे होगे। ऐसा तो न होगा कि हम 'किस्मत' ठोककर रह जायेगे, किसी को कोस भी न पायेगे, किसी को अपनी फरियाद भी न सुना पायेगे।

प्रायिकता (प्रोबैबिलिटी) से सम्बद्ध दो बाते खास महत्त्व रखती है गणितज्ञो ने (पासकल, 1623—1662 इत्यादि) पता लगाया कि यह चान्स सिर्फ एक असगत अनुमान नही है, कि अन्तत प्रायिकता उतनी उच्छृखल नही जितनी कि वह सतह पर दीखती है। प्रायिकता भी नियम-बद्ध है।

अगर ससार सिर्फ सयोग, 'दैव', और आकस्मिकता (चान्स) के हवाले होता तो ? अगर कही कोई तोता होता, तोता होता तो क्या होता, तो तो तो तो, तोता तोता, तोता होता, होता तोता, हो हो हो हो होता होता, होता होता, ताहो ताहो तो होतो हो, हो-तो हो-तो हो हो हो हो, तोता तोता तोता, होता होता होता, ताता ताता, तोतो तोतो, हो हो हो हो। तोता होता तो क्या होता ? कौन जाने क्या होता ? कभी आदमी के पेट से हाथी जनम जाता। कभी पीपल के बीज से पपीता निकल जाता। कभी कमल की वर्षा होती और पानी भीग जाता। कभी आग जलाती, कभी न जलाती। कभी अर्ध निशा मे दिनकर झाँक जाता, कभी दिन दहाडे चाँद आ टपकता।

न, सर्वत्र केओस और कन्फ्युजन का साम्राज्य होता, अगर सब कुछ 'बाइ-चान्स' होता।

परमात्मा 'सयोग' को करीने और सलीके के साथ व्यवहार मे लाता है। बडी होशियारी के साथ उसका प्रयोग करता है।

ने जो पूछा था 'इज प्रोबैबिलिटी प्रोबैब्ल' ? वह ठीक सवाल था। वह जिज्ञासा उचित और आवश्यक थी। 'इज प्रोबैबिलिटी प्रोबैब्ल' ? नही। कदापि नही। सृष्टि और समष्टि मे 'प्रोबैबिलिटी', 'सयोग', 'आकस्मिकता' इत्यादि कुछ भी नही है, सच पूछिये तो। 'सयोग' है नही, पर दीखता है। यह भी एक माया का विलक्षण रूप है। 'सयोग', 'दैव', डेस्टिनी, ऐक्सिडेण्ट्स इत्यादि के पार्श्व मे, एक ऐसे विधान का धरातल है, एक ऐसे सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ और शाश्वत परमात्मा का आधार हे, जहाँ कुछ भी 'बाइ-चान्स' नही होता। कही न अनर्गलता प्रतिफलित होती है, न भूलती-भटकती है। और, जो यह मान लेने के लिये तैयार और तत्पर है कि विश्व का निर्माण और उसका सचालन और उसका अन्त भी सयोग और आकस्मिकता पर निर्भर है उसको यह मानने मे क्या हिचक होगी कि उसका सारा जीवन और उसमे की सारी घटनाये भी आकस्मिक ही है। सब 'भाग्य' और 'नियति' पर निर्भर है (नियति-निर्भरता)। और तब, इस अन्धविश्वास से आक्रान्त आदमी क्यो न हाथ-पर-हाथ धरे जिन्दगी मे बैठ जाय ?

भाग्य-प्रबलता (सौभाग्य) ओर भाग्य-हीनता (दुर्भाग्य) (भाग्यशाली और अभागा) और सभी कुछ जब भाग्य मे बदा ही है, तो करने को क्या है। सिर्फ बैठकर भविष्य की ओर टुकुर-टुकुर ताकना है, लोतना और ढनकना है, पगुराना है।

भवितव्यता अपनी जगह पर है। हमारा कर्म अपनी जगह पर। जिन जीवाणुओ से हमारी काया का निर्माण हुआ, जिस परिवेश मे हम जनमे, वह है 'भाग्य'। लेकिन, हम मिट्टी से भी भव्य मूर्त्तियाँ बना सकते है और हीरा को भी हार जा सकते है, कचन को भी कूडे मे फेंक दे सकते है। खेल का मैदान जैसा भी हो, हम कैसा खेलते है वही सर्वोपरि है।

चक्रव्यूह महत्त्वपूर्ण नही है। परिस्थिति और परीक्षा भी गौण है। हम उनका कैसा उपयोग ('सद्' या 'दुर्') करते है, इसकी महत्ता है।

हम दरिया के लिये जवाबदेह नही है, तैरने के लिये है। वह काम देखेगा, मन टटोलेगा।

वह शह देगा, हम मात होने से बच निकलेगे।

वह वार करेगा, हम कवच बढा देगे। ढाल की ओट ले लेगे।

वह गले लगायगा, हम उसे सीने से लगा लेगे।

वह प्यार की एक नजर देखेगा और हम निढाल से निहाल हो जायेगे।

आततायी के मनोभाव। सामयिक नम्रता। मनुष्य का अन्तर्द्वन्द्व। अप्रमेय भगवान्। अमित तेज।

ब्रह्म अक्षर है और इनके परम स्वभाव को अध्यात्म कहते है।

पूर्वाग्रह=पूर्वापेक्षा=प्रेजुडिसेज=सस्कार।

× × × ×

'ऋतम्भरा'। समाधि की सर्वश्रेष्ठ अवस्था (निर्विचार, निर्विकल्प, निर्वितर्क समाधि) मे बुद्धि ऋतम्भरा हो जाती है।

अपरिग्रह । गृहीत—ग्राह्य—ग्रहण ।

× ×

निष्काम भाव से
अनासक्त होकर
ईश्वर परायण बनकर } कर्म करना

× ×

योग युञ्जन् मय्याक्तमना ।

× ×

धैर्य रखना । अधीर न होना ।

× ×

मन मे चाह है, कामना है । सस्कार मन पर जमते (पडते) जाते है । सस्कार से स्वभाव बनता है ।

बुद्धि मे गुण है ।

'गुण' तीन है—(१) सात्त्विक, (२) राजसी, (३) तामसी ।

(प्रकृति भी त्रिगुणात्मक है) (बुद्धि के तीनो गुण मूल प्रकृति से आये है) (मूल प्रकृति की अवस्था मे तीनो गुण साम्यावस्था— न्यूट्रल अथवा न्यूट्रलाइज्ड स्टेट मे रहते है) ।

(इस 'साम्यावस्था'=न्यूट्रैलिटि के भग होने से जो परिस्थिति (सिचुएशन— अथवा अवस्था— अथवा परिणाम) उपस्थित होती है, उसे कहते है 'महत्' । और, महत् से सृष्टि का प्रारम्भ होता है ।

कर्म और फल की शृ खला मे आबद्ध—पुनर्जन्म के चक्कर ।

परमात्मा—अनन्त, विश्वव्यापी, सृष्टि (ब्रह्माण्ड) का रचयिता (तटस्थ) ।

त्रिगुणो (सत्त्व, रजस्, तमस्) के कम या अधिक मात्राओ मे मिश्रण के द्वारा (मे) असख्य सृष्टियाँ महत् से फूट पडती है ।

गुणो की आपसी (रिलेटिव) गौणता, प्रधानता और अनुपात—बुद्धि की प्रक्रियाओ का निर्णायक ।

× × ×

बुद्धि—(क) सात्त्विक, (ख) राजसी, (ग) तामसी
जीवात्मा का सारथी (बुद्धि) । } मिश्रण

× × ×

गुणो के धर्म=मोडस ऑपरेण्डाइ

(१) आकर्षण=ऐट्रैक्शन ।

(२) अप्रीति=रिपल्सन ।

(३) विषाद (तटस्थता)=न्यूट्रल ।

—इनकी मुख्यता तथा न्यूनाधिकता→परिणामी बल (रिजल्टैण्ट फोर्स→आत्मा और मन पर प्रभाव→आत्मा द्वारा इनका प्रयोग→कर्म ।

बुद्धि और युक्ति ।

यज्ञार्थ=लोक-कल्याण के लिये किया गया, कर्म=निष्काम, कर्म=आसक्ति-रहित कर्म ।

निष्काम भाव से कर्म करना='कर्म-योग' ।

यज्ञ-कर्म=स्वार्थ-रहित (स्वार्थ की भावना से रिक्त) कर्म=कल्याणकारी कर्म । यज्ञ=कर्म करते समय एक प्रकार की भावना ।

समत्व-बुद्धि=न्यायबुद्धि ।

ईश्वर-प्रणिधान=ईश्वरपरायण=परमात्मा के अनुगत=परमात्मा के हाथो अपने को सौप देना ।

× × × ×

साम्यावस्था=सन्तुलित अवस्था ।

सत्त्व
रजस्
तमस् } ये तीनो गुण प्रकृति के प्रत्येक परमाणु मे परस्पर चिपटे रहते है और एक दूसरे के आश्रित रहते है (विलीन=)

इनको पृथक्-पृथक् करनेवाला परमात्मा है और इनके पृथक्-पृथक् करने से ही व्यक्त जगत् की रचना होती है । इन्द्रियगोचर जगत् व्यक्त प्रकृति का रूपान्तर ही है ।

'कारण'—के दो प्रकार ।

घडा } (१) उपादान कारण=मिट्टी=त्रिगुणी प्रकृति (रिलेटिव) ।
(२) निमित्त कारण=कुम्हार=परमात्मा (बेसिक, अलटिमेट)

× × × ×

प्रकृति के रूपो के बनने मे प्रयोजन है ? आत्मा के भोग के लिये सामग्री बनाना ।

नित्य (अक्षर और अनादि) शुद्ध (अपरिणामी) बुद्धि (चेतन) मुक्ति की इच्छावाला आत्मा बिना प्रकृति के सयोग (भोक्ता-भाव) के नही बँधता । आत्मा का प्रकृति से सयोग बिना अविवेक के नही होता ।

आत्मा सर्वगुण-सम्पन्न, सर्वविध-मुक्त परमात्मस्वरूप (परमात्मा) बनना चाहता है । इसके लिये (मन कामना-सिद्धि के निमित्त) एक ही रास्ता है । उसे जीवात्मा बनकर योग्यता प्राप्त करनी पडेगी (पडती है) । एडमिरल बनने के लिये पहले किसी को नाविक बनना पडेगा और समुद्र से जूझना पडेगा और उचित प्रमाण मे ज्ञान, अनुभव तथा कौशल और योग्यता प्राप्त करनी होगी । जीवात्मा को प्रकृति की पाठशाला मे पढना पडेगा । 'परमात्मा' बनना टेढी खीर है । उसके लिये उचित मूल्य तो चुकाना ही होगा । 'परमात्मा' के गुणो से परिपूर्ण होकर ही कोई 'आत्मा' परमात्मा बन सकेगा । वे गुण उसके 'जीवात्मा' बनने पर ही प्राप्त होगे । इसी

कर्म-भूमि मे । इसी कर्म-क्षेत्र, धर्म-क्षेत्र मे वासनाओ कमजोरियो इच्छाओ से जूझना पडेगा और उनपर विजय प्राप्त करना होगा। परमात्मा बनना हो तो, चौरासी लाख योनियो का 'भ्रमण' कोई बडी बात नही है (न होनी चाहिये) ।

(उदाहरणार्थ मान लीजिये कि किसी डॉक्टर का बेटा डॉक्टर बनना चाहता हो, तो उसे डॉक्टरी पढनी पडेगी, मुर्दा चीरना पडेगा, परीक्षा पास करनी होगी। बिना परिश्रम और त्याग और योग्यता के वह कैसे डॉक्टर बनेगा। बिना मेडिकल कालेज मे दाखिल हुए पढेगा कैसे ? बाप डॉक्टर रास्ता बतला देगा, सब तरह से मदद कर देगा, लेकिन कष्ट तो परीक्षार्थी को ही उठाना पडेगा, मेहनत तो बेटे को ही करनी होगी ।

Mathematicians have discovered that there is a Law however, which keeps the chance bridled and stops it from running amuck, a law which underlies all speculations, all games of chance They call it the 'Law of Probability' The Law of Probability is amenable to mathematical formulation

There is a general rule for it which says that if "S" denotes the number of ways in which an event can occur and "F" denotes the number of ways in which the event canNOT happen, then the probability of its happening (in any equilikely situation) is the ratio of successful events to total events

$$P=\frac{S}{S+F}$$

The probability of (i) a combination of two or more dependent events, (ii) a sequence of dependent events and (iii) the occurrence of either of two mutually exclusive events, can also be found out by the common-sense application of the above formula

Now this is alright so long there are only a few possibilities to be reckoned with For example, in throwing a dice (rolling a single die) (with its sides marked, as usual, from 1 to 6 respectively), or drawing from a deck of 52 cards But when it comes in grip with life-situations one can quite easily see how extremely unpredictable it can become First of all 'equilikely' situations just do not exist in life where not even two successive moments are exactly the same Secondly, according to the Law of Synchrony, any event taking place in the world (and the Universe) affects all other events Thirdly, the

game of chance that Nature plays is not played with the six-faced dice or the 52 Card-pack The probability of any event turning up (occurring) at any moment is Infinite And the probability of any event not turning up at any particular moment (not to say during a day, a week or during one's full span of life) is also Infinite And then the mathematical formula which we might be tossing about with nightmarish ferver will be something like

$$P = \frac{\propto}{\propto + \propto}$$

$$\text{or even } P = \left(\frac{\propto}{\propto + \propto} \right)^{\propto}$$

And with such a formula to help us where shall we be if "chance" was our master. No wonder that even Pascal who is credited with the discovery of the mathematical Law of Probability wondered "Is Probability probable ?" "It is annoying", said Pascal "to dwell upon such trifles but there is a time for trifling" Indeed there is a grave situation, an urgent occasion, to think about such "trifles" when the peace and the life is threatened so seriously as in our atomic age Can "chance" help us find out if a healthy Mr X will ever get a son or a daughter or no progeny at all Can the Law of Probability fore-warn us as to the exact time when one might have to die ? Can, by invoking chance (as we know it), we can ever conjecture as to the possibility or otherwise of an atomic pile going out on rampage and on total world annihilation at any particular time in future ?

However, one could quite clearly see that there exists or should exist another Law, a greater Law, a Law (a Force or a Power) which is behind all the laws of probabilities That there is an Intelligent Creator who has, among other innumerable things, created also the Law which governs the so-called Law of Probability with great Wisdom and which keeps the law properly briddled and sees to it that in the context of universal or even world events this 'Chance' factor does not turn topsyturvy.

Pascal however did make one application of probabilities (in the Pensees) which for his time was strictly practical This was his famous 'wager' The 'expectation' in a gamble is the value of the prize, multiplied by the probability of winning the prize Accoding to Pascal the value of eternal happiness is infinite He reasoned that even if the probability of winning eternal happiness by leading a religious life is very small indeed, nevertheless, since the expectation is infinite (any finite fraction of infinity is itself infinite) it will pay anyone to lead such a life Pascal may be 'trifling' in his 'wager' against God but he did take his own medicine.

"The hungry man sees God only in bread" (—Mahatma Gandhi)

"We sceptics follow in practice the way of the world, but without holding any opinion about it We speak of the Gods as existing and offer worship to the Gods and say that they exercise providence, but in saying this we express no belief, and avoid the rashness of the dogmatisers"

"Those who affirm positively that God exists cannot avoid falling into an impiety For if they say that God controls everything, they make Him the author of evil things, if, on the other hand, they say that He controls some things only, or that He controls nothing, they are compelled to make God either grudging or impotent, and to do that is quite obviously an impiety" (Bertrand Russell, Cynics and Sceptics, A History of Western Philosophy)

Even the introduction of newer varieties and species of creations (creatures) and the evolutionary progress through the genetic adjustments may not be, after all, a random process Mutations, may not merely be chances 'and coincidences Rather, they may be manouvred missiles, interevolutionary in the process of life, rocketed by Nature to hit a definite target, and designed to achieve a definite purpose in the creative process The evolution of life may have its own long-drawn programme, its own rules and laws set at fulfilling its calculated motives "Regularly" or "irregularly" repeated incidences or events appearing in the garb of accidents or coincidences or chance occurrences or Mutations, may not actually be the haphazard happenings they seem to be Over the vast expanse of time that Creation takes

in its strides, such apparently hapless and helpless 'accidents' may be the result of an intelligent and purposeful programming Even 'miracles' may be controlled and governed by rules yet beyond our ken and comprehension It is a guided Universe in which we live It is neither neglected nor running helter-skelter, bewildered, mad or amuck It is neither going to the dogs nor remaining un-reined

Let us be humble and polite Man is not the only creature God has to mind Earth is not the only planet He has created The Solar System is not the only Toy He has put His heart to It is preposterous to think that God has been able to manufacture only 103 elements and that life as we know on this planet, is the only type of Life in the Universe and that the Mind or the Body we are familiar with are the only kind of Mind and Body that He is capable of framing or casting or moulding or drawing or flashing, whatever the case may be

The creation of the particular planet Earth, nay even the solar system, is a rather recent phenomenon The creation of the Universe is another matter altogether Our disc-shaped galaxy containing possibly more than 100 billion stars with its greatest diameter about 100, 000 light-years, and its thickness about 10, 000 light years, is revolving in one direction about its centre of gravity Other than this revolution the stars have their own great variety of motions Our galaxy must be older than 10 billion years The Universe contains many many, possibly trillions of galaxies like our own and all moving away from us, receding at great speed, perhaps tens of thousands of miles per second, as the Universe is expanding

भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी ॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।
भूषण बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥१॥

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौ अनंता ।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ॥
करुना सुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुतिसंता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥२॥

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ।।३।।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहि ते न परहिं भवकूपा ।।४।।

(रामचरितमानस तुलसीदास)

सृष्टि के प्रारम्भ मे ।

जिस दिन पहला आदमी बनाया गया होगा, उस दिन उस समय तो वह दूध का धोया था, भगवान् का अश था, फिर उसने बुराई कैसे सीखी, कुकर्म मे कैसे प्रवृत्त हुआ, किसने उसे गैरत मे ढकेला ? जो वह पाप-पुण्य के झमेले मे पडकर कर्म-फल का भोग भोगने के लिए बाध्य हुआ, पुनर्जन्म के घोर चक्कर मे पडा । एक आदमी से इतने सारे अलग-अलग आदमी बने । हर नये आदमी की जब शुरूआत हुई, जब सर्जन हुआ, तब वह कैसे माया मे लिपट गया ? इन शकाओ का समाधान सम्भव नही ।

स्वामी शरणानन्दजी का यह मत है कि परमात्मा, प्रकृति और जीवात्मा (प्राणियो, पुरुष से सम्बद्ध आत्मा) तीनो ही शाश्वत है । वे सदा से है । रहते आये है । रहेंगे । मै सोचता हूँ, यह हमारा आत्मा परमात्मा जैसी कोई शक्ति है, पर परमात्मा नही है । उसीका क्रूड (Crude) फार्म (Form) समझिये । छोआ गुड-सा । जब इसका उत्कर्ष चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब वह आपसे-आप परमात्मतत्त्व मे मिल जाता है । लेकिन, यह सब कैसे होता है ? क्यो होता है ? यह मै नही जानता । कोई भगवान् का निजी सहायक (पी० ए०) तो हूँ नही, कि जानता होऊँ । मेरी देह का एक कोष अगर मेरे बारे मे जानना चाहे, छान-बीन करना चाहे, तो क्या कर सकेगा ? मेरे मस्तिष्क के कोषो को अपना हाल तो मालूम ही नही, फिर परमात्मा का राज जानने के लिए बेहाल होने से क्यो न हास्यास्पद स्थिति की प्रणीति हो । पानी के एक बुलबुले को समुद्र का ज्ञान कैसे हो ? उसमे अपने अस्तित्व को, मिटाकर, मिलकर, नमक का ढेला समुद्र कैसे नापे ? उसमे विलीन होकर । पृथ्वी (सृष्टि) कब बनी ? कहाँ बनी ? कैसे बनी ? किसने बनायी ? ये कुल सवालात हमारे दिमाग की हवालात मे ऊधम मचाते रहे है, लेकिन इनके सबसे मौजूँ जवाब हमको ३-४ महीने (सन् १९६८ ई०) पहले स्वामी रामतीर्थ की एक पुस्तिका ('राम बादशाह के छ हुक्मनामे') मे (जो 'महादेश' के सशक्त सम्पादक श्रीविजय अमरेशजी के सौजन्य से पढने को मिली थी) मिले ।

पृथ्वी कब बनी ? इस प्रश्न का मतलब है कि किस समय बनी ? कितने दिन

पहले बनी ? किस साल बनी ? तो भाइयो, यह जो हमारा समय है, वह रात-दिन मे बँटा हुआ है, सूर्य चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्रो पर आधृत है। जब पृथ्वी बनी थी, उस समय न सूर्य था, न चॉद। और, न समय (टाइम) नामक कोई चीज थी। न जन्म-पत्री थी, न घडी, न कलेण्डर। उस पावन मधुरिमा मे 'समय' नही जनमा था। न काल था, न उसका भूत या भविष्य। फिर कैसे बतलाये कि पृथ्वी कब बनी ?

पृथ्वी कहॉ बनी ? अरे, जहॉ पर है, वही बनी। कोई मापदण्ड है ? कोई भौगोलिक रेखा या स्तम्भ है कि आपको बतलाये कि किस जगह से किस बिन्दु से कितनी दूर पर किस दिशा मे बनी। उस समय तो 'दिशा' भी नही थी।

कैसे बनी ? जिसने बनायी, उससे पूछिये, हमने तो बनायी नही और फिर अनुसन्धान करनेवाले वैज्ञानिको का मत उपलब्ध है, पढिये।

किन वस्तुओ से बनी ? जो वस्तुये इस पृथ्वी मे पायी जाती है, उन्ही वस्तुओ से बनी है।

क्यो बनी ? आप ही के रहने के लिये बनी।

किसने बनायी ? परमात्मा ने प्रकृति को साथ ले अपनी त्रिगुणात्मक माया के द्वारा बनायी।

"एक शख्स ताबिबे हक (ईश्वर का ढूँढनेवाला) था। तलाश परमेश्वर मे प्रेम का मारा चारो तरफ दौडता था कि काश (खुदा करे) कोई ऐसा आरिफ (ज्ञानी) कामिल मिल जाय कि जिसकी जियारत (दर्शन) से जिगर (कलेजा) की आग बुझे, दिल को ठण्डक पडे। यो ही तलाश करता हुआ नाउम्मेद होकर जगल मे जा पडा कि अब न कुछ खायेंगे, न पीयेंगे, जान दे देंगे।

बैठे है तेरे दर पे तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जायगा या मरके उठेंगे॥

उस जमाने के आरिफ कामिल हजरत जुनैद (बगदाद के एक नामी फकीर) थे। और उस दिन हजरत जुनैद दिजला मे (बगदाद की एक नदी का नाम) घोडे को पानी पिलाने जा रहे थे। घोडा अडता था। दिजला की तरफ नही जाता था। घोडे को अडता हुआ और सरकश (बिगडा)-सा देखकर जुनैद ने जाना कि इसमे भी कोई हिकमत होगी। आखिर घोडे के साथ जिद्द छोड दी और कहा—चल, जहॉ चलता है, चारो तरफ मेरे ही खुदा का मुल्क तो है, सब मेरे ही वलायत है। घोडा दौडता हुआ उस जगल मे खास उसी मुकाम पर आ पहुँचा, जहॉ वह बेचारा तालिबे (ढूँढनेवाला) सादिक (सच्चा) प्रेम का मतवाला इश्क का जला हुआ परमेश्वर का भूखा-प्यासा पडा था। जुनैद घोडे से उतरकर उस शख्स के पास आकर हाल पूछने लगे और थोडी ही सुहबत (सत्सग) से वह तालिबे—सादिक मालामाल हो गया। जब जुनैद जाने लगे, तब उस शख्स से कहा कि अगर फिर कभी कब्जवारिद (कब्ज पैदा) हो जाय और तुझे मुर्शद (गुरु) कामिल की जरूरत हो, तो बगदाद मे आ

जाना । मेरा नाम जुनैद है, किसी से पूछ लेना । इस मस्त ने जवाब दिया कि क्या अब मै हुजूर के पास गया था ? मुझे अब भेद मालूम हो गया । अब मै आने-जाने का कही नही । अगर आयन्दा जरूरत होगी, तो अब की तरह फिर भी ख्वाह हुजूर खुद, ख्वाह (चाहे) और कोई गरदन से पकडा हुआ घसीटा आयेगा ।"

"बेहूद चरा दरपये ऊ मी गरदी ।
बिनशी अगर ऊ खुदास्त खुद मी आयद ।।' (गनी)
(तू उसके पीछे बेफायदा क्यो फिरता है । बैठ,
अगर वह खुदा है खुद आयगा ।)" (रामतीर्थ)

"यह कौनसा उकदा (गाँठ) है
जो वा (खुल) हो नही सकता ।
हिम्मत करे इन्सान तो
क्या हो नही सकता ।।"

"कभी न साहबे हिम्मत का हौसला टूटे ।
कभी न भूलसे अपनी जबी (माथा) प बल आये ।।"

"बात थी जो अस्ल मे, वह नक्ल मे पाई नही ।
इसलिये तस्वीरे जानाँ हमने खिचवाई नही ।।"

"परमेश्वर उनकी सहायता करने को हाजिर खडा है, जो अपनी मदद आप करने के लिए तैयार हो । यह एक कानून कुदरत है । यह अटल कानून कुदरत है कि जब आदमी पूरा अधिकारी (मुस्तहक) होगा, तब जो उसका अधिकार (हक) है, खुदबखुद उसको ढूँढ लेगा" । "जब आप पूरे अधिकारी होगे, आपके लायक मसब (रुतबा ओहदे के लायक) है और आप है । मसब की तलाश मे वक्त मत जाया करो । अपने तईं मनासिब (मनसब के योग्य) बनाने की फिक्र करो ।" "जब तुम लायक होगे, तब ख्वाहिश किये बगैर ही मुराद आ मिलेगी ।" (रामतीर्थ) ।

माया ।

मेसोन्स ब्रह्माण्ड रश्मियो (किरणो) (कॉस्मिक रेज) मे पाये जाते है और उच्च ऊर्जा के कणो (हाइ एनर्जी पार्टिकिल्स) (अणुओ) द्वारा हुए प्रस्फोटन (बम्बार्टमेण्ट) के अन्तर्गत न्यष्टि (न्यूक्लिआइ) के द्वारा उत्सारित (एमिटेड) किये जाते है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि न्यष्टियो के भीतर न्यष्टि (न्यूक्लिअस) की सलग्नता (कोहेसन) मे वे एक महत्त्वशील भूमिका (भाइटल पार्ट) अदा करते है, किन्तु अभी तक उन 'विनिमय बलो' (शक्तियो 'एक्सचेज फोर्सेज'), जिनके साथ वे सम्बद्ध (एसो-शिएटेड) है, की कोई सन्तोषजनक व्याख्या (विवेचना, स्पष्टीकरण) (सटिसफैक्टरी एक्सप्लैनेशन) नही दी जा सकी है । मेसोन अतिशय अल्पजीवी होते है । अब यह भी अनुमाना जाता है कि ऐण्टीमेसोन का भी अस्तित्व है ।

प्रचलित सिद्धान्त ने कुछ ३० से ५० तथाकथित 'आधारभूत (मौलिक मूलभूत, फण्डामेण्टल)', कणो की सत्ता (अस्तित्व) को स्वीकार किया है, मान्यता दी है ।

(तु० बैरिओन्स, मेसोन्स, लेपटोन्स, म्युओन्स, फोटोन्स, ग्रेभिटोन्स इत्यादि) ।

'बोसोन्स' (भारतीय भौतिक शास्त्री एस० एन० बोस, सन् १८५८—१९३७ ई० के नाम पर ।

'ग्रेभिटोन'—गुरुत्वाकर्षण (भ्वाकर्षण, अभ्याकर्षण) क्षेत्र (ग्रेभिटेशनल फील्ड) का परिकल्पित ऊर्जाणु (पोस्चुलेटेड क्वाण्टम) ।

'कण-अनुसन्धान' (पार्टिकल रिसर्च) और वर्गीकरण (क्लासिफिकेशन) तथा अनुसन्धान की परिणामभूत (से उत्पन्न) उपकल्पना (हाइपोथेसिस) दुनिया-भर मे ऐसी तीव्र गति से विकसित (अग्रसरित) हो रहे है कि सभी प्रकाशित आँकडे (आधार-सामग्री, सूचना) बहुत (ज्यादा) अन्वीक्षात्मक (टेण्टेटिभ) और अन्य समय मे अन्यत्र प्रकाशित (जारी किये गये) आँकडो के साथ (तुलना मे) प्राय असगत और परस्पर-विरोधी हो जाते रहे है ।

वे कभी-कभी भ्रामक (मिसलीडिंग) भी हो जाते है । और अभी तक वे समस्याओ के मूलमर्म (कोर) तक नही पहुँच पाये है—कि ऐसा 'क्यो' और 'कैसे' होता है । और सबसे अधिक मौलिक (आधारभूत, बुनियादी) और सबसे (सर्वभावेन) भिन्न तथा महत्त्वपूर्ण सवाल कि 'कौन ?', 'किससे या किसके द्वारा ?' (किसके साथ) एव 'कहाँ से ?' अछूते रह जाते है ।

कण (कणिकाएँ) (अन्त पारमाण्विक-सबऐटोमिक) (मूलभूत, आधारभूत और प्राथमिक) सरचनात्मक ऊर्जा इकाइयो (स्ट्रक्चरल एनर्जी यूनिट्स) के रूप मे माने जाते है। वे ऐटम के सघटक अवयव (कन्स्टिटुएण्ट पार्ट्स) है । एकाकी (पृथक्) (अकेले) या मिलजुल-कर (सयुक्त होकर) वे ज्ञात (प्रकट, जाने हुए, व्यक्त) विश्व यूनिभर्स के पदार्थ (सृष्टितत्त्व, सब्सटैन्स) की परिभाषा प्रस्तुत करते है । ध्यान रहे कि ये 'व्यक्त' विश्व की बनावट (और 'बनावटी' !) इकाइयाँ है, केवल 'व्यक्त' ब्रह्माण्ड की । ये इकाइयाँ एक साथ ही पदार्थ-कणो मेटीरियल पार्टिक्ल्स से सम्बद्ध गुणो (जैसे,—सयति, पुज, मास) और तरग (वेभ्ज) के विशिष्ट गुणो (जैसे तरग-दैर्घ्य, तरग-आयाम) (तु० 'वेभिक्ल्स') को (दोनो तरह के लक्षण—वैशिष्ट्यो को) प्रदर्शित करती है । और इनमे से अधिकाश कण 'पदार्थ' अथवा 'प्रति-पद' (एण्टिमेटर) [पदार्थ कणो के प्रतिरूप] के रूपो (फॉर्म्स) मे माने जाते है ।

जब कोई 'कण' (कणिका, पार्टिक्ल) अपने 'युग्म' (डब्ल) (डुएल, ऐण्टी-पार्टिक्ल अथवा मिरर-इमेज पार्टिक्ल) से टकराता है, तब उन दोनो के (आपसी) सघटन (समाघात, कोलिजन) से उन कणो (कणिकाओ, पार्टिक्ल्स) का (उनके व्यक्त पूर्व-ओरिजिनल-रूप का) तो सर्वनाश (लोप) हो जाता है, लेकिन उस कोलिजन (समाघात) के कारण (फलस्वरूप) उनके (उन पार्टिक्ल्स के) मासेज (द्रव्यमान, मात्रा) बदल जाते है । बदलकर (बदलैन के द्वारा, रूपान्तरण के क्रम मे) वे उच्च ऊर्जा (हाइ एनर्जी)

लाइट वेभ्ज बन जाते है। (कुछेक अवस्था मे वे सूक्ष्मतर कणिकाओ की शक्ल अख्तियार कर तीव्रतर गति प्राप्त करते है।) [ऐसी भिन्नता 'क्यो' ? किस (किन) अन्तर्निहित कारणो से ? कहाँ से (किस स्रोत से) आता है वह 'दिशा-निर्देश', वह 'आज्ञा', वह 'प्रेरणा' और वह 'विधान' ?] इस भाँति मुचित (रिलीज्ड) रैडियण्ट एनर्जी की मात्रा (तादाद) (सयति-ऊर्जा-समतुल्य=मास-एनर्जी-इक्विभैलेण्ट्स) का ज्ञान प्राप्त हो सकता है आइन्स्टाइन के इक्वेशन (समीकरण) के द्वारा,—(ई बराबर है एम० सी० स्क्वायर्ड के)

$E=mC^2$ ई=एम सी२

जहाँ E=एनर्जी इन अर्गस् (अर्गो मे ऊर्जा)

m=मास इन ग्राम्स (सयति-पुज ग्राम मे)

C=प्रकाश का वेग (भेलॉसिटी ऑव लाइट)

($=3\times10^{10}$ कि०मी० प्रति सेकेण्ड)।

अलबर्ट आइन्स्टाइन (सन् 1879—1955 ई०)

(१) सापेक्षता (रिलेटिविटि) के 'सामान्य' (जेनग्ल) एव 'विशिष्ट' (स्पेशल) सिद्धान्तो के प्रवर्त्तक (प्रतिपादक)

(२) परमाणुशक्ति (परमाण्विक ऊर्जा) (तु० एटम बम, हाइड्रोजन बम इत्यादि) के सैन्य और व्यावसायिक उपयोग के जन्मदाता (स्रष्टा एव सहारक!) (विज्ञान की पूजा तथा प्रोस्टिच्युशन) (जवाबदेह!)

(तु० अलबर्ट आइन्स्टाइन (सन् 1879—1955 ई०)
अलफ्रेड बर्नार्ड नोबेल (सन् 1833—1896 ई०)
सर आइजक न्यूटन (सन् 1642—1727 ई०) तथा अन्य !!!)

एक ही सूर्य सर्वत्र प्रकाशमान है। सुमन के लिए सुवास और मधुमक्खियो के लिए दश-शूल-दाता। कॉटे। नागफणी। गुलाब। लवग-लता। केतकी। केवडा। वनश्री। मालती। मौलश्री। कमल भी। कुम्भी भी। कनैल भी। गोबर-छत्ता (मशरुम) और ऑरकिड और आरकेरिया और चम्पा भी। गन्ना और गेहूँ भी। सूर्यमुखी का डोरे डालना और कुमुदिनी का सकुचाना और लजा जाना।

आइन्स्टाइन का सापेक्षता-सिद्धान्त

(क) सामान्य सिद्धान्त, 1916

(ख) विशिष्ट या आयन्त्रित (सीमित रिस्ट्रिक्टेड) सिद्धान्त, 1905

[यह सिद्धान्त दिक्, काल, ऊर्जा और गुरुत्वाकर्षण (भ्वाकर्षण) के स्वभाव (नेचर)

तथा उनके आपसी इण्टर-रिलेशनसिप्स (अन्त सम्बन्धो) का निरूपण (प्रतिपादन) करता है ।] विशिष्ट या आयन्त्रित (सीमित) सिद्धान्त (1905) । यह प्रसग के चौखटे (घेरे) मे आयन्त्रित (रेस्ट्रिक्टेड टू फ्रेम्स ऑव रेफरेन्स) (सीमित) है, जिसमे यह माना जाता है कि सभी अवलोकक (ऑब्जर्वर्स) एक सीधी रेखा मे और प्रत्येक दूसरे की सापेक्षिक (रिलेटिव) अचल (स्थायी, अपरिवर्त्ती) (कॉन्सटैण्ट) गति (स्पीड) मे गमन (मूभिग) कर रहे है । (ऐट ए कॉन्सटैण्ट स्पीड रिलेटिव टू ईच अदर) ।

विशिष्ट सिद्धान्त से निम्नलिखित मौलिक (बुनियादी, आधारभूत) अभिधारणाओ (कल्पनाओ) (बेसिक एसम्पशन्स) का विकास हुआ—(१) न्यूटन का द्वितीय नियम—जिसके अनुसार सभी दशाओ (स्थितियो) मे सयति (पुज) (मास) अचल, स्थायी (कॉन्सटैण्ट) होता है—यह ऊँचे वेगोवाली (द्रुतगामी) वस्तुओ (बॉडीज हैभिग हाइ-भेलॉसिटीज) के लिए समीचीन (मान्य, भैलिड) नही ।

गतिशील वस्तुओ की सयति (पुज) इसकी विरामावस्था की सयति (पुज) से महत्तर (अधिक) होती है । यह सम्बन्ध निम्नलिखित समीकरण से व्यक्त है

$$m=\frac{m_0}{\sqrt{1-\frac{v^2}{C^2}}}$$

जहाँ M=गति-दशा मे वस्तु की सयति (पुज) (मास ऑव दि बॉडी इन मोशन)
m_0=विराम-दशा मे वस्तु की सयति (पुज) (मास ऑव दि बॉडी ऐट रेस्ट)
V=विराम-दशा मे अवलोकक के सापेक्ष वस्तु का वेग (भेलोसिटी ऑव बॉडी रिलेटिव टू ऐन ऑब्जर्वर एट रेस्ट)
C=स्पीड ऑव लाइट ।

(२) विश्व मे प्रकाश का वेग अधिकतम है—(प्रकाश-किरणो, लाइट, से बढकर विश्व मे किसी की भी स्पीड नही हो सकती) ।

186,300 मील/सेकेण्ड
(299,800 कि०मी० प्रति सेकेण्ड)
(लगभग 187,000 मील प्रति सेकेण्ड या 300,000 कि० मी० प्रति सेकेण्ड)

(३) सयति (पुज) और ऊर्जा (१) समतुल्य है, (२) परस्पर परिवर्त्तनीय गुणवाली है । यह सम्बन्ध (सयति-ऊर्जा-समतुल्यता) निम्नाकित समीकरण से व्यक्त है

$$E=mC^2$$

(४) गतिशील वस्तु गतिरेखा पर सकुचित होती प्रतीत होती है ।

Fitzgerald
Lorentz
माइकलसन—मार्ले-प्रयोग, सिद्धान्त)

(५) एक निकाय (परिवेश, सिस्टम, तन्त्र) मे एक अवलोकक (आब्जर्वर) के लिए

प्रत्यक्षत युगपद् (एक साथ, एक ही समय) घटनाये अन्य सिस्टम मे किसी अव-लोकक के लिए वैसी नही हो सकती।

तु० प्वायनकेयर की "युगपत्ता (समकालिकता) की सापेक्षता" (रिलेटिविटी ऑव साइमलटेनिइटी)।

(६) गतिमान् हुई घडी की समय-दर अपनी वेग-वृद्धि के क्रम मे घटती हुई मालूम होती है और फिर वेग-ह्रास-क्रम मे इसके विपरीत।

सापेक्षता का सामान्य सिद्धान्त

यह स्वय आइन्स्टाइन के द्वारा सापेक्षता के विशिष्ट सिद्धान्त (स्पेशल थ्योरी ऑव रिलेटिविटी) की अभिधारणाओ (ऐसम्पशन्स) (कल्पनाओ) का ही एक विस्तार (एक्सपैन्सन) है। जडता (इनर्शियल) और जडत्व-विहीन (नन-इनर्शियल) निकायो (सिस्टम्स) मे किये जानेवाले अवलोकनो पर लागू करने के लिये (निमित्त) आइन्सटाइन ने उस स्पेशल थ्योरी का सामान्यीकरण (व्यापकीकरण) (जेनेरलाइजिग) किया था, अधिक व्यापक बनाया था।

सामान्य सिद्धान्त (दि जेनरल थ्योरी ऑव रिलेटिविटी) से गुरुत्वाकर्षण (भ्वाकर्षण) की समस्या का साधन (समाधान) होता है। यह गुरुत्वाकर्षण (भ्वाकर्षण) क्षेत्र की सरचना (स्ट्रक्चर ऑव दि ग्रैविटेशनल फील्ड) के लिये नये नियम (विधान) निरूपित करता है।

यह निश्चयपूर्वक निरूपित करता है कि (क) जडत्व-बल (जडत्वीय फोर्स) (इनर्शियल फोर्सेज) मूलत (इन ओरिजिन) गुरुत्वाकर्षकीय (ग्रैविटेशनल) होते है, (ख) प्रकृति के विधान जड और अजड अवलोकको पर समानरूपेण लागू होते है, (ग) गुरुत्वाकर्षण और जडता की सयति (पुज) एक समान (ग्रैविटेशनल ऐण्ड इनर्शियल मासेज आर इक्वल) होते है, और आइन्स्टाइन के शब्दो मे वे 'उतने ही आवश्यक होते है, और न विरले ही आकम्मिक—जैसा कि प्रतिष्ठित भौतिकी (क्लासिकल फिजिक्स) मे भी।' ('ऐज एसेन्शियल ऐण्ड नॉट रेअर्लि ऐक्सिडेण्टल ऐज इन क्लासिकल फिजिक्स')।

समरूप सापेक्षिक गति नही है जिनकी, उन अवलोकको पर लागू होनेवाला यह सामान्य सिद्धान्त 'गुरुत्वाकर्षण' (भ्वाकर्षण) सिद्धान्त की एक नयी धारणा (कन्सेप्ट) का नेतृत्व करता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार 'अन्तरिक्ष' (स्पेस) मे विद्यमान 'पदार्थ' (मैटर) (दि प्रेजेन्स ऑव मैटर इन स्पेस) इस प्रकार अन्तरिक्ष को मोड देता है कि गुरुत्वाकर्षण (भ्वाकर्षण) क्षेत्र स्थापित हो जाता है। इस प्रकार गुरुत्वाकर्षण (भ्वाकर्षण) स्वय अन्तरिक्ष (स्पेस) का गुण हो जाता है।

क्वाण्टम मेकैनिक्स।

ऊर्जाणु यान्त्रिकी (क्वाण्टम मेकैनिक्स)। वर्त्तमान शताब्दी मे प्रादुर्भूत यान्त्रिकी की इस पद्धति ने बहुत छोटे पैमाने पर (ऑन भेरी स्मॉल स्केल्स) घटनेवाली भौतिक

घटनाओ (जैसे एलेक्ट्रोन की गति, और एटम्स के भीतर न्यष्टि, न्यूक्लिस) की व्याख्या या विवेचना की विधि (मेथड) के रूप मे न्यूटन की यान्त्रिकी का स्थान ले लिया है। मैक्स प्लान्क ने धारणा (कल्पना) व्यक्त की कि ऊर्जाणु-सिद्धान्त (क्वाण्टम-थ्योरी) के अनुसार 'ऊर्जा' विविक्ति (पृथक्) सम्पूर्ण (होल)—इकाइयो मे रहती है। प्रत्येक इकाई ऊर्जाणु (क्वाण्टम) के नाम से पुकारी जाती है। कुल वैद्युत-चुम्बकीय-विकिरण ऊर्जा (ऑल एलेक्ट्रोमैगनेटिक रेडिएशन्स) ऊर्जाणुमय (क्वाण्टाइज्ड) है। कुछेक सन्दर्भो मे परमाणुशक्तियो से सम्बद्ध ऊर्जा का 'क्वाण्टम' 'मेसोन' के रूप मे पाया जा मकता है। ऐलेक्ट्रोमैगनेटिक रेडिएशन का क्वाण्टम 'फोटोन' है।

एक क्वाण्टाइज्ड राशि अनवरत (सतत) परिवर्त्तित नही हो सकती (नही होती जा सकती) (क्योकि) मूल्य की भिन्नता का पृथक्करण छलॉगो (उत्सर्जन) के द्वारा (कारण) (प्रतिपादित) होगा (होता है) (डिफरेन्स इन भैल्यू बिइग सेपेरेटेड बाइ 'जम्प्स')।

ऊर्जाणु-सिद्धान्त का जन्म मैक्स प्लान्क (Max Planck) के अनुसन्धान से हुआ कि काली वस्तु से ताप-विकिरण क्वाण्टाइज्ड होता है, अर्थात् ऊर्जा के विविक्त (पृथक, स्पष्ट) (डिसक्रीट) (क्वाण्टा) मे उत्सारित (एमिटेड) होता है। इसका परिमाण (मैगनिच्युड), (क) 'फ्रिक्वेन्सी ऑव दि रेडिएशन (विकिरण की आवर्त्तिता, बारम्बारता) और (ख) एक सार्वभौम स्थिराक (युनिवर्सल कॉन्सटैण्ट) (परमात्म-तत्त्व?) (जो अब प्लैंक-का-स्थिराक नाम से प्रसिद्ध है) (परमात्मा-का-स्थिराक, 'गौड्स कॉन्सटैण्ट', नाम से नही !!!) पर निर्भर होगा।

Max Planck, 1858—1947
Periodic Table (1869) Mendleev,
Dmitri Ivanovich (1834—1907)
Julius Lothar Von Meyer (1830—1895)
Niels Bohr (1885—1962)

हाल ही अधिकतर आधुनिक रूप मे ऊर्जाणु यान्त्रिकी (क्वाण्टम मैकेनिक्स) एक विशिष्ट रूप मे विकसित हुई है, जो तरग-यान्त्रिकी (वेभ मैकेनिक्स) के नाम से जानी जाती है। यह अधिक बहुमुखी (भर्सेटाइल) है और इसमे मूल सिद्धान्त के बनिस्बत [वैज्ञानिको के द्वारा अध्यात्मवादियो के द्वारा नही !] स्वच्छन्द, मनमाना या आनुमानिक अभिधारणाओ या कल्पनाओ (आरबिट्रैरी ऐसम्पशन्स) की गुजायश (आवश्यकता, अपेक्षा) बहुत कम है।

यह उपकल्पना कि प्रकाश (लाइट) वैद्युत-चुम्बकीय-विकिरण (एलेक्ट्रो मैगनेटिक रेडिएशन) का ही एक रूप है। (जेम्म क्लर्क मैक्सवैल-1831—1879)। विकिरण-कारी (अरीय, रेडिएटिंग) पिण्ड (बॉडीज) से ऊर्जा एक सतत (अटूट) (अखण्डित) प्रवाह के रूप मे उत्सारित (उत्सर्जित) (एमिटेड) नही होती, बल्कि केवल विविक्त (पृथक्) (डिस्क्रीट) इकाइयो (क्वाण्टम) मे, अथवा बण्डल (गट्ठा) (क्वाण्टा) मे होती है। मैक्स प्लैन्क ने कल्पना की कि क्वाण्टम मे की ऊर्जा, 'E',

उत्सारण (एमिशन) की 'v' तरग-आवर्त्तिता (बारम्बारता) (वेभ-फ्रीक्वेन्सी) के अनुपाती (प्रोपोर्शनल) है ।

इस प्रकार, क्वाण्टम-सिद्धान्त के अनुसार

$$E = hv = \frac{hv}{\lambda} \qquad E = hv = \frac{hc}{\lambda}$$

जहाँ E=ऊर्जा (जूल मे) प्रति क्वाण्टम (एनर्जी इन जूल्स पर क्वाण्टम)।

h=प्लैन्क का सार्वभौम स्थिराक (प्लैन्क्स यूनिवर्सल कन्स्टैण्ट)। (=6 6252 $\times 10^{-34}$ जूल सेकेण्ड/क्वाण्टम)

v=तरग–आवर्त्तिता (वेभ फ्रीक्वेन्सी)।

c=प्रकाश का वेग (भेलोसिटी ऑव लाइट)। (2 998x10^8 की० मीटर्स/सेकेण्ड)।

λ=मीटर मे विकिरण का तरगदैर्घ्य (तरग लम्बाई) (वेभ-लेंग्थ ऑव-रेडिएशन इन मीटर्स)।

अब चूँकि ऊर्जाणु (क्वाण्टम) का मूल्य, विकिरण (रेडिएशन) की आवर्त्तिता (बारम्बारता) के सीधे (डाइरेक्ट) समानुपात (प्रोपोर्शन) मे है, इसलिये इसका मतलब यह हुआ कि बैगनी प्रकाश (भ्वायलेट लाइट) का एक ऊर्जाणु—जिसकी आवर्त्तिता (बारम्बारता) (फ्रीक्वेन्सी) लाल प्रकाश की दुगुनी है—लाल प्रकाश के एक ऊर्जाणु की दुगुनी ऊर्जा (एनर्जी) रखेगा ।

विकिरण से सम्बद्ध ऊर्जा-स्थानान्तर (एनर्जी-ट्रान्सफर) की एक मौलिक (आधारभूत) इकाई, ऊर्जाणु (दि क्वाण्टम), की मैक्स प्लैन्क की धारणा, आइन्सटाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त (रिलेटिविटि थ्योरी) के साथ आधुनिक भौतिकी की सारभूत आधारशिला (दि एशेन्सियल बेसिस ऑव मॉडर्न फिजिक्स) बन गयी है ।

अपनी सारी जिन्दगी के अथक परिश्रम के फलस्वरूप वैज्ञानिको ने प्राकृतिक (भौतिक, पार्थिव) नियमो (विधानो) के कुबेरी खजाने मे से कुछ सत्य के सिक्के प्राप्त किये । इन सिक्को की बदौलत—जो 'असली' या 'नकली', 'खरे' या 'खोटे' हो सकते थे—वैज्ञानिको को आत्मसन्तोष मिला और ससार ने उनकी प्रखर बुद्धि तथा अलौकिक (अथवा ऐहलौकिक ?) उपलब्धियो के लिये पूरी दाद दी और उन्हे पुरस्कृत किया । एक पूरी जिन्दगी एक सत्य के टुकडे की खोज मे जिसने लगा दी, वह 'नोबेल लारियेट' हो गया, 'जीनियस' कहला गया, सर्वप्रकारेण पूजित और कूजित हो गया । लेकिन, जिसके खजाने से वे 'सत्य' के टुकडे मिले थे, जिसने उन सत्य (विधान) के सिक्को को ढाला था, और जिसकी मुहर लगी पडी थी, उन वैज्ञानिको के मस्तिष्क पर, जहाँ से उनकी प्रज्ञा का विकास हुआ था, उनकी प्रतिभा का स्रोत फूटा था, और जिसने स्वय पर्दे के पीछे रहकर अनुबोधक (प्राम्पटर) तथा प्रेरक का काम किया था, और जिसने उनकी उँगली पकडकर उन्हे अनुसन्धान के सही रास्तो पर ला खडा किया था और उनके 'सयोग' की महिमा गाने पर चुप जरा मुस्कराया-भर था, वह

'सर्वज्ञ', 'सर्वशक्तिमान्' परमात्मा कही खोया ही छोड दिया गया। यह कैसी विडम्बना है। कैसी महिमा। कैसी गति है। अनेकानेक अनुसन्धानो मे 'सत्य' अचानक आ चमका था। कभी किसी के स्वप्न। कभी किसी की भूल मे भी। (सकेत—केकुले की बेनजीन-रिंग-सरचना, फ्लेमिंग का पेनिसिलीन, पावलॅव का कण्डिशण्ड रिफ्लेक्स इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि ।)

कहाँ से आया था वह 'सयोग', वह 'चान्स' ? किसने उन सत्यो को छिपा रखा था अपनी झोली मे ? किसने 'लाभ' और 'यश' के फूल खिलाये थे ?

यह सत्य है कि नदी के इस पार हम और उस पार वह व्यक्ति खडा है, लेकिन यह इस पार और उस पार की सत्यता सिर्फ हमारी तुलना मे ही है। उस पार वह जो व्यक्ति खडा है, उसके लिये नदी की उस ओर से सत्यता है कि हम उस पार और वह इस पार खडा है। सत्य सदा तुलनात्मक होता है। गुलाब लाल है, सत्य है, परन्तु सत्य है सिर्फ मनुष्य के लिये। एलेक्ट्रो-मैग्नेटिक स्पेक्ट्रम के सोलह भागो के एक भाग के चौथाई हिस्से का रेडियेशन ही सिर्फ चित्रित कर पाती है हमारी आँखे मानस-पटल पर। गामा-किरणे, एक्स-किरणे, अल्ट्रा-भायलेट, इन्फ्रारेड इत्यादि किरणे जो वर्णपट के विशाल भाग को घेरे हुई है, हमारी नजरो से ओझल है, क्योकि ये आँखे उतनी समर्थ नही है कि अधिक बडी या छोटी तरगो को चित्रित कर पाये। इन्फ्रारेड और अल्ट्रा-भायलेट के छोटे से मिलन-स्थल की किरणो को आँखे पकड पाती है और उसे हमारा मन पीले रग का बोध करता है। वह पीला अगल-बगल के थोडे से बैगनी और लाल रगो से मिलकर प्रथम सात और फिर हजारो रगो का ससार प्रस्तुत करता है। गुलाब गुलाबी और उसकी पत्तियाँ हरी हो जाती है। मेरी आँखो की सीमित समर्थता गुलाब को रग दिये हुए है। आँखे और समर्थ हो जाती, तो वह बैगनी रग का और फिर पारदर्शी फिर, रगहीन खुरदुरा ('रफ' अनइभ्न) खुरदुरा-सा, फिर अणुओ का ढेर, फिर परमाणुओ के चचल खेल, मे बदल जाता। क्या परमाणुओ का ढेर सत्य है, नही। उससे कुछ आगे बढकर सत्य है कि वह शक्तिकणो (धनात्मक-ऋणात्मक आवेश-मुक्त पार्टिक्ल्स) की दौडधूप है और फिर कि वह तरगो का एक केन्द्र है। दुनिया तरग है। गुलाब तरग है, हर क्षण, प्रतिपल बाह्य तरगे उसमे समाविष्ट हो रही है और तरगे उससे निकलकर बाह्य मे विलीन हो रही है। और, इन सारे सत्यो से आगे की सत्यता यह है कि मनुष्य अल्पज्ञ है, अनजान है। हम बहुत कम जान सकते है।

यह झूठ है कि गुलाब है भी, यह झूठ है कि गुलाब लाल है, यह झूठ है कि लाल रग होता भी है और हम आदमी है, झूठ है—महज इतने से कि हमारी आखे और अधिक समर्थ हो जायँ। परन्तु, लाख-लाख धन्यवाद है उसका, जिसने हमारी आँखे बनायी, अनुभूतियो के एक छोटे-से दायरे मे बाँध दिया, हमे जीवन दिया, रग भरा, प्यार भरा। एक बच्ची खेलती है। माँ से पूछती है, उसकी मुट्ठी मे क्या है और माँ के नही बूझने पर खिलखिला के हँस देती है। लाख-लाख शुक्रिया है उसका, जिसने माँ की मुट्ठियो के अन्दर झाँकने की क्षमता और शक्ति नही दी।

दूसरो की योग्यता की तुलना मे अपने को क्यो रखा जाय ? आवश्यक तो यह है कि अपने हृदय ओर मस्तिष्क के आन्तरिक एव आधारभूत या मौलिक गुणो अथवा योग्यताओ के अनुरूप ही आवश्यकता-पूर्त्ति या प्रतिपादन की प्रत्याशा करे । न तो शक्ति-सत्ता, यश-प्रतिष्ठा की प्राप्ति मे प्रतियोगिता के विचार पनपने चाहिये और न आदमी से आदमी को हानि या हिसा का भय ही रहना चाहिये । अपराध को रोग माना जाना चाहिये, न कि जान-बूझकर की गयी दुष्टता या उद्दण्डता । अपराध को रोग करार देने की सामाजिक धारणा (विचारणा) से अपराधियो मे सज्जनता का समावेश होगा । वह अपने को किसी माध्य अथवा असाध्य बीमारी से पीडित बीमार की तरह ही मानने लगेगा । उसका अह अपने को एक अपराधी के रूप मे पाकर खुश नही होगा । न तो उसमे एक 'हीरो' की तरह स्थापित होने की सनक होगी और न वह समाज के अन्दर किसी तरह की अशान्ति, अव्यवस्था या खतरे खडा करने मे पहल या पेशकदमी ही करेगा । वह समाज को अपने चिकित्सक की तरह, चारासाज की तरह स्वीकार करेगा, तब सामाजिक नियमो (विधानो) मे औषधि (दवा) के गुण चाहिए ! (तु० विनोबाजी (1960) तथा श्रीजयप्रकाश नारायणजी (1972) के समक्ष (आगे) चम्बल घाटियो के डाकुओं का हथियार डालना—विश्व की एक मार्मिक अतुलनीय घटना—कि जैसा 'न भूतो न भविष्यति' ।) ('टॉरचर डिबेसेज दि टॉरचरर मोर दैन दि टॉरचर्ड' ।)

मे, डॉ० श्री , सरकारी आवास, ए/३ बन्दर-बगीचा, पटना-१, मे रहता हूँ, तो दोस्तों, रिश्तेदारो ओर मरीजो के लिए एक मखौल का दिलचस्प मौका मिला हुआ है । 'डाक्टर साहब ! भला आप जिस मुहल्ले मे रहते है, उसका नाम 'बन्दर-बगीचा' क्यो दे दिया गया है ?' और यह 'हमदर्द' सवाल इतने 'बेलौस-पन' के साथ पूछा जाता है कि प्रश्नकर्त्ता के होठो पर उभरती हुई मुस्कान भी अपनी चुस्त चालाकी को दाद दिये बिना रह नही पाती ! 'चूँकि बहुतेरे बन्दर मेरे मुहल्ले मे आया-जाया करते है ?' और, तब वह 'जिज्ञासा' की दबी हँसी खिलखिला कर फूट पडती है ! हँसी का फोकापइयाँ खुलने-खिलने लगता है और फव्वारा छूटने लगता है । लेकिन, उन बदमाशो को क्या किया जाय, जो चिढाने के लिये ख्वाह-म-ख्वाह जान-बूझकर लिफाफे पर गलत पता लिखते है और डाक मे चीठी (चिट्ठी) डाल देने के बाद मौज से फलित (परिणमित) नजारे की टोह मे बैठे रहते है, जैसे आसमान से तारे तोड लाये हो, जैसे मगल-ग्रह की विजयिनी यात्रा से लौटकर तनिक सुस्ता रहे हो, जैसे बसी फेककर इतमीनान से मछली पकड रहे हो ! डाकिये भी कोई कम बदतमीज नही होते । लिफाफो को आस-पडोस (पास-पडोस) मे दिखलाते चलते है—'यह चीठी (चिट्ठी) डॉक्टर-साहब की ही तो है ?' जैसे उनको मालूम ही न हो ! लोग भी आजकल ऐसे 'प्रवीण' हो गये है कि शब्दो को हेर-फेर कर अजीबोगरीब और अजब-गजब पते, न जाने कैसे निकाल ही लेते है ! 'डॉक्टर श्रीनिवास, बन्दर-का-बगीचा, पटना-१' देखी आपने विचक्षण शरारत ! 'डॉक्टर श्रीनिवास, बन्दर या बगीचा, पटना-१' और 'या' ऐसा छपा रहता है जैसे 'का' के बदले सहमा-सहमा-सा बडी गलती से, वहाँ आ

टपका हो ! जैसे बे-मौके झाँकने की 'जुर्रत', शोहदगी, अनजाने मे हो गयी हो ! और उस बेवकूफ को क्या कहा जाय, जिसने परसो एक लिफाफे पर लिखकर भेजा—'डॉक्टर बन्दरनिवास, क्वार्टर ए/३, पटना-१' ! मजमून खत का सिफारिशी ! और लेटर रजिस्टर्ड ! अब बतलाइये, आदमी क्या करे ! और, गुस्ताख और शरीर डाकिया जहाँ-तहाँ 'डॉ० बन्दरनिवास' को खोजता चला कि लोग महीनो चुटकियाँ लेते रहे ! और, एक लुच्चे-लफगे ने तो यहाँतक लिख दिया था कि 'डॉक्टर बन्दरश्रीनिवास, ए/३ बगीचा, पटना-१' कि जिसमे गलत एड्रेस के बहाने खूब छानबीन और तलाशी हो, और शोहरत हो, बात फैले ! ऐसे तो है हमारे दुष्ट मरीज और 'अपने' दोस्त (अजीज) !

और एक डाकिया है भवनाथपुर (नाथनगर, भागलपुर) की तरफ का, जहाँ किशोरी का नैहर है। किशोरी को दीदी कहता है और है बडा जुल्मी। तहजीब से कोई मतलब नही। है तो मरियल ठेगना ठूँठ। लेकिन, रग-रग मे शोखी भरी पडी है। किशोरी, विपिन, विद्या और ज्योति, सब उस आवारे को उसकाते-बरगलाते-चढाते रहते है। और, वह घुग्घू, उल्लू का पट्ठा, मेरा काफिया तग किये हुए है। लाख समझाया-बुझाया उस जालिम को, लेकिन कौन सुनता है। एक दिन मैने आँखे लाल-पीली की, तो बत्तीसो से हँसने लगा। 'डाक्टर श्रीनिवास, बन्दर-बगीचा, पटना-१' मे से उस आफत के परकाला, ममाला, ने आरम्भिक अल्पविराम (कॉमा) को और 'बगीचा' शब्द को स्वय मिटाया था ! ऐसा ढीठ और गुस्ताख हो गया था ! और, वह रि-साला का घुडसवार अश्वमेध के घोडे की तरह अपनी करतूत लिये यत्र-तत्र बैरन लिफाफा दिखाता पूछता चला कि जानते है, यह डॉक्टर साहब कहाँ रहते है ? जब डॉटा, फटकारा, त्योरियाँ बदली, तो सा— बाते बनाने लगा—'साहब ! माना कि आप यहाँ बहुत दिनो से रहते है, पर उससे क्या हुआ ? नये लोगो (आगन्तुको) को पटना मे बसने पर कोई प्रतिबन्ध है ? कोई रोक-टोक है ? कोई १४४ लगा हुआ है ?' अब आप ही कहिये, यह भी कोई बात हुई ! जाहिर है कि वह फगठी ऊलजलूल बकवास सिर्फ उनकी दिलजोई के लिए थी, पर अपनी तो मिट्टी पलीद हो रही थी ! वह सा— मेरी खिल्ली उडवाता चल रहा था। मेरे गाँव का हरकारा (डाकिया) होता, तो कतई ऐसा नही करता। यह भी कोई मजाक है। वाह रे दिल्लगीबाज। ह—मी ने बे-तरह हैरान कर रखा है। मेरे तो नाक मे दम ला दिया। उस बे-रहम ने।

"गजब की कारसाजी आय है आफत की पुडिया को।
शरारत खुद करे है औ हमे तोहमत लगा दे है ।।
मेरी बर्बादियो का डाल कर इलजाम दुनिया पर।
वह जालिम अपने मुँह पर हाथ रख कर मुस्कुरा दे है ।।
कलेजा थाम कर सुनते है, लेकिन सुन ही लेते है।
मेरे यारो को मेरे गम की तल्खी भी मजा दे है ।।"

(कलीम आजिज)

और आज, जब मैं अस्पताल से लौटा, तब देखता हूँ कि दीदी के दादा मेरे बरामदे की सीढी के पास बैठे कॉफी पी रहे है। और, जले पर यूँ नमक छिडक रहे है ! मैं

आगे बढा, तो कॉफी का प्याला सरका कर खडे हो गये । रास्ता छेक कर बोले, 'भाई साहब ! आपके पते से दो लिफाफे है, री-डाइरेक्ट होकर आये है ।' 'री-डाइरेक्ट' का नाम सुनते ही मै भॉप गया कि पाजी-मछन्दर फिर कुछ करने पर तुला हुआ है । मै रुक गया । देह मे आग-सी लग गयी । वह लिफाफे खोजने लगा । पॉच मिनट से पन्द्रह मिनट हो गये ! पन्द्रह से बीस ! और, तब कही जाकर उस बॅगटे-लुॅगाडे को लिफाफे मिले । एक लिफाफा परमानन्द ठाकुर ने और दूसरा लिफाफा कृष्णविहारी राय ने री-डाइरेक्ट किये थे । और जानते है ? यह सब बस उसी की काली करतूत थी । लिफाफे पर विकृत नाम था मेरा ओर पता मे 'द्वारा' समधी साहबो का । मै पटना मे, और लिफाफे भीमा (पूर्णिया) और डुमरॉव (शाहाबाद) से लौटे आ रहे थे । और, जरा नाम पर गौर फरमाइये—एक लिफाफे पर 'डाक्टर श्रीनिवास, बन्दर, बगीचा ।' लिखा हुआ था और दूसरे पर 'डॉक्टर श्रीनिवास, बन्दर मे बगीचा' ।

बन्द लिफाफो पर चपडे की सील-मुहर लगी थी, और भीतर लिफाफे खाली के खाली थे । ऐसी हरकत का क्या कहना । ओर, वह मुस्करा रहा था ।

आज पहली बार गौर किया, तो देखा उस फण्टूस-फटेहाल गरीब की गीली पलको की ओट से स्नेह टुकुर-टुकुर ताक रहा था । पुरनम प्यार के परेवे पॉखे फडफडा रहे थे । निश्छल श्रद्धा की हिलोरे हौले-हौले उठ रही थी ।

मैने बनावटी रोष मे भौहे टेढी करके कहा—'ठीक है, बैठिये । मै अभी आपको खासा सबक सिखाता हूँ ।'

दस मिनटो के बाद मै खुद प्लेट मे उसके लिये नाश्ता लेकर बाहर निकला । लेकिन, तबतक वह शेखचिल्ली चला गया था अपनी बीट पर चिट्ठियॉ बॉटने । अपने कन्धे पर लदनी लादे हुए ।

दीदी के सिवान उसका दुनिया मे कोई अपना था भी तो नही !

जो भी हो, वह था खॉटी बदजात । ओसारे की सीढी पर एक पोस्टकार्ड डाल गया था । पता ?—'डॉ० श्रीनिवास, हृदय-रोग । बन्दर—पटना ।' और, फाटक पर एक काफी बडा लाल रग का लिफाफा खोस कर छोड गया था । जैसे कचहरी का सम्मन हो या नीलाम की नोटिस । जैसे खतरे की झण्डी हो, जो दूर से ही चेतावनी दे रही हो, मुहल्ले भर को । और उस लिफाफे पर मौलिकता का मखौल उडाया गया था—'डॉ० बन्दर-बगीचा, श्री-निवास, पटना-१' ।

सा—— ! ह—— मी ! उल्लू का पट्ठा ! निठल्लू ! निखट्टू !!!

जैसे जीवन एक चलनी (छलनी) हो, एक महान् और बृहद्, और हम उसमे (से) (के द्वारा) चाले और छाने जा रहे हो । मानो जिन्दगी एक झँझरा हो और हम बुनिया की भॉति उसमे से छनकर टपक रहे हो, जैसे जीवन एक विस्तृत डगरा या सूप हो ओर हम फटके या ओले जा रहे हो, कि जिन्दगी एक कसौटी हो और हम कसे जा रहे हो, कि जीवन एक स्राविन्त्र (परकोलेटर) हो और हम चूते (रिसाते) जा रहे हो, मानो सृष्टि एक फिलटर हो और हम निस्यन्दित (फिलटर्ड) हो रहे हो, मानो जीवन-मरण की विभिन्न आकृति और आकारवाले (के) (छिद्रो) छेदो से हम

आ-जा रहे हो। किसी मे हम अँटते है, किसी मे अटक जाते है और किसी से भाग आते है और किसी से पिचते-रगडाते निकाले जाते है। अपने अनुरूप छिद्र अगर अवरुद्ध रहे, तो यातायात मे बाधा पडती है और बाट मे ठहरकर इन्तजार करना पडता है, किसी को कुछ (चन्द) दिनो तक, किसी को कयामत के प्रहर तक। (जैसे) फाटक खुलकर बन्द हो गया (और) चाभी दाब (दबा) (कर) दरवान सो गया। सिर धुनता इन्सान रह गया।

'डाक्टर !' उसने कहा था, 'तुम मुझे इतना-भर बतला दो कि मेरा पुनर्जन्म होगा या नही ?'

मै नही जानता। न नचिकेता वाला मौका मयस्सर हुआ। न यमराज से साक्षात्कार का सौभाग्य हो सका। दो-तीन बार मौत के दरवाजे को बेशक खटखटा कर लौट आया हूँ। मृत्यु के जबडो के बीच से थूक दिया गया हूँ।

इस सवाल का जवाब वही दे सकता है, जो मृत्यु के क्षणो से लेकर अपने पुनर्जन्म के बाद तक पूर्ण सचेत और जागरूक और सज्ञान रह पाया हो। जिसने अपनी मृत्यु आप देखी हो। जो मरने के बाद अपनी याद न खोया हो। जो माँ के गर्भ मे जागता रहा हो और जिसका जन्म और शैशव और बाल्यावस्था सभी उसकी ज्ञानी 'आँखो' और चैतन्य मेधा के सामने घटते आये हो। जिसने निद्रा-विस्मृति मे नही, बल्कि पूर्ण अभिज्ञा और बोध के साथ यात्रा की हो। मृत्यु से जन्म तक जिसने झपकी भी न ली हो और जो प्रतिपल सावधान, चौकन्ना, सतर्क और चौकस रहा हो। उस खानाबदोश (रोमणी, यायावर, कजड, जिप्सी) की तरह जो यात्रा-पर्यन्त कभी अकेला न चला हो और जिसके साथी गवाही, साक्षी और प्रमाण-भी देने को सतत तैयार हो और समाज के द्वारा 'योग्य' और 'विश्वस्त' माने जा सके।

खेद है कि महायात्रा (महाप्रयाण) पर इन्सान अकेला जाता है, लौटता भी है अकेला ही। पडाव, मोटेल, होटेल इत्यादि पर ठहरता आया होगा, लेकिन उनका पता नही लाया। किसको सम्बोधित कर पत्र लिखा जाय, कहाँ से सूचना माँग ली जाय। जिसके पास न टिकट है, न सबूत, उस भ्रान्ति-विस्मृति मे पैर घसीटते आवारा का क्या विश्वास, उसकी बात का क्या ठिकाना। क्या भरोसा किया जाय उसके बकवास पर, उसकी अनर्गलता का ?

मेरे मित्र ! डरो मत, परवाह भी न (मत) करो।

अपने डॉक्टरी जीवनकाल मे मैने अनेक बार आदमी को जन्म लेते और मर जाते देखा है।

मृत्यु एक विस्मृति है, एक निद्रा। मरने के पहले चाहे कष्ट झेलना पडा हो। चाहे मृत्यु के भय ने सताया हो। जी घबडाया हो। लेकिन मौत की घटना (क्रिया) अपने-आप मे क्षणिक और आसान है। जैसे गाढी नीद मे एक गेसू (केश) बाल का टूट जाना। जूडे से फूल का झर जाना। लहठी का चनक जाना।

पुनर्जन्म मे सगति है। और, वह तर्क-सगत है। उसको सिद्ध करने के लिये

चार तरह के प्रमाण उपलब्ध है। कुछेक आधुनिक भौतिक-रासायनिक जैविक विज्ञान पर आधृत है। कुछ के लिए शास्त्र और ऋषि प्रमाण है। कुछ सबूत मनोवैज्ञानिको ने पेश किये है, जो उन्हे ऐसे लोगो से प्राप्त हुए, जिनमे पूर्व-जन्म की स्मृति बरकरार रही। कुछ सबूत मृतात्माओ के साथ सम्पर्क-स्थापना के माध्यम से भी मिल (प्राप्त हो) सके।

मेरे प्यारे मित्र! मै एक कोरा आदमी हूँ। आपका अपना, लेकिन मात्र एक अदना डॉक्टर। मै न सभी घाटो पर जा सकूगा, न आपको सब घाटो का पानी पिलाना पसन्द करूँगा (चाहूँगा)। मेरा निद्राचारी जीवात्मा स्वप्न-भ्रमण से अभी (वर्त्तमान जीवन) लौटा है। मेरी शक्ल-सूरत स्वर्गीय पूज्य पिताजी से बहुत कुछ मिलती है। मेरे नाक-नक्शे पर माँ की आकृति की भी एक सुस्पष्ट और गहरी छाप है। मै अपने प्रात स्मरणीय नानाजी बाबू (श्री सरयूप्रसाद नारायण सिहजी) के जैसा ललाट और ठीक उन्ही के जैसा पैर लेकर जनमा हूँ। यहाँ तक कि मेरे शरीर पर के कई तिल (तिलवे) उसी ठिकाने (स्थान-विशेष) पर है, जैसे मेरी माँ के शरीर-भाग पर। मै सोचता हूँ कि मै पहले भी किसी रूप मे कही था। जहाँ से सृष्टि मुझे खोज-ढूँढ कर अपनी रजामन्दी से, अपनी खुशी, ले आयी और एक साँचा, एक उपकरण, के जरिये चुपचाप, अनचोके मे, मुझे इस पृथ्वी पर फक कर चल दी। मै हैरत मे हूँ कि उसने कैसी बारीकी से काम किया कि मै भौंचक रह गया और मुझे (मुझी को) कुछ भी पता न चला। इस हाथ की सफाई की दाद न दी जाय, तो और क्या किया जाय ?

आप जरा सोचिये तो। अगर मेरा पुनर्जन्म होना निश्चित होगा भी, तो मै किस रूप मे जन्म लूँगा ?

पाँच फीट साढे सात इच लम्बा (171 सेण्टीमीटर), एक-सौ पचास पाउण्ड (68 किलोग्राम) वजन का, आदमी। काला गोल उल्लूई-चश्मा लगाये छाँह-धूप के केश-पुज से अभिषिक्त (क्राउण्ड) जैसे नाविक ने सुवर्ण-तीरो से भरा तरकस आबनूस की ठुड्डी (चिबुक) से ग्रीष्म की भरी दोपहरी (दुपहरिया) मे, करीने से लटका दिया हो। धवल उजला सिरीनिओ ओर स्वच्छ पनटामा, बाटा का हण्टर शू—जैसे काली मिट्टी पर दूब बिछ गयी हो—और बाई कलाई पर राजती, भाई नवल-किशोर सिह, एम० पी० द्वारा प्रदत्त, 'गागी-जमुनी' घडी। अगर ऐसी वेष-भूषा के साथ पुनर्जन्म लेना पडे, तब तो एक जटिल परिस्थिति आ खडी होगी। उसके लिए एक मानवी-माँ नही, बल्कि एक बृहदाकार दानवी राक्षसी माँ को खोज निकालना पडेगा, जो अपनी कोख मे मुझे (को) केवल नौ महीने तक नही, बल्कि शायद नौ वर्ष तक रख कर, जनेगी। और, उसके बाद भी वही 'पुराना' डॉक्टर जन्म लेगा, जिसमे किसी को कोई दिलचस्पी नही रह जायगी और जो 'क्रान्ति' की तरह जीवन्त नही, वरन् 'शान्ति' की तरह सर्द और मुर्दा होगा।

जाहिर है कि मेरे पुनर्जन्म लेने का यन्त्रयोग (तन्त्र, प्रक्रम, मेकनिज्म, सिस्टम, प्रोसेस) बस एक ही है। मुझे पुन पैदा होने (फिर से पैदाइश पाने) के लिये सबसे

पहले मरना पडेगा और तब किसी माँ के पेट (गर्भ) मे जाइगोट (युग्मज, युक्ता) कोष बनकर ही अपना नया जीवन प्रारम्भ करना पडेगा। 'पुनर्जन्म' ही क्यो, मै जब भी जनमा हूँ, बराबर एक युग्मक के रूप मे ही जनमा हूँ और सदा उसी एक समर्थ, सर्वागीण, चमत्कृत, रहस्यपूर्ण कोष का विकसित रूपान्तर रहा हूँ। भविष्य मे भी कभी अगर नया जन्म पाऊँगा, तो वैसी ही परिस्थिति मे, उसी राम्ते, उसी दकियानूसी अटल विधानान्तर्गत, वही एक-कोषीय युग्मज बनकर। और सुनिये ! आपकी भी वही दशा होगी, वही अजाम। आपका पुनर्जन्म यदि होगा, तो आपको भी एक कोष एक युग्मज के ही रूप मे आना पडेगा। कोई दूसरा तरीका नही है। आप कुछ कर भी नही सकते। कोइ चारा नही है। आपकी असमर्थता है, आपके बूते की बात नही।

माता और पिता ने जिस रूप मे (युक्ता-कोष, जाइगोट) अपना जन्म पाया था और अपनी इहलीला (वर्त्तमान पार्थिव जीवन) आरम्भ की थी, वही रूप अपनी सन्तान (बेटे-बेटियो) को सौपकर उन्होने एक नये, नूतन, नवीन परिवेश मे अपना पुनर्जन्म पाया। जिन क्रोमोसोम्स (केन्द्रक) ने जनक की सृष्टि की और जनक बन गये, जिन क्रोमोसोम्स ने जननी की रचना की ओर जननी बन गये, ठीक वे ही क्रोमोसोम्स जब जनक-जननी ने अपने मे से निकालकर अपने बच्चे (अपना बच्चा युग्मज) की सरचना की, तो क्या जनक का और जननी का पुनर्जन्म नही हुआ ? जनक-जननी और कर भी क्या सकते थे ! उनके पुनर्जन्म का यही एक रास्ता ही था। जिस तरह जनक-जननी के साथ गुजरा था, ठीक उसी तरह उनका अपना बाल स्वरूप, उनका बच्चा युग्मज, विकसित होता हुआ उनका वशज बन जायगा।

फेनोटाइप-जेनोटाइप, शुक्राणु-अण्डाणु, गैमीट्स के क्रोमोसोम्स और कोषीय-द्रव्य—और एक नया आदमी बन गया—ओर उस आदमी ने अपने को अपनी सन्तति (सन्तान) मे बदल दिया (डाला)—ओर, इस तरह वह आदमी पुन जीवित हो उठा, पुनर्जन्म पाया। जैसे रात की नीद त्याग कर जब भोर मे बाल-रवि क्षितिज पर उगा, तब जीवन का एक नया वर्क खुला। बस। और क्या ? एक दीपक ने दूसरा चिराग (दीया) जला दिया।

कहने का अभिप्राय (मतलब) यह है कि आदमी अपने इसी प्राथमिक अथवा 'मूल' (युग्मज रूप मे) अपना जन्म पाता है। और, वह अपनी यही दौलत विरासत मे अपनी औलाद के सुपुर्द कर अपनी ही सन्तति के रूप मे अपना नया पुनर्जन्म पाता है। आदमी (युग्मज-रूपी) (जनक और जननी) अपना औलाद (युग्मज-रूपी) (पुत्र और पुत्रियाँ) के रूप मे फिर से जन्म लेता है। जीर्ण (प्राचीन) युग्मज (माँ और बाप का क्रोमोसोम इत्यादि) नव (नवीन) युग्मज (सन्तान का क्रोमोसोम इत्यादि) मे प्रकट होता है।

और, इतना ही भर और ऐसा ही हो भी सकता है। इससे 'अधिक' की अपेक्षा भी नही की जा सकती। क्योकि, प्राथमिक जन्म के पश्चात् युग्मज का सिर्फ विकास होता है और विकसित होता हुआ भ्रूण नियत समय पर शिशु (बन जाता है)

की सज्ञा पाता है। ऐसा ही माता और पिता के साथ हुआ था, ऐसा ही पुत्र और पुत्रियो के साथ होगा।

मनुष्य अपने प्राथमिक (मूल) रूपाकृति मे ही जन्म ले सकता है और वही से उसके विकास की शुरूआत (इतिश्री) भी होती है।

जैसा कि मै ऊपर लिख आया हूँ, दूसरा कोई उपाय ही (भी) नही है। जन्म लेना है, तो ऐसे ही लेना होगा।

लेकिन, मित्र ! सृष्टि का यह 'उपाय', यह तरीका, बुरा है क्या ? सोच-विचार कर बोलना।

मृत्यूपरान्त शरीर मिट्टी मे मिल जायगा। जल जायगा या सड-गल, सूख जायगा या फासिल या ममी बना पडा रहेगा। अथवा किसी प्राणी का ग्रास बनकर पच जायगा। फिर, ऐसे शरीर का पुनरागमन कैसे हो सकता है।

चार्वाक ने बिलकुल ठीक कहा था कि 'भस्मीभूतशरीरस्य पुनरागमन कुत ।'

जो देह जलकर खाक (राख) बन गयी, वह भला क्योकर लौटने लगी ? वह खाद बन सकती है। पचभूत मे मिलकर विलीन हो जा सकती है। लेकिन लौटकर नही आ सकती।

लेकिन, चार्वाक के जमाने मे समसामयिक (समकालीन, युगपद्, काण्टेम्परेरी) वैज्ञानिक जानकारी उतनी (वैसी) नही थी, जैसी (जितनी) अब है। डार्विन, मैण्डेल आदि का प्रादुर्भाव हुआ नही था, कोष और जाइगोट का पता नही था, शुक्राणु, अण्डाणु, निषेचन इत्यादि से चार्वाक अनभिज्ञ थे। उस पार्थिव काया के 'भस्मीभूत' होने के अलावा उसकी और कोई दूसरी गति नही जानते थे। युग्मज के रूप मे उसके पुनर्निर्माण की बात वह सोच भी नही सकते थे। चार्वाक का यह कहना (प्रतिपादन, प्रस्तुति) ठीक ही था कि जो काया जलकर भस्म हो गयी, उसका पुनर्जन्म कैसे मुमकिन हो सकता है ? वह क्या जानते थे (जाने) कि अपनी 'मृत्यु' के पहले ही काया जन्म ले चुकी थी। कि जनक-जननी की युगल जोडी युग्मज के 23—जोडे समानधर्मा (होमोलोगस)—क्रोमोसोम्स-पुज के रूप मे अवतार ले चुकी।

परन्तु, मेरे प्यारे मित्र ! 'हम' और 'तुम' क्या सिर्फ 'शरीर' है ? जितने लोग निस्सन्तान मर जाते है, कितनो का 'वश' नही चलता। जैसे सृष्टि की धारा वहाँ पहुँचकर रुक जाती हो।

तुम तो जानते ही हो कि किसी वस्तु-स्थिति का 'नाश' नही होता, सिर्फ 'परिवर्त्तन' होता है। इसी अकाट्य और अटल विधान के अन्तर्गत मनुष्य का 'नाश' नही होता, उसका 'परिवर्त्तन' भर हो जाता है।

आदमी के भीतर तीन तत्त्व है

१ पार्थिव काया,
२ अन्त करण (मानस) (सस्कार) (इच्छाएँ) } =जीवात्मा
३ आत्मा

आत्मा अमर और अजन्मा है। वह लाइफ-डिवाइन या डिवाइन-लाइफ-फोर्स है।

उसे एक दैवी-जीवन-शक्ति (ऊर्जा) कह लीजिये। वह सचेत और ज्ञानवान् है। [तु०, ग्रामोफोन रेकार्ड करता है (कर सकता है) ज्ञान-गम्भीर बाते, लेकिन समझता कुछ भी नही है। कम्प्यूटर 'समझ' कर भी नही 'समझता'। मस्तिष्क समझता है और समझदारी की बाते (डीग) हाँकता है।]

आपका आत्मा भी अमर, अजन्मा, अमिट है। उसकी मृत्यु नही होती। न हुई, न होगी। विद्युत् को 'मरते' किसी ने देखा है? 'शब्द-ब्रह्म' को?

रही 'अन्त करण' की बात। तो मै उसके विषय मे आपको राय दूँगा कि आप दो किताबो को पढिये—(१) 'मै कहाँ हूँ?' ओर (२) 'इम कगार से उस कछार तक'। वहाँ आपको अन्त करण की व्याख्या भी मिलेगी ओर तत्सम्बद्ध पुनर्जन्म की भी। उन पुस्तको मे जो कुछ लिखा है, उसको यहाँ उद्धृत करने से क्या फायदा, जबकि आप उन्हे स्वय पढ ले सकते है। पता नही, आपको हिन्दी से शौक भी है या नही। कही ऐसा तो नही कि आप हिन्दी की किताबे सिद्धान्तत पढते ही नही। ठीक ही करते है। वाजिब बात है। एक तो 'हिन्दी' मे लिखी हुई किताब, दूसरे साहित्य मे दर्शन का जहर और दर्शन मे साहित्य का कहर, भला कोई भला-सा आदमी कैसे उसके पास फटक सकता है। मर नही जायगा ठीक, लेकिन उसे झुलसने से कौन बचायगा? एक तो तीती नीम और उसपर चढी करैली (या 'गुरुच', सदगिलोय अथवा अफीम, अफीम का लेप!)।

शास्त्रो मे बहुतेरी बाते सूत्र-रूप मे लिख दी गयी है। उसे मैने 'सूत्र-दोष' कहा है। जहाँ बात जरा जटिल हो, मसले मुश्किल के हो, वहाँ 'सूत्र' का व्यवहार (उपयोग) जटिलता को सघन और 'बोध' को गहन बना देता है। बुद्धि कराहने लगती है। कुछ हाथ नही लगता (आता)। तर्क-वितर्क की काली घटाओ के बीच न चपला चमकती है, न शीतल वर्षा की बौछार पड पाती है। न सोधी सुगन्ध मिलती है, न राह दीखती है। एक 'आवृत्ति-दोष' भी है। बार-बार उसी बात को दुहराना। अनावश्यक बारम्बारिता, कि कान पक जायँ, जी घबराने लगे। पलके झपने लगे। बुखार लग (आ) जाय। लेकिन, जहाँ बात जरा अच्छी (जरूरी) हो, पहलू अनेक हो, वहाँ दसो दिशाओ मे रोशनी जलनी चाहिये। सहर तक चिराग जलना चाहिये, चाहे बार-बार बत्ती क्यो न उसकानी पडे, बार-बार स्नेह क्यो न उडेलना पडे। तीरगीय वख्त हो, तो बार-बार शमा जलाने की खता ओर जुर्रत करनी ही पडती है। और फिर, 'तेल जले तेली का'।

हाँ, तो मेरे प्यारे मित्र! आप परेशान न हो। मै आपसे कुछ कह रहा था न? क्या कह रहा था? अब देखिये, यह एक तीसरा अवगुण है, जिसका नाम है 'गुमराह हो जाना'। रास्ते से भटक जाना। बहक जाना। 'तरी जर्जरी फँस पडी, खेवनहार गँवार। खेवनहार गँवार ताही पै पवन झँकोरे।' साहित्य भी क्या बला है! 'अच्छी सूरत भी क्या बुरी शै है, जिसने डाली बुरी नजर डाली।' साहित्य 'बुझाने' के लिये है, 'भडकाने' के लिये नही। साहित्य के कैनवस पर खिचे-तुले बिम्ब सौन्दर्य-बोध के निमित्त है, न कि उबकाई पैदा करने और काई जमाने के लिये। उपमाएँ

समझाने के लिये है, न कि उलझाने के लिये, सत्य साक्षात्कार के लिये है, न कि भरमाने के लिये । अरे, लीजिये । गँवार फिर मँझधार मे जा फँसा । मैं कुछ दूसरी बात न आपसे कह रहा था ? क्या कह रहा था ! क्या कह रअ ! हाँ, हाँ, ठीक, ठीक । 'पुनर्जन्म' वाली बात । तो भाई जान ! आदमी के तीन आयाम हे । तीन स्तरो पर वह जीता हे । तीनो के जुटाव ओर जमघट को जिन्दगी कहते है । उनका आपसी आकर्षण विकर्षण मे बदला नही कि जिन्दगी तीन-तेरह हो गयी । वे 'तीन आयाम' भी तीन तरह के हे—(१) जन्म-विकास-मृत्यु । (२) सत्त्व-रजस्-तमस्, (३) स्थूल काया—सूक्ष्म अन्त करण और मानस—सूक्ष्मतम ओर अव्यक्त आत्मा—विवेक ।

मानस (अन्त करण) मण्डित आत्मा = जीवात्मा ।

जीवात्मा साम्कारिक है । याने जिससे सस्कार का अम्बार लगा रखा है, 'चाह' इकट्ठी की है, हसरते और अरमान जोडे है, कर्मफल बटोरा (बिटोरा) है ।

मेरे मित्र ! आपके शरीर का पुनर्जन्म होगा । आपका (की) जीवात्मा भी फिर से जन्म लेगा । लेकिन कब, किस मानवी काया मे और किस देश मे, और किस सास्कृतिक परिवेश मे, और किस 'सरकार' के हुक्म से, यह मै नही कह सकता । कह क्या सकूँगा, मै जानता ही नही ।

प्यारे भाई ! आपकी आँखे बोझिल दीखती है । उनकी (हल्की) सुर्खी बतला रही है कि नीद का पैगाम आया है । आपने (मेरी) पूरी बात भी ध्यान (ठीक) से सुनी-समझी नही होगी । सोने-से लगे ।

अच्छा, तो अब मै चला । लम्बा सफर है । पता नही (इस जीवन मे फिर कभी आपसे) मिलना मुमकिन होगा (मुलाकात होगी भी) या नही ।

भाई जानी ! यह लो । मैने चालीस वर्षों से मय की यह बोतल बचा कर रखी थी ! तुम मेरे प्राण सरीखे (प्राण-से-भी-अधिक) प्यारे हो । चुनाचे आज तुम्हारे दरवाजे (दर पर) से पीकर ही जाऊँगा । जागो । जाग्रत । उठो । उत्तिष्ठत । बोतल खोलो । पी लो कि चैन से सो सको । पी लो कि मीठी नीद न शर्माय (आ सके) ।

भगवान् के लिए न सही, मेरी ही खातिर, लो, दो घूँट (इस गुलाबी शराब) (को) तो पी लो । लो भी ! लो, अब जाम सँभालो । बोतल रख लो ।

खुदा हाफिज !

परमात्मतत्त्व अपने गुणो से पहचाना जाता (ज्ञेय, विज्ञेय, परिज्ञेय) है । नवजात शिशु मे और मरणासन्न जरा-जीर्ण आदमी मे आसमान-जमीन का फर्क होते हुए भी वे मनुष्य कहे जाते है, सन्त और लफगे मे, नर-नारी मे, चीनी अफ्रीकी मे, रेड-इण्डियन और भारतीय मे समानताये है—तभी तो सब तबको के और विभिन्न देशो के, उम्र के लोग मनुष्य कहे जाते है । गुलाब की कितनी किस्मे है, कैक्टस (नागफणी) (सीज) की भी । अपने जातीय गुण से गुलाब गुलाब और नागफणी नागफणी कही जाती है ।

उसी तरह जीवात्मा और परमात्मा मे जातीय सम्बन्ध है ।

और, जहाँ पर भी परमात्मा के जैसे (निर्धारित) गुण प्रत्यक्ष होते है, वहाँ परमात्मा पाया जाता है, क्योकि परमात्मा-जैसे गुण या गुणोवाला परमात्मा ही हो सकता है। जो आलोकित करता है, उसी का नाम प्रकाश है। वह चाहे दिय के होठो से झरा हो, चाहे सूरज के सुवर्ण-कलश से फूटा हो, अथवा चॉद-सितारो की सूरत से छलका हो, वह चाहे ज्ञान मे से निर्झरिणी बनकर निकला हो, चाहे विवेक के द्वारा विकीर्ण हो रहा हो चाहे मन की मुराद पर हरसिगार के फूल-सा छीट दिया गया हो।

गजल गुलाब, गीत वन चम्पक, कुन्दन कुन्द भजन है।
बकुल बिहाग, मल्लिका ठुमरी हरसिगार इमन है॥
श्लोक कोकनद, कथा सुगन्धा, रस-रचना वासन्ती।
उपन्यास धाराकदम्ब नाटिका मुग्ध मदयन्ती॥

(के० ना० मि० 'प्रभात')

धर्म की ध्वजा—छोटी (नन्ही-सी) हो, या बडी (निशान)—उसके नीचे धर्म ही पाया जायगा, (अधर्म) पाप नही।

जिस किसी मे न्यूनाश मे भी ईश्वरोचित गुण प्रस्फुटित हो रहे हो, वही खोजना, परमात्मा निश्चय ही वहाँ होगा। अगर मलयगिरि चन्दन की सुगन्ध मिल रही हो, तो टोह मे निकल जाना। उसी जगल मे चन्दन के पेड मिलेगे। भाटियाली की आवाज आ रही है, तो नदी ओर नाविक कही दूर होगे क्या ?

भगवान् पर जिन गुणो को आपने आरोपित कर रखा है, उन्ही, गुणो की कमन्द का सहारा लेकर चढिये। वे गुण ऐसे ठोस और मजबूत है कि प्रगति के लिये उनमे कोई एक भी यथेष्ट पर्याप्त, काफी, है बशर्त्ते उसका विकास होता (हुआ) रहे।

निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त है। वह मूल तत्त्व है, आद्य सत्ता है, मौलिक विधान है। सृष्टि का उद्गम-स्रोत है। समष्टि का आधार है। उसी एक परम ब्रह्म का विस्तार है, जो है, जो था, जो रहेगा। लीलाओ का रगमच, वह लीलाओ से निर्लिप्त साक्षी-भाव है, स्थूल और सूक्ष्म के परे वह राम सर्वव्यापी है। न वह कण है, न लहर, न मैटर है, न एनर्जी (ऊर्जा), न अणु है, न परमाणु, न मन है न चित्, न बुद्धि। वह बस 'है' और उसमे (से) सब कुछ 'हो रहा है'। सृष्टि और घटनाओ का शाश्वत घट वह घट-घट मे व्याप रहा है।

निर्गुण ब्रह्म सिर्फ ध्यान और समाधि के द्वारा अनुभूत होता है।

Logical interpretation of observed phenomena and analytical thinking and re-thinking, concentration and meditation With unshakable faith and belief And undaunted courage and perseverance

परमब्रह्म न सगुण है, न निर्गुण, और वह सगुण भी है और निर्गुण भी।

Neither Light nor Shade nor yet the presence or absence of Light nor the absence or presence of Shade

He is beyond the Gunas—beyond the presence (सगुण) and beyond the absence (निर्गुण) of the Gunas (Qualities or Qualifications or Attributes)

Multi-multi-multi facted, He is facet-less, and beyond anything which could be conceived as 'facet' To be 'निर्गुण' is also a 'गुण' And God, the Unmanifest, is thus Attributeless and hence neither 'सगुण' nor for that very reason 'निर्गुण'

परमात्मा ने सृष्टि क्यो रची ?—अब बतलाइये, यह भी कोई सवाल है। हम अपने मन की बात तो जानते ही नही (फ्रॉयड), अपने को भी नही जानते, छोटी-छोटी बातो का पता लगाने मे सारी जिन्दगी अथक परिश्रम करते-करते समाप्त हो जाती है।

भगवान् के मन और 'मूड' का पता कैसे चले ?

फिर भी, आदमी अपनी राय तो दे ही सकता है। भारतवर्ष मे तो राय जाहिर (व्यक्त) करने के लिए वह शायद स्वतन्त्र भी है, चाहे मतदान के लिये स्वच्छन्द नही भी छोडा गया हो।

आत्माओ ने परमात्मा का सत्य शिव-सुन्दरम् रूप देखा होगा। वे सारी विभूतियाँ ! अपार शक्तियाँ ! आनन्द के सागर का लहराना ! सत्य का सौन्दर्य बिखेरना ! उस कल्याण के शान्त वातावरण मे प्रेम का मँडराना ! घिर-घुमड जाना ! छा-छलक जाना !

आत्मा ने लालच-भरी निगाह से परमात्मा को देखा होगा और प्रार्थना की होगी, मुझे अपने जैसा बना लो। मै भी परमात्मा बनूँगा, आत्मा बोला होगा। हम भी परमात्मा बनेंगे, सभी आत्मा ने कहा होगा। उन्होने प्रार्थनाएँ की होगी, गिडगिडाया होगा।

'एवमस्तु !' परमात्मा ने कहा होगा। और सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ होगा। पृथ्वी बनी होगी। पृथ्वी,—कर्मभूमि, पाठशाला, अखाडा। पृथ्वी पर जाना था। पार्थिव काया बनी। परमात्मा के सान्निध्य से कुछ दिन के लिए अलग होना था। त्रिगुणात्मक माया बनी। ससार मे रहना था, सीखना-पढना जानना था। इन्द्रियाँ बनी। परमात्मा को भूलना भी नही था। मानस बना। काजल की कोठरी मे प्रकाश की याद न खो जाय। स्मृति बनी। और इस तरह, यथोचित उपकरणो और जिरह-बख्तरो से सुसज्जित होकर जीवात्मा पृथ्वी पर उतरा। जैसे नील आर्मस्ट्रौग चन्द्र-तल पर उतरा था। जहाँ जाना था, उसके अनुरूप सवारी पर। काया। जहाँ रहना था, उसके लायक वस्त्रादि के साथ। बहि करण और अन्त करण। जाना था पृथ्वी पर। सीखना-पढना जानना था। परमात्मा बनने की योग्यता प्राप्त करनी थी। त्रिगुणी माया का स्कूल बना। शिक्षक के आसन पर विवेक बैठा।

नारद के उत्थान के लिये माया की नगरी का निर्माण हुआ।

बौआ (ताण्डव आइन्स्टाइन समदर्शी) ने कहा,—'बापी ! मैं भी डाक्टर बनूँगा।'

मैंने मेडिकल कॉलेज मे उसका दाखिला करवा दिया। दूसरा क्या उपाय था उसको डॉक्टर बनाने का ?

बनना है वेदव्यास और हमने भट्ठा (खल्ली, चॉक) पकडा है। 'राम गति देहु सुमति' लिखने अभी-अभी बैठे है।

बनना है गामा और हम देह मे धूरी लगाने अखाडे मे (पर) पहुँचे है।

बनना है मिहिर सेन और हम बलान (नदी) के किनारे 'वर्त्तुल मृदुल लहरियाँ' गिनने गये है।

जाना है मगल-ग्रह पर और हम नीहारिकाओ को निहार रहे है। और, हमने अभी यूरी गॅगारिन की तस्वीर-भर ही मँगवायी है।

परमात्मा बनना क्या इतना आसान है !

जन्म-जन्मान्तर के बाद भी अगर परमात्मा बनने की योग्यता प्राप्त हो सके, तो जीवात्मा को सन्तोष और हिम्मत के साथ प्रयास करना चाहिये।

यथोचित गुण क्या एक जन्म मे ही पूर्णत समाविष्ट हो सकेंगे ? महामहोपाध्याय क्या कोई एक दिन मे पढकर बन जायगा ? सर्वज्ञता क्या क्षण-भर मे मिल जायगी ?

अगर परमात्मा बनना है, तो सारी-समग्र सृष्टि और सारे-समूचे ब्रह्माण्ड को पूर्णत सर्वाश मे जानना पडेगा। सभी स्थितियो और सब प्रकार की परिस्थितियो से स्वय गुजरना पडेगा, ताकि उन्हे अच्छी तरह से जान सको। हर अभिनेता की भूमिका अदा करनी पडेगी। प्रत्येक ऐक्टर का पार्ट अत्यन्त खूबी और सफलता के साथ करना होगा। सभी प्रकार की जिन्दगी भोगनी होगी। और, उनकी जिम्मेवारियाँ शतश निबाहनी पडेगी। परीक्षाओ मे बैठना पडेगा, पग-पग पर, और उन सबमे सौ-मे-सौ नम्बर से पास करना होगा। अपाहिज भिखमगा बनकर भीख माँगने की कला मे भी उत्तीर्ण होना होगा। ओर, एक हीरो राजकुमार का जीवन व्यतीत कर उसकी गहराइयो मे भी उतरना पडेगा। चर-अचर, पशु-पक्षी, पेड-पौधे, कीडे-मकोडे, सभी की जिन्दगी का अनुभव प्राप्त करना पडेगा। तत्पश्चात् मानव का शरीर धारण करना पडेगा और त्रिगुणी माया के ऊपर विजय हासिल करनी होगी। इच्छाओ की पूर्त्ति कर अचाह बनना होगा। पूर्ण आत्मनिर्भरता और शुद्ध स्वाधीनता की सबक सीखनी पडेगी। भय का सामना करना पडेगा और निर्भय बनना पडेगा। समस्त सस्कारो से मुक्त होना पडेगा। काम की कामना को बेकाम करना पडेगा।

कर्म-फलो का हिसाब-किताब बराबर कर विमल बनना पडेगा। ईश्वरोचित गुणो से परिपूर्ण और परिपुष्ट होना पडेगा। चाहे इसके लिये कितने भी जन्म क्यो न लेने पडे।

भौतिक (प्रकृति-जन्य) सृष्टि तीन भागो मे बँटी हुई है १ निर्जीव, २ जीव और ३ जीवात्मा।

मनुष्य (जीवात्मा)-योनि कर्म-योनि है। इस योनि मे उत्पन्न आदमी स्वेच्छा से

और अपनी शक्तियो (जन्मजात तथा जन्मोपरान्त उपार्जित) के प्रयोग के द्वारा अपने-आप पर विजय पाता है, यानि त्रिगुणी माया को समझदारी के साथ जीत लेता है ।

मनुष्य के अलावा अन्य प्राणी भोग-योनि मे उत्पन्न होते है । वे परिस्थिति को भोगते भर है, उसे बदल नही सकते । उनका कोई निर्धारित कर्म नही होता । ओर न वे 'सस्कार' इकट्ठा करते है और न 'कर्म-फल' । उनकी दिन-चर्या इस्टिक्ट पर आधृत रहती हे । वे ज्ञानपूर्वक कुछ 'करते' नही है, उनके द्वारा सहज प्रवृत्ति से बाध्य होकर नित्य-कर्म होते रहते है । प्रत्येक योनि का अपना अलग 'अनुभव' है, अपना अलग सुख-दु ख । वे उन्हे भोगते है ओर उनसे सीखते है ।

भोग-योनियाँ प्रकृति के 'गिनी-पिग' है, जिनपर और जिनके माध्यम से, प्रकृति सृष्टि-सम्बन्धी अनुसन्धान करती रहती है । नूतन काया, नये परिवेश, नवीन रिसर्च-प्रोग्राम्स । नित्य नये अनुसन्धान ।

नयी परिस्थिति और नये परिवेश मे पडा प्राणी भी उसका (नवजीवन का) लाभ उठाता है, उसको भोग कर, और उससे कुछ सीखकर । उसे 'ज्ञान', 'अनुभव' और 'विकास' की उपलब्धि होती है । और, वह सृष्टि-क्रम मे आगे बढता है ।

जिनका नेता बनना है, उनकी जिन्दगी खुद बसर करनी पडेगी (जैसे महात्मा मो०क० गान्धी, सुभाषचन्द्र बोस, रामकृष्ण परमहस इत्यादि ने किया था) । पहले अनुयायी, सेवक, तत्पश्चात् नेता और आका ।

पहले 'यन्त्र' की पूरी वाकफियत हासिल करनी पडेगी, तब नियन्त्रक बनना पडेगा ।

जितने प्रकार के सुख है, उन सबको भोगना और सहना पडेगा । जितने प्रकार के दु ख है, उन सबको उठाना और उनसे गुजरना पडेगा और उनके साथ जीना पडेगा ।

सम्पूर्ण सृष्टि को तटस्थ भाव से जानना और देखना पडेगा ।

हर रग मे अपने को रँगना पडेगा और फिर हर वर्ण (रग) को धोकर धवल बनना पडेगा ।

सारी सजाये भुगतनी पडेगी, ताकि सर्वशक्तिमान् बनने के पहले उन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो सके, वर्ना अतिक्रमण की सम्भावना रह सकती है । देखिये न, रामकृष्ण को कैंसर हो गया, कृष्ण के पैरो मे जहरीले बाण लगे, गान्धीजी के शरीर मे गोली दागी (पिलायी) गयी, ईसामसीह क्रूस (सलीब) पर लटकाये गये, सुधन्वा को खौलते तेल के कडाह मे डाला गया, मीरॉ को विष पीना पडा, राम की पत्नी (सीता) का अपहरण हुआ, चैतन्य महाप्रभु समुद्र मे डूब गये, विवेकानन्द को हृदय-रोग हो गया, शकराचार्य ने अपनी माता के मृतक शरीर को टुकडो मे काटा बाध्य होकर ।

परमात्मा ने न सिर्फ कला का सर्जन किया है, बल्कि उसे दिया भी है । सर्वव्यापी होने के कारण उसने सब कुछ को पूरी तरह जाना है और सब कुछ मे ऐसा रमा हुआ है कि उसने न सिर्फ सृष्टि की (रची) है, बल्कि स्वय सृष्टि बन गया है । वह

कर्त्ता, कर्म, करण और कारण सभी हो गया है । उसने न केवल सुख का निर्माण किया, बल्कि वह स्वय सुख बन बैठा । उसने न केवल दुख को सिरजा (दिया) (गढा) (सर्जन किया), बल्कि वह स्वय दुख हो गया । सुख लूटना और दुख उठाना और दोनो परिस्थितियो मे तटस्थ और 'अछूता' रह पाना । देह मे विदेह बनकर रहना । पूर्ण आत्मनिर्भरता, सटीक स्वतन्त्रता, कदापि भयभीत न होना, न कभी सत्य का सग छोडना । ऐसी तपस्या, ऐसा त्याग और ऐसी योग्यता प्राप्त करना । परमात्मा को ये गुण स्वत प्राप्त हे, क्योकि वह स्वय उनका आधार निर्माता और ज्ञाता है । जैसे उच्च कोटि के कलाकार और अभिनेता अपनी कला-साधना मे ऐसे गर्क हो जाते हैं कि वे और उनकी कला इनमे कोई विभेद नही रह जाता । लेकिन, जीवात्मा को यह योग्यता स्वत प्राप्त नही होती, क्योकि वह तो सृष्टि करता नही । जीवात्मा को दुख-सुख झेलकर भी सब कुछ सीखना, समझना और स्वीकार करना पडता है । आग मे तपकर, कसौटी पर कसाकर, जब सोना खरा (शुद्ध) उतरता है, तब वह परमात्मा की पूजा मे व्यवहृत होता है, किसी के काम आता है, वर्ना सब कुछ क्षणभगुर है, सब माया (इल्युजन) है, सब झूठ है । जिन्दगी सुख-दुख की तानी-भरनी से बनी हुई एक नफीस चादर है, जो साफा-आँचल और कफन दोनो (तीनो) के काम आ सकता है ।

परमात्मा को ब्रह्माण्ड और सृष्टि के कण-कण की खबर है और वह इतना नजदीक है सब कुछ के कि वह प्रत्येक कोष और प्रत्येक प्राणी का सब सुख-दुख तटस्थ भाव से 'भोगता' है और नही भी 'भोगता' है । जीवात्मा को ऐसे अनुभव [जो परमात्मा (सृष्टि-कर्त्ता) को स्वत प्राप्त है] के लिए पर्याप्त प्रयास करना पडेगा । उसे प्रत्येक प्राणी की काया मे जनमना पडेगा और हर तरह की जिन्दगी का अन्तरग अनुभव प्राप्त करना पडेगा । तभी वह परमात्मा बनने के योग्य (काबिल) बन सकेगा । ब्रह्माण्ड का सर्जन, पालन और नियन्त्रण करने के लिए और प्रलय के लिए भी जर्रे-जर्रे को जानना होगा । सर्वज्ञ और सर्वव्यापी बनकर ही कोई सर्वसमर्थ बन सकेगा । चोट खाकर ही कोई जानेगा कि चोट क्या है । फाँसी पर झूलकर ही कोई जानेगा कि फाँसी क्या अर्थ रखती है । विश्व का शासक बनने के लिए बाघ भी बनना पडेगा और बकरी भी । मारने के पहले मरकर देखना होगा । शबरी की तरह बैर खाकर खिलाना होगा । बाज बनकर टूटना-झपटना पडेगा और कनेरी बनकर कतराना पडेगा या लालमुनिया बनकर (प्राण त्यागना) मरना पडेगा । सत्त्व, रजस् और तमस की तमिस्रा मे तपना पडेगा, उनकी एक्स्ट्रीम्स चरम सीमाओ को जीवन मे उतारना होगा । प्रकाश और अन्धकार दोनो का आलिगन करना पडेगा । जागर्त्ति, नीद और खुमारी मे रह-रहकर उन्हे तौलना होगा । नशे से निकलकर चैतन्य को नापना पडेगा ।

हर मौत एक विस्मृति होगी, लेकिन अनुभव और ज्ञान इकट्ठे होते चले जायेगे। जैसे किसी का धन बैक मे जमा हो रहा हो और उसे मालूम न हो ।

जिस क्षण विकसित जीवात्मा प्रगति प्राप्त कर परमात्मा बन जायगा, उसी क्षण

भूली-बिसरी बाते स्मृति-पटल पर प्रत्यक्ष हो जायेंगी और वह 'सर्वज्ञ' हो जायगा। वह सब कुछ जानता होगा, उससे कुछ भी छिपा न होगा।

सब तरह की जिन्दगी बसर कर लेने के बाद वह नम्रता (विनय), सहृदयता, सहानुभूति और प्रेम से परिपूर्ण जीवात्मा जब सर्वशक्तिमान् परमात्मा बन जायगा, तब वह गला भी घोटेगा तो प्रेम से, 'कहर' भी करेगा, तो करुणा के साथ। (तु० मैन्यु-रस, क्रोध, क्षोभ इत्यादि)। दुःख भी देखा, तो आपस मे बराबर बाँटकर हितैषिता के साथ। क्योकि वह दुःख मे भी होगा और दुःखी के दिल-ओ-दिमाग मे भी। और, उसके परिणाम मे भी। वह दुःख भी देगा, तो प्रतिशोध की भावना से नही, दुश्मनी के कारण नही, 'सताने' या 'यन्त्रणा-यातना' देने के लिए नही, बल्कि विकास के लिये, प्रगति के लिये। दुःख की प्रस्तुति, उसकी सृष्टि, किसी मनोमालिन्य के कारण नही होगी। वह जीवात्मा के विकास के निमित्त होगा। वह उसके सुधार की भावना से ओतप्रोत होगा। वह सुख की अगवानी के लिये हेतु बनेगा, सोपान होगा। उस दुःख मे दया होगी, दर्द होगा। टीस और कसक होगी।

न मालूम, मै बचपन से ही क्यो दूध पीना पसन्द नही करता। न उसका स्वाद मुझे अच्छा लगता है, न उसकी गन्ध। और, वह मेरे पेट के लिये भी अनुकूल नही पडता। दूध पीने मे बेतरह आनाकानी करने के कारण मेरी माँ (कमला) ने मुझे बचपन मे पीटा था (बस एक बार)। लेकिन, तब मुझसे अधिक वही रोयी थी और उसने रो-रो कर अपने को कोसा था और बोली थी कि भगवान्, तू मेरा हाथ तोड दे, मेरे हाथ जला दे, कि मै कैसी निर्दया हूँ, जो मैने अपने 'बाबू' (बेटे) को मारा।

परमात्मा ने जीवात्मा से कहा होगा—तू अगर मुझ-सा बनना चाहता है, तो जा, पहले विभिन्न योनियो मे भ्रमण कर, फिर मानव बनकर अपने को जीत, त्रिगुणी माया के ऊपर उठ, 'सृष्टि' के प्रति अगाध प्रेम और करुणा से अपने हृदय को भर ले, सर्वज्ञ बन, तटस्थ रहना सीख। जा, तू पृथ्वी पर जा, वही तेरा प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) होगा, वही तू सबक सीखेगा, वही परीक्षा देगा। उत्तीर्ण हुआ, तो परमात्मा बनेगा। फेल हुआ, तो फिर से जनमेगा। मै तुझे काया का वरदान देता हूँ, वही तुझे मोक्ष दिलायगी। जा, मै सृष्टि रचता हूँ तेरे लिये। बौआ (ताण्डव आइन्स्टीन समदर्शी) ने कहा था—मै सब तरह के दुःख झेलने को तैयार हूँ, सब प्रकार की असुविधाये अगीकार करने को तत्पर हूँ, रात-दिन खटने के लिये कटिबद्ध हूँ। बापी! मै भी आपकी तरह एक डॉक्टर बनना चाहता हूँ। मैने कहा था—अच्छा मै मेडिकल कॉलेज मे तुम्हारा नाम लिखवा देता हूँ। तुम वही होस्टल मे जाकर रहो, मन से पढो, परिश्रम करो, परीक्षा दो। उत्तीर्ण होकर डॉक्टर बन जाओगे। दूसरा कोई रास्ता नही है, कोई और तरीका, तरकीब, तरतीब नही है।

और, प्रकृति इतनी अनुभवी, होशियार, चालाक और कुशल हो गयी है कि करोडो वर्षा मे उसने जो विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ गढी है, सृष्टियाँ रची है, उनमे से जो मुख्य माइल-स्टोन्स है, प्रधान चरण और सोपान हे, जो खासे, विशिष्ट कदम उठाये

गये है, वे सब क्रम वह मानव-भ्रूण के निर्माण मे नौ महीने के अन्दर ही पूरा कर लेती है। मानो अपने सारे अनुभव और ज्ञान की पिटारी को उसने एक नन्ही-सी डिबिया मे डाल दिया हो। मानो मन्वन्तरो, युगो, मे अर्जित ज्ञान और हुनर का प्रदर्शन वह सिर्फ चन्द दिनो और महीनो मे दिखला रही हो। उसने जो कमाल हासिल किया है, जिस फन का उस्ताद बन गयी है, उसकी एक चकाचौध करनेवाली झाँकी दे रही हो। गर्भ के चिलमन के पीछे जादू दिखला रही हो। (देखिये श्रीजयदेवविरचित दशावतारस्तोत्रम्), (तुलिये, मानव-गर्भ मे भ्रूण का विकास-क्रम)।

बेटा! कोई रात ऐसी न होगी, जब तुम निश्चिन्त होकर सो सकोगे। कोई दिन ऐसा न होगा, जो आराम और बे-फिक्री मे कट जाय। भरी महफिल से तुम अक्सर उठा दिये जाओगे मरीज देखने के लिये। किसी बीमार के खातिर। सरे बाजार मे तुम्हे खडे होकर सुननी पडेगी किसी की कारुणिक कहानी।

कही गजल मे मन लग गया, तो लोग गालियाँ देगे। कही साहित्य मे मन रम गया, तो लोग फब्तियाँ कसेगे।

तुम अवकाश और मनबहलाव की बात करोगे, तो लोग तुम्हारी खिल्ली उडायेगे।

तुम्हारा अपना 'समाज' तुम्हारी धज्जियाँ उडाने का मौका बडी बे-सब्री के साथ खोजता रहेगा।

न तुम अपने चमन के लिये जी सकोगे, न अजुमन के लिये। तुम्हारी दुनिया मे सिर्फ मरीजो की भरमार होगी। तुम्हारा पारिवारिक जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। तुम्हारी बीवी को सदा तुम से शिकायत रहेगी। तुम्हारे बच्चे टूअर की तरह मारे-मारे फिरेंगे और तुम्हारे पास उनकी देख-भाल के लिये कोई 'समय' न होगा।

तुम्हारा जीवन एक सूखी मरुभूमि बनकर रह जायगा, जहाँ न ताक-धिना-धिन् होगा, न तराने, न हुश्न-हे-ना, न हरसिगार, न कमल और न कुमुदिनी, न बँसबट्टी से गुजरती हवा का कूजना, कूकना, चिल्लाना, चिग्घाडना, गरजना, रोना, सिसकना, न साँझ का शृगार, न विहान की बरात। न शिशिर का सिहरना, न ग्रीष्म का गरमाना, न बसन्त का बहकना, न बरसात का सताना।

तुम्हारे ललाट पर न त्रिपुण्ड्र होगा, न चन्दन, न रोली। सिर्फ बेबस स्वेद की बे-मौसम ओस होगी।

जब किसी की प्रिया बिहाग गा रही होगी—'लट उलझे सुलझा जा रे बालम, हाथे मेहदी लगी'। उस वक्त तुम्हारे दोनो हाथ गलब्ज लगाये किसी दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति के खून से लय-पथ होगे अथवा किसी दुर्गन्धित कैसर से सडते-गलते अग को साफ कर रहे होगे अथवा किसी ऐसी अभागी औरत का बाल काट रहे होगे, जिसके क्रूर पति ने उसके चेहरे पर तेजाब उडेल दिया होगा अथवा जो जीवन के सघर्षों से हारकर जली होगी।

तुम्हारा कोई सगा-सम्बन्धी, भाई-बन्धु, नाता-रिश्ता, न होगा। तुम और तुम्हारे मरीजो से बसा होगा तुम्हारा 'घर'। जहाँ तुम रोग-शोक-भय-मृत्यु-आशा-निराशा से सतत जूझते रहोगे। तुम्हारे अम्बर मे काली बिजली कौंधती, चौकती होगी, यम के

नगाडे बजते होगे । तुम्हारी दिशाओ मे आग की लाल-पीली लपटे धू-धू कर जल रही होगी। जीवन की बलि-वेदी पर अरमान और हसरते मर-मिट रही होगी। महामारी की आँधी-तूफान मे तुम्हारे सर पर कफन बँधा होगा। और, तुम प्रति-पल लड रहे होगे।

तुम्हारे स्वप्नो के तार चीख-चीत्कारो से सदा टूटते, बिखरते, रहेगे और तुम उन्हे कभी बटोर न पाओगे।

ऐसे परिवेश (माहौल) मे तुम्हे जीना और जागते रहना पडेगा।

तुम्हे अपनी जान देनी पडेगी, अपना तन-मन-धन देना पडेगा। कि जिसमे कोई खिलखिला-मुस्करा सके, कि जिसमे किसी का उजडता घर बस सके, कि कोई मौत के मुँह से जबरदस्ती खीचकर लौटा लाया जा सके।

तुम्हे वे-पनाह, बे-आबरू, सडाँध-सी बदबूदार जहरीली लाशो को भिनभिनाती मक्खियो के बीच जाँच (शव-परीक्षा) करनी पडेगी, कि जिसमे कानून उन्हे न्याय दे सके।

बेटे ! तुम्हे मेहतर बनकर विष्ठा उठाना पडेगा, डोम बनकर लाश ढोनी पडेगी, चमार बनकर चाम चीरना पडेगा।

बेटे ! तुम्हे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बनना पडेगा। तुम्हे शूद्र बनकर सेवा करनी पडेगी।

तुम्हे पिता-पति-पुत्र 'बनना' पडेगा और 'होना' कुछ-भी नही होगा।

बोलो, बेटा ! तुम डॉक्टर बनना चाहोगे ?

बेटे ! ससार का सब घर तुम्हारा अपना घर होगा। दूसरो का दु ख-दर्द तुम्हारे सीने को सालेगा। लोगो के आँसू तुम्हारी गरदन पर ढलेगे। तुम्हारे दीपक का स्नेह दीअठ-पर-सिर-धुन रहे अनेक चिरागो की लौ (ज्योति-शिखा) को धैर्य, शान्ति, दृढता और स्थिरता देगा।

तुम्हारे शुष्क रेगिस्तान मे बीमारो की मुस्कान ही तुम्हारा शाद्वल (ओएसिस, मरूद्यान) (नखलिस्तान) होगा (बनेगा)।

बोलो। तैयार हो ?

परमात्मा ने भी शायद जीवात्मा से ऐसा ही कुछ पूछा होगा—दोस्त (दोस्तो) ! तैयार हो गये ? चलो, मै सृष्टि रचता हूँ। चलो, आजमाओ अपने अरमान ! लगाओ अपनी कूबत ! करो कोशिश। तुम जैसे-जैसे सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ और सर्वव्यापी बनते जाओगे, वैसे-वैसे परमात्मा के रग मे रँगते-रँगाते कालान्तर मे तुम मुझसे अभिन्न हो जाओगे। तबतक जाओ ! मेरी सृष्टि मे हाथ बँटाओ। देख आओ कि वह कैसी रगीन है ! कैसी अदभुत ! लेकिन, एक बार फिर तुझे सचेत कर देता हूँ, जहाँ तुम प्रशिक्षण के लिये जा रहे हो, वह माया की नगरी है—मोम की मूर्त्तियाँ। उन्हें सच और शाश्वत मानकर भरमा मत जाना। उनमे चिपक मत जाना। गले लगाकर कही राह मे रह मत जाना। माया मे फँस मत जाना। मै स्वय विवेक बनकर तुम्हारे साथ रहूँगा, ज्योति स्तम्भ की तरह, जल-दीप की नाई। उस आलोक की मदद लेना। उसका तिरस्कार न करना। मै चित्र बनाऊँगा, तुम देखना। मै गीत गाऊँगा, तुम सुनना। मै ससार की सृष्टि करूँगा, तुम वहाँ रहना। और, सीखना।

जब स्वप्न से योग्य बनकर जगोगे, तो सायुज्य और योग के अधिकारी बन चुके होगे।

अच्छा, अब जाओ अपनी यात्रा पर। मै विस्मृति देता हूँ, माया रचता हूँ। फिर भेट होगी।

और, सृष्टि सवरित हुई।

और, जीवात्मा जनमा।

परमपुरुषार्थस्वरूप बनने।

सृष्टि एक इन्द्रजाल है।

परमात्मा ने उसे अपने मे से, अपने परमतत्त्व से, गढा है। वह जिन व्यक्ताव्यक्त (मैनिफेस्ट-अनमैनिफेस्ट एलिमेण्ट्स) (स्थिति-सातत्य, रूपारूप, स्ट्रेटम कण्टिन्युअम) तत्त्वो से बनी है, वह परमात्मा ने अपनी ही आद्य-सत्ता (मूल-तत्त्व) से बनाया है। किसी और से कुछ उधार नही लिया, पैचा नही माँगा। कही चोरी का माल नही उठाया। किसी के दरवाजे भीख नही माँगी। कही हाथ नही पसारा। मधुकरी के लिये कभी भटका नही। किसी को चूसा नही, शोषण नही किया। किसी कालेबाजार मे मुँह काला नही किया। किसी की जेब नही कतरी। किसी का बगान नही चर गया।

अननुमार्गणीय (अनट्रेसेब्ल, अननुमार्गित, अननुरेखित) और अचिन्त्य (कल्पनातीत, अनथिकेब्ल) है प्राण (लाइफ) का प्रादुर्भाव (ओरिजिन)। (ऋग्वेद, १।१६४।४)

को ददर्श प्रथम जायमान
(किसने पहला प्राण परेखा।)
अस्थन्वन्त यदनस्था बिभर्ति
(रूप-रहित जो रूप सजाता।)
भूम्या असुर सृगात्मा क्व स्वित्
(पृथ्वी पचभूत की काया)
[प्राण कहाँ से किसका (किसने) जाया ?]
को विद्वासमुपगात् प्रष्टुमेतत् ॥
(कौन बडा उत्सुक मेधावी प्रभु से जाना जग की माया ?)
(कौन बडा विद्वान् आजतक जान सका है प्रभु की माया ?)

बेटा! देखो न, मैं फिर रास्ता छोडकर भटक गया। अजीब तमाशा है। कैसी बुरी आदत है मेरी! गन्तव्य को भूल ही जाता हूँ, पगडण्डियो पर भटकने लगता हूँ। होश ठिकाने नही रहता। मारा-मारा फिरता हूँ।

मैं यह कह रहा था कि जब डॉक्टर बनना खेल नही, तब परमात्मा बनना कैसे आसान हो सकता है ? दोनो के लिये कुछ-न-कुछ तो करना ही पडता है। लेकिन, जगन्माता को पुकार लाने मे क्या लगता है! रामप्यारी, कमला अथवा किशोरी से कही अधिक प्रेम (और ममता भी) है उसके विशाल हृदय मे।

धत् तेरे की! मैं फिर भटक गया। क्या कहना चाहता था और क्या कहने

लगा ! रास्ते पर निकला था। दिशाभ्रम ने गोत दिया। भूल भी गया कि क्या करना था ! किस लक्ष्य को लेकर घर से बाहर निकला था ! क्या और कैसी दलदली मुसीबत है ! कैसी समा बँध रही है ! वह देखो आकाश, वह (ताल-वृक्षो) ताडो के पीछे से इन्द्रधनुष का आविर्भूत होना, कढ आना ! और, फिर इरेज (उद्धर्षित) हो जाना, अन्तरिक्ष के स्लेट पर यूँ ही अनायास मिट जाना। प्रतीक्षा (के चिलमन) की ओट से (के परोक्ष से) (ईद की शाम को) चाँद का झाँकना, चमचमाना, मुस्काना। और फिर, इमली के पुराने दरख्तो से घिरी उस छोटी-सी सगमरमरी मस्जिद की मीनारो के पीछे उसका तनहाई मे चुपचाप डूब जाना।

वराहो वेद वीरुध नकुलो वेद भेषजीम्
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुव। (अथर्ववेद, ८।७।२३)
या सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदु ।
वयासि हसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्त्रिण
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ।।
(अथर्ववेद, ८।७।२४)

यावतीनामोषधीना गाव
प्राश्नन्तिऽध्न्या यावतीनामजावय
तावतीस्तुभ्यमोषधी शर्म यच्छन्त्वाभृता ।।
(अथर्ववेद, ८।७।२५)

बीमारी बनी, तो औषधियाँ (वनौषधियाँ, जडी-बूटियाँ) भी बनी और उनके प्रयोग के रास्ते भी बतला दिये गये।

जिसने बीमारी दी, उसी ने वैद्य दिये और आरोग्य दिया।

भिषक् ब्रह्मा। ब्रह्मा वैद्य है। वैद्य बनवारी। वैद्यो नारायणो हरि ।

उन्नो वीरा अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तम त्वा भिषजा श्रृणोमि।
(ऋग्वेद, २।३३।४)

और भी,—ऋग्वेद दशम मण्डलम्, १६।१४ (२२) तथा ३९।५ (१५)—वेदो ने प्रवीण चिकित्सक के गुण बतलाये।

भेषजस्य कर्त्ता। क्रियमाण अग्रे वेत्ति।

और भी— (अथर्ववेद, ५।२९।१)

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि
मृत्योरन्तिक नीत एव
तमा हरामि निर्ऋ तेरुपस्थादस्पार्षमेन शतशारदाय ।।
(अथर्ववेद, ३।११।२)

सुश्रुत, सूत्र (२१।३६) के अनुसार चिकित्सक कहलाने का हक उसी को है, जो यह जाने कि (जिसे ज्ञात हो कि), बीमारी क्यो होती है और क्यो जड जमाती है (घर कर लेती है), वह कैसे और क्यो कर बढती-फैलती है, किस जगह (स्थान) पर होती है, उसके व्यक्त लक्षण क्या है, वह दूसरी बीमारियो से अलग कैसे पहचानी

जा सकती है, विकास की विभिन्न स्थितियो मे उसका निदान कैसे होगा, ओर उसका इलाज क्या है ?

सञ्चय च प्रकोप च प्रसर म्थानसश्रयम्।
व्यक्ति भेद च यो वेत्ति दोषाणि स भवेद् भिषक् ।।
एक शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छाम्त्रनिश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुत शास्त्र विजानीयात् चिकित्सक ।।

और, आदमी को तीन प्रकार की बीमारियाँ (आजार) ग्रस्त करती है (१) शारीरिक, (२) मानसिक और (३) आध्यात्मिक।

आदमी मरना नही चाहता और वह मर जाता है। आदमी चाहता है कि उसकी युवावस्था कायम (बरकरार) रहे और योवन जरा मे बदल जाता है। आदमी स्वस्थ रहना चाहता है और वह रोगी बन जाता है। वह पीडा और प्रतिकूलता से भागना चाहता है और उनके पल्ले पड जाती है। वह जिस किसी का भी सहारा लेकर रहना चाहता है, वह वस्तु या व्यक्ति अथवा अवस्था या परिस्थिति सभी प्रतिपल बदलते चले जाते है। कुछ भी चिरन्तन नही दीखता, सत्य नजर नही आता। जिसे अपना समझते है, वह भी बेगाना बन बैठता है। शरीर को अपना मानते है, लेकिन वह भी बात नही मानता, अपनी राह चला जाता है, सुनी अनसुनी कर, ओर आदमी देखता रह जाता है, कुछ कर नही पाता। जिसे छाती से लगाकर रखता है, वही लात मारकर मुँह फेर लेता है। बिछुड जाता है, किसी न किसी तरह।

पीडा और प्रतिकूलता की बदौलत प्राणी परमेश्वर को खोजने निकल पडता है।

और, वही से एक नया रास्ता फूटता है, एक नया जीवन शुरू होता है। दुनिया बदलती है।

आदमी ऐसा जीवन चाहता है, जिसमे पराधीनता न हो, अभाव न हो, नीरसता न हो। पराधीन, अभावग्रस्त, नीरस जीवन की व्यथा और वेदना जब असह्य होने लगती है, तब आदमी को भगवान् की जरूरत महसूस होने लगती है।

अपने निजी ज्ञान और अनुभव के आधार पर वह स्वय जान लेता है (या ऐसा कहिये कि उसे जान लेना चाहिये, उतनी जरूरी अक्ल तो खुदा ने उसे दे ही रखी है) कि ससार से उसको ऐसे जीवन की प्राप्ति कतई नही हो सकती, जिसकी उसको माँग (चाह, आवश्यकता) है। न यह दुनिया उसे पूर्ण स्वतन्त्र और स्वच्छन्द रहने देगी, न उसकी कमी पूरी कर देगी, न झोली भर सकेगी, न उसको नि स्वार्थ, नि शुल्क खालिस और शुद्ध और अमिट प्रेम दे सकेगी। बन्धन, चाह ओर नीरव नीरसता उसे कुरेदती, व्याकुल करती, टीमती रहेगी। और, यावज्जीवन वह आदमी आनन्द के खुले आकाश से अनभिज्ञ रह जायगा। मरते दम तक उसका सघर्ष-रत जीवन एक महज रेगिस्तान बना रहेगा। और, वह बेबसी मे मर जायगा, अपने अरमानो को मन मे सँजोये चला जायगा।

स्वाधीन, सर्वसुलभ, सरस जीवन कैसे मिलेगा ?

जहाँ पराश्रय और परवशता और बन्धन न हो ? जहाँ दु ख, दैन्य, कमी, त्रुटि, हीनता और अभाव से भरी जिन्दगी सालती न रहे ? जहाँ प्रेम को स्वार्थी प्यार और दुबली ममता दबोच न दे ? जहाँ आनन्द का सागर हिलोरता रहे ?

ऐसे दुर्लभ जीवन की प्राप्ति के लिए दो काम करने पडेंगे।

१ उन सारी चीजो (वस्तु-स्थिति) का त्याग, जिनके कारण आदमी का जीवन दुर्वह हो जाता है।

दु ख है। उसका कारण है। उसका निवारण हो सकता है। इसके लिए ससार और शरीर से अपनत्व का भाव छोडना पडेगा। छोडना क्या पडेगा, वह यूँ ही छूटा हुआ है ही। उसी सत्य का बोध हो जाना चाहिये। मिथ्या भ्रम को मिटा देना चाहिये। इस मायावी परिवेश से जरा हटकर जीवन को देखना-परखना चाहिये। जरा सोचिये तो सही कि अगर आदमी मात्र शरीर है, तो उसे रोग, शोक, मृत्यु, भय इत्यादि से कौन बचा सकेगा ? अगर ससार की सहायता पर जीवन निर्वाह करना है, अगर ससार पर ही आदमी का सब कुछ निर्भर है, तो ऐसे अभागे आदमी को स्वतन्त्रता कैसे मिलेगी ? उसे दु ख और निराशा (नैराश्य) से कैसे कोई बचा लेगा ? जो चाह के चपेट मे है, उसे चाँटा खाना ही पडेगा। थपेडे सहना ही पडेगा।

२ उस शक्ति (तत्त्व) से सम्बन्ध स्थापित करना पडेगा, जो 'सत्य-शिव-सुन्दरम्' कहा जाता है। जो सर्वशक्तिमान्, शाश्वत और सर्वज्ञ है। जो स्वय पूर्ण स्वाधीन है, सर्वप्रकारेण परिपूर्ण है, आनन्दघन है। जो सदा है, सर्वत्र है, सबका है। जो स्रोत है उस वस्तु-स्थिति का, जिसे आदमी अपने जीवन मे समाविष्ट करना चाहता है, प्रतिबिम्बित करना चाहता है।

अब अगर न पहला रास्ता अपना सकते है, न दूसरा, तो एक तीसरा रास्ता भी है। वह है कर्म का।

अपने से पूछकर देखिये। एकान्त मे। जब मन शान्त हो। चित उद्वेलित न हो। क्या आप सचमुच इस जिन्दगी से ऊब गये है ? क्या यह ससार आपको वास्तव मे नही भाता ?

अगर अपना पार्थिव जीवन आपको पसन्द है। अगर ससार मे मन रम गया है। कोई तकलीफ नही, कोई खास बात नही। अगर आपको पूर्ण विश्वास है कि आप (अथवा आपका 'मै') सिर्फ अपनी देह-भर है। कि ससार ही आपका अपना है और इनके अलावा आपको अन्य किसी की आवश्यकता नही है, तो आपके लिये यही अच्छा होगा कि आप भगवान् का पिण्ड छोड दीजिये (दे) और दुनियादारी मे लगे रहे। ससार-चक्र के सुख-दु ख को झेले (झेलते रहे) (झेला करे)। और, जब मृत्यु आ धमके, तब मर जायँ। यह रही सीधी-सी बात। परमात्मा का होना या न होना आपके लिये कोई महत्त्व की बात नही रहेगी और परमात्मा आपके काम मे किसी तरह का हस्तक्षेप नही करेगा, आपका कुशल-क्षेम भी शायद नही पूछेगा। जबरन आपके गले का न घेघ बनेगा, न आपके रास्ते पर वह

भूलकर भी मिलेगा। सिर्फ आप और आपकी अपनी दुनिया की आपसी बात रह जायगी। परमात्मा दाल-भात मे मूसलचन्द कदापि न बनेगा। आप नास्तिक या अनास्थावादी गिने जाइयेगा, लेकिन उससे क्या ? आपकी दुनिया और आपके दुनियावाले तो आपके साथ रहगे ही और शायद आपके बराबर काम भी आते ही रहेगे। फिर क्या है। मौज से जिन्दा रहिये, बॉकेपन के साथ! परमात्मा को ललकारिये और सीना तान कर चलिये। जहॉतक चल बसने की बात है, वहॉ तो आप जानते ही है कि आस्तिक भी मरता है और नास्तिक भी, साधु भी और चण्ड भी। दोनो को ही अपने दस्तावेज इसी धरती पर छोडकर चला जाना होता है। नास्तिक को तो एक खास फायदा यह भी रहता है कि वह अपनी लाश के साथ ही सदा के लिये समाप्त हो जाता है। और, इस सत्य का एहसास उसे ताजिन्दगी होता रहता है। उसकी क्षणभगुर जीवन-यात्रा बिना किसी शाश्वत लगर के अनन्त मृत्यु मे अनन्त काल के लिये एकदम डूब जाती है।

सभी कुछ परिवर्त्तनशील है, कही कुछ भी टिकाऊ नही दीखता। कुछ भी नही रहता। सब खिसक रहे है, फिसल रहे है, बिगडते जा रहे है, मटियामेट होते जा रहे है। नास्तिक को इसके आगे कुछ भी पता नही चलता।

जिस तरह बिना दूरबीन के लघु कीटो और सूक्ष्म प्राणियो का पता नही चलता, उसी तरह बिना ज्ञान-चक्षु के परमात्मा दृष्टिगोचर नही होता।

हिसाब हल करने का उचित तरीका सीखकर उसका ठीक उपयोग कीजियेगा, तो सही फल (रिजल्ट, उत्तर) मिलेगा। परमात्मा की प्राप्ति का भी उचित तरीका सीखना और अपनाना पडेगा, तभी सफलता मिलेगी। न तैरना सीखियेगा न तरी रखियेगा, तो किस किनारे लगियेगा ? उस पार का क्या खाक पता चलेगा आपको! बिना माइक्रोस्कोप के बैक्टिरिया दिखाई पडेगा ? बिना सीखे, बिना जाने और बिना अभ्यास के वह कैसे इस्तेमाल किया जायगा ? किस तरह काम आयगा ?

कहते हैं कि जब किसी का मन भगवान् से रीझता हो, परमात्मा पर दिल आ जाता हो, प्रभु बार-बार याद पडता हो, लेकिन अपने करते कुछ बन नही पा रहा हो, दिल द्विविधा मे पडा कुछ कसक-सी महसूस करता हो, जिज्ञासा जगा दिया करती हो, जीवन मे कुछ कमी, कुछ अधूरापन, लगता हो, मानस की गहराइयो से कोई आवाज दे रहा हो, तो इतमीनान रखिये। परमात्मा आपकी राह प्रकाशित करेगा। वह स्वय आपके लिये दौडा आयगा। आपको स्वत उसके अस्तित्व के सबूत प्राप्त होगे। किसी-न-किसी तरह वह आपसे मिल लेगा। वह आपकी क्षमता जानता है। करुणासागर का 'दिल' भर आयगा, 'ऑखे' उमड आयेगी। वह निश्चय ही कुछ-न-कुछ करेगा कि जिसमे आपका विश्वास जम सके, आस्था सुदृढ हो सके। किसी सुदूर कानन से 'वशी' की ध्वनि सुनायी पडेगी। आपका अन्तरात्मा बोलेगा। 'हृदय' गवाही देगा।

आपकी मरजी पर आपका विकास है और होगा।

आप जरा ठहरकर सोचिये न। किस तरह का जीवन आपको पसन्द है ?

कैसी वस्तु-स्थिति, कैसा वातावरण, कैसी मानसिक (कायिक) अवस्था आपके मन भाती है ?

परमात्मा मे जिन गुणो का समावेश माना जाता है। सगुण ब्रह्म जिन विभूतियो से विभूषित है। अगर आपको उन गुणो के प्रति श्रद्धा ओर आकर्षण हो, अगर आपको उनकी जरूरत हो, तब तो उस सगुण ब्रह्म के पीछे पड जाइये वर्ना छोडिये, अपना काम करिये, काहे को नाहक दर्दसर उठाइयेगा।

अगर निर्गुण ब्रह्म मन भाता है, तो उसे ही अपना ध्येय बनाइये। और, वह भी यदि बेकार मालूम पडता है, तो जाने दीजिये इस बेमतलब की बात को। काहे को व्यर्थ ही समय गँवाना, अपनी मीठी नीद हराम करना। आराम से रहिये, छोडिये बेतुकी बकवास को।

हाँ, एक बात का ध्यान रखियेगा। कि ससार एक आईना है। और, आप जैसा कीजियेगा (दीजियेगा) वैसा ही पाइयेगा। जैसी करनी, वैसी भरनी। और, दूसरो के प्रति आपका जैसा व्यवहार रहेगा, ठीक वैसा ही आपको दूसरो से मिलेगा। और यह भी कि यह लेन-देन की दुनिया है। काम आते रहियेगा। नही तो बे-आबरू, बे-मुरौअत, निकाल दिये जाइयेगा। इसको भी न भूलियेगा कि यहाँ सभी कुछ नश्वर और परिवर्त्तनशील है और यहाँ दुख और शोक बिना माँगे मिलते है। अभाव अपने-आप अखरता है।

आपको चुस्ती-चालाकी, छल-कपट इत्यादि पसन्द हो, कथनी को करनी से दूर रखते हो, पैसा पैदा करने की धुन बेसुध कर रही हो, तो वैसा ही कुछ करते-धरते रहिये। बस इतना भर जान रखिये कि इन्ही बीमारियो से अनेक लोग आपके इर्द-गिर्द कथित, व्यथित, श्रमित और थकित है, चालू और चकित है, पागल और पीडित है। और, बहुत जल्द आपके साथ इन हमराहो का सामना होनेवाला है। कोई टकरानेवाला है।

भगवान् अनावश्यक है न ? होगा ही, जब आप कह रहे है। आप कहते है, तो भला कैसे नही होगा। होना ही पडेगा।

लेकिन कदमो मे एक अर्जी पेश करता हूँ। आप बिना खुदा के जीना तो सीख लीजिये। मुआफी फरमाइये। मैने नाहक आपका कीमती वक्त जाया (बरबाद) किया।

मानव (जाति) की तीन विशेषताएँ, गुण या लक्षण है

१ वह कुछ जानता है और जान सकता है।

(अपने ज्ञान का अनादर न करे) (विवेक की बात माने)

(सत्य को पहचाने)। जान लीजिये कि—मेरा कुछ नही है (निर्ममता)। मुझे कुछ नही चाहिये (निष्कामता)। जो कुछ मिला है—(सम्बन्ध, सामर्थ्य, पौरुष, ज्ञान, बल इत्यादि) वह सब किसी प्रयोजन से किसी का दिया हुआ है—उनका दुरुपयोग न करे, दूसरे के भी काम आने दे (प्राप्त के भयकर परिग्रह का परित्याग करे)।

शरणागति (प्रभु-निर्भरता) की आवश्यकताये स्वयमेव पूरी होती है। मानव की माँग की पूर्त्ति अनिवार्य है।

२ वह कुछ मानता है और मान सकता है।

(अनुभव को मान्यता दे) (शास्त्र और सन्तवाणी को प्रमाण माने) (देखकर मान लेते है, तो सुनकर भी मान ले)।

मान लीजिये कि—प्रभु अपने है (आत्मीयता) (सरसता) (नीरसता का नाश)। ये सदैव है (अब भी है)

सर्वत्र है (यहाँ भी है) (मुझमे भी है)

सभी के है (मेरे भी है)

सर्वसमर्थ है (रक्षक है) (योग-क्षेम वहन करने योग्य है)

अद्वितीय है (परमात्मा एक है)।

३ वह कुछ करता है और कुछ कर सकता है।

(अपने कर्त्तव्य का यथाशक्ति, अपनी समस्त योग्यता और सामर्थ्य के साथ, पालन करे) (फल का त्याग करे) (सौदा न करे 'किये का') (किसी की भलाई नही कर सकते हो, तो किसी की बुराई भी न करे) (अपने प्रति जैसा बरताव करते है, दूसरो के प्रति भी वैसा ही बरते)।

मानव की इन तीन विशेषताओ पर आधृत है तीन मार्ग—१ ज्ञान का, २ भक्ति का, और ३ कर्म का।

इन तीनो मे से किसी एक मार्ग का भी पथिक ससार के बन्धनो से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त करेगा।

दु ख है। दु ख का निदान है। दु ख का कारण है। दु ख की दवा है। नुस्खा लीजिये, और ओषधि पीजिये, आरोग्य लाभ कीजिये, और स्वस्थ बने रहिये।

दवा का सेवन यदि किसी कारण से सम्भव नही हो रहा हो तो, तीन काम कीजिये

१ माथा धुनिये।

२ छाती पीटिये।

३ काम कीजिये।

लेकिन, साथ-ही-साथ ईमानदारी और निश्छल मन से प्रार्थना करते रहिये। उसकी करुणा को गोहारिये। उसे अपना प्यार बख्शिये। पहले उसके आगमन का आभास मिलेगा। फिर, वह सचमुच आ जायगा।

स्वामी शरणानन्दजी ने राय दी कि अगर कुछ भी पार नही लगता हो, तो कम-से-कम किसी की बुराई मत कीजिये।

कि (क) विश्राम, (ख) स्वाधीनता और (ग) प्रेम। यही मानव की मूल माँगे है। और, इनकी पूर्त्ति अनिवार्य है।

आदमी का व्यक्तिगत सकल्प आत्मीयता नही होने देता। राय, विचार, इरादा, इच्छा, अपेक्षा, तब प्रियता भी नही जगती और जीवन मे सरसता नही सजती। सकल्प किसी को किसी के साथ एक नही होने देता, न अपने साथ, न ससार के साथ, न परमात्मा के साथ। सकल्प=यह इच्छा (चाह, विचार, इरादा, अपेक्षा) कि कोई

मेरे काम आ जाय। स्वार्थ साधने का साधन बन जाय। प्राप्ति की चाह। चाह की प्राप्ति (पूर्त्ति)।

शरीर और ससार का सम्बन्ध सदा अविभाज्य है।

सत्य सदा साथ है। उससे अलग होना असम्भव है।

आपकी आवश्यकता यही हो कि आप किसी की आवश्यकता हो। किसी के काम आ जायँ।

प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करे।

प्रत्येक प्रवृत्ति पूजा बन सकती है। शौच भी।

अपना कल्याण। सुन्दर समाज का निर्माण।

वर्त्तमान की वेदना मे ही विकास है।

यदि हम स्वाधीनतापूर्वक (प्रभु से) आत्मीयता नही जोड सकते, तो आत्मीयता न होने की जो व्यथा है, उसे होने दे।

"वे परम-सुन्दर सर्व-समर्थ होने के कारण सभी को अपनाते है और किसी को भी व्यथित नही देख सकते। इस बात को मै फिर दुहरा दूँ कि लोग कहेगे कि सैंकडो आदमी दुखी है। वे हमको दुखी क्यो देखते है? तो आपके दुख मे सुख का भोग और सुख का प्रलोभन है। उस प्रलोभन का नाश करने के लिये जीवन मे दुख है। जिस समय सुख का प्रलोभन नही होगा, सुख का भोग नही होगा, उसी समय वह दुख, जिसे दुख मानते है या अनुभव करते है, नही रहेगा, अपितु वहाँ दुखहारी (परमात्मा) होगा।" (स्वामी शरणानन्द)।

मानव और भगवान् के बीच आत्मीयता और प्रेम का अगाध सागर सतत और सदा उमडता रहे, इसी मे जीवन की पूर्णता है।

ईमानदार, परिश्रमी और योग्य सेवक बने।

परमात्मा की याद आती रहे, तो मन मे उसका अस्तित्व ठहर जायगा। अस्तित्व ठहर जायगा, तो उसका महत्त्व भासित होने लगेगा। फिर, अपनेपन का भाव जगेगा और दृढतर होता चला जायगा।

विज्ञान ज्ञान को बढा सकता है, किन्तु मन का मैल नही धो सकता।

अशान्ति का कारण है भगवान् मे विश्वास की कमी।

निराशा आस्था की तौहीन है, तिरस्कार है।

गुमान गोविन्द को अच्छा नही लगता। घमण्ड से भगवान् भी घबराता है। गर्व गैरत मे ले जाता है। 'अहम्' अवनति का सिहद्वार है।

स्वामी रामतीर्थ ने सफलता के सात नियम बतलाये है

१ परिश्रम, २ त्याग-बलिदान, ३ तीव्र लगन, ४ स्नेह-सहानुभूति, ५ प्रफुल्लता, ६ निर्भयता, और ७ आत्मविश्वास।

सत्यमेव जयते नानृतम्। साँच को आँच नही। दरोग (झूठ) को फरोग (रौनक) नही।

स्निग्ध-चाँदनी-को-पीकर-बौरायी रात मे स्वेद-सिक्त स्वर्ण-जुही का कोई

जवाब है ? भक्ति मे भीने मस्त मन के पास क्या कही रह गया सवाल है ? प्रेम मे पगी छलछलायी आँखे और अवरुद्ध कण्ठ को क्या कहना है ?

शरीर एक साधन-सामग्री है। एक सुदृढ नाव, जो गन्तव्य तक ले जाने मे समर्थ है।

जैसा तबला, वैसा ताल। जैसी ओढनी, वैसी चाल।

द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये
ज्योतिर्मय चन्द्रकलावतसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्ण
त सोमनाथ शरण प्रपद्ये ॥१॥

श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसङ्गे
तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुन मल्लिकपूर्वमेक
नमामि ससारसमुद्रसेतुम् ॥२॥

अवन्तिकाया विहितावतार
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्यो परिरक्षणार्थ
वन्दे महाकालमहासुरेशम् ॥३॥

कावेरिकानर्मदयो पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोङ्कारमीश शिवमेकमीडे ॥४॥

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने
सदा वसन्त गिरिजासमेतम्।
सुरासुराराधितपादपदम
श्रीवैद्यनाथ तमह नमामि ॥५॥

याम्ये सदङ्गे नगरेऽतिरम्ये
विभूषिताङ्ग विविधैश्च भोगै।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेक
श्रीनागनाथ शरण प्रपद्ये ॥६॥

महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्त
सम्पूज्यमान सतत मुनीन्द्रै।
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यै
केदारमीश शिवमेकमीडे ॥७॥

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्त
गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाश
प्रयाति त त्र्यम्बकमीशमीडे ।।८।।
सुताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबध्य सेतु विशिखैरसख्यै ।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पित त
रामेश्वराख्य नियत नमामि ।।९।।
य डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमाण पिशिताशनैश्च ।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धे
त शङ्कर भक्तहित नमामि ।।१०।।
सानन्दमानन्दवने वसन्त—
मानन्दकन्द हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथ
श्रीविश्वनाथ शरण प्रपद्ये ।।११।।
इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्त च जगद्वरेण्यम ।
वन्दे महोदारतरस्वभाव
घृष्णेश्वराख्य शरण प्रपद्ये ।।१२।।

सुगन्ध की चोरी। (जातक कथा)। (तु० हाइ प्रेसिजन इन्स्ट्रुमेण्ट)

एक समय की बात है कि जब ब्रह्मदत्त बनारस मे शासक थे, काशी के एक ग्रामीण ब्राह्मण-परिवार मे बोधिसत्त्व का जन्म हुआ। बडे होने पर उन्होने तक्षशिला मे शिक्षा पायी। पीछे चलकर वे सन्यासी हो गये और एक कमल-वापी (पुष्कर) (सरोवर) के पास (निकट) रहने लगे। एक दिन वे पोखरे मे (के भीतर) उतरे। एक पूर्ण-विकसित कमल (सरसिज) की मोहक सुगन्ध फैल रही थी। बोधिसत्त्व प्रतिवात (ली-वार्ड) (वातानुलोम) दिशा मे खडे होकर उस सौरभ (सुवास) (सुरभि) का सुख लेने लगे (सूँघने लगे)।

निकटस्थ वृक्ष-स्कन्ध के विवर (कोटर) (धोधर, खोखला) मे एक देवी रहती थी। बोधिसत्त्व को भयभीत करती हुई उसने (वह) पहला स्तवक (पद्याश) (छन्द) कहा (बोली) (पढा)

'जिस पुष्प को तुम सूँघ रहे हो, वह तुमको दिया नही गया, तुम्हारा है नही। यद्यपि यह केवल अकेला कुसुम (मुकुल) है। आदरणीय (माननीय, श्रद्धेय) महाशय, यह एक किस्म (प्रकार) (तरह) की तस्करी है, आप इसकी सुगन्ध चुरा रहे है।'

तब बोधिसत्त्व ने दूसरा पारा (अनुच्छेद) कहा

'न मैं पुष्प को तोड (छू) रहा हूँ, न उसे लिये जा (लेकर भागा जा) (ग्रहण

कर) रहा हूँ। मै दूर ही से उसकी सुगन्ध पा रहा हूँ। मै उससे दूर खडा हूँ और उसकी सुगन्ध स्वत आ रही है। पता नही तुम, (किस कारण) (क्यो कर) कैसे कहती (यह लाछना लगाती) हो कि मै सुगन्ध चुरा रहा हूँ (कि मै सुगन्ध का स्तेन हूँ)।'

उसी समय एक (अन्य व्यक्ति) आदमी कमल के पेड तोडे जा रहा था ओर पोखरे मे उनकी जडे कोड रहा था (कमल-तन्तुओ के निमित्त मिट्टी तक कोड रहा था।) उसको देखकर बोधिसत्त्व ने कहा—'दूर से सुमन-सुवास लेनेवाले को तो तुम स्तेन कहती हो, लेकिन तुम उस आदमी को क्यो कुछ नही कहती (वर्जित नही करती)? देवी से बात-चीत के दरम्यान बोधिसत्त्व ने तीसरा बन्द कहा

'जो मनुष्य कमल की जडे उखाडता है, उसके नाल तोडता है, उस आदमी के आचरण को उपद्रवी क्यो नही बतलाती (उसे बुरा क्यो नही मानती, कहती?)?'

उस आदमी से नही बोलने का कारण बतलाते हुए देवी ने चौथा और पॉचवॉ छन्द कहा

'उच्छृ खल (और असजित) आदमी (आदमियो के व्यवहार) ऐसे बीभत्स (घृणित) होते है कि वैसे आदमियो से बात ही (भी) (तक) नही करती (मूढमति से मै नही बोलती, मूढता को मन्त्रणा नही देती)। लेकिन मै (ने) तुम्हे (तुमसे) कहने (शिक्षा देने) (वर्जना) का अनुग्रह कर रही हूँ।

जब आदमी पवित्र हो जाता है, उसमे कोई बुराई, कोई भी गन्दा दाग (मैल, खामी, कमी, त्रुटि) कालिमा (कलक) नही रह जाती और वह विशुद्धता और शुचिता का उपासक बन जाता है (उसकी खोज मे निकलता है) (अनुगामी) (पवित्रता के लिए प्रयत्न करता है) (ध्येय या लक्ष्य, उद्देश्य बनाता है) वैसे पवित्रात्मा के लिये सूई की नोक बराबर पाप भी उसके व्यक्तित्व पर (के ऊपर) आकाश के (मे मँडरानेवाले) काले बादलो के सदृश प्रतीत होता (दीखता) है।'

देवी के द्वारा भयाक्रान्त हो बोधिसत्त्व ने भावपूर्ण (भावुकता मे) छठा छन्द प्रस्तुत किया

'निश्चय ही, हे देवी (परी, अप्सरा)! तुम मुझे अच्छी तरह जानती (पहचानती) हो, मुझपर करुणाक्त (दयाद्रवित) होकर ही तुमने (मुझपर) इतनी कृपा (अनुकम्पा) की। अगर इस तरह का अपराध करते मुझे फिर कभी तुम देखना, तो कृपया मुझे वारना (वारण करना) न भूलना। मुझसे फिर कहना, मेरी प्रार्थना मानकर (स्वीकार) (ना)। [मै प्रार्थना करता हूँ कि फिर दुबारे कभी यदि मुझसे ऐसी भूल (गलती) हो जाय, तो इगित (सकेत) करना (मेरा ध्यान आकृष्ट करना)]।'

इसपर देवी ने बोधिसत्त्व को सातवॉ (सप्तम) (सातवी बात कही) सार सुनाया

'मैं यहॉ तुम्हारी चेरी बनकर नही आयी हूँ। हमलोग तुम्हारे दास (भृत्य, भाडे का टट्टू) (सेवक) नही है। भाई! तुम्हे अपना रास्ता (मार्ग) स्वय खोजना (निर्धारित करना) पडेगा। आनन्द (सहजता) (और औचित्य) का पथ स्वय ढूँढना होगा।

(अपनी मुक्ति का मार्ग आप, स्वय, प्रस्तर बनाना होगा—निर्माण करना पडेगा।)'

इस भाँति (ऐसा) उपदेश (प्रबोधन) (प्रबोधित) (वचन बोल) देकर देवी अन्तर्हित हो गयी (अपने आवास मे प्रविष्ट हुई, चली गयी) (लुप्त हो गयी।)

तत्पश्चात् बोधिसत्त्व निर्विकल्प समाधि मे प्रविष्ट (लीन) (ध्यानस्थ) हो गये और उन्होने ब्रह्मलोक को प्राप्त किया।

जेतवन मे तथागत ने यह कहानी अपने शिष्यो को सुनायी और बतलाया कि उस पूर्वजन्म मे तथागत स्वय ही वह सन्यासी थे और वह देवी उप्पलवन्ना थी। तथागत ने यह भी समझाया कि पूर्वकाल मे ऐसी घटनाये अनेक बार साधुओ के साथ घट चुकी है। जब कि सुगन्ध की चोरी के लिये किसी देवी की भर्त्सना सुननी पडी। जबकि पुरातन मनीषी मुनियो (सिद्धो, ज्ञानियो), योगी-यतियो को फूल सँघते ऐसी सीख दी गयी (मिली)। (फूल सूँघने के कारण फटकार मिली)।

प्यार एक जहर है। उसे पीकर आदमी माता नही, होश-हवास खो नही बैठा, मरा नही, तो उसमे कृत्रिमता का शक-शुबहा होना क्षम्य है।

मनुष्य कोई (गा+था) गाथा नही है, वह जो है, उसके सिवा कुछ नही है। (विजय अमरेश)।

सगुण भगवान् इष्टदेव के रूप मे प्रकट होते है। निर्गुण भगवान् को पाने के लिये स्वय वैसा बनना पडता है। (स्वामी आनन्दानन्दजी)

वह खुदा नही, जो खुद+आ नही। वह जरूरतमन्दो के लिये (स्वय) (बिना किसी के गिडगिडाये) आता है।

"आइ विल लुक ऐज वेल ऐज आइ कैन, ड्रेस ऐज बिकमिगली ऐज पॉसिब्ल, टॉक लो, ऐक्ट कर्टिअसली, बी लिबरल विथ प्रेज, क्रिटिसाइज नॉट एट ऑल, नौर फाइण्ड फॉल्ट विथ एनीथिग ऐण्ड नॉट ट्राइ टू रेगुलेट नौर 'इम्प्रूभ' एनीवन।"

मै अपनी शक्ति के अनुसार अच्छा दिखने की कोशिश करूँगा। यथायोग्य कपडे पहनूँगा। मन्दस्वर मे बोलूँगा। नम्र व्यवहार करूँगा। उदार और प्रशसात्मक दृष्टि रखूँगा। किसी की भी आलोचना न करूँगा। न किसी चीज को दूसूँगा। न किसी का विनियमन करूँगा, न 'उन्नयन'।

"आइ बिल टेक केअर ऑव माइ बॉडी। आइ बिल एक्सरसाइज इट, केयर फॉर इट, नरिश इट, नॉट एब्यूज इट नॉर नेग्लेक्ट इट, सो दैट इट विल बी ए परफेक्ट मेशीन फॉर माइ बिडिग।"

मै अपने शरीर का खयाल रखूँगा—उसे कष्टसहिष्णु बनाऊँगा, उसके प्रति सावधान रहूँगा, पुष्ट बनाऊँगा। न उसका दुरुपयोग करूँगा, न उपेक्षा—ताकि वह मेरे प्रेरणा (निर्देश) का एक उत्कृष्ट यन्त्र बन जाय।

"आइ विल लर्न समथिंग यूसफुल। आइविल नॉट बी ए मेन्टल लोफर।"

मै कुछ ऐसी चीजे सीखना चाहूँगा जो उपयोगी हो। मै मानसिक काल-क्षेपक नही बनूँगा।

"आइ विल नॉट बी अफ्रेड टू बी हैपी, टू एनज्वाय ह्वाट इज ब्यूटिफुल, टू लव, ऐण्ड टू बिलीभ दैट दोज आइ लव, लव मी ।" (एस० एफ० पारट्रिज) ।

सुख (आनन्द) से उदासीन न रहूँगा । न यह चाहूँगा कि जो कुछ सुन्दर है, उसका आनन्द न लूँ, कि प्रेम न करूँ, कि यह विश्वास न करूँ कि मै जिसे प्यार करता हूँ, वह भी मुझे प्यार करता है ।

दु ख।

रे मानव ! तेरे दिल मे कही कुछ खोट है । कि जो कुछ तू चाहता है, हो नही पाता । कि जैसा तू चाहता है, हो नही जाता । एकान्त मे अपने मन से पूछ कि वह क्या चाहता है, क्या चाहता रहा है । अपने दिल-व-दिमाग मे झाँककर देख, मन को टटोल । अपने प्रत्यक्ष विचारो के झुरमुटो के भीतर उस नगी चाह को देख, जो न जाने कब से छिपी बैठी है । जो शर्मोहया के कारण बाहर नही आ पाती । सहमी, डरी, उपेक्षित, दबी-दबायी, उस गुप्त भावना से पूछ, जो अन्धकार का दुपट्टा खोकर रोशनी से कतराती सकुचाती है । जिसकी प्रेरणाओ की, जिसके अज्ञात हाथो मे, तू लुकी-छिपी कठपुतली बना फिरता है । जाने-अनजाने । विज्ञ या अनभिज्ञ । तू बरबस लूट लिया गया है या तू ने (स्वय) स्वेच्छया (स्वेच्छा से अपने को) लुटा (लुटवाया) है । जो-जो खरीदना है, उसका दाम चुका और माल उठा । जितना लेगा, उतना दे । ब्योपार (व्यापार) बढाने के लिये लागत लगा । सुख (पाने) सहने के वास्ते दु ख झेल (बटोर) ।

दु ख (तो) है । दु ख का कारण (जो) है । दु ख का निवारण (भी) है । दु ख-निवारण का रास्ता (के रास्ते)—एक (आध्यात्मिक) नुस्खा

१ दु ख के कारण का ज्ञान ।
   (अ) अकारण कुछ भी नही होता । प्रत्येक घटना (फल) के पीछे उसका कारण (छिपा) है ।
   (आ) कर्म के फल से बचना नामुमकिन है । आज न कल, कभी-न-कभी, कर्म फलेगा ही । यह अवश्यम्भाविता अकाट्य है । अनिवार्य है ।
   (इ) कारण मिट जाने से उसका फल मिट जायगा । दाद छूटेगा, तो खुजली खत्म हो जायगी । दीप बुझेगा, तो प्रकाश चला जायगा ।
   (ई) दु ख के कारण को खोजिये ।
   (उ) दु ख के कारण को हटाइये ।

२ दु ख की अनित्यता का भाव ।
   (अ) सभी कुछ अनित्य है ।
   (आ) जिसकी सृष्टि हुई है, उसका नाश होगा ।
   (इ) जो है, वह नही रहेगा ।
   (ई) दु ख का अन्त निश्चित है ।

(३) दुख का तटस्थ भाव से अवलोकन ।

(अ) दुख को देखिये ।

(आ) जहाँ दुख है, वहाँ ध्यान दीजिये, वही ध्यान लगाइये ।

(इ) दुःख को पहचानिये । उसका विश्लेषण कीजिये ।

(ई) उसे देखते रहिये । देखते रहिये । बहिःकरण से । अन्तःकरण से ।

(उ) दुख से प्रभावित मत होइये । न प्रफुल्लित होइये, न द्रवित । न उसके विषय मे सोचिये, न राय कायम कीजिये । मस्तिष्क मे जो विचार पैदा हो, उनको आने-जाने, बहने-उफनाने, दीजिये । आप न उन्हे बुलाइये, न भगाइये । आप न उनमे (भी) दिलचस्पी लीजिये, न उनसे कोई सम्बन्ध जोडिये । न उत्तेजित होइये ।

(ऊ) दुख शरीर मे (को) है । विचार मस्तिष्क मे उगते-डूबते है। दुख और उसका प्रभाव आपकी काया से सम्बद्ध रहे तो रहे, आप से न रहे। वे आपको बेचैन न करे । काया आपकी है सही, पर आप मृत्यून्मुख काया नही है । आप अमर आत्मा है ।

तटस्थ भाव से दुख को देखिये । बस देखते रहिये ।

(४) दुख-निवृत्ति (परिहार), (निवारण), (निराकरण) के प्रति उदासीनता, अप्रयत्नशीलता और अनिच्छा (अचाह) ।

(अ) दुख, दुख का प्रभाव और दुख का परिणाम । इन तीनो से बचने की चाह (इच्छा) से अपने मानस को रिक्त कर लीजिये ।

(आ) दुख मिटाने का प्रयास भी एक यज्ञ-कर्म हो । उसके फलाफल से आप मुक्त रहे ।

(इ) दुख रहे या मिटे, इसके प्रति आपकी कोई इच्छा (चाह, वाछा) न हो । न भागिये (बचने की चेष्टा), न भगाइये (बचाव का प्रयास) । आने दीजिये । रहने दीजिये । बिना किसी फल की इच्छा से उद्वेलित, उत्प्रेरित हुए, दुख के प्रति यथोचित कर्म तटस्थ भाव से कीजिये ।

लडाई के मैदान मे बहादुर सिपाही की तरह हार-जीत की भावना से मुक्त हो, खडे रहिये, लडते जाइये।

(ई) कर्म-फल का जो विधान है, उसके प्रति न्याय कीजिये । दुख का इलाज उचित ढग से हो । जैसे कोई डॉक्टर करता है ।

(५) सुख की चाह (प्रलोभन) छोड दीजिये ।

(अ) सुख-दुख के प्रति अनासक्ति । सुख के आकर्षण से मुक्ति । न सुख का चहेता बनना, न दुख से त्रस्त (भयभीत) होना । अप्रमाद के साथ दुख को झेल लेना ।

दु ख मिटाने का उचित उपाय करने हुए (रहते) भी उससे त्राण (छुटकारा) पाने के लिए व्यग्र न होना।

(आ) ज्ञान-चक्षु से देखिये, अनुभव कीजिये, कि सुख मे दु ख और दु ख मे सुख सदा घुला हुआ है।

(इ) सुख क्षणिक और दु खदायी है। उसका आसरा-भरोसा मत कीजिये। 'सब दिन रहत न एक समान।'

(६) (अ) ध्यान, (आ) धारणा, (इ) समाधि। इनकी मदद ले सके, तो ले।

(७) (अ) ईश्वर-प्रणिधान।

(आ) प्रायश्चित्त।

(इ) प्रार्थना।

ये तीनो बल के स्रोत होगे। दु ख सहने का सामर्थ्य प्रदान करेंगे। प्यारे की चपत भी प्यारी होती है। नही क्या ?

ईश्वर-प्रणिधान से 'अहम्' मिटेगा। प्रायश्चित्त पापो को जला डालेगा। प्रार्थना से शक्ति मिलेगी। न रोग रह जायगा, न भोग। 'योग' का एक अखण्ड दीप जल उठेगा—अक्षर, अमर, चिरन्तन।

यह (उपर्युक्त) नुस्खा मैने श्रीपुण्डरीकधर परमपवित्र चौदहवे दलाईलामा (वागिन्द्रसुमतिशासनधर-समुद्र) जी-कृत 'बौद्धसिद्धान्तसार' के आधार पर तैयार किया है। 'ईश्वर' से सम्बद्ध 'दवा' मैने स्वय जोडी है। यद्यपि इस 'धृष्टता' के लिये, क्या बताऊँ, एक खास जरूरत प्रत्यक्ष महसूस करने लगा हूँ। किसी कारण-वश। आप जानना चाहेगे ? तो आइये, सुन (पढ) लीजिये। ईश्वर की आवश्यकता क्यो और कहाँ आ पडी ?

जिन्दगी बसर करने के कई तरीके हो सकते है। जैसे

(क) येन-केन-प्रकारेण अपनी सुख-सुविधा की व्यवस्था करना।

(ख) अपने लिये सुख-सुविधा बटोरते (इकट्ठा करते) समय दूसरो (के हित या आवश्यकता) का भी खयाल (ध्यान) रखना।

(ग) अपनी जरूरतो से अधिक दूसरो की जरूरत, और अपने अधिकार से बेशी औरो के अधिकार (और उनकी सुख-सुविधा) को श्रेय देना।

(घ) त्यागी और अचाह बनना। अपने लिये कुछ भी न चाहना। कुछ भी इकट्ठा न करना, न सचय करना। किसी पर अपना अधिकार न मानना। दूसरो के अधिकार की अवहेलना न करना। तप और त्याग को जीवन-ध्येय बनाना।

(ङ) ऐहलौकिक (सामाजिक और सरकारी) कानूनो का अनुसरण कर (चल) ना। नियत कर्म करते जाना। बदले मे कुछ भी न माँगना-चाँगना। न फलाफल

पर ध्यान रखना, न सफलता-असफलता की बात सोचना। न त्याग-तपस्या की।

(च) ध्यान और समाधि के जरिये (द्वारा) विशिष्ट अनुभूतियो से पार्थिव जीवन को मुक्तिदायिनी बनाना, समृद्ध करना। ध्यान और समाधि के द्वारा यह जान लेना कि,—

(अ) जीवन दु खमय है।

(आ) जीवन अनित्य और असार है।

(इ) जीवन अनात्मता (परमात्मा) का अखण्ड प्रवाह है।

आध्यात्मिकता की राह पर अग्रसर (विकसित) होने के लिये उपर्युक्त सोपान तक परमात्मा की अपेक्षा-आवश्यकता नही दीखती (प्रतीत होती)। इतना-भर शायद आदमी अपने बूते कर ले। (तु० बौद्ध और जैनधर्म)।

लेकिन, अनीश्वरवादी आदमी (मस्तिष्क) इस स्थिति (प्रतीति) के आगे न जा सकेगा। वही रुक जागगा, अवरुद्ध हो जायगा, अपने ही द्वारा फैलाये मानसिक जाल मे फँस जायगा। वह जीवन-मृत्यु, सुख-दु ख, पुनर्जन्म-मुक्ति इत्यादि के पचडे मे पडा दु ख गीजता तथाकथित मुक्ति के पीछे परेशान रहेगा। उसे स्वय ही सब कुछ करना पडेगा, और अपने बूते-भर ही। उसकी हद वही तक है, जहाँतक उसकी अपनी कूबत (शारीरिक, मानसिक) उसे ले जाय। वह अपना साक्षी आप होगा। अपनी पतवार अपने ही हाथो मे रखेगा। वह वही तक देख पायगा, जहाँतक उसकी अपनी दृष्टि जा सकेगी। वह गन्तव्य और लक्ष्य की कल्पना करेगा, लेकिन उसे जान नही पायगा। उसका मस्तिष्क उसे जो कहेगा, वह सब उसे मानना पडेगा, उन सब पर विश्वास करना पडेगा।

'जहाँ स्थायित्व (सत्), चेतना (चित्) और प्रियता (आनन्द) नही है, वहाँ वास्तविक जीवन नही है।' (योगानन्ददास)

'जो न चाहने पर भी आ जाता है, वही दु ख है और जो चाहते हुए भी चला जाता है, वही सुख है।'

'यदि साधक दु ख की तीव्रता से प्रभावित होकर असगता-पूर्वक स्वाधीनता के साम्राज्य मे प्रवेश नही पा सकता, तो अन्य किसी प्रकार स्वाधीनता प्राप्त करना सम्भव नही है।'

दु ख—असगता—स्वाधीनता। सुख-भोग की रुचि (इच्छा)—पराधीनता। दु ख का प्रभाव—सुख-भोग की रुचि (इच्छा) का नाश—पराधीनता से मुक्ति—स्वाधीनता।

जब दु ख आ पडे, तब दु ख के साथ (सम्बन्ध मे) (को लेकर) (को) (से) हम क्या कर सकते है ?

(१) दु ख के निवारण की कोशिश (चेष्टा) करना। तत्सम्बन्धी उपाय करना।

उसके कारण (मूल) (जड) (हेतु) का पता लगाकर उसे जड-मूल से विनष्ट करने का प्रयास करना ।

(२) तटस्थ भाव से यथोचित करना ।

(३) दुखी होना । कपार पीटना । क्रन्दना । भाग्य को कोसना । दुख देनेवाले को विनष्ट करने के घात मे रहना । प्रतिशोध की ज्वाला मे दग्ध होना, जलना । भगवान् को (पर) फब्तियाँ सुनाना (कसना) गालियाँ बौछारना । बेचैन, अशान्त, आहत और भ्रान्त होना ।

(४) दुख से भागना । इस उधेड-बुन मे निशि-वासर (रात-दिन) पडे (लगे) रहना कि किसी प्रकार (भाँति) का दुख कभी न आये । कभी किसी तरह न व्यापे । कभी दरपेश न हो, कभी दूबदू न हो ।

(५) दुख का दबदबा (रोबदाब, प्रभुत्व) मानना । दुख मे दबकना, दबना । दबोचने देना । दुर्निवार मानकर हतप्रतिभ होना । दहशत मे रहना ।

(६) दुख से छुटकारा पाने के लिए छटपटाते रहना । हाय-तोबा मचाना । मन्नते मानना । दाँत निपोरना । आसमान-जमीन एक करना । गिडगिडाना । दर-दर की धूल छानना । आँसू चुलाना । आत्मबल खोकर दिवालिया, दरवेश और दरिद्र बनना और मानसिक असन्तुलन के दलदल मे फँसना, दफना दिया जाना । ज्ञान को ताख पर रखकर जाने (ज्ञात, अनुभूत) हुए का अनादर करना ।

(७) दुख के दरम्यान, दुख-दशन (के) काल मे, किसी दुष्प्राप्य, दैवात् सुख की आशा और कल्पना करते रहना और उसकी प्रतीक्षा मे समय गँवाना, मनसूबे बाँधना । सुख भोगने की लालसा रखना । परिस्थिति कुछ प्रातिहार्य (चमत्कार) दिखला देगी । कही से कोई 'सुख' ला (दे) देगा । लाकर दे देगा । प्रत्याशा । पराधीनता । परमुखापेक्षिता । दमबाजो (दम-दिलासा दिलानेवाले) की दरबारदारी (चापलूसी) करना । दुख भोगते हुए सुख के दुस्वप्न देखना । सुख की भीख माँगना । दाँत निपोडना ।

(८) दुख और सुख एक ही सिक्के के दो पहलू है । इसका ध्यान (न) रहना । द्वन्द्व, जोडा, युग्म ।

(९) दुख भी और सुख भी दोनो परिवर्त्तनशील, अस्थायी, 'क्षणिक' हे । यह विवेक खो बैठना अथवा बचा रखना ।

(१०) दुख के दर्शन से सुख की अनित्यता, सुख की क्षणिकता, सुख की परिवर्त्तनशीलता का एहसास होना । क्योकि, सुख आकर चल दिया, चला गया । आते ही जाने लगता है (तु० जन्म-मृत्यु), जाने लगा । सुख को रोक रखना चाहते थे, वह न रुका । सुख को दिलवर और दिलरुबा मान रखा था । उसके पीछे दीवाना थे । पर वह दगा दे गया । उसके चले जाने से ही जो बचा रह गया, वही दुख था । सुख जो पलटा, तो वह दुख-सा दीखने लगा । वह दुख था ही । जाकर वह दुख को

ही छोड गया। मुँह फिराकर दु ख बन गया। जब आया था, उसके जाने का भय लगने लगा था। जहाँ से आया था, जिससे प्राप्त हुआ था, उस परिवेश, परिस्थिति और उस प्राणी से परवशता, पराधीनता, प्राप्त हुई थी। सुख को बढाने (वृद्धि) और सुख को बचाने की कोशिशे की, साजिशे की, लेकिन न चाहते हुए भी वह चला गया, चला गया, चला गया! उसका जाना था कि दु ख ने घेर लिया। जैसे-जैसे वह चला जा रहा था, दु ख वैसे-वैसे, उसी राह से, उसी के पीछे-पीछे चला आ रहा था। जैसे दिन जाने पर रात का दमामा (नगाडा, डका) बजने लगा हो। सुख का दर्पण था, लेकिन उसमे दु ख की आकृति झाँक रही थी। जहाँ सुख दम तोड रहा था, वहाँ दु ख दन्तार द्विरद (हाथी) की तरह पहले से ही खडा दिखायी दिया। और, जरा गौर किया, ठीक से देखा, नजदीक से, तो क्या देखता हूँ कि दु ख सुख की छाया है और सुख दु ख का प्रतिबिम्ब है, कि दोनो जुटे हुए है, मिले हुए है, 'चोर-चोर मौसिऔत भाई', गिरह-कटो के गैंग के सदस्य, हसकर एक लूट रहा है, दूसरा रोकर ठग रहा है। दोनो की साजिश है। मिट्टी पलीद कर रहे है, दोनो। दरिद्र बना रहे है, कमजोर कर रहे है, पराधीनता लाद रहे है।

जब सुख नाटक खेलता है, तब दु ख टॉर्च मारता है, स्टेज बन जाता है। जब दु ख नौटकी दिखलाता है, तब सुख सूत्रधारी करता है, विदूषक बनता है, पर्दा खोलता-खीचता है, रोशनी को इधर-उधर बहकाता फिरता है, चकाचौध करता है, अशान्त और भ्रान्त बनाता है। बदमाश! धौस दिखलाकर धोखा देते है। नकली। मुखौटा पहनते है। 'शक्ल चुडैल की, चाल चले परियो की'। दगधने मे दक्ष। द्विविधा मे डालकर दमबाजी करते है। हाँक (हाँके जा) रहे है। दोनो दुस्तर और दुर्निवार है। दखल देते रहते है। हस्तक्षेप करते रहते है। आते है अपने मन से, जाते है अपने फन (मन) से। बेकार रिझाते-लुभाते, डराते-धमकाते रहते है। न किसी की दरखास्त सुनते है, न बात मानते है, वैरी सिर्फ दिलजोई, दिलशिकनी के फेरे मे रहते है, डोरे डालकर लात मार देते है, कलेजे मे साटकर खून चूस लेते है। दिल मे एक दाग, एक दलक, एक टीस, एक दर्द, भर तो देने आते है और दिल भरने के पहले कही सरक जाते है। दरक जाते है।

(११) अपने ज्ञान (निज ज्ञान) के प्रकाश मे प्रत्यक्ष देखना कि सुख-दु ख एक चक्रिल तमाशा है। एक जिन्दगी का पहिया। न सुख के बगैर दु ख है, न दु ख के बिना सुख। साँप का मुँह काटने के लिये, पोछ (पूँछ) बाँधने-लपेटने के लिये।

(१२) सुख और दु ख की असली सूरत पहचान कर, उन दोनो से अलग हो जाना। उनके प्रति तटस्थ भाव रखना। उनके फेरे मे न पडना। बात मे न आना। फन्दे (जाल) मे न फँसना। न सुख की चाह रह जाय, न दु ख का भय। छले न जाना। ठगाना न।

(१२) सुख-दु ख की लाश पर सीधे खडा हो, पूर्ण स्वतन्त्रता, निर्ममता, निर्भयता

और निर्विकल्प मुक्ति को प्राप्त होना। आनन्द का रसास्वादन करना। परमात्मा और उसके मगलकारी विधान का साक्षात्कार कर विकासोन्मुख होना। कॉटो के बीच कली का मुस्काना, फूल फूटना। फल लगना।

सुख-दुख के दरिया मे, सैलाब मे, डूबिये नही, डूब मत जाइये। कम-से-कम उतराते भी तो रहिये, तैरने नही आता है, तो हाथ-पॉव मारिये, पटकिये।

सुख-दुख रिलेटिव है, रिलेटेड भी है। सापेक्ष। सगे-सम्बन्धी। एक दूसरे पर निर्भर, आश्रित।

सर्वांश मे न सुख हितकर है, न दुख। न दुख सेण्ट-पर-सेण्ट हानि करता है, न सुख। न अत्यधिक दुख सहा जाता है, न अत्यन्त सुख। भोगा नही जाता। विह्वल बना देता है। व्याकुल।

सुख के दूध मे दमडी-भर दुख जोरन का काम करता है, कैटेलिस्ट (उत्प्रेरक) का।

सुख अथवा दुख का तूफान आया हो, तो साहस, प्रज्ञा और परमात्मा का सहारा लेकर उबरिये।

सुख को दॉत लगाये फिरते है, इसीलिये दुख का रुतबा बिगडा रहता है, वह अपना प्रभाव और चमत्कार नही दिखला पाता। यह दुख ही है न, जो आपकी राह मे जाकर, हटकर, आपके लिये सुख का सग छोड जाता है? यह दुख ही है न, जिसने आवश्यकता और असुविधा और अनादर का सर्जन किया और बडे-बडे आविष्कारो का जनक बना? (तु० ब्रेल-अक्षरो का अविष्कार)? महान् कलाकारो, (तु० सूरदास, कालिदास, वाल्मीकि) कवियो, साहित्यिको, वैज्ञानिको आदि विशाल व्यक्तित्वो का जो प्रेरक रहा, उनकी कर्म-क्षेत्रभूमि प्रस्तुत की और पृष्ठभूमि बना, कि जिसके प्रताप से भगवान् बुद्ध तक का अवतार हुआ? (तु० परमहस रामकृष्ण, तुलसीदास)।

क्या यह ऐतिहासिक और समयसिद्ध नही है कि मानवता के उत्थान, उसकी प्रगति और उसके विकास के पीछे दुख का ही दक्ष हाथ रहा, न कि सुख का? क्या यह सत्य नही है कि दुख की कसौटी पर कसे जाने के बाद ही कोई व्यक्तित्व उदात्त, अनुकरणीय, ठोस और महान् बन सका? क्या यह सही नही है कि दुख की आग मे विदग्ध (होकर) ओर परीक्षित (ज्वाला मे जलकर) ही कोई पूजित हो सका? कोई देवता बन सका?

दुख का दामन पकडकर ही कोई दीन को खोजने निकलता है। वर्ना ईश्वर को कौन पूछता है? अपने कौल-करार के मुताबिक द्रवीभूत भगवान् भी दुखियो के दर पर ही आता है, उन्ही के दिल-व-दिमाग मे दमकता-चमकता है, दिष्ट होता है, दरीचा (झरोखा) से झॉकता है।

दुरित (छोटा पाप, पातक) छोटा पापी बनाता है, जघन्य पाप बडा पापी। छोटे दुख का दमन-शमन करनेवाला छोटा पहलवान कहा जायगा, अपार दुख का विजेता दुर्जेय कैसियस क्ले, महावीर, पराक्रम-पुरुषार्थ-शक्ति-सामर्थ्य-बल-पौरुष का प्रतीक माना जायगा।

जो अखाडा से भागा, या वहाँ गया ही नही, उसका न पैर पूजा जायगा, न हाथ।

सुख-भोग से शक्ति घटती है। दुख सोये हुए सामर्थ्य को जगाता है। आहत नाग फुफकारता है, भूखा शेर झपटकर आक्रमण करता है। आपदा और आपत्ति की खाद खाकर शौर्य चमकता है, साहस दमकता है। कोई शहीद ही सुनीति सिह बन सकता है, कोई बलिदानी ही प्रभावती नारायण। कोई दुखी ही कार्ल मार्क्स, लेनिन, गान्धी और क्राइस्ट बन सकता था। मृत्यु का वरण ही अमरता है। रूई के फाहे पर अगूर भी सड जाता है, गलीचे पर रुग्णता भी गल जाती है। गलीज बन जाती है।

दुख से हारकर बैठ जाना विकास का बाधक है।
पुरुषार्थ की पूर्णता दुख के प्रभाव (असर) मे ही है।
दुख असमर्थता का अन्त कर आसक्तियो से मुक्त करता है।
अभिमान का नाश, जडता का अपहरण और सजगता का जागरण करता है।
दुख से फायदा उठाने का एक दकीका बतलाते है। एक युक्ति, एक उपाय। —?

दुख को अपना लो और सुख का आवाहन मत करो। सुख की दासता और दुख के भय से बचो। बचाओ। बचे रहो।

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिहँसि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभ, जीवन मरण, यश अपयश बिधि हाथ॥

(रामायण तुलसीदास)

न सुख के भोगी बनो, न दुख के। दुखके रॉकेट पर चढकर स्वाधीनता के साम्राज्य मे प्रवेश कर जाओ। दुख से डरो नही, भयभीत मत हो। उसे गले लगाओ। उसका सदुपयोग करो। 'जिस मगलमय विधान से दुख आया है, उसने दण्ड नही दिया है, अपितु मानव के हित के लिये दुख का प्रादुर्भाव किया है। विधान उस अनन्त का प्रकाश है, जो सभी का परम सुहृद् है। अतएव, दुख भोगने के लिये दुख नही दिया गया है। दुख सुख की दासता से मुक्त करने के लिये आया है।' सुख की आसक्ति से, पराधीनता और पराश्रय से, छुडाने आया है। मानस को उन्मुक्त कर स्वच्छन्द और निर्द्वन्द्व बनाने आया है। यही एकमात्र अमोघ औषधि है—बस यही, बस एकमात्र, दवा, रामबाण—जो सब विधि, सर्वतोभावेन, सर्व-प्रकारेण, सर्वाश मे मुक्तिदायिनी है। और कोई दूसरा उपाय नही है। कोई अन्य राह नही, जो स्वाधीनता के पावन प्रागण मे प्रवेश दे। जो असीम अनन्त आकाश मे

आसीन कर दे। गगन की गहनता, गाम्भीर्य और गीत प्राणो मे भर दे।

'जबतक साधक सुख के महत्त्व मे आबद्ध रहता है, तबतक दु ख से भयभीत होता है और तबतक दु ख से भयभीत रहता है, तबतक सुख का आवाहन करता रहता है।' तबतक दीन-हीन और दो कौडी का तीन बना रहता है।

'प्राकृतिक नियमानुसार प्रत्येक सुख के आदि और अन्त मे दु ख का प्रादुर्भाव स्वत होता है।'

'दु ख का प्रभाव ही दु ख की निवृत्ति मे हेतु है। इस महामन्त्र को अपनाना मानव-मात्र के लिये अनिवार्य है। दु ख के प्रभाव के अतिरिक्त सर्वाश मे दु ख की निवृत्ति कभी सम्भव नही है। ऐसे महत्त्वपूर्ण दु ख के प्रभाव से अपने को वचित रखना, अपने द्वारा ही अपना सर्वनाश करना है।'

दु ख ही दु खी को दु खहारी से अभिन्न करता है।

यदि दु ख न होता, तो कौन मद्धर्म अपनाता और क्यो कर भगवान् बुद्ध का अवतार होता। अगर दु ख न होता, तो अध्यवसाय की डगर पर कोई क्यो अग्रसर होता ?

सुख-दु ख मे जो 'सार'-ता-'असार'-ता अध्यस्त (भ्रम-रूप मे अधिष्ठित) है। वही अध्यात्म को अकुरित करती है, नीव डालती है। निर्वाण का पथ प्रशस्त करती है। जिज्ञासा जगाती है। यह न सिर्फ सुख के हाथ की बात थी, न केवल दु.ख के बूते की। दोनो का होना अनिवार्य था। मानव-मन दोनो मे भीगकर, दोनो से आहत और निराश होकर ही,सत्य का साक्षात्कार करता है, सृष्टि के मर्म को समझ पाता हे। इस द्वन्द्व के द्यूत मे जीवन का दॉव लगाकर ही कोई विजयी खिलाडी निर्द्वन्द्व बनता है। गुणातीत होता है। विकास को प्राप्त होता है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। कष्ट कल्याण का जनक है। कोई बुद्ध शरण क्यो, काहे को, गमिष्यति, जाता है ? और, गत्वा क्या पाता है।

सुख-लोलुपता खोखला बना डालेगी। सुख मनुष्य को पागल कर देगा, अगर दु ख का कवच न हो।

प्रत्येक परिस्थिति सुख और दु ख दोनो से युक्त है। फिर, इन दोनो दरिन्दो से कतराना, बचना, कैसे सम्भव है ?

दु ख को भोगते रहना (सहते रहना) दु खी होते रहना और कष्ट पाते रहना, मानसिक असन्तुलन और अस्तव्यस्तता और ह्रास का शिकार बनना, अथवा सुख-सम्पादन के लिये प्रयास करते रहना (सुख की आशा और लोलुपता मे आबद्ध रहना, बॅधना) — इन दोनो दशाओ मे आदमी दु ख-सुख की प्राप्त परिस्थिति का दुरुपयोग करता रहता है। सुख-दु ख को जीतकर जब आदमी सुख-दु ख से अतीत (परे) जीवन मे प्रवेश पाता है, तब वही विजेता मानव को पहली बार शुद्ध और सच्ची और असली स्वतन्त्रता का साक्षात्कार होता है। जीत तभी होगी, जब अखाडे मे दु ख से लडाई होगी और दु ख को पटकने का मौका हासिल होगा। मात्र दु ख को

ललकारने या उसे देखकर अधीर ओर भयभीत होने या उससे पटका जाने से कोई फायदा नही, अपितु हार, ह्रास और हँसी (उपहास) की ही प्राप्ति होगी। विकास न सिर्फ रुकेगा, बल्कि पतन (अवनति), परवशता और परिह्वति (नाश, क्षय) को प्राप्त होगा। ऐसे अभागे लापरवाह और गैरजिम्मेवार आदमी का व्यक्तित्व कुण्ठित और परिच्छिन्न (सीमित और विभाज्य) होकर रह जायगा। प्रगति और मुक्ति का मौका आकर व्यर्थ चला जायगा।

कामना-निवृत्ति से शान्ति और विश्राम की अभिव्यक्ति होती है। यह सबके लिये सर्वदा साध्य और सम्भव है।

दु ख का अपना खास महत्त्व है,अपनी विशेष महिमा। दु ख अभिशाप-सा लगता है, वह आशीर्वाद (वरदान) बनाया जा सकता है।

सुख-दु ख का कण्टक, पचडा, झझट, बन्धन, क्षोभ, प्रदाह, अनिश्चितता, असगतता, उग्रता, अनिवार्यता, दुर्ग्राह्य भ्रामकता, तथा अनिष्टता सुख-दु ख से परे जीवन की जिज्ञासा तथा उसके लिये उत्कट लालसा (माँग) जागरित करता है।

दु खियो को देख करुणित (करुणा, ममता नही) तथा सुखियो को देख प्रसन्न होना चाहिये।

'प्राकृतिक नियमानुसार जो देखने मे आता है, उससे द्रष्टा किसी-न-किसी अश मे अलग हो जाता है' (तुलनात्मक विरोध,—अस्तित्ववाद, एग्जिस्टेन्शियलिज्म)।

'यह नियम है कि जिसका न होना अपने मे असह्य व्यथा जागरित करता है, वह स्वत होने लगता है, कारण कि वर्त्तमान की वेदना ही भविष्य की उपलब्धि है।'

'जिसकी आवश्यकता नही, उसकी प्राप्ति भी नही होती' (तुलनात्मक विरोध,— वशागत सम्पत्ति, थोपी हुई बडाई)।

मगलमय विधान से सुख-सुविधा, बल-पौरुष, ज्ञान-विज्ञान, सेवा के लिये मिला है, भोग के लिये नही। पर, यह रहस्य तभी खुलता है, जब साधक आये हुए दु ख के प्रभाव से त्याग को अपनाता है और सुख-दु ख से अतीत वास्तविक जीवन से अभिन्न हो जाता है। 'सुख के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान और उसके सदुपयोग का सामर्थ्य दु ख के प्रभाव मे ही निहित है।'

'दु ख जितना गहरा हो, उतना ही हितकर है, किन्तु दु ख आते ही सुख का आवाहन करना दु ख का भोग है, दु ख का प्रभाव नही। दु ख के भोग से दु खी अधीर हो जाता है (सुख का भोक्ता भी) और कभी-कभी तो वैसा करने लगता है, जैसा नही करना चाहिये और वह मानने लगता है, जो नही मानना चाहिये। इस कारण दु ख का भोग दु खी के विकास मे बाधक है, किन्तु दु ख का प्रभाव दु खी को सजग तथा स्वावलम्बी बनाता है और दु खी सर्वांश मे दु ख का अन्त करने के लिये अथक प्रयत्नशील होता है। यह नियम है कि जो हार स्वीकार नही करता, वह विजयी अवश्य होता है। अत, दु ख का आदरपूर्वक स्वागत करते हुए सतत प्रयत्नशील

रहना है। सफलता अनिवार्य है।' (मानव-सेवा-सघ) (तु० महाराजा हरिश्चन्द्र। रावण नही होता, तो क्या रामायण लिखी जाती ? भारत तथा बॅगला देश का स्वतन्त्रता-सग्राम। म० गान्धी। फील्डमार्शल मानेक्शॉ)।

सुख सुख के भोगी को पराधीनता, जडता एव अभाव मे आबद्ध करता है। (कामनाएँ अनेक होती है। एक कामना अनेक कामनाओ की जननी है, शाखाओ-प्रशाखाओ की। न सभी कामनाएँ पूरी हो सकती है, न 'अभाव' और उसका भाव, उसकी व्यथा मिट सकती है, न चाह)। 'सुख-भोग की रुचि ज्यो-ज्यो सबल होती जाती है, त्यो-त्यो बेचारा सुखी अपने अस्तित्व को ही खोता जाता है। उसके व्यक्तित्व मे वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि का ही महत्त्व अकित होता जाता है। उन्ही के आश्रित वह अपने को दीनता तथा अभिमान की अग्नि मे दग्ध करता रहता है। दु ख का प्रभाव प्राणी को सुख का भोगी नही रहने देता, अपितु सुख का सदुपयोगी बना देता है। सुख का सदुपयोग पर-सेवा मे है। सेवा सेवक को विभु (तेज-सम्पन्न, महान् ऐश्वर्यशाली) करती है और सुख का भोग भोगी को सीमित बनाता है।' 'जो साधक सार्वजनिक दु ख से पीडित है, वे अत्यन्त सुगमतापूर्वक आये हुए सुख का सदुपयोग करने मे समर्थ होते है।' व्यक्तिगत दु ख से दु खी मे भी जागर्त्ति आती है। जीवन इतनी बडी जवाबदेही है और इतना जरूरी कि सिर्फ अपने बूते पर जिन्दगी की नाव ले चलने के बजाय साथ मे एक केवट को ले लेना होशियारी और दूरदर्शिता होगी। अर्जुन के सारथी की तरह। राम की भॉति।

परमात्मा के हाथो मे प्रत्येक प्राणी एक पेण्डुलम की नाई, बे-विराम, आदि से अन्त तक, दो विरोधी (उल्टे) छोरो के बीच, टिक्-टिक्-टिक्-टिक्, चलता रहता है, विवर्त्ती वेश्म मे विलम्बित।

'सुबह होती है, शाम होती है
जिन्दगी यूँ ही तमाम होती है।'
'उम्र-दराज मॉग के लाये थे चार दिन,
दो आरजू मे कट गये, दो इन्तजार मे।
कह दो इन हसरतो से, कही और जा बसे,
इतनी जगह कहॉ है दिले-दागदार मे।'

दु ख क्या वस्तुत बुरा है ?
क्या यह विधाता की भूल है ?
क्या यह दुष्कर्मो का फल है ?
क्या यह प्राकृतिक विधान का दण्ड है ?
क्या यह ईश्वर का अभिशाप है ?
क्या यह शैतान की हड्डी है ? करिश्मा ?
क्या यह मानव-मन का भ्रम है ?

क्या यह निरर्थक स्वत स्फुरित जहरीला—मशरूम (गोबरछत्ता, कुकुरमुत्ता) है ?
क्या यह सृष्टि के काल-चक्र मे भेदभरी, रहस्यमयी, भूलती-भटकती परिरक्षित ममी (सूखा शव) है ? एक डायन ? एक मायाविनी ?
क्या यह एक निश्चित अनिश्चितता है ?
क्या यह सुधासिक्त वरदान है ? करुणासागर की अनुपम देन ?
माँ की गोद। नवोढा के नखरे। कारावास की यातना। कैन्सर का रोग। लॉटरी की दौलत। सयोग। वियोग। टिकोला का पकना और चू जाना।

'पीअर मुअल पुरान पतइआ झटपट अब झर जाई।
ओ जगहा नइकी आ जाई, जेमे फूल फुलाई।'
'आज बसन्त समाइल सबका मन मे
बन बागन मे कुज कुजन मे
सर सरितन का तन मे
लतर-लतर का गतर-गतर मे
पेडन मे, पौधन मे
पतइन मे, कलियन फूलन मे
आमन मे, महुअन मे
मन्द पवन मे, नवका अन मे
रबिहन मे, तेलहन मे
कोकिल कूकन मे, कनकन मे
भॅवरन का भनभन मे
ना बसन्त आइल कउवन मे
ना आइल बकुलन मे।' (आ० महेन्द्र शास्त्री)

युग-युग से बदनाम दुख का (एक) उज्ज्वल पक्ष भी है।
दुख का भोग शाप है।
दुख का प्रभाव आशीष।
'भोग' और 'प्रभाव' मे अन्तर है।

दुख की प्रतीति मे सुख की आशा जगना—जडता का जन्म—दुख को सहते रहना और दुख के कारण की खोज न करना—यह सब दुख का भोग है।

दुख का सुख मे भी दर्शन करना—चेतना का जगना—दुख के कारण की खोज करना—दुख की निवृत्ति का मार्ग ढूँढना—दुख से भयभीत न होकर उसका प्रसन्नतापूर्वक वरण करना—दुख के महत्त्व को जानकर विकास के लिये उसका उपयोग करना—क्षणिक सुख के द्वारा दुख को दबाने का प्रयास न करना—यह सब दुख का 'प्रभाव' है।

[भगवान् बुद्ध (पर) दुख के 'प्रभाव' से प्रभावित हुए, उन्होने दुख को 'भोगा' नही]

दुख के भय से त्रस्त प्राणी कभी स्वाधीन नही हो सकता, कदापि शान्ति नही पा सकता।

दुख से भयभीत और त्रस्त दुख का भोगी प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग नही कर पाता। उसकी शक्ति क्षीण होती चली जाती है। विकास अवरुद्ध हो जाता है। असावधानी और प्रमाद घेरते है।

दुख से भयभीत होने से दुख मिटता नही, बढता जाता है।

दुख के महत्त्व को न जानने से दुख का भोग और भय होता है।

दुख का महत्त्व जान लेने पर दुख का प्रभाव होता है, 'दुख' की क्षमता और उसके सामर्थ्य और कौशल का ज्ञान होता है।

कामना की अपूर्त्ति दुख है। चाह का काटना भयकर है। चाह को चाटना भी बुरा है। दुख से विकल, व्याकुल, अकर्मण्य, अधीर और हतप्रतिभ होना दुख का भोग है। इससे सजग होना, व्यक्तित्व को सँवार पाना, दुख का प्रभाव है।

दुख स्वय अपने मे न प्रशसनीय है और न निन्दनीय। सुख या दुख दोनो मे कोई भी खालिस' (शुद्ध) नही है, दोनो मे मिलावट है। दोनो खोटे है।

दुख खिलकत के खिलाफ एक खाम-खयाली वा ख्वाहमख्वाही तिकडम, वितण्डा वा 'अभाग्य' नही है। इसे खालिक ने एक खामी और एक खासियत भी बख्शी है।

यह खलीफा का, उस्ताद का, एक दाँव है, एक पेच, एक परीक्षा, एक आखरी तरकीब—वास्ते तरक्की और तरजीह के।

यह अन्तिम सोपान है प्रगति के लिये। एक आखरी धौस और धक्का। शक्तिदायिनी। 'परिस्थिति' को पछाडने के लिये। दुख को दँतेरने-दँतियाने के लिये। सुख–चाह–बन्धन–व्यग्रता–लोलुपता–को ललकारने के लिये। अचाह, निर्मम, असग और स्वाधीन बनने के लिये।

'मही! ले सौपता हूँ आप रथ मै
गगन मे खोजता हूँ अन्य पथ मै।
भले ही लील ले इस काठ को तू,
न पा सकती पुरुष विभ्राट् को तू।
महा-निर्वाण का क्षण आ रहा है
नया आलोक-स्यन्दन आ रहा है,
तपस्या से बने है यन्त्र जिसके,
कसे जप-याग से है तन्त्र जिसके,
जुते है कीर्त्तियो के वाजि जिसमे,
चमकती है किरण की राजि जिसमे,

हमारा पुण्य जिसमे झूलता है
विभा के पद्म-सा जो फूलता है ।
तपस्या रोचिभू-षित ला रहा हूँ,
चढा मै रश्मि-रथ पर आ रहा हूँ ।'
'खडे दीखते जगन्नियन्ता पीछे
मुझे गगन मे,
बडे प्रेम से लिये तुझे ज्योतिर्मय
आलिगन मे ।
दान, धर्म, अगणित व्रत साधन,
योग, यज्ञ, तप तेरे,
सब प्रकाश बन खडे हुए है,
तुझे चतुर्दिक घेरे ।
मही मग्न हो तुझे अक मे,
लेकर इठलाती है,
मस्तक सूँघ स्वत्व अपना यह
कहकर बतलाती है,
इसने मेरे अमित मलिन पुत्रो का
दु ख मेटा है,
सूर्यपुत्र यह नही कर्ण मुझ
दुखिया का बेटा है' (रश्मिरथी रा० धा० सिह, दिनकर)

दु ख का आगमन— (१) अपनी भूल से, (२) परिस्थितिजन्य, और (३) विचारजन्य ।

कामना-पूर्त्ति मे सुख नही, अभाव है । कामना-निवृत्ति मे कल्याण, विश्राम, शान्ति है । मानसिक ग्रन्थियाँ सुलझती है अचाह से, सुख-सुविधा की चाह से नही। चाह की रेत पर कोई छटपटा ही सकता है, आराम नही पा सकता । कामना-पूर्त्ति मे सुख की प्रतीति एक दिवा-स्वप्न-सी अवस्था है, एक मृग-मरीचिका-तुल्य भ्रान्ति, जो पागल बना सकती है, प्यास नही बुझा पाती ।

'यदि मै ऐसा कहूँ कि दु ख के प्रभाव के बिना आजतक किसी का विकास हुआ ही नही, तो इसमे कोई अत्युक्ति नही होगी ।' 'वह अनुभूत सत्य है । अतिशयोक्ति अथवा अनुमान नही है, इसलिए मुझे अतिशय प्रिय है ।' (देवकीजी)

दु ख का प्रभाव कैसे लोगो पर हो पाता है ? —उन सावधान मानवो पर जो—

(अ) जीवन मे हार नही स्वीकारते ।
(आ) लक्ष्य से मुड-लौट नही जाते ।

(इ) विकास मे अविचल आस्था रखते है।
(ई) परिस्थितियो के आधार पर अपना मूल्याकन नही करते।
(उ) दु खद घटनाओ का प्रयोजन समझते है।
(ऊ) दु ख के कारण का अन्वेषण करते है।
(ए) दु ख मे निवृत्ति का मार्ग खोजने और उसे प्रशस्त करने मे सदा तत्पर और सर्वदा रत रहते है।
(ऐ) जिनसे दु ख किसी भी प्रकार सहन नही होता।
(ओ) जो दु ख मिटाने के पीछे सत्तू बाँधकर, कमर कसकर, पड जाते है।
(औ) जो सुख के आशा-फन्दा-प्रलोभन-भरोसा के फेर मे नही पडते ओर अपने सही-सच्चे मार्ग से विचलित नही होते।

इफदि क्रिएशन इज इन दि प्रोसेस ऑव इभोल्युशन, ऐज इट सर्टेन्ली इज दि परपस ऑव पेन ऐण्ड प्लेजर मस्ट बी डायरेक्टेड टू दैट एण्ड।

दु ख 'निर्जीव' है, जहॉ वह आतक फैलाता है, वह 'सजीव' है, जहॉ वह 'मुक्ति' प्रदान करता है।

दु ख का भय दु ख से अधिक भयकर है।

दु ख से भयभीत प्राणियो मे ही हिंसात्मक वृत्तियॉ उत्पन्न होती है। भयातुर ही डराता है। निर्बल ही ताल ठोकता है, दॉत चबाता—पीसता है। आक्रान्त ही आक्रमण करता है।

असह्य दु ख होते ही दु ख की निवृत्ति स्वत हो जाती है। दु ख का प्रादुर्भाव जीवन की यथार्थता का प्रत्यक्ष अनुभव कराता है। वह दु खियो के दु ख का निर्मूल नाश करने के लिये आया (भेजा गया) है।

ऐसा कोई नही, जिसके जीवन मे कोई दु ख न हो।

दु ख-रहित सुख, भय-रहित शान्ति, पराधीनता-रहित अनुकूलता के लिये दु ख से ऊपर उठना अनिवार्य है। दु ख की चोटी अधिक ऊँची और दुर्गम है। सागरमाथा (एवरेस्ट) के विजेता को पहले अपने ऊपर विजय प्राप्त करना होगा।

जो स्वय नाशवान् है, उसका आश्रय क्या सुरक्षित है ? सुख भागा जा रहा है। आप कहाँ दौडे जा रहे है, किसके पीछे ?

सर्वाश मे कोई भी देश, वर्ग, समाज एव व्यक्ति सबल तथा निर्बल नही है।

सेवा की सजीवता तथा पूर्णता त्याग मे निहित है।

कामना सघर्ष को जनती है और उसका पोषण करती है।

जो अनुकूलता मे परिवर्त्तित हो रही है, हो जायगी, उसका क्या भरोसा ? वास्तविक अनुकूलता वही है, जिसमे सभी प्रतिकूलताएँ विलीन हो जायँ और वह सर्वदा अखण्ड रूप से ज्यो-की-त्यो अविचल रहे।

प्रिय से प्रिय वस्तुस्थिति का त्याग कर कौन नही सो जाता ? प्रियतम को अलग ठेलकर पद्मिनी खर्राटे भरती है। प्राण से प्यारे शिशु को हटाकर मॉ सो

जाती है। बिछुड़े हुए, मरे हुए, आत्मीय की याद मे रोते नयन रोना छोडकर, स्थगित कर, सो जाते है। श्मशान मे प्रियजन खर्राटे भर लेते है। नीद के लिये, निद्रा और निष्क्रियता की प्राप्ति के लिये, प्राणी सब कुछ त्याग कर सो जाता है। ममता, मोह, स्वजन, परिजन, धन, दौलत, बल, पौरुष, पराक्रम इत्यादि-इत्यादि उसे रोक नही सकते। वह सबसे विलग और अलग होकर निद्रा की गोद मे शान्ति पाता है। कठिन-से-कठिन परिस्थिति मे, घोर दु ख की अवधि मे, बीमारी मे, जीवन मे, जरा मे, जन्म मे, मृत्यु मे, लोग अकेले सो जाते है, सर्वस्व को लात मारकर लापरवाह, बेधडक। कैसी भी सुखद या दु खद परिस्थिति क्यो न हो, उसका सग छोडकर, उसे भूलकर, तिलाजलि देकर।

यह सभी को विदित है कि सकल्प (कामना)-पूर्त्ति की सुखानुभूति जाग्रत् और स्वप्नावस्था मे ही सम्भव है। परन्तु, उस सुख का भोग अखण्ड रूप से न तो किसी प्राणी को ही पसन्द है और न किसी परिस्थिति मे सम्भव ही है। जिस प्रवृत्ति से अरुचि हो सकती (जाती) है, वह प्रवृत्ति कदापि वास्तविक जीवन नही है। इसी कारण प्राणी जाग्रत् तथा स्वप्नावस्था से सुषुप्ति को अधिक महत्त्व देता है।

प्रिय से प्रिय वस्तु तथा व्यक्ति का त्याग गहरी नीद के लिये भला किसने नही किया ? 'इस दृष्टि से सकल्प-पूर्त्ति की अपेक्षा सकल्प का लय अधिक महत्त्व की वस्तु है।' सुषुप्ति (गाढी नीद) मे दु ख का भास नही होता। 'यदि साधक विवेक-पूर्वक परिस्थिति के अनुकूल आवश्यक सकल्पो को कर्त्तव्य बुद्धि से पूरा कर, अनावश्यक सकल्पो को त्याग, निर्विकल्पता प्राप्त करे, तो उसे जाग्रत् अवस्था मे ही सुषुप्ति के समान दु ख-निवृत्ति का दर्शन होगा और जड़ता तथा पराधीनता का अन्त हो जायगा। अतएव, सुषुप्ति की अपेक्षा नि सकल्पता अधिक महत्त्व की वस्तु है। परन्तु, निर्विकल्पता-जनित शान्ति मे रमण करना भी तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म पराधीनता ही है। निर्विकल्पता-जनित शान्ति का सम्पादन अनिवार्य है, कारण कि उसके बिना साधक वास्तविक स्वाधीनता की ओर अग्रसर ही नही हो सकता। निर्विकल्पता-जनित शान्ति से स्वाधीनता का पुजारी विवेकपूर्वक असग हो सकता है। शान्ति स्वभाव से ही सामर्थ्य की जननी है। इस कारण शान्ति का प्रादुर्भाव होने पर साधक उससे असग हो सकता है, जिसके होते ही स्वाधीनता के साम्राज्य मे प्रवेश होता ही है, यह अनन्त का म गलमय विधान है।' (दु ख का प्रभाव मानव-सेवा सघ)।

'ईश्वर 'है' अथवा 'नही है', यह भी कोई सर्वज्ञ ही कह सकता है। स्वयमेव परमात्मा ही बतला सकता है कि वह 'है' या 'नही है'। परमात्मा प्रत्यक्ष होकर भी प्रमाणित नही किया जा सकता। वह प्रमाणो के परे है। वह अपना प्रमाण आप है।

'ते परत्र दु ख पावई सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालही, कर्मही, ईश्वरही मिथ्या दोष लगाई।।

(उत्तरकाण्ड, रामायण, मे राम)

लडाई के मैदान मे सिपाही सो जाते है, प्रेमिका के बाहु-पाश मे प्रियतम। शान्ति और विश्राम मे लय हो जाने (पाने) के लिये लोग कुछ भी त्याग सकते है, वे किसी व्यक्ति अथवा परिस्थिति की परवाह न कर निद्रा से विलग और विरत हो जाते है।

सुख के पृष्ठ पर दुख भी लिखा होगा, उपान्त (मार्जिन) पर ही सही। और दुख के वर्क पर सुख भी दर्ज होगा, हासिया मे ही सही। यही जीवन की किताब होगी, सभी प्राणियो की आत्मकथा। प्रहसन (कॉमेडी) का परिहार (उपसहार) एक दारुण विनिपात (ट्रैजेडी) होगा। ट्रैजेडी की भूमिका कॉमेडी की कलम से लिखी होगी।

दुख कहाँ है और उसकी निवृत्ति (समाप्ति) के लिये हम क्या कर सकते है?

(१) शारीरिक दुख (कायिक क्लेश) शरीर से सम्बद्ध। दुख का कारण पार्थिव शरीर मे है। बीमारी। रोग। इसके लिये डॉक्टर और औषधि का सहारा लेना चाहिये। 'पॉलीपैथी' का।

(२) मानसिक दुख (क) सकारण। वास्तविक। जैसे, बात की चोट। (ख) अकारण। मिथ्या। जैसे, भ्रम। गलतफहमियाँ, अन्धविश्वास इत्यादि। (ग) मस्तिष्क (ब्रेन) के ऑरगैनिक (कायिक, जैविक) डिफेक्ट (विकृति) (दोष, खराबी) अथवा डिजीज (रोग) के कारण। (घ) मनोवैज्ञानिक कारणो पर आधृत। उदाहरणार्थ एण्डोजिनस—या एक्सोजिनस डिप्रेशन। (अन्तर्जात या बहिर्जात अवसाद)

इन बीमारियो और दुख के कारणो की तसखीस और इलाज दोनो ही आदमी के अपने बूते की बात है। डॉक्टर की राय और नुस्खा न्यूनतम फीस और अल्पतम समय मे उपलब्ध है। आरोग्य-लाभ करने के लिये अधिकतम समय भी हाथ जोडे खडा है।

(३) विचार—जन्य दुख (क) मन, (ख) चित्त (ग) बुदिध, और/अथवा (घ) अहम्।—[पर-आश्रित (या आच्छादित) अज्ञान से परिलक्षित।—इनका वैद्य है विवेक।

दुख के पूर्वोक्त प्रकारो के लिये वैद्य और दवा इत्यादि पर्याप्त है। उनका उपयोग करना चाहिये। बेकार का रोना, पछताना, सिर पीटना, दवा को कोसना और हाथ-पर-हाथ-धरे बैठ रहना, निरी मूर्खता होगी। जहाँ से दुख आया, वही से अन्तत दवा, दुआ, दरेग और पथ्य तथा हकीम-डॉक्टर आये है। वे (ये) नीचे तबके के दुखभजक है। प्रथमत, उनकी सहायता और सामाजिक रोग (दुख)–निवारण व्यवस्थाओ की मदद लीजिये। फिर, पश्चात्ताप और प्रार्थना का सहारा हासिल कीजिये। इनमे भी बडा बल है, बडी शक्ति।

(४) अविवेक की पीडा (क) अभाव तथा (ख) असमर्थता का बोध। [ज्ञान से दृष्ट]।

निराकरण का उपाय योगस्थ होना। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग इत्यादि का सहारा लेना। निज ज्ञान के प्रकाश मे सत्य का साक्षात्कार करना, उसे जानना।

धारणा, ध्यान और समाधि के जरिये चित्त-वृत्तियो का निरोध कर लक्ष्य की ओर अग्रसर होना। आस्था, विश्वास, परिश्रम तथा धैर्य और तितिक्षा, अध्यवसाय, सहिष्णुता तथा तप और त्याग इत्यादि गुणो का सोपान बनाकर प्रगति के पथ पर आगे बढना। पूर्णता की ओर।

प्रगति मे समय की धारणा निहित है। पूर्णता समयातीत है। सन्दल के दलदल मे भी कोई ऐरावत फॅसा—गडा रह जा सकता है।

फिलॉसॉफी (दर्शन-शास्त्र) का प्रारम्भ यही से—अभाव और असमर्थता की वेदना से—होता है। जब अभाव डॅसने और असमर्थता ग्रसने लगती है, तब ससार फीका, असार और असहनीय प्रतीत होने (दीखने) लगता है। और, आदमी की ऊब और उलझन उसे नैराश्य, वैराग्य, और विधाता की ओर मुडने को बाध्य करती है। आदमी तब जीवन मे जगता है और सर्वसमर्थ के समक्ष अपनी मॉग पेश करता है। अविनाशी जीवन की, स्वाधीनता की, आनन्द की, प्रेम की।

(५) मॉग की व्यथा (तडप) परमात्मा मे लय हो जाने की उत्कट अदम्य अभिलाषा। त्याग के अन्तिम छोर पर खडे एकाकी, अकेला, महामानव की आखरी कदम, विकास की आखरी चोटी, अन्तिम घडी।

मार्ग ?—मॉग का त्याग, अचाह की चाह का लोप। अहम् की सर्वाशिक विस्मृति या पूर्णत विसर्जन या उत्सर्ग।

मनस् मे डूब जाना, आपादतलमस्तक। बे-सहारा हो शरणागत की तरी पर आरूढ हो जाना। परमात्मा को सब कुछ सौप देना। लौटा देना। और तब लौट जाना।

'लेन-देन का हिसाब लम्बा और पुराना है। जिनका कर्ज हमने खाया था, उनका बाकी हम चुकाने आये है। और, जिन्होने हमारा कर्ज खाया था, उनसे हम अपना हक पाने आये है। लेन-देन का व्यापार अभी लम्बा चलेगा, जीवन अभी कई बार पैदा होगा और कई बार जलेगा।

और, लेन-देन का सारा व्यापार जब चुक जायगा, ईश्वर हमसे खुद कहेगा—तुम्हारा एक पावना मुझपर भी है, आओ, उसे ग्रहण करो। अपना रूप छोडो, मेरा स्वरूप वरण करो।' (हारे को हरिनाम 'दिनकर')

भगवान् बुद्ध ने परमात्मा का नाम भी न लिया। परन्तु, प्रभु ने उनको अपना पद दे दिया। वह 'अवतार' माने गये, 'भगवान्' कहलाये। उन्होने मूर्त्तियो (विग्रह) की अवहेलना की थी। और, वे स्वय असख्य मूर्त्तियो मे प्रतिष्ठित हुए। भक्तो के अवलम्ब बने।

'निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् । सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर । जय जगदीश हरे ।' (दशावतारस्तोत्रम् श्रीजयदेव)

(सदय हृदय के कारण पशुहत्या की कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधान-सम्बन्धी श्रुतियो की निन्दा करनेवाले आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशव की जय हो)।

समाधि—सविकल्प हो या निर्विकल्प—के परे भी एक आलोकित माहौल (स्थति) है, जहाँ कोई प्रभु का प्यारा ही पैठ पाता है, परमात्मा की अनुकम्पा–करुणा-प्रेम की कमन्द के सहारे। द्वार तक पहुँचकर लौट आना, अनभिज्ञता–अनास्था-अविश्वास के बहलावे मे आकर (पडकर) (फँसकर) आगे न जाना, यह कैसा अपार अभाग्य होगा!

अभाग्य होगा! कैसा दुर्निवार दुर्दिन! कोल्ड कॉफी की प्याली होठो को छूकर छलक गई! साकी ने जाम को लब मे सटाकर हटा लिया! पिलाया नही! रे, मानव! तू कुछ भी कर, अपने बूते कहाँ (तक) जा सकेगा (जायगा)! मानव-मनस् क्या सृष्टि की टेकनॉलाजी की हद है, चरम सीमा? कि जिसके आगे कोई सुधार सम्भव नही? अपनी नाव स्वय कबतक खेता रहेगा? थकेगा नही?

तू कहाँ जायगा? किस रास्ते? कहाँतक?

तू किस तरह जायगा? क्यो?

परमादरणीया प्रभावती देवी का देहान्त हो गया। बगल की कोठरी मे, शादी सम्पन्न होने तक के लिये महायात्रा स्थगित रही। रुकी रही। शुभाशुभ की बात थी। श्रद्धेय श्रीजयप्रकाश नारायणजी की तूफानी जिन्दगी को उन्होने सयत किया था, सँवारा था। उनकी जीवित ठठरी को देखकर मै अवाक् रह गया था। मरणासन्न थी। आगम से अनभिज्ञ भी न थी। फिर भी न चिन्तित थी, न उदास। एक ज्योति उनकी धँसी आँखो मे झाँकती थी। एक आभा उनके सूखे चेहरे पर अब भी विराज रही थी।

Life is a system of co-operating enzymes
Life is also a bundle of accumulated experiences

जैसे एक चिराग दूसरे को जलाता प्रज्वलित करता, बालता है, एक बीडी (सिगरेट) दूसरे को? क्या जिन्दगी ऐसे ही चलती है? एक दूसरे के भरोसे?

ओ३म् सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्।
सभूमि सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाड् गुलम् ॥ १ ॥
पुरुष एवेद सर्वं यद्भूत यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्योऽ जायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णोद्यौं समवर्त्तत ।
पद्भ्या भूमिर्दिश श्रोत्रात्तथा लोकॉ अकल्पयन् ॥ १३ ॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो स्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म शरद्धवि ॥ १४ ॥
व्वेदाहमेत पुरुष महान्तमादित्यवर्णन्तमस परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य पन्था व्विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥ (पुरुषसूक्तम्)

उन परम पुरुष के सहस्रो (अनन्त) मस्तक, सहस्रो नेत्र और सहस्रो चरण है। वे इस सम्पूर्ण विश्व की समस्त भूमि (पूरे स्थान) को सब ओर से व्याप्त करके इससे दश अगुल (अनन्त योजन) ऊपर स्थित है। अर्थात्, वे ब्रह्माण्ड मे व्यापक होते हुए उससे परे भी है।

ईश्वर है। वह अद्वितीय है। वह सर्वव्यापी है।—इसका एक सबूत (प्रमाण) यह है कि प्रकृति का हर मुखौटा अद्वितीय है। हर क्षण, हर कण, हर काया, हर मानस, हर व्यक्ति, हर परिस्थिति।

ईश्वर है। वह सुन्दर है। प्रकृति उसका व्यक्त रूप है। वह सर्वव्यापी है। तभी न प्रकृति मे, सृष्टि मे, इतना सौन्दर्य भरा पडा है। कैक्टस (नागफणी, सीज) के कॉटो की करीने से सजी पक्तियॉ क्या फूलो से कम राजती है ? ऑखे खोलिये और खुदा का जल्वा देखिये। 'चश्म को चाहिये हर रग मे वा हो जाना'।

ईश्वर है। वह आनन्द-स्वरूप है। प्रकृति उसका व्यक्त रूप है। वह सर्वव्यापी है। सुतरा, प्रकृति मे नृत्य है, थिरकन है। लय है, ताल है, सामजस्य है। सब कुछ कलात्मक है। लता नाचती है, प्रतान (टेण्ड्रिल) (सजनी) (तन्तु) नाचते है। सृष्टि की रग-रग मे नृत्य है। चा-चा-चा। ट्विस्ट-ट्विस्ट। हर वस्तु-स्थिति नृत्य के कदम है, स्टेप्स (चरण) है। पखुडियो की सजावट, कॉटो का कलात्मक विन्याम घटनाओ का चक्र, ग्रह-नक्षत्रो का शाश्वत नृत्य, मकडो का जाल, मधुमक्खी के छत्ते। सभी जगह कला है, नृत्य है। रिद्म है। थ्रिल है, ज्वाय है।

ईश्वर है। वह शाश्वत है। प्रकृति उसका व्यक्त रूप है। वह सर्वव्यापी है। चुनाचे किसी बीज का नाश नही होता, लोप नही होता। न मैटर का, न एनर्जी का, न किसी घटना या विचार का। नथिंग इज डिस्ट्रॉयड। देअर इज़ ओनली इण्टरचेज, ट्रान्सफॉर्मेशन, इण्टर-कन्वर्सन इत्यादि।

कार्बन ऐटम (अणु) के भर्सेटैलिटी (बहुमुखी प्रतिभा, सामर्थ्य) को देखिये। उसने कैसे-कैसे रूप धरे है। क्या नही किया है।

सृष्टि के प्रारम्भ से आजतक परमात्मा का खजाना लबालब भरा रहा। न कुछ गया, न कुछ आया, सब जैसे-का-तैसा रह गया। झोली खाली नही हुई। ब्रह्माण्ड का कुछ भी न हुआ, न बरबाद, न लुप्त हुआ।

ईश्वर है। वह सृष्टि का कारण और कारक (कर्त्ता) है। प्रकृति उसका व्यक्त रूप है। वह सर्वव्यापी है। इसलिये हर प्राणी जन्म लेकर जन्म देता है। पिता

पुत्र को। माता सन्तति को। जीवन मृत्यु का स्रष्टा है, मृत्यु जीवन का। और हर प्राणी मृत होकर मृत्तिका बन जाता है, क्षिति-जल पावक-गगन-समीरा, और फिर नाना रूपो मे गढा जाता है। आविर्भूत होता है। उसकी सृष्टि होती है। और वह स्वय सृष्टि करने लगता है, वस्तुस्थिति का, कला का, अपने तद्रूप काया का। सृष्टि स्रष्टा बन जाती है, स्रष्टा मृष्टि। समष्टि से व्यष्टि, व्यष्टि से समष्टि। मिट्टी से मुखौटा, मुखौटा से मिट्टी। एक ही सृष्टि की विभिन्न प्रतिमाएँ, रूप, प्रसग, आकृति, प्रयोग, प्रयास, प्राक्कथन। कविता की पक्तियाँ, गीत की कडियाँ, माला की लडियाँ। हर बार एक नूतन-नवीन पुनरावृत्ति।

सगीतमयी शृ खला एक,
योजना एक,
अक्षर अनन्त, अनगिनत शब्द,
वन्दना एक'
'अम्बर महान्
सागर महान्
भूधर महान
पर ये तिनके सबसे महान्,
इनकी जय हो
चिनगारी से ही आग निकलती है—अजान।' (ऋतवरा के० ना० मिश्र 'प्रभात')

ईश्वर है। वह प्रेम-स्वरूप है, करुणासागर है। प्रकृति उसका व्यक्त रूप है। वह सर्वव्यापी है।

और, तभी तो समस्त प्राणियो को नितान्त आवश्यक वस्तुये प्रकृति से पर्याप्त मात्रा मे नि शुल्क, बिना प्रयास के, बिना परिश्रम के, मिलती रहती है। जैसे हवा, पानी / अन्न-वस्त्र / साथी / सृष्टि का सहयोग। एक दूसरे की आपसी निर्भरता। परिस्थितिकी (इकॉलॉजी) (परिवेश-शास्त्र)। दधीचि का दान। मृत्यु का वरण जन्म का आवरण बन जाता है। एक काया मिटकर दूसरी काया का निर्माण करती है। एक लहर डूबती है, तो दूसरी उठती है। जीवन एक सामूहिक सरचना है। एक सार्वभौमिक टेकनॉलॉजी, एक सहकारिता, सर्वस्व-सहिष्णुता, एक सहवास, सहचरी, सवेदना, समाहार, समुच्चय, समिधा-समर्पण। मनोमोहक एक महाजाल। जजाल। क्रीडा-ताण्डव-रत महाकाल। लीला-गत महाबाल। लावण्य। लास्य। लासानी। कहकहा। किलक। कुर्बानी। जीवन है एक कहानी। नादानी? आनी-जानी? बे-मानी?

ईश्वर है। वह अन्तर्यामी है, सर्वज्ञ है। प्रकृति उसका व्यक्त रूप है। वह सर्वव्यापी है। क्यो नही? और, वैज्ञानिको का क्या कहना! वे तो सर्वज्ञ होते ही है या होने ही वाले है। और, आध्यात्मिकता मे रस-भीगे दार्शनिक? उनके अद्भुत इन्द्रजाल का क्या पूछना? वे अज्ञान मे से ज्ञान और ज्ञान मे से अज्ञान को

निकाल लेते है। और फिर, दोनो का लोप कर दर्शको पर हँस देते है, ताल ठोककर खडे हो जाते है। लोग दाँत बिदोरते, निपोरते, आँख मीचते रह जाते है।

सभी प्राणी कुछ-न-कुछ अपनी अन्तरात्मा को जानते ही है, कुछ दूसरो के अन्त-करण (मन) को भी पहचानते-बूझते, समझते है। और, ये मनोवैज्ञानिक ? क्या वे अन्तर्यामी नही है ? जरा पूछिये तो उनसे। सभी सब कुछ जानते है ! 'अज्ञ' तो है नही !

चेतना—चमत्कृत
गति, चाल।
मेरे मन तेरा
हाल—काल ।।
नर पुगव !
तेरा बल, कमाल ।।।

'ज्ञान परमगुह्य मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सहरस्य तदङ्ग च गृहाण गदित मया ।।१।।
यावानह यथाभावो यद्रूपगुणकर्मक ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ।।२।।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादह यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।।३।।
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो माया यथा भासो यथा तम ।।४।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।।५।।
एतावदेव जिज्ञास्य तत्त्वजिज्ञासुनात्मन ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्या यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ।।६।।
एतन्मत समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ।।७।।

(चतु श्लोकीभावगतम्)

रविनिवासजी पूछ बैठे

'सुख' और 'आनन्द' मे क्या अन्तर (फर्क) है ?

सुख की कुछ अभिलाक्षणिक विशेषताये (लक्षण वैशिष्ट्य) (कैरेक्टरिस्टिक फीचर्स) है, गुणावगुण।

सुख स्वार्थी है। सकीर्ण, आत्मपरकता से अतिरजित। अस्तित्ववाद का हामी भरनेवाला, पृष्ठपोषक। चार्वाकी चेष्टाओ का चहेता। भौतिकवादी। विषयी।

सुख सासारिक है।

सुख सीमित है, काया से। सुख परतन्त्र, परवश, पराधीन, परमुखापेक्षी है।

सुख व्यक्ति और परिस्थिति पर निर्भर है ।

सुख क्षणिक और परिवर्त्तनशील है । उसका आधार—पार्थिव परिवेश—ही अस्थायी, क्षणभगुर तथा भ्रामक है ।

सुख सदा दु ख से सम्बद्ध है । सुख के शुरू मे, सुख के आखीर मे, आदि-अन्त मे, सुख-भोग के समय, दरम्यान भी, दु ख की उपस्थिति, उसके अस्तित्व का आभास, सतत रहता है ।

सुख को पाने के लिये परिश्रम अनिवार्य है । उसको बचाने (बचा रखने) का भय सुख के साथ सदैव लगा रहता है ।

सुख सापेक्ष (आपेक्षिक, रिलेटिव) है ।

सुख काया, बहि करण (कर्मेन्द्रियाँ) तथा अन्त करण (मन, चित्त, अहम्, बुद्धि) पर अवलम्बित है ।

सुख 'मैं' भोगता है । सुख-दु ख से है विह्वल धरती (धरणी) ।

सुख किसी के बूते की बात नही । वह प्राकृतिक विधान से आता है, जाता है । उसे जाना होगा, तो वह चला ही जायगा, किसी का सामर्थ्य नही कि उसे रोक रखे । टोक दे ।

जीवन समझौता (कॉम्प्रोमाइज) और समजन (ऐडजस्टमेण्ट), समन्वय, है ।

माना कि आपके पास मोटर-कार है और आप एक हवाई-जहाज या हेलिकॉप्टर खरीदने की क्षमता रखते है । लेकिन, परमात्मा के पास जेट-प्लेन्स है, रॉकेट्स है, और भी बडे-बडे अजीब-अजीब तरह के वायुयान है । उसके पास अत्यन्त वैभव, असीम ऐश्वर्य और अपार शक्ति है । उसकी नाव पर चढकर आप अधिक दूर जा सकेंगे । भीख माँगने से अच्छा है अपनी मधुकरी की झोली उसे (उसको) सौप देना । वह सब कुछ जानता है । समाधिस्थ होकर भी हम कुछ ही जानते है । स्वार्थी अथवा निर्मम ही सही, दुनिया आपको क्या देगी ? समाधि से जो कुछ उपलब्ध होता है, प्रगति की वही चरम सीमा है क्या ? क्या वही अन्त है मानव के विकास और ज्ञान का ? समाधिस्थ किसके भरोसे चैन ले ? यह ठीक है कि समाधि इन्सान की मजिल को गगनचुम्बी बना देती है, लेकिन 'गगन' के पार जो कुछ है, वह हाथ नही आता । 'किस्मत की खूबी देखिये टूटी कहाँ कमन्द, जब के दो-चार हाथ लबे बाम रह गया ।' समाधि के झरोखे पर पहुँचना और वहाँ से मनोहारी दुनिया (पृथ्वी) को देख पाना निश्चय ही एक विशिष्ट उपलब्धि है, जिसकी प्राप्ति के लिये आदमी यथेष्ट प्रयास से बाज नही आये, मुँह नही मोडे । लेकिन, वह झरोखा, जहाँ से परमात्मा समाधिस्थ को भी देखता-आँकता है, वह कितना ऊँचा है, कौन जाने । और, समाधि लगती भी है उसी परमात्मा के विधानान्तर्गत, उसी की दी हुई मेधा और मस्तिष्क और मानस (मनस्) के सहारे । परिश्रम से कोई धन-धर्म इत्यादि सचित (इकट्ठा) (जमा) कर ले, लेकिन न धन, न धर्म, न कुछ भी, परमात्मा जैसा है । जो सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, शाश्वत है,

जो करुणासागर और प्रेमाम्पद है, जो सदा सर्वत्र सदैव है, जो ब्रह्माण्ड का स्रष्टा और नियन्ता है, हम उसके होकर क्यो न निश्चिन्त हो जायें ?

समाधि ही सब कुछ नही है। जो कभी समाधि के आसन पर नही बैठे, न उस दिशा मे कोई प्रयास ही किया, उन लोगो ने भी प्रभु को पाया और कृतकृत्य हुए। समाधि मे सराबोर है, तो प्रेमसिन्धु मे गोते लगाकर देखिये। परमात्मा के चिरन्तन प्यार के असीम सागर मे लहरे उठ रही है, ज्वार-भाटे आ-जा रहे है, साथ ही परम शान्ति का साम्राज्य छाता जा रहा है, गहनतम हुआ जा रहा है, ऐसे परिवेश मे, ऐसी पावन वेला मे, उस परमपिता की गोद मे कूदकर तो देखिये, डूब जाइये या दो-चार गोते ही लगाइये। (तु० श्रीचैतन्य गौराग महाप्रभु)। या उसे अपना सारथी बनाइये। या उस दरबाजे से पैठिये, जो चिरन्तन मुक्ति का मार्ग प्रारम्भ, प्रत्यक्ष, प्रशस्त करता है।

जहाँ मुक्ति भी अपनी मुक्ति पाती है।

मध्यम मार्ग से भले आदमी चले। प्रभु-प्रेम पीकर पागल, कोई बावला, डगर के किसी छोर पर भी चले, क्या फर्क पडता है।

मैने देख लिया है, साथी !
जीवन का विस्तार ॥
यह असार ससार सार है,
वह है अगम अपार ॥
दु ख-सुख से है बोझिल दुनिया।
प्रेम-सिन्धु कर्तार ॥

समाधि की दुनिया के परे भी एक अलौकिक अद्भुत माहौल है, जहाँ (जिसमे) मात्र प्रभु की अनुकम्पा, प्रेम और कृपा से पैठ सम्भव है। जहाँ अनन्त प्रेम, आनन्द, और सत्य का असीम सागर लहराता है, हिलोरे ले रहा है। (तु० श्रीमद्भागवत) (जीवात्मा-परमात्मा) (भक्त-भगवान्)। अद्भुत। अवर्णनीय।

प्राचीर तक पहुँचकर लौट आना ! अनास्था, अविश्वास, अनभिज्ञता, और अज्ञता के बहलावे मे पडकर झाँक भी न पाना !

मद्य की गन्ध ही से तू मात गया !

घूँघट उठा ही था कि घोचू ने मुँह फेर लिया !

मानव मानस (मनस्) की शक्ति भी तो आखिर (अन्तत·) सीमित है न ? कि नही ? मियाँ की दौड मस्जिद तक।

सन् 1973 ई० मॉडेल का मानव मानस सृष्टि का अन्तिम सोपान है ? प्राकृतिक टेकनॉलॉजी की चरम चोटी ? कि जिसके आगे (बाद) कोई सुधार सम्भव नही ?

मानस (समाधि) ने जो कुछ दिखलाया है—दिखला सका है—क्या 'अनुभव' की वही आखरी मजिल है ?

सभी समाधिस्थ ने क्या बिलकुल एक-मे दृश्य देखे ? उनकी उपलब्धियाँ क्या एकदम बराबर रही ? क्या उन्हे सचमुच सर्वांश मे 'सत्य' का साक्षात्कार हो गया ? (तु० अन्त करण को प्रभावित करनेवाली दवाइयाँ। उदाहरणार्थ एल०एस०डी०, भाँग-गाँजा इत्यादि)। क्या समाधि से लौटकर सब (कुल) इन्सान सर्वज्ञ बन गये ? सब महामानव और भगवान् बन गये ?

अपनी नाव स्वय कबतक खेता रहेगा ? न तू सागर को जानता है, न साहिल को। थकेगा नही ? तू ही सब-कुछ है ?

समाधि से लौटे हुए मस्तिष्क (मनस्) को क्या सब कुछ की जानकारी हो जाती है—समस्त विज्ञान तथा सभी कलाओ की ? (तु० शकराचार्य और मण्डनमिश्र) (तु० रामकृष्ण परमहस)। उसे सभी शास्त्र याद हो जाते है ? सभी वैज्ञानिक तथा कुल गणितीय ज्ञान से वह भर जाता है ? एलेक्ट्रोकार्डियोग्राम (ई० सी० जी०) पढ सकता है ? सभी भाषाओ मे लिखी पुस्तके बाँच सकता है ? क्या वह सर्वशक्तिधर हो जाता है ? उसमे किसी तरह की खामी नही रह जाती ?

और कितने लोग निर्विकल्प समाधि को प्राप्त हुए है ?

एक बार मैंने श्रीमहेश योगीजी से पूछा कि यह बतलाइये कि आपके हजारो-लाखो चेलो मे से कितनो ने 'ट्रान्सेण्डेण्टल मेडिटेशन' को साध लिया ? उन्होने उत्तर दिया कि एक ने भी नही।

आइन्स्टाइन की 'थ्योरी ऑव रिलेटिविटी' कितनो की पकड, समझ मे आ गयी ? दिमाग मे घुस सकी ?

जे० कृष्णमूर्त्ति ने कहा—'किसी दिन कोई हमको समझेगा, समझ पायगा। (सम डे सम वन विल अण्डरस्टैण्ड मी)।'

भगवान् क्या बोले ? और, आपकी ख्वाहिश आखिर क्या है ? कितनी शक्ति-सम्पदा 'जतन करि' जोगा है ? हाँ, हाँ, आप ही ने ?

समाधि से क्लान्त और भ्रान्त मन शान्त हो जा सकता है, लेकिन ओट का परमात्मा पडा रह जा सकता है। सत्य के साक्षात्कार से 'योगी'जी वचित रह जा सकते है।

श्रीगोकुल कामथ ने पूछा—'आनन्द' क्या है ? जो 'सुख' नही है ? और श्रीचिम्मन लाल शाह ने राय दी—उदाहरण देकर समझाइये।

मित्रो ! 'सुख' वह परिस्थिति है, जिसमे 'मै' (=अहम्) रहना चाहता है और जिस की समाप्ति (चले जाने) का भय उसे ('मैं' को) सतत सताता रहता है।

कामना-पूर्त्ति 'सुख' है। लेकिन 'कामना' का अन्त नही होता, सभी कामनाएँ (किसी की भी, कभी और कही भी) पूरी नही होती, इसलिये 'सुख' के साथ 'अभाव' का दु ख बराबर लगा रह जाता है।

'सुख' के लिये परिश्रम करना पडता है। परिश्रम (प्रयास) मानवीय असमर्थता से सीमित हो जाता है। इसलिये 'पर्याप्त' सुख एक सपना बना टीसता रहता है।

'सुख'-प्राप्ति मे परवशता, जडता और आसक्ति, मोह और ममता और त्रास (सन्त्रास), बिना माँगे मिलते है ।

'सुख' बिना दूसरो की मदद के नही प्राप्त होता, इसलिए 'सुख' व्यक्ति और परि-स्थिति के आसरे रहता है । चुनाचे 'सुख' के साथ पराधीनता, निरादर, लोभ, क्षोभ, क्रोध, डाह, मत्सर, मक्कारी, बेईमानी, धोखा इत्यादि मिले रहते है ।

'सुख' के भोगने से सुख भोगने की शक्ति क्षीण होती चली जाती है, और जाती रहती है ।

अन्त मे, आगत सुख को न भोग पाने (सकने) के कारण वह सम्भाव्य 'सुख' दु ख और कुढन को पैदा करता है । और, आदमी अपनी लाचारी का अनुभव कर, अपने 'भाग्य' और दैव को कोसता, हाथ मलता, टुकुर-टुकुर ताकता, रह जाता है, कुछ नही कर पाता ।

'आनन्द' व्यक्ति-वस्तु-परिस्थिति के परे की अवस्था है ।

आनन्द स्वानुभव की बात है । वह शुद्ध (खालिस) (प्योर) होता है । उसके साथ दु ख का लेश-मात्र किसी रूप मे भी, सम्मिश्रित नही रहता ।

'आनन्द' और 'सुख' दो बिलकुल भिन्न प्रकार के अनुभव है । एक-से नही । उनमे आपसी कोई सम्बन्ध नहीं है ।

आनन्दातिरेक मे न 'मै' ('अहम्') का बोध रहता है, न उस (मानसिक अवस्था) के रहने का लोभ, न रखने की चेष्टा, न उसके चले जाने का भय ।

आनन्द सिर्फ अपने (स्व) पर निर्भर है, स्वावलम्बी, स्वाधीन, वह किसी दूसरे (पर) पर आश्रित (पराधीन, परापेक्षी) नही है ।

आनन्द मे विश्राम है, शान्ति है, स्वच्छन्दता और व्यापकता है ।

वह 'सुख' नही, 'सुख-बोध' की अवस्था हो सकता है । अप्रतिबद्ध (अनकण्डिशण्ड) मानस का पूर्णत , सर्वांश मे, दु ख-रहित हो जाना । सभी (कुल) बन्धनो से मुक्त हो जाना ।

वह सुखानुभव, जो दिक्काल के परे है, जो पूर्णत स्वस्थ है, जिसमे किंचित्-मात्र भी 'दु ख' का आभास नही है, जो जडता नही, चेतना है, जो शक्तिदायिनी है, जो 'भोग' (सुख-भोग) तो नही है, 'प्रभाव' (सुख का प्रभाव) के भी परे है, जो रौंदी हुई परवशता, सुख-लोलुपता और भयातुरता के ऊपर सूक्ष्मतर मानसिक स्थिति है, परि-मार्जित, परिष्कृत, जो असीमता, अनन्तता, शाश्वतता का पुट (रग) पाकर अविस्मरणीय हो जाता है, जो किसी व्यक्ति से कुछ भी चाहता नही, कही से कुछ माँगता नही, जो सबका सुहृद् कल्याणकारी मनोभाव, मनोदशा, है ।

वही 'आनन्द' है ।

वही आनन्द है, जिसमे कतई कोई दु ख न खलता है, न टीसता है, न गडता है, न याद पडता है । वही आनन्द है, जिसमे न कोई चाह है, न तृष्णा, न भय, न सुख-भोग बाँधता है, न उसकी परछाईं पडती है । जिसका दु ख पीछा नही करता । नॉट

डौग्ड बाइ ग्रीफ। इट इज टू एग्जिस्ट (एग्जिस्टेन्स) इन ब्लिस। बियोण्ड पेन ऐण्ड बियोण्ड इट्स अदर-आस्पेक्ट और इट्स लेसर-डिग्री कॉल्ड प्लेजर। सुख और दु ख (मे) 'कम' और 'अधिक' होते (कमी-बेशी होती) है। घटाव-बढाव, तुलनात्मक। आनन्द मे कोई तुलनात्मक (आत्मपरक अथवा वस्तुपरक) परिवेश नही होता, कही डिग्री (कोटि) की बात नही उठती। आनन्द की एक ही कोटि होती है, अप्रतिबद्ध और निरुपाधि और अनपेक्ष सम्पूर्णता की मानसिक स्थिति अथवा भाव।

चिम्मनलाल शाह ने अनुरोध (आग्रह) किया, जोर दिया, जिद्द की— उदाहरण देकर समझाइये।

गोकुल कामथ ने उस हठ की पुष्टि की।

दोनो जिज्ञासु चक्कियो के बीच मै साबित न रह सका। झपटकर धुरी से लिपट गया, आँच तो नही आई, लेकिन मात होते-होते बच-सा गया (निकला) या बच-निकला-सा।

यह 'अनुभव' की बात है। देखने-दिखलाने की नही। वर्णनातीत। कहने-सुनने की नही। 'गिरा अनयन नयन बिनु वाणी (नी)।' 'प्रभु मूरत किमी कहहुँ बखानी।'

फिर भी, यारो! एकाघ घिसे-पिटे उदाहरण तो दे ही सकता हूँ। यह तो कह ही सकता हूँ कि मधु मे 'मिठास' है।

अब सुहृद्जी (कपिलदेवनारायण सिह भी या नही भी) अगर पूछ बैठे कि 'मिठास' की क्या मानी (अर्थ)? तो बन्दा झेंपे, तब भी गया, खेपे, तब भी गया, पे-पे (करे), तब भी गया।

मैंने तब चतुर्दिक् नजर फैलायी, दोस्तो की लेखनियो से पूछा, उनके व्यक्तित्व-कृतित्व के आगे सिजदा की। अरे भाइयो, मित्रो, ज्ञानियो, सुहृदो, यारो, भलेमानुसो, प्यारो! अरे, जरा इस बनमानुस की तो मदद करो, जान बचाओ, कहो न कि 'मिठास' क्या बला है, 'आनन्द' क्या है? बदरीनारायण सिन्हा! बजरग वर्मा! अनुरजन-प्रसाद सिंह! प्रभात सरसिज! नन्दकिशोर प्रसाद! कुमार विमल! रामनिरजन परिमलेन्दु! राबिन शॉ 'पुष्प'! मधुकर गगाधर! जनार्दन राय! निशान्तकेतु! कृतनारायण प्यारा! भाई, कोई भी तो कुछ बोलो, चुप्पी मारे बैठे हो, और हमारी मिट्टी पलीद होने पर लगी हुई है। क्या खूब दोस्ती है? और, मदद को तो धाओ, आओ भी। पण्डित बने बैठे रहो, कुछ न बोलो, न करो!!

शिवचन्द्र शर्माजी! आप तो चुप नही रहते थे, यह खामोशी कैसी! आप तो अतीत और वर्त्तमान की शृ खला के बीच की योजी (कनेक्टिंग) कडी है। बढिया और घटिया को ठीक से आँकते है। पेट नाधे, चुप्पी साधे, पडे क्या कर रहे है? कुछ मेरा भी खयाल कीजिये। जवाब दीजिये। और आप महानुभाव— 'प्रभात' जी, 'दिनकर' जी, 'रेणु' जी, 'अरुण' जी, आपकी कृपा कहाँ गयी? कहिये न, क्या उत्तर दूँ? डॉ० शरदिन्दु मोहन घोषाल साहब! आप मेरे प्रवीण शिक्षक रहे, डॉक्टरी पढायी, कितनी सारी बाते सिखलायी-बतायी, लेकिन आपने भी तो कभी

'आनन्द' की व्याख्या नही की। परिभाषा नही दी। अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह मे फँसे सेनानी को निकलने का तौर-तरीका रास्ता-उपाय भी नही बतलाया।

अब मैं क्या करूँ? हार जाऊँ? अपकार्त्ति मृत्यु से अधिक जघन्य और कष्ट दायक है। कोई अकबर से पूछो, बिरवल (वीरबल) को बुलाओ! अरे, कोई जान बचाओ। पचवर्षीय योजना सजाओ! विजयी बनाओ! मण्डन मिश्राणी! कही से ज्ञान भेजो, कुछ भी करो। हे बृहस्पति! हे सरस्वती! हे गणेशजी! त्राहि माम्! ऊँ त्राहि माम्! अब त्राहि माम्!

साष्टाग करता हूँ। भक्ति का हार लो। सूझ दो। बूझ दो। तार दो, मार दो, मिट्टी मे गाड दो। जीवन का सार दो।

'क्या कुछ ऐसा हुआ -
कि तुम भीतर-बाहर से बदल गए हो?
थके-थके से, किसी पीर मे डूबे-डूबे,
बात-चक्र के तिनके-सा तुम,
कहाँ-कहाँ उडते रहते हो?

कैसे कह दूँ असर हो रहा,
इस दुनिया की जहर-लहर का?

कौन यहाँ पर जिया,
बिना दस्तक घूँसे के?

और,
द्वन्द्व-दर्शन अजीब है!
क्या उत्तर दूँ?'—
'पडो मार मुझपर,
रोका तुमने
छिपकर प्रहार को
पता नही था मुझे मार का,
दाव-पेच का,
आडी-तिरछी वक्र चाल का।
पता नही था,
कहाँ आस्तरण।
कब पहनाया गया मुझे था,
कवच तुम्हारी महिम कृपा का?' (कुमार विमल)

शिवेन्द्र दीक्षित ('मामाजी') ने झकझोरा—क्या कहते-वकते हो ?

खप्त (ी) ! होश मे तो हो ! बारह तो नही बजा ! स्क्रू तो नही खिसका ? दिमाग तो नही चटखा, सही तो है ?

मैं मेमियाया,—मही मे दही है, तो सब कहा-कही है। यही राज वही है, सही बात गही है।

धत्-तेरे की ! 'तरी जर्जरी फँस पडी खेवनहार गवाँर', 'ताहि पर पवन झँकोरैं।'

मेरा माथा चाटने से क्या होगा ! 'आनन्द' क्या है, फिर 'मिठास' क्या है ! गूँगा क्या बतलाये ? शब्द कहाँ से लाये ? किस-किस डगर से जाये। कौन किसे समझाये ?

खैर ! आनन्द-स्वरूप तो केवल परमात्मा है। कोई परमात्मा-स्वरूप बनकर ही 'आनन्द' का रसास्वादन और उसका साक्षात्कार कर सकेगा, और उसे हृदयगम कर पायगा।

फिर भी, 'आनन्द' की झाँकियाँ मिलती है, हल्का ही सही, लेकिन रग चढता है, खुमार आता है।

सुषुप्ति की अवस्था। गाढी नीद से उठना।

जाग्रत्-सुषुप्ति मे स्थित रहना।

समाधि।

कर्त्तव्य-कर्म को निष्ठापूर्वक सम्पादन कर स्वस्थ हो जाना।

अहैतुकी सेवा।

नि स्वार्थ प्रेम। किसी का हो जाना।

नियत कार्यारम्भ के पूर्व का विश्राम।

शरणागति।

प्रकृति को निहारना, अवलोकना, द्रष्टा-भाव से, दृश्य के साथ एकात्म की अनुभूति।

गुणो के साम्राज्य मे गुणातीत हो जाना।

मानस का भार-रहित (निर्भार, अ-बोझिल) (निरपेक्ष, अनकण्डिशण्ड) हो जाना।

अचाह मन। त्यागी जीवन। निर्ममता। असगतता। निर्भयता।

काया के योग-क्षेम की जिम्मेवारी से बरी हो जाना, चिन्तित न होना, बेफिक्री।

हल्के अमल (नशे) मे दुनिया को भूल जाना। समष्टि मे खो जाना।

प्रज्ञा, शील और मैत्री से परिष्कृत, परिमार्जित, परिशुद्ध साहस।

मध्यम मार्ग से तिल भर भी न डिगना, न भटकना।

कला-कृति मे डूबे रहना। सृष्टि-सघटन। स्वाधीनता।

अहम् के शोले का बुझ जाना। निर्वात हो जाना।

मन का सन्नाटा।

परमात्मा की प्रतीक्षा, तितीक्षा, धैर्य और शान्ति के साथ।

सन्तोष। दु ख निवृत्ति, गन्तव्य-रहित।

मदन-लहरी। 'शक्ति-पात' के दो-चार क्षण (तत्पश्चात् तदुपरान्त 'आनन्द' के क्षण का 'सुख' मे बदल जाना)।

काग का आँगन मे उचरना।

पपीहा का पीकना।

राहुल का बिहँसना, मुस्काना।

कली का खिलना।

भूख को कबाब की भनक मिलना (लगना), बूए कबाब का वातायन पर हिलोडना।

पाप करने की बाध्यक्य परिस्थिति से बे-दाग बच निकलना।

विकल्प-रूपी केचुल से रिक्त हो जाना, एकदम छोड देना।

चौबटिया से हटकर किसी सीधी राह पर लग जाना, पथिक का चल देना पथ पर।

आनन्द (सर्वभावेन, सर्वत) अक्षय और अनन्त होता है। 'क्षणिक आनन्द' आनन्द नही, मात्र आनन्द का आभास होता है।

उलटकर देख ही लेते।

कही कोई भूत रोता है।

प्रभु-आवन की आहट पाना।

माँ की गोद मे शिशु का तुतलाना।

जाडे मे धूप का निकलना।

उत्तर पा जाना। सवाल का हल हो जाना।

कोई जान छोडने के लिये तैयार नही है। सवालो का हल चाहिये। नयी पीढी कुछ पूछ रही है। ध्यान देकर सुनिये।

भुल्टू (वसुन्धरा)— यदि पुनर्जन्म सत्य है, तो हर युग मे (इन्सान के रूप मे) भगवान् क्यो नही जन्म लेते है।

बौआ (ताण्डव आइन्स्टाइन समदर्शी)— पूर्वजन्म का (की) मेमरी क्योकर (कैसे ? या क्यो ?) कैरी होता (होती) है और यदि होता (होती) है, तो सबमे क्यो नही होता (होती) ?

(डॉ०) मजु प्रियदर्शी— यदि हरेक व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, यह सत्य है, तो मोक्ष क्या है ?

नवीन (भैरव उस्मान प्रियदर्शी)— इफ री-इनकारनेशन इज ए ट्रुथ, देन हाउ इज इट, दैट दि पॉपुलेशन इज ग्रोइग इन ज्योमेट्रिकल प्रोग्रेशन ?

डॉ० एम० रहमान

(१) आज गुणी को समाज या सरकार मे स्थान नही है—स्थान उसी को दिया जाता है, जो पाखण्डी है। जिसकी पैरवी है। जिसको पैसा है। जिसको दस खरीदा

हुआ आदमी है। [यह तो हुई 'मुसीबत', 'अनुभव', 'वक्तव्य', लेकिन 'सवाल' कहाँ है ?]—

(२) कुछ मनुष्य सिर्फ उपदेशक ही होते है। वे खुद कुछ नही करते।—व्याख्या [शायद 'व्याख्यान' से मतलब है] देने के बाद व्यावहारिक ज्ञान उनमे शून्य होता है। ऐसा क्यो ? [लाहौल बिलाकूबत ! यह व्यग्य, तिर्यक्-प्रहार, मुझ नाचीज पर तो नही है ?] [और 'ऐसा' यूँ है कि मेरे जैसे बहुत-से ढोगी इस जमीन पर मौजूद है]।

डॉ० अशोककुमार ठाकुर

(१) परमेश्वर का विधान यदि जन्म और मृत्यु है। मानव के हरेक कार्य का वह यदि निदेशक है, तो किसी का [अरे, भलेमानुस ! यहाँ 'की' होगा, 'का' नही।] मृत्यु घोर यातनामय होता है और किसी का [!] प्राय [?] कष्टहीन। ऐसा क्यो ? [ऐसा इसलिये कि आपका अस्पताल यमराज का अखाडा है, यमदूतो का अड्डा] [और बन्धु ! आप तो 'वैज्ञानिक' है, आपने तो निश्चय ही मुर्दो से पूछ लिया होगा कि उनकी मृत्यु के क्षण कैसे बीते थे ?] [आपने देखा है उस दीप को, जो हर रग मे जलकर शहीद हो जाता है ?] [आपने देखा है मोमबत्ती का बुझ जाना ?] [आपने देखा है व्योम मे इन्द्रधनुष का मिट जाना ?] [आपने देखा है मिट्टी का मिट्टी मे मिल जाना ?]—

(२) मृत्यूपरान्त आत्मा की क्या गति है ? [चिराग बुझ जाने पर रोशनी की क्या गति है, साहब ?] क्या वह प्रेतयोनि मे निवास करती है ? [यह सवाल एक प्रेत भी पूछ सकता है। कि पृथ्वी पर जन्म लेने के बाद बेचारे 'प्रेत' का क्या होता है ? क्या वह (पार्थिव) (कायिक) प्राणी-योनि मे निवास करता है ?] [प्रेत-योनि है। मुझे इसमे कोई शका-सन्देह, डाउट, रच-मात्र भी नही है] प्रेत-योनि का क्या कोई रूप या स्थल है ? [होगा ही।] [लेकिन इसके विशेषज्ञ थियोसोफिस्ट लोग है, उनकी किताबे पढिये, उनसे पूछिये।] [हाँ, और क्या हमारे आपके समाज मे, अपने ही लोगो के बीच, 'प्रेत', 'पिशाच', 'भूत', 'बैताल,' 'जिन्न', 'चुडैल', 'डाकिनी', 'हाँकिनी', 'बढम', 'पनडुब्बा', 'सिरकट्टा', 'खरबिगहिया', 'दैत्य', 'राक्षस' इत्यादि नही रहते ?] [प्रेत की पाँतियाँ, कनैल (कनेर) की किस्मे, कही ढूँढने जाना है !] क्या इस योनि मे रहते हुए भी आत्मा परमात्मा मे विलीन नही रहता ? [क्या 'समुद्र' ऑक्टोपस मे और आपके मछली-भात मे नही रहता ? क्या 'समुद्र' 'बुलबुले' मे और सागर की 'बूँद' मे नही रहता ? क्या 'इकाई' ऑक्टीलियन (दशनील) मे तथा शून्य (जीरो) मे नही रहता ?] [सर्वव्यापी जो है, वह कहाँ है ? और जो सर्वव्यापी नही है, वह कहाँ है ?] [जो आत्मा अथवा प्रेतात्मा प्रभु, परमात्मा, विभु, मे विलीन हो गयी (गया) वह कहाँ रही (रहा ?) ? सागर की लहर कहाँ है ? सागर मे मिलकर 'बूँद' कहाँ गयी ?]

डॉ० पी०एन० विद्यार्थी

धर्म और राष्ट्रीयता के पारस्परिक (सम्बन्ध) क्या है ? [कुछ भी नही।] भारत मे धर्म की विविधता ने राष्ट्रीयता को किस प्रकार प्रभावित किया है ?

[मूर्खो को लडा-भिडाकर, फोड-फाडकर। और, ज्ञानियो को शील-सौजन्य-सहिष्णुता-शालीनता-मृदुता-प्रेम-जन्य बल, पौरुष, एकता-मे-अनेकता से सँवारकर।] ऐतिहासिक एव दार्शनिक दृष्टिकोण से समीक्षा करे। [मेरी जान बख्शो! मै बाज आया।] [जीवात्मा का परमात्मा से नित्य सम्बन्ध है। उनके बीच किसी को आने की आवश्यकता नही है, हस्तक्षेप करने की, अडगा लगाने की। दीवार या पर्दा बनने की, धुआँ उठाने की। राष्ट्रीयता को भी नही। धर्म और राष्ट्रीयता के बीच कोई आपसी सम्बन्ध नही है। धर्म-निरपेक्ष देश के नागरिको के बीच ऐसा होना भी अनुचित और हास्यास्पद होगा। अलबत्ता यह ठीक है कि 'धार्मिक' नागरिक राष्ट्र की एक अमूल्य और अनोखी उपलब्धि है। लेकिन 'राष्ट्र' की ही क्यो? 'दि वर्ल्ड इज बट वन कण्ट्री ऐण्ड मैनकाइण्ड इट्स सिटिजेन'—बहाउल्लाह। काश! 'वर्ल्ड' के स्थान पर 'युनिवर्स' कहा जा पाता?] [हाँ, और चलते-चलाते एक सवाल मुझे भी पूछने की इजाजत है? 'पी० एन०' से आपका मतलब 'पशुपति नाथ' ही से है न?]

आनन्दातिरेक आत्मा और परमात्मा के बीच का लस्सा, ग्लू, है।

मै अभी मदन मौसाजी (स्वर्गीय श्रीमदनधारी सिंहजी) के शव को आखरी प्रणाम करके लौटा हूँ। बरामदे पर लोग बैठे हुए है, विचारो मे तल्लीन, हाँफी लेते, उँगलियाँ चटखाते, देह मरोडते, ऐंठते। कोयल कही-कही से कूकती (कूके) जा रही है। मौसाजी के बगीचे से मन्द-मन्द बयार आती-जाती है। स्वेदापहरण कर शरीर को शीतलतर बना रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ जाकर भी नही गया। व्यष्टियो के आने-जाने से समष्टि का कुछ भी नही बिगडता-बनता, कुछ न्यूनाधिक नही होता, सनातन समष्टि सम्पूर्ण रह जाती है। आकृति-प्रकृति-प्रवृत्ति बदलती जाती है। इसी को लोग जन्म-मरण की सज्ञा दे देते है। इसे ही यात्रा और पडाव कह बैठते है। मरकर भी कोई कहाँ जायगा, ऐसी कोई जगह थी क्या, जहाँ वह न था? रेडियो को स्विच-ऑफ कर देने से तरगित आवाज क्या कही चली जाती है, विलुप्त हो जाती है?

जब मैं फर्स्ट ईयर मेडिकल कॉलेज मे आवास-रहित मारा-मारा फिर रहा था, ढनमना रहा था, सहृदय मौसाजी (भगवान् उनकी आत्मा को चिर-शान्ति दे!) ने मुझे अपने यहाँ शरण दी थी। गरीब बाप का मै बेटा था। मेरा पूछना क्या जरूरी था!

मौसी (प्रभा देवी), विभा (शकुन्तला) और सुधा (मेरी मौसेरी बहने), तथा परिवार के अन्य बिसूरते सदस्यो को छोडकर मौसाजी चले गये, जहाँ से वे आये थे।

मौजा, मकान। शान, मान, आन, बान। जमीन, जायदाद। शिकस्ती और सिद्दत। जोरू, जहान। सभी तो छूट जाते है, जब जान चली जाती है, रूह रवाना हो जाती है।

'पच्छिम वातायने,
समीर हाहासने,

आशिया ब’ले जाय
च’ला जे जाय
आसे ना फिरे ।’

मौसी का ससार सूना हो गया । जीवन-साथी सदा के लिये बिछुड गया ।

मौसी ! एक दिन मैं भी मर जाऊँगा । तू भी मर जायगी । जिन्दगी एक अप्रत्याशित बखेरा है !

‘आत्मा ? वह तभी तक है, जबतक परमात्मा है और श्रद्धा है । नही तो इनमे से कोई नही है, केवल समूहगत नैतिकता है, जिसे हम आत्मा का नाम देते है ।’—‘विराट् मर गया है ? या कि तुम्हारे अनजाने उसकी सत्ता किसी दूसरे विराट् मे परिणत हो गयी है ? राज्य मे—जनता मे—मतवाद मे—चाहे धर्मनिरपेक्षवाद मे ही ?’ ईश्वर को मार दोगे, उसका वध कर दोगे, तो तुम्हारा क्या होगा ? ‘तब तुम ईश्वर हो जाओगे, तब तुमसे दूसरो को कौन बचायेगा ?’—‘मैने जो दिया था, वह तुमने लेकर रख लिया था । तुमने जो दिया था, वह सब तुमने वापस ले लिया । इसमे क्या एक प्रकार की मुक्ति नही है ?’—‘अगर मै अपने से बडे किसी विचार, आदर्श, आइडिया के लिए जीता हूँ, तो स्पष्ट है कि मेरा जीवन एक यज्ञ है उस विचार या आदर्श के लिये अर्पित आहुति मै हूँ ।’ (स० ही० वात्स्यायन ‘अज्ञेय’) ।

अगर भगवान् न भी हुआ, या तटस्थ निर्गुण ही रहा, फिर भी मगर सृष्टि मे कोई ऐसी ‘बिल्ट-इन’, स्वचालित, अन्दरूनी, व्यवस्था अवश्य है, जो मानव के मनोभाव की कद्र करती है और उससे प्रभावित होकर यथायोग्य फल (नतीजा, परिणाम) परावर्त्तित (रिफ्लेक्ट) (प्रतिबिम्बित) होता है (करती है) । वह व्यवस्था प्रेम-स्वरूप है और उसमे करुणा तथा सद्भावना है । वह दु ख को सहने की शक्ति देती है । सुतरा दु खहारी है । वह ‘आशा’ का अम्बार खडा कर निराश मन को सान्त्वता देती है, दुर्दिन मे भी सब्जबाग दिखलाती है । वह स्वप्न मे उतरकर जीवन की कितनी सारी गुत्थियाँ सुलझा जाती है । वह अन्त करण मे समस्याओ का हल झलका देती है, मनोवाछित वस्तु लाकर सामने रख देती है । वह मनुष्य के मुख से, महात्माओ के सम्पर्क से, अवतारो के माध्यम मे, शका का समाधान करती है, राह दिखलाती है । वह मौन मेकैनिज्म कभी मुखरित भी होती है, कभी प्रतिध्वनित भी । कभी साहस, धैर्य तथा सन्तोष के रूप मे मगल करती है । कभी ममता, कभी मैत्री, कभी मन्त्रणा, का आवरण ओढकर दबे-पाँव चली आती है । वह अव्यक्त को व्यक्त करती है, लुप्त को प्रत्यक्ष । वह शान्त स्निग्ध शरणागत मानस पर स्वत प्रकट हो जाती है । यह समदर्शी सचेष्ट सचेत और सर्वज्ञ ‘बिल्ट-इन’ व्यवस्था सर्वव्यापी है और समग्र समस्त सृष्टि को सदैव उपलब्ध है ।

प्रत्येक दुखिया, हर जरूरतमन्द, उसका दावेदार है । सृष्टि और सहार के साथ सरक्षक । माँगनेवाले की मुराद पूरी करता है । माँगने से देता है । बुलाने से आता है । टरकाने से चला जाता है । आकुल-व्याकुल, रोते-कलपते, भक्त के लिये वह भगवान्

को ले आता है। जिज्ञासा से तडपते इन्सान के लिये वह सत्य को उद्घाटित (रिभील) कराता है। वह 'बिल्ट-इन' व्यवस्था भयकर कल्याणकारी और अजीब परमसुहृद् है। सरल मन से गौर करने पर वह सटकर छू जाता है। मन की बात भाँप जाता है। प्यार के झूले को पेक (पैंक) मार जाता है। ऐसी एक यन्त्र-तन्त्रावली सृष्टि मे है। वह आपके काम भी आ सकती है। एक बडी ही उपयोगी मशीन, जिसे आप जाने-अनजाने अनास्था के लम्बर-रूम मे कूडा बना बैठे है। जिसपर गर्दा पड रहा है, धूल जम रही है, जग लग रहा है। बात बिगड रही है। आपके वास्ते। सब आपके वास्ते। आपने उसे कण्डेम और डिसकार्ड कर दिया है। अभाग्यवश !

अगर परमात्मा 'खयाली पुलाव' भी हुआ, तो क्या हुआ। वह आपके बडे काम आयगा। अपनी सत्यता के सबूत भी देगा।

'दर्शन' का अँचार डालना-बनाना है क्या ? वह वैसा है नही, जैसा प्रत्यक्षत मालूम पडेगा। उसकी असीमता पकड मे आने से रही। प्रकृति उसका मुखौटा है। सृष्टि उसकी नकाब। जितना भर देख सको, देख लो। उस परमपुरुष के पावन पैरो पर प्रेम के पुष्प अर्पण करो, श्रद्धा के फूल चढाओ, विश्वास वारो। वह स्वय तुम्हे उबार लेगा, उद्धार कर देगा। तुम्हारे जीवन मे चम्पा की एक स्वर्णिम कली खिलेगी, जिसकी सुवास (सुगन्ध) तुम्हारे आस-पास और तुमसे बहुत दूर तक फैलेगी, फैला करेगी। उस नयी नवेली की प्रतीक्षा करो। जगे रहो।

बतलाओ तो, मैगनोलिया ग्रैण्डिफ्लोरा का पेड कितने दिनो मे फूलता है ? और, ऑरकिड् का ? (और) कैक्टस का ?

The new generation of quantum physicist are no longer able to accept the atom as simply a miniature solar system in which negatively charged electrons blithely circle the positive mucleus They found that the 'electrons kept jumping from one orbit into a different orbit without passing through intervening space—as if the earth were suddenly transferred into the orbit of Mars without having to travel' (Arthur Koestler)

Compare 'Neutrine' the ghost like particle which has no maas, no electrical charge, and can hurtle with ease through entire earth

Recent discoveries in astronomy has also revealed the sad limits of scientific knowledge and the unfathomable vastness of eternity Compare the 'quasars', 'pulsars', and the kindred black-holes totally invisible but present nevertheless, and the black spots

"Mysticism is one of the great discoveries of mankind" says the eminent German physicist-philosopher, Carl Friedrich von Weizs-

sacker, "It may turn out to be far more important than our time is inclined to believe"

Science does not have a strangle-hold on truth It has, in a sense, let humanity down

There might be non-causal things in the world The modern scientist do not refute this belief, they cannot Eastern mysticism and western science will have to converge A new paradigm of science and mysticism and a new race of superman will usher in what Shree Aurobindo might have conjectured, wished and hoped for—bringing God on Earth

The evidence against Scientism have been mounting high The futile quests it has led into has alienated man's interest in it It has made human home uninhabitable and pernicious It has dragged man's mind into the abyss of dogmatism and darkness

What kind of ailment does Scientism suffer from ? And what is the remedy ? Wherein lies its cure—its health and its hygiene ?

1 Scientific knowledge has been a legacy and has been bequeathed to succeeding generations of scientists as 'truths' and 'facts' proved to the hilt

2 'Objectivity' is a myth Every human mind is 'conditioned' and hence 'blind'

3 Man is too much in what he observes and in which he interprets

4 Man is not aware of the two way traffic between the subject and the object, between the sight and the seer and between the knower and the known and the knowledge and the transmission of it

5 The very process of observation alters the observed cf blushing, apprehension, staining and fixing of biopsy material etc

6 The Scientist believes in the perfection of his mind and his moods and his senses and in his machines and tools and environment and collaberators, as faltless producers and detectors of 'truth'

7 The sensation of heat is an illusion but it is 'heat' to everybody (scientists' body also) and the 'illusory' nature of it goes undetected and unfathomed Similarly space, time and continuity

or otherwise may all be illusions Form and features may be illusions. E g myopia, (short-sighted vision), the three-dimentional effect in creation and the colours

8 Man has been creating a world for himself based on false-hoods and fake truths Mathematics and Geometry are man's speculations Who can vouchsafe for the truth and reliability of Trigonometry and of Calculus, of biology and physics and chemistry ? And of Psychology ?

9 How funny that the imperfect mind of man created its own world of speculative 'science', and its grave of psychology and techno-logy, and burried himself irreversibly into it

Slowly and surely one by one, species after species of animals and plants are leaving Mother Earth for good and becoming extinct The great 'Hippies' are letting-out and abandoning their hearths and homes to the enchanted and maddened heathens and renegades And poor me ! who are and how are these 'heathens' and these 'renegades' ? and who are you to think, to classify, and to judge, and to point your fingers at ? and at whom ? If man survives man will have to quit this earth in the throes of disease, destruction and death He may be compelled and expelled By whom ?

It is best to rid yourself of encumberances and to be just what you are Let His will prevail With humility, sincerity and love, uncondi-tioned and un-tarnished by prejudices, credulity and conjectures, do what you can for the good of your contemporaneous creation, and when time comes just pass through the illusory incline of death Where will you go after death ? Nowhere where you were not before Who will weep and wail for you ? The tears, provided they are free What will your passing away mean to the world ? Its continu-ance (-ation) Will your be born again ? What has once happened may very well take place agian —why not ? Whereform ? From the elements and the non elements How ? By the getting together of the necessary building blocks and the fundamentals of life By whom ? By the creator using the 'Laws' or the 'Technique' of creation When ? How do I know ? Where ? May be even beside your own good self Who knows ?

परमात्मा है ? वह नही नही है ।
सत्य क्या है ? जो है ।
'निश्चित' क्या है ? अनिश्चितता ।
भगवान् का पता कैसे चलेगा ? वह बतला देगा ।

हम क्या करे ? प्रतीक्षा । इण्टरव्यू-कार्ड की टोह मे सरलता और सहजता और सजगता से तत्पर रहे ।

परमात्मा का तात्त्विक स्वरूप (नेचर) क्या है ? प्रेम ।—
कैसे ? प्रेम करके देखिये न, क्या होता है ।—
अगर 'प्रेम' न कर सके तो ? प्रार्थना कीजिये । अगर 'प्रार्थना' न कर सके तब ? उसकी याद आये, आती रहे, ऐसी कुछ व्यवस्था कर लीजिये ।

Fred Hoyle feels that the Quasars are nearby objects, possibly newborn, in which supposedly inviolable constants such as the acceleration of gravity are not constant but continually changing Many other scientists believe that these incredibly bright objects ('quasars', for quasi-stellar) sit at the very 'edge' of the universe, shining perhaps 12-billion-light-years away from earth

It was formerly believed that if all the material things of the universe disappeared, time and space would be left behind According to the Relativity Theory, time and space would disappear together with the material things Terrestrial laws may be at variance with astronomical and the law that (which) quide (s) one universe may not guide another

Time and space may not be two entries but a single time space continuum

In another universe Time and Space might have been left out altogether And so might have been light and electromagnetism and gravitation as 'sound' has been

The light and the lighted are in Shadow and Darkness because a brighter light is able to dispel the lighter light and to bringhten the shadow In likewise is the brain and its reflections

It is being widely felt (but not universally) that all basic questions in the field of science are either solved or close to solution All scientific progress is fast approaching the point of diminishing returns

Man will never know how the universe began or what is the most fundamental of atomic particles because such mysteries remain 'hidden in an endless and ultimately tiresome succession of Chinese boxes' (Gunther Stent)

The ends to which their quests will eventually lead may turn out to be an endless abyss The high and exhorbitant cost of research may be a heinous crime against mankind, that perpetuates want and poverty,

The high— browed and 'successful' 'scientist' may have only wasted and ruined his life and career and gone no-where beyond

'It has been well said that the doctor today wields therapeutic thunderbolts of unimagined potency—for good or evil And it has been further said that the very high proportion of patients in the hospitals of the West are there suffering from the ill effects of drugs rather than from the disease which drugs were intended to cure'

(I G W Hill)

'अनुपान' की आवश्यकता-व्यवस्था शायद नुसखा (दवा) के दोषो को मिटाने के मनशे से की जाती रही हो। आयुर्वेद मे। 'पॉलीपैथी' अपनाकर पार पाइये।

'जो वैद्य अपनी औषधियो से बाते करना नही जानता, वह भेषज का मार्ग क्या जानेगा ? जो वीर अपनी तलवार से बाते नही करता, वह भी कोई वीर है ?' जो हृदयरोग-विशेषज्ञ हृदय से काना-फूसी नही कर सकता, दिल की गुफ्त-गू समझ नही पाता, वह स्टेथॉसकोप-रूपी कण्ठ-लँगोट को नाहक लटकाये चलता है।

जब चेतना जगती है, तब प्रकृति रग बदलती है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को जीवन मे ढालकर विकसित मानव 'जड वस्तुओं' से भी चेतनवत् आत्मीय व्यवहार करेगा। वह पशु, पक्षी, पत्थर, मिट्टी इत्यादि की भाषा भी समझेगा, उनकी भी सुनेगा। 'जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जडानुगत है, वह तो मनुष्य को भी जड समझेगा और जड की ही तरह उसके साथ मनमाना जघन्य व्यवहार करेगा। महात्माओ और जडवादी मनुष्यो का यह भेद प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखा सुना जाता है।'

(श्रीराम शर्मा)

[हमारी माँ चीटी को चिन्नी चटाती है, गौ को ग्रास देकर तब खाती है, मूस को घूस देकर मेरा तूस कुतरवाती है, मच्छर, मकडा इत्यादि को अभय-दान दे रखा है। बिछकुतिया और बिच्छू को कुछ भी नही कहती, वर्जित भी नही (करती)।]

शीतिके शीतिकावति,
ह्लादिके ह्लादिकावति। (ऋग्वेद)

पुराणा वा वीर्या प्रब्रबा जनेऽथो
हासथुर्भिषजा   मयोभुवा ।
ता वा नुनव्यावेवसे करामहेऽय
नासत्या   श्रदरिर्यथादधत् ।। (ऋग्वेद)

With the appearance of man, a mere one million years ago, much evolution (विकास) took place in the nervous system. At each stage of evolution a little bit more brain was added and the nervous system (तन्त्रिका-तन्त्र) a little bit more improved and perfected Evolution is also repeated in embryology, (भ्रूण, भ्रौणिकी) so that every foetus (भ्रूण) re-lives (फिर से ज्ञापन) its phylogenetic life (जातिवृत्तीय जीवन) before (पहले) it is born (जन्म लेने के) In the early stages of our intra-uterine existence (अन्तर्गर्भाशीय जिन्दगी) (स्थिति) we have gills (गिल) (क्लोम, गलफडा) and a rudmentary (आद्यागिक) tail   Ontogeny (व्यक्तिवृत्त) the history of the individual, repeats phylogeny (जातिवृत्त), the history of the race   Huxley expressed its more fancifully   The animal in its development climbs up its own geneological tree (वंशावली-वृक्ष)

As evolution proceeded the forebrain took up the role of a mentor, a censor, an editor, an internal adviser And the younger, more evolved, finer or subtler or specialized a cell was phylogenetically, the greater became its oxygen consumption The immediate or chronic effect of O_2 lack or drug addiction is that man takes the reverse process of evolution He climbs back down (descends) our phylogenetic tree, as the more highly developed or 'editing areas of brain become affected, poisoned As it gets out of gear   The process is extremely gradual and it is possible for subjects to pass slowly into a state of unconsciousness and even die, without realizing it

Alcohol is a product of nature and so is opium and cannabis Fermentation (किण्वन) occurs all over the world   Nature ferments and brews   The primitive men knew it as well as the modern man does   From this time immemorial experience, man has found some means of relaxation or escapism, and the reason for this may lie with evolution

With the development of the cerebral cortex (प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था) came our power of self criticism and self realization so that we can go on advancing and helping voluntarily our own evolution and

perfection At the same time man has learnt that when circumstances are too much for him the easiest solution is to crawl down his phylogenetic tree by poisoning his higher centres temporarily with alcohol, opium or 'acid' or some other tranquillizer [प्रशान्तक (दवा)] This is his natural way of shutting himself off from his super-civilized state for a little while so that he can overcome, in his own mind at any rate, his problem and his responsibilities But all drugs (औषध) including alcohol, produce a tolerance (सह्यता) so that it requires more and more to achieve the same effect Production and procurement of even naturally fermented alcohol involves labour, time and money So that the abuse becomes, or tends to become, self limited The exploiting society is now producing cheaper drugs to intoxicate and cater for and meet the pocket of the innocent teenagers Such is the horrible state of affairs The mischief-mongering, money-minting renegade elders have set the society on fire It is burning and the 'hippies' know it The Hearth and Home have become unbearably Hot

Another funny creature that has taken birth and is throwing about its vicious tentacles (स्पर्शक) is the attempt to alter man's consciousness, gain absolute control over an individual's behaviour with drugs, hypnosis, psychethorapy (मनोविश्लेषणिक चिकित्सा), astute manipulation of reward and punishment and now with 'biofeedback (पुनर्निविष्ट) training' machines emitting 'alpha'—waves

In the past four decades the heady belief has grown that people can be molded by simply deciding what they should be and then manipulating their behaviour, as though the world were a laboratory and man a rat or a pigeon

cf Skinnerism (B F Skinner)

Logotherapy (Viktor Frankl) (=to free mans' spiritual unconscious so that he can realize his innate nature and need to find meaning in life

Humanistic psychoanalysis (Rollo May)

'Human-potential movement' Psychosynthesis

Biogrammar Drug culture

Like the heart producing its electrical waves (recorded as the

electrocardiogram) (and called the 'ORS-complex' etc) the activity of the brain also produces various kinds of 'alpha', 'beta', 'theta' and 'delta' waves etc, electrical waves which can be recorded (The record is called Electroencephalogram or E. E G') It has been found that during ध्यान ('relaxed alertness') (?) a particular type of brain-wave rhythm called the 'alpha-wave' appears in the E E G It is opined that guided by a 'bio-feedback training' system human beings can be taught to produce these waves in their brain at their own sweet will 'Capitalizing on the widespread hunger for 'instant nirvana' commercial promoters are selling 'alpha machines' for home use and opening 'alpha training institute'

Freud once wrote to a friend "I have always confined myself to the ground floor and basement of the edifice called man"

Freud's approach has left out much that is most human (Rollo May)

Freud put emphasis on man being driven by his unconscious and thus tended to undercut the notion of 'will' The 'will' and the 'wish' were left out

There are several level of man's 'inner constitution' including a higher realm that is the psychic home of mans' spiritual, philosophical and artistic 'imperatives' (Roberto Assagioli)

It is desirable that man should embark on self transcendence' a process of change that originates in one's heart and begining from 'a vision of freedom' expands out-wards (—Allen Wheelis)

Elmer Green predicts that 'people will be able to stay healthy not by taking drugs but by practising intensive exercises in self awareness and body mastery'

Rollo May believes that a new ethic is needed for our age 'a ethic of intention, based on the assumption that each man is responsible for the effects of his own actions' (कर्मफल)

A man's 'will to meaning' is more basic than the Freudian will to pleasure, to ignore his concern with value is to fail to do justice to the 'humaneness of man' (Viktor Frankl)

'Liberalism', 'Rationalism', 'Scientism', are all under attack now

Technology is dangerous, Progress is suspect Man's confidence in his power to control his world is at a low ebb The holocaust of the 'atom bomb' looms large Materialism is bankrupt

In the meantime 'the contiovercy showed that there is perhaps some truth in the claim made by many that two schools of Yoga are emerging in the world, one Western and the other Eastern, with very little in common between the two' 'The Western concept of Yoga is still a means of relaxation to ease the tensions of a humdrum world' 'The East still regards it as the road to eternity, regardless of the fact that most of the pilgrims fall by the wayside' There may be 'body language' to express every state of the mind And the physical or psychic state brain waves alpha, beta, theta, delta, etc of a Yogi could be determined by instruments But the subtle mind may very well be beyond machines And certain states of the mind might be beyond reach of laboratory tests That higher mind (मनस्) which energizes energy and transmutes it into matter, and is beyond material existence, the otherwordly Cosmic Mind and Its links with human mind (मानस) and brain (mental, मस्तिष्की)

Deepening disillusionment with Science and its offspring technology has come very much to the fore-front A new era seems to be tiptoe on the threshold of human thought Scientists of standing and repute are advocating that there should be room in their discipline for the non-objective, mystical and even irrational Science's naive optimism and arrogance is engulfed in flames Its boisterous claims sound hollow Science is in a shadow 'Science as we know it has outlived its usefulness' (MENDELSOHN)

The days of'Empirical Enquiry, experiments, close observations becide dependence on reason and logic, and intellectualism, scientism, liberalism, and rationalism, seem to be numbered

Newton believed that the sun was inhabited

The Western world's determination to deploy human mind to explore, understand and dominate nature has proved to be a vain persuit

The secrets of Nature seem to have yielded to the laboratories bigger bundles of unexplored mysteries than they had expected to

encounter and to have to handle Simple mysteries have only opend the gates to the more complicated mysterious Mind has been maddened by tiresome and exhausting branchings of the unknown and now well recognized as the unknowables

In the meantime the fear looms large of the population explosion, the Horoshima-Nagasaki death-trap unleashed by bursts of nuclear bombs, the chemical ruining of lands and forests, the pollution (technological wastes and 'fall-outs') of air and water, the imminent block-deaths from boomeranging showers of I C B M , the bleak and barren selfishness of commerce, adulteration of consumable goods and foods, the gashing valley between man and man, the growing gulf between scientists and laymen, the insatiable drive to conquer new (and ever newer) fields regardless of costs and consequences Like the peels of an onion, as the great Buddha pointed out and as the Upanishads concluded, there is no end to the mysteries of the world and the universe

Already preservation of knowledge has become a problem Film-tablets, mini-letters, microscopic statements, they will all have to be preserved Ever increasing in geometrical progression The stalemate created by these mysterious jargons, their burdens, will have to be borne and carried on the shoulders of posterity who will have little interest in the accumulating junk

Look at my files, the furniture of my neighbour and the zoo culled out of captivated creation from devastated habitats

Theodore Roszak spoke of th West's bleak 'mindscape of scientitific rationality' and pleads for a return of submerged religious sensitivities 'Science's alleged objectivity and its attendant evils have denatured man's personal experience and taken the mystery and sacredness out of his life' 'Reason is a limited human skill, only one among many' 'there is also spiritual knowledge and power' 'Here is a range of experience we are screening out of our experience in the name of what we call knowledge'

We have been poking, probing and dissecting Nature Knowledge is not that which is only 'verbal, articulated, rational, logical,

realistic, sensible' Equally important are 'mystery, ambiguity, illogic contradiction and transcendent experience'

The written and the un-written language of science is limited 'One of the most pernicious falsehoods ever to be almost universally accepted is that the scientific method is the only reliable way to truth'

Faith has been shaken in one of the central beliefs of scientfic methodology Even the most 'detached scientific observation' is tainted by certain 'metaphysical and normative judgements' and are by no means 'neutral' and 'truly and entirely objective' The physicist Werner Heisenberg (Principle cf uncertaity) warned that the very act of observing disturbs the system (cf Electron-micro-scopy) The observer cannot be separated from the experiment, he is very much of himself in it, at its centre and at its periphery and at its everywhere Rational science is limited in its ability to comprehend nature It may be just a 'guesswork' of scientists even if as Einstein observed 'God does not play dice with the universe'

'To consider space, time and mass as illusion' in the same way as temperature is only a sensory illusion, (David Finkel-stin). Particle physics, relativity and human consciousness may be linked in some way Gerald Fenberg thinks that psychic transmissions may one day be linked to as yet undiscovered elementary particles, so called mindons or psychons, like the 'tachyon' which always travels faster than the speed of light, the theoretical speed- limit of the universe' ['Science Today' और 'TIME' weekly, 1973, भी पढिये ।]

Matter is 'a convenient formula for describing what happens where it isn't (Bertrand Russell)

अस्तित्ववाद आत्मनिष्ठ (सब्जेक्ट, प्रमाता) तथा वस्तुनिष्ठ (ऑब्जेक्ट, प्रमेय) के विभाजन और प्रतिवाद (एण्टी-थीसिस) और उनके 'द्वैत' या द्विधा विभाजन को भ्रामक और अनावश्यक मानता है। इस वाद-के हिमायतियो की धारणा है कि अस्तित्व ही सर्वोपरि है, अपना अस्तित्व। कि प्रमाता और प्रमेय, द्रष्टा और दृश्य की एकता (सगति) अस्तित्व (एग्जिस्टेन्स) मे स्वत समाहित है। और कि यही सम्यक् दर्शन है, सही दृष्टि। हाइडेगर, मार्सेल, यास्पर्स, सार्त्रे, कामू इत्यादि इसी अस्तित्ववादी दर्शन के प्रवर्त्तक और पोषक रहे है। अस्तित्ववाद मनुष्य के समकालीन मनोदशा से सम्बद्ध है और महायुद्धो की अमानवीय क्रूरता, और जघन्यता के अनुभवो पर आधृत त्रास और सन्त्रास का द्योतक है। अकेला और अनाश्रित, उपेक्षित

और सन्त्रस्त मानव, दु ख और दैन्य, दुत्कार और 'दैवात्' को सहने और झेलने के सिवाय कुछ भी करने मे अपने को असमर्थ पा रहा है। भगवान् जब था, तब उसके समक्ष रो लेते थे, वह आँसू पोछने के लिये एक 'हैन्की' ('र्काचफ')-सा व्यवहृत भी हो जाता था, अपनी जवाबदेही थोपने के लिये एक उलझी हुई अस्तित्व-स्थिति या खयाली सपना या भ्रम था, एक आशा-दिलासा था, एक अभागा भाग्य-निर्णायक था। अब तो वह भी नही रहा। अब अपने नयनो का लोर अपने ही गालो पर सुखाना है, मन की बात मन ही मे रखनी है, अपनी जवाबदेही मात्र अपने ही मत्थे आ पडी हे, अपने सुकर्म के लिये अपनी ही पीठ अपने ही हाथो थपथपाना है, और अपने कुकर्म (दुष्कर्म) के लिये अपने मुँह पर (को) ही चाँटा मारना है।

अपना दु ख स्वय झेलना है। सुख है नही, न कोई बाँटता है, न ढग से सस्ते मे बेचता है। रहनुमाई का दाम भी इतना चढा हुआ है कि साधारण पॉकेट को पाना सम्भव नही।

आदमी चलता-चलता थक गया है। हठात्, अकस्मात् एक दिन किसी अप्रत्याशित क्षण मे वह 'स्थिर' हो जायगा। उसे अमिट स्थिरता का वरण कर लेना है, चुपचाप मर जाना है, न छटपटाना है, न कराहना है। कोई चीख अब सुनायी नही पडती, कोई आह अब गूँजती नही। देखिये! भयकर लू चल रही है, तूफान उठा है। पीडामय परिस्थिति है। आपके हाथ थक भी गये हो, यदि जिस्म चकनाचूर भी हो गया हो, तब भी, फिर भी, अपनी पतवार अपने कमजोर हाथो से निरर्थक चलाते रहिये, वर्ना कोई नाविक नही, कोई सहारा नही, किनारा नही। ध्रुव तारा बुझ गया है, गन्तव्य मर गया है, दिशाये लुप्त हो गयी हे, अन्धकार ने अम्बर को घेराच्छन्न कर लिया है। कोई साथी नही, उपाय नही, राह नही, रोशनी नही। जिन्दा रहिये या मरिये, कौन पूछता है, किसको, हाँ 'किस्को', फुर्सत है। कितनी चीटियाँ रौद दी जाती है, पिस जाती है, कितने घास-फूस कुचल दिये जाते है, घिस जाते है, कितनी मानवता पर मूत दिया जाता है, कितने भ्रूणो पर थूक दिया जाता है। अरे, लोगो! रोको-रोको! क्या रोकोगे भी? खाक? मरणासन्न हस्तियो! भूखे बलिदान के बकरो! तडपते शरीरो! कौन तुम्हे चाट गया? किसने लौ बुझा दी? किसने तुम्हारा वह सब कुछ चूस लिया, जो तुम थे? किसने घूँसे मारकर तुम्हारी अत्यन्त दुबली, क्षीण, काया को घूरे पर, कूडे पर बेहोश, खून बोकर कर मर जाने के लिये, गिरा दिया, फेक दिया?

अब मृत्यु ही चरम सत्य है। क्योकि, वह अनिवार्य नियति है। महत्तम वास्तविकता है, 'अस्तित्व' यदि है, तो महज इसलिये कि मृत्यु उसका प्रमाण है। नही तो कौन कहाँ जी रहा है? कही कुछ दिखाई पड रहा है? मृत्यु के सिवाय?

परिस्थिति है। वह बे-लुत्फ, बे-मरौवत, बदलती जा रही है। जीवित रहने की शर्त्ते क्रूरतर होती जा रही है। पल-पल पर कुछ-न-कुछ निर्णय लेना ही होगा, चाहे

वह 'निर्णय' नकारात्मक हो, आधार-रहित हो, निष्क्रिय हो, या आत्मघातक, आत्महत्यात्मक, ही क्यो न हो ।

चाहे अनचाहे माने न माने, 'भोक्ता' बनना ही पडेगा । मजबूरन । 'द्रष्टा' बनने, बने रहने, की अब छूट रही नही, दृश्य की लपलपाती जीभ लील जायगी, चट कर जायगी । जैसे बिछकुतिया कीडे को गट कर जाती है, खा जाती है । सिकतिल धारा मे, ज्वालामुखी के भूराल (लावा) मे, लौह की गलित (पिघली) लाल आग मे, बहना होगा ! लहरे गिनने का अवकाश कहाँ ! प्राणो मे सौन्दर्य झलकने उडेलने का समय कहाँ ! बहना होगा ! जबरन और जबरदस्ती । तरगो के आघात से घायल होना होगा । बत्ती का तिल-तिल कर जलना होगा । सिर धुनने राख बनना होगा । दीप-शिखा, शलभ और स्नेह तीनो जल रहे है ! हवा जल रही है ! आलोक जला जा रहा है !

विश्व-ब्रह्माण्ड का एकमात्र दीप-स्तम्भ टूट रहा है । असीम उदधि का अकेला जल-दीप बुझा जा रहा है । अनन्त की एकाकी कण्डीलिया धुआँती जा रही है । एक-ही आशा, ध्वस्त हो चली है !!

न भाग सकते है, न कतराना है । पलक मे परिवर्त्तित परिस्थिति पछाडने-वाली है ।

कटकाकीर्ण राह है, काँटो को हटाने का, हटाकर चलने का, जमाना चला गया । काँटे । काँटे । काँटे । हाथ से मजबूत काँटे । तलवो से भारी काँटे । प्राणो से प्रेफरेब्ल काँटे । चलना अनिवार्य है । काँटो की निर्मम चुभन को बरदाश्त करना है । ऊबड-खाबड, गर्म, बीहड, निर्दय, रास्ते पर चलना है । ठहरना नही है । पडाव नही है । ओएसिस नही है । मरुभूमि है । मृत्यु है । चलते-चलते-चलते लडखडाते-लडखडाते-लडखडाते, थकते-थकते-थकते, ओ प्यारी नागफणी ! तुझे मर जाना है । काँटो से बिंधी, सर-शैया पर दम तोडती सिकतोत्पला ! दहकती रेत पर तुम्हारी निर्वाक् सूखी ठठरी क्या प्यास से तडप-तडप कर मर जायगी ? अनवेप्ट अनऑनर्ड ऐण्ड अनसग ? तुम बस यूँही मिट जाओगी ! कितने सुन्दर थे वे सुमन, जो तुमने खिलाये थे ! कितना भयावह था वह उत्साह, वह विकट तुम्हारा सघर्ष !

दु ख कहाँ से आता है ?
दु ख कैसे पैदा होता है ?
दु ख कौन देता है ?
दु ख कैसे मिट सकता है ?

कहाँ से ?—(क) अपने से ।
(१) शरीर (अन्नमय कोश) से (डिस्टर्बेन्स इन दि अनाटॉमी)
(२) शरीर (प्राणमय कोश) से (डिस्टर्बेन्स इन दि फिजियोलॉजी)
(३) शरीर (मनोमय कोश) से (डिस्टर्बेन्स इन दि साइकॉलॉजी)

(ख) समाज और सरकार से (सामाजिक व्यवस्था। सरकारी हुकूमत)। अव्यवस्था। कुव्यवस्था।

(ग) प्रकृति से अथवा दैवात्। (महामारी, बाढ, आँधी, भूकम्प)।

(घ) दूसरो मे।

दु ख कही 'भ्रम' मे और कही 'भूल' से भी उत्पन्न हो जाता है। कही सामाजिक कुरीतियो से, कही अन्धविश्वास से। 'कोढी', 'क्रूर' और 'कुरूप', स्वार्थी सरकार जब सत्तारूढ रहती है और जब जनता के हाथो मे उसे (उसको) हटाने की, गिराने की कूबत नही रह जाती।

लेकिन, दु ख का एक सबसे बडा कारण यह है कि आजकल की दुनिया मे 'कर्म-फल' वाला कानून बौराया हुआ है।

कुछ ऐसी गडबडी हो गयी है इन्सान मे, सोसायटी मे, गवर्नमेण्ट मे, आब-हवा मे, मिट्टी और खाद (उर्वरक) मे, व्योम के व्यवहार मे, कि जिससे कर्म फलता नही और फलता भी है, तो यदा-कदा, कूथ कर, और कॉप कर, और डगमगा कर और सीधी राह से नही, उल्टी से, और वाजिब ढग से नही और उचित जगह पर नही। दु ख यह है कि आम के पेड मे अदरक और अण्डी फल जाता है और बबूल मे अँगूर के गुच्छे। बेल मे सेव और अनार मे कचनार भी फूले-फले, तो आदमी चुप लगा जाय, सह जाय, लेकिन जब यदि नीम मे नारियल और अकवन मे अजनास (अनन्नास) फले और अनार मे अमडा ओर केला मे भेला फलने लगे, तो इन्सान कहाँतक सहे।

भले लोग भूखे रहते है ओर चुस्त चालाक चाँदी काट रहे है। बेईमान इनाम ले रहा है और सज्जन का गजन हो रहा है।

ऐसा लगता है कि न्याय का तराजू भगवान् ने शैतान को सौप दिया है। सुख-दु ख हैवान बाँट रहा है। और, आदमी—हतप्रतिभ, हारा, थका, बौखलाया, घबराया, चकराया, उदास और अवसादित—'नसीब' को नेस्तनाबूद कर, 'कर्म-फल' नामक तथा-कथित 'विधान' का भण्डाफोड करना चाहता है। वह ऊब गया है सचाई, ईमान-दारी, वफादारी, कर्मठता इत्यादि से। क्योकि, ये सारे गुण सिर्फ मुँह ताकते रहते है, ताकते रह जाते है, कुछ लाते नही, कुछ ला नही पाते। इन गुणो मे अब दम नही रहा, ताकत नही रही, आकर्षण नही रहा। ये बेकार हो गये है। वाहियात, गले के बेघ बने, डरपोक, बेवकूफ, अव्यावहारिक, 'सीधे-सादे (भोले-भाले)' लोगो के चाम से झूल रहे है। पेडकुलेटेड लाइपोमा की नाईं। ऐसे अभागे 'भले आदमी' को न माया मिल रही है, न राम, न दीन, न दुनिया। घरवाली बेइज्जत करती है, समाज लाते मारता है, बच्चे कोसते है, साथी दुरदुराते है, सरकार तिरस्कार करती है। अपने 'सुकर्मो' के मुख पर ये कालिख पुतवा कर बज्र-बुद्धू बेकसूर बकरी सीधे-सपाट धर्म-पालक गदहे नागरिक नगरो मे उल्लू की तरह किसी सूखी डाल पर तशरीफ रखे, 'बिराजते', हीनता का अनुभव कर रहे है। लुच्चे-लफगे, चोर-चुहाड, चुस्त-चालाक,

बेईमान, अनैतिक, चरित्र-हीन, अन्स्क्रूप्यूलस, जघन्य, समकालीन सिद्धो को मौज मारते देखकर, और 'कुकर्मो' पर बरक्कत बरसते देख वे आत्मबल खो बैठे हे ।

धर्म विफल हो गया है, अप्रतिभ, अपगा, अँधेरा । धर्म जहर बन गया है । सुकर्म विषाक्त हो गया है । अपयश का भागी ।

लॅंगडा लबार लफगा ऊपर चढता जा रहा है । पापियो के बीच परी मरी जा रही है । कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान मुरझा गया है । साधु औल-बौल मे पडा सज्ञा-हीन होता जा रहा है । अच्छाई की आवाज धीमी पड गयी है । सचाई का स्वभाव भीरु भऽ गया है । गरीब भला आदमी, न्यायी, निरपेक्ष और विश्वासी बफादार, कबाब बनता जा रहा है । ओर, अन्यायी, कृतघ्न, झुट्ठा, बेईमान, ठग, डके की चोट पर धन बटोर रहा है, चिकेन-पुलाव भच्छ-खा रहा है । सुख लूट रहा है । दु ख की हेकडी बन्द कर उसका गला घोट चुका है । वह लेता है सुख, बॉटता है दु ख, बटोरता है सौभाग्य, उलीचता है दुर्भाग्य ।

कर्म का आधुनिक पेड मुँह देखकर फलता है । न जाने सरकार, ससार, व्यापार, कैसे-कैसे 'खाद' सप्लाइ कर रही है, मिलावट मे कौन-सा राज छिपा हुआ है, कैसी हवा बह रही है, कैसा पानी पडता है ? अजीब अजनबी पेड उग आये है कर्म के बाग मे । जिस डाल पर मीठे स्वादिष्ट (ष्ठ), सुस्वादु फल फलते थे, उन्ही डालो पर तीने फल लगते है । खून पीकर, हड्डी चूसकर, मीठे अगूर पकते है । चन्दन के पेड से दुर्गन्ध आ रही है । बेत के वृक्ष मे सुरभित और सुवासित मौलिक कलियॉ खिल रही है । बातूनी चिडिया बीट कर रही है, न गाती है, न अण्डे पारती है ।

जमाना बदल गया है । मौसम बिगड गया है । कोई भारी म्युटेशन (उत्परिवर्त्तन) हुआ है । समाज मे । ससार मे ।

कर्म-फल का विधान भटक गवा है । भगवान् सो गया है ।

साथियो !—साथ हो ।
साथियो !—साथ दो ।
साथियो !—साथ दो ।
साथियो !— साथ दो ।
जमाना ?—बदल गया है ।
जमाना ?—बदल गया है ।
समाज को ?—बदल डालो ।
समाज को ?—बदल डालो ।
समाज को ?—बदल डालो ।
अस्समाज को ?—बदल डालो ।
परमात्मा ?—पागल हो गया ।
परमात्मा ?—पागल हो गया ।
परमात्मा ?—पागल हो गया।

परमात्मा ?—पागल हो गया।

परमात्मा ?—मर गया।

'साथी' क्या सचमुच आपका साथ देते रहेंगे ? कबतक ? जमाना क्या सचमुच बदल गया ? लोभ मोह, चाह, डाह—क्या ये सब विनष्ट हो गये ? क्या अब लोग भयातुर नही हुआ करते ? जमाना कैसे बदल गया ? आप-की-आप ? या आपके कारण ? परमात्मा—क्या वह सचमुच पागल हो गया !! आपका परमात्मा ? कैसे सूचना मिली आपको ? और आप ? आप तो ठीक है न ? बान्धवो के साथ तिष्ठति तो ? पिद्दी पिपरी (पिपीलिका) नास्ति न ?

विज्ञान बदल रहा है। दर्शन बदल रहा है। मूल्याकन बदल रहा है। आपकी खास अपनी राय, जिसे आपने स्वय कायम किया है। —क्या वह नही बदलेगी ?

क्या कभी 'आधुनिक' 'पुरातन' नही होगा ? कोपल मूलिका नही बनेगी ? फल जड नही जमायगा ? खून सर चढकर नही बोलेगा ?

बदला हुआ जमाना क्या फिर पलटा नही खायगा ?

फिर, स्थिरता कहाँ है ? सत्य कहाँ है ? किस बाजार मे ? किस मूल्य पर ? कैसे ? मिलता है वह ? किस विटप (पर) की किस डाली पर यह 'आकाश-कुसुम' खिलता है ? गूलर के गाछ मे तो नही ? बैर के वृक्ष पर ? बाँस पर ?

नही, भाई जान ! नही। जमाना बदल गया हो, जमीन बदल गयी हो। पर, आदमी का दु ख अभी जिन्दा है। काँटा अभी सालता है, चुभता है, गडता है, भोकता है।

और, इस काँटे (दु ख) की भी कितनी सारी किस्मे है।

एक वह दु ख हे, जो बाध्य होकर भोगना पडता है। एक वह दु ख है, जो मनुष्य स्वय अपनी खुशी से या अपनी खुशी के लिये वरण करता है। एक दु ख वह है, जो अपने लिये ढोना पडता है। एक दु ख वह है, जो दूसरो की खातिर उठाना पडता है। किसी खास मकसद से या निष्प्रयोजन ही। स्वार्थ से या परमार्थ के लिये। समाज, देश (राष्ट्र) या ससार के हितार्थ।

चोरी करके पिटाई खाना। माँ का बच्चे के लिये दु ख उठाना। मरीज की खातिर हकीम साहब का अपनी नीद हराम करना। भूख मिटाने के लिये बोझा ढोना, भीख माँगना। देश के लिये शहीद हो जाना। दधीचि का त्याग। कर्ण का दान। महामारी की रोकथाम के दरम्यान डॉक्टर का बीमार पडना। सीखचो की शैया पर साधु की करामात। महात्मा गान्धी की पीडा। भगवान् बुद्ध का वैराग्य। वैज्ञानिक का अनुसन्धान (मदाम कुरी का अध्यवसाय)।

तेनसिग। हिलारी। गॅगारिन। सिरोही। मिहिर सेन। आर्मस्ट्रौग। पर्वतारोहण। चन्द्रयात्रा। किसी की जान बचाने के निमित्त अपनी जान जोखिम मे डालना। नि स्वार्थ खतरे उठाना। अपना सुख देना। पराया दु ख लेना। रोकर हँसना। हँसकर बोलना। यातनाओ की परवाह न करना। रेल मे पैर फैलाकर सोना और व्ही० शान्ताराम, देविका रानी, कुन्दनलाल सहगल, प्रमथेश बरुआ, सत्यजीत राय

राजकपूर, मीनाकुमारी, शान्ता आप्टे, मोतीलाल, केशवराव दाते, पकज मल्लिक, गोपीकृष्ण, सचिनदेव बर्मन, अशोककुमार, जया भादुडी, चन्द्रमोहन इत्यादि के लिये भी जल्दी जगह न छोडना। भिखरिया-महेन्द्रा का मिथ्या रुदन, स्वाँग। पति को फँसाने के लिये भार्या का आँसू चुलाना और दिखाने के लिये पोछना भी नही। जौहर-व्रत।

यह सभी 'प्रकार' है दु ख के। कोई अनमोल, कोई दो कौडी के। कोई इन्सान को गर्त्त मे गिरानेवाला, कोई सर-आँखो पर उठानेवाला, कोई सदेह स्वर्ग सिधारनेवाला। कोई वरणीय। कोई त्याज्य। कोई पाशविक। कोई पिशाच के बोझ। कोई मानवता मे चार चाँद लगानेवाला। कोई भ्रम उपजानेवाला। कोई परमात्मा को गौरवान्वित करनेवाला। कोई स्वर्ग से शाबाशी लानेवाला।

दु ख के लिये अनेक विशेषण व्यवहृत हो सकते है। जैसे सन्तुष्ट, सन्त्रस्त, सन्तापित, साघातिक, शिंजित, सुरभित, शाणित, शापित, शालीन और शाइस्ता, शाश्वत और सग्राह्य, शुभकर और प्रलयकर, शोणित-सिक्त और शोषण-रिक्त, शोख और शर्मीला। शमा का जलना। शलभ का मिटना। शराबी का दीन-हीन बनते चला जाना। प्रसव की पीडा। शौच का दु ख-सुख। कर्कशा से हारना। जुबान से खार खाना।

'नसकट खटिया बतकट जोय,
जो पहलौठी बिटिया होय।
पातर कृषि बौरहा भाय,
घाघ कहे दु ख कहाँ समाय॥'

'घोर' 'तपस्या' के बाद एक दिन जब भगवान् शकर का एक भक्त 'ध्यान' मे था, तब उसे किसी के आने की आहट मिली। आँखे खोलकर देखा, तो गद्गद हो गया। साक्षात् आराध्यदेव हिप्पी-गॉड शकर खडे थे। भक्त का दिल बाग-बाग हो गया। विह्वल होकर वह रोने लगा और चरणो पर गिर पडा।

हे गौरी नाह! उसने कहा, कितनी प्रतीक्षा करायी आपने। और, उसने उनके पैरो को अपने बाहुपाश मे जकड लिया। भगवान् जरा घबराये, चकराये, फिर मुस्की मारकर बोले

"धूल-धूसरित हूँ, न राख है मशान की ये।
टर्किश है टोपी यह पूँछ गगा न है।
हरी-हरी ककडी खरीदे आ रहा हूँ अभी,
ऐसा न समझो कि यह व्याल-जाल है।

•

सभी दाढी-मूँछ वाले होते है न बमभोला।
शिव कही होगे, बन्दा तो मुसलमान है।" (मदन वात्स्यायन)।

इतना सुनना था कि भक्त पछाड खाकर गिर पडा। और, दु ख को प्राप्त हुआ।

'चम्पा तर खाढे भइले
नवीन बरुआ हो [बरुआ=वर=नौशा]
काहे, रे बाबू ! नयनवा ढरे हो ?
काहे ? रे बाबू !'

बरात सजी-सजायी प्रस्थान के लिये तैयार थी। बरुआ को शादी के लिये बिदा करने के पहले उसकी माँ को एक आखरी रस्म पूरी (अदा) करनी थी। उसने बेटे का सर अपनी आँचल से बस एक आखरी बार और ढक दिया और रो पडी। बाजे बज रहे थे। वेदपाठ हो रहा था। गीत गाये जा रहे थे। हाथी-घोडे-मोटर-बराती सजे-धजे-चहल-पहल-हो-हल्ला। नौशे की गाडी जैसे ही आगे बढी कि जवान दूल्हा-बेटा की आँखे नम हो गयी। हँसी-खुशी के माहौल मे यह माँ-बेटे का दु ख कहाँ से झाँक गया ?

अपनी नयी मॉडेल मरसिडीज कार पर कोई निकला, तो पडोसी के दिल पर साँप लोट गया।

किसी के घर का चिराग गुम हुआ तो कही पूए पके।
'दु ख के जल से भरा जलद जग का सन्ताप मिटाता
बरस-बरस कर वर्षा के आँसू को गीत बनाता'—
'गीली पलको मे गुलाब का पुण्य अनछुआ खिलता
कवि के आँसू !,—कहाँ विश्व मे ऐसा वैभव मिलता ?' ('प्रभात')

अपशोची सदा सुखी। 'बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछताय'।

जो दु ख इच्छा और कामना की पूर्त्ति से मिटाया जा सके, वह आवश्यक वस्तु-स्थिति को उपलब्ध कर मिटाया जाना चाहिये। सम्भवत । जहाँतक हो सके। यह साफ बात है।

लेकिन, इच्छा द्रौपदी का चीर है। कामना कभी समाप्त नही होती। और, अन्तत वह सघर्ष को पैदा करती है। दु ख को जनती है।

यह दु ख-सुख की समस्या बडी जटिल और बीहड और गहन है। है न ?

अब छोडिये इस दु ख के पचडे को। ससार मे दु ख से छुटकारा तो है नही। जितना भर दु ख मिटाया जा सके—(क) व्यक्ति से, (ख) समाज से, (ग) सरकार से, (घ) ससार से—उतना भर तो मिटा ही लेना (देना) चाहिये। तत्पश्चात् दुनिया मे कौन-सा और कितना दु ख बच जायगा मिटने को ? बचे-खुचे दु ख के निवारणार्थ 'दर्शन' है, 'देवता' है, 'दिल' है, 'दिमाग' है, 'दवा' है, 'दारु' है। 'दिलासा' है।

इसके बाद भी अगर दु ख असह्य हो रहा है, तो मूर्च्छा है, मृत्यु है। मति-भ्रम और उन्माद है। वैराग्य है।

लेकिन, दु ख के बारे मे सोच-सोचकर क्यो दु खी बने ? चर्वित-चर्वण से, गीजने-मथने से दु ख जायगा नही, सटा रहेगा।

और दु ख न 'प्रधान' और न 'एकमात्र' समस्या ही है जीवन की। दु ख से भी बडी भारी समस्या सामने है—व्यक्ति के सामने, समाज के सामने, ससार के सामने। और वह समस्या है नैतिकता और सदाचार की। मूल्याकन की। दु ख हटाने से कही ज्यादा जरूरी हो गया है कि झूठ हटाया जाय, बेईमानी हटायी जाय, विश्वास-घात हटाया जाय, अन्याय हटाया जाय, भेद-भाव हटाया जाय। वैषम्य हटाया जाय जातीयता हटायी जाय, गरीबी हटायी जाय, निरक्षरता हटायी जाय। शोषण हटाया जाय। प्रेम से। प्रभुत्व से नही। डण्डे से नही। समझाकर। उलझाकर नही। 'त्याग' से। 'अचाह' से। सदुदाहरण से और आदर्श उपस्थित करके।

इच्छा ईन्धन है। ईर्ष्या भी।

कामना अग्नि है।

चाह की चाट लगती है।

लोभ, लोलुपता, लेहन है। वह व्यक्तित्व को चाट जाती है।

सुख पराधीनता और सघर्ष को पैदा (प्रस्तुत) करता है।

चिन्ता चिता है।

चाह से चिन्ता बढती है।

रोटी हो एक और कुत्ते हो सात, तो भिडन्त न होना नामुमकिन है।

न धन बढाने से दु ख मिटेगा, न धन बॉटने से।

दु ख मिटेगा त्याग से, तपस्या से, अचाह बनने से।

दु ख न दॉत निपोरने-बिदोरने से मिटेगा, न दॉताकिटकिट से, न दॉत पीसने-चबाने से।

दु ख मिटेगा स्वास्थ्य से।

दु ख मिटेगा प्रेम-प्रसारण से।

दु ख मिटेगा सहयोग से।

दु ख मिटेगा सौहार्द से।

दु ख मिटेगा सदाचार और नैतिकता से।

दु ख मिटेगा अपरिग्रह से, वस्तु बटोरने से नही।

दु ख मिटेगा इतमीनान और सुरक्षा से। असीवन (सीमलेस) निश्शकता से।

दु ख मिटेगा प्रतिमान (स्टैण्डर्ड) बढाते जाने से नही, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता और होड और प्रतिद्वन्द्विता पैदा करने से नही।

दु ख न फूट से मिटेगा, न बूट से, न सजा, न गजा से।

दु ख मिटेगा रजा से और कजा से।

दु ख तब मिटेगा, जब 'बडे लोग', 'अनुकरणीय नागरिक', 'सत्तावान् व्यक्ति', त्याग और अचाह को अपना कर, एक ऐसी जिन्दगी बसर करने लगेगे, जो आम लोगो मे

हीनता, दूरत्व, असफलता, और बाध्यता, अभाव और असमर्थता, का भाव न उत्पन्न करे। समाज सच्चे दिल से (सचमुच) सहयोगी हो। सदाचारी हो। दु ख मिटाने का यही एकमात्र मूल मन्त्र है।

घमण्डी, धृष्ट, कठोर, झट्टे, बेईमान, लोभी, चाइयो और चाटुकारो और ठग-बटमारो से दु ख नही मिटाया जायगा। जो स्वय दु खी और दु खदायी है, वह कभी दु ख-भजक नही हो सकेगा। भूखा बाघ किसका दु ख मिटायगा ?

व्यक्ति, परिवार, समाज, सरकार, ससार और सृष्टि—सभी प्रेम के वशीभूत है। यह अमोघ अस्त्र है। जो कभी नही फेल किया, कभी असफल न रहा।

छाती उतान कर चलना, मूँछ ऐठना, वह दिखावा ('प्रदर्शनोन्माद', आत्मप्रदर्शन) जो दूसरो को नीचा दिखाने के लिये अमल मे लाया जाय, व्यवहृत हो, यह सब आग मे घी का काम करते है।

बटोरना और बटोरते ही जाना सरासरी गुण्डागिरी है।

धन बटोरना, सत्ता बटोरना, प्रभुत्व बटोरना, उपाधियाँ बटोरना, अलभ्य और दुर्लभ वस्तुओ को अपनी 'खास' तिजोरियो मे बटोरना, पत्नियाँ बटोरना, बच्चे बटोरना, सुरक्षा बटोरना, ज्ञान बटोरना, विद्या बटोरना,—और बे-हद बटोरना। हद से बेशी अमृत भी अजीर्ण करता है, गगाजल भी डुबा सकता है।

सशयात्मा विनश्यति।

दीर्घसूत्री भी विनश्यति।

जो नाक की सीध मे देखता है, नाक के पास तक (अदूरदर्शी, अल्पदृष्टि, चोधा) ही देखता है, न एडैप्ट (अनुकूलन) कर पाता है, न ऐडजस्ट (समजन), वह 'नर-पुगव (!)' भी विनश्यति।

अगर ज्ञान और प्रतिष्ठा का पाग इतना विशाल और बृहत् हो कि वह आते-जाते सबसे टकराने लगे, भय और भौचक मे डालने लगे, तो आतकित, चौधियाये, लोग लडखडा कर उसे गिरा ही डालेगे।

किसी की दयनीय दशा पर, भर्त्सना और घृणा और तिरस्कार को छिपाये, कोई पाजी मुस्कान सहानुभूति का ढोग रचे, तो वह कबतक कलाबाजियाँ दिखला पायगी ?

जिन्दगी जितनी सहज, सहिष्णु, साफ, और सीधी होगी, उतनी ही सह्य होगी। 'साधो ! सहज समाधि भली'।

जो अपने लिये अहितकर है, वह शायद दूसरो के लिरे भी हानिकर हो। और, जिसमे अपनी भलाई दीखती हो, वह शायद दूसरो के लिये भी भला हो। लेकिन, स्वार्थ परमार्थ नही हो सकता। और, जो किसी खास व्यक्ति के लिये दवा होगी, वह किसी और के लिये जहर हो सकता है। समझ-बूझकर चलना और उल्लू की भाँति हिहियाना, दोनो मे फर्क है। या नही ?

चाह पूरी की जा सके, तो बशौक उसे पूरी कर ही डालिये। वह भी दु ख की एक कारगर दवा है। वर्ना अचाह का मार्ग अपनाइये। रास्ता सही हो। लक्ष्य मान्य हो। सुलभ या दुर्द्धर।

दु ख भोग-भोग कर, घिस-घिस कर, तिल-तिल कर, घुल-घुल कर, पल-पल पर, मरिये मत। दु ख-निवारणार्थ कुछ कीजिये।

आपके पास एक मणि है न ? जरा हमको भी दिखलाइये। आइये, जरा पास बैठ जाइये। कुछ अपनी भी सुनाइये।

ह्रासितो को अपना हथकण्डा बनानेवाले नेता को क्या कहा जाय ! पाखण्डी पुरोहित को क्या नही कहा जाय ! कौन नही जानता की नीव पर इमारत खडी होती है, पैर की पूजा की जाती है।

भगवान् गूँगा नही है।

हम बहरे हो गये है।

खड्ग आतताइयो के हाथ मे है।

हम बकरे हो गये है।

उनकी जीभ से लार टपक रही है। हम बिस्मिल बने प्राण की भीख माँग रहे है।

वे कमल, केवडा और कैक्टस पटा रहे है। हमारी सूखी जीभ तालु मे सटी जा रही है।

अरे, यारो ! घूसो मत, फेको मत, बरबादो मत, लेकिन कुछ बाँटो तो सही। परमात्मा की करुणा का प्रवाह तो मत रोको, भले आदमी ! पीते हो, तो पिलाओ भी। मनहूस मत बनो। जीते हो, तो जीने भी दो, जिलाओ भी।

बटुआ खोलो। टेट ढीलो। आखिर कितना ललचाओगे ! कितना ?

कितनी दूर रहोगे ! अकेले कहाँ बसोगे ?

सृष्टि की कुजी तुम्हारे पास तो है नही। न विधान तुम्हारी अक्ल की तरजीह कर रहा है। काहे को हास्यास्पद बने फिरते हो, हताहत हुए गिरते हो ! सँभालो बाबा ! गैबी कोह से बचो। तुषाराघात से बचो। लू से तो बचो। देखते नही, कैसी गर्म हवा झोक रही है। धौके जाती है।

'हड्डी छेद रहा है जाडा
बेबस दाँत बजाते है।
भूखे रह कर, आधा खाकर
दिन-पर-दिन दुबलाते हे ॥
दवा न कर पाते रोगी की
यम को पास बुलाते है।
हरि-इच्छा या राम भरोसे।
अपने को समझाते है ॥' (नागार्जुन, वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री')

आप पूछते है न कि दु ख कहाँ है ? तो सुनिये,—घबराइयेगा नही,—सुनते जाइये

(१)

छापक पेड छिउलिया
तो पतवन गहबर
अरे रामा तिहि तर ठाढी हरिनियाँ
त मन अति अनमनि हो
चरैत चरैते हरिनवाँ
तो हरिनी से पूँछइ हो

हरिनी की तोर चरहा झुरान
कि पानी बिन मुरझिउ हो
नही मोर चरहा झुरान
न पानी बिन मुरझिउ हो
हरिना ! आजु राजाजी क छट्ठी
तोरे मारि डरिहइँ हो
मचिऐं बैठलि त कौसिल्या रानी
हरिनी अरज करइ हो
रानी ! मसवा त सिझही रसोइया
खलरिया हमे देतिउ
पेड़ुवा से टँगबइ खलरिया
त मन समझाउब हो
रानी ! हेरि फेरि देखबइ खलरिया
जनुक हरिना जीतइ हो
जाहु हिरनी घर अपनो
खलरिया नाही देबइ हो
हरिनी ! खलरी क खँजडी मिढउबइ
त रामा मोरे खेलिहइँ हो ।
जब जब बाजइ खँजडिया
सबद सुन अनकइ हो
हरिनी ठाढि ढँकुलिया के नीचे
हरिन के बिसूरइ हो ।

दुर्गादास लाहिडी-विरचित 'बाँगालीर गान' मे हिरणी जब जगल मे घास खा रही थी शिकारी निशाना साध रहा था । अचानक उसने तीर चलाकर हरिणी को घायल कर दिया । तीखे तीरो से आहत होकर वह बिचारी गरीब हरिणी गिर पडी । हरिणी ने कहा, 'मैं वनवासिनी हरिणी हूँ, किसी का कुछ धारती नही, कुछ लिया नही ।

हाय ! यह मेरा शरीर—मेरा रक्त और मास—ही ससार का वैरी हो गया ! भाई तीरन्दाज, मै न तुम्हारे पोखरे का पानी पीती हूँ, न तुम्हारे खेत-खलिहान का तृण खाती हूँ। तूने मुझ निर्दोष का प्राण क्यो लिया (मुझ निरपराध के प्राणो का ग्राहक क्यो बन गया) ? मै अपने छौनो को बिना दूध पिलाये आयी थी, उनका चन्द्रमुख बिना देखे चली आयी थी, उन्हे चूमा-चाटा भी न था। मै मरी जा रही हूँ, उसका मुझे दु ख नही है। लेकिन, मेरे बच्चे क्षुधा से व्याकुल हो 'माँ-माँ' कर रोयेगे। उनकी कारुणिक आवाज, रुदन, देवता के दिल से निश्चय टकरायगा। जरूर ही प्रतिध्वनित होगा। तू उसका क्या जवाब देगा ? ओ सग की सहेलियो ! ओ भाइयो ! मेरे हरिण से कहना कि दुधमुँहे बच्चो को यत्न से पाले-पोसे। कहना कि जीवन-भर दर्शन और आलाप, अब फिर नही होगा

आदाय मासमखिल स्तनवर्जमङ्गात
मा मुञ्च वागुरिक याहि कुरु प्रसादम्।
अद्यापि घासकवलग्रसनानभिज्ञो
मन्मार्गवीक्षणपरस्तनयो मदीय ॥

लो, अब सारे हसरतो, अरमानो और इच्छाओ का अन्त हुआ शिकारी के तीर से। हाय ! बे-गुनाह की जान इसने कैसे तीखे तीरो से ले ली !

(२)

'खून-पसीना किया बाप ने एक, जुटायी फीस।
आँख निकल आयी पढ-पढ के, नम्बर पाये तीस ॥
शिक्षा-मन्त्री ने सिनेट मे कहा,—'अजी ! शाबाश !'
सोना हो जाता हराम यदि ज्यादा होते पास।
फेल-पुत्र का पिता दुखी है, सिर धुनती है माता ॥
जन गण मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्यविधाता ॥'

(वै० या० नागार्जुन)

(३)

पुरुबु से आई रेलिया
पछिउँ से आई जहजिया
पिया के लादि लेई गइहो—
रेलिया होई गइ मोर सवतिया
पिया के लादि लेई गइ हो।
रेलिया न बैरी, जहजिया न बैरी
उहे पइसवे बैरी हो—
देसवा देसवा भरमावै
उहे पइसवे बैरी हो।
भुखिया न लागै, पिअसिया न लागै,

हमके मोहिये लागे हो—
तोहरी देखि के सुरतिया
हम के मोहिये लागे हो ।
सेर भर गेहुँआ बरिस दिन खइबै
पिया का जाइ न देबै हो—
रखबै अँखिया के हजूरवा
पिया का जाइ न देबै हो ।

(४)

दीवा (दिया) बले सारी रात,
मेरया (मेरा) जाल्मा (जालिम)
दीवा बले सारी रात ।
बतियाँ बटा रख दी, मेरया जाल्मा
दीवा बले सारी रात ।
आवेगा ता पुच्छ लवागी,
मेरया जाल्मा
कित्थे गुजारी सारी रात ।
बत्तियाँ बटा रख दी, मेरया जाल्मा
दीवा बले सारी रात ।
आवेगा ता बुज्झ लवागी,
मेरया जाल्मा
कित्थे गुजारी सारी रात ।
दीवा बले सारी रात,
मेरया जाल्मा
दीवा बले सारी रात ।

ऐ मेरे जालिम ! दीया (दीप) (चिराग) सारी रात बलता रहा । बत्ती बाँटी । जलाये रही, उसकाती चली गयी, वह जलता चला गया । सारी रात इन्तजार करती रही । दरवाजे की ओर आँख गडाये रही । मेरे जालिम ! तू ने सारी रात कहाँ गुजार दी ? मै वर्त्तिका (बाती)-सी दुबली हो गयी । तिल-तिल कर जली । मै जागी रही, तुम्हारी बाट जोहती । पलको मे पीग । नयनो मे नीर । मन मे तेरी मूर्त्ति सँभाले, सँजोये । पूछ ँ तो सही, जरा बतला तो, कि तू सारी-सारी रात कहाँ रह गया ? कहाँ बिता दी यह भरी लम्बी रात ? मेरे जालिम ! (देखिये देवेन्द्र सत्यार्थी-लिखित 'धरती गाती हैं' ।)

(५)

तीन बैल दो मेहरी ।
काल बैठ वा डेहरी ॥

खेती करै बनिज को धावै ।
ऐसा डूब थाह न पावै ।।

नारि करकसा (कर्कशा)
कट्टर (काटनेवाला) घोड (घोडा) ।
ह्राकिम होइ के खाय अँकोर ।।
(रिश्वत, घूस, लेनेवाला ऑफिसर)
कपटी मित्र पुत्र है चोर ।
घग्घा इनकहँ (इनको) गहिरे बोर ।।
(इन्हे दूर हटा देना चाहिये, 'गहरे जल मे डुबाना चाहिये' ।)

एक तो बसो सडक पर गॉव ।

(तुलना कीजिये—गॉव से 'मेहमानो', 'अतिथियो', 'यात्रियो', 'राही-बटोहियो', का पटना मे आकर मेडिकल कॉलेज के होस्टल मे टिक जाना, ठहरे रहना । और, छात्रो की पढाई मे दिक्कते डालना, उनका समय बरबाद करना, उन्हे आर्थिक सकट मे डालना ।)

दूजे बडे बडन मॉ नॉव । (आतिथ्याकर्षण ।)
तीजे परे दरबि से हीन । (गरीबी ने आ दबोचा ।)
घग्घा हम को बिपता तीनि ।।

सॉझे से परि रहती खाट । (रात-दिन बैठी झख मारती है ।)
पडी झँडेहरि (बरतन) बाहर बार (छितराये) ।।
('खदेरन को माई !' 'लोहा सिंह')

घर ऑगनु (ऑगन) सब
घिन घिन (मक्खियॉ भनभनाती रहती है, गन्दा) होइ ।
घग्घा तजौ कुलच्छनि जोइ ।।

चाकर (नौकर) चोर, राज (राजा) बेपीर (निर्दयी), (दूसरो का दु ख-दर्द न समझनेवाला) ।

कहै घाघ का (किस तरह) (क्या) धारी (धरूँ) धीर (धीरज) ।।

बनियक (बनिया-व्यापारी का बेटा) सखरज (शाहखर्च, अपव्ययी), ठकुरक (ठाकुर का) हीन (तेजहीन, बुद्धू-बेकार) ।

बैद (वैद्य) क पूत, व्याधि नही चीन (बीमारी नही पहचानता) ।।

पण्डित चुप-चुप ('ज्ञानी' कुछ न बोले, 'नेति' कहकर रह जाय), बेसवा (वेश्या) मैल (मन्दी) ।

कहै घाघ पॉचो घर गइल ।।

अब्बर (कमजोर) खेती,
बाउर (बदमाश, बेकार) भाय (भाई)।
फूहर (फूहड) तिरिया (स्त्री, पत्नी) हरहट (सीग मारनेवाली, दुष्टा) गाय ॥
घाघ पडोसी से झगडन्त (झगडालू पडोसी) ॥
रिनिया (ऋण, कर्ज) ब्योहर (तकाजा), बिपति क अन्त (दु ख की चरम सीमा)॥

हरहट (दुष्टा) नारि (स्त्री, पत्नी),
बास एकबाह (अकेले रहना)।
परुवा बरध (जो बैल पडा रहे, मठेरनेवाला, काम-चोर, जो मशीन बिगडी पडी है), सुहुत (सुस्त) हरवाह (हलवाहा) (टेक्निशियन) (टाइपिस्ट, ड्राइवर, कम्पाउण्डर, असिस्टैण्ट इत्यादि) ॥
रोगी होइ (रोगी शरीर), होइ इकलन्त (अकेले)।
कहै घाघ ई बिपति क अन्त ॥

झिलँगा खटिया (कष्टदायक, ढीली, खाट), बातलि (गठिया—वातरोग से ग्रस्त) देह।
तिरिया (स्त्री, पत्नी) लम्पट (कुलटा), हाटे (बाजार मे) गेह (घर) ॥
बेटा बिगरि (बिगडकर) के मुदई मिलन्त (शत्रु से मिल गया हो) (फासिज्म)।
कहै घाघ ई बिपति क अन्त ॥

ढीठ पतोहु, धिया (बेटी) गरियार।
खसम (पति) बे-पीर, न करै विचार ॥
घरे (घर मे) जलावन अन्न न होइ।
घाघ कहै सो अभागी जोइ (स्त्री) ॥

(जिसकी जिह्वा पर बसी गाली बेग की तरह उछल-उछल कर अगराया करती हो। गाली-गुणी-धुनी।)

[गनीमत है कि ऐसे सुलटो-सुलझो का परिवार सयुक्त नही रह पाता।]

पूत न माने आपनि डॉट।
भाई लडै चहै नित बॉट ॥
तिरिया कलही करकस होइ।
नियरा बसल दुहुट (दुष्ट) सब कोइ ॥
मालिक नाहिन करै विचार। (अन्स्क्रूप्यूलस ऑफिसर)।
कहै घाघ ई दुक्ख अपार ॥

(भाई लडते रहते है और निशि-वासर बॉटने के ही फेर मे ढरे रहते है।)

कोपे दई (ईश्वर कुपित है), ('दैव' दबारे-दबोचे हुआ है।)
मेघ ना होई। (समस्याओ का सुलझना नही हो पाता।)
खेती सूखति,

नैहर-जोइ (सेपरेटेड, डाइभोर्स्ड, वाइफ) (पत्नी नैहर रहीती है, पूछती नही)।
पूत (बेटा) बिदेश (परदेश) [रहीती—रहती ही] [धन्य-धन्य है आप !]

(**टिप्पणी** घाघ की यह उक्ति आजकल के जमाने मे ठीक बैठती है कि नही यह वही बूढे बाप-माँ जाने, जिनके बेटे परदेश से लौटने का नाम नही लेते और माँ-बाप को भूल बैठे है।) (यो बहुतेरे, 'आधुनिक'—'परम्परागत' अम्मा-डैडी इसी मे फख्र मानते है, हुक्का-पीकर खैनी-खाकर रुआब थूकते रहते है, जहाँ किसी 'अभागे' फादर-मदर के सामने आते है।

खाट पर (रोग-ग्रस्त) (खाट पकडे हुए) कन्त (पति, ब्रेड-विनर या शेयरर)।

कहै घाघ ई बिपति क अन्त ॥ (शायद !) (लाइफ-इन्श्योरेन्स के रहते ?) ('नये-फैशन की बीवी है, इधर निकली, उधर निकली।'—बकटूट अजीमाबादी) (कमासुत)।

आँधर पूत ('अन्धा', वज्र-मूर्ख) (बेटा), बहिनी (बहन) मुँहजोर (लडाकू) (वाचाल)।

बाते (बात करने मे) तिया (अर्धांगिणी, जीवन-संगिनी, भार्या धर्मपत्नी, बेटर-हाफ) मचावइ सोर (हल्ला मचानेवाली) ॥

भाई भवहि (भाई की पत्नी और भाई स्वय) करै तकरार (लडाई-झगडा)।
ई दुख घाघ क बडा अपार ॥

आपन आपन सब का होइ। दुख माँ (मे) नाहि सँघाती (मददगार) कोई ॥
अन बहतर (अन्न-वस्त्र) खातिर (के लिये) झगडन्त। (रेशनिग, फेमिन)।
कहै घाघ ई बिपतिक अन्त ॥

'अतिशय रगड करै जो कोई।
अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥'

अब चुप लगा जाना ही वाजिब है।
कही अपने राम को भी वैसा-ही कुछ न सुनना पडे, जो घाघ को सुनना पडा था

'घाघ दहिजरा अस कस कहै।
पातरि ऊख बहुत रस रहै ॥'
(दे० रामनरेश त्रिपाठी-लिखित 'ग्राम-साहित्य')।

इन सब 'दुखो' के लिये 'दैव' को कोसा जाय ?
क्या कहते है ? सोचकर राय दीजिये।

'दुनिया साबित करती है कि खून का नाता अधिक गहरा होता है, पर मैने साबित कर दिया है कि स्नेह का सूत अधिक मजबूत होता है, देखने मे क्षीण, पर अटूट ।' (नन्दकिशोर प्रसाद 'पर गूँज रह जाती है' मे)।

"बाबा के चरण स्पर्श कर उन्होने हर्षाश्रुओं से उनका अभिषेक किया। 'सहन करो, सहन करो। सुख हो या दुःख, धैर्य से ही सहन करना चाहिये। मनोबल की वृद्धि करनी चाहिये तुम लोगों के इस प्रकार गिरने, उठने और रोने की क्रिया होने पर, मै फिर इस प्रकार के अनुभवो का अनुग्रह नही कर सकता।' कहकर बाबा ने उन्हे डाँटा।" "किसे? किस समय? किस प्रकार का अनुग्रह प्रदान करना चाहिये, यह बाबा भली भाँति जानते है। अब भी वे बार-बार कहा करते है। 'जबतक कडाके की भूख न लगे, तबतक खाना नही परोसना चाहिये। भूख की पुकार मचाकर अन्न के लिये जो तरसता है, उसे ही खाना देना उचित है। क्योकि, वही खाना अच्छी तरह पचा सकेगा और आरोग्यवान् हो पायगा'।" "उनके अवतार का उद्देश्य मानव के उद्धार के लिये उत्तम आदर्श मार्ग का बोध कराना ही है।" "तुम कही भी रहो, तुम्हारा योगक्षेम मेरे हाथ मे है।" "अपने अन्तःकरण को परिशुद्ध कर रखिये। अपने-अपने हृदय-कमलो मे परमात्मा के निवास के लिये दुर्गुण-रूपी काँटो को निकाल फेकिये। आशा को अवसर न दो, खड्डे मे गिरायगा, अपने मन को काबू मे रखना सीखो अधैर्य को अवसर देने पर नाश प्राप्त होगा। आपके अन्दर मे जब भगवान् ही रक्षक बनकर आपके पास ही है,तो फिर धैर्य-हीन क्यो होते है?" बाह्य व्यवहार नही, अपितु भावना ही श्रेष्ठ है।" "स्वनिन्दा नही करनी चाहिये, भय से निष्क्रिय हो नही बैठना चाहिये, अपने अन्तर्यामी भगवत्-चैतन्य का स्मरण करना ही यथेष्ट है। मन शान्ति हो जायगी, साहस बढेगा, स्वप्न सत्य मे परिवर्त्तित हो जीवन सरल बनेगा।" "मेरे लिये तुम्हारा परिशुद्ध हृदय-मण्डप, मन पुष्प, सत्कर्म-रूपी फल तथा प्रेमाश्रु-रूपी पावन जल ही आवश्यक है।" "प्रतिदिन ईश्वर के ध्यान के लिये थोडा समय-विनियोग करो तथा आगे-आगे बढते जाओ।" "समर्पण-बुद्धि से, शरणागति-मनोभावना से कर्म करने पर बन्धन प्राप्त नही होते। फलापेक्षा से ही सुख-दुःख आदि बन्धनो की प्राप्ति होती है। कर्म के बिना भक्ति दीवार-रहित नीव है, भक्ति-रहित कर्म नीव-रहित दीवार।" मै सबके उद्धार के लिये आया हूँ, सब नाम मेरे ही है, मेरा कोई पृथक् नाम नही, किसी भी नाम से पुकारो, पुकार मुझतक पहुँचेगी।" "तुम लोग मेरी निन्दा करो, तब भी मै तुम्हारे साथ हूँ।" (भगवान् श्रीसत्यसाई बाबा)

रावण रथी विरथ रघुवीरा।
देख विभीषण भयउ अधीरा॥

अधिक प्रीति मन भा सन्देहा।
बन्दि चरण कह सहित सनेहा॥

नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

सुनहु सखा कह कृपानिधाना ।
जेहि जय होय सो स्यन्दन आना ।।
शौरज धीरज तेहि रथ चाका ।
सत्य शील दृढ ध्वजा पताका ।।
बल विवेक दम परहित घोरे ।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे ।।
ईश भजन मारथी सुजाना ।
बिरति चर्म सन्तोष कृपाना ।।
दान परशु बुधि शक्ति प्रचण्डा ।
बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा ।।
अमल अचल मन त्रोण समाना ।
सयम नियम शिलीमुख नाना ।।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा ।
एहि सम विजय उपाय न दूजा ।।
सखा धर्ममय अस रथ जाके ।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ।।
महा अजय ससार रिपु ।
जीति सकै सो वीर ।।
जाके अस रथ होई दृढ ।
सखा सुनहु मति धीर ।।

(रामायण लकाकाण्ड)

'मानव माधव बन सकता है ।' 'अनुपम सौन्दर्य ही आनन्द है ।' अन्य प्राणियो का जन्म अपने से नीचा और क्षुद्र मान, उनकी पुकार पर बहरे और उनका दु ख देख अन्धे मत बन जाओ । अपने तुच्छ सन्तोष एव वित्ते-भर पेट के लिये उनका गला न काटो । अपनी बलि के लिये बज रहे ढोलो से अज्ञात, निरुपयोगी लता-पत्ता का आहार करते बकरे के बच्चे का जरा खयाल करो । अपने ही हाथो पालन-पोषण किये हुए छागल (शावक) का, अपने आहार के लिये, अपना पैर चाटते समय, हत्या करनेवालो ! उस 'मूढ प्राणी' के स्रष्टा की नजर से बचो ! "यदि मेरी इच्छा नही, तो कोई भी मेरे दर्शन के लिये प्रयाण नही कर सकता, घर से प्रयाण करे, तो यहाँतक नही पहुँच सकता, यदि पहुँच भी जाय, तो दर्शन नही पा सकता ।" प्रेम ही प्रेरक है । जैसे एक ही सूर्य असख्य (सहस्रो) घडो (घटो) मे प्रतिबिम्बित होता है, वैसे ही एक ही परमातमा सब जीवो मे दिखायी देने लगता है । "अनुभव-रहित

लोगो को कितना भी समझाने पर उनका सशय-निवारण नही हो सकता ।" वर्तमान काल मे जीव तथा जगत् भय की छाया मे ही तडप रहे है—बम का भय, भूख का भय, हिंसा से भय, ग्रहो से भय, अपनी छाया से भी भय, अपनी बुद्धि का, पालन-पोषण का, वास्तव्य का भय । सम्प्रति साई अवतार अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य भी कर रहा है—वह कार्य है विज्ञान का गर्वभग । लो, जितना चाहो, उतना आनन्द मुझसे लो और अपने समस्त दुख मेरे पास छोड दो । "तुम मेरी ओर एक पग धरो, मै तुम्हारी ओर सौ पग चलकर आता हूँ ।" "न देना हो, तो कुत्ते के समान भोको मत ।" "जानकर अपराध किया है, तो क्षमा-याचना नही ! अनजान से किया है, तो वह अपराध नही है ।" "कर्म-मार्ग से भक्तिमार्ग सुलभ हो सकता है, भक्तिमार्ग से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान से ही मुक्ति होती है ।" "प्रवचन महौषधि है । 'लेक्चर' नही, 'मिक्श्चर' ।" "निरुत्साह, निराशा, या अति आशा, द्वेष, चिन्ता एव अशान्ति, इन गुणो द्वारा रोगो की उत्पत्ति होती है । समाधान अत्युत्तम औषध है, तृप्ति ही अति अमूल्य टॉनिक है ।" "ससार-सागर को पार करने के लिये देहरूपी नाव को सँभालकर रखना चाहिये, राजसिक रीति के उपवास-व्रतो से या तामसिक रीति की चर्या से देह का शोषण नही करना चाहिये ।" "सदगुण ही सिद्ध औषध है ।"

"अन्य विषयो का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कई साधनो की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिये श्रद्धा, विश्वास, भक्ति एव साधना की आवश्यकता होती है। अग्निकण को जिस प्रकार छोटी-छोटी लकडियो द्वारा प्रज्वलित किया जाता है, उसी प्रकार जप, ध्यान, विवेक एव शुभ विचार-रूपी सीको से तृणमात्र श्रद्धा भी बढायी जाती है ।" "बार-बार अपने-अपने मन के तालाब मे डुबकी लगाइये ! एकान्त मे बैठ, चिन्ताये दूर कर, सुख-प्रगति कीजिये ।" "युवको का कोई अपराध नही, उनको आदर्श एव उदाहरण न दिखाने का अपराध बडो का ही है ।" "भारतीय जनता की अवनति का मुख्य कारण स्नेह एव सौहार्द का अभाव है ।" मै प्रेमस्वरूप हूँ, "दिव्यात्मस्वरूप तुम लोगो को स्वय को पापी कहकर आत्मनिन्दा नही करनी चाहिये, तुमलोग तो अमृतपुत्र हो ।" "मुझे जान लेने का प्रयत्न मत करो, तुम निश्चय ही हार जाओगे । तुम स्वय अपने-आप को जान लो पहचान लो । इसके लिये प्रयत्नशील रहो तब तन्मूलक मुझे भी जान लोगे ।" "मेरे स्तोत्र गाने की आवश्यकता नही । भयभीत हो मुझसे दूर रहने की आवश्यकता नही । अधिकार से ही अनुग्रह के लिये मेरी प्रार्थना कर सकते हो । पिता से कुछ माँगना हो, तो क्या तुम पिता की स्तुति करते हो ?" "आह्वान के बिना मैं यहाँ नही आया हूँ । साधु-सन्तो की एव सत्पुरुषो की भगवान् से की गयी, रक्षण की तथा धर्म-सस्थापना की, प्रार्थना सुन मैं आया हूँ ।" "सत्य-प्रेम से मानवोद्धार ही मेरा कार्य है ।" डरो नही, जब मैं तुम्हारा हूँ, और तुम मेरे हो, तो फिर भय कैसा ?" "तुम जब रास्ते पर चलते हो, तब तुम्हारी छाया तुम्हारा ही पीछा करती हुई गन्दगी पर,

कूडा-कर्कट पर, काँटे-पत्थर पर, या पृथ्वी अथवा पानी पर गिरती हुई चलती है, उसकी गति की ओर ध्यान न दे तुम आगे की ओर बढते ही रहते हो, क्यो ठीक है न ? उसी प्रकार इस देह-रूप छाया की गति की ओर ध्यान न दे आत्मकल्याण की ही प्रतीक्षा करते हुए आगे बढते रहना चाहिये ।" "पाप है ही नही, योग्य विवेक के अभाव से, जागरूक न रहकर लोग अनुचित बाते कर बैठते है, बस ! अपराध हो जाने पर उसका दण्ड ईश्वर से प्रार्थना कर शीघ्र ही माँग लेना चाहिये, पुनरपि वैसा कार्य न दुहराने का निश्चय करना आवश्यक है ।". "जहाँ सत्य तथा प्रेम है, वहाँ भगवान् भी है । सत्य के बिना कोई अन्त करण है ही नही, प्रेमशून्य कोई भी हृदय नही, सत्य ही अति उत्तम धर्म है । प्रेम ही शान्ति का मातृमूल है ।" "सुख-दु ख दोनो भगवान् के भवरोग की चिकित्सा के क्रम मे पथ्य है, दोनो का एकमनस्क होकर अनुभव लेना चाहिए।" "सत्य-पथ पर चलने से दु ख नही रहता ।" "भगवत्-तत्त्वचिन्तन के अतिरिक्त शान्ति एव सन्तोष-प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नही । मनोदृढता जिनमे है, उन्हे न दु ख है, न अशान्ति है ।" "यह मेरा कर्त्तव्य है, जहाँ मुझे बुलाया, वहाँ मुझे जाना ही होगा ।" "देह का रक्षण कर भद्र रीति से सँभालो, यह एक उपकरण है ।" "अति अनुचित है ।" "बल ही पुण्य है, दौर्बल्य ही पाप है ।" "निराशा से सर्वनाश, तृप्ति ही सर्वशक्ति है ।" "अपने सुख-दु ख दोनो परमात्मा को अर्पण करो ।" जहाँ खान है, वही माइनिग-इजीनियर आते है । जहाँ साधना-सम्पत्ति यथेष्ट हो, आध्यात्मिक अभिवृद्धि साधन-निधि और साधक उपलब्ध है, वही भगवान् अवतार लेते है । (भगवान् श्रीसत्यसाई बाबा)

'जहाँ क्षय है, वहाँ वास्तविक महानता नही है, जहाँ विषयासक्ति है, वहाँ वास्तविक महानता नही है, जहाँ असयम है, वहाँ वास्तविक महानता नही है ।' 'मै ससार के कलहो से आहत हूँ । मै शान्ति की खोज मे हूँ । मै इस दु ख का अन्त करने के बदले इस पृथ्वी का राज्य तो क्या, दिव्यलोक का राज्य भी न चाहूँगा ।' (भ० बुद्ध) 'ससार मे कष्ट और दु ख है ।'—'ससार के कष्ट और दु ख को कैसे दूर किया जाय ?' 'किन कारणो से, वे कौन-से हेतु है, जिनकी वजह से व्यक्ति कष्ट और दु ख भोगता है ?'—[इन प्रश्नो का सही-सही उत्तर बोधिसत्त्व को मिल गया । यही सम्यक् सम्बोधि कहलाता है । ज्ञानप्राप्ति के बाद बोधिसत्त्व बुद्ध बने । पीपल का वह पेड, जिसके नीचे बैठकर सिद्धार्थ गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया था, वह बोधि-वृक्ष कहलाया ।] 'बुद्ध बनने के पूर्व बोधिसत्त्व के लिये दस जन्मो तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्त और किसी धर्म मे भी नही है । यह अनुपम है । कोई भी दूसरा धर्म अपने सस्थापक के लिये इस प्रकार की परीक्षा मे उत्तीर्ण होना आवश्यक नही ठहराता ।' 'जो कुछ भी बुराई है—जो कुछ भी भलाई है—वह सब मन की ही उपज है ।' 'बुद्ध ने पहली बात यह बतायी कि उनके सद्धर्म को आत्मा, परमात्मा से कुछ लेना देना नही है । उनके सद्धर्म को मरने के बाद

(आत्मा का) क्या होता है, सइसे कुछ सरोकार नहीं है। उनके सद्धर्म को कर्म-काण्ड के क्रिया-कलाप से भी कुछ-लेना देना नही। बुद्ध के धर्म का केन्द्र-बिन्दु है आदमी और इस पृथ्वी पर रहते समय आदमी का आदमी के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिये ?' बुद्ध ने कहा, यह उनकी पहली स्थापना है कि आदमी दु खी है, कष्ट मे है और दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहा है। ससार दु ख से भरा पडा है और धर्म का उद्देश्य इस दु ख का नाश करना ही है। इसके अतिरिक्त सद्धर्म और कुछ नही है। दु ख के अस्तित्व की स्वीकृति और दु ख के नाश का उपाय, यही धर्म की आधारशिला है और धर्म के लिये एकमात्र यही सही आधार हो सकता है। बौद्ध धर्म के अनुसार यदि हर आदमी (१) पवित्रता के पथ पर चले, (२) धर्म के पथ पर चले, (३) शील-मार्ग पर चले, तो इस दु ख का ऐकान्तिक निरोध हो सकता है। और, भगवान् बुद्ध ने कहा कि उन्होने ऐसे धर्म का आविष्कार कर लिया है। धर्मचक्र-प्रवर्त्तन। पवित्रता। अष्टागिक (सम्यक्) मार्ग। शील (सद्गुणो) का अभ्यास, - १ शील, २ दान, ३ उपेक्षा, ४ नैष्कर्म्य, ५ वीर्य, ६ शान्ति, ७ सत्य, ८ अधिष्ठान, ९ करुणा और १० मैत्री। 'प्रेम करना पर्याप्त नही है, मैत्री आवश्यक है।' 'समाधि' और 'सम्यक् समाधि' एक ही बात नही। दोनो मे बडा अन्तर है। 'समाधि का मतलब है, केवल चित्त की एकाग्रता।', लेकिन 'ध्यान की ये अवस्थाये अस्थायी है।' 'आवश्यकता है चित्त मे स्थायी परिवर्त्तन लाने की। इस प्रकार का स्थायी परिवर्त्तन सम्यक् समाधि के द्वारा ही लाया जा सकता है।' 'खाली समाधि एक नकारात्मक स्थिति है, क्योकि यह इतना ही तो करती है कि सयोजनो को अस्थायी तौर पर स्थगित रखे। इसमे मन का स्थायी परिवर्त्तन निहित नही है। सम्यक् समाधि एक भावात्मक वस्तु है। यह मन को कुशल कर्मो का एकाग्रता के साथ चिन्तन करने का अभ्यास डालती है और इस प्रकार मन की सयोजनोत्पन्न अकुशल कर्मो की ओर आकृष्ट होने की प्रवृत्ति को ही समाप्त कर देती है।' 'शील का मतलब है नैतिकता, अकुशल न करने की प्रवृत्ति और कुशल करने की प्रवृत्ति बुराई करने मे लज्जा-भय मानना।' लज्जा-भय के कारण पाप से बचे रहने का प्रयास करना शील है। शील का मतलब है पापभीरुता, प्रज्ञा आवश्यक है। प्रज्ञापारमिता (पूरे सामर्थ्य-भर प्रज्ञा का अभ्यास करना) महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। सद्गुणो का अनुसरण भी प्रज्ञा-पूर्वक ही होना चाहिये (अर्थात्, निर्मल बुद्धि के साथ)। जीवक तथागत का उपासक बना। भगवान् बुद्ध ने उसे भिक्षु नही बनाया, क्योकि वह चाहते थे कि वह चित्किस्ता द्वारा रोगियो और जीवको की सेवा करता रहे। ससार अनित्य है। समार निरन्तर परिवर्त्तनशील है। ससार का कोई न मालिक है, न सरक्षक। सृष्टि बेसहारे है। हमारा कुछ भी नही। मृत्यु सब कुछ छीन लेती है। सभी कुछ पीछे छोड जाना है। तृष्णा के वशीभूत होने से ही ससार दु खी है। सोने का महल तो, मुझे लगता है, जैसे उसमे आग लगी है। अच्छे-से-अच्छे भोजन विष-मिले प्रतीत होते है। कमलो के फूल से आच्छादित शय्या पर, लगता है,

जैसे मगरमच्छ लोट रहे हो (बुद्ध भगवान् का पिता शुद्धोदन को उत्तर)। 'कुछ है वा नही, इसमे मेरे लिये कोई दूसरा प्रमाण नही है, तपस्या और साधना द्वारा मैंने स्वय सत्य को जान लिया है'—'कौन बुद्धिमान् आदमी केवल किसी दूसरे पर आश्रित होकर किसी बात मे विश्वास करेगा ?' तब तथागत बोले— 'क्या तुम जानती हो कि आँखे आँसुओ का अड्डा-मात्र है। नाक सीढ का घर है । मुँह मे थूक ही भरा रहता है । कानो मे मैल-ही-मैल होता है और शरीर मल-मूत्र का खजाना-मात्र है। जब स्त्री-पुरुष सहवास करते है, वे बच्चो को जन्म देते है । जहाँ जन्म है, वही मृत्यु भी है । जहाँ मृत्यु है, वही दु ख भी है । लडकी ! मै नही जानता कि आनन्द से शादी करके तू क्या पायगी ?' (बुद्ध ने मातगी की लडकी प्रकृति नामक चण्डालिका से कहा)। लडकी गम्भीरतापूर्वक सोचने लगी और आनन्द से ब्याह करने का विचार उसने बदल दिया, जिसके लिये वह मरी जा रही थी। वह इस परिणाम पर पहुँच चुकी थी कि आनन्द से शादी करना बेकार है । 'तथागत ने ज्ञानामृत से मेरी निद्रा भग कर दी है ।' 'भगवान् बुद्ध ने कभी किसी को मुक्त करने का आश्वासन नही दिया। उन्होने कहा कि 'वे मार्ग-दाता है, मोक्ष-दाता नही ।' 'बुद्ध ने अपने या अपने शासन के लिये किसी प्रकार की 'अपौरुषेयता' का दावा नही किया। उनका धर्म मनुष्यो के लिये एक मनुष्य द्वारा आविष्कृत धर्म था। वह 'ईश्वरीय' नही था। समाधि। विपश्यना। निर्वाण। कर्म । विपाक (परिणाम)। तृष्णा। 'परा-प्राकृतिक (करिश्मा, प्रातिहार्य) मे विश्वास अ-धर्म है।' बुद्ध भगवान् का कहना था कि 'इतना ही नही कि हर घटना का कोई-न-कोई कारण होता है, बल्कि वह कारण या तो कोई-न-कोई मानवी कारण होता है या प्राकृतिक कारण होता है।' (हेतुवाद)। परा-प्राकृतिक-वाद का खण्डन करने मे भगवान् बुद्ध के तीन हेतु थे—(१) आदमी बुद्धिवादी बने, (२) आदमी स्वतन्त्रतापूर्वक सत्य की खोज कर सके, (३) मिथ्या-विश्वास, अन्ध-विश्वास और भ्रामक विचारो की जडे काट दी जायें, ताकि आदमी स्वय खोजने की ओर प्रवृत्त हो। बुद्ध ने कहा, 'ईश्वराश्रित धर्म कल्पनाश्रित है। इसलिये ईश्वराश्रित धर्म रखने का कोई उपयोग नही। इससे केवल मिथ्या-विश्वास उत्पन्न होता है।' उनका तर्क था कि ईश्वर के अस्तित्व का सिद्धान्त सत्याश्रित नही है।' (प्रमाण—वासेट्ठ और भारद्वाज का मनसाकत नाम की बस्ती मे भगवान् बुद्ध द्वारा शका-समाधान। [ब्रह्म का आमने-सामने किसी ने साक्षात्कार नही किया है।] [यदि ब्रह्म स्रष्टा और शाश्वत है तो उससे निर्गत सृष्टि अनित्य परिवर्त्तनशील, अस्थिर, मरणधर्मी क्यो है ?] [यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, तो सृष्टि का प्रयोजन क्या है ?] [यदि ईश्वर 'शिव' कल्याण-स्वरूप है, तो लोग कुमार्गी क्यो है ?] [यदि ईश्वर सर्वज्ञ, न्यायी और दयालु है, तो ससार मे इतना अन्याय क्यो हो रहा है ?] [ईश्वर की चर्चा मे कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता।] [धार्मिक क्रिया-कलाप मिथ्या-विश्वास पर आधृत है और अन्ध-विश्वास सम्यक्-दृष्टि का शत्रु है।] ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध दिये गये

तर्को मे से कुछ व्यावहारिक थे, कुछ मात्र सैद्धान्तिक। 'भगवान् बुद्ध के अनुसार धर्म की धुरी ईश्वर और आदमी का सम्बन्ध नही है, बल्कि आदमी-आदमी का सम्बन्ध है। धर्म का प्रयोजन यही है कि वह आदमी को शिक्षा दे कि वह दूसरे आदमियो के साथ कैसा व्यवहार करे, ताकि सभी आदमी प्रसन्न रह सके।' (ब्रह्म यदि 'कल्पना' भी हो, तो इसमे कोई उपयोगी परिणाम नही निकलता)। अनात्मवाद—'आत्मा' (अशरीरी) नही है। ससार का 'निर्माण' नही हुआ है, इसका 'विकास' हुआ है। उनका (भगवान् बुद्ध का) कहना था कि वह ऐसे 'सर्वज्ञ' नही कि इस तरह के प्रश्नो का उत्तर दे। कोई भी यह दावा नही कर सकता कि जो कुछ हम जानना चाहते है, वह सब कुछ जानता है और न कोई यही दावा कर सकता है कि किसी भी समय जो कुछ हम जानना चाहते है, वह किसी को हर समय ज्ञात रहता है। हमेशा कुछ-न-कुछ अज्ञात रहता ही है। उन्होने कहा कि एक ही समय और उसी समय कोई भी सभी बातो का ज्ञान प्राप्त नही कर सकता। ज्ञान का कही अन्त नही है। कुछ-न-कुछ और अधिक जानने के लिये हमेशा रहेगा। (कल्पनाश्रित सिद्धान्तो का 'सत्य' न परीक्षित है, न उनके 'सत्य' की परीक्षा ही हो सकती थी।) (धर्म की पुस्तको का वाचन-मात्र अ-धर्म है।) 'धर्म तो तभी सद्धर्म कहला सकता है, जब वह मैत्री की वृद्धि करे।' 'दूसरे के साथ अपने-आपको एक कर दो। यही सोचो, जैसे वे है, वैसा मै हूँ, जैसा मै हूँ, वैसे वे है।' (धर्म तभी सद्धर्म है, जब यह शिक्षा दे कि आदमी का मूल्याकन 'जन्म' से नही, 'कर्म' से किया जाना चाहिये। भगवान् बुद्ध ने ही सर्वप्रथम कहा था कि 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।' उन्होने कर्म के सिद्धान्त पर विशेष जोर दिया। उनका कहना था कि यदि 'कर्म' के सिद्धान्त को दृढतापूर्वक न माना जाय, तो नैतिक अनुशासन निबह ही नही सकता। "बुद्ध के कर्म के सिद्धान्त का सम्बन्ध मात्र कर्म से था, वह भी वर्त्तमान जन्म के 'कर्म' से।" 'मै ससार से उत्पन्न हुआ हूँ, ससार मे बडा हुआ हूँ, किन्तु अब ससार को जीतकर ससार से अस्पृष्ट होकर रहता हूँ।' 'अब तुम हमको तथागत (ज्ञानी आदमी) जानो।' (भ० बुद्ध दोण नामक ब्राह्मण से) भगवान् बुद्ध के अनुसार चार भौतिक पदार्थ है, चार महाभूत है, जिनसे शरीर बना है—१ पृथ्वी, २ जल ३ अग्नि और ४ वायु। मरणोपरान्त ये चारो पदार्थ आकाश मे जो समान भौतिक पदार्थ सामूहिक रूप से विद्यमान है, उन्ही मे मिल जाते है। इस विद्यमान (तैरती हुई) राशि मे से जब इन चारो महाभूतो का पुर्नमिलन होता है, तब पुनर्जन्म होता है। "इन भौतिक पदार्थो के लिये यह आवश्यक नही कि वे उसी शरीर के हो, जिसका मरण हो चुका है, वे नाना मृत शरीरो के भौतिक अश हो सकते हे।" 'भगवान् बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे।' कपिल का साख्य-दर्शन। तर्क की आधारशिला। सत्य के लिये प्रमाण आवश्यक है। बिना प्रमाण के सत्य का अस्तित्व नही। प्रमाण दो प्रकार के है १ प्रत्यक्ष (इन्द्रियो

के माध्यम से) और २ अनुमान—(अ) कारण से कार्य का अनुमान, (आ) कार्य से कारण का अनुमान, (इ) सामान्यतोदृष्ट अनुमान । बुद्ध मानते थे कि सत्य प्रमाणाश्रित होना चाहिये । कि यथार्थता का आधार बुद्धिवाद होना चाहिये । गौतम ने जिन लोगो से ध्यान धरने की क्रिया सीखी थी, वे थे— १ आलार कालाम, २ उद्दक रामपुत्त, और ३ कोशल जनपद (मगध) के ध्यानाचार्य । ध्यान-मार्ग की तीन पद्धतियाँ प्रचलित थी—१ आनापानसत्ति, २ प्राणायाम और ३ समाधि-मार्ग । तीनो पद्धतियो की मान्यता थी कि साँस पर काबू पाने से चित्त की एकाग्रता सिद्ध होती है । 'भिक्षुओ ! मै फिर तुम्हे स्मरण करा रहा हूँ । सभी सस्कार अनित्य है । अप्रमादपूर्वक, अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे लगे रहो ।' तथागत के अन्तिम शब्द ये ही थे । (दे० 'भगवान् बुद्ध और उनका धर्म', ले० डॉ० भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन) ।

यशोधरा (भद्रा कात्यायना) (भद्दा कच्चाना) ने कहा कि आज की रात ही उसकी अन्तिम रात्रि है ।' 'उसका स्वर अधिक सयत था ।' 'उसने तथागत से न मरने की अनुमति माँगी और न उन्ही की शरण ही ग्रहण की ।' बल्कि उसने कहा "मै अपनी शरण आप हूँ।" 'वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने आयी थी, क्योकि तथागत ही उसके पथ-प्रदर्शक थे और तथागत से ही उसने धर्म-बल प्राप्त किया था ।' और, यह उसके जीवन की अन्तिम रात्रि थी ।

अर्हत् । बौद्ध धर्म का नैतिक आदर्श पुरुष ।
देशना । अव्याकृत ।
'ससार मे दरिद्रता और ऋण बडे दु खद है ।' (भगवान् बुद्ध)

मानस (माइण्ड) से मण्डित होकर ही मानव मानव बना । किसी अज्ञात शुभ घडी मे अकस्मात्, अथवा किसी अदृश्य दैवी प्रेरणा से, एक अद्भुत शक्ति की सृष्टि हुई, जो मानव-मस्तिष्क से सम्बद्ध हो गयी । किवा मानव-मस्तिष्क ही एक ऐसा विशिष्ट यन्त्र बना था (बन गया था या बनाया गया था), जिसमे से मानस का उदय (उद्भव) हुआ या जिसमे ऐसी शक्ति थी कि वह सर्वत्र-(अमानवीय)-व्याप्त मानस से सम्पर्क स्थापित कर सका या उसे आकृष्ट कर सका, चुम्बक (?) की भाँति । जो 'ऊष्मा' के निकट 'गर्म' हो सका [तु० लोहा, अबरक (माइका) (अभ्रक)] । जो अमानवीय-दैवी, ब्रह्माण्डीय, मानस को मानवीय बना सका ।

मानवीय मानस के एचिभमेण्ट्स को देखकर ऐसा विश्वास बँधता है कि इसने अपनी अपार शक्ति को अभी पूर्णरूप (त) (तया) से काम मे लाया ही नही और यह कि इसके द्वारा अभी बहुत कुछ होना बाकी है, जिसकी सम्भावनाये प्रत्यक्ष है ।

मानस के विकास मे, प्रगति-पथ मे, रोडे अटकाने और बॉध बॉधने का दोष, उत्तरदायित्व, जवाबदेही, उनके माथे मढी जायगी, जिन्होने समाज को गरीबी की कुण्ठित बेडियाँ पहनायी, ताकि न उसे पुस्तके उपलब्ध हो सके, न शिक्षक, न साज-सज्जा । गलत शिक्षण-प्रणाली, गुमराह करनेवाली योजनाएँ, पस्त-हिम्मत करनेवाले शिक्षक, जकडनेवाले विश्वविद्यालय और सर्द बर्फ-डालने-वाले स्कूल इत्यादि, और आततायी करीकुलम (पाठ्यक्रम) तथा कोर्सेज (पाठ्य-विषय) ।

हल्का नीला है आकाश । रेशमी हवा (बतास) खिडकी से आ-जा रही है। रजनीगन्धा के हरे-हरे पत्ते हौले-हौले हिल रहे हैं। गुलमोहर के लाल-लाल फूलो का अम्बार अम्बर मे अम्बरीष की अगवानी कर रहा है, आरती-दीप-सा, प्रगति की लौ-सा, यज्ञ के हवन-कुण्ड-सा, जल (बल) रहा है ।

कचनार के उजले और नीले पुष्प (फूल) रात-भर चूते रहे है ।

अमलतास के धानी-पीले सुमनो के असख्य गुच्छे हिंडोले पर झूल रहे है ।

पक्षियो के कलरव से बाग मुखरित हो रहा है ।

ऐसे मे अरे, देखो ! किसी ने गगन मे अबीर उडेल दिया, जाम उलटा दिया । पेडो की चोटियो पर अबरक (अभ्रक) बरसा दिया।

सुबह हुई ।

रात लिखते-लिखते, प्रूफ देखते-देखते, विरात्र आ धमका । तो किशोरी ने झल्लाकर झकझोरा और धकियाते हुए घडी की ओर ध्यान आकृष्ट किया । सवा तीन बज चुके थे । फिदवी सोने चला गया । अभी गुलाम की नीद खुली, तो साढे पॉच बजे भोर को लिखने बैठा । पत्नी सुगबुगाकर कुनमुनाई अरे, सोइये न । क्या तमाशा खडा किये हुए है । (तमाशा !!?)

मैं चुप्पी साधे, दम मारे क्षितिज की ओर टकटकी लगाये बैठा रहा । तसकीस ठीक उतरा । चन्द मिनटो मे वह सो गयी । बन्दा इतमीनान से लिखने लगा । दिन जँभाई (उबासी) लेकर उठा ।

आदमी का सारा 'ससार' उसके अपने अन्दर है । भेजा मे । मस्तिष्क मे । मानस से बाहर उसका और उसके लिये कुछ भी नही है । न कोई सृष्टि है, न कुछ-भी व्यक्त है । न कोई दृश्य है, न कोई आवाज । न कही सौन्दर्य है, न गीत । न गाली । न सुख । न दुख । मानस नही है, तो अह भी नही है, अन्तर्द्वन्द्व भी नही है ।

अनभ्र व्योम मे एक चील क्षेमकरी उडती चली जा रही है । पख फैलाये, डैना बिन डुलाये । कही से कौआ ने कॉव-कॉव किया । महोखा बोला । उड्डुप्, उड्डुप्-उड्डुप्, उड्डुप्, उड्डुप्, उड्डुप्, उड्डुप्, उड्डुप् । इधर-उधर से, जिधर-तिधर से, कोयल कूकी । गिलहरी कूदी-फॉदी । नेवला ऑख बचाकर निकल भागा । पडोस मे मोर चीखा । अनायास एक जोडा नाम याद आया—ऋत और ऋचा ।

और फिर, हैरानी हुई कि हीरा कचडे मे हेराने पर लगा हुआ है ।

हॉ, तो अपना मानस नही है, तो न जन्म है, न मृत्यु । न अपना-पराया । न कर्म, न विनियोग । न यज्ञ । न सद्धर्म, न कर्त्तव्य । न पुनर्जन्म, न आस-भरोस । न, कुछ भी नही है । तब ईश्वर भी नही है । मानस गया, तो सब कुछ गया । आलोक भी । अन्धकार भी ।

मानस चेतना का एक स्तर है, वह स्तर, जो मस्तिष्क (ब्रेन) (मेण्टल) (मस्तिष्की) और मनस् (सुपरकॉन्सशनेस) के बीच खडा अपनी दुनिया और अपने दीन का स्वत स्वय निर्माण करता है । परमात्मा स्नेह है, प्रेरक, प्राणाधार । मस्तिष्क है दिया (दीयठ या दीप) । मानस है बाती । मनस् है लौ, प्रकाश ।

स्वस्थ शरीर मन्दिर है ।

शान्त परिष्कृत मानस मे परमात्मा (मनस्=सार्वभौम चेतना) का प्रतिबिम्ब झलकता है ।

विज्ञान (वैज्ञानिको) ने एक विशिष्ट कार्य किया है । उसने मानव की एक भारी भलाई की है, अद्भुत, बेजोड । उसने यह दिखलाया-बतलाया कि परमात्मा (दि क्रियेटर) कितना महान् फिजिसिस्ट है, कितना बडा केमिस्ट है, कितना बडा बायलॉजिस्ट है, कितना बडा टेक्नोलॉजिस्ट (टेक्नोक्रैट) है । सच मानिये, यह सृष्टि, यह ससार, यह ब्रह्माण्ड और उसकी गति-विधि परमात्मा का मात्र एक इण्टरभ्यू-कार्ड है, परिचय की एक झॉकी-भर है । जिसे मानव के लिये विज्ञान प्रस्तुत और प्रत्यक्ष कर सका । 'दर्शन' अपनी जगह पर ठीक था । उसने इस दिशा मे कुछ काम भी किया था । लेकिन, वह सिक्का अधिक दिन तक चलनेवाला था नही । भगवान् बुद्ध ने इसे महसूस किया और आत्मा-परमात्मा से सम्बद्ध मसलो को अव्याकृत करार कर उन्हे यूँ ही छोड दिया । देशना मिली कि सद्धर्म पर आरूढ आत्मकल्याणी लोग इन पचडो मे न पडे । इन जजालो से, फन्दो से बचे । अपना बहुमूल्य समय, और अपना अमूल्य जीवन निरर्थक तर्क-वितर्क मे बरबाद न करे, न खोये ।

वैज्ञानिको का यह श्लाध्य प्रयास । उनकी साधना, उनकी सत्यानुभूति को ही यह श्रेय मिलना चाहिये कि परमात्मा की अपार शक्तियो का कुछ पता चला । कि ईश्वर कुछ अधिक प्रत्यक्ष हुआ ।

मनोवैज्ञानिको की उपलब्धियो को भी दाद मिलनी चाहिये । उन्होने मानव को उस अपनी खास (देहस्थ) मशीन (उपकरण) का पता बतलाया, जो परमात्मा तक पहुँचाने मे पूर्ण समर्थ है । और, जिसे परमात्मा (स्रष्टा) ने स्वय गढकर उसे मानवीय काया मे प्रतिष्ठित किया था, ताकि (इस मकसद से कि) उस मशीन मस्तिष्की—मानस—मनस् के जरिये मनुष्य ईश्वर को पहचान सके । जान सके । कि जिसके सहारे (द्वारा) वह सत्य-शिव-सुन्दरम् का प्रत्यक्ष अनुभव कर सके ।

अब मनोवैज्ञानिक कहने लगे है कि बुद्धि (=मनीषा) (इण्टेलिजेन्स) भी एक ऐसी विलक्षण शक्ति है कि जिसकी थाह नही लगती और जिसकी जटिल-गहनता भयकर (अँ-इन्स्पायरिंग) है । 'बुद्धि' अब कोई एक एकल (सिगल) शक्ति न रही, बल्कि यह एक शक्ति समूह-सी है, एक विभिन्न शक्तियो का घोल (मिश्रण, मिक्श्चर) है । यह शक्तिधर (बुद्धि) कम-से कम साठ (६०) भागो मे बाँटी जा सकती है । यानी यह साठ अलग-अलग (एलाहदा) मानसिक गुणो का सम्मिश्रण है । यह भी सम्भव है कि अन्यान्य और भी ऐसे गुणावगुण हो सकते है, जो बुद्धि के अश (भाग) हो, उस 'सयुक्तता' (घोल, खिचडी, मिश्रण, मिक्श्चर) के इनग्रेडिएण्टस (सघटक, अश, उपादान) हो । और, प्रत्येक मानव मे इन अशो (इनग्रेडिएण्ट्स) की मात्रा रिलेटिव्ली (अपेक्षाकृत) कम या बेशी हो सकती है । चुनाचे, हर मानव का मस्तिष्क एक यूनिक (अनन्य, अनुपम) उपकरण है, वस्तुत शायद अवर्णनीय और अयाह । ऐसी परिस्थिति है कि किसी को 'बुद्धू' आँकने या किसी को 'बुद्धिमान्' भाँपने के पहले आदमी को अपने उपकरण (मस्तिष्की-मानस-मनस्) की भी पूरी तरह खोज-खबर लेनी होगी । जग-जात है कि घमण्डी-बेवकूफ बुद्धि ऐसा नही कर पाती और अनायास अकारण अन्य (औरो, दूसरो, की) बुद्धियो को कोसती-सरापती रहती है । हमजोलियो पर ताना कसती रहती है । विद्वानो का जमघट एक दिलचस्प ज़ू ('जू' नही) (चिडियाखाना) बना रहता है । कोई लाल-बुझक्कड है, कोई रट मारते है, कोइ सौ मीटर का बाघ मारते है, कोई सब कुछ के ज्ञाता है । (द्र० जे० पी० गिलफोर्ड 'दि स्ट्रक्चर आॅव इण्टेलेक्ट')

विज्ञान ने अध्यात्म की बेशुमार सेवा की है । जाने-अनजाने भौतिकवादियो ने 'ईश्वर' के अस्तित्व को अनिवार्य बना दिया है ।

कम्प्यूटर की पृष्ठिका (पृष्ठभूमि) मे मानव-मानस पूर्वाधिक देदीप्यमान हो गया । वैज्ञानिक उपलब्धियो ने इहलोक का राज खोलकर परलोक का द्वार खोज निकाला । प्रकृति के प्रत्यक्षीकरण ने (से) परमात्मा को प्रकट किया (प्रकट हुआ) । अन्धकार देखकर आलोक पहचाना गया । आलोक देखकर (तत्सम्बन्धी) ऊर्जा का आभास (और सबूत प्राप्त) मिल सका । और फिर, वह ज्योतिर्मय सर्जक सत्ता हाथ-लगी(-सी), जो आलोक और अन्धकार दोनो की निर्मात्री है और जो दोनो को 'उज्ज्वल' और 'उपयोगी' बनाती है ।

बात इतनी ही भर रह जाती, तो कोई बात न थी । लेकिन, मदमाते लब्ध-प्रतिष्ठ लोग भटक गये । पण्डित भी । पुरोधा (पुरोहित) भी । जो ज्ञानानुभव प्रत्यय (प्रमाण) होना चाहिये था, वही प्रतीप (प्रतिकूल) और प्रतिलोम (विपरीत) हो गया ।

'प्रकृति' के 'नैहरवालो' 'ने 'पुरुष' का खातमा कर डाला। सुतरा, परमात्मा 'ज्ञानियो', 'विज्ञानियो', 'मनीषियो' और 'दार्शनिको'—सबसे परित्यक्त होकर कही दूर चला गया।

खुमारी जा रही है। नशा टूट रहा है। जो खो गया था, उसकी खोज होने लगी है। थका, हताहत, त्रस्त, प्रवचित (चीटेड, ठगाया हुआ) आदमी को होश आ रहा है।

'दि कॉसमॉस ह्विच मॉडर्न फिजिक्स डिसक्लोजेज इज नॉट सो मच ए यूनिभर्स ऐज ए मल्टिभर्स ऐण्ड दि एण्डेभर टू फाइण्ड ए 'यूनिफायड थ्योरी' डिफीटेड इभ्न आइन्स्टाइन-इण्टरैक्टिग विथ दि सिम्प्ल यूनिभर्स आॅव न्युटोनियन डाइनामिक्स, येट ऑलमोस्ट होल्ली अनसस्पेक्टेड अनटिल दि डे ऑव फराडे ऐण्ड मैक्सवेल, देयर इज एनदर यूनिभर्स ऑव एलेक्ट्रोमैगनेटिक फोर्सेज— नो लौगर रिड्यूसिब्ल ऐज दि नाइनटीन्थ सेचुरी थियोरिस्ट बिलीभ्ड ऐण्ड होप्ड, टू मेकैनिकल स्ट्रेसेज ऐण्ड स्ट्रेन्स इन ए मेटिरियल ईयर-विदिन दि एटॉमिक न्युक्लियस—डिसकॉभर्ड ड्यूरिग दि लास्ट फ्यू डिकेड्स—देअर आर स्टिल स्ट्रौगर फोर्सेज, ऐण्ड स्टिल स्ट्रेनजर टाइप्स ऑव इण्टरैक्शन ऐण्ड ह्वाट इज स्टिल मोर सिग्निफिकैण्ट फॉर साइकॉलॉजी, दि फिजिसिस्ट नो लौगर फाइण्ड्स इट पासिब्ल टू इगनोर दि कॉनशस ऑबजर्वर एभिडेण्टली, देअरफोर, देअर इज नो ए प्रायरि रीजन ह्वाइ वी मे नॉट एनभिसाज येट एनॅदर यूनिभर्स ऑव साइकिक फोर्सेज इण्टरैक्टिग विथ दि फिजिकल यूनिभर्स ऑव पार्टिक्ल्स ऑर फील्ड्स ऑर वेभ्ज ह्वेदर इन फैक्ट देयर इज सच ए यूनिभर्स इज ए मैटर फॉर फरदर रीसर्च।' (सर सिरिल बर्ट)

> "देव-दनुज, चिरकाल सृष्टि मे शत्रु-भाव से रहते है।
> शक्ति-स्रोत ये दोनो ही विपरीत दिशा मे बहते है॥
>
> है अमृत मृत का विपर्यय, शुद्ध सज्ञा का निकेतन।
> जो अचेतन हो चुके, उनको बनाता है सचेतन॥
>
> एक ऐसी चेतना है अमृत, जिसमे शान्ति केवल।
> और है अमरत्व मे परिपूर्ण शशि-सी कान्ति केवल॥
> किन्तु, इस सजीविनी मे शक्ति-स्फूर्जित चेतना है।
> है नही अमरत्व, केवल क्रान्ति की अभिव्यजना है॥
> है सुधा दक्षिण पवन, सजीविनी आँधी अनल की।
> सिन्धु कीमद-गर्जना उन्मादिनी झझा गरल की॥

यदि सुधा सुरबालिका शेफालिका अनुरागिनी है ।
तो मजग सजीविनी उद्दीप्त काली नागिनी है ॥

• •

मृत्यु भौतिक चेतना का मात्र लय ही है न केवल ।
किन्तु, मूर्च्छा, स्वप्न, निद्रा आदि भी है मृत्यु-समतल ॥
और जीवन भी नही है मात्र केवल चेतना ही ।
प्रेम, आशा, वीर्य, बल, उत्साह की उत्प्रेरणा भी ॥
तो, यही सजीविनी समझो, जहाँ यह जागती है ।
मृत्यु भी उस स्थान से भयभीत होकर भागती है ॥
पाप है अविपूर्णता ही मृत्यु का कारण वही है ।
पूर्णता ही पुण्य पावन और चिर-जीवन वही है ॥

• •

है अगति ही मृत्यु, गति का नाम ही जीवन कहा है ।
एक ही जल दो किनारो से प्रवाहित हो रहा है ॥"

(सजीविनी आरसी प्र० सिह)

(तु० फ्रॉयड का 'एरौस' और 'थानटौस', 'गीता के' 'पाण्डव' और 'कौरव')।

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्त वयमेव तप्ता ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥"

'यावत्स्वस्थमिद कलेवरगृह यावच्च दूरे जरा ।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुष ॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यं प्रयत्नो महान् ।
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखनन प्रत्युद्यम कीदृश ॥'

(वैराग्यशतकम् भर्तृहरि)

परमात्मा शुद्ध (अनकण्डिशण्ड, एबसॉल्यूट, एव अनएडलटरेटेड) सत् (स्थिति), चित् (चेतना, ज्ञान) और आनन्द का योग (कुल जमा जोड) है ।

सृष्टि की शुरुआत (का प्रारम्भ) आवाज (नाद-तरग) से हुई। ऐसा मानते है । जब अव्यक्त व्यक्त होने चला होगा, तब सबसे पहले आवाज (शब्द) (नाद । 'नाद-ब्रह्म') (अनहद) (ओम्) की सृष्टि हुई होगी । यह शायद अव्यक्त और व्यक्त के बीच की स्थिति है । न पूर्णत अव्यक्त, न पूर्णत व्यक्त (=व्यक्ताव्यक्त) (=स्थूलतम ऊर्जा) ? (सूक्ष्मतम ऊर्जा=विचार-तरग)।

'सर्वहितकारी सेवापरायण शरीर की अस्वस्थता का समाचार सुनकर हृदय पीडित हो उठा । सर्व-समर्थ प्रभु अपनी अहैतुकी कृपा से तुम्हे प्राप्त परिस्थिति के

सदुपयोग का सामर्थ्य प्रदान करे, जिससे तुम सभी परिस्थितियो से अतीत, अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय जीवन से अभिन्न हो जाओ, जो वास्तव मे देहातीत है । तुम किसी भी काल मे शरीर नही हो, इतना ही नही, तुम्हारी न तो उत्पत्ति हुई और न विनाश होगा । कारण कि तुम जन्म-मृत्यु से रहित अपने रचयिता के परम प्रेम हो । प्रेम ही तुम्हारा निज-स्वरूप है । सेवा तथा त्याग को अपना लेने पर स्वत साधक को अपने निज स्वरूप का बोध, अर्थात् प्रेम की प्राप्ति हो जाती है । रोग प्राकृतिक तप है और कुछ नही । देहाभिमान गलाने के लिये आया है, इस दृष्टि से उसका आदरपूर्वक स्वागत करो और अभय रहो । रोग से भयभीत होना भूल है, अपितु उसके प्रभाव को अपनाकर अपने अपरिवर्त्तनशील निजस्वरूप मे स्थित हो, अपने ही मे अपने प्रेमास्पद को पाकर कृतकृत्य हो जाओ । दुख दुखहारी हरि से मिलाने के लिये आता है और दुख से जन्म-जन्मान्तर की दुष्कृति का नाश होता है । इस दृष्टि से दुख बडे ही महत्त्व की वस्तु है । दुख का प्रभाव दुखी को सदा-सदा के लिये सुख-दुख से अतीत असीम आनन्द से अभिन्न कर देता है। इस कारण विवेकी जन दुख से भयभीत नही होते । वीरतापूर्वक प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करो और अपने ही मे अपने प्रेमास्पद को स्वीकार कर मानव-जीवन को सफल बनाओ, यही मेरी सद्भावना है ।' (स्वामी शरणानन्दजी के एक पत्र से, जिसे उन्होने सदा-बीमार श्यामसुन्दरजी के लिये लिखवाया था)।

अन्वेषको ! जिज्ञासुओ ! दार्शनिको ! वैज्ञानिको ! खोजना छोडो । जिसे ढूँढ रहे हो, उसकी 'खोज' ही मे खोये-खोये खो मत जाओ । खोज को खाज मत बनने दो । अन्वेषण बन्द करो । जिज्ञासा स्थगित करो । तर्क का अन्त करो। स्वच्छ सरल शान्त मानस मे परमात्मा का प्रतिबिम्ब झलकने दो । ईश्वर को आने दो ।

मुक्ति (मोक्ष, निस्तार) की कुजी सघर्ष (द्वन्द्व, विरोध, प्रतिकूलता) और पीडा (कष्ट, व्यथा) के पास धरी पडी है ।

'अब मेरी स्थिति की कल्पना आप स्वय कर सकते है एक ओर यहाँ मै चतुर्मुखी सकटो से घिरा था दूसरी ओर परिवार के प्रेम से भी वञ्चित हो गया । मै यहाँ दुनिया मे अकेला, असहाय दीन-हीन बना हुआ समय काट रहा था । प्रशिक्षण की हड्डी-तोड मिहनत ने सन्तप्त मन को और अधिक जलाने मे घी का काम किया । किन्तु, ईश्वर मे आस्था ऐसे ही दुर्दिन मे सहायक होती है ।' (कि० साही) (मेधावी नवयुवक) (आधुनिक) (सम्प्रति केन्द्रीय सेवा, आइ० ए० एस०-सम्बन्धी प्रशिक्षण मे लवलीन) (विवेक-वरूथ-सम्पन्न, तिरोहित तीरो के लिये प्रबुद्ध प्रत्यचा) (टूटते-बिखरते समाज का भरोसा) ।

पुनर्जन्म का ध्येय । विकास, इसके लिये प्रगति आवश्यक है । प्रगति के

लिये निरन्तरता (सततता-सन्ततता-सातत्य) जरूरी है । पूर्ण सर्वतोमुखी विकास क्या एक जन्म मे सम्भव है ? अगर पुनर्जन्म न हो, तो क्या मात्र एक जिन्दगी का (मे उपलब्ध) सुअवसर (मौका) पर्याप्त है ? प्रारम्भ (निर्गत) होकर यदि सभी सोते यूँ ही सूखते गये, तो फिर 'विकास' का क्या सवाल रह गया । 'विकास' के लिये जरूरी है धाराओ का बहते-बहते चलना, चलते-चलते रहना, रह-रहकर चलते चलना । न कि सदा के लिये समाप्त हो जाना, लुप्त हो जाना, अवरुद्ध हो जाना, सूख जाना । या भूल-भटक जाना, ठौर न पाना, लुट-मिट जाना । अगर सृष्टि का प्रयोजन विकास से है, तो किसी-न-किसी रूप मे अखण्डता (अमरता) अनिवार्य है । व्यक्ति के विकास के लिये भी । चुनाचे पुनर्जन्म सम्भव है, जैसे सामाजिक विकास के लिये सामाजिक सातत्य आवश्यक है । वैसे समाज जिन इकाइयो का ढेर (समूह) है, उन व्यक्तित्वो का निजी विकास ही सामाजिक विकास की आधारशिला होने के सबब से, व्यक्तिगत सातत्य (पुनर्जन्म) सम्भाव्य होना ही है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह बात पुनर्जन्म का एक प्रबल प्रमाण हो सकती है । इसे पिंगल-विहीन मात्र 'पिंगिल' न मानकर सोचिये, विचारिये ।

'Littte ruthless (बेरहम, निष्ठुर) laughter (हँसी, अनादर) clears the air as nothing else can do, it is good for us, every now and then, to see our ideals (आदर्श) laughed at (मजाक उडाना) (तिरस्कृत) our conception of (अवधारणा, विचार) nobility (श्रेष्ठता, कुलीनता, महानता) caricatured (उपहसित, व्यग्य-विद्रूपित), it is good for solemnity's (महत्ता-गाम्भीर्य की) nose to be tweaked (उमेठना, मरोडना) (चिकोटी काटना) (नाक नोचना-खीचना), for human pomposity (अहम्मन्यता, आडम्बर, शान) to be made to look ridiculous (हास्यास्पद)' (Aldous Huxley)

समाज व्यक्तियो का समूह है । राष्ट्र नागरिको से निर्मित है । व्यक्तिगत क्रान्ति से समाज बदलेगा । व्यक्ति के विकास मे विश्व का विकास निहित है । नागरिक की प्रगति मे देश की प्रगति और सदस्य (नागरिक) के उत्थान मे राष्ट्र की उन्नति अनिवार्यत आप्त और अपेक्षित है ।

'मत', 'दल', वाद', 'धर्म', 'घोषणा', 'मैनिफेस्टो', 'नीति', 'सविधान', 'सरकार', 'शासन-प्रणाली की विविधतायें', 'नियम', 'कानून' इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि, ये सभी बेकार है । वितण्डा । ऑखो मे धूल । बहलावा । बरगलाना । बहकाना ।

मानव की सुख-समृद्धि के लिये सिर्फ (महज) केवल (मात्र) (बस) सात चीज चाहिये :

(१) प्रेम ।
(२) कथनी=करनी ।
(३) उदाहरण, आचरण । (अनुकरणीय) ।
(४) स्वतन्त्रता ।
(५) स्वास्थ्य ।
(६) शिक्षा ।
(७) मूल (बुनियादी) आवश्यकताओ (जरूरियातो) की पूर्त्ति ।
    (१) भोजन (खाना)
    (२) वसन (वस्त्र, कपडा)
    (३) वास (आवास, मकान, गृह)
    (४) काम-धन्धा
    (५) आमोद-प्रमोद (विश्राम-मनोरजन) (श्रान्ति-अपनोदन) ।
    (६) मान्यता-स्वीकार्य (रिकॉग्निशन)
    (७) चाह का त्याग ।

उपर्युक्त अनुशसित (अभिस्तावित) (रिकोमेण्डेड) वस्तु-विवरण (आइटेम्स) मे से दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है

(अ) अचाह ।
(आ) आचरण ।

नेता वही कहे, जो वे स्वय करे । शासक वही ले, जो वे शासित को दे ।

बहिरग और अन्तरग एक हो । जो अपने को ग्राह्य न हो, वह औरो पर न थोपा जाय ।

आपसी व्यवहार प्रेमाधृत हो । गृहस्थ का समुचित ब्रह्मचर्य 'खीझो खसम' को 'रीझो सनम' बनाये रखता है । और, प्यारे बलम को अपने हॉर्मोन्स के प्रताप का पता भी नही चलता ।

बस, इतनी-सी बात है ।

दलो (पार्टीज) की विविधता, पटु (चतुर-चालाक) नारो (स्लोगन्स) की अनेकता । इनके सिर्फ तीन कारण है

(१) दलवादी नेताओ की अधम स्वार्थपरता ।
(२) अनुगामियो की वज्रमूर्खता ।
(३) चालबाज चापलूसो की कपटी प्रवचना और उनके व्यक्तित्व की हीनता (कमीनापन) ।

अगर 'नेता' अपने आदर्श आचरण मे अचाह और त्याग को अपनाकर 'अनुगामियो' के साथ आत्मवत् व्यवहार करने लगे, तो कुल-के-कुल 'वाद' और विवाद तत्क्षण (उसी वक्त, पल मे) का-फूर हो जायँ । और उसके फलस्वरूप अमन-चैन फैले । कर्पूर और कस्तूरी की भाँति, केसर और जाफरान की तरह,

प्रेम की मस्तानी सुगन्ध, खुशी का आलम, सारे जहान मे फैल जाय । लेकिन, 'लोकनायक' ऐसा कदापि होने नही देगे । वे मानव-कल्याणी घट या दरिया मे एक घाट पर पानी पीने को तैयार नही होगे । मन मे राम बगल मे छूरी, उनके खाने के दाँत अलग होते है, दिखाने के अलग।

नेता बनने के लिये जरूरी है कि नेता की जरूरत महसूस करायी जाय। येन-केन-प्रकारेण यत्र-तत्र, 'पुत्र-कलत्र' को सिखा-पढाकर, फूट पैदा की जाय, दूसरे दलो से मुठभेड का स्वाँग रचा जाय, फिर नगाडे की चोट पर 'गडबडी' का एलान किया जाय, और तदुपरान्त सीना ताने, ध्वजा धारे, प्रतिध्वनित नारो से दिशाओ को मुखरित करते, भीड-भडक्का के सामने मार्च-पास्ट किया जाय । समस्त लीडर-समुदाय अगर सचमुच जन-कल्याण चाहता होता, तो उन सभी मानव-हितचिन्तक नर-पुगवो को केवल एक काम करना था—वे सब अचाह हो जाते, त्याग को अपना लेते । फिर, न फर्क रह जाता, न फूट, न 'वाद', न विवाद । न लीडर, न प्लीडर । लेकिन, नेता तो पर्याप्त अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष की प्राप्ति के बिना अनुयायियो की जान नही छोडेगे, उनको पूरी तरह चूस-चबा-कर भुक्तोज्झित (सिट्ठी) को थूक नही देगे, तबतक उनके अन्तरात्मा को तृप्ति कहाँ मिलेगी । अपना नारा बुलन्द रहना चाहिये, चाहे समाज को जो भी भुगतना पडे । इने-गिने त्यागी सत्यनिष्ठ निश्छल योग्य नेताओ को छोडकर, आजकल के नेताओ मे अधिकतर ऐसे (हो गये) है, जो बहुधा बहु-विधि जन-घाती है और जो अपना उल्लू सीधा करने के पीछे जनता को जानकर रौदे जा रहे है। लोकैषणा के मायाजाल मे फँसे बहुतेरे प्रमादी उन्नायक पद, प्रतिष्ठा, पैसा, प्रभुता, पेयादा, पेय और पद्मिनी के पीछे पडकर प्रच्छन्न पागल बने फिरते है । प्रबुद्ध पब्लिक अब अनुकरणीय आचरण का उदाहरण देखना चाहती है, कथनी और करनी का सामजस्य देखने माँगटा है। जिन्होने उसे (जनता) को 'ब्योपारी' बनाया है, उन्ही से (या उनके साथ भी) वह अपना हिसाब-किताब 'ठीक' रखना चाहती है, वह आसानी से अब 'ठगाती' नही । इसीलिये, कुहराम और कुकुराहो मचा हुआ है । सजग जनता अब आसानी से सोती नही है । मच्छर और खटमल (उडीस) काट रहे है । मार्ग-दर्शक कही ले नही जा पा रहे है । मुखियाजी को कोई नया दाँव भी नही सूझ रहा है कि चेलो को फिर से मोह ले । दम-दिलासा की हुण्डी नाकामयाब हो चली, तो 'सरदार' जी अब सरकने की राह ताकने लगे, तबतक चामुण्ड चेले चैला लिये हुए चौराहे पर आ धमके और चौल करने लगे, ऊधम मचाने लगे, चुकता के लिए चिल्लपो मचाने लगे, रग बाँधने लगे । अब ललकार पर भी 'सरदार' चुप्पी साधे बैठे है, गुरु गुड भी न रहे, छोआ हो गये और चेला चिन्नी बन चले । वे चेले, जिन्हे प्रेम का पाठ नही पढाया गया था, जिन्हे सहिष्णुता की सबक नही सिखायी गयी थी, जिन्हे त्याग का तर्ज नही बताया, दिखाया गया था, जिनकी लहकती-लपलपाती आकाक्षाओ मे

'डालडा' ('घी') डाला गया था। 'सरदार'जी ने देखा—होम मे हाथ जल गये थे।

मिट्टी कही भीग गयी थी, कही गीली हो चली थी। पेडो के पत्तो से बरसात का पानी टप्-टप्-टप्, टप्-टप् कर समय को ससिक्त (आर्द्र) कर रहा था और सिलसिले को अर्घ्य दे रहा था। निगोडी निचोडी रात अभ्र की महफिल से उठी और चल दी। निढाल बादल क्षितिज पर लेटे निश्चेष्ट ऊँघ रहे थे।

इतने मे चहचहाती, रँभाती पौ फटी।

पल-पल पर, निमेष-निमेष मे, अनगिनतानेकानगिनत किरण-वाण छूटने लगे।

सुबह हुई।

दिन दरवाजे लगा (दरपेश हुआ)। दमका।

परिवर्त्तन का, गति का, दूसरा नाम है 'समय'। अगर विश्व मे, ब्रह्माण्ड मे, युनिवर्स मे, कही कोई परिवर्त्तन न हो, तो समय की रफ्तार रुक जायगी। समय ठहर जायगा। और, समय सुस्ताया कि गया। ठहरा कि लुप्त हुआ। रुका कि मिटा।

गति और समय को एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। 'ठण्डई' के सघटक (अश, इनग्रेडिएण्ट्स) की भाँति वे ऐसे घोटे हुए है कि अभिन्न है, पर्यायवाची है।

जहाँ गति नही है, वहाँ समय नही है।

गति के लिये वस्तु की स्थिति का बदलना अनिवार्य है। वस्तु की स्थिति के लिये स्थान चाहिये। इसलिये, अगर स्थान (स्पेस) (आकाश) नही है, तो स्थिति नही है और स्थिति नही है, तो वस्तु नही है (एक 'बिन्दु' तक के लिये पोजिशन लोकेशन, स्थल, स्थापन, जगह चाहिये! चाहे उसका मैगनिट्यूड, विस्तार, आकार परिमाण, मात्रा, कुछ भी न हो!!)

और, अगर 'वस्तु-स्थिति' नही है, तो 'गति-परिवर्त्तन' नही हो सकता। फिर, 'समय' भी नही रह सकता।

स्पेस-मे-गति (परिवर्त्तन) का नाम 'समय' है। 'समय' स्वत और कुछ भी नही है।

स्पेस (आकाश) मे कौन (क्या) 'गतिमान्' (परिवर्त्तनशील) हो सकता हैं? वही, जो 'आकाश' नही है। याने मैटर-एनर्जी। याने पार्टिक्ल-वेभ। कण-तरग। पदार्थ-ऊर्जा।

इसलिये, जो 'गतिमान्' (परिवर्त्तनशील) है, वही 'समय' का आधार है। दूसरे शब्दो मे 'गतिमान्' (परिवर्त्तनशील) (वस्तु) के लुप्त हो जाने से 'समय' का लोप हो जायगा। अथवा यो कहिये कि पदार्थ-ऊर्जा (कण-तरग) के मिटने, जाने, पर 'समय' भी साथ-साथ (एक साथ) मिट-सिमट-बिला जायगा।

इस तरह हम पाते है कि (सर्वतोभावेण, पूर्णत) स्थिर, ठहरा-हुआ, अपरिवर्त्तन-शील आकाश (स्पेस) के साथ 'समय' का कोई सम्बन्ध नही होगा। ऐसे 'आकाश' के लिये (मे) 'समय' होगा ही नही। जो 'आकाश' जहाँ गतिमान् है, उसमे वही, आधेय, 'समय' स्वत अन्तर्निहित (समाविष्ट) है, जैसे मधु मे मिठास। गति का 'गुण' है समय। गति (वस्तु-स्थिति, परिवर्त्तनीय) का आयाम (डाइमेन्शन) है 'समय'।

समय की इकाई⇒स्पेस की इकाई । क्योकि, गति स्पेस मे (के अन्तर्गत) (के 'घेरे' के अन्दर-भीतर) होती है (होगी), इसलिये 'समय' स्पेस से सवृत, सश्लिष्ट, घिरा हुआ है । और, 'स्पेस' मे व्यक्ताव्यक्त 'समय' सर्वव्यापी है । ओतप्रोत है । (तु० दि टाइमलेस, कालातीत, अनकुरित बीज) । अगर 'स्पेस' फैलेगा, तो उसके साथ 'समय' फैलेगा और यदि 'स्पेस' सकुचित होगा, तो साथ-साथ 'समय' भी सकुचित होगा । लेकिन, यह वह 'स्पेस' है, जो स्थिर (अपरिवर्त्तनशील, अचल, ठहरा हुआ) नही है । जहाँ स्थिरता है, वहाँ 'समय' नही है । इसलिये, समय की इकाई⇒गति की इकाई । अब अगर 'गति की इकाई बडी होगी, तो तत्सम्बद्ध 'समय' की इकाई भी बडी होगी । गति की रफ्तार जैसे-जैसे बढती जायगी, तत्सम्बद्ध 'समय' भी वैसे-वैसे सिकुडता जायगा उसी अनुपात मे । [जैसे तु० (क) गति 10 मी० प्रति सेकण्ड को, (ख) गति 100 मी० प्रति सेकेण्ड से । (क) मे 100 मी=10 सेकेण्ड के और एक सेकेण्ड=10 मी के और एक मी०=1/10 सेकेण्ड के, (ख) मे 1000 मी०=10 सेकेण्ड के और एक सेकेण्ड=100 मी० के और एक मी०=1/100 सेकेण्ड के ।] (स्टैण्डर्ड स्केल के बराबर) लोहे (धातु-निर्मित) का स्केल (मापनी, परिमाप, पैमाना, मापदण्ड) जितना गर्म होकर फैलता जायगा, उतनी ही (स्टैण्डर्ड स्केल पर) छोटी हो जायगी वह वस्तु, जिसे उस स्केल ने गर्म होने के पहले नापा था और उतनी ही बडी (नाप मे) हो जायगी (स्टैण्डर्ड स्केल पर) वह वस्तु, जिसे वह गर्म होने के बाद नापेगा । उदाहरणार्थ : मान लीजिये दो स्केल्स है, एक लौह-निर्मित, दूसरा काष्ठ-निर्मित । और, एक 10 सेण्टीमीटर का फीता नापना है । गर्म होकर फैलने के बाद लौह-निर्मित स्केल से नापकर अगर 10 सेण्टीमीटर का फीता खरीदा जाय, तो वह काष्ठ-निर्मित स्केल से करीब (10+क) सेण्टीमीटर (याने 10 सेण्टीमीटर से बडा, अधिक) लम्बा होगा । और, पहले से नापकर काटा हुआ 10 सेण्टीमीटर का फीता (10—क) सेण्टीमीटर (याने 10 सेण्टीमीटर से छोटा, कम) का हो जायगा (गर्म लौह-स्केल से नापने पर) ।

कुछ उसी तरह जब स्पीड (गर्मी) (रफ्तार, गतिक्रम) बढेगा, तब समय-सकेतक (नपना, सहिता, निर्देशक, समय-रक्षणी) (लौह-निर्मित मापदण्ड) का (गति की दिशा के समानान्तर) आयाम (लम्बाई) बढेगा और समय घटेगा, सिकुडेगा, छोटा हो जायगा । और, वैसे ही कम-स्पीड (धीमी-चाल) वाली वस्तु-स्थिति का समय बडा हो जायगा । याने अधिक-स्पीडवाले स्केल पर 'एक वर्ष' या 'अ'-वर्ष की वस्तु-स्थिति (अवधि) कम-स्पीडवाली वस्तु-स्थिति के लिये 'दो वर्ष' या 'अ+आ'—वर्ष का समय जतायगी (बतलायगी) (के बराबर होगी) । इसे दूसरी तरह से भी देख सकते है । जैसे मान लीजिये कि दो स्केल एक साथ सूरज की ओर अग्रसर होते जायँ, तो गर्मी से फैलनेवाला लौह-निर्मित स्केल (बशर्त्ते कि वह पिघले नही) दूसरे न फैलनेवाले स्केल (बशर्त्ते कि वह जले नही) को छोटा-से-छोटा करता चला जायगा । अब अगर दोनो स्केल दूरी नाप रहे हो, तो फैलनेवाले (लमरनेवाले) स्केल से नपी दूरी न फैलनेवाले स्केल के द्वारा नपी दूरी से बहुत कम हो जायगी । (यहाँ स्केल के

फैलाव के साथ 'एक्सीलरेशन'—'डिसीलरेशन' याने रिटार्डेशन, प्रोग्रेशन, की जैसी बात भी लगी हुई हो सकती है, क्योंकि फैलाव का स्पीड फिक्स्ड (अटल) नही भी हो सकता है। तब अब एक दूसरा उदाहरण लीजिये। मान लीजिये कि समय नापने के लिये हम 'गति' का माप-दण्ड इस्तेमाल करे (और हम बराबर ऐसा ही करते भी है) (जैसे घडी की गति से सेकेण्ड, घण्टा, चाँद की गति से महीना, पृथ्वी की धुरी पर की गति से रात-दिन और सूर्य के चर्तुदिक् अक्ष पर गति से वर्ष) याने मान लीजिये कि एक विराट् घडी हो, जिसका मिनट-हैण्ड तथा आवर-हैण्ड बराबर हो। यदि घडी (का डायल) 24 घण्टो (डिविजन्स) मे बॅटी हो, तो एक घण्टे मे मिनट-हैण्ड पूरी परिधि नाप लेगा, जब कि एक घण्टे मे आवर-हैण्ड सिर्फ उसका मात्र 1/24 हिस्सा नाप सकेगा। और, मिनट-हैण्ड का ऐरो-हेड (पेरीफेरल प्वायण्ट) (लौग रेडियस) जितनी बडी परिधि (दूरी) नाप लेगा, उससे कही कम उसका जड (सेण्ट्रल-प्वायण्ट, इनर-प्वायण्ट) (शॉर्ट रेडियस) नाप सकेगा। अब अगर यह सोचा जाय कि आदमी की 'जीवन-गति' का नाम है 'उम्र' (एज)। और, एक आदमी 'क' इस 'जीवन-गति' पर तेज रफ्तार (बडे वेग) (द्रुत गति) से भागा जा रहा है और दूसरा आदमी, 'ख' धीरे-धीरे (आहिस्ता-आहिस्ता, मन्द गति से, मन्थर गति से) चल रहा है। अब मान लीजिये कि दोनो दस (10) वर्ष तक चलते (जीवन-यापन) रहे, सफर करते रहे। इतने काल मे 'क' जीवन-यात्रा पर बहुत दूर निकल जायगा, 'ख' बूढा हो जायगा, अत्य(अ)धिक उम्र का हो जायगा। लेकिन, एक ऐसा परिवेश भी है, जिसमे इसका ठीक उल्टा फल होगा। अगर तेज रफ्तार के साथ समय एक्सपैण्ड कर जाय अथवा स्ट्रैच्ड हो जाय (तु० रबड के फीता का स्ट्रैच्ड होना, फैलना) (तु० लौह-मापदण्ड का गर्म हो जाना) तो स्पीड-के-साथवाली 10 वर्ष की जिन्दगी (उम्र) जीवन-यात्रा (स्टैण्डर्ड स्केल के मुताबिक। उदाहरणार्थ पार्थिव जिन्दगी के मुकाबले) पर, 'कम दूरी' हो गयी होगी, यानी 'क' की उम्र कम (युवा) होगी, 'ख' से।

एक तीसरा उदाहरण लीजिये। एक ग्रामोफोन रेकार्ड को लीजिये। मान लीजिये कि 10 इकाई के समय मे (10—'समय' मे) रेकार्ड एक बार घूम जाता है और 'क' चीटी, केन्द्र से, 7 (सात) मीटर की दूरी पर बैठी है और 'ख' चीटी, केन्द्र से, एक मीटर पर। एक मीटर रेडियस (त्रिज्या) की परिधि (सरकम्फरेन्स) $=2\pi r=$

$2\times\frac{22}{7}\times 1=\frac{44}{7}m=6$ मी० और 7m रेडियस (त्रिज्या) की परिधि $=2\times\frac{22}{7}\times 7$

$=44m=44$ m

इसका मतलब यह हुआ कि

'10 समय' $=6$ मी० (ख) $=44$ मी० (क)

या 6 मी० (ख) $=10$ (समय)

1 मी० (ख) $= \frac{10}{6}$ समय

या 44 मी० (क) $= 10$ (समय)

1 मी० (क) $= \frac{10}{44}$ समय

या $\frac{1 \text{ मी० (ख)}}{1 \text{ मी० (क)}} = \frac{\frac{10}{6}}{\frac{10}{44}} = \frac{10}{6} \times \frac{44}{10} = 7$ (समय)

या 'ख' $= 7$ (समय) ऑव 'क'

या 'ख' का एक वर्ष = 'क' के सात वर्ष के

या 'क' की उम्र 'ख' से सातगुना कम हुई। और, यह तब होगा, जब 'ख' और 'क' दोनो ही एक ही दिशा मे (क्लॉकवाइज या एण्टीक्लॉकवाइज) (दिशा = दिक् की दिशा = काल की) गमन (गति) (वस्तु-स्थिति) (जीवन-यापन) कर रहे हो।

'भूत' से 'भविष्य' तक की जीवन-यात्रा।

एक और कन्सेप्ट गुनिये।

मान लीजिये कि एक वस्तु (-स्थिति) है, जिसकी लम्बाई = l [एल]

चौडाई = b और ऊँचाई = h

अगर मान लिया कि l घटते-घटते = 0

तब $b \longrightarrow l'$ ('चौडाई' का, 'लम्बाई' बन जाना)।

and $h \longrightarrow b'$ ('ऊँचाई' का 'चौडाई' बन जाना)

$l \times b = lb$ (क्षेत्रफल)

अगर, $l = 0$

तब, $0 \times b = 0$, (और $l \times b \times h = 0$)

$0 \times b \times h = 0$

लेकिन यदि $b \longrightarrow l'$

$h \longrightarrow b'$

तब $l \times b \times h$ सदृश होगा

$l' \times b'$ के (यहाँ पर 'l' का शून्याक मूल्य निष्फल-सा बन जाता है, क्योकि $l \times b \times h$ का गुणनफल $\neq 0$

The 3 dimensional solid figure becomes a 2 dimensional plane

Solid $\longrightarrow$ Plane

Volume—→Decomposes (degenerates) into Area The change (i) in form and (ii) in dimension—has occurred

Note—

Here '0' (zero) has assumed a different significance and meaning

[Note (i) $l \times b \times h = l \times b \times 0$

$= l \times b$, if $h = 0$

(ii) $l \times b \times h = l \times b \times 1$

$= l \times b$, if $h = 1$

then, $h = 0 = h = 1$

I know there is a flaw in here and an illusion too, but that is just what I want to bring out and emphasize—the illusion (in life) (and in interpretations) for the careless and the cock-sure]

Now take a plane $l \times b$

If $l = 0$

then $l \times b = 0$

which means that

$$b = \frac{0}{l} = 0$$

Or, that there cannot be a 'length' without a 'breadth' or vice versa i e a two-dimensional plane cannot become just linear (one-dimensional) and the definition of 'line' may be wrong

Now take a 'line'

Line = juxtaposed 'points' = repetetion of points in continuity

Now since a point has only 'position' and no 'magnitude'—a line too has only 'position' but could not have a 'magnitude'

Thus a line is non-existent and so are two-dimensional and three-dimensional objects

Actually speaking there is only one dimension in the material world and it is 'EXISTENCE' itself

From another angle,——————an object or वस्तु-स्थिति is constantly changing in Time i e from moment to moment

to define a वस्तु-स्थिति we must be able to define (locate) it in terms of Time—'it was so at such time' because the very next moment

it would be a different वस्तु-स्थिति Hence with l, b and h we must use a fourth dimension, Time Now the change must be occurring in space—change⇄motion (in time and in space)

Space too must be used as a Fifth dimension

(cf a wave, its motion in time and space cf internal configuration and motions in an atom)

(or since Time and Space are inseparable facets we may call it a 'Space-Time dimension'—Einstein)

Apart from what we have mentioned above there are at least two more (other) things to consider

(1) The Subject (seer) who defines an object (वस्तु-स्थिति)
=I Party (P—1)

(2) the person to whom the object is defined (how he understands and interprets that definition or explanation or vision)
=II Party (P—2)

(3) the help used in the explanation

i e. gadgets, appliances, material and method etc =III Party (P—3)

Likewise there can be many-a-dimension for describing (explaining) any thing or any incidence

Our bodies have stretched, grown, developed, metabolised, with some speed and have grown-up from an unicellular organism into a mass or pile of multicellular (and multifaceted) organism (वस्तु, व्यक्तित्व) Physically and grossly it has raised itself from the craddle and grown upwards from its feet on the earth (like a tree) Remember the speed of cardiac depolarization and emission of electrical waves by (from brain cells, the speed with which blood (and lymph) circulates, the respiration rate, the varied rates of metabolism of various different cells in our body, the rate of cell-division and gene development and multiplication

The (i) physical (ii) chemical (iii) biological (iv) psychological (v) educational and (vi) various other abstract changes going on in the body—these have all developed with varying and variable speeds of their own In other-words the process of body growth and change

[cf growth of hair, of nails, ageing of various organs at varied time-intervals (अन्तराल)] which we confuse with the single word 'ageing' is a complex combination of various 'speeds' (गति) It is the flight of innumerable time bombs (समय-बम) (मीआदी-बम, टाइम-बम) in Space-Time, with their different destinies to explode at different times We are atomic-piles basically, built of various different kinds of atoms with different 'half-lives' or full-lives, 'radiating' existence at our own particularly unique combinations of resultant speeds, and these speeds are vector quantities and we are essentially 'vectors' shot in the Space-Time continuum from 'the continuum' itself which is beyond Space and beyond Time

As soon as we think of any Law or Formulation, let us not forget, that a diversity will have to be introduced cf (i) Quantum Theory and (ii) Theory of Relativity ————————existing in the Scientists' world today for explaining 'observed' phenomenon There just cannot be an 'Unified Field Theory' in this world of Diversity (diversities) (cf Newton, Galileo, Einstein, Max Planck and now the 'Mesons' etc) When an 'Unified' theory will ever be discovered it will be 'no-theory' it will be शून्य (=Cipher, Zero)———————— it will be the Void, the Nothing-ness from which only diversities 'manifest' whereas the 'unities' (unifications) (absolutes) remain 'unmanifest' and hidden We only speculate on them, hope for them, are aware of them somehow, by our 'sixth-sense', they do not exist at-all in our material world of relativity Even "Absoluteness" and "Alikeness" are relative in this world (ie 'Relativity of simultaneity'—Einstein) of ours There is just no Absolute Absoluteness here with us No any two things are ever absolutely alike in any respect——not even two molecules of the same compound or even two atoms of the same element If any thing EXISTS, there is just nothing like it And this applies to 'matters', to 'energies' to 'theories' to 'personalities', to individual-'logistics' and -'thoughts' and -'expressions',-'explanations' The only 'Unified Field Theory' is 'Absoluteness' and 'Absoluteness' is only an attribute of the attributeless God The rest——all the rest—is an Illusion and no two Illusions are exactly alike. A search for 'Unity' will inevitably land us into 'Diversities' Where search ends, where waves subside,

where thoughts get submerged (चित्तवृत्तिनिरोध) there alone is Total Unity, the one without the second or the One-in-the-Seconds

Even two 'Zeros' are not exactly alike because if they were then

$0=0$

$2-2=2-2$ and then since $x \times o=o$ and $v \times o=o$

$5\,(2-2)=3\,(2-2)$

$5=3$

Now this is absurd, says the mathematician Of course it is But why 'absurd' ? Because, according to the later innovation, escape-mechanism, of the mathematicians, there is a 'Cancellation Law' which says that such multiplications apply only to non-zero factors In other words it says that

$a \times c=b \times c \Rightarrow a=b$ only if $c \neq o$

But again, I ask, 'why' ? Is it not because two zeroes are not equal ? The mathematician, Dr R Jha, kept mum

Also 1+1 (one plus one) does not always make two

one heap of grains + one heap of grain = one (bigger) heap of grain

Also contrast Arithmetic and calculus and the values of 'o' (zero) and $\propto$'

$(x \times o=o)$ $(o \times o=o)$ $(o-o=o)$ $(o+o=o)$

$(\propto + \propto = \propto)$ $(\propto - \propto = ?)$ $(o-o=?)$

$(\propto \times o=?)(o-\propto=?)$ $(x-o=\propto$, if $x \neq o)$

$(x-\propto=o$, if $x \neq \propto)$ (A to the power $\propto = ?$ if A = a finite number)

Also contrast Euclidean with Non-Euclidean Geometry and Co-ordinate (spherical) geometry

Also realize that 'higher mathematics' is only a conceptual logistics and that the 'numbers' (integers) which form the very basis of mathematics do not really exist except in the human mind The human mind has got so 'conditioned' that it considers the numbers 'real', has built-up for himself a whole structure of Existence based on numbers, and is now unable to do without them

In a given quantity of Uranium showing radioactivity a certain number of atoms will disintegrate in a certain length of time This much can be predicted by the scientists on the basis of the laws governing the phenomenon of radioactivity But just which very atoms will disintegrate and why they alone should disintegrate, this no one can answer

Sir Arthur Eddington once observed that any true law of nature is likely to seem "irrational" to "rational" man

The scientists believed that nature mysteriously operates on mathematical principles and that natural laws can be discovered simply by the solution of equations

"But the paradox of physics today is that with every improvement in its mathematical apparatus the gulf between man the observer and the objective world of scientific desciiptions becomes more profound" "Realization that our whole knowledge of the universe in Simply a residue of impressions clouded by our imperfect senses makes the quest foi reality seem hopeless"

इन्द्रधनुष को देखिये।

बैगनी-नीली (जम्बुई-नील)-आसमानी (नीलाभ)-हरा-पीला-नारगी (केसरिया)—लाल।

ज्यामितिक तरीको से जमीन का वँटवारा सतही (superficial) है, क्योकि जमीन पर लाइन खीच देने से या चहारदीवारी उठा देने से न जमीन किसी की हो जाती है, न जमीन टुकडो-टुकडो मे बँट जाती है। जमीन का सातत्य (continuity) बरकरार रहता है, लाइन के नीचे, लाइन पर, दीवार के नीचे, दीवार के साथ-साथ।

सच पूछिये तो सारा वैज्ञानिक ज्ञान सतही (ऊपरी, वाहरी) है, चाहे तो आदमी के शरीर (इन्द्रिय-ज्ञान) की अनुभूति, कल्पना, चाहे जटिल हिसाबी फार्मूलो की करामात। हम ऊर्जाओ की करतूत-भर देखते हे, ऊर्जाये क्या है और क्यो है और कैसे है, यह सब अज्ञात है। वैज्ञानिको ने खयाली पुलाव पकाये है। अब वे भी इसको मानने लगे है और इसका स्पष्ट अनुभव करते है। अकगणित और अक तक मानव-निर्मित बालू की भीत हे। उनपर आधृत फार्मूलो की नीव का क्या भरोसा! बे-पेदी की तरी, जबतक तैरे!

'समय' भी मनगढन्त है। सातत्य मे घुस-पैठ। तु० स्टैण्डर्ड टाइम, ग्रीनविच टाइम, एफेमेरिस टाइम, युनिवर्सल टाइम, बायलॉजिकल टाइम, रेलवे-टाइम, सिविल-टाइम, मीन टाइम, सिडेरियल टाइम, कम्पनी-टाइम, बीबी का टाइम और सौहर का टाइम, दु खी का टाइम, सुखी का टाइम, जन्म और मरण का टाइम। रात और दिन का टाइम। गर्मी और जाडे का टाइम। वाटर क्लॉक्स। प्रिमिटिभ वाचेज। पेण्डुलम। स्प्लिट-सेकेण्ड एलेक्ट्रोनिक स्पोर्टस—टाइमर्स। एटॉमिक घडियाँ। इत्यादि। और एक है 'आइ-टाइम'=सबजेक्टिव (आत्मपरक)—समय, एग्जिस्टिग फॉर दि इनडिभिजुअल 'आइ' (मै—मेरा)।

समय और स्थान से परत्मातमा परिधित नही होता। भर्तृहरि ने परमात्मा के इस दिक्कालातीत रूप को इस प्रकार श्लोकबद्ध किया है

"दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नम शान्ताय तेजसे ॥"

भवभूति ने काल को शाश्वत, अखण्डनीय या निरवधि (नि +अवधि) माना है "कालो ह्यय निरवधि ।"

परमात्मा दिक्काल-निरपेक्ष है, जबकि यह 'लोक' दिक्काल-सापेक्ष । इसीलिये, दिक्काल का कल्पित खण्डानुखण्ड होता चलता है। समय का दण्डपलादिपूर्वक विभाजन मनुष्य अपनी सुविधा के लिये कर लेता है।

There is no space. There is no time Change (motion) creates the illusion of Time Position (Location with respect to one another) of bodies unconnected (discontinous) with one another creates the illusion of Space

कुछ वैज्ञानिको की यह धारणा है कि हम कणो (पार्टिक्ल्स) की दुनिया मे रहते है। कुछ वैज्ञानिको की राय मे हम तरगो (वेम्ज) की दुनिया मे रहते है। कुछ वैज्ञानिको का मत है कि हमारी दुनिया एक साथ कणीय भी है और तरगित भी, द्वैतवाद की तरह 'सगुण' भी और 'निर्गुण भी—दो आननो, चेहरो, वाली।

In the rainbow or the solar spectrum of the sun light wave length of violet light is 0 00004 cm and that of red light is 0 00007 cm Our human eye is capable of seeing a world illumined by only those light waves whose wave-lengths range between 0 00004 cm and 0 00007 cm Beyond this narrow band of visibility the eye is insensitive Infrared rays (wave lengths 0 00008 to 0 032 cm) and Ultraviolet rays (wave lengths 0 00003 to 0 000001 cm) emitted (radiated) by the sun are invisible They fail to excite the retina to an impression of light Then there are other electromagnetic waves (and solar light too is an electromagnetic wave) of lesser and greater frequencies which differ from light only in wave-lengths The human eye fails to respond to most of these 'lights' in the world The gamma rays of radium, radio-waves, cosmic rays, the X-rays, heat waves, Radio and Television waves etc The reality that we see around us would be entirely different if our eyes were sensitive to the 'lights' (radiation or radiant-energy) with wave-lengths different (shorter or longer) than that of the solar spectrum

परमात्मा। प्रीति। प्रतीति। इन्हीं से रँगी है अपनी छोटी-सी जिन्दगी।

इस मर्त्य-भुवन मे मैत्री की भावना समाज (सामाजिक व्यवस्था) के लिये सर्वोपरि है। मित्र से बढकर 'अपना' कौन 'सम्बन्धी' है!

J B S Haldane said that the Universe "may not only be queerer than we imagine, but queerer than we can imagine"

"At the end of his days, when the lion has become a poor creature with worn teeth and failing strength, his usual fate is to be torn to pieces by hyenas and jackals", (Book of knowledge)

گولڈن جوبلی

بہ تقریب جشن پچاسویں سالگرہ۔ عالیقدر مسیح زماں۔ حاذقِ دوراں۔ ادب نواز شفیق محترم
عالیجناب ڈاکٹر شری نواس صاحب۔ منعقدہ خانقاہ عمادیہ منگل تالاب پٹنہ سیٹی مورخہ ۲۹ دسمبر

اوج سر بہار ہیں میرے شری نواس ۔۔۔ وجہہ صد افتخار ہیں میرے شری نواس

نازاں ہے جس پہ ملک وہ عالی دماغ ہیں ۔۔۔ حکمت کے تاجدار ہیں میرے شری نواس

جو نازش ہنر وہ اہل ہنر ہیں یہ ۔۔۔ فن کار ذی وقار ہیں میرے شری نواس

بھرتے ہیں روح تازہ مریضان قلب میں ۔۔۔ دلدار غمگسار ہیں میرے شری نواس

حق نے کیا ہے ماہر امراض قلب نہیں ۔۔۔ ہر قلب کی پکار ہیں میرے شری نواس

انسانیت کے درد میں ڈوبی ہوئی نگاہ ۔۔۔ کہتی ہے میرا پیار ہیں میرے شری نواس

اس دور میں حب ہی تو بذوق تلاش حق ۔۔۔ ہر آن صرف کار ہیں میرے شری نواس

روحانیت سے لے کے تقاضائے معرفت ۔۔۔ ہر لحظہ بے قرار ہیں میرے شری نواس

میں کون ہوں؟ میں کہاں ہوں اسی جستجو کیساتھ ۔۔۔ ہر دھرم پر نثار ہیں میرے شری نواس

اس درجہ عظمتوں پہ بھی ہے بہ علوئے طرف ۔۔۔ تصویر انکسار ہیں میرے شری نواس

یکساں ہے ارتباط امیر و غریب سے ۔۔۔ مرد وفا شعار ہیں میرے شری نواس

ہے مدتوں سے بندہ احسان فقیر بھی ۔۔۔ میرے بھی چارہ کار ہیں میرے شری نواس

کیوں کر نہ ہو کہ ہوش بہ گلزار دوستی ۔۔۔ رونق دہ بہار ہیں میرے شری نواس

ہر دل میں صد نقوش محبت کے ساتھ ساتھ ۔۔۔ اک نقش پائیدار ہیں میرے شری نواس

بدلی نہ اس پہ آئے کبھی انقلاب کی
تیز اور روشنی ہو میرے آفتاب کی

ہدیۂ خلوص و محبت

بخدمت عالی مرتبت مسیحِ زماں حاذقِ دوراں ادب نواز جناب ڈاکٹر شری نواس دام اقبالہٗ

قطعات

(۱)

شری نواس تو بزمِ سخن کے ہیں امیں — انہی کے دم سے چراغِ سخن ہے اب روشن

جو ہو ردیف و قوافی کو ہول دل سکنٹ — تو مارل ہو لگے وقت پر اک انجکشن

(۲)

تری نواس ہیں جانِ خلوص و شانِ کرم — جہاں مہر و محبت ہیں سور و ستار بھی ہیں

مریضِ قلب کو دیتے ہیں یہ پیامِ شفا — غلط نہیں ہے جو کہہ دوں کہ دل نواز بھی ہیں

(۳)

دکھا رہی ہے بہار آج تو یہ بزمِ سخن — ہوں اہلِ ذوق کی آنکھیں نہ کس طرح روشن

یہ اسپتال بھلا کیوں نہ آسماں پر ہو — تری نواس ہیں سورج تو اہلِ بزم کرن

(۴)

اس ریش کی آب و تاب سبحان اللہ — ریشم کا ہو جس طرح چمکتا لچھا

آئینہ تری نواس جی سے بولا — داڑھی ہے کہ تاج محل کا چھجّا

(۵)

سمجھ میں کچھ نہیں آتا محبت کس کو کہتے ہیں — نتیجہ پر پہنچتے ہیں جو ہم ریسرچ کرتے ہیں

یہ اک وائرس ہے جس میں ہر کرشمہ ہے سی وڈی ہی کا — کسی سے ہٹ کے مرتے ہیں کسی میں سٹ کے مرتے ہیں

(۶)

یہ کیا اسٹیٹ بس سروس ہے پٹنہ میں یہاں نکلی — کہ کیسی بے بسی میں ہو کے بے بس میری جاں نکلی

ادھر نکلی اُدھر نکلی یہاں نکلی وہاں نکلی — یہ رئیس کی بیوی ہے خدا جانے کہاں نکلی

(۷)

یہ اردو اور ہندی دونوں ہیں اپنی سگی بہنیں — جو ان دونوں کو لڑواتے ہیں وہ دونوں کے دشمن ہیں

غرض ان کی ہے اپنی ذات کی جلوہ نمائی سے — نہ یہ شیدائے اردو نہ وہ ہندی کے قدردیں ہیں

سکنٹ عظیم آبادی

सूरज के दर (घर) (पर) से, 150×10^6 की०मी० दूर, करीब 3×10^{10} सेण्टि-मीटर प्रति सेकण्ड रफ्तार मे भागती-दौडती रोशनी पृथ्वी के इस ओर-छोर पर केवल आठ मिनट मे पहुंची, (पहुँचकर) फैलने लगी।

पृथ्वी पर जो साधारण घटनाये धरातल की वस्तुत (रादर) धीमी चाल (मन्द-गति) (मन्थर) (स्लो स्पीड) से घटा करती है, उनके स्पष्टीकरण के लिये न्यूटन के द्वारा प्रतिपादित फार्मूले (नियम) तथा इक्वेशन (समीकरण) पर्याप्त है। अणु-परमाणुओ की दुनिया मे, माइक्रोकॉज्म (लघु जगत्) (पिण्ड) मे, क्वाण्टम थ्योरी (मैक्स प्लाक) काम करती है। मैक्रोकॉज्म (ब्रह्माण्ड) (विराट जगत्) मे, ग्रह-नक्षत्रो के साम्राज्य मे, जहाँ गतियो की रफ्तार अत्यधिक तेज (द्रुतगामी) है, वहाँ न न्यूटन के नियम-कानून (विधि-विधान) (सिद्धान्त) (फार्मूले) काम आते है, न मैक्स प्लाक के। वहाँ आइन्स्टाइन की रिलेटिविटी थ्योरी (सापेक्षता-सिद्धान्त) से सम्बद्ध आईन-कानून कारगर साबित हुए है। मजा यह है कि न अणु-परमाणुओ की दुनिया को किमी ने देखा है, न कसम खाकर कोई वैज्ञानिक यही कह सकता है कि पृथ्वी आखिर सचमुच चलती भी है या नही, न कोई समय को जानता है, न किसी के पास स्पेस की कोई दृढ कल्पना है, न 'ऊर्जा' को किसी ने देखा है, न 'मैटर' के विषय मे कोई विश्वस्त है, न वैज्ञानिक यह भी कहने के लिए तैयार है कि उनके द्वारा अनुभूत कुछ 'सत्य' कुछ 'ठोस' कही है भी या नही, अथवा यह कि उनका अनुभव कही मात्र भ्रम तो नही, महज (सिर्फ, केवल) अटकल-अनुमान-अन्दाज तो नही। वैज्ञानिक गणितज्ञ जवाब देते है कि इन सारी बातो से उनको मतलब नही, 'सत्य' क्या है, वे नही जानते। जानने की जरूरत भी नही समझते। जानने की कोशिश (प्रयास) भी नही करना चाहते। वे जो देखते है, उसका बयान करते है, जो पाते है, वह सामने ला धरते है। घर मे बैठकर, सोच-विचारकर, दिमागी कवायत के द्वारा, कागजी करामात के दौरान, हिसाब-किताब के जरिये, उन्होने गणितीय फार्मूले—इक्वेशन्स बनाये है, जिन्हे वे कामकाजू समझते है और कारगर पाते है। उनको बस इतने भर से मतलब है। जब पृथ्वी खडी थी और सूरज चलता था, तब भी पचाग बनते थे, ऋतुओ का अन्दाज था, दिन-रात का समय मालूम था। बहुत कुछ खगोलीय (ऐस्ट्रोनॉमिकल) गणना तब भी 'सही' उतरती थी। जब पृथ्वी सूरज के चतुर्दिक् घूमने लगी (कॉपर्निकस, गैलीलियो), तब भी पचाग बनते ही है और खगोलीय घटनाओ की भी 'सही' व्याख्या दी जाती है, विवृति की जाती है। (मैक्स) प्लाक (का)-कान्सटैण्ट तथा प्रकाश-किरणो (लाइट) की अटल-नियत-अपरिवर्त्तनीय गति (आइन्स्टाइन) का न कोई कारण समझता है, न समझा पाता है। और फिर, इन वैज्ञानिको की मुट्ठी मे सब-कुछ मिथ्या ही होता, गलत और भ्रामक, तो न एटम-बम फूटते (विस्फोट), न कोई चन्द्रमा पर उतरता। आइन्स्टाइन की रिलेटिविटी थ्योरियो के (सापेक्षता-सिद्धान्तो के) प्रतिपादन से खगोल-विज्ञान ने नयी करवटे ली, नये 'सत्य' सामने आये, ब्रह्माण्ड की ओर नये वातायन खुले, मानव ने ज्ञान के नवीनतम झरोखो पर खडा होकर एक 'नयी' आश्चर्यजनक अपरिचित विश्व का

साक्षात्कार किया। आइन्स्टाइन ने बतलाया कि प्रकाश-किरणो की गति से बढकर कोई गति नही है। (तु० विचार-तरग ?)। कि कोई-भी, कुछ-भी, ब्रह्माण्ड मे कही भी, प्रकाश की किरणो (यानी रेडिएण्ट एनर्जी) से तीव्रतर गति है ही नही। (तु० भगवान् भी नही ?) (और, सब-एटॉमिक एलिमेण्टरी पार्टिक्ल्स ?)

लोग यह नही जानते कि यह 'रेडिएण्ट-एनर्जी' 'क्या', 'क्यो' और 'कैसे' है। इसी रेडिएण्ट-एनर्जी स्पेक्ट्रा मे प्रकाश (लाइट), उष्णता (हीट), एक्स-रेज, गामा-रेज, रेडियो और टेलीविजन वेभ्ज इत्यादि-इत्यादि सभी तरह के 'एलेक्ट्रो-मैगनेटिक' वेभ्ज समाहित (अन्तर्विष्ट) (सम्मिलित) है। लेकिन, पहले कहा जाता रहा कि 'एलेक्ट्रिसिटी' और 'मैगनेटिज्म' दो भिन्न प्रकार की ऊर्जाये है। अब कहा जा रहा है कि वे एक ही प्रकार की (ऊर्जाये) (सघटित-सपृक्त-सश्लिष्ट-सम्मिश्रित, एक ही फलक के दो पहलू) ऊर्जा मानी जाय। 'प्रकाश' क्या है ? कोई नही जानता। शायद 'विद्युतीय' हो उसका स्वभाव। जैसा कि आइन्स्टाइन का भी मत था। 'विद्युत्' क्या है ? कोई जवाब नही मिलता। 'प्रकाश' को वैज्ञानिक 'कण' (न्यूटन की कॉरपॉस्कुलर थ्योरी) मानते थे, फिर 'लहर' (वेभ) मानने लगे। अब उसे न 'कण' मानते है, न 'लहर'। अब वे कहते है कि 'प्रकाश' कण भी है, लहर भी और शायद 'कणीय-लहर' या 'लहराता-कण' ही न हो ! वेभिक्ल।

अब न 'पदार्थ' है, न 'ऊर्जा'। आइन्स्टाइन ने 'ऊर्जा' को 'पदार्थ' मान लिया, 'सान्द्रित (कन्सेण्ट्रेटेड) पदार्थ' बराबर है 'ऊर्जा' के। 'पदार्थ' (मैटर) 'ऊर्जा' मे और 'ऊर्जा' (एनर्जी) 'पदार्थ' मे बदल सकती है। (एटॉमिक बम-विस्फोट)। ($E=mC^2$) (Note In this equation, which follows from Einstein's Special Theory of Relativity, the velocity of light, expressed by the symbol, 'C', appears as the 'connecting link' between 'mass' and 'energy')

एक प्रकार की 'ऊर्जा' दूसरे प्रकार की 'ऊर्जा' मे बदल सकती है (इण्टरचेंजिएब्ल) (ट्रान्सफर्मेब्ल), एक प्रकार का पदार्थ (मैटर, एलीमेण्ट) दूसरे प्रकार के पदार्थ (एलिमेण्ट) मे।

'कण' लहर हो सकता है। लहर 'कण' हो सकती है। लहर (वेभ) के क्रेस्ट (तरग-शृ ग) वहाँ है, जहाँ 'अधिक'-मात्रा मे 'कण' एकत्र है और उसका नादिर (अधो-बिन्दु, तरग-पाद) (तरग-ताल या तल) वहाँ है, जहाँ 'कणो' की सख्या कम है। या जहाँ कण के पाये जाने की सभावना अधिकतम-न्यूनतम है। कोरी कल्पना।

आइन्स्टाइन ने कहा कि जो कुछ अनुभूत है, सभी सापेक्ष है। और न 'समय' है, न 'स्थान' (स्पेस)—दिक्काल एक मिश्रण, एक मिलावट, एक पुश्तावन्दी (रिभेटेड) नकली घोल है।

अब 'ईथर' है नही। पृथ्वी से तीन सौ कि०मी० दूर सब शून्य है।

न पृथ्वी चन्द्रमा के पीछे-आगे नाचती है, आइ-पाइ करती है, न चन्द्रमा पृथ्वी के चतुर्दिक् घूमता है (?)। दोनो अपनी-अपनी कक्षा (परिधि) मे (पर) अपने-अपने केन्द्र पर

नाचते है और ऐसा नृत्य (नाच) है वह, ऐसी समय-सारणी है दोनो की, ऐसा तालमेल कि चन्द्रमा पृथ्वी से न कभी मुँह मोडता है और न पृथ्वी को अपनी पीठ दिखलाता है। और एक है ग्रह मरकरी (बुध), जो हमारी पृथ्वी के 88 दिनो की अवधि मे एक बार अपनी धुरी पर और उतने ही काल (समय) मे एक बार अपने कक्ष पर भी घूम जाता है। चुनाँचे हम पार्थिव प्राणियो के हिसाब से बुध का एक दिन और बुध का एक वर्ष दोनो बराबर है।

और देखिये न, एक तारा (जायण्ट रेड-स्टार) है आर्कटरस, जो पृथ्वी से 38 लाइट-ईयर्स दूर है, याने 3×10^{10} सेण्टीमीटर प्रति सेकेण्ड की गति से चलती हुई प्रकाश-किरणे 38 वर्षो मे पृथ्वी पर पहुँच पाती है। आज जो प्रकाश आया है, वह सन् ई० 1935, की खबरे लाया है। उस साल तो वह द्युतिमान् सही-सलामत था। पता नही, वह अब कैसा है! बचा हुआ भी है या मर गया, कौन जाने? आज की ताजा खबर अब 38 वर्ष बाद सन् 2011 ई० मे प्राप्त होगी। तबतक शायद मनुष्य की कम-से-कम एक पीढी अवश्य ही समाप्त हो चल बसेगी।

रश्मि-रथ पर चढा हुआ आदमी प्रकाश-किरणो की बगल-बगल बेतहाशा 'आकाश' मे दौडता-भागता-झपटता पायगा कि न वह चल रहा है, न प्रकाश की कोई गति है। दोनो खडे है। बस खडे, ठहरे-ठमके। उस यात्रा का कोई तटस्थ अवलोकक या सहयात्री पायगा कि जैसे-जैसे उसकी (ख-यात्री की) गति बढती गयी है, उसकी घडी धीमी पडकर बन्द हो गयी है, कि उसके हृदय की धडकन, साँस का आना-जाना, शरीरिक प्रक्रियाये इत्यादि सब-कुछ स्थगित हो गये है, उसकी उम्र भी ठहर गयी, बढती नही। कि उसका रथ राह के रू-ब-रू चिपटा होकर लम्बाई मे शून्य तक पहुँच गया, कि वह स्वय एक चिपटी पर्त्त की शक्ल का हो गया, जिसकी चौडाई और ऊँचाई बची रही, लम्बाई लुप्त हो गयी। उसने एक नापने का स्केल रखा था अपने पास, वह सिकुडते-सिकुडते मटियामेट हो गया।

ये घटनाये (दृश्यप्रपच, सवृति) मेकैनिकल (न्यूटन, न्यूटनियन) (यान्त्रिक) नही होगी। द्रुतगामी यात्री को स्वय इनका पता नही चलेगा। पर सहयात्री को और किसी स्थिर द्रष्टा (ऑवजर्वर) को वह वैसा (ऐसा) ही दीखेगा।

जैसे 'समय' का कोई अस्तित्व न हो, 'समय' न है, न 'बीतता' है, न था न होगा। 'भूत', 'भविष्य', 'वर्त्तमान' किसी का भी अस्तित्व नही है। आइन्स्टाइन ने सुझाया कि समय (काल) कभी पीछे नही मुडता, वह सदा 'आगे' ('भविष्य') की और भागता रहता है। लेकिन, आइन्स्टाइन, ने यह भी अनुभव किया कि विराट् ब्रह्माण्ड मे 'लीनियर' कुछ है नही, सभी 'ग्रेट-सर्कल्स' है, फिर ऐसी परिस्थिति मे 'आगे'-पीछे', 'भूत-भविष्यत्' क्या कोई मतलब रखता है?

आइन्स्टाइन ने यह भी जताया कि प्रकाश (ऊर्जा) को मास (द्रव्यमान) है, वजन (वेट) है, और यह भी कि वजनदारी उसके 'भारीपन' पर मनहसर नही, बल्कि गति-अवरोध से सम्बद्ध उसका गुण है। अब देखिये कि शून्य मे फ्रिक्शन (घर्षण, रगड) है

नही, फिर प्रकाश की किरणो की गति मे कोई अवरोध होगा नही। प्रकाश की गति 'लीनियर' है और वह एक-रस अपरिवर्त्तनीय (अगर मीडिया न बदले) है। शून्य मे मीडिया (माध्यम, पर्यावरण) के दल-बदलूपने का कोई सवाल ही नही। अब बतलाइये कि प्रकाश के 'द्रव्यमान' का क्या मतलब, क्या प्रयोजन समझा जाय ? यही न कि वह वैज्ञानिको के हाथ मे एक 'युक्ति' है। आत्मसन्तोष के लिये। अपना काम निकालने के लिए और अगर प्रकाश मैटर (कण) का बना हुआ है, उसको मास (द्रव्यमान) है और वह इतनी बेशुमार तीव्र गति से पृथ्वी पर गिरता है (मोमेण्टम), तो बतलाइये कि बेचारी पृथ्वी का क्या होगा ? और, दिन का इतना मास-बोझा हर रात को कहाँ और कैसे उठ जाता है ? और, प्रकाश यदि सतत सन्तत (अविच्छिन्न निरन्तर) है, तो वह क्वाण्टाइज्ड कैसे होगा ? यदि क्वाण्टाइज्ड है, तो उसके दो टुकडो, दो इकाइयो, के बीच (अन्तराल) मे क्या है ? उसकी 'गति' है भी या नही ? उसकी 'लहर' का प्रोपैगेशन (प्रसारण) या उसके 'कणो' का प्रक्षेपण एक भ्रान्त तिलस्म तो नही ? अगर खलिहान मे आग लगी हो, सलाई की लकडियाँ सटा-सटाकर रखी हो, मोमबत्तियाँ आस-पास खडी हो, और आग की लपट एक तृण से दूसरे तृण मे, एक काठी से दूसरी मे, एक मोमबत्ती से दूसरी मे, 'बढती', 'फैलती', 'अग्रसर' होती नजर आये और वह भी जब बडी और छोटी मोमबत्तियाँ (या मोमबत्तियो का छोटा और बडा समूह) एक के बाद दूसरे, करीने से, सजाकर रख दी गयी हो, तो क्या उसे फैलता 'वेभ' कहेगे ? या दौडता 'कण' कहेगे ? अगर इस तरह का कोई सिद्धान्त वैज्ञानिको ने रखा होता, तो वह भी ठीक उतरता, चाहे प्रकाश 'कण' हुआ होता, अथवा वेभ। 'ईथर'वाले सिद्धान्त मे गडबडी यह हो गयी कि वैज्ञानिको ने पहले अपेक्षित 'गुणो' को आरोपित किया, तब उन तथाकथित गुणो के वाहक 'ईथर' को गोहारा, खोज निकाला। बेटा ने बाप को जन्म दिया (हो जैसे) ! क्या जरूरी था कि "ईथर' मे वही गुण हो, जो वैज्ञानिको द्वारा पूर्वनिर्धारित हो चुके थे। पुरानी दकियानूसी दलीलो को माना गया होता, तो न न्यूटन होते, न आइन्स्टाइन। हो सकता है कि 'ईथर' ऐसी परिस्थितियो से निर्मित हो, जहाँ अतीव सूक्ष्म 'कण' अतीव सूक्ष्म 'लहर' मे बदलते रहते हो और अतीव सूक्ष्म 'लहर' अतीव सूक्ष्म कणो मे 'विभाजित' होते रहते हो। कि जैसे प्वायण्ट्स (बिन्दु) से लाइन (लकीर) बन जाती है और लकीर प्वायण्ट्स की फकीरी चोला ओढ लेती है। कही कुछ भी नही है। और, जहाँ कुछ भी नही है, वही सब कुछ है। तभी तो परमात्मा निर्गुण भी है और सगुण भी।

स्टेशन-प्लैटफॉर्म पर चलती हुई ट्रेन से देखा हुआ प्लैटफॉर्म अगर खाली-खाली है, तो छोटा दीखता है, अगर स्तम्भो से या अन्य वस्तुओ से भरा-पूरा है, तो बडा दीख जाता है। कण्टिन्युअस लाइट से अनुभूत वस्तु-स्थिति क्या वैसी ही होगी, जैसी क्वाण्टाइज्ड (इण्टरप्टेड) लाइट से। 'देखी गयी', 'अनुभूत' मनुष्य की आँख (रेटिना, 'ऑप्टिक नर्भ" के माध्यम) से नही, बल्कि उस ऊर्जा के सहारे (तु०, गामा रेंज) जो उसे अनालाइज (विश्लेषण, पहचान) कर पा सके। (तु०, सिनेमा-स्क्रीन

के दृश्य, प्रोजेक्टर कैमरा की धीमी और द्रुत-चाल) (तु० विचार-तरग) (तु० ग्रैविटेशनल फोर्स) । दो समय-सारणियो को, दो जीवन-यात्राओ को, दो विचार-तरगो को द्रुत गति से भागने दीजिये । उसका आपसी अनुभव क्या होगा ? (तु० साथ चलती दो रेलगाडियाँ और स्टेशन का एक प्लैटफॉर्म) और 'समय' और 'प्रकाश' । न घडी समय है, न कलेण्डर, न सूर्य, न चन्द्रमा । 'प्रकाश'—वह कहाँ है ? कैसे जनमता है ? इन्द्रधनुष को देखकर क्या यह नही सोचा जाता कि ब्रह्माण्ड मे 'प्रकाश' की दूसरी रूपरेखा भी हो सकती है ? कि 'प्रकाश' के 'गुण' और 'परिवेश' बदल सकते है ? (तु० रमण-एफेक्ट, लैसर-रे इत्यादि) ।

भगवान् के खोजनेवाले भी ऐसी ही गलती करते है । पहले 'गुण' आरोपित करते है—मनगढन्त, मनमाना, फिर 'पारखी' बनते है । तब, अज्ञान का दीप लिये भगवान् को ढूँढने निकलते है । अन्धकार मे, कुरास्ते, दिशाभ्रम से मोहित । न इनको भगवान् मिलता है, न उनको 'ईथर' । सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द, उन्हे कहाँ, कैसे, कौन खोजे ? जिसने 'जानवर' न देखे हो कभी, उसे चिडियाखाना (जू) मे कौन 'जानवर' मिलेगा । कही दाढीवाले द्वारपाल को उसने गौरिला समझ लिया तो ! तब क्या होगा !

मेरे ड्रॉइग-रूम की पूर्वी खिडकी से कई किस्म के ऑरकिड्स और किस्म-किस्म की नागफणी (सीज) दिखाई पडते थे । दक्षिण वातायन मानो (जैसे) गाँव मे खुला करता हो । हाते की चहारदीवारी से सटी ताल-तरुओ की टेढी-मेढी पक्तियाँ थी । ताड के अलावा खजूर के पेड भी थे । गुल-चीन की युगल-बन्दिश थी । सेमर का वृक्ष था । केवल रात्रि मे ही फूलने का जिसने व्रत ले रखा था, वैसी हठी नागफणी की लता भी थी ।

सुग्गा, मैना, चील और गीध । लगूर और बन्दर । नेवला और गिलहरी । ऊदबिलाव और बिल्ली । उल्लू । बुलबुल, कोयल और पपीहरा । कबूतर और पण्डुक ।

सभी ने पेडो को अपना मोटेल (धर्मशाला, पडाव) और अड्डा बना रखा था ।

पेडो की जडो (सतही सोरो) के पास गोबरछत्ता (कुकुरमुत्ता) (खुम्भी, छतरी, खुखरी) (मशरूम) (एगेरिकस कैम्पेस्ट्रिस, सालिओटा बिसफोरा) (कवक जाति) के पेड उग आये थे, जिनके नीचे बैठकर बेग बतियाते थे ।

मोथा और दूब की कालीन पर गनगोआर टहलते थे । और, यत्र-तत्र जमीन पर चालियो (केचुआ, अर्थ-वर्म) की मृण्मय चिमनियाँ खडी हो रही थी ।

गिलोय (टीनोस्पोरा कार्डीफोलिआ) (गुरुच) नीम पर लटकती थी ।

शाम का समय था ।

बरसात का मौसम ।

बादल की एक पतली पर्त्त बिछ गयी-सी थी । जिससे (जिसके कारण) आकाश और जमीन दोनो एक-से मटमैले दीखते थे ।

हलकी फुहार (फुही, झींसी) पडने लगी थी। सहमी-सी हवा चलने लगी थी, पाँव दबाकर। हहरी-सी।

मानकी और नेमुलाल मिलने आये थे। समर, मेधावी, विवेक, अरविन्द, पुष्कल, पुष्पहास, रामकृष्ण, गुग्गी, फिरदौसी, शशिशेखर और बॉबी बैठे थे। बॉबी तीन वर्ष का है और अपने पिता एस० के० झा के साथ आया था। कुछेक विदेह अभ्यागत मेरे विचारो मे आ विराजे। गुप्ता डायबिटिक थे। पाण्डेय का रक्तचाप बढा हुआ था। ओझा सिर्फ बिअर पीते थे। राणा सही-सलामत थे। महारानी साहिवा श्रीमती विजयराजलक्ष्मी आने का वादा कर चली गयी। उषा, प्रतिभा, विक्रमादित्य, भी आ गये। राजलक्ष्मी, सघमित्रा, स्वस्ति भी। सुशील भी। मित्र-मण्डली अनेक विषयो पर बातचीत करती रही थी। खिडकियो के बाहर प्रकाश घटना चला गया था।

बायो प्लैज्म PSI [(क) ई० एस० पी०, (ख) साइकोकाइनेसिस (पीके)]।

बॉबी सरककर मेरे पास आया और मेरे ठेहुनो से लगकर खडा हो गया।

उसने पूछा—'अक्ल ! अक्ल !! ऊ कौन है ? ऊ कौन है, अक्ल !'

मै डी० एन० राय से 'इमोशन्स (भाव-आवेश-आवेग)' के मसले पर उलझा हुआ था।

उत्तर नही पाकर बॉबी मेरे ठेहुनो के बीच मे चला आया और मेरी ठुड्ढी हिलाते हुए बोला—'अक्ल ! अक्ल !! ऊ कौन जानवर है, अक्ल ? ऊ कौन जानवर है ?'

मै मुखातिब्र तो हुआ, लेकिन जवाब न जानते रहने के कारण बॉबी से पूछा—'बॉबी ! बेटे ! किस जानवर के बारे मे पूछते हो ?' और मैने इधर-उधर खिडकी के आर-पार चतुर्दिक् देखा। अँधियाला होने चला था, बेशक। फिर भी बाहर अभी धूमिल प्रकाश ब्याप रहा था। कही कोई जानवर नजर नही आया। कौतूहल सभी नयनो का काजल बन गया।

बॉबी ने खिडकी की ओर इशारा करते हुए कहा—'वही, वही अक्ल ! जो अभी दोनो पेडो पर से चूँ-चूँ-चूँ करता हुआ नीचे (उतरा) (उतरा था) उतर गया ?'

मै सोचने लगा। मुकुन्द ओसारे पर से टेवने गये। पूछते गये—'पाराफिजिक्स क्या है ?

बॉबी धीरज न धर सका (अधीर होकर बोला)—'अक्ल ! ऊ कौन जानवर था ? अक्ल ?'

तबतक मै पहेली बूझ गया था। मैंने बाबी को अपनी गोद मे लेते हुए कहा—'बेटा ! वह पासी था।' 'नशा (ताडी) पिलाने वाला।'

नन्हा बॉबी 'चर्र-चर्र-चर्र' नही जानता था, उसके शब्द-भाण्डार मे जो सबसे मौजं ध्वनि-अनुकृत (ध्वनात्मक) शब्द उपलब्ध थे, बच्चे ने उसी का प्रयोग किया था।

बॉबी ने सवालो की झडी लगा दी। मैं ने जवाबो का रेड-कार्पेट बिछा दिया।

जरा सरक जाइयेगा, रास्ता छोडकर बैठिये। भगवान् को सगुण मानने-जानने-वाले भक्त निर्गुण परमात्मा को खोजने न जाने किधर से निकलकर कहाँ जा रहे है।

जग नरगिस और गुलसब्बो के गमले बचाइयेगा, वैज्ञानिक अन्धकार टटोल रहे है।

जरा कोने मे एक पीढा डाल दीजिये। दार्शनिकजी लडखडाते आ रहे है। बैठाइये, बैठाइये, नही तो वह कुछ सोचने लगेगे।

विद्वान् शास्त्री को देखकर टीका भूँकने लगा। अरे! जरा रोकिये भी तो उसे, कही काट ले तो क्या होगा! आफत मच जायगी। ज्ञान की टोह मे भटकते उस बेचारे पर रहम तरस खाइये। भई! कम-से-कम अपना कुत्ता तो बाँधिये। झोली तो खोलिये। शिकजी तो पिलाइये। देखते नही, वे कैसे बीमार, दुबले, निष्प्राण नजर आ रहे हैं।

'ईथर' ऊर्जाओ का स्रोत है, सर्वव्यापी परमात्मा के असख्य आयामो मे केवल एक आयाम। इसी एक 'ईथर' से ऊर्जाये उगती है और इसी मे वे विलीन हो जाती हैं। लघुतम लहरे बढती-फैलती बृहत्तम लहरे बन जाती है और बृहत्तम लहरे घटती-सिमटती लघुतम हो जाती है। (तु० पानी की सतह पर फेकी गई ककडी से उत्पन्न लहरे नदी के बीच से बढती हुई किनारे तक पहुँच जाती है।) निर्गुण 'ईथर' सगुण हो जाता है। फ्रिक्वेन्सी (और वेभ-लेग्थ्स) के आधार पर उनके 'गुण' स्वत व्यक्त होते रहते है। [(तु० डूबते हुए सूरज का क्रमश पीला, नारगी और लाल-वर्ण का दिखाई पडना। अग्नि (आग) से प्रकाश और ऊष्मा का प्रसारण। ध्वनि-तरगो का विचारधारा (मे परिवर्त्तन) पर प्रभाव।] (सुतरा, आदमी सोचता है दृश्य मे, ध्वनि मे, इन्द्रियानुभूति मे) (सजग जागता रहा तब भी, स्वप्न देखा तब भी, सो गया तब भी) एलेक्ट्रो-मैगनेटिक—विद्युत्-चुम्बकीय तरगो के रूपान्तर। मैगनेटिक फील्ड, तथा ग्रेभिटेशनल फील्ड्स ऑव दि स्पेस, तथा प्लैनेट्स, बॉडीज, इन मोशन। मोशन⇒ग्रेभिटेशनल-फिल्ड⇒'समय'

मोशन (गति)⇒ 'स्थान'

गति⇒स्थान-समय

खेद है कि मै गणितज्ञ नही हूँ। आशान्वित हूँ कि कही कभी कोई हिसाबी बन्दा भगवान् को किसी फार्मूला (इक्वेशन) की चुनौटी मे बन्द कर आराम से खैनी लगा (खा) सकेगा।

अकस्मात् बिजली फेल हो जाने से विद्यापति-नगर रेलवे-स्टेशन अन्धकार मे डूब गया। रात मे ग्यारह बजे।

आकाश बादलो से आच्छन्न था।

ट्रेन रुकी। यात्रियो मे खलबली मची। लोग उतरे, चढे। सीटी बजी। गाडी ससरी, चली, भागी।

ल-२ बडी लाइन है (ब्रोड-गेज)। ल-१ और ल-३ छोटी लाइन (मीटर-गेज)। ल-२ पर ट्रेन ट-२ जा रही है, जिस पर प्रोफेसर प-२ (पटु) बैठे है। ल-१ की ट्रेन ट-१ पर प-१ (पवन) ऊँघ रहे है, तथा ल-३ की ट्रेन ट-३ पर प-३ (पथरी) कुली से झगड गई है।

ट-२ (टीटू) पूरब की ओर जायगी। ट-१ (टीवन) भी पूरब की ओर जा रही है। तथा ट-३ (टीथरी) को पश्चिम की ओर जाना था, याने विपरीत दिशा मे। उसके आने का अभी समय नही हुआ है, कुछ देर है, सिगनल नही गिरा है।

पवन को एक धक्का जैसा महसूस हुआ, नीद उचट गयी, ऑखे खुली, झॉककर देखा तो पता चला कि अभी तो टीटू ही खुली है। उनकी अपनी टीवन अब भी सुस्ता ही रही है। तौबा! उन्होने कहा। यह भी कोई बात है! आखिर देर की भी कोई हद्द होती है! बगल के बर्थ पर बैठे सहयात्री ने कहा—मियॉ! आप भी क्या खूब औंधी खोपडी के आदमी है, प्रोफेसर! जरा घूम कर स्टेशन की ओर तो देखिये, बेचारी टीटू को घूरते ही रहियेगा! टीटू तो खडी है। खुली है अपनी टीवन और आपको उल्टा ही सूझ रहा है! नीद तो तोडिये! पीनक मे हैं क्या!

पवन कुछ झेप गये। सहयात्री की बात सही निकली।

अभी टीवन कुछ ही दूर गयी थी कि टीटू की सीटी सुनायी दी और जोर पकडने लगी, मानो पवन का पीछा कर रही हो, प्रणमन के लिये। पवन ने खिडकी से झॉक कर देखा। धत् तेरे की? वह भर्त्सना की आवाज मे झुॅझलाकर बोले। आजकल के विद्यार्थी भी क्या मुसीबत बला है? अभी गाडी (टीवन) यार्ड से निकल ही पायी है कि किसी ने चैन (चेन) खीच ली। अरे अनेरुआ-टुकुरुआ! उन्होने अपने थर्ड-क्लासी कम्पाउण्डर को झकझोरते हुए कहा। जनाब को एक सेकेण्ड-भर का मौका मिलना चाहिये। बस सो ही जाते है! रुके कि खडे हुए! खडे हुए कि बैठ गये! बैठे कि लेटे! लेटे कि सो गये! सोये कि मर गये! कम्पाउण्डर अनेरुआ लडखडाते हुए उठ खडे हुए। थर्ड क्लास का टिकट लेकर फर्स्ट क्लास मे यात्रा कर रहे थे। उन्होने समझा कि कोई टी० टी० ई० आ धमका। टीवन मे आश्वस्त होकर उनकी उखडी हुई सॉस ठिकाने लगी, तो आज्ञा की याचना की। टीवन ने डॉट कर कहा—मुहँ क्या देख रहे है। धकियाते हुए हुक्म दिया। उतरिये गाडी से, देखिये तो किस साले ने चैन खीची है। कम्पाउण्डर टुकुरुआ उर्फ अनेरुआ दरवाजे की ओर लपके ही थे कि बगल के बर्थ पर वाले मौलाना ने झपटकर उन्हे रोका। प्रोफेसर साहब! वह घबराकर बोले। तबीयत तो ठीक है न? चलती गाडी से कम्पाउण्डर साहब उतरेंगे? क्या कमबख्ती का आलम है? देखते नही, ट्रेन (टीवन) मोशन मे है? पवन चकराये। खिडकी से झाककर फिर देखा। टीटू चली आ रही थी। टीवन खडी थी। मौलाना ने सुझाया। प्रोफेसर साहब! जरा मेरी खिडकी से भी देखिये। हॉ, ठाक ही तो। टीवन भी चली जा रही थी। खडी कहॉ थी। प्रो० पवन अपना ललाट रगडकर, ऑखे मीचकर-खोलकर, टीटू को देखते रहे। टीटू बगल वाली ब्रोड-गेज पटरी पर आ धमकी। प्रो० पवन ने जरा झेपते हुए, मौलाना पर फिर से रौब गालिब करने के लिये, कहा। जब से सरकार ने कोयला-उद्योग को नेशनलाइज याने नजरबन्द किया है, तब से देखिये न कोयले की क्वालिटी कैसी खराब

हो गयी है। पहले जो टीटू पूरी स्पीड मे चला करती थी, अब कितनी आहिस्ता रफ्तार मे चल रही है ? जी हाँ, मौलाना ने करवट बदलते हुए कहा। सो जाइये प्रोफेसर साहब ! आप भी सो जाइये। कल सबेरे फिर बाते होगी। प्रो० पवन कुछ लजा गये। मौलाना के सामने मिट्टी पलीद न हो। कोई मसाला ढूँढने लगे। तबतक टीटू अपनी पूरी शान मे बगलगीर हो चुकी थी। प्रो० पवन उसे एकटक देख रहे थे। अरे ? यह क्या ? उन्होने कम्पाउण्डर अनेरुआ-टुकुरुआ की ईमानदारी और अक्ल पर भरोसा करते हुए धीरे-से पूछा। कम्पाउण्डर साहब ! अपनी टीवन पर ड्राइवर ने बैक-गेयर लगा दिया क्या ? स्टेशन पर गार्ड साहब कुछ जरूरी माल भूल आये थे क्या ? कम्पाउण्डर साहब ने इधर-उधर देखकर कहा—जी सर ! अपनी टीवन का मौलाना-वाला आधा-हिस्सा तो ठीक रास्ते पर आगे चल रहा है, लेकिन हमलोगो वाला आधा-हिस्सा लौटा जा रहा है, पीछे की ओर। गदहा ! प्रो० पवन ने डॉटा। आपके मग्ज मे भूस्सा भरा हुआ है, कम्पाउण्डर साहब ! फिर एक-दो लम्बी साँस लेकर, चादर तानकर प्रो० पवन लेटते हुए फुसफुसाये। कोई दूसरी बात है। उन्होने अपनी देह पर बँधे कुल ताबीजो को एक-एक कर छुआ-टटोला, ग्रह-शान्तिदायिनी नवरत्नो से जडी अँगूठियो को गोहारा। और, फुफकारते-कराहते-दहाडते-फोफ काटते सो गये।

पतले कान थे मौलाना के। खर्राटे (फोफ) की शोर (शोरोगुल)-व-गुल मे खीझे वे भनभनाते, कोसते, करवटे बदलते, उठते-बैठते रहे।

अभी मुश्किल से आधे घण्टे गुजरे होगे कि दूर से किसी गाडी (ट्रेन) के आगमन की सूचना देते हुए सीटी की आवाज सुनायी दी। ल-३ पर टीथरी आ रही थी, वह टीवन की विपरीत दिशा, मे याने पश्चिम की ओर जा रही थी। सीटी की आवाज पल-पल पर तीक्ष्णतर (तेज) होती गयी और प्रो० पवन के बिछावन पर उठकर बैठते-बैठते मानो वह आवाज उनके कानो मे बर्छी और तीर की तरह घुस गयी और ऐसा प्रतीत हुआ कि टीथरी छाती पर चढ बैठेगी। जबतक प्रो० पवन अपना इजारबन्द ठीक करे, तबतक वह बे-रहम टीथरी उनके पार्श्व मे आ पहुँची। बाप-रे ! क्या तूफानी चाल थी उसकी !! सडाक् से आयी। दनाक् से निकल गयी। आनन-फानन मे जैसे रुतबा बिगाड गयी। दिल दहला गयी। बम मार गयी। प्रो० पवन का माथा चकरा गया। ट्रेन की छाया-मूर्त्ति जैसे बन्दूक की गोली की तरह छूटती चली गयी हो, जैसे गाडी का थरथराता भूत रॉकेट की तरह झपटता चला गया हो, कि जैसे राकसो से खचा-खचभरी हवाई गाडी सर-पर-पैर-धरे भाग गयी हो।

मौलाना ! जरा उठियेगा तो। आपने भी देखा ? पता नही, क्या हो रहा है ? मेरा माथा चकरा रहा है कि कोई तिलस्मी, कोई जिन्न-जिन्नात, भूत-प्रेत । सहानुभूति का स्वाँग भरते हुए मौलाना ने मुँह पर रूमाल डालकर पूछा— मियाँ खुशबाश ! क्या बात है ? प्रोफेसर साहब ! आप इत्ता परेशाँ क्यो नजर आ रहे है !! मौलाना ! प्रो० पवन ने इजहार किया। यह मीटर-गेज की टीथरी बडी लाइन पर

कैसे गयी ? क्या तो यह पैसेंजर ट्रेन हुआ करती थी, अब एक्सप्रेस या फ्रेक-ट्रेन कैसे हो गयी ? क्या आपने देखा नही, कितनी तेज रफ्तार थी उसकी। गाडी (की कोई आकृति, शक्ल) दिखायी पडी ? एक तूफानी झोका चीखता-चिल्लाता रेल की पटरियो को पीसता-रौदता हवा को चीरता-फाडता-टकराता-भोकता चला गया। आर-पार हो गया। जैसे बिजली चमककर गुम-चुप हो गयी। जैसे आइ० सी० एम० (इण्टर-कौण्टिनेण्टल-मिसाइल) पास हुआ हो। मेरी तो गरदन ऐंठ गयी, कमर टूट गयी। प्रो० पवन को हॉफते देखकर मौलाना ने कृत्रिम प्यार से कहा, आप अजीब मालखुलिया के शिकार बन गये है ! सदहाय आफरी ! चेखूब ! चेखूब !! कुछ सोचकर मौलाना ने राय दी, आप अब सो जाते, तो अच्छा होता। मेरा मतलब है आपकी सेहत के लिये। याने मुफीद होता। प्रोफेसर को यह बात जँची-सी। वह कुछ क्षणो तक अपने-आप मे (अपन्याप) बुदबुदाते रहे। [स्वगत। आत्मेनात्मात्। उनकोनसे (उनका-उनसे)। स्वोक्ति। ओठो-ही-ओठ मे बरबराते रहे। स्वात् (तु० बलात्, जैसे गजात्)। स्वेन-स्वात्। आत्मप्रलाप। स्वय-सलाप (तु० स्वाध्याय)। ओष्ठ के ओट मे फुसफुसाना। निज की निज से बतियाना। स्वत सम्भाषण। लब मे लबलबाना। थोडी देर के लिये उनके दोनो लब आपसी गुफ्तगू मे मशगूल नजर आये। स्ववार्त्ता से बतियाना। स्वानुगत सम्भाषण। स्वकवलित। स्वमना। स्वसात्। स्वमनसा, स्वमनसि, स्वयमेव। आत्मलीन। आत्मभुक्त। आत्मोत्थित। मुखर मौन। मौन विवृति।]

फिर अँगडाई लेकर अपने बर्थ के नीचे (अन्दर) झाँकने की अर्द्ध-चेष्टा करते हुए प्रो० पवन ने डॉटा। रे स्-स्-स्-स्-स्-स्-स्-स्-स्-स्-स्-स्-सा ला ! उठता है कि मारूँ ऐंडी, लगाऊँ जूते ! दिन-भर छोकडेबाजी (गुण्डागिरी) (छेडछाड-छेडखानी) करेगा और रात-भर सोता रहेगा। निकल बाहर, खच्चड-बदमाश ! दहाड सुनकर सिटपिटाया लॅगटुआ (उर्फ बॅगटुआ) बकरी-सा मेमियाता निकला। जैसे अकाल के बिल से पलेग (प्लेग) का मूस बहिराया (आया) हो। मालिक ! आपे न कहा था कि बरथ (बर्थ) के नीचे छिपकर रहने को लिये। उल्लू का पट्ठा ! ईमान का बट्टा !! जब कहा, तब कहा था। अभी तुम्हारा बाप टी० टी० ई० आया हुआ है, जो कि चोर की तरह लुकाया चलता (हुआ) है। चल ! निमकहराम ! माथे मे गुलरोगन मालिश कर !! देख, हाथ धोकर लगाना। ऐ कम्पाउण्डर साहब, कोदन परसाद ! चलिये, पैर चीपिये। वहाँ बैठे मक्खी क्या मार रहे है। चलिये, यहाँ आइये। लॅगटुआ के ऐसा डरपोक बनने से काम नही होगा (काम नही चलेगा)। कुछ-कभी फुरती दिखलाइये। आइये फौरन ड्यूटी पर हाजिर होइये। वर्ना (नही तो) जेल चले जाइयेगा। तेल निकला जायगा। पैर चीपिये, ठीक से। मौलाना ! आप भी अँगुरी (उँगली) तोडवाइयेगा ?

और, प्रोफेसर आहिस्ता-आहिस्ता सोते-सोते सो गये।

स्टेशन पास आने लगा था। ट्रेन कुछ धीरे चलने लगी। मौलाना उठे। बाथरूम से लौटे। तबतक प्रोफेसर नीद मे बडबडा रहे थे। मौलाना की आर्त्त

पुकार पर आँखे मलते हुए उठकर घबराये। चिहुँककर पूछा—स्टेशन है क्या ? मौलाना ने सूचित किया, जी ? नही। और पूछा—क्यो घबराये हुए है ! तबीयत जलील है ? सेहत अलील है ? प्रोफेसर पवन ने झेंपते हुए कहा—मैं एक भयानक सपना देख रहा था। मौलाना ! पता नही, क्या होने (बीतने) (गुजरने) वाला है !! आप आइन्स्टाइन को तो जरूर जानते होगे न (मौलाना) ? वही 'रिलेटिविटी' वाले ? नही। मौलाना 'ही' पर जोर देकर बोले। वह कौन थे ? वही, प्रोफेसर बोले, जो मेरे सपने मे अभी-अभी बिलख-बिलखकर छाती पीट-पीटकर बेजार रो रहे थे। मौलाना की त्योरियाँ चढी-उतरी। अधिकार (दावा) के साथ कहा। मैंने भी एक अजीबोगरीब सपना देखा है, जनाब ! वह क्या ? प्रोफेसर उत्सुक थे। यही कि युनिवर्सिटी के वाइस-चासलर साहब लाल-लाल नजरो से आपको घूर (देख) रहे थे और आप पानी-पानी हो रहे थे।

प्रोफेसर दिनाय को लहूलुहान कर शान्त हो चुके थे।

गाडी रुक, रुकी। स्टेशन आ गया था। लँगटुआ पीछेवाले फाटक से कूद चुका था। कण्पाउण्डर साहब सामान ठीक-ठाक करने लगे।

प्लैटफॉर्म पर स्थानीय स्कूल के मास्टर विभूति शृगारी, बेल-बॉटम, फेल्ट-हैट, साइड-बर्न, हिप्पी-हेयर, पाउडर तथा रूज, से सुसज्जित, स्वागत मे माला (गजरा, भक्ति-कुसुम का हार) लिये खडे थे। —प्रोफेसर उनकी ओर ओर वह प्रोफेसर की ओर देख-मुस्करा-मुस्करा-देख रहे थे। चार आँखे कुछ आपस मे कहने-समझने लगी। खातिरदार के कण्ठ (टेटुआ) से झूलते नेपाली ट्राजिस्टर (रेडियो) पर नजर फिसल गयी।

कम्पार्टमेण्ट मे कुली घुस आये। आवभगत। हर्ष ! हर्ष !! बलिहारी ! जय ! जय !!

जाहिर है कि प्रोफेसर उस तिलस्मी रात के वाकयातो को भूल न सके। मीटिग से फारिक हुई, तो सिस्टर (नर्स) बोली। सर ! उस रात को तो टीथरी मे मैं भी ट्रैवल (यात्रा) कर रही थी। लेकिन जानते है, सर ! मैने क्या देखा ? (आपने) क्या देखा, सिस्टर ? आपने ? सर ! मैने देखा कि टीथरी आपको टीवन के बाजू मे आकर खडी हो गयी और आपका ही टीवन था, जो भाग निकला। जैसे पख लगाकर साँस उड गयी हो। आँख बचाकर तीर छूटा (छूट गया) हो। मेरा तो दिल धडधडाने लगा, सर ! उफ !!! उतनी रात को ! ऐसी बेसब्री, इतनी जल्दबाजी ! जैसे कुबेर का धन लुटा रहा हो ! आग बुझाने के लिये 'फायर-ब्रिगेड' लपका हो ! जब से कोल-इण्डस्ट्री नेशनलाइज हुई है न, सर, तब से ट्रेनो के पख लग गये है। हूँ ! प्रोफेसर ने हुँकारा। और, प्रोफेसर सोचने लगे। तब प्रोफेसर पीटू (पटु) मीटिंग-कक्ष से दर्द की तरह उठे और उठकर चल दिये। जैसे चल बसने की तैयारी करनी हो और गाडी खुलने, छूटने का समय हो गया हो। पीछे-पीछे रेजीटेण्ड-फीजिशियन टहलते चले जा रहे थे। युधिष्ठिर के साथी की भाँति। कॉरीडर मे आये, तो रेजीटेण्ड ने धीरे से पूछा। सर ! प्रोफेसर पवन साहब जो बयान कर रहे थे। सिस्टर पथरी जो कह रही थी। मेरी तो समझ मे कोई बात नही आयी ! आप, सर ! क्या . ?

रोग के तसखीस के बारे मे पूछते हो ? हाँ, सर ! यूनिट के रेजिडेण्ट ने अडियल प्रोफेसर पीटू (बनाम 'पट्टु') से कहा और उत्तर की प्रतीक्षा मे अपने बॉस की ओर देखते रहे। प्रो० पीटू (बनाम 'पट्टु') ने निदान के बारे मे कुछ सोचकर ही कहा होगा कि सम्भवत प्रोफेसर पवन ने कुछ खा-पी लिया होगा। वह स्पेशलिस्ट प्रोफेसर गिने जाते थे। मान्य और लोकप्रिय। निदान को अनुमान तक स्ट्रेच कर, तान कर, लथेड कर, लमरा कर, 'फाइनल' किया—मालूम पडता है चीफ ने वेजीड्रीन की टिकिया खा ली थी। तब रेजिडेण्ट बोला—सर ! आइन्स्टाइन की रिलेटिविटी के कारण भी तो ऐसा हो सकता है ? वैज्ञानिक ऐसा मन्त्र पढाते है कि आदमी झझट मे पड जाता है। सोचिये, तो सर मे बल पड जाता है, दिमाग दुखने लगता है। प्रोफेसर की नजर रेजिडेण्ट के गजे (खल्वाट) मस्तक पर जा अटकी। खटकी। सर खुजलाते हुए मरियल प्रोफेसर पीटू (बनाम 'पट्टु') ने हिचकती-कतराती ध्वनि (आवाज) मे पूछा—सो कैसे ? और फिर धीमी जुबान मे स्वीकारा—हाँ। डिफरेन्शियल डायगनोसिस (सापेक्ष, विभेदी-निदान) मे यह भी पॉसिब्ल (सम्भव) है, वह भी।

और फिर, अन्य मसलो मे उलझे दोनो डॉक्टर वार्ड मे 'राउण्ड' देने चले गये।

सुस्ती मे सरकती, दौरी मे डेग धरती, गज-गामिनी, मानिनी, सिस्टर पथरी लॉन के एक छोर पर अकस्मात् लुढक गयी। लोग दौड पडे।

इस ससार मे सभी कुछ (१) सापेक्ष है, सभी कुछ (२) प्रति-बद्ध (अनुकूलित) है। यहाँ, इस दुनिया मे, कुछ भी निरुपाधित, अप्रतिबद्ध निरपेक्ष, 'ऍब्सॉल्यूट' नही है। ऐसी स्थिति-परिस्थिति-परिवेश मे जीवन-यापन के लिये कोई 'स्टैण्डर्ड' (माप-दण्ड) (हीरो, लीडर, पथप्रदर्शक, अनुकरणीय), कोई 'रेफरेन्स-प्वायण्ट' (सर्वमान्य सन्दर्भ) कोई 'कॉन्सटैण्ट' (अटल अपरिवर्त्तनीय स्थिति), कोई आधार-धुरी (अनेकता की एकता की पृष्ठभूमि-नीव) आवश्यक-अनिवार्य है। चाहे शमा किसी भी रग मे जले, चिराग चाहिये। चाहे नाव कही भी जा रही हो, धारा चाहिये। बिखरते हुए समाज को अनुराग चाहिये। टूटती हुई जिन्दगी को वरदान चाहिये। मिटती हुई परम्पराओ को कुक्षि चाहिये। भविष्य को अतीत का आधार चाहिये। मृत्यु को अमरता चाहिये। प्राण को परिवेश चाहिये। गति को टेक चाहिये। विज्ञान को अध्यात्म चाहिये। नश्वरता को शाश्वतता चाहिये। हैवान-शैतान को भगवान् चाहिये।

परमात्मा शाश्वत, सर्वव्यापी, शुद्ध, सत्य, सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी, सदैव, सक्षम, सुनिश्चित, होने के सबब से (कारण), सगुण और निर्गुण होने के साथ (वजह से) (कारण), सबका, समस्त दिक्काल मे, सर्वदा, अपना और अपने मे है। जीवन-यापन मे, जिन्दगी की यात्रा मे, वही एकमात्र 'स्टैण्डर्ड' (आदर्श मानदण्ड) और रेफरेन्स-प्वायण्ट (प्रामाणिक सकेतात्मक-निर्देशात्मक बिन्दु) बनने की योग्यता (और क्षमता) से युक्त और विभूषित है। वह पूर्णत ऍब्सॉल्यूट (परम निरपेक्ष) (स्वयम्भूत और स्वत -

चिन्त्य, शुद्ध-सत्य) और अनकण्डिशण्ड (निरपेक्ष, निरुपाधित, अप्रतिबद्ध) सच्चिदानन्द है ।

परमात्मा को इस रूप मे भी, या इस मतलब (प्रयोजन) से भी, स्वीकारा और अगीकारा जा सकता है, और ऐसी आवश्यकता भी है ।

मनुष्य के अन्तरतम मे वही एक सजग प्रेम और करुणा की लौ बला करती है, वही एक स्नेह की सतत ज्योति जगती (जगा) रहती (करती) है, वही एक बल पौरुष-क्षमता-निर्भयता-निश्चिन्तता-सुरक्षा की धारा अनवरत बहती (बहा) रहती (करती) है।

वही एक समय-सन्दर्भ है । वही एक दीप-स्तम्भ ।

परमात्मा का यह स्वरूप विराट् दिक्काल मे प्रत्येक मानव का एकमात्र विश्वस्त सहारा है ।

असीम अन्तराल मे एकाकी ध्रुवतारा ।

अनिश्चित परिवर्त्तनो के बीच अकेली निश्चिति ।

एक कसौटी भी, कीमिया भी । कौस्तुभ भी । 'कॉन्स्टैण्ट' भी ।

पारस-प्रस्तर भी ।

जीवन भी, यात्रा भी, यातायात भी ।

सन्तति भी, सातत्य भी ।

पिण्ड भी, ब्रह्माण्ड भी ।

अपना भी, पराया भी । अपनानेवाला भी । अपनाया भी ।

करुणासागर भी ।

प्रेमस्वरूप भी ।

अखण्ड आनन्द भी ।

मानक भी । विश्वस्त भी । सुलभ भी । दिल मे भी । दिमाग मे भी ।

"केन्द्र और परिधि हम,—
अलग-अलग अक्षो पर खिचे,
किन्तु किरणो के तारो से बँधे है,—
(प्राण-सौरमण्डल मे सूर्य-धरा ।)
हम दोनो,—
किसी महा ज्योतिवर्ष-एकशीर्ष कम्पास-यन्त्र के
द्वैत चित्त आकाक्षा-कोणो की सापेक्ष अभिव्यक्तियाँ
कभी किसी दिक्कोण-दृष्टि से देखता हूँ—
तुम मेरी परिधि हो एकाध्वन,
मेरे केन्द्रत्व की धात्री ।

हम दोनो,—
अपनी अयेति पर , स्थितियाँ और जगत् है । प्राणो का दायरा अशेष, तुम मेरी
परिधि हो शाश्वत आश्लेष ।" (निशान्तकेतु, च० कि० पा०)

आदमी का दर्द, उसकी दुनिया और उसका देवता, सभी उसके अपने दिमाग मे है । अपनी जो कुटिया है, अकेली, अँधेरी, उसमे किसी को बुलाना पडता है ।

$E = mC^2$ इक्वेशन को एक दूसरे रूप मे भी देखा जा सकता है । E=Energy (ऊर्जा)='अव्यक्त' के 'व्यक्त' होने की परिस्थिति । 'व्यक्त' के दो पहलू है, इस ससार मे— (१) उसका रूप (=द्रव्यमान, वजन इत्यादि) । (२) उसकी क्रिया (गति, स्पीड, परिवर्त्तन) । याने 'ऊर्जा' अव्यक्त और व्यक्त के बीच की कडी है । 'ऊर्जा'=काम करने (मैटर) या कराने (रेडिएण्ट एनर्जी, ग्रैविटेशन फोर्स) (मेकैनिकल भी) की शक्ति । अधिकाधिक 'ऊर्जा' की उत्पत्ति के लिये अधिकाधिक मास (द्रव्य) को अधिकाधिक काम (गति, स्पीड इत्यादि) करना (कराना) पडेगा । एक (केवल) एटम के विस्फोट से भी कितनी तरह की कणिकाये, लहरियाँ, किस-किस गति-विधिवाली, उत्पन्न होती है ? 'अव्यक्त' का एक रूप है 'ऊर्जा', दूसरा 'द्रव्य', तीसरा 'गति', और इस तरह अन्यान्य-शक्ल-समूह है उसमे, उसके । 'यूनिफाइट फील्ड थ्योरी' शायद कभी ऐसे ही दलदल से फूट निकले, प्रतीक की तरह, सरसिज-सा ।

अगर U=अव्यक्त, M=व्यक्त, Sc=स्पीड ऑफ चेज (रफ्तारे परिवर्त्तन) (मोशन)
तब, शायद—$U = kM = k(a+b+c+d+e \quad +n)^n \times (Sc^{\circ-\infty})^2$
Or, $= K(a_1^{n1}s_1^{m1} + a_2^{n2}s_2^{m2} + a_3^{n3}s_3^{m3} + \quad n$ terms) where
n's→o to ∝ and m's→o to ∝ and a=appearance (form) and s=action (change, motion)

आज अब लोग पूछने लगे है कि ब्रह्माण्ड कही फाइनाइट (सीमित) तो नही, कि समाधि सिर्फ मस्तिष्कीय 'अलफा-वेभ्ज' [विद्युत्-लहर की एक किस्म जो ध्यान-(के) धारण के समय अभिज्ञात (प्रकट) और यन्त्रो के द्वारा अभिलेखित (रेकर्डेड) {'पूर्वीय' और नवागन्तुक 'प्राच्य'-योग-पद्धतियाँ} होता है] तो नही, कि अस्तिरववाद (एग्जिस्टेन्-शियलिज्म) [आत्मपरक (स्वानुभूतिमूलक, आत्मनिष्ठ) स्थिति, हम ('हम' नही 'मै') हूँ ('है' नही) इसी से मतलब है, यही मुख्य बात है, इसी कि फिक्र करनी है । 'मै 'ही द्रष्टा और दृश्य हूँ, क्योकि जो 'मै' देखता हूँ, वही (मेरा) दृश्य है । 'मै' ही व्यक्ति और व्यक्त (अपने को) हूँ, कर्त्ता और करण और कार्य और कारण हूँ (क्योकि 'मै' ही कर्म बनाता हूँ और उसका सम्पादन समाधान करता हूँ) । 'मै' ही सब्जेक्ट हूँ । 'मै' ही ऑब्जेक्ट (वस्तु) (विषय) (लक्ष्य, ध्येय) हूँ, क्योकि मेरे रहने (स्थिति) से ही 'वस्तु' है (की स्थिति है) । कोई भी वस्तु-स्थिति (सही अर्थ मे, अन्तत , वस्तुत) 'मेरी' स्थिति {'मै' अथवा अहम् का अस्तित्व (भाव)} ही है । दुनिया (तो दिखायी पडती है कि) 'है', दीन भी होगा (नही भी होगा) (होगा तो होगा) (होगा तो रहे) (होगा न होगा) । भोग तो है ही । ('योग' यदि हो भी, तो 'मै' ही का न होगा,

प्रधान पार्टी तो 'मैं' ही न रहेगा। बात खत्म हो गयी। 'योग' का रोग लगाने से क्या फायदा)। क्या यह सत्य नही कि 'मैं' हूँ तो 'आप' है, 'यह' है, तभी न 'वह' है। 'मैं' गया कि दुनिया गयी, सब कुछ बिलाया (लुप्त हुआ)। 'मैं' मरा कि दुनिया मर गयी, समाप्त हो गयी। 'मैं' ने आँखे मूँद ली, दृश्य को अन्धकार लील गया। गट्-से। गट्ट-से। गट्ट्-से। 'मैं' हूँ, बस इतनी-सी बात ठीक है। 'मुझ' से असम्बद्ध कुछ भी नही है। अगर कुछ है भी, तो वह 'है' नही। 'मैं' सृष्टि का केन्द्र हूँ। मृत्यु 'मुझे' कहाँ ले जायगी, 'मेरा' क्या होगा, इससे मेरे को कोई प्रयोजन नही। लौ बुझ गयी, तो गयी। रही ही नही, तो 'कहाँ' गयी, गयी कहाँ ? 'तेरा' (तुम-का) अजाम जो भी हो, दुनिया को जहाँ जाना हो जाय, मुझ-का क्या लेना-देना। 'मैं' हूँ। यह-वह एक है। 'मैं' मर जाऊँगा। (यह गया, गया, सो गया ही रह गया) (यह जग गया तो जग जगा ही जग गया) ('मैं' मृत्यु का वरण करूँगा। मृत्यु मर जायगी, अगर मरने को 'मैं' न हुआ) ('मैं' आलोक हूँ, आदित्य का प्रकाशक) ('मैं' ज्ञान हूँ, 'सर्वज्ञ' का उद्बोधक) ('मैं' स्रष्टा हूँ, सृष्टि का उर्वरक) ('मैं' जाग रहा हूँ) ('मैं' सो जाऊँगा), कि 'अस्तित्ववाद' ही ज्ञान और अनुभूति की पराकाष्ठा है, सत्य से साक्षात्कार है।

आदमी भगवान् और शैतान से निर्मित डमरू की दुबली कमर है। डम-डम-डम। डमक-डम डमक-डम डमक-डम। डम-डम-डम डिमक्-डिमक्। कान पात (लगा, दे) कर सुनो। खुर्दबीन से झाँको। मजा किरकिरा न हो जाय। रुख बदल न जाय। आगे से देखो, पीछे से देखो, ऊपर से देखो, नीचे से देखो, अगल से देखो, बगल से देखो।

इन्सानियत और हैवानियत का सामना है। तुम कन्दुक की तरह उछाल दिये गये हो। सँभलकर गिरना। फील्ड जग गीला है, तनिक सख्त भी।

अलबर्ट आइन्स्टाइन (सन् 1879-1955 ई०) ने पुरोहिती की। विज्ञान और दर्शन का ब्याह रचा दिया। वैज्ञानिक कहते थे कि उनकी दृष्टि पूर्णत ऑब्जेक्टिव (वस्तुपरक) है, और उनके द्वारा अनुभूत 'सत्य' खालिश, परिशुद्ध, विशुद्ध और अप्रतिबद्ध, अनपेक्ष (अनकण्डिशण्ड ऍब्सॉल्यूट)। दार्शनिक कहते थे कि उनके द्वारा अनुभूत 'तथ्य' मिथ्या-जैसा लगता है, कि जगत् असार और सृष्टि इन्द्रजाल (माया) है, कि सब कुछ सापेक्ष, 'सम्बद्ध' है, कि यह सारा परिवेश तुलनात्मक, आपेक्षिक, रिलेटिव है, कि यहाँ, इस धरती पर, इस विश्व मे, कुछ भी अनपेक्ष (ऍब्सॉल्यूट) नही है। दार्शनिको का कहना था कि इस माया के पीछे, पर्दे की ओट मे, ग्रीन-रूम मे जो सूत्रधार एक सत्ता है, वही एकमात्र अनपेक्ष (ऍब्सॉल्यूट) है। वैज्ञानिक ललकारते थे— दिखाओ, कहाँ है वह एकमात्र अनपेक्ष सत्ता। वे ताल ठोकते थे, हँसते थे, तिरस्कार करते थे, छाती उतान कर चलते थे। वे खम मारे देदीप्यमान थे। दार्शनिक गम खाये, मुरझाये, मुँह लटकाये, झुकते जा रहे थे। अध्यात्म की तो और भी हालत खराब थी। उसकी मिट्टी पलीद हो चुकी थी, और वह मैदान छोड चुका था, किनारे

कतराया वह घास कुतर रहा था, माटी चाट रहा था। मुँह की खाकर माथा गाडे गर्तिया रहा था। मुकुर मे टुकुर-टुकुर कुकुर बना हुआ बैठा था।

परमात्मा पत्ता दाबे (रिनीग) (बैठा) था, चुटकियाँ ले रहा था। राज (रहस्य) की कली खिली नही थी। मुट्ठी खुली नही थी।

गमगीन प्रह्लाद कुछ कर नही पा रहा था। प्रार्थना सुनी-अनसुनी हो रही थी। स्तम्भ (खम्भा) दरका था, लेकिन नृ-सिह (नरहरि) का अवतार अभी हुआ नही था।

म्लेच्छनिवहनिधने
कलयसि करवालम्।
धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृतकल्किशरीर।
जय जगदीश हरे॥

आइन्स्टाइन ने कहा कि 'भगवान् मिस्टीरियस (रहस्यमय) हो सकता है, वह मैलीशस (विद्वेषपूर्ण) नही है।' 'भगवान् जूआ (द्यूत) नही खेलता'। वह जुआडी नही है। 'गॉड डज नॉट प्ले डाइस।' 'साइन्स विदाउट रीलिजन इज लेम, रीलिजन विदाउट साइन्स इज ब्लाइण्ड'। 'धर्म-विहीन विज्ञान लँगडा है, विज्ञान के बिना धर्म अन्धा (नेत्रहीन) है।'

आइन्स्टाइन ने कहा कि 'समय' (टाइम) और 'सीमा' (स्पेस), दिक्काल, ऍब्सॉल्यूट (अनपेक्ष) नही है। समय-सीमा से आच्छादित, दिक्काल पर आधृत, जो कुछ भी जिस किसी से भी दृष्ट और अनुभूत है, वह सभी आपेक्षिक (सापेक्ष) है। याने ऍब्सॉल्यूट स्थिति, अनपेक्ष सत्य, का पता नही लग रहा है। जिसका पता लगा है, वह सत्यासत्य का मिश्रण (घोल) है, माया है। और, दिलचस्प बात यह है कि यह 'माया' सत्य है, और जो 'सत्य' प्रतीत होता है, वह माया है। छाया प्रकाशित कर रही है। प्रकाश छाया का निर्माण कर रहा है। दृश्य दोनो को प्राश्रय दे रहा है। पहेली है। बूझिये। माया है। जूझिये। 'समय' भागता जा रहा है, 'सीमा' बदलती जा रही है। सभी कुछ बेतहाशा बदलता जा रहा है। वर्त्तमान आया कि गया। भविष्य अतीत हो गया। अतीत दफना दिया गया है। 'सत्य' कहाँ है? 'सत्य' क्या है? 'सत्य' कब है? 'सत्य' किसका है?

अपने जीवन की सन्ध्या मे 'आइन्स्टाइन वाज दि स्ट्रौग ओपोनेण्ट (विरोधी) ऑव दि प्रिन्सिप्ल ऑव अनसर्टेण्टी कण्टेण्ड इन दि क्वाण्टम थ्योरी। ही सेड टू दि क्वाण्टम थ्योरिस्ट्स यू बिलीभ इन ए गॉड हू प्लेज ऐट डाइस, व्हेयरऐज आइ बिलीभ इन दि परफेक्ट लॅज इन ए वर्ल्ड ऑव एग्जिस्टिग थिंग्स।'

अग्रसर सर्प के अनुप्रस्थ (ट्रान्सवर्स) गति को देखिये। यहाँ माध्यम (मीडियम) (सर्प), मार्ग (मोशन) और तरग (लहर, वेभ्ज) (सर्प के शरीर की तिर्यक्-तरगित गति-आकृति) साथ-साथ चले जा रहे है।

भागते हुए समय (अन्तराल) मे, उडते हुए रॉकेट पर, बदलते हुए आकाश (स्थान) मे, ससरित, परिवर्त्तित परिवेश मे, रेंगती-दौडती रफ्तार से टहलता अनियमित अस्थिर आदमी (ऐस्ट्रोनॉट) ने कितनी 'दूरी' कितने 'समय' मे पूरी की होगी ? जहॉ कुछ भी स्थिर नही है, वहॉ स्थिरता भासती है ?

सृष्टि-डगर पर डगरती चक्रिल-चाक की ससरित धुरी कहॉ है ? कौन उसकी गति को थामे हुए है ? नियन्त्रित कर रहा है ? कौन है वह कुम्हार, जिसने धुरी, चाक और बरतनो (प्रतिमाओ) को बनाया है ? उन्हे अनवरत, नानाविध, गढा है ? बैठे हुए चला है ?

दु ख यही है कि दुनिया मे सभी 'अपने' है, फिर भी आदमी 'अकेला' और 'असहाय' (महसूस करता) है। (जनाब सैयद काजिम हुसैन, 'जार' अजीमाबादी, की याद आयी।)

प्रेमी-मन सबसे विराट् इण्टरभ्यू-कार्ड है। ध्यान अमोघ अस्त्र है। सद्भावना महान् मोहक मन्त्र है। प्रार्थना प्रबल है।

'दिवि सूयसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता।
यदि भा सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मन ॥'

परमात्मा है, इसका एक और प्रमाण (सबूत) पेश करता हूँ। तर्कित अनुमित अध्याहार (इनफरेन्स) पर आधृत।

सृष्टि स्रष्टा तक पहुँचने का द्वार है। जीवात्मा परमात्मा का नमूना है। त्रिगुण गुणातीत के गह्वर का सोपान है।

अगर 'व्यक्त' है, तो 'अव्यक्त' होगा।

आपेक्षिकता (रिलेटिव) बतलाती है कि अनपेक्षता (ऍब्सॉल्यूट) होगी।

अज्ञ से सर्वज्ञ तक का सबूत मिलता है।

आत्यन्तिक निर्बलता से सर्वशक्तिमान् की याद आती है।

सीमित से असीम का, क्रूरता से करुणा का, व्यक्ति से समष्टि का, अन्धकार से प्रकाश का, दु ख से आनन्द का, दैन्य से स्वाधीनता का, शैतान से भगवान् का, अनभिज्ञ से अभिज्ञ (विज्ञ) का, मृत्यु से अमरता का, क्षणिक से शाश्वत का, अस्थिर से स्थिरता का, अमानव से महामानव का, ससीम से असीम का, काल से समयातीत (अ-काल) का, घोर मे अघोर अथवा घनघोर का, दुबला से मोटे का, ठिगना (बौना) से लम्बे का, ऍडी से चोटी का, पाप से पुण्य का, अन्तरात्मा से बहिरात्मा का, विकल्प से सकल्प का, भान होता ही है।

सृष्टि इसका सबूत है कि इसमे जो कुछ भी, सीमित, प्रतीत होता है, वह प्रतीक-मात्र है, और उसकी असीमता कही समाहृत है वहॉ, उसमे, जो सृष्टि नही है, जो अजन्मा, अज्ञेय, है।

प्रकृति इसका प्रमाण है कि आकृति और प्रवृत्ति के पीछे निराकार (अरूप), निर्विकार (निर्गुण) (गुणातीत) और स्थिर सत्ता निश्चय ही विद्यमान है।

मैटर, एनर्जी, वेभ, पार्टिक्ल इत्यादि एलान करते है कि ऐसा भी है कि जो न मैटर है, न एनर्जी, न वेभ, न पार्टिक्ल ।

गुण-शक्तियो की खण्डता द्योतक है इस बात की, गुणो और शक्तियो की अखण्डता कही बिखरी पडी है, तो कही केन्द्रित भी अवश्य होगी ।

अब इस तार्किक अभिगम (एप्रोच) से क्या निष्कर्ष निकलता है ?—कि व्यष्टि का प्रतिमुख (ओपोजिट) समष्टि 'है', शैतान का विरोधी भगवान् 'है', पहलुओ (फैसेट्स) की जमात के उलटा एकाकी अफलकितता (अन-फैसेटेड्नेस), प्रतिकूलताओ के मॅझधार मे अनुकूलता है, सृष्टि और प्रलय से अप्रभावित कोई अतिरोहित विभु (शक्ति) (?) है, विवाद है, तो निर्विवाद भी है ।

चुनाचे, प्रकृति के आईने मे परमात्मा झलकता है, ससार मे भगवान् की स्थिति है, न्यूनतम मे महत्तम अभिज्ञात (रिकॉगनाइज्ड) है, गुणो से निर्गुण पहचाना जाता है, प्रतनु (पिदिन्नी, टाइनी) मे विराट् परिलक्षित होता है ।

विचारो की वीथि मे बनवारी प्रगटाते है । समस्याओ के सन्दर्भ मे समाधान सरकाते है । आस्था के आसन पर आसीन इतराते है । भक्ति के अक मे वे भाग-भाग जाते है । श्रद्धा की सेवन्ती पर भँवरा बन गाते है ।

पूर्वोक्त, पूर्ण-परिचित, सासारिक (स्रैष्टिक) द्वन्द्वात्मक परिस्थिति (परिवेश) (वस्तु-स्थिति) की सीमा को बढाया-फैलाया जाय, तो उस विस्तृत विराट् वृत्त की परिधि पिण्ड मे ब्रह्माण्ड तक फैल जायगी । उसके अपरिमित व्यास का एक छोर परमात्मा को छू रहा होगा और दूसरा अनात्मा को । यह व्यासीय विरोधाभास प्रभु को प्रत्यक्ष कर देगा । अन्तरात्मा को आलोकित कर विभु बना देगा । नाक की सीध मे देखिये । एक ऑख मे भगवान् दीखेगा, दूसरी मे शैतान । एक ओर इन्सानियत खडी होगी, दूसरी ओर हैवानियत ।

यह दोहरा पहलू परमात्मा के अस्तित्व का साफ सबूत है । एक निश्चित । सर्वगुणसम्पन्न गुणातीत सार्वभौम सत्ता का एक अकाट्य प्रमाण ।

"राजा मिलिन्द ने आचार्य नागसेन से 'निर्वाण (बौद्ध-धर्मानुसार)' के विषय मे पूछा, तो उन्होने उसको बताने मे असमर्थता प्रकट की । क्योकि दुनिया मे कोई चीज निर्वाण के समान है नही । वास्तव मे, निर्वाण का अर्थ है उन गुणो और बन्धनो का नाश हो जाना, जो मनुष्य को भेद-भाव से अनुप्राणित कर स्वार्थ की ओर प्रवृत्त करता है । निर्वाण की अवस्था मे मनुष्य की सारी वासनाऍ और आकाक्षाएँ नष्ट हो जाती है । जो अवस्था जीवन्मुक्त की होती है, वही निर्वाण-प्राप्त मनुष्य की पायी जाती है । अतएव, निर्वाण का अर्थ विनाश नही, किन्तु पूर्णता है ।" 'निर्वाण दीपक के बुझने को कहते है ।' (विश्वधर्म-दर्शन सॉ० वि० ला० वर्मा) ['दीपक'= तृष्णा, चाह]

'स्वय अपने अवलम्बन बनो । अन्य की सहायता की अपेक्षा करना व्यर्थ है । धर्म ही दीपशिखा है । सत्य ही तुम्हारा चिर सखा है ।' (बुद्धकथा र० ना० सिंह)

एक सत्सग

डॉ० श्रीनिवास महाराजजी ! कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग के सोपान क्या-क्या है ?

पूज्यपाद स्वामी शरणानन्दजी महाराज मनुष्य मे करने, जानने और मानने की तीन प्रकार की शक्तियाँ है। करने के मूल मे पहले 'न करने' वाली बातो का निरोध होना चाहिये। उसका फल होगा करनेवाली बातो का होना। फिर, उस सही कर्म का फल और अभिमान छोड देने पर स्वत योग प्राप्त होगा। यह कर्मयोग है। कर्म का फल और अभिमान छोड देने पर भी फल तो बनेगा, परन्तु योग प्राप्त हो जायगा। योग वह जीवन है, जो सबको प्राप्त हो सके। योग (जेनरल), सामान्य, चीज है। जो सबके लिये साध्य हो और जो सबके लिये मान्य हो—वह योग है।

ज्ञानपूर्वक हम निर्मम होकर अकिंचन हो जायँ, अचाह हो जायँ और असग हो जायँ, तो इसका फल होगा निर्विकारता, शान्ति ओर स्वाधीनता। निर्विकारता, शान्ति और स्वाधीनता—तीनो की स्वरूप से एकता होकर योग की प्राप्ति होगी। ज्ञान के आदर से स्वत योग प्राप्त होता है। यह है ज्ञानयोग।

विश्वासपूर्वक सर्वाधार, जगदाधार, सर्वातीत, जो अनन्त, अनुपम, अद्वितीय परमात्मा है, उससे आत्मीय सम्बन्ध होता है, जो अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियता का हेतु है। स्मृति तथा प्रियता से स्वत योग हो जाता है। यह भक्तियोग है।

डॉ० श्रीनिवास महाराजजी ! 'न करने' का रास्ता क्या है ?

पूज्यपाद स्वामी शरणानन्दजी महाराज सही करने का फल ही 'न करने' को ला देता है। कर्म का फल और अभिमान छोडने से विश्राम मिलता है। जो करना चाहिये, उसके करने पर न करने की स्थिति स्वत आ जाती है। और, उसी विश्राम मे आवश्यक सामर्थ्य की अभिव्यक्ति, विचार का उदय, एव प्रीति की जागर्त्ति, स्वत होती है।

अचाह और असगता से भी विश्राम मिलता है।
शरणागति से भी विश्राम मिलता है।

श्रम माने कुछ करने का है। करना 'यह' से 'स्व' के मिलने से होता है। शरीर एव ससार से तद्रूप होने पर कर्म का जन्म होता है। शरीर एव ससार से तादात्म्य टूटने पर विश्राम मिलता है। करने से 'न करने' की स्थिति तभी आती है, जब कर्म सेवा मे बदल जाय, भोग-सामग्री को जब सेवा-सामग्री मान लिया जाय। कर्म अपने व्यक्तित्व के प्रभाव के विस्तार के लिये नही हो, बल्कि सेव्य की सेवा के लिये हो।

सामर्थ्य की अभिव्यक्ति एव उसके सदुपयोग से कर्त्तव्यपरायणता आ जायगी। उसी तरह ज्ञान के आदर से असगतता एव भगवान् को अपना मान लेने से आत्मीयता आ जायगी। जबतक हमारा परमात्मा से आत्मीय सम्बन्ध नही होता, तबतक प्यार जगता है क्या ? सामर्थ्य के सदुपयोग से कर्त्तव्यपरायणता, ज्ञान के आदर से

असगतता, और शरणागति से आत्मीयता आ जाती है। मै सामर्थ्य का दुरुपयोग नही करूँगा, मै ज्ञान का अनादर नही करूँगा, मै (विश्वास) श्रद्धा मे विकल्प नही करूँगा—इनको अपनाना सत्सग है। यह जीवन का सत्य है। इनके (सत्सग के) होने पर साधना स्वत होने लगेगी। कर्त्तव्यपरायणता, असगतता, आत्मीयता—ये साधन है। इनका फल है (क्रमश) चिरशान्ति, स्वाधीनता और परम प्रेम की प्राप्ति (अभिव्यक्ति)।

डॉ० श्रीनिवास महाराजजी ! वर्त्तमान काल की सबसे कठिन समस्या क्या है ?

पूज्यपाद स्वामी शरणानन्दजी महाराज मनुष्य अपने वास्तविक जीवन को एकदम भूल गया है। यह मानव-मात्र की अभी सबसे कठिन समस्या है। चिर शान्ति, स्वाधीनता, परम प्रेम—तीनो मानव को मिल सकते है। कोई-कोई एक-एक अग की बात करते है। मानव-सेवा-सघ तीनो बातो को एक साथ रखता है। आशिक रूप से तीनो मार्ग मिले रहते है। किसी एक की प्रधानता रह सकती है, किन्तु गुण का भेद रहता है। एक काल मे (आरम्भ मे) एक की प्रधानता होगी। जैसे भोग मे मोह और आसक्ति छिपी ही रहती है। उसी तरह योग मे बोध और प्रेम छिपे ही रहते है। भोग ही मार्ग की पूर्त्ति मे समर्थ है, (आध्यात्मिक) प्रगति के लिये प्रमाण और गवाह लेने की बिलकुल आवश्यकता नही है, बल्कि कभी-कभी बाहर का प्रमाण भ्रम मे डाल देता है। भोजन करनेवाला स्वय जानता है कि किस अश मे क्षुधा-निवृत्ति हो रही है। अहकृति के आधार पर लक्ष्य की प्राप्ति नही होती, कारण कि अहकृति के रहने पर परिच्छिन्नता नही जाती। इसलिये बडे-से-बडे विवेकी को भी अहकृति-रहित होना ही पडता है, शरणागत होना ही पडता है। शरणागति कही, अप्रयत्न कही, एक ही बात है। (अहकृति से भिन्न है शरणागति।)

बुद्ध की सिद्धि के पहले केवल आवश्यकता रह गयी और पुरुषार्थ चला गया। बुद्ध का मार्ग था वह जीवन, जिसमे दु ख का प्रवेश भी न हो। वे बुराई कर ही नही सकते थे। यह उनका स्वभाव था। वे जीवन से निराश कभी नही हुए। भोग और मान से उन्हे पूर्ण अरुचि थी। बुद्ध ने न यह कहा कि भगवान् है, न यह कि नही है। कोई भी ईमानदारी से यह नही कह सकता कि परमात्मा नही है। हमारा तो इसी से काम चला कि परमात्मा है। परमात्मा कैसा है, इससे मतलब नही। मनुष्य और परमात्मा की जातीय एकता है। मानव मे भी अचाह का ऐश्वर्य, निर्विकारता का सौन्दर्य एव आत्मीयता का परम माधुर्य है। मनुष्य का मौलिक मार्ग और परमात्मा का स्वरूप एक ही है। जो मनुष्य को चाहिये, वह परमात्मा है—ऐसा कह सकते है। मुझसे यदि परमात्मा भी कहे कि देखो शरणानन्द, यदि तुम मुझे मानोगे, तो मै तुम्हे नरक मे भेज दूँगा और तुम्हे कभी नही मिलूँगा। तो मै कहूँगा, मेरे नाथ ! मुझे नरक स्वीकार है, परन्तु मै भगवान् को माने बिना नही रह सकता। (ऐसा कहते-कहते वे गलदश्रु हो उठे)। मेरे रोम-रोम मे प्रभु-विश्वास रहे। मै भगवान् को माने बिना रह ही नही सकता। विकल्प रहित विश्वास परमात्मा

मे ही हो सकता है, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति मे नही। यदि किसी को भगवान् मे विश्वास नही करना है, तो उसके लिये कोई विश्वास-पात्र हो ही नही सकता है।

डॉ० श्रीनिवास यदि आपसे कोई पूछे कि महाराज! आपके रोम-रोम मे प्रभु-विश्वास है कि नही ? तो आप क्या कहेगे ?

पूज्यपाद स्वामी शरणानन्दजी महाराज मन्द-मन्द हँसने लगे। फिर बोले नही है—ऐसा तो कह ही नही सकते। 'है' ऐसा कहे या नही कहे। रोम-रोम मे प्रभु-विश्वास नही था—ऐसा कभी अनुभव नही हुआ।

ईश्वर ने कुछ प्रच्छन्न (गुप्त, छिपा, अप्रकट) रख छोडा है। कुछ अव्याकृत है। कुछ अनिश्चितता रहने दी है। कुछ राज, कुछ भेद, अभी खोला नही है। कुछ अज्ञेय है।

भगवान् बुद्ध ने अव्याकृत मसलो पर तर्क करना, वाद-विवाद करना, उनमे उलझे रहना और समय गँवाना, निरी मूर्खता की निशानी मानी। ऐसी 'शकाओ' के समाधान से वे बाज आये। और, सद्धर्म अपनाने पर जोर दिया।

उपनिषदो ने भी अन्त मे 'नेति-नेति' कह दिया और चुप लगा गये। तर्क के चमकते दिल-दहलाने-वाले ओजस्वी हथियार डाल दिये गये।

यमराज ने भी नचिकेता से कहा कि तुम जन्म-मृत्यु-सम्बन्धी ज्ञान पाने के योग्य हो और मैने तुम्हारी परीक्षा लेकर देख लिया है कि तुम मे पात्रता है, इसलिये मै यह गूढ दुर्लभ ज्ञान तुम्हे दे रहा हूँ, आओ, सुनो। लेकिन, यमराज ने जो कुछ कहा, वह, सिर्फ नचिकेता (योग्य पात्र) को ही मालूम हो सका, क्योकि कथा वही समाप्त कर दी जाती है और 'कुपात्र' पाठक मुँह देखता रह जाता है।

'आम जनता' के लिये आत्मा-परमात्मा से सम्बद्ध रहस्य न कभी खुले थे और न खुल पायेगे। विरले ही लोग सक्षम, सुपात्र और सबल बनकर, परमात्मा का सामीप्य और सायुज्य पाते भी है।

अगर आदमी सब भेद जान जाय, तो मजा किरकिरा हो जायगा। परमात्मा सर्वत्र सदैव दीखने लगे, तो कितने ही दीवाने काम-काज छोडकर बैठ जायेगे। अगर कर्म-फल विधान के मुतल्लिक बिलकुल (पूर्ण) निश्चितता हो जाय, तो सौदा-बारी, लेन-देन, तकाजा, होने लगे। किसी भी देश की सरकार कोई कानून न बना सके। पुनर्जन्म अगर पूर्णत अवश्यम्भावी दीखने लगे, तो अपना-पराया, मोह-ममता, मनुष्य के ऐहलौकिक आपसी सम्बन्ध सब ढीले पडने लगे। लोगो मे स्वार्थी बनने की प्रवृत्ति बढे। परोपकारिता 'अहैतुकी' न रह जाय। जगत् 'मिथ्या' और 'माया' प्रतीत होने लगे, तो एक किस्म की उदासी और मायूसी छा जाय सृष्टि पर।

भगवान् ने जानकर अपनी माया फैलायी है। वर्ना सृष्टि रुक जाती। उसका चलाना प्रकृति के बूते की बात कतई न थी। न कोई प्रगति हो पाती। न किसी तरह का कही प्रयास।

प्रेम-सिन्धु मे, करुणा-सागर मे, परमात्मा का चकाचौध करनेवाले सौन्दर्य के सामने, कौन अभागा (जीवात्मा) काया मे कैद रहने को तैयार होता ! ससार की गाडी रुक जाती। सब ठप पड जाता। खेल खत्म हो जाता। यवनिका गिरती। पटाक्षेप हो जाता। सब काम यदि परमात्मा ही कर देता, तो आदमी एक-दम बे-काम न हो जाता ?

कर्म-फल का लोभी, पुनर्जन्म से आश्वस्त, आदमी अपने चरित्र को उदात्त न बना पाता। सिर्फ हिसाब-किताब, उकटा-पैची, करता रहता। वह पागल बना फिरता। बाबला, बैरागी। उदासी। बेकार—बेबसी। बेकली।

सृष्टि के हर कण मे, सर्वव्यापी मुकुर मे (लुभाया), प्रतिबिम्बित नारसीसस अपना ही मुखडा निहारता-निहारता-निहारता-निहारता-निहारता न मर पाता, न जी पाता, न प्यार कर पाता, न घृणा, न कुछ कह पाता, न किसी की सुन पाता, न खाता, न पीता, न रोता, न हँसता।

सत्य का सर्वाश मे साक्षात्कार कर कोई कैसे जिन्दा रह पाता !

जिसके द्वारा अज्ञेय ज्ञेय होता है, वह सर्वज्ञ कैसे ज्ञात हो। जो मनस् (मानस) समस्त ज्ञान का मूल है, उस मनस् (मानस) को कैसे जाना जाय ? अण्डा ने कही चूजा (मुर्गी) पहचाना है !

हे, परमात्मा ! तुमने उचित ही किया कि माया का पर्दा रहने दिया। नही तो आदमी के लिये जी पाना दुस्वार हो जाता। तुम्हारी महान् कृति, मानव-मूर्त्ति, मर जाती।

मोनालिसा के सामने इनी-गिनी आत्महत्याये हुई, तुम्हारे रू-ब-रू सारी मानवीय सृष्टि खुदकुशी कर लेती।

> 'दी रेस्ट
> फ्रॉम मैन और एन्जल
> दी ग्रेट आरकिटेक्ट
> डिड वाइजली कनसील' (पाराडाइज लॉस्ट मिल्टन)

> जगन्नियन्ता ने मानव से अपना भेद छिपाया।
> देव, किन्नरो, अवतारो को सब-कुछ नही बताया ॥
> भला किया, भगवान् ! जो तुम छाया मे छिपे रहे हो।
> सृष्टि जागती रही, स्नेह, करुणा, मे जला किये हो ॥

रात पौने तीन बजे सोने गया। 'प्राण' की रासायनिक गुत्थियाँ सुलझाने के पीछे डॉ० हरगोविन्द खोराना का प्रयास चाहे जितना भी प्रशसनीय हो, उससे प्राण की रक्षा नही होने की। आदमी आज भी मरा जा रहा है, कल भी मरेगा। स्वय नही मरा, तो मार दिया जायगा और डॉ० खोराना के 'जीवाणु' (सहिता, सकेतकी) (सिन्थेटिक जीन्स) मुँह ताका करेंगे, अन्धेर होते रहेगे।

कुछ लोग भगवान् के नाम से ऐसा चिढते है, जैसे सर्वात्मा उनकी सौत हो। आधुनिक हिरण्यकशिपुओ ने नई दुनिया से न केवल भगवान् की साया उठा ली, बल्कि भगवान् का भय भी उठा दिया। भय गया नही। निर्भय होने की बात चली गयी। निर्भयता की कमर टूट गयी। अमरत्व के साथ आत्मा और अभय दोनो चल दिये। देह बच गयी। दुनियावालो का आतक बच गया। एकान्त मे, पुलिस और पावर की नजर बचाकर, किया गया पाप अब पाप न रहा। देह का, देह पर, देह से किया गया दुष्कर्म देहातीत अन्तर्यामी का मखौल उडाता है। आग लगाता है। सीना चीरता है। उसने एक नया तरीका निकाला है—ईजाद किया है—सजा से बचने का, आँखो मे धूल झोकने का, समाज के माथे पर चढ (हृद) कर भी 'राजा-बेटा' बने रहने का। वह नया ढग, आविष्कार, है सामूहिक दुराचार का। न कोई दोषी पकडा जाय, न 'सामूहिक' दण्ड दिया जाय। पाप किया जाय छूटकर, लेकिन दोष समूह का गिना जाय। अपने को कोसने की जरूरत भी न हो, मन मलिन भी न हो। जत्थे की आड मे जघन्य से जघन्य पाप भी कैसे पापी को प्रत्यक्ष करे। उत्पाती भीड की सामूहिक मनोवृत्ति का सहारा लेकर चाहे सात खून भी करे, चाहे पुश्तानी अखज (बदला, प्रतिशोध) निकाले, चाहे मजे लूट ले, कौन 'पकडता' है। चाहे आदमी की अखनी ही पी जायँ। आदमी-आदमी को चिबा जाय ? खून पी जाय ? कौन देखता है। गोली दागनेवाले जल्लादो के दस्ते मे किसे हत्यारा कहा जाय। कौन कसाई माना-समझा जाय।

परमात्मा की सर्वव्यापी सर्वज्ञ आँखे कितनो के लिये, कितनो के कारण, मुँद गयी। अब अगर उल्कापात हो रहा है, दावाग्नि दबोच रही है, दिल टूटता जा रहा है, समाज लुटता-लूटता जा रहा है, कही त्राण नही मिलता, कही मरूद्यान की छाई नही दीखती, तो क्या आश्चर्य है ? परमात्मा (अध्यात्म) की करुणा-किरण त्रसरेणुओ की व्यथा बुझा जाती थी, अब गज-ग्राहो पर भी कब क्या बीतेगी, कौन जानता है ! बाघ को यदि आदमी के लहू का चस्का लग जाय, तो रिंग-मास्टर की जान कबतक बची रहेगी ? ठहाके की गँज का होश फाखता नही होता ?

मई (जेठ) का महीना है। सुबह के साढे पाँच बजे है। ओठँगाई खिडकी को फॉफर कर शीतल हवा अन्दर आयी है। अँगडाई लेकर धरती से सोधी सुगन्ध जागी है। इलहाम आया (हुआ) कि रात ईश्वरीय करुणा (का बादल) बरसी है।

खिडकी खोलकर देखा। आकाश मे छिट-फुट बादल के हल्के-फुल्के बेडे बहते-तैरते-उतराते मेघवर्ण पुरवैया पुरवाई को पार उतारे जा रहे थे—पद्मा मे, ब्रह्मपुत्र मे, जाह्नवी मे, यमुना मे।

नहाकर नव-रग खडा था, धुलकर धरती पडी थी। पूर्व की क्षितिज पर मूँगा मणि बन रहा था। एक विराट् चित्रावली (दृश्यमाला) दीठ को ठण्डी लग रही थी। एक लोटन मरीचिका मन को मोह रही थी। नेपथ्य मे कही लोवान खिला था। कोलाहल के बीच तिलकोर फला था।

वह शैवालो मे सजी बलान याद आयी, जिसे मै बचपन से जानता था। मेरे पूर्वजो ने उसी के किनारे, सुदूर गाँव मे, अपना एक गढ बनाया था। कभी इतिहास के अतीत मे। उस गढ के अवशेष को वही छोडकर हमारे पूज्य पिताजी राम के प्यारे हो गये। सेवारो से पटे भागो मे बलान मछलियो की वशावली भी सँजोती आयी है। हमारे पूर्वज पूर्णत शाकाहारी थे। चुनाचे मछलियो को अभय-दान प्राप्त था। बडी-बडी और नन्ही-नन्ही मछलियाँ निर्द्वन्द्व तैरती-उतराती-छिपती-झाँकती मौज मारती रहती थी। गढ के सामने बलान कुछ ऐसी अदा से मुडती है कि मानो मेख़लावेष्टित (पेटी-मण्डित) पुरातन से शौर्य माँग लाती हो। हमारे परबाबा के पहले का इतिहास लुप्त हो गया। लेकिन, अतीत से आया हुआ नदी का वह 'मन', वह गढ, गलबहियाँ डाले वह बलान, महावीरजी तथा बन्दीजी के जीर्ण मन्दिर, कुछ कहते-सुनते रहते है। मेरे पूर्वज कौन थे, वे कहाँ से आये थे, इसका कुछ भी पता नही चलता। हाँ, तब गगा नदी कही पास ही मे बहती थी और विद्यापति को समेटने (अँकवारने) दौडी भी आयी थी।

वैसे ही, मेरे प्राणो मे बसी, एक दूसरी नदी है गण्डक। लोग न जाने उस चिर-यौवना को 'बूढी' क्यो कहते है। वीरसिहपुर (समस्तीपुर) उसकी मदिर चाल से पूर्व-परिचित रहा है। बाढ मे 'बूढी गण्डक' पी-कर मदिराभ बन जाती है। गर्मियो मे वह समाधिस्थ हो जाती है, जैसे धूनी रमाकर सन्यासिनी बन गयी हो। बालू की कछार। झौआ का किनारा। डोगियो का आना-जाना। कदम्ब के पेड। उस पार का वह विराट्-विशाल वट-वृक्ष और यदा-कदा दूरस्थ कगार तगाड का कटना-गिरना, हहाना। न जाने कैसा है मेरा मन, जो वन मे, नदी मे, घोघा मे, खोता मे, पवन मे, प्रसून मे, जा बसता है! जो जहाँ-तहाँ अनायास अनचोके रम जाता है। और, बुलाने पर भी नही आता। झकझोर कर पूछता हूँ कि तू कौन है? रे! कहाँ से आया है? तो वह मुँह बिचकाकर, तनिक मुस्कराकर, हिरनौटा-सा चौकडी भरता कही दूर भाग जाता है और मै (बिना) उत्तर की प्रतीक्षा मे (पाये) झुँझला (कर रह) जाता हूँ।

मैने पूर्व-जन्म मे जघन्य पाप किये होगे। तभी तो आज २० वर्षों से रोज कम-से-कम दो बार वैतरणी पार किया करता हूँ। 'हृदय-रोग-सस्थान' को जाती हुई राह न सिर्फ एनाटॉमी डिस्सेक्शन हॉल के निमित्त इकट्ठे मुर्दो के 'ठण्डा-घर', वरन् पोस्ट-मॉर्टम-रूम के भी समीपवर्त्ती नरक से होकर गुजरती है। सडे-गले शवो, लोथडो की हेरती-घेरती दुर्गन्ध को चीरता हुआ, श्मशान को रेलता हुआ, मै आता-जाता हूँ। मै दुर्व्यवस्था से हैरान हूँ। सरकारी कायदे-करतूत से भी। विभीषिका से।

ठक्-ठक्-ठक्। ठक्-ठक्-ठक्। कोई द्वार नही खोल रहा है! अजी! शहतूत की हड्डी (हाड) को कठखोदवा छेद रहा है। ऊपर चोटी, नीचे चोच, हुदहुद छेद रहा है, लम्बी और कठोर। उसके हल्के बादामी तन को देखा? और उजली-

काली धारियो से चित्रित डैनो को ? मै दैव को नही कोसता। मै • • • मै • • मै और अरे ! देखिये ! देखिये !! वह देखिये, श्याम-तुलसी की डाली पर कौन आ बैठा है ! एक अजनबी पछी। इस परदेशी को आज के पहले कभी नही देखा था। भगवान् ! तूने भी कैसी तूलिका उठायी है। कहाँ से ऐसा दिल पाया है। जाओ। मै तुझे नही कोसूँगा, नही कोसूँगा, नही कोसूँगा। तू मेरा क्या कर ही लेगा। जरा देखिये तो सही। कैसा दूध-सा उजला है उसका कलेवर। माथे की कलियारी हरीतिमा और पूँछ की कलौस पियराई। जैसे काजल धुल गया हो। नयन छिप गये हो। जैसे दीपशिखा तेल घट जाने से धुआँ गयी हो। पीले रग की चोच। हलदी-सी, सरसो-सुमन-सी। चमेली-सी मुख-चन्द्रिका। मेहदी-रजित टुह-टुह लहालोट लाल चोटी। और देखिये, वह फुदुक कर कॉफी-से-काले मान के गजकर्ण-सरीखे पत्तो पर जा बैठा। फिर हरे मान पर, फिर कच्चू-मान पर। फिर, थलकमल पर। अब हुश्न-हेना पर उसके पैर बादामी है, उसकी नीली आँखे थिर नही हो पा रही है। जुही पर से वह उड गया और सुर्ख-कण्ठ की नीरवता निखारे कही दूर चला गया। रह गया आम्र-वृक्ष का हरित पटाक्षेप टिकोलो से लदा। किसलयो की अरुण शिखा से मण्डित श्यामली फुनगी। जलद से लटकती फुहार की यवनिका। वर्षा-बहार।

कल 'त्रिभुवन' (क्लिनिक) से लौट रहा था, तो सुनसान डगर पर जरा सुस्ता कर रात के एकान्त मे, सन्नाटा पी गया। ताड के अनेक वृक्ष कतारो (पक्तियो) मे राजते (खडे) थे—लन्दन की पुलिस की तरह, हेलमेट पहने (लगाये)। और, कही बहुत दूर आकाश की शून्यता मे तारो के नगर से रोशनी चुराकर चाँद भागा जा रहा था, बादलो मे लुकता-छिपता-निकलता-झाँकता-कतराता।

विगत-कल प्रो० अ० कु० श्रीवास्तव ने अपना आँखो-देखा बयान किया। उजला विलायती मादा खरगोश के प्रसव के समय की बात थी। गर्भिणी कुछ पीडा का अनुभव कर छटपटाने-सी लगी। उसने अपने वक्ष स्थल और पेट को जमीन पर तथा अपने पदो से मलना-रगडना प्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप उसके रोएँ आसानी से टूट-टूटकर गिरने लगे। जमीन पर एक रोएँदार नर्म-गर्म गलीचा-सा बन गया, जिसपर उसने अपने कोमल नन्हें बच्चो को जना। उसका वक्ष स्थल बाल-विहीन और लाल-वर्ण (लाल-लेहान) (घर्षण से) हो गया था और उसके चूचुक (स्तनाग्र) (टीट्स) केशो के हट जाने से निरावरण होकर नवजात शिशुओ के लिये आसानी से स्तन्य-पान के निमित्त उपलब्ध हो सके थे। मैने भी आगत मौका का उपयोग किया और अपने टीले पर से, मन्दार की एक फली मँगवाई। दोस्तो (नानालाल त्रिवेदी, काशीनाथ पाण्डेय, विजय अमरेश, राधेश्याम) के सामने उस जादू के पिटारे को खोलकर दिखलाया। हर बीज के वास्ते करीने से सजी-सजायी रोएँ की तह-पर-तह दिखलाकर उन्हे चमत्कृत किया। कि हर बीज-मुन्ने के लिये अन्त पुर के एकान्त मे धवल रेशमी गद्दी की व्यवस्था किस जादूगर ने की ! इतना ही नही, जब प्रकीर्णन का समय आयगा, तब मन्दार का हर एक-एक बीज-औलाद पलने पर झूलता उडेगा, झूमता चलेगा, और जब उतरेगा,

तब लघुपतनक की अदा से, 'पैर' रखेगा, तो हौले-से। तब पृथ्वी उसे अपने अक मे समेटेगी, उसका पालन-पोषण करेगी, और तब एक नया मन्दार का पेड उगेगा, कोपले झाँकेगी। जैसे वर्ष-भर का राहुल कहता है—'झाक्' और मुस्करा देता है।

मुझे हँसी आयी। रोना आया। आदमी की समाज-व्यवस्था को लानत है कि मानव का भ्रूण चिथडो पर जना जाय, कि मानव की ठठरी फुटपाथ पर लेटे। क्या फायदा है चन्द्रतल पर झण्डा गाडने का! हृदय-प्रतिरोपण का! दार्शनिक के झख मारने का! घडी-घण्ट किसके लिये बज रहे है! दीप किसके लिये सज रहे है! देखोजी। कौन आ रहे है!

तब मै भी बालक था। ठहरिये।

और अभी एक मन्दार का बीज अपने उडनखटोले पर आया, मेरी कॉपी पर उतरा, दो-चार क्षण खेला-कूदा, थिरका-नाचा, फिर, मेरे मस्तक को चूमकर अपना हेलीकॉप्टर उडाता हुआ उसी खिडकी से चलता बना।

मै आज फिर आकस्मिक अवकाश पर हूँ। करूँ क्या? कोई उपाय नही। वार्ड्स मे आज कोई 'सीरियस पेशेण्ट' नही है, कोई 'प्रोब्लेम केस' नही है। ऐसे मौके इत्तफाकन आते है, गाहे-बगाहे, कभी-कदाल। सो मैने छुट्टी ले ली और लिखने बैठ गया। अपने डॉक्टरी जीवन-काल का सब-से-बडा नुसखा (उपचार-विधि, अगद-निर्देश, औषध-पत्र)। शायद। यह पुस्तक।

हाँ, तो मुझे अपना बचपन याद आया।

तब मै भी बालक था। मै अपने मामाजी के यहाँ पलता था। मेरी स्वर्गीया मामीजी (श्रीमती रामप्यारी देवी उर्फ रामा) (भगवान् उनकी दिव्यात्मा को चिर-शान्ति प्रदान करे!) (काश! एक बार तो दर्शन दे जाती!!) मुझे मातृवत् पालती-पोसती थी। उनकी अपनी कोई सन्तान न थी। वातावरण रुक्ष-रुग्ण था, लेकिन इसमे मेरी प्यारी मामा (मामीजी) का कोई दोष न था।

टूअर का ठौर*

रामरीझन ठाकुर अभी तक जीवित है, यही आश्चर्य की बात है। यो तो उनकी उम्र कोई अत्यधिक नही हुई, लेकिन मरने-जीने को उम्र से क्या मतलब? मौत क्या पूछकर आती है? छोटा कद। चौडा सीना। छोटी गरदन। केशो के जगल से भरा जिस्म, चमडा। सामने से गजा माथा। मास-पेशियो से गठी देह। आदमी नही होते, तो गौरिला समझे जाते। ऐसे ही शरीरवाले तो हृदय-रोग के शिकार बनते है।

बेहद मक्खीचूस। न कपडे साफ करते, न साबुन लगाकर कभी नहाते, न यज्ञोपवीत पर जमी चटचटी मैल हटाते, न बाल बनवाते। धोती और अँगौछी। चकैठ गजी

---

*कहानिका।

भी इस डर से नही पहनते कि कही जल्दी फट न जाय। अक्सर पसीने की बदबू लिये आगन्तुको से मिलते-जुलते।

पिताजी सर्वस्वत्यागी निर्मम सन्त। माँ पर्दानशीन। रामरीझन ठाकुर, सहदेव ठाकुर, सूबेदार सिंह, शिवपूजन राय—यही लोग मेरे बचपन मे अपने थे। यो कहने को सिपाही, भनसिया थे। लेकिन मेरे जैसे टूअर बच्चे के लिये प्रेम के सागर थे।

रामरीझन ठाकुर मेरे साथ ही रहे। उनकी अटूट गन्दगी से मै परीशान था। मेरे और उनके बीच झगडे का एकमात्र कारण भी वही था। डॉक्टर का घर। राजा से रक तक का आना-जाना। वही स्वागताध्यक्ष रहते। उनकी दुर्गन्ध-भरी काया मुझे शर्मिन्दा करती रहती।

उनको अपना एक बेटा था। जब वह खाने-कमाने लगा, तब रामरीझन ठाकुर हमको छोडकर उसी के पास चले गये। वर्षों बीत गये। एक पोस्टकार्ड भी नही लिखा। मै टहरा दूसरे की कोख का लडका। क्यो न भूल जाते? उन्ही के गाँव का एक बूढा तरकारी बेचनेवाला, अनूप, परसाल तक मेरे बँगले पर सब्जी बेचने आया करता था। उसी से रामरीझन ठाकुर का हाल-समाचार पूछकर सन्तोष कर लिया करता। एक साल से अनूप भी नही आया। घर गया, सो लौटा नही।

रामरीझन ठाकुर की याद भुलाये नही भूलती। मिटाये नही मिटती। लेकिन वह है, जो परायी औलाद को बिसार बैठे।

और, सपने मे कभी गलती से आ भी जाते है, तो उठने पर मिलते नही। नीद बेरहम टूट भी तो जाती है। टिकती भी नही।

स्वाभिमान*

नन्हकू बाबू को लोग जितवरिया के राजा साहब कहते थे। कालान्तर मे गाँव का नाम छोड दिया गया। राजाजी के नाम से विख्यात हो गये।

राजाजी पर पूर्णरूपेण गरीबी छायी हुई थी। शनैश्चर किसी तरह भी अपना रुख बदलने पर जब आमादा न हुआ, तब राजाजी ने अपनी सूझ-बूझ से प्रतिकार के नये तरीके निकाल लिये।

सबसे पहले उन्होने नव-विवाहिता पत्नी को नैहर भेज दिया। और, अपने को समाज मे ब्रह्मचारी के रूप मे प्रतिष्ठित किया।

गाय, बैल, बकरी तक, बेच देने के बाद एक सडियल घोडी खरीद ली और शान सेघुडसवारी करने लगे। वह घोडी भगवान् की ही बनायी हुई थी। जिस तरह खेसारी-अकटा की दाल खानेवाले देहाती के पैर 'लैथिरियासिस' रोग से जकड जाते हैं, और जब वह चलता है, तब दोनो ठेहुने आपस मे लडते रहते है। घोडी के पिछले पैर भी वैसे ही भिडते, टकराते, घिसते सघर्षरत रहते थे अनवरत, कैंची के

*किञ्चित्कथा।

दोनो फल (क) (ब्लेड) की भाँति। राजाजी ने मेरे बहुत पूछने-ताछने पर एक गुप्त बात बतला दी। उन्होने उस घोडी को जनकपुर मेला मे सिर्फ डेढ रुपये मे खरीदा था।

लोगो ने घोडी के बारे मे शिकायत की कनखी मारी, तो कहने लगे कि अडियल घोडे को कब्जे मे लाने की हुनर का प्रयोग कर रहे है। बिरले बहादुर ही वश मे ला सकते है।

गाँजा चलना मुश्किल हो गया, तो खैनी पर उतर आये। सुर्ती-चूना बेधडक बाँटने लगे।

पीछे चलकर खाने-पीने मे भी दिक्कत होने लगी, तो उन्होने गाँव-जवार मे एलान कर दिया कि ब्रह्मचारीजी एक-सझा व्रत करेंगे। तब दिन मे सत्तू और रात मे भाँग खाकर रहने लगे।

आठ-दस मील की दूरी पर उनके एक सम्पन्न रिश्तेदार रहते थे। राजाजी के स्वभाव से वह परिचित थे। पत्र लिखकर बुलाया। समझाया। कहा कि मेरे दालान पर ही रहिये। बार-बार जोर देने तथा तग करने पर 'हाँ' कह दिया। लेकिन ज्योनार के समय तक गायब हो गये। फिर, बुलाने पर भी नही आये।

समय बिगडता गया।

दो-चार पैसे जमा भी करते थे, तो लोग माँग-चाँग लेते। राजाजी ने कभी किसी को 'ना' नही कहा। किसी के आगे हाथ नही पसारा।

घोडी मर गयी।

दौरी-दालान बेच दिया। बेल-वृक्ष के तले धूनी रमाकर जम गये। कपडे फट-चिट गये, तो विभूति रमायी। कोपीन धारण किया। सन्यासी-महात्मा बनकर पूजे जाने लगे। किसी को ठगना तो था नही। किसी तरह का चढावा लेते ही नही थे।

समय बिगडता गया।

बाप-दादो की एक-आध बीघा जो बची-खुची जमीन थी, वह भी जब बिक गयी, तब आजीवन बेलपत्राहार का कठिन व्रत धारण किया। दिन मे बेलपत्र को पीस-कर पी लेते। रात मे पेट बाँधकर पड रहते।

समय का फेर।

जब बेल-वृक्ष भी सूख गया, तब राजाजी ने प्राण त्याग दिये।

शव के पास एक औंधी हाँडी मिली। उसके अन्दर एक रस्सी और पचास पैसा। लोगो को मकसद ताडने मे देर नही लगी। सन्यासी-परम्परा के अनुसार रस्सी का एक छोर राजाजी की गरदन मे बाँधा गया, दूसरा छोर घैले मे। बालू से घैला भर दिया गया। (और) राजाजी को घैला-समेत नदी मे डुबा दिया गया।

डुबा देनेवालो को पचास पैसे पारिश्रमिक मिले।

इस तरह देना-पावना का हिसाब बराबर कर निर्वंश नन्हकू बाबू ने सदा के लिये ससार छोड दिया।

बाबू जद्दू राय ('नाना') की स्मृतियाँ उभर आयी है। मै सोचता हूँ, नाना फिर आयेगे। और, मै उन्हे पहचान लूँगा। उनकी मुखाकृति के ब्रोड-फीचर्स मुझे अब भी याद है। मेरे प्यारे नाना मामीजी को भी लेते आयेगे। शशि (-निवास) को भी।

बाबु यमुना राय की याद आयी। पिता (रामप्यारे शरण सिह) जी की।

हमारे बचपन के वे परमादरणीय शिक्षक-गण याद आये, जिन्होने मुझे तालीम दी थी—क्रमश, श्रीरामनन्दन चौधरीजी, श्रीधनुषधारी रायजी, श्रीपरमेश्वर-प्रसाद सिंहजी।

अभी टीका भूँकने लगा, तो काला-करलुट्टा झबरा कण्ठू याद आया, जिससे मै बचपन मे डरा करता था।

वह बड का पेड याद आया, जिसके नीचे हम, मदनजी (मदन वात्स्यायन), बब्बन दीदी और उमा अमडा से रगड-रगडकर ताँबे के पैसे को चमकती अशर्फी बना देते थे, पन्ना-पोठी का पान खाकर जीभ रँगते थे, बघण्डी के दूध मे फूँक मारकर हवाई गुब्बारे उडाते थे, बरोह से लटक-लटक कर झूला झूलते थे, भटकोइयाँ के काले-हरे फल चूस जाते थे, तीसी की ढेढी (फल) का लट्टू नचाते थे। सण्ठी (छडी) का घोडा (गदहा) दौडाते फिरते थे। ऐसा जादू था अपनी नन्ही उँगलियो मे कि जब वे गनगोआर को छू-भर देती थी, वह गुमट (कुण्डलित हो) कर ढेबुआ (पैसा) बन जाता था।

जब मै किसी 'असम्भव (दुष्प्राप्य)' सुलभ चीज (वस्तु) के लिये मचलता था और माँ की बेबस आँखे भर आती थी, तब वह गाने गा-गाकर मेरा मन फेर-हेरा देती थी। मुझे बहका-बहला देती थी। मै चाह भूल जाता था, इच्छा बिसर जाता था। मै धीरे-धीरे-धीरे उडकर किसी स्वप्न-लोक मे चला जाता था। ऐसा ही एक गीत, जो मेरी माँ मुझे अक्सर सुनाकर ठग दिया करती थी, उसे आप सुनेंगे ? तो आइये मेरे किसी पडोसी गाँव मे, पनघट पर। छिलबिलाती धूप थी। दूर का सफर। पसीना। प्यास। थकान। वापिका। पनिहारिन बालिका। पानी। पेडो की छाँह, छइआँ। कुइआँ। पइआँ। ठैआँ।

ढेंकुल के सहारे वह लोटा-उघैन (डोरी, रस्सी) से पानी भर रही थी। उसका एक पैर लकडी के ठाठ पर था और दूसरा जमुवट की जगत (पाट, चबूतरा) पर।

पोदीना की लत्तियो से पावट का पास पट गया था। नीबू और अनार के पेड कलियो, फूलो और फलो से लद गये थे। महुआ के पेड पर पपीहा पीक रहा था। सेमल के हरियर-कचोर पत्तियो तथा लाल-काले फूलो मे सुग्गे छिपकर बैठे

झपकियाँ ले रहे थे। इनार का किनारा पानी रखने-गिरने और काई लगने से, यत्र-तत्र (कही-कही) पिच्छिल हो गया था।

गर्मी। धूप। घोडे की जीन—सवारी। दूर-दराज का सफर। अकेली राह। अकेली बाट। चलते-चलते-चलते।

मै बेहद थक गया हूँ। मुझे बडी प्यास लगी है।

माँ गाती थी

छोटी-मुटी बीटीआ
कइथीनीआ के
आहो रामा।

अमकी झमकी पनीआ भरई
आहो रामा।

घोडवा चढल अइले
राजा के कुँअरवा
आहो रामा।

चुरु एक पनीआ
पिअवहु
आहो रामा।

हम कैसे पनीआ पिअइबो
आहो रामा।

हमरो त जाती
परजतीआ
आहो रामा।

काहे लागी
जतीआ बतवलू
आहो रामा।

हमरो ससुररिया
एही ठइयाँ
आहो रामा

हम लगबो तोरे बहनोइया
आहो रामा।

चलू चलू आहो राजा
हमरो अँगनवाँ
आहो रामा

ओही ठइयाँ
पनीआँ पीअइबो
आहो रामा

हम लगबो
साली—सरहजीआ
आहो रामा।

गीत की निम्नाकित पक्तियो को माँ बराबर छोड देती थी

ओही ठइयाँ
जतिआ
छिपइबो
आहो रामा।

ओही ठइयाँ
पानवाँ
चीभइबो
आहो रामा।

और, मैं बादामी रग के हृष्ट-पुष्ट पचकल्याण स्यामकरण घोडा (अश्व, तुरग) पर जौजई-किशमिशी रेशमी साफा (मुरैठा) बाँधे, जडी के म्यान मे तलवार लटकाये, पोत-किमखाब के चमकते-दमकते अचकन-पैजामा पर मामाजी-वाला हीरा-मोती का हार पहने, पुखराज-नीलम की कलँगी लगाये, पान खाये, पीक गिराये, कुएँ (इनार) के कछार पर आ थमका।—और, न जाने, कब अपनी गरीब माँ की प्यारी जाँघो पर सर रखे तन्द्रा से निद्रा तक चला गया। कदम तथा दुलकी मे।

मैं ने अनुभव किया कि मेरे खाली नगे पॉव रिकाब पर चिपट गये है और मेरी मॉ अपने गोझनौटा (डेढिया) से उन्हे तोप-झाँप-छिपा रही है। ग्लानि और लज्जा से हताहत, लु लु आ या, मैं उद्विग्न और मायूस हो गया हूँ।

मॉ ने आँचल से आँखें (ऑजन) पोछ ली। और एक दूसरा नया गीत (गाने लगी) कढाया

बजाओ भैया चमऽरा,
बजाओ भैया चमऽरा।
बजाओ भैया चमऽरा,
बजाओ डुगडुग्गी।
बजाओ भैया चमऽरा,
बजाओ डुगडुग्गी॥

बजाओ डुगडुग्गी, रे!
बजाओ डुगडुग्गी, रे!
बऽजाओ भैया चमऽरा,
बजाओ डुगडुग्गी।
बजाओ भैया चमऽरा
बजाओ डुगडुग्गी!

और मैं कान पात (कर) सुनने लगा।

वह इकोती गूँजती आवाज।

उन्मुक्त। डुगडुग्गी।

■ ■ ■

अन्त मे

एक ऐतिहासिक कथा सुन लीजिये ।

बुद्ध भगवान् का देहान्त सन्निकट था। तथागत पेड के नीचे दायी करवट लेटे हुए थे। पास ही एक कोई छोटी-सी पहाडी नदी बह रही थी। प्यास लगी थी। पानी माँगा। शिष्य पानी लाने गये, तो देखा कि नदी होकर कई बैलगाडियो के गुजरने के कारण पानी गँदला हो गया है। वे लौट गये और शास्ता को सूचना दे दी। कुछ देर बाद तथागत ने फिर पानी लाने का आदेश दिया। शिष्य देख आये। पानी अभी साफ नही हुआ था। तब उन्होने कहा कि जाओ वही पानी ले आओ। अब इस अन्तकाल मे साफ पानी क्या और गन्दा पानी क्या !

शास्ता के महानिर्वाण के बाद कौन शकाओ का समाधान करेगा ? कितनी आवश्यक बाते पूछने को रह गयी थी। शिष्यो ने आनन्द को घेरा। तथागत के परम प्रिय जो थे। कहा कि कम-से-कम यह तो पूछ ही लो कि ईश्वर है या नही ? सबकी आँखो मे आँसू थे। जो रुकने को तैयार न थे। आनन्द गये। जाकर पूछा—'भगवान्, ईश्वर है या नही ?' बुद्ध भगवान् ने अपना अन्तिम उपदेश दिया—'आनन्द !' उन्होने पूछा 'मैने कभी कहा कि ईश्वर नही है ?' आनन्द ने उत्तर दिया—'नही, भगवन् !' 'आनन्द', उन्होने फिर पूछा—'मैने कभी कहा कि ईश्वर है ?' आनन्द ने उत्तर दिया—'नही, भगवन् !'

तब भगवान् बुद्ध ने कर्म की प्रधानता का उपदेश दिया, मध्यममार्ग की श्रेष्ठता जतायी, वाद-विवाद की निरर्थकता की बात कही।

और, यह आखरी एक बात कहकर उन्होने महाप्रयाण के लिये आँखे मूँद ली ।

■ ■ ■